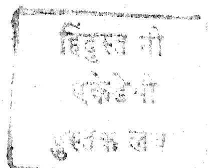
कबीर-ग्रंथावली

[प्रयाग-विश्वविद्यालय की डी० फ़िल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध]



सम्पादक
डॉ० पारसनाथ तिवारी एम्० ए०, डी० फ़िल्०

हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

प्रथम संस्करण : अक्टूबर, १९६१
१,०५० प्रतियाँ

मूल्य बारह रुपये

मुद्रक
राधेमोहन अग्रवाल,
बांसल प्रेस, १०३ पानदरीबा,
इलाहाबाद।

मेरा मुझमैं किछु नहीं, जो किछु है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौंपतां, क्या लागै मेरा॥

प्रस्तावना

साधना तथा साहित्य के क्षेत्र में कबीर का स्थान दिनप्रतिदिन महत्वपूर्ण होता जा रहा है, किन्तु अभी तक उनकी वाणियों का कोई ऐसा पाठ हमारे सामने नहीं आ सका था जिसे निरापद रूप से प्रामाणिक माना जा सके। कबीर का अध्ययन करने वाले सभी विद्वानों को यह अभाव बहुत समय से खटकता रहा है, क्योंकि कृतियों का प्रामाणिक पाठ स्थिर किए बिना हम उनके किसी भी पहलू पर वैज्ञानिक रूप से विचार नहीं कर सकते और न तो किसी सर्वमान्य निर्णय तक पहुँच ही पाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इसी अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

कुल मिलाकर जितनी रचनाएँ कबीरकृत कही गई हैं, विभिन्न दृष्टियों से उनकी परीक्षा करना और जो रचनाएँ वास्तविक रूप से कबीरकृत जान पड़ें उनमें भी कितना अंश किस रूप में उनका माना जा सकता है, यह देखना था। इन रचनाओं की जितनी भी प्रतियाँ हस्तलिखित अथवा मुद्रित रूप में प्राप्त हुईं और जो भी सहायक सामग्री टीका-टिप्पणी आदि के रूप में प्राप्त हो सकी उन सबका उपयोग करते हुए कबीर की वाणी का स्वरूप-निर्धारण मेरा अभीष्ट था।

यह कार्य कितना श्रमसाध्य था, इसकी कल्पना इसी से की जा सकती है कि विभिन्न हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों में कबीर के नाम से कुल मिलाकर हमें लगभग सोलह सौ पद, साढ़े चार हज़ार साखियाँ और एक सौ चौंतीस रमैनियाँ मिली हैं। पद, साखी तथा रमैनियों के अतिरिक्त भी सौ रचनाएँ (भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के रूप में) ऐसी और प्राप्त होती हैं जिन्हें कबीरकृत कहा जाता है। अब तक की खोजों से पिछले प्रकार की रचनाओं की संख्या इतनी ही ज्ञात हो सकी है, किन्तु आगे ज्यों-ज्यों खोज की जायगी, इनकी संख्या में वृद्धि की ही सम्भावना अधिक है। कबीरपंथियों का तो विश्वास है कि सद्गुरु की वाणी अनन्त है, अतः इसका पार पाना कठिन है। उसकी संख्या का अनुमान वनस्पति-समुदाय के पत्तों और गंगा के बालुका-कणों से लगाया जा सकता है—

जेते पत्र बनसपती, औ गंगा की रैन।
पंडित बिचारा क्या कहै, कबीर कही मुख बैन॥

—बीजक, साखी २६१

इतना ही नहीं, वास्तविक कठिनाई का पता तब चलता है जब विभिन्न प्रतियों का पाठ-मिलान किया जाता है। प्रस्तुत संपादन में जिन प्रतियों का विस्तृत पाठ-मिलान किया गया है उनमें से पद सात प्रतियों में, साखियाँ नौ में और रमैनियाँ पाँच प्रतियों में मिलती हैं (एक परिवार की विभिन्न प्रतियों की गिनती एक ही प्रति के रूप में की गई है)। कितना अंश कितनी प्रतियों में समान रूप से मिलता है, इसका पता नीचे के विवरण से मिल जायगा—

पदों का विवरण—

६	प्रतियों में	समान रूप से	१	पद
५	,,	,,	१७	,,
४	,,	,,	६८	,,
३	,,	,,	१५५	,,
२	,,	,,	३३९	,,
अलग-अलग प्रतियों में			९९९	,,
कुल मिलाकर			१५७९	पद

रमैनियों का विवरण—

४	प्रतियों में	समान रूप से	१	चौं र०
३	,,	,,	२०	रमैनी
२	,,	,,	२८	,,
अलग-अलग प्रतियों में			८१	,,
कुल मिलाकर			१३४	रमैनियाँ

साखियों का विवरण—

९	प्रतियों में	समान रूप से	१	साखी
८	,,	,,	१६	साखियाँ
७	,,	,,	६९	,,
६	,,	,,	२५९	,,
५	,,	,,	३४४	,,
४	,,	,,	४३६	,,
३	,,	,,	१०१०	,,
२	,,	,,	८३६	,,

अलग-अलग प्रतियों में	१४२४	साखियाँ
कुल मिला कर	४३९५	**साखियाँ**

इनका क्रम जो विभिन्न प्रतियों में विभिन्न था वह तो था ही।

वह अंश जो समस्त प्रतियों में समान रूप से मिलता हो, सुगमता से मान्य कहा जा सकता है। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि पद ऐसा एक भी नहीं है जो उपर्युक्त सातों प्रतियों में समान रूप से मिलता हो। साखी केवल एक है जो समस्त नवों प्रतियों में मिलती है और रमैनी छहों प्रतियों में समान रूप से एक भी नहीं मिलती—केवल एक रमैनी चार प्रतियों में पाई जाती है। इसके विपरीत पृथक्-पृथक् प्रतियों में स्वतन्त्र रूप से प्राप्त रचनाओं की संख्या ही सब से अधिक मिलती है। मैं नहीं जानता कि संसार के और किस कवि या लेखक की रचनाओं की समस्त प्रतियों में समान रूप से प्राप्त और पुनः उनमें पृथक्-पृथक् सामूहिक अथवा स्वतन्त्र रूप से प्राप्त छंदों की संख्या में इस कोटि की विषमता होगी जितनी कबीर के सम्बन्ध में दिखाई पड़ती है।

प्रश्न यह है कि इन विषम परिस्थितियों के अन्तर्गत उपर्युक्त रचना-समूह में से कबीर की प्रामाणिक कृति किस प्रकार पृथक् की जाय ?

गंतव्य स्थान तक पहुँचने के लिए हमारे सामने एक ही निरापद मार्ग था, वह यह कि विभिन्न प्रतियों का पाठ-सम्बन्ध स्थिर किया जाय और तदनन्तर केवल उन्हीं वाणियों को प्रामाणिक स्वीकृत किया जाय जो किन्हीं भी दो या अधिक ऐसी प्रतियों में मिलती हैं जिनमें किसी प्रकार का संकीर्ण-सम्बन्ध नहीं है—अर्थात् जिनमें पाठ-सम्बन्धी ऐसी विकृतियाँ (जानबूझकर अथवा अनजान में की हुई) समान रूप नहीं पाई जातीं जिनका अविर्भाव कवि के मूलपाठ के अनन्तर का सिद्ध होता हो—और इसी आधार पर उन वाणियों का पाठ भी निर्धारित किया जाय। जो वाणियाँ केवल ऐसी प्रतियों में प्राप्त होती हैं जो परस्पर संकीर्ण-सम्बन्ध से संबद्ध हैं, उनकी प्रामाणिकता में सन्देह होना स्वाभाविक है, क्योंकि जैसा हम कबीर की उपर्युक्त तथाकथित सौ रचनाओं के सम्बन्ध में देखते हैं, उनकी शेष वाणियों में भी प्रक्षेप हुए होंगे—यह बताने के लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि इन संकीर्ण-सम्बन्ध वाले प्रति-समूहों में पृथक् रूप से पाए जाने वाले सभी छंद प्रक्षिप्त हैं। सम्भव है कि कुछ न कुछ प्रतिशत इनमें भी प्रामाणिक छंदों का हो; किन्तु उस विशाल मिश्रित राशि में से उस छोटे प्रतिशत को अलग करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है।

प्रस्तुत प्रयास में उपर्युक्त साधनों का ही अवलंबन लिया गया है। अत्यन्त सतर्कता से निर्धारित समस्त 'निश्चेष्ट' और 'सचेष्ट' पाठ-विकृतियों की सहायता से विभिन्न प्रतियों का पाठ-सम्बन्ध निर्धारित किया गया है और तदनन्तर केवल उन्हीं अंशों को कबीर-वाणी के रूप में संकलित किया गया है जो किन्हीं दो या अधिक ऐसी प्रतियों में मिलती हैं जो परस्पर किसी भी प्रकार के संकीर्ण-सम्बन्ध से संबद्ध नहीं हैं और उन्हीं का ठीक-ठीक पाठ-निर्धारण भी इसी सिद्धांत पर किया गया है। किसी रचना की विभिन्न प्रतियों का अवलम्ब लेकर काल के स्थूल आवरण को भेद कर उसके मूल रूप तक पहुँचने का यही एक मात्र अमोघ साधन है।

संतोष का विषय है कि इस प्रकार भी जो वाणी हमें प्राप्त हुई है वह आकार में कम नहीं है। दो सौ पद (या शब्द), बीस रमैनियाँ, एक चौंतीसी रमैनी तथा सात सौ चौवालीस साखियाँ प्रामाणिक रूप से कबीर को सिद्ध होती हैं। वास्तविक कबीर के अध्ययन के लिए यदि हम किसी छोटी सी छोटी संख्या के सम्बन्ध में भी यह कह सकते हैं कि वह प्रामाणिक है तो उतना भी पर्याप्त होता। किन्तु जब उनकी रचनाओं की इतनी बड़ी संख्या निश्चित रूप से प्रामाणिक मानी जाने योग्य मिल रही है तो हमें और भी अधिक प्रसन्नता होनी चाहिए।

प्रस्तुत प्रबंध में दो खंड हैं। प्रथम खंड में, जो प्रस्तुत पुस्तक में 'भूमिका' के रूप में दिया गया है, सर्वप्रथम नाना संस्थाओं तथा व्यक्तिगत संग्रहों में सुरक्षित हस्तलिखित प्रतियों तथा विभिन्न रूपांतरों में प्राप्त मुद्रित ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विश्लेषण कर कबीर की तथाकथित रचनाओं से प्रमुख आधारभूत प्रतियों को पृथक् किया गया है तथा टीका-टिप्पणी आदि के रूप में उपलब्ध सहायक सामग्री का भी निर्देश किया गया है जिससे पाठ-निर्णय में वास्तविक सहायता मिलती है। इसके पश्चात् संपादन के हेतु प्रमुख रूप से चुनी हुई प्रतियों का विस्तृत विवरण देते हुए पाठ-विकृतियों के आधार पर उनका पारस्परिक संकीर्ण-संबंध स्थिर किया गया है और उनकी समस्त विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए कबीर-वाणी की पाठ-परंपरा भी निर्धारित की गयी है। आगे संकीर्ण-संबंध के ही सिद्धांतों के आधार पर कबीर की प्रामाणिक रचनाओं की संख्या निर्दिष्ट कर उन सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है जिनका प्रयोग वाणी के पाठ-निर्धारण में हुआ है। साथ ही कई प्रतियों में मिलने वाले एक पद के पाठ-निर्धारण का विवेचन भी दिया गया है जिससे प्रस्तुत संपादन में प्रयुक्त सिद्धांतों की रूपरेखा का कुछ

स्पष्टीकरण हो सके । एक पृथक् अध्याय में रचनाओं के क्रम के संबंध में विभिन्न प्रतियों के साक्ष्यों की विवेचना करते हुए प्रस्तुत निबंध में अपनाये जाने योग्य क्रम का निर्धारण किया गया है । अंतिम अध्याय में कुछ ऐसे स्थलों का निर्देश किया गया है जहाँ पर पाठ-निर्णय के उपर्युक्त सिद्धांतों द्वारा पाठ-समस्या का समाधान न होते देख विशिष्ट संशोधनों का प्रस्ताव किया गया है ।

द्वितीय खंड में मैंने उन पदों (अथवा शब्दों), रमैनियों और साखियों को संकलित कर उनका पाठ-निर्धारण किया है जो उपर्युक्त सिद्धांतों के आधार पर निश्चित रूप से प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं ।

किसी भी निबंध के संबंध में यह बताना आवश्यक होता है कि उसका कितना अंश मौलिक है । कहने की आवश्यकता नहीं कि अथ से इति तक इस निबंध का समस्त अंश मौलिक है । कबीर-वाणी के पाठ-निर्धारण का यह प्रथम वैज्ञानिक प्रयास है ।

यह संपूर्ण कार्य मैंने डॉ० माता प्रसाद गुप्त के निर्देशन में किया है और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से (जो संयोगवश मेरे निर्देशक डॉ० गुप्त के साथ इस निबंध के परीक्षक भी नियुक्त थे) समय-समय पर अनेक उपयोगी सुझाव मिलते रहे जिनका यथास्थान समावेश करने से इस प्रबंध की उपयोगिता में निश्चय ही वृद्धि हो गयी है । वास्तव में यह विषय इतना जटिल था कि सामग्री तथा उपयोगी साहित्य के रहते हुए भी उचित निर्देशन के अभाव में मेरा सीमित ज्ञान कहाँ बहकर लगता, उसकी मैं आज कल्पना भी नहीं कर सकता । उक्त गुरुजनों की कृपा पाकर मैं अपने को सचमुच ही बहुत गौरवान्वित और सौभाग्यशाली समझ रहा हूँ ।

श्रद्धेय श्री परशुराम चतुर्वेदी (बलिया) तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी (बीकानेर) से अनेक विवादग्रस्त स्थलों के अर्थ आदि की समस्याएँ सुलझाने में विशेष रूप से सहायता मिलती रही, अतः उक्त महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ । आज यह स्मरण करने में मुझे बड़ा सुख हो रहा है कि किस प्रकार तनिक सी भी कठिनाई उपस्थित होने पर मैं उक्त दोनों सज्जनों में से किसी एक को पत्र द्वारा सूचित करता और उसके समाधान के लिए मुझे कभी भी अधिक समय तक प्रतीक्षा न करनी पड़ती ।

उन सभी लेखकों के प्रति मैं आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों का उपयोग प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है, किंतु 'इंडियन टेक्स्टुअल क्रिटिसिज़्म' के लेखक डॉ० एस० एम० कत्रे, 'प्रोलेगोमेना' के लेखक डॉ० बी० एस० सुकथांकर, 'संत

कबीर' के टीकाकार डॉ० रामकुमार वर्मा, 'कबीर-साखी-सुधा' के लेखक प्रो० रामचंद्र श्रीवास्तव तथा बीजक के टीकाकार श्री विचारदास शास्त्री का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जिनकी उक्त पुस्तकों से पर्याप्त सहायता मिलती रही।

संपादन-सामग्री जिन सूत्रों से प्राप्त हुई है उनके प्रति भी मैं आभारी हूँ। हस्तलिखित प्रतियों के संबंध में हमें सबसे अधिक सहायता मोतीडूँगरी (जयपुर) के श्री दादू-महाविद्यालय के प्रधानाचार्य स्वामी मंगलदास जी से प्राप्त हुई। प्रतियों के अतिरिक्त वहाँ के वातावरण में मुझे अपूर्व शांति मिली और जितने क्षण उक्त विद्यालय में बीते उन्हें मैं अपने जीवन के श्रेष्ठतम क्षणों में गिनता हूँ। आभार-प्रदर्शन उन महात्मा की सादगी को छू तक नहीं जायगा। जयपुर के पुरोहित रामगोपाल शर्मा ने अपने स्व० पिता पुरोहित हरिनारायण शर्मा के संग्रह की प्रतियों को देखने की सुविधा प्रदान की, अतः मैं उनका भी आभारी हूँ। बीकानेर के श्री अगरचंद नाहटा तथा हिंदी विद्यापीठ, आगरा के श्री उदयशंकर शास्त्री ने अपने-अपने संग्रह की प्रतियों के अतिरिक्त अमूल्य सम्मतियाँ भी प्रदान कीं जिनसे प्रस्तुत पुस्तक की सामग्रियों में अधिक विस्तार तथा परिष्कार आ सका, अतः मैं उक्त सज्जनों का विशेष रूप से आभारी हूँ। नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के प्रबंधकों का आभारी हूँ जिन्होंने उक्त संस्थाओं में सुरक्षित कबीर-संबंधी हस्तलिखित प्रतियों का वहाँ बैठकर उपयोग करने की आज्ञा प्रदान की। इंडिया ऑफ़िस लायब्रेरी के अध्यक्ष का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने वहाँ की दो प्रतियाँ मेरे कार्य के निमित्त प्रयाग-विश्वविद्यालय के माध्यम से मेरे पास भेज दी थीं।

दुर्लभ मुद्रित ग्रंथों को प्राप्त करने में सीयाबाग़, बड़ौदा के श्री मोतीदास 'चैतन्य' से तथा जौनपुर ज़िले की बड़ैया गद्दी के आचार्य प्रकाशपति साहब और साधु दयालदास साहब से समय-समय पर बड़ी सहायता मिलती रही जिसके लिए मैं उक्त सज्जनों का कृतज्ञ हूँ।

हिंदी-विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० धीरेंद्र वर्मा तथा प्राध्यापक डॉ० उदयनारायण तिवारी के उपकारों को मैं जीवन भर नहीं भुला सकता जिन्होंने समय-समय पर मेरे लिए कार्य दे कर मेरी आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने में सहायता प्रदान की। अपने उक्त गुरुजनों की अनुकंपा का आभार मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ?

शोध प्रबंध (थीसिस) के रूप में इसे अक्टूबर सन् १९५६ में परीक्षणार्थ प्रस्तुत किया गया था और अगले वर्ष इस पर प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फ़िल०

की उपाधि प्रदान की गयी। हिंदी परिषद् में तभी से यह प्रकाशनार्थ पड़ी है, किंतु पहले काग़ज़ के अभाव तथा बाद में मेरी कुछ निजी उलझनों के कारण इसकी छपाई में अत्यधिक विलंब लगा। फिर भी टाइप आदि की व्यवस्था में इसके मुद्रक श्री राधे मोहन अग्रवाल ने कुछ उठा न रखा इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रूफ़-संशोधन में बहुत सावधानी बर्तने पर भी कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं, जिनकी सूची पृथक् दी जा रही है। उसकी सहायता से पाठक कृपया अपनी प्रति सुधार लें।

प्रस्तुत पुस्तक द्वारा कबीर की वाणी का सच्चा स्वरूप समझने में और फिर उसके द्वारा उन महात्मा का सच्चा व्यक्तित्व समझने में यदि थोड़ी भी सहायता मिल सकेगी तो मैं अपने परिश्रम को बहुत कुछ सफल समझूँगा।

प्रयाग
५ अक्टूबर, १९६१ ई०

—पारस नाथ तिवारी

जब गुन कौं गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाइ ।
जब गुन कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदलै जाइ ।।

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : भूमिका

संदिग्ध संकीर्ण-संबंध के समुच्चय :

§५ : पाठ-निर्णय और प्रस्तुत संकलन [पृ० २१४-२६०]

द्वितीय खंड : कबीर-वाणी का निर्धारित पाठ

रमैनी [पृ० ११७-१३५]

साखी [पृ० १३५-२४२]

संकेत-विवृति

उप० = उपदेश (कबीर की वाणी का प्रकरण-विशेष)

क० = कहरा (छंद विशेष)

क्र० सं० = क्रम-संख्या

गु० = श्रीगुरुग्रन्थसाहब (सिक्खों का धर्मग्रन्थ, प्रस्तुत प्रबंध में सर्वहिंद सिक्ख मिशन द्वारा प्रकाशित संस्करण—सन् १९३७ ई०)

गुण० = गुणगंजनामा (संतसाहित्य का एक संग्रह-ग्रन्थ जिसका संकलन जगन्नाथदास दादूपंथी ने किया था। प्रस्तुत पुस्तक में संवत् १८५३ की लिखी पोथी जो दादू महाविद्यालय, जयपुर में है।)

ग्रंथा० या 'ग्रंथावली' = कबीर-ग्रंथावली (बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा संपादित तथा नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित, सं० १९८५ वि०)

चिता० = चितावनी (प्रकरण विशेष)

चिता० उप० = चितावनी उपदेश (प्रकरण)

तुल० = तुलनीय अथवा तुलना कीजिए

दा० = दादूपंथी (प्रति अथवा शाखा विशेष)

दे० = देखिए

ना०प्र०स० = नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी

नि० = निरंजनी-सम्प्रदाय की (प्रति-विशेष)

पु० = पुल्लिग

पुन० = पुनरुक्ति अथवा पुनरावृत्ति

पृ० = पृष्ठ (संख्या)

फ़ा० = फ़ारसी (भाषा)

ब० = बसन्त (छंद विशेष)

बी० = बीजक (ग्रन्थ या प्रति विशेष)

बी०क० = बीजक का कहरा

बीफ० = बीजक फतुहा, ज़िला पटना परम्परा का (प्रस्तुत पुस्तक में सं० १९५० वि० की लिखी हुई पोथी जो श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह में है।)

बी०ब० = बीजक का बसंत

बीभ०=बीजक भगवान साहब अथवा भगताही शाखा का (मानसर गद्दी, ज़िला छपरा के आचार्य महन्त मेथीगुसाई द्वारा प्रकाशित, सन् १९३७ ई०)

बी०र०=बीजक की रमैनी

बी०सा०=बीजक की साखी

र०=रमैनी (छंद-विशेष)

र०सा०=रमैनी के अन्त की साखी

राज०=राजस्थानी (भाषा)

राज०प्र०=राजस्थानी भाषा का प्रभाव

राधा०=राधास्वामी मत या संप्रदाय

लि०का०=लिपि-काल

विप्र०=विप्रमतीसी (रचना विशेष)

शक०=कबीर साहब की शब्दावली, कबीरचौरा की (प्रस्तुत प्रबंध में कबीरचौरा के साधु अमृतदास द्वारा प्रकाशित चौथा संस्करण, सं० २००७)

शबे०=कबीर साहब की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित (प्रस्तुत पुस्तक में सन् १९४६ ई० का संस्करण)

सं०=संवत् अथवा संस्कृत (प्रसंगानुसार)

स०=सबंगी (संत-साहित्य का एक अप्रकाशित संग्रह-ग्रन्थ जिसका संकलन दादूपंथी संत रज्जब जी ने किया था। प्रस्तुत पुस्तक में सं० १८३० के लगभग की लिखी हुई हस्तलिखित प्रति जो दादू-विद्यालय, जयपुर में है।)

सभा=काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी

सा०=साखी (छंद) अथवा साखियों की प्रति विशेष, जो कबीर-मंदिर, मोती डूंगरी, जयपुर में है और सं० १८८१ वि० की लिखी हुई है।

साबे०=साखी ग्रन्थ, बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित (प्रस्तुत पुस्तक में सन् १९२६ ई० का संस्करण)।

सासी०=सतगुर कबीर साहब का साखी-ग्रन्थ : सीयाबाग, बड़ौदा से प्रकाशित, सन् १९३५ ई०।

स्त्री०=स्त्रीलिंग

हि०=हिन्दी (भाषा)



भूमिका

भूमिका

●

§ १ : प्राप्य सामग्री

कबीर-वाणी की प्रतियाँ दो रूपों में मिलती हैं : हस्तलिखित और मुद्रित। नीचे इसी क्रम से इनका संक्षिप्त विवरण दिया जायगा।

१. हस्तलिखित प्रतियाँ

मुझे कबीर की वाणियों के निम्नलिखित हस्तलेख विभिन्न स्थानों पर देखने को मिले हैं।

श्री दादू-महाविद्यालय, जयपुर की प्रतियाँ

मोतीडूंगरी (जयपुर) के दादू-महाविद्यालय में पंद्रह प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की वाणियाँ मिलती हैं। इनमें मुख्यतया दो प्रकार की सामग्रियाँ हैं। तेरह प्रतियाँ तो ऐसी हैं जो दादूपंथी संतों द्वारा लिपिबद्ध हुई हैं और दो ऐसी हैं जिनका संग्रह निरंजनीपंथ में हुआ था और वे निरंजनीपंथ के साधुओं द्वारा लिखी गयी हैं।

दादूपंथी प्रतियाँ—दादूपंथ में पाँच महात्माओं की वाणियाँ एक ही ग्रन्थ में सुरक्षित रखने की परपंरा बहुत दिनों से चली आ रही है। ऐसे संकलन को **पंचवाणी** कहा जाता है। ग्रन्थ में सर्वप्रथम स्थान उक्त संप्रदाय के संस्थापक दादू की वाणियों को दिया जाता है, दूसरा स्थान कबीर की वाणियों को और तीसरा, चौथा तथा पाँचवाँ स्थान क्रमशः नामदेव, रैदास तथा हरदास[१] को। पंचवाणी को दादूपंथी लोग बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और अब भी वहाँ इसकी आरती उतारी जाती है। राजस्थान में पंचवाणी-प्रतियों की भरमार है। ऊपर जिन तेरह प्रतियों की चर्चा हुई है वे प्रायः पंचवाणी-परंपरा की ही हैं। आगे इनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

---

१. यह हरदास निरंजनी संप्रदाय के हरिदास से भिन्न हैं।

२. महाराष्ट्र में भी 'संत-पंचायतन' की मान्यता है जिसके अंतर्गत क्रमशः ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, समर्थ रामदास तथा तुकाराम की गणना होती है।

पहली प्रति साढ़े छः सौ पत्रों की है और आकर्षक रेशमी जिल्द में पुस्तकाकार बँधी है। पुष्पिका के अनुसार दादूपंथी बाबा बनवारीदास की शिष्य-परंपरा में विष्णुदास के शिष्य मोतीराम के द्वारा सं० १८३१ वि० में राजस्थान के दादरी नामक स्थान में लिपिबद्ध हुई।

दूसरी प्रति, जो लगभग सवा फुट लंबी और छः इंच चौड़ी है, ६९५ पृष्ठों की है। इसमें पंचवाणी के अतिरिक्त १३ ग्रन्थ और हैं जिनमें राघवदासकृत 'भक्तमाल' और रज्जब की 'सर्बंगी' (दोनों अप्रकाशित) भी हैं जो संत-साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण हैं। 'सर्बंगी' में कबीर की भी बानी मिलती है। इस पोथी में लिपि-काल नहीं दिया है, किन्तु अनुमान से यह सम्भवतः विक्रम की १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किसी समय (सं० १८३० के लगभग) लिखी गयी होगी।

तीसरी प्रति, जो अब बहुत जीर्ण हो गयी है, आकार में कुछ छोटी (६ इंच × ५ इंच) और सं० १७६८ वि० की लिखी हुई है। यह प्रति आरम्भ व अंत में कुछ खंडित हो गयी है और लगभग १००० पत्रों की है। इसमें अन्य प्रतियों की तरह पंचवाणी का क्रम नहीं मिलता। पहले सुन्दरदास के सवैयों से आरम्भ कर फिर क्रमशः दादू की साखियाँ, प्रागदास की साखियाँ, कबीर की साखियाँ, फिर दादू के पद, कबीर के पद, कबीर की रमैणी चंदैणी और तत्पश्चात् नामदेव तथा तिलोचन की परचइयाँ मिलती हैं। अंत में 'सुखदेव का लीलाग्रन्थ', और सुन्दरदास की 'विवेकचितावणीं' दी हुई हैं। इसे लक्ष्मीदास के शिष्य जगन्नाथदास (कथाचित् 'गुणगंजनामा' के संकलनकर्ता ?) ने डीडवाने में लिखी थी। आगे इन प्रतियों का विस्तृत विवरण दिया जायगा।

चौथा ग्रन्थ भी, जो सं० १८५४ वि० में लिखा जाकर तैयार हुआ, ५६४ पत्रों का बड़े आकार का (१ फुट २ इंच × ६ इंच) संग्रह-ग्रन्थ है। ग्रन्थ आदि से अंत तक एक ही व्यक्ति द्वारा अत्यन्त सुन्दर नागराक्षरों में लिखा हुआ है। बीच के चार पत्रों पर आकर्षक रंगों के बेलबूटे बनाये हुए हैं और कुछ पृष्ठों के बाद कमल-पुष्प पर बैठे हुए ब्रह्मा जी के दो छोटे-छोटे चित्र मिलते हैं। पोथी की लिखाई और बँधाई की कला दादूपंथियों की विशिष्टता की परिचायक है। दादू की वाणी के पश्चात् जो पुष्पिका[३] दी हुई है उससे ज्ञात होता है कि पोथी का उतना अंश नैराणा (राजस्थान) के दादूद्वारा में लिखा जाकर सं० १८५३ वि० की आश्विन कृष्णा अमावस्या शुक्रवार को समाप्त हुआ। पुष्पिका में

३. "समत ॥ १८५३ ॥ शुभ स्थांन नराणां दादूद्वारा मध्ये वर्ष मासे आसोज कृष्न पक्षे तिथौ अमावस्या सुभवारे शुक्र दिने संपूरण भवेत। श्रीराम जी श्री दादू दयाल जी ॥"

लिपिकर्ता तथा काल आदि का विवरण इस प्रकार दिया गया है—

> " मिती फागुण बदी२ संवत् ॥ १८५४ ॥ का पुस्तक संपूरण भवते बार सुकरवार। लिषतं स्थांन षाचरया चकस मध्ये महंत मनसाराम जी कै असथलि। स्वामी गरीबदास जी की गादी ॥ महंत श्री जागूदास जी कौ शिष्य दासान्यदास षानाजाद गुलाम भगवानदास पुस्तक लिष्यौ॥"

इसमें कबीर को वाणी पोथी के पाना (= पत्रा या पन्ना) १३१ से २१६ तक आती है जिसमें ८१० साखियाँ, ३८४ पद तथा ४ रमैणियाँ हैं। प्रति-पृष्ठ ३३ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति १८ अक्षर आये हैं। संकलन की दृष्टि से पोथी के पाँच खंड किये जा सकते हैं—१. पंचवाणी, २. दादूपंथी संतों की वाणियाँ, ३. अन्य संत-महात्माओं की फुटकल वाणियाँ, ४. नाथ-योगियों की वाणियाँ, तथा ५. दादूपंथियों की फुटकल रचनाएँ।

पाँचवाँ ग्रन्थ आकार में ७ इंच × ५ इंच है। बीच की नत्थी तक पत्र-संख्या २८५ डाली हुई है जिससे ज्ञात होता है कि इसमें कुल ५७० पत्रे हैं। इसमें कबीर की वाणी पाना १४८-२३७ पर्यंत है और उसमें उनकी ८६० साखियाँ, ३८६ पद तथा ७ रमैणियाँ आयी हैं। पुष्पिका में साखियों की संख्या ६०० दी हुई है, जो ग़लत है और पूर्णता की दृष्टि से दी हुई ज्ञात होती है। जहाँ कबीर की वाणी आयी है वहाँ प्रतिपृष्ठ २७ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति २४ अक्षर आये हैं। पोथी में पंचवाणी के अतिरिक्त दादूकृत 'कायाबेली' पर टीका, चतुरदासकृत भागवत एकादशस्कंधभाषा, सुन्दरदासकृत 'ज्ञानसमुद्र', सवैये और अष्टक, राघव-दासकृत 'भक्तमाल सटीक (चतुरदास कृत टीका सहित), रज्जब के कवित्त, भीखजनदास कृत 'भीखबावनी' नामक ग्रन्थ भी मिलते हैं। इसे दादूपंथी साधु गोविन्ददास ने सं० १८८० वि० के फाल्गुन मास में संपूर्ण किया था।

छठा, जिसे दादूपंथी बाबा वेणीदास ने सं० १८४७ वि० में कार्तिक कृष्णा चतुर्थी, सोमवार को राजस्थान के अलेवा नामक स्थान में समाप्त किया, ५४० पत्रों का संग्रहग्रन्थ है और आकार में १ फ़ुट × ४॥ इंच है। इसमें पंचवाणी के पश्चात् क्रमशः रज्जब की 'सर्बंगी', गरीबदास (दादू के पुत्रशिष्य) तथा बखना की वाणियाँ, बनवारीदास तथा टीला के पद, सुन्दरदासकृत 'ज्ञानसमुद्र' और 'अष्टक' तथा कान्हा जी की वाणी और हैं। वेणीदास ने पुष्पिका में अपनी गुरुपरंपरा दी है, जिससे दादूपंथियों की एक शाखा के काल-क्रम पर प्रकाश पड़ता है। अंत में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दादू के कई शिष्यों के नाम-ग्राम दिये हुए हैं जिससे दादूपंथ के इतिहास-निर्माण में सहायता मिल सकती है। इस ग्रन्थ में कबीर की वाणी पाना १११ से १८६ तक आती है और इसमें भी अन्य पंच-

वाणी-प्रतियों की भाँति कबीर की ८१० साखियाँ, ३८६ पद तथा ७ रमैणियाँ मिलती हैं।

सातवाँ भी एक संग्रहग्रन्थ है जिसमें कुल ५१२ पत्रे हैं और जो आकार में ऊपर वाले ग्रन्थ के समान ही है। पुष्पिका के अंत में लिखा है, "पोथी लिखी तीनै मिलि करि जसराम, सोभाराम, रामधन।" जिससे ज्ञात होता है कि पोथी तीन विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिपिबद्ध हुई और लेखन की तीन विभिन्न शैलियाँ स्पष्ट दिखाई भी पड़ती हैं। जसराम ने भी अपनी गुरुपरंपरा दी है जो वेणीदास की उपर्युक्त तालिका से कुछ भिन्न है। पोथी सं० १८४५ वि० में अम्बाला शहर में लिख कर तैयार हुई। इसमें पंचवाणी में आयी हुई वाणी के अतिरिक्त कबीर के नाम से दो ग्रन्थ (१-बलक के पातसाह की रमैणी, २-कबीर-गोरख-गोष्ठी) और मिलते हैं; किन्तु वास्तव में यह ग्रन्थ कबीरकृत नहीं। आगे इनकी प्रामाणिकता के संबंध में किंचित् विस्तार से विचार किया जायगा। कबीर की वाणियों के अतिरिक्त इसमें कई दादूपंथियों की वाणियों के साथ पृथ्वीनाथ (नाथयोगी)-कृत 'भगतिबैकुंठजोग', 'नांवमहातम' और 'गृहबैराग' नामक ग्रन्थ तथा अनाथदासकृत 'श्री विचारमाल' (जिसे खोज-रिपोर्टों में भ्रम से कबीरकृत माना गया है) और सूरदास के कुछ फुटकल पद भी मिलते हैं।

आठवाँ ग्रन्थ भी पंचवाणी-परपंरा का है जिसे दादूपंथी बाबा रामधन ने नागौर (राजस्थान) में सं० १८४१ वि० में लिखा था। इसमें कबीर की वाणी पाना ११८ से १६५ तक आयी है जिसमें ८१० साखियाँ, ३८४ पद और ७ रमैणियाँ हैं। इस ग्रन्थ में रज्जब की 'सर्बंगी,' भी मिलती है जिसमें कबीर की भी वाणियाँ हैं।

नवाँ ग्रन्थ खुले पत्रों का है जिसे बोहर (राजस्थान) के साधु कानड़दास ने सं० १८८० वि० में "लिख करि श्रीपाल कांजी सुखदेव जी पुजारी जी नैं चढ़ाई अपनी भावना करिकै।" यह ग्रन्थ भी पंचवाणी-परपंरा का है, किन्तु इसमें केवल कबीर, नामदेव, रैदास और हरदास की वाणियाँ ही हैं, दादू की वाणी नहीं है। ज्ञात होता है, खुली पोथी होने के कारण दादू वाला अंश कहीं स्थानांतरित हो गया है। इसमें कबीर की ६१७ साखियाँ (३५ पत्रों में), ४०७ पद (५६ पत्रों में) तथा ८ रमैनियाँ (१२ पत्रों में) हैं। अन्य पंचवाणी-प्रतियों की अपेक्षा इसमें कबीर के साखी-पदों की संख्या कुछ अधिक हो गयी है, क्योंकि जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे ही वैसे प्रक्षेपों के कारण उसमें वृद्धि होती गयी।

दसवीं प्रति में १ फुट लम्बे और ५ इंच चौड़े कुल ५१ पत्रे हैं जिसमें केवल

कबीर की ही वाणी है। इसमें 'कबीर-ग्रन्थावली' (ना० प्र० सं०) की 'क' प्रति के समान ८१० साखियाँ, ४०१ पद तथा ८ रमैणियाँ हैं। पुष्पिका से ज्ञात होता है कि यह प्रति बाबा भगवानदास जी के पठनार्थ किसी दादूपंथी ने सं० १८६६ वि० में लिखी थी।

ग्यारहवीं, ६८ पत्रों की खुली पोथी है जिसमें दादू व कबीर, नामदेव तथा हरदास की कुछ चुनी हुई वाणियाँ ही टीका सहित दी हुई हैं। इसमें कबीर की ३१ साखियाँ और १२५ पद सटीक मिलते हैं। रैदास की वाणी इसमें नहीं आयी है, किंतु नाम 'पंचवाणी' ही दिया हुआ है। इसमें लिपि-काल नहीं दिया है, किंतु अनुमान से १९वीं शताब्दी वि० की ज्ञात होती है।

बारहवीं प्रति, जिसमें कबीर की वाणी मिलती है, रज्जब द्वारा संग्रहीत 'सर्बंगी' नामक एक संकलन-ग्रन्थ है। ऊपर दादू-विद्यालय की जिन पोथियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है उनमें क्रमश: दूसरी, छठी और आठवीं पोथियों में यह 'सर्बंगी' मिलती है। ना० प्र० सभा की भी एक पोथी में 'सर्बंगी' है। इसमें अन्य संतों के अतिरिक्त कबीर की भी वाणी संकलित है।

तेरहवीं प्रति 'गुणगंजनामा' की है। यह भी 'सर्बंगी' की तरह संकलन-ग्रन्थ है जिसका चयन दादूपंथी जगन्नाथदास ने किया था। इसमें लगभग साठ कवियों तथा संतों के दोहे अंगों के अनुसार संग्रहीत हुए हैं जिनमें कबीर की भी साखियाँ पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। यह पोथी किसी दादूपंथी द्वारा सं० १८५३ वि० में लिखी गयी थी।

निरंजनीपंथी पोथियाँ—दादू-महाविद्यालय में दो पोथियाँ निरंजनीपंथ की भी है। इनमें से पहली सं० १८६१ वि० की लिखी है और दादूपंथी ग्रन्थों के समान ६६९ पत्रों का मोटा संग्रह-ग्रन्थ है। पुष्पिका में कबीर की वाणियों का योग इस प्रकार दिया हुआ है : साखी १३७७, रमैणी १३, रेखता ७ तथा पद ६६२। इसके अतिरिक्त 'जन्मबोध पत्रिका की रमैनी', 'ग्रंथबतीसी', 'राममंत्र' तथा 'प्रचर्याचितामनि' नामक अन्य ग्रन्थ भी कबीर के नाम से मिलते हैं। आगे इस प्रति का विस्तृत विवरण दिया गया है।

दूसरी पोथी ५३६ पत्रों की है और आकार में ऊपर वाली पोथी से कुछ छोटी (६ इंच × ८ इंच) है। इसमें क्रमश: हरिदास, सेवादास, कबीर तथा तुरसीदास निरंजनी की वाणियाँ मिलती हैं। हरिदास की वाणी के पश्चात् १५२ पाना पर जो पुष्पिका दी हुई है उससे ज्ञात होता है कि प्रति निरंजनी साधु मोहनदास द्वारा साँभर (राजस्थान) नामक स्थान में सं० १८२६ वि० की वैशाख

शुक्ला सप्तमी शुक्रवार को लिख कर पूरी की गयी। इसमें कबीर की वाणी पाना ४०६ से ५१८ तक आयी है, जिसका पाठ ऊपर वाली पोथी में आयी हुई वाणी से अक्षरश: मिलता है।

स्व० पुरोहित हरिनारायण के संग्रह की प्रतियाँ

स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा (तहवीलदारों का रास्ता, जयपुर सिटी) के यहाँ हिन्दी की प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का बड़ा अच्छा संग्रह है। उनके संग्रह में दो पोथियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की वाणियाँ मिलती हैं। दोनों ही ग्रन्थ दादूपंथियों द्वारा लिखे गये हैं और पंचवाणी-परम्परा के ज्ञात होते हैं। इनकी रूपरेखा संक्षेप में निम्नलिखित है।

पहला ग्रन्थ, जो अब अत्यन्त जीर्ण हो गया है, सं० १७१५ वि० का लिखा है। इसकी पुष्पिका में कबीर के क्रमश: ४०० पदों, ७ रमैणियों तथा ८०० साखियों का निर्देश है। इसी पुस्तक में आगे चल कर 'अगाध बोध' नामक एक अन्य रचना भी कबीर के नाम पर आयी है। यह पोथी पुरोहित जी के बस्ता नं० ७ में मिलती है। हमें कबीर की जितनी प्रतियाँ मिली हैं उनमें यह लिपिकाल की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन है।

दूसरा ग्रन्थ, जो उक्त संग्रह के बस्ता नं०२ में है, ३३० पत्रों का है और सं० १७४१ वि० का लिखा हुआ है। आगे इन दोनों ग्रन्थों का विवरण विस्तार से मिलेगा, अत: यहाँ संक्षेप में निर्देश मात्र कर दिया गया।

श्री कबीर-मंदिर, मोतीडूंगरी की प्रतियाँ

जयपुर में मोतीडूँगरी महल के नीचे पहाड़ी से लगा हुआ एक छोटा सा कबीर-मंदिर है, जिसमें कबीर और कबीरपंथ के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ रक्खे हुए हैं। वहाँ कबीर के नाम पर जो कुछ मिला है उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

पहला ग्रन्थ, जिसमें ५७४ पत्रे हैं, सं० १८८१ वि० का कबीरपंथी साधु भगौतीदास का लिखा हुआ है। इसमें पहले कबीर की साखियाँ हैं, जिनकी संख्या पोथी में २८८८ दी हुई है और जो १०८ अंगों में विभाजित हैं। इसके अतिरिक्त २९ रचनाएँ ऐसी और मिलती हैं जिन्हें पोथी में कबीरकृत माना गया है किन्तु वास्तव में यह रचनाएँ न तो कबीर की हैं और न उनके जीवनकाल की ही। आगे इनके कबीरकृत होने के संबंध में विस्तार से विचार किया गया है, अत: यहाँ केवल तालिका दी जाती है, जो इस प्रकार है—

१. ज्ञानसागर—पाना १४३ से २२४ तक। २. विवेकसागर—पाना २२४ से २३५ तक।
३. रतनजोग—पाना २३५ से २४४ तक। ४. षटशास्त्र कौ मत—२४४ से २४५ तक।

५. कबीर स्वरोदय—पाना २४५ से २५२ तक।
६. ज्ञान तिलक—पाना-२५२ से २५७ तक।
७. जन्मपत्रिका की रमैनी—२५७ से २७० तक।
८. ग्रन्थ क्रुरम्भावली—२७० से २८८ तक
९. कबीरहनुमानगोस्टी—पत्रसंख्या नहीं।
१०. कबीरगोरखगोस्टी—४१ दोहों में।
११. कबीरजोगाजीत—३३ दोहे।
१२. कबीरगोरखगोस्टी—दूसरी, ७२ दोहे
१३. गुरगीता—साखी चौपाई छंद ११९९।
१४. रेखता ग्रंथ—२७० रेखते।
१५. हंसमुक्तावली या कबीरधर्मदाससंबाद।
१६. कबीर सतग्रंथ।
१७. अछरोटी ग्रंथ—सोरठा चौपाई में।
१८. आत्मबोध—४३ साखियाँ।
१९. आगम ब्यौहार—चौपाई दोहा।
२०. रमैनी सीढ़ीमूल आदि।
२१. अष्टांग जोग—४९ दोहे।
२२. सारबतीसी—३३ रमैनी।
२३. अक्षर खंड की रमैनी—४६ समै में।
२४. अजपा गायत्री—१८ साखी।
२५. धामक्षेत्र।
२६. कबीरकमालगोस्टी—३३ दोहा।
२७. प्राणसंकला—३३ दोहे।
२८. बारामासा—५१ छंद।
२९. सुखनिधान—रमैनी-समै में कबीर धर्मदास का संवाद (कुल ११२ समै)।

दूसरा ग्रन्थ भी मोतीडूँगरी स्थान के कबीरपंथी साधु भगौतीदास का लिखा हुआ है और आकार में ५ इंच × ८ इंच है। बीच की नत्थी तक पत्र सं० २७५ डाली गयी है, जिससे पूरा ग्रन्थ २७५ × २=५५० पत्रों का ज्ञात होता है। लि० का० सं० १८७७ वि० है। इसमें भी पहले २६५ पाना तक कबीर की साखियाँ (अंग १०८, संख्या २८७९) देकर आगे क्रमशः 'उग्रगीता', 'सुखनिधान', 'ज्ञान-सागर' तथा 'हंसमुक्तावली' नामक ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनमें से पिछले तीन ग्रन्थ-पहली पोथी में भी आ चुके हैं। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री...ग्रंथ संपूरण सत सही। सतगुर कबीर कौ बारूंबार डंडोत। दो० स्वामी शंकरदास जी सोभित पर्म सुजान। पुस्तक लिखि पूरन कियो तेहि अग्या परवान॥२॥...पुस्तग लिष्यो जयपुर मोतीडूंगरी मधे संमत॥१८७७॥ मागसीर वदि॥१२॥ सनीसरवार॥"

तीसरा गुटका (६ इंच × ४ इंच) सं० १८६६ वि० का लिखा हुआ है। इसमें कुल ७८० पत्रे हैं और निम्नलिखित चौदह ग्रन्थ हैं—१. कबीर साहेब का साखीग्रन्थ (अंग १०८, साखी २८६४; पाना १—२१५ तक), २. त्रिधावेदांत, ३. भागवतएकादशस्कंधभाषा (चतुरदासकृत), ४. भक्तिविवेक, ५. मोह-मरद की कथा, (जगन्नाथदास कृत), ६. विवेकसागर, ७. रेखता, ८. विचार-माल, ९. संतोषसुरत, १०. नाममंजरी, ११. गुरुमहिमा, १२. मंगल, १३. सुमिरणमंत्र, १४. सवइए छीतर जी के। पुष्पिका से ज्ञात होता है कि यह गुटका रामपुर अथवा रामगंज (जयपुर) में कबीरपंथी साधु पूरणदास के द्वारा राघौदास के पठनार्थ लिखा जाकर सं० १८६६ वि० में वैशाख सुदी १२, मंगल-वार को संपूर्ण हुआ।

चौथा गुटका केवल ७० पत्रों का है। इसके अंत में यद्यपि "फूटकर अंग साखी पनरे सम्पूर्ण" लिखा हुआ है, किन्तु इसमें १४ अंग ही मिलते हैं जिनमें कुल ३८६ साखियाँ हैं। लिपिकाल नहीं दिया है।

पाँचवी प्रति, जो १५० पत्रों की है, अत्यन्त भ्रष्ट नागरी लिपि में लिखी हुई है। इसमें निम्नलिखित ग्रन्थ आये हैं—१. गरुड़बोध, २. हनुमानगोष्टी, ३. ज्ञान-प्रकाश, ४. मुहम्मदबोध, ५. आरती, ६. पंचभूतमात्रा, ७. झूलने (४५), ८. चौजुगीलीला, ९. अगाधमंगल, १०. पद (चांचर, बसंत, होरी, काफी, गौड़ी, धनासरी, बिहागरा, बधावा, बनरो, डोरडो, रेखता), ११. गुरुप्रणाली, १२. शब्द प्रभाती, १३. षट्शास्त्र को मत, १४. शब्द (मारफत, धमार, होरी), १५. अर्जनामा। इसे सं० १८७३ वि० में लालदास ने लिखा और कबीरपंथी साधु संकरदास ने लिखाया था। इसके सारे पदों की मैंने प्रतिलिपि कर ली थी; किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि इसमें संगृहीत सारी रचनाएँ परवर्ती हैं और अन्य किसी शाखा में नहीं मिलतीं। भाषा भी अत्यन्त आधुनिक है।

छठी पोथी भी, जो ५८८ पत्रों की है, आधुनिक शैली की है जिसमें कबीर के नाम से प्रचलित अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। इनमें से कई ग्रन्थों के नाम दूसरी पोथियों तथा खोज-रिपोटों में भी मिलते हैं, किन्तु कई नाम नये भी हैं। नीचे उनकी क्रमबद्ध सूची दी जा रही है—

१. सिकन्दर की परचई, २. अमरमूल, ३. अगाधरमैनी, ४. सेऊ सम्मन की परचई (अनन्तदासकृत), ५. कबीरगोरखगोष्ठी, ६. अरजनामा, ७. भेदसार, ८. विज्ञानसार, ९. ग्यानप्रकास, १०. जंबूसहर की कथा, ११. ब्रह्म-जग्यास, १२. षटसास्त्र को मत, १३. हेतउपदेश (=हितोपदेश), १४. कबीर की परचई (अनंतदासकृत), १५. अमृतधारा, १६. अष्टांगजोग, १७. प्रिथी-खंड की रमैनी, १८. गोरख की बूझनि, १९. कबीरअष्टक, २०. शब्दपरष्या, २१. बैत, २२. पंचीकरण, २३. झूलना (११३ झूलने), २४. भोत्यारण, २५. अधरडोरी, २६. मूलग्यान, २७. नसीयतनामा, २८. मूल की सीढ़ी, २९. काफरबोध, ३०. भागवत एकादस भाषा (चतुरदासकृत), ३१. सबदियां (सिद्धों की), ३२. बतीसलछनजोग (गोरखकृत), ३३. कंवलबिचार, ३४. सीढ़ी करणिहार की रमैनी, ३५. ततबोध, ३६. तोबग्रन्थ, ३७. काफरबोध, ३८. ब्रह्मग्यान, ३९. चौदह इंद्री का बिचार, ४०. बसिष्ठ की गोष्ठी, ४१. अरजनामा।

इसे भी मोतीडूँगरी के साधु भगवानदास ने लिखा है। पुष्पिका में लिपि-काल "समत चतुरदस पंचमो साल दोय को जानि" (अर्थात् सं० १९०२ वि०) दिया हुआ है।

सातवाँ, सं० १८९९ वि० का लिखा हुआ १८२ पत्रों का, एक छोटा सा

गुटका है जिसमें 'सुखनिधान', 'विवेकसागर' तथा 'अष्टाबक्रगीता' नामक तीन ग्रन्थ दिये हुए हैं। यह तीनों ग्रन्थ अन्य पोथियों में भी आ चुके हैं।

आठवाँ ग्रन्थ ६११ पत्रों का है और सं० १९०२ वि० का लिखा हुआ है। इसमें कबीर का बीजक (२०९ पत्रों में) मिलता है। इस बीजक का आरम्भ "अन्तर जोति शब्द एकनारी।" इत्यादि से हुआ है। पुष्पिका में तिथि आदि का ब्यौरा इस प्रकार है—

समत चतुरदस पंचमो साल दोय को जान। तिथि तेरस गुरवार सुभ कृष्ण पषि सावन मानि॥
जैपुर मोतीडूँगरी संतन पूज्य सुथान। तहां बैठि गुटकौ लिष्यौ भगवानदास हित मानि॥
मंगल भगत बीजक लिष्यौ बाकी रही अधूरि। गुटकौ संमृथ साब को भगवन कीन्हो पूरि॥

इससे ज्ञात होता है कि यह बीजक किन्हीं संम्रथदास के पठनार्थ सं० २९०२ वि० में जयपुर के मोतीडूँगरी नामक स्थान में सावन बदी तेरस, गुरुवार को पूरा किया गया। इसका आरम्भिक भाग मंगलदास ने और शेष भगवानदास ने लिखा। बीजक का क्रम इस प्रकार है—रमैनी ८४, साखी ३१९, शब्द ११३, कहरा, बसंत, बेली, बिरहुली, हिंडोला, चाँचरि, चौतीस, विप्रमतीसी। इसका क्रम तथा पाठ भगताही शाखा के बीजक से मिलता है। बीजक के पश्चात् इस पुस्तक में 'अमृतधारा', 'त्रिधावेदांत', 'विचारमाल', 'गोरख कबीर की गोष्ठी', 'बारहमासा' तथा 'झूलना' नामक अन्य ग्रन्थ मिलते हैं।

नवाँ पंचवाणी-परम्परा का एक छोटा सा गुटका है, जिसमें लगभग ७ इंच लम्बे तथा ५ इंच चौड़े १६४ खुले पत्रे हैं। इसमें साखियों की संख्या ८१०, पदों की ४०४ और रमैणियों की ७ दी हुई है। गुटका आदि से अन्त तक सुन्दर नागरी अक्षरों में एक ही व्यक्ति द्वारा लिखा गया है, किन्तु अंतिम पृष्ठ के अभाव से लिपिकाल आदि की जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी।

नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी की प्रतियाँ

सभा के संग्रह में कबीर की वाणी निम्नलिखित पोथियों में मिलती है—

पहली पोथी वही है जिसके आधार पर सभा ने 'कबीर-ग्रन्थावली' का प्रकाशन कराया है। ग्रन्थावली में इसे **क प्रति** कहा गया है और मुख्य रूप से इसे ही आदर्श माना गया है। यह प्रति आधुनिक बेष्ठन में बड़े यत्न से संग्रहालय की क्र० सं० १०८ पर सुरक्षित रक्खी हुई है। इसमें कुल ७२ पत्रे हैं जो लगभग ११ इंच लम्बे और ६ इंच चौड़े हैं। प्रति अपनी लम्बाई में सुस्पष्ट लिखी हुई है। इसमें प्रतिपृष्ठ १५ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति लगभग ४६ अक्षर आये हैं। इसमें कबीर की ८१० साखियाँ, ४०२ पद तथा ७ रमैणियाँ आयी हैं। इसकी पुष्पिका में सं० १५६१ वि० का उल्लेख हुआ है, किन्तु अनेक कारणों से विद्वानों

को इसकी पुष्पिका पर सन्देह हो गया है। मेरा तो अनुमान है कि उक्त पुष्पिका में उल्लिखित संवत् कदाचित् शक संवत् है जो विक्रमीय संवत् १६९६ के लगभग पड़ता है। यह तिथि अन्य दृष्टियों से भी असंभव नहीं ज्ञात होती। "बांच (=चै) बिचा (रै) जासू' श्री रांम रांम छ (=छै ?)" अर्थात् जो बाँचे-बिचारे उससे मेरा राम राम है--इस अंश में आयी हुई राजस्थानी क्रिया 'छै' (=हिं० 'है') से यह भी संकेत मिलता है कि प्रति का, अथवा कम से कम पुष्पिका का, लेखक कोई राजस्थानी ही था। तिथि के झगड़े को छोड़ कर इसकी शेष विशेषताएँ पंचवाणी-परिवार की अन्य प्रतियों के समान ही हैं। कबीर-मन्दिर, मोतीडूँगरी की नवीं प्रति (जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है) के समान इसकी भी केवल इतनी ही विशेषता है कि इसमें पंचवाणी के शेष चार संतों की रचनाएँ नहीं मिलतीं, केवल कबीर की ही मिलती हैं। किन्तु परम्परा पंचवाणी-प्रतियों की ही है और पाठ शब्दश: पंचवाणी वाले पाठ से मिलता है।

दूसरी पोथी क्र० सं० १०९ की है जिसमें ६० खुले लम्बे पत्रे हैं। इसमें पहले के २१ पत्रों में कबीर की ९२१ साखियाँ तथा शेष ३९ में उनके ४०४ पद और ८ रमैनियाँ ('ग्रंथबावनी' को भी लेकर) हैं। इसमें १३१ साखियाँ तथा ५ पद ऐसे हैं जो ऊपरवाली प्रति में नहीं मिलते। आरम्भ और अन्त के पृष्ठों पर बीच में परकाल से फूल काढ़े हुए हैं। यह पोथी भी किसी दादूपंथी द्वारा सं० १८८१ वि० में लिखी गयी, क्योंकि पुष्पिका में लिखा हुआ है "इति श्री कबीर जी को कृत बांणी संपूर्ण। समत १८८१ का दादू रांम।" सभा द्वारा प्रकाशित "कबीर-ग्रन्थावली' की यह **ख प्रति** ज्ञात होती है।

तीसरी पोथी, जो संग्रहालय की क्र० सं० १४०७ पर मिलती है, ४९१ पत्रों की है और आकार में ३ इंच × ११ इंच है। यह पोथी पुस्तकबन्ध आकार में अपनी चौड़ाई में लिखी हुई है। इसमें पहले पंचवाणी आती है और तत्पश्चात् 'सर्बंगी' तथा अन्य दादूपंथी रचनाएँ मिलती हैं। कबीर की वाणी पाना ९८ से १६२ तक आती है और उसमें ८१२ साखियाँ, ३८४ पद और ७ रमैनियाँ मिलती हैं। पुष्पिका में बताया गया है कि यह पोथी रामगढ़ में सुन्दरदास के स्थान पर दादूपंथी साधु ज्ञानदास द्वारा सं० १८७२ वि० में पूस सुदी ११ वृहस्पतिवार को पूरी की गयी।

चौथी पोथी में संग्रहालय की क्र० सं० १४०६ पड़ी है। पुस्तकबंध आकार (६ इंच × १२ इंच) का यह एक दादूपथी संग्रहग्रन्थ है, जिसमें कुल ३८३ पत्रे हैं। कागद मटमैला है जिससे पुरानापन टपकता है। इसमें भी पहले 'पंचवाणी'

का संकलन है जिसमें कबीर की रचनाएँ पाना १०८ से १३४ पर्यंत हैं और इसके अन्तर्गत उनकी ८१० साखियाँ, ३८६ पद और ७ रमैनियाँ मिलती हैं। पंचवाणी के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में गरीबदास, साधूदास, बखना, जनगोपाल, सुन्दरदास, खेमदास आदि दादूपंथी संतों की वाणियाँ भी मिलती हैं। इसमें अनाथदासकृत 'विचारमाल' भी मिलता है, जो अन्यत्र कबीर के नाम से प्रचलित किया गया है। पोथी की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसे गोपालदास दादूपंथी के शिष्य मनसाराम ने उदयपुर के दीवान जगतसिंह की हवेली में सन्त सहजराम पहाड़ीवाला के पास रह कर सं० १७९७ वि० की वैशाख बदी सप्तमी, मंगलवार को लिख कर समाप्त किया।

पाँचवीं पोथी भी, जो संग्रहालय की १७०८ संख्या पर मिलती है, दादूपंथी बाबा जगन्नाथदास के शिष्य खुस्यालीराम के द्वारा सं० १८३६ वि० की लिखी हुई है। इसका आकार ११ इंच × ६ इंच है और पुस्तक के रूप में बँधी हुई है। लिखावट चौड़ाई में है और शुद्ध है। इसकी ४६४ पत्रों की सामग्री निम्नलिखित चार भागों में विभाजित की जा सकती है : प्रथम भाग में 'पंचवाणी' (पाना १—२२९) मिलती है, द्वितीय भाग में सर्बंगी (पाना २२९—४२७), तृतीय भाग में नाथ-योगियों की रचनाएँ और चतुर्थ भाग में रज्जब, खेमदास, ग्यानी, तुरसी (निरंजनी), काजी कादन तथा अन्य संतों की फुटकल रचनाएँ मिलती हैं। लेखक ने इसका संक्षिप्त उल्लेख पुष्पिका में इस प्रकार किया है—

पांचौ बाणी पुनि सरबंग। जोगेसरी कवित ये नंग।
धरमकथा पुनि साखी लहिए। बीस सहस सब्द ए कहिए॥
पंच मास लिख्यत लिख्या, पुनि षष्ट दिन एक।
सबद बिलासी संत हैं, रांणीलै[४] सु अनेक॥

इसमें कबीर की वाणी दो स्थलों पर मिलती है—एक तो पंचवाणी-प्रकरण में, जिसमें ८१० साखियाँ, ३८४ पद तथा ७ रमैनियाँ हैं और दूसरे सर्बंगी-प्रकरण में, जिसमें उनके चुने हुए पदों, रमैनियों और साखियों का संकलन है।

छठा ग्रन्थ संख्या १४०९ पर है। यह जोगिया रंग के खद्दर में बँधा हुआ ७९१ पत्रों (=१५८२ पृष्ठों) का एक विशाल संग्रहग्रन्थ है। यह ११ इंच लम्बा और ६ इंच चौड़ा है और पुस्तकाकार बँधा हुआ है। लिखावट चौड़ाई में है। अक्षर बड़े ही शुद्ध और आकर्षक हैं। समस्त पोथी की सामग्री स्थूल रूप से निम्नलिखित छः भागों में विभाजित की जा सकती है—१. पंचवाणी (कबीर की

४. राजस्थान का 'राणीला' नामक स्थान।

८८४ साखियाँ, ३८७ पद तथा ७ रमैनियाँ; पाना १—२१८ तक); २. गरीबदास के ग्रन्थ ('अनभैप्रमोध', साखी, चौबोला, कवित्त, पद; पाना २१८—२२६); ३. महात्माओं के फुटकल पद, जिसमें रामानन्द, सुखानन्द आदि ५६ सतों के पद हैं (पाना २२६ से २६४ तक); ४. जोगेसरी बानी; जिसमें गोरख से लेकर पृथ्वीनाथ तक समस्त नाथ-योगियों की वाणियाँ हैं, (पाना २६४ से ३२८ तक); ५. दादूपंथियों की रचनाएँ (जनगोपाल, पूर्णदास, दूजणदास, जगजीवनदास, जैमल, मोहनदास आदि की रचनाएँ; पाना ३२८ से ६११ तक); ६. रज्जब की सर्बंगी (६११ से ७६० तक) । पुष्पिका इस प्रकार है—

> इति श्री सरब संत बिरचंत सतगुर प्रसादे च मोक्ष भक्तिजोगो नाम तत्वसार मतः॥
> चौ० रामदास सिष लेषत होई । पुस्तक लिख्यो बनाइ कै सोई ॥
> भक्ति भंडार पुस्तक यह कहिये । पत्र आठ सै यामैं लहिये ॥८॥
> सत्रह सै इकहत्र्या सही । संबत पूस सुधि सो लही ।
> ब्रिसपतिवार पंचमी होई । ता दिन यो सम्पूरण सोई ॥९॥
> नग्र मड़ोठी नाम जु होई । साधू जी को असथल सोई ॥
> बांचै पड़ै सुनै जो कोई । रांम रांम बंचिज्यौ सब कोई ॥१०॥
> संवत् १७७१ पूस सुधि पंचमीं ॥

सातवाँ, जो संग्रहालय की सं० १३२६-१३६६ पर है, गुलाबी कपड़े के पुट्ठों में बँधा हुआ एक गुटका है, जो आकार में ६ इंच × ३ इंच है। इसमें पहले दादू की ८ साखियाँ देकर फिर कबीर की साखियाँ और तत्पश्चात् उनके पद लिखे हुए हैं। पुष्पिका में यद्यपि कबीर की साखियों की संख्या ६१८ और पदों की संख्या ५०८ दी हुई है, किन्तु इनकी वास्तविक संख्याएँ क्रमशः ६१५ और ४०४ हैं। इस ग्रन्थ को बाबा धीरमदास दादूपंथी के शिष्य किशोरदास ने सं० १८८५ वि० में लिख कर समाप्त किया था।

आठवीं पोथी, जिसके लिए संग्रहालय की कोई संख्या नहीं डाली गयी है, सं० १८२७ वि० की लिखी हुई है। इसमें भी पहले पंचवाणी है, फिर क्रमशः कुछ दादू-पंथियों की रचनाएँ तथा नाथ-योगियों की सबदियाँ हैं। पोथी में कुल ३३२ पत्रे हैं। लिपिकर्ता रामदास है, जो रतनदास दादूपंथी का शिष्य था।

क्र० सं० १३६२ पर एक छोटी सी (३ इंच × २ इंच) गुटिका है, जिसमें दादू, कबीर तथा सुन्दरदास जी की चुनी-चुनी रचनाएँ लिखी हुई हैं। अन्त में जनगोपालकृत 'दादूजन्मलीलापरची' है। इसमें कबीर की केवल कुछ साखियाँ मिलती हैं। यह प्रति भी दादूपंथ की पंचवाणी-परम्परा की ही है। लिपिकाल का उल्लेख नहीं है।

इसी प्रकार क्र० सं० ७४४ पर भी एक खंडित दादूपंथी प्रति है, जिसमें कबीर की केवल 'चितावणी अंग' की साखियाँ लिखी हैं, जिसमें यत्र-तत्र अर्थ भी दिये

हुए हैं। इसके अतिरिक्त रज्जब और हरदास की भी कुछ फुटकल साखियाँ हैं। लिपिकाल इसका भी ज्ञात नहीं है।

ग्यारहवाँ, जिस पर सभा की ८७३ संख्या डाली हुई है, ७१७ पत्रों का निरंजनी-सम्प्रदाय का विशाल संग्रह-ग्रन्थ है। यह ६ इंच चौड़ा और ११ इंच लम्बा है और चौड़ाई में सुस्पष्ट देवनागरी में लिखा हुआ है। इसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य अनेक संतों तथा नाथ-योगियों की रचनाएँ और पीपा, हरिदास, सेवादास आदि अनेक संतों की परचइयाँ मिलती हैं। इस ग्रन्थ में कबीर की १३७७ साखियाँ चौसठ अंगों में विभक्त मिलती हैं। साखियों के अतिरिक्त उनकी १३ रमैनियाँ, ६५४ पद तथा ७ रेखते मिलते हैं। इस प्रति की एक और विशेषता यह है कि इसमें कबीर के ११६ पदों की टीका भी मिलती है।[५]

दो खंडित प्रतियाँ क्र० सं० २५४६—१४६६ तथा १५०० पर मिलती हैं जो बीजक की ज्ञात होती हैं। पहली केवल ६ पत्रों की है जिसमें आरम्भ में ११ संख्या पड़ी है और अंत में २०। आरम्भिक साखी है—

आगे सीढ़ी सांकरी पीछे.........चूर।

परदा तर की सुंदरी रही धका से दूर ॥७८॥

अंतिम है—**वाकी माड़ी जगत में सो न परी पहचान ॥ १६० ॥**

दूसरी केवल १२ पत्रों की है जिसमें ११ से १४६ तक की साखियाँ मात्र हैं। पत्रे कहीं-कहीं स्याही की गोंद से चिपक गये हैं। सभी साखियाँ बीजक की हैं। दोनों प्रतियाँ कैथी लिपि में लिखी हुई हैं और दोनों ही वर्षातप के प्रभाव से नष्ट-प्राय हो चली हैं।

चौदहवीं पोथी, जो क्र० सं० ७०६ पर है, आधुनिक ढंग की एक कापी है जिसमें आदि-अंत के कुछ पत्रे नहीं हैं। आरम्भ के नौ पत्रों में कबीर के केवल १० फुटकल भजन मिलते हैं। आगे चरनदास, गोविन्ददास आदि के भजन दिये हुए हैं। लिपि कैथी है, किन्तु लिखने का समय अज्ञात है।

इसी प्रकार एक और खंडित पोथी "बालाप्रसाद पटवारी की" क्र० सं० ६६० पर मिलती है जिसमें २३ से १४० संख्यक पत्रे हैं। इसमें ७३ से १२५ पत्रों तक में कबीर की वाणी मिलती है। प्रति भद्दी कैथी लिपि में लिखी है और अत्याधुनिक है।

सोलहवीं प्रति, जो क्र० सं० ८२६ पर है, आधुनिक है और सं० १६१८ वि०

---

५. कबीर के अतिरिक्त नामदेव, रैदास, पीपा तथा जगजीवन के भी कुछ पदों की टीकाएँ इसमें मिलती हैं।

की लिखी हुई है। अंत के कुछ पत्रे खंडित हो गये है। लिपि सुस्पष्ट देवनागरी है। इसमें 'गरुड़बोध' और 'भवतारन' के पश्चात् कबीर की शब्दावली दी हुई है। इसकी प्रतिलिपि हमारे पास है। इसके केवल थोड़े से ही पद अन्यत्र मिलते हैं, शेष सब आधुनिक प्रक्षेप हैं। 'भवतारन' के पश्चात् की पुष्पिका में लिखा है कि इसे संतोषदास कबीरपंथी ने लखनऊ शहर में मखमूलगंज नामक मुहल्ले में छितवापुर नाका के पास बैठकर लिखा था।

क्र० सं० ८२७ तथा ६१६ पर 'अखरावती' की दो प्रतियाँ मिलती हैं। इनमें से पहली ३२ पत्रों की है और "संवत् १६४३ मीती फागुण क्रीश्न पक्ष ८ अष्टम्यां बुधवासरे के तइयार भइल"। दूसरी प्रति में 'अखरावती' के अतिरिक्त 'सुखसागर द्वादश स्कंध चौबीसवाँ अध्याय' (गद्य में), भीखासाहब की कुछ रचनाएँ तथा कबीर, पलटू आदि के कुछ झूलने (कबीर के छः झूलने) भी हैं। यह भी सं० १६४३ वि० की लिखी हुई है। दोनों में 'अखरावती' का पाठ बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'अखरावती' से मिलता है।

उन्नीसवीं पोथी, जो सभा की क्र० सं० १५ पर है, १६७ पत्रों की है। इसमें पहले के २६ पत्रों में कबीर की साखियाँ दी हुई हैं, फिर क्रमशः विवेकसागर, रमैनी, फुटकल पद, उग्रगीता, कहरा, बसंत, होरी, मंगल, आरती, मुहम्मदबोध, रामानन्दगोष्ठी, गोरखगोष्ठी आदि रचनाएँ भी उनके नाम पर मिलती हैं।

क्र० सं० ७६६ पर एक खंडित गुटका मिलता है जिसमें पहले पत्र पर ४ संख्या दी हुई है और अंतिम पर १८६। इसमें पहले रामचरण की रचनाएँ हैं, और फिर कबीर के नाम से 'रामसागर' (पाना ४६ से ५६ तक) तथा 'ज्ञानबतीसी' (५६ से ६४ तक) नामक ग्रन्थ मिलते हैं। इनके पश्चात् कुछ अन्य संतों की फुटकल रचनाएँ मिलती हैं।

संख्या ३५२ पर कबीर के नाम से 'रामसागर' की एक प्रति और मिलती है जिसमें लिपिकाल नहीं दिया हुआ है।

बाइसवीं पोथी में, जो क्रमसंख्या ६१५ पर है, कबीर के नाम से 'निरभैग्यान' नामक ग्रन्थ मिलता है। यह पोथी गोरखपुर सरकार के धुरियापुर परगने में गोपालपुर तालुके के हनुमान घाट पर महन्त गरीबदास द्वारा सं० १८६३ वि० में लिखी गयी।

क्र० सं० ८३६ पर 'अनुराग-सागर' की एक खंडित प्रति है जो कैथी में लिखी है और जिसे 'सरस्वती'-सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल ने सभा को दी थी।

चौबीसवीं पोथी में, जो क्र० सं० २६४६–१५६१ पर है, 'तत्व-स्वरोदय'

नामक रचना है। प्रति अपूर्ण है और इसमें केवल ९ पत्रे रह गये हैं।

क्र० सं० ६१६ पर ३८ पत्रों की एक कैथी प्रति मिलती है जिसका लि० का० सं० १८१२ वि० दिया है। इसमें कबीर के नाम से 'सुखसागर' (६ पत्रों में) और 'संतोषबोध' (१० पत्रों में) नामक रचनाएँ मिलती हैं।

क्र० सं० ६२४ पर महाभ्रष्ट लिपि में लिखी हुई ६६ पत्रों की एक बही-जैसी पोथी मिलती है जिसमें कबीर के नाम से 'ज्ञानप्रगास या धर्मदासबोध' नामक ग्रन्थ मिलता है।

इनके अतिरिक्त सभा के संग्रह में जगन्नाथदास के 'गुणगंजनामा' की भी एक प्रति मिलती है जिसमें, जैसा ऊपर अन्यत्र भी बताया जा चुका है, अन्य संतों तथा कवियों के साथ कबीर की भी साखियाँ संगृहीत हैं। यह जिस पोथी में है उसमें अनाथदासकृत 'विचारमाल' और जगजीवनदासकृत 'दृष्टांत की साखियाँ' भी मिलती हैं। यह प्रति नैराणा के दादूद्वारा में लालदास के पौत्र-शिष्य दयाराम दादूपंथी द्वारा सं० १८४७ वि० में लिखी गयी थी। प्रस्तुत प्रति में आयी हुई कबीर की वाणियों का पाठ दादू-विद्यालय वाली प्रति से अक्षरशः मिलता है।

कबीर की रचनाओं की कुछ प्रतियाँ स्व० मयाशंकर याज्ञिक के संग्रह (इस समय ना० प्र० सभा में सुरक्षित) में भी मिलती हैं। नीचे उनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

'ग्रन्थ बीजक साखी' में, जो संग्रहालय की क्र० सं० ११८–२४ पर है, कुल ११७ खुले पत्रे हैं जो बड़े यत्न के साथ एक में नत्थी कर दिये गये हैं। प्रति शुद्ध नागराक्षरों लिखी है। पुष्पिका के अनुसार इसमें कबीर की २७४० साखियाँ मिलती हैं जो १०९ अंगों में विभाजित हैं। इसे हरियाना के साधु किशोरदास के शिष्य हीरादास ने सं० १९२३ वि० में लिपिबद्ध किया था।

क्र० सं० ३६३–२४ तथा ३४७–५५ पर कबीर की दो छोटी-छोटी प्रतियाँ मिलती हैं। पहली में केवल ५ लम्बे-लम्बे खुले पत्रे हैं जिनमें कबीर के १० पद राग होरी के मिलते हैं। यह दसों पद और उनके पाठ वेलवेडियर प्रेस की 'शब्दावली' में मिलते हैं। दूसरी ८६ पत्रों की एक आधुनिक ढंग की कापी है जिसमें अनेक संतों के भजन लिखे हुए हैं। कबीर के भी थोड़े से भजन तथा रेखते मिलते हैं जिनमें से अधिकांश उक्त 'शब्दावली' में मिल जाते हैं। लिपिकाल किसी में भी नहीं दिया है।

याज्ञिक-संग्रह की ५५६–५५ संख्यक पोथी (लि० का० सं० १८२० वि०) में, जो फ़ारसी लिपि में है और जिसमें हितहरिवंश तथा हरिदास की रचनाएँ हैं,

कबीर के नाम से भी एक पद मिलता है, किन्तु यह अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की प्रतियाँ

सम्मेलन के संग्रहालय में केवल तीन प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की वाणियाँ मिलती हैं। एक बड़ा गुटका पंचवाणी-परम्परा का ज्ञात होता है, किन्तु दीमक लग जाने से उसका अधिकांश भाग नष्टप्राय हो गया है। जितना अंश शेष है उसका मिलान करने पर कोई विशिष्टता नहीं जान पड़ती। पुष्पिका के अभाव में लिपिकर्ता तथा काल आदि का ब्यौरा नहीं ज्ञात हो सकता, किन्तु लेख सुन्दर है और किसी राजस्थानी का ही ज्ञात होता है।

दूसरा ग्रन्थ, जो चमड़े की जिल्द से बँधा है, बीजक का है। इसमें बुरहानपुर के साधु पूर्णदास साहेब की त्रिज्या टीका भी है। यह टीका सन् १८९२ ई० में लखनऊ के गंगाप्रसाद वर्मा ब्रदर्स प्रेस द्वारा और १९०५ ई० में इलाहाबाद से बालगोविन्द मिस्त्री द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। अतः टीका की दृष्टि से इस प्रति का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त प्रति की लिखावट भी अत्याधुनिक और भ्रष्ट है।

तीसरी प्रति 'ज्ञानतिलक' की है, जो खंडित है।

श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह की प्रतियाँ

वाराणसी के श्री उदय शंकर शास्त्री (आजकल हिंदी विद्यापीठ, आगरा में साहित्य-सहायक) ने बड़े परिश्रम और व्यय से संत-साहित्य का एक निजी संग्रह बना लिया है जिसमें कबीर-संबंधी कुछ ऐसी ह० लि० प्रतियाँ तथा प्रकाशित पुस्तकें मिलती हैं जो अन्यत्र आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकतीं। शास्त्री जी के संग्रह में प्रमुखता बीजक की प्रतियों की है, क्योंकि उन्होंने स्वयं बीजक के पाठ की खोज की है और बाराबंकी से प्रकाशित बीजक के सम्पादन में पर्याप्त सहायता भी की है। शास्त्री जी के संग्रह में बीजक की निम्नलिखित प्रतियाँ हैं—

पहली प्रति, जो आकार में ५ इंच × ३ इंच है, बुरहानपुर के साधु मंगल-दास के द्वारा सं० १९४२ शके १८०७ की ज्येष्ठ शुक्ला ३ को लिख कर समाप्त की गयी है। इसमें कबीर की बानी का क्रम इस प्रकार है : रमैनी ८४ (पाना १ से ५१ तक) शब्द ११५ (पाना ५१ से १२० तक), ज्ञान-चौंतीसा १, विप्रमतीसी १, कहरा १२, बसंत १२, चाँचर २, बेलि १, बिरहुली २, हिंडोला ३, साखी ३५४, और तत्पश्चात् फल बीजक ९ साखी। इसके आरम्भ में 'अंतर जोति सब्द एक नारी' वाली रमैनी मिलती है।

दूसरी प्रति, जिसमें लिपिकाल नहीं दिया है, आकार में कुछ छोटी है और

एक किनारे पर जली हुई है। यह पहली प्रति से शब्दशः मिलती है। केवल साखियों की संख्या में एक का अन्तर है—अर्थात् इसमें ३५३ साखियाँ मिलती हैं। पहली प्रति के समान इसमें भी अन्त में 'फल बीजक' की नौ साखियाँ मिलती हैं।

तीसरी प्रति भी, जो सं० १६१२ वि० की ज्येष्ठ कृष्णा ५ की लिखी हुई है ऊपर की प्रतियों से मिलती है। केवल साखियों की संख्या में कुछ अन्तर है। इसका आरम्भ भी 'अंतर जोति' इत्यादि से होता है।

उक्त तीनों प्रतियों का क्रम और पाठ स्थूल रूप से रामनाराण लाल द्वारा प्रकाशित पं० श्री विचारदास शास्त्री (वर्तमान हुजूर प्रकाशमणि नाम साहब) के अथवा बाराबंकी से प्रकाशित बीजक के संस्करणों से मिलते हैं। चारों प्रतियाँ नागरी में हैं।

चौथी प्रति ८४ लम्बे पत्रों की (१३ इंच × ३ इंच) एक पुस्तकाकार प्रति है जिसकी लिखावट लम्बाई में है। इसमें वाणियों की संख्या तथा क्रम इस प्रकार हैं : रमैनी ८४, शब्द ११३, कहरा १२, विप्रमतीसी १, हिंडोलना ३, बसंत १२, चाँचर १, चौंतीसी १, बेल १, बिरहुली १, साखी ३८४। इसके पश्चात् 'लिष्यते साखी नवीन' लिख कर ३२५ साखियाँ और दी गयी हैं। इसे भीखमदास ने सं० १६५० वि० के आश्विन मास में विश्वनाथपुरी (काशी) के चेतन-वट में लिख कर पूरा किया।

पाँचवीं प्रति, जो सजीवनदास द्वारा "सं० १३१७ साल फसली ता० २५ माघ दीन मंगर संझा के बखत तैयार" हुई आकार में ऊपर की प्रति से छोटी (५ इंच × ३ इंच) है, किन्तु पाठ शब्दशः वही प्रस्तुत करती है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें ३८४ के स्थान पर ३८५ साखियाँ हैं और अंत की जोड़ी हुई नवीन साखियाँ नहीं हैं।

छठी प्रति सं० १६१० वि० की लिखी हुई पोथी में है। इसमें पहले 'अगाधमंगल' और 'अरजनामा' नामक दो फुटकल ग्रन्थ भी बीजक के आरभ में दिये हुए हैं। इसकी सभी विशेषताएँ ऊपर वाली प्रति से मिलती हैं। अन्तर केवल इतना है कि इसमें ३८४ साखियों के स्थान पर ३२५ साखियाँ ही मिलती हैं। यह बिद्दूपुर के मेहरबानदास कबीरपंथी के लिए तैयार हुई थी और शास्त्री जी को वहीं से मिली भी थी।

ऊपर की तीनों प्रतियाँ सभी बातों में फतुहा (ज़िला पटना) से प्रकाशित बीजक के संस्करण से मिलती हैं।

साँतवीं प्रति (लि० का० सं० १६१८) में कबीर की वाणियों का क्रम

निम्नलिखित है : रमैनी ८४, शब्द ११२, साखी २९७, कहरा १२, बसंत १२, बेइलि १, बिरहुली १, चाँचरि १, हिंडोला ३, चौंतीसी १, विप्रमतीसी १। इसे द्वारिका भगत ने तिरहुत में मौजा मायल के हरगोविन्द गोसाँई के स्थान पर लिखा। ऊपर जो क्रम में अन्तर दिया हुआ है उसके अतिरिक्त शब्द, साखी, कहरा, बसंत आदि के क्रम (तथा कहीं-कहीं पाठ भी) अन्य बीजकों से भिन्न हैं।

आठवीं प्रति भी, जो आकार में बहुत छोटी (३ इंच × २ इंच) है, ऊपर की प्रति से बिलकुल मिलती है। इसमें अंत के कुछ पत्रे नहीं हैं जिससे लिपि-काल आदि का पता नहीं चलता, किन्तु देखने से यह भी आधुनिक लगती है।

ऊपर की दोनों प्रतियों से मिलती-जुलती एक प्रति और है जिसके सभी ब्यौरे भगताही शाखा के उपर्युक्त बीजकों से मिलते हैं। केवल इतना अन्तर है कि इसमें २९७ साखियों के बजाय २४८ साखियाँ ही हैं। लिपिकाल नहीं दिया है।

ऊपर की तीनों प्रतियों में रमैनी का आरम्भ 'अंतरजोति सब्द एक नारी' से ही होता है, किन्तु, जैसा पहले संकेत किया गया है, अन्य बीजकों से इसमें कई विशेषताएँ अधिक हैं। भगताही शाखा की मानसर गद्दी के आचार्य मेथी गोसाँई साहब द्वारा प्रकाशित 'बीजक' का संस्करण इन प्रतियों से बिलकुल मिलता है।

'बीजक' की उपर्युक्त प्रतियों के अतिरिक्त शास्त्री जी के संग्रह में कबीर की वाणियों के तीन ग्रन्थ और हैं जिनकी संक्षिप्त रूपरेखा निम्नलिखित है—

एक संग्रह-ग्रन्थ है (६ इंच × ३ इंच) जो सं० १८८६ से ८९ वि० तक लिखा गया था। पहले इसमें 'नामदेव की परिचई' और 'वैराग्य प्रकरण' नामक दो फुटकल ग्रन्थों के पश्चात् कबीर की २७५५ साखियाँ १०८ अंगों में दी हुई हैं। साखियों के पश्चात् बसंत राग के अतर्गत १७ पद, होरी में २२ और रेखता में १७ पद और दिये हैं। कबीर की इन रचनाओं के पश्चात् इस पोथी में 'भगवद्-गीता' (अपूर्ण) और 'अनुभव हुलास' नामक ग्रन्थ और मिलते हैं। इसे सुखराम-दास कबीरपंथी ने बिद्दूपुर गुरुद्वारा में बैठ कर सं० १८८९ वि० में लिखा था।

दूसरी प्रति में भी कबीर की साखियाँ मिलती हैं। इसमें अंगों की संख्या तो १०८ ही है किन्तु साखियों की संख्या बढ़ कर २८६१ हो गयी है। साखियों के अतिरिक्त कबीर के कुछ फुटकल पद भी बिहंगड़ा, परज आदि रागों के अन्तर्गत दिये हुए हैं। अंत में 'जजीरा' (कबीरपंथी मंत्र) 'गुरमहिमा', 'विचार-माल' आदि फुटकल ग्रन्थ तथा 'चौका की रमैनी' आदि नित्य क्रिया संबंधी रचनाएँ भी मिलती हैं। इसे पंजाब के डेरावसी (?) शहर के दादपुरा मुहल्ला

में छत्रधारीदास ने प्रागदास के मकान में बैठ कर लिखा और सं० १९२८वि० में समाप्त किया।

तीसरा ग्रन्थ (५२४ पत्रों का) सं० १८६० वि० का लिखा हुआ है। इसमें भी कबीर की वाणी मिलती है, किन्तु उसमें व्यतिक्रम बहुत है। बीच-बीच में अन्य ग्रन्थ अथवा रचनाएँ आ जाने के कारण उसका कोई निश्चित रूप नहीं मिलता। नीचे की सूची से यह बात स्पष्ट हो जायगी। पोथी में रचनाओं का क्रम इस प्रकार है—

(क) सुखनिधान—पाना १ से ४८ तक, (ख) पंचमुद्रा ४९—५३, (ग) शब्द मंगल और छप्पै—पाना ५३ से ५५ तक, (घ) कबीर की १११ साखियाँ अर्थ सहित—पाना ४९ से ५३ तक, (ङ) फुटकल साखियाँ, (च) कबीर के पद ६९ से ८१ तक, (छ) पुनः साखियाँ, गुरुदेव को अंग—८१ से १०० तक, (ज) अरजनामा—पाना १०२ तक (झ) विवेकसागर—११४ तक, (ञ) पुनः फुटकल पद—पाना १२२ तक, इत्यादि।

इंडिया-आफ़िस-लायब्रेरी की प्रतियाँ

लंदन की इंडिया-ऑफ़िस-लायब्रेरी में कबीर की बानियों की दो प्रतियाँ हैं जिन्हें वहाँ के अधिकारियों ने मेरे कार्य के लिए प्रयाग-विश्वविद्यालय को कुछ समय के लिए उधार भेज दिया था।

पहली, बीजक की एक खंडित प्रति है, जो कैथी लिपि में लिखी हुई है। इसमें पहले साखियाँ आती हैं फिर क्रमशः शब्द, ज्ञानचौंतीसा, विप्रमतीसी और रमैनी आदि आती हैं। अन्त के कुछ पत्रे नहीं हैं जिससे लिपिकाल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। किन्तु स्याही, कागज़, आदि से प्रति अत्यधुनिक लगती है।

दूसरी पोथी, जो पूर्ण है और सुन्दर देवनागरी में लिखी हुई है, निरंजनीपंथ की है। इसमें कुल ५७१ पत्रे हैं जो लम्बाई में ७ इंच और चौड़ाई में ४ इंच हैं। बीच के दो-चार पत्रों में नत्थी के पास, कदाचित् समुन्दर पार पहुँचने के पूर्व ही, कुछ भाग दीमक खा गये हैं, किन्तु उससे अक्षरों को कोई क्षति नहीं पहुँची है। पोथी के आरम्भ में इंडिया-ऑफ़िस-लायब्रेरी की मुहर लगी है जिस पर ५ फ़रवरी १९०९ की तारीख़ पड़ी है। इससे ज्ञात होता है कि यह पोथी उक्त तारीख़ के आस-पास किसी समय वहाँ पहुँची होगी। पुस्तकालय की संख्या 'हिन्दी-ए-११' है। कबीर की वाणी इसमें आरम्भ के ३४६ पत्रों में मिलती है जिसका ब्यौरा निम्नलिखित है—

पंजाब विश्वविद्यालय के संग्रहालय की प्रतियाँ

पंजाब-यूनिवर्सिटी-लायब्रेरी में दो पोथियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की रचनाएँ मिलती हैं। क्र० सं० २१६ पर 'ज्ञानतिलक' नामक ग्रन्थ कबीर के नाम से मिलता है। इसकी चर्चा ऊपर भी आ चुकी है। दूसरी पोथी 'अनभै संग्रह' नाम से १९६० संख्या पर मिलती है। इसमें क्रमशः दादू, कबीर, नामदेव, रैदास और हरदास (पंचवाणी) तथा सुन्दरदास की रचनाएँ लिखी हैं। कबीर की साखियों की संख्या ८८९ दी हुई है। लिपिकाल नहीं दिया है, किन्तु पोथी प्राचीन है। इन प्रतियों की सूचना मुझे अपने निर्देशक डॉ० माता प्रसाद गुप्त से मिली थी, जिन्होंने अपने खोज-कार्य के सिलसिले में इन्हें वहाँ पर देखा था। 'ज्ञानतिलक' हमें जयपुर में मिल चुका हैं, अतः उसकी परीक्षा के लिए अन्य प्रति की विशेष आवश्यकता नहीं है। दूसरी प्रति के विवरण से स्पष्ट है कि यह पंचवाणी-परम्परा की ही कोई प्रति है जिसकी कई प्रतियाँ हमें विभिन्न स्थानों पर मिल चुकी हैं। अतः इसमें भी कोई विशेषता नहीं रह जाती।

श्री अगरचन्द नाहटा की प्रतियाँ

बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा ने कबीरवाणी की दो प्रतियाँ भेजी थीं, किन्तु दोनों खंडित हैं। पहली प्रति जो अब अत्यन्त जीर्ण हो गयी है, केवल ११ पत्रों की है। मूल लेखक के हाथ से डाली हुई पृष्ठ-संख्याएँ अब उड़ गयी हैं, उनके स्थान पर नयी संख्याएँ डाली हुई हैं। आरम्भ में 'रामगिरी' राग के पूर्व ९० संख्या पड़ी है, जिससे ज्ञात होता है कि इसके पूर्व के ९० पद लुप्त हो चुके हैं। किन्तु अभी ९० पद शेष हैं जिनमें से सभी 'कबीर-ग्रन्थावली' (ना० प्र० स०) में मिल जाते हैं। पोथी के पत्रे एक फ़ुट लम्बे और ४ इंच चौड़े हैं। प्रतिपृष्ठ १४ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति लगभग ५० अक्षर आये हैं। इसकी सारी विशेषताएँ दादूपंथी प्रतियों के समान हैं। केवल दो बातें विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१. इसमें 'ऐ' के स्थान पर 'अइ', 'औ' के स्थान पर 'अउ' तथा 'या' के स्थान पर 'इआ' मिलते हैं; जैसे 'दैहूँ' का 'दइहूँ', 'तौ' का 'तउ', 'मया' का 'मइआ' इत्यादि।

२. कहीं-कहीं 'ए' और 'ओ' की मात्राएँ बँगला लिपि के समान मिलती हैं; जैसे 'मेरो' के लिए 'ƐमƐ रा'।

प्रति प्राचीन अवश्य है किन्तु लिपिकाल कहीं से भी ज्ञात नहीं होता है। दूसरी प्रति में केवल दो पत्रे हैं जो किसी बड़ी प्रति के अंश ज्ञात होते हैं।

खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित प्रतियाँ

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की पहली खोज-रिपोर्ट सन् १९०१ ई० में बाबू श्यामसुन्दर दास की अध्यक्षता में प्रकाशित हुई। आगे चल कर यह रिपोर्ट त्रैवार्षिक हो गयी और वह भी केवल १९२५ ई० तक प्रकाशित हो पायी, फिर इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। किन्तु खोज का कार्य अब भी चल रहा है और उनकी त्रैवार्षिक रिपोर्टें हस्तलिखित रूप में सुरक्षित हैं। मैंने सन् १९४९ तक की ह० लि० रिपोर्टों का उपयोग किया है। सन् १९०१ से लेकर १९४९ तक की रिपोर्टों के अनुसार कबीर के निम्नलिखित १४० ग्रन्थ ज्ञात होते हैं—

[नीचे की संख्याओं में पहली रिपोर्ट के वर्ष को सूचित करती है और दूसरी उसकी क्र० सं० को।]

१. अक्षरखंड की रमैनी—९-१४३ सी।
२. अक्षरभेद की रमैनी—९-१४३ वी।
३. अखरावत—२३-११८ ए, २६-२१४ ए, २९-१७९ ए, बी, सी, ३२-१०३ बी, सी, ४१-२१, ४७-९।
४. अगाधबोध—३५-४९ बी।
५. अगाधमंगल—९-१४३ ए।
६. अजब उपदेश—३२-१०३ ए।
७. अठपहरा—६-१७७ टी।
८. अनुरागसागर—६-११७ के।
९. अमरमूल—६-१७७ जे। ९-१४३ एफ़, २३-१९८ बी।
१०. अरजनामा—९-१४३ जी।
११. अलिफनामा (१)—९-१४३ डी।
१२. अलिफनामा (२)—९-१४३ ई।
१३. अवधू की बारहखड़ी—३५-४९ ए।
१४. अष्टपदी रमैनी—३५-४९ डी।
१५. अष्टांग जोग—३५-४९ सी।
१६. आरती—९-१४३ एज।
१७. इकतार की रमैनी—३५-४९ एन।
१८. उग्रगीता—६-१७७ एच, २३-१९८ पी, क्यू, २६-२१४ ई ४१-४७७ ख।
१९. उग्रज्ञान मूल सिद्धान्त दस मात्रा—६-१७७ एल।
२०. उपदेस चितावनी—३२-१०३ सी २।
२१. एकोतरा सुमिरन—१९८ सी।
२२. कबीर अष्टक—९-१४३ डब्लू।
२३. कबीर धर्मदास गोष्ठी—६-१७७ आई।
२४. कबीर शंकराचार्य गोष्ठी—४१-२१ ड।
२५. कबीर के वचन—२९-१७१ टी (झूलने)।
२६. कबीर गोरख गोष्ठी—९-१४३ यू, पी, २९-१७७ आई।
२७. कबीर जी के पद—२-४२, २-१८४, २९-१७९ एन, ३२-१०३ एन।
२८. कबीर देवदूत गोष्ठी—२३-१९८ एच, ४७-२।
२९. कबीर निरंजन गोष्ठी—४४-३२ख।
३०. कबीर परिचय की साखी—६-११७ ओ।
३१. कबीर बत्तीसी—२२-५१ए।
३२. कबीर भेद—३५-४९ पी।
३३. कबीर मंगल—५-४९ क्यू।
३४. कबीर सागर—४४-३२ क।
३५. कबीर की चेतावनी—३२-१०३ जी, एच, ४४-३२ घ।
३६. कबीर सुरति जोग—२९-१७९ एस।
३७. कबीर सरोदय—३२-१०३ सी।
३८. करमखंड की रमैनी—९-१४३ एक्स, २९-१७९ ओ।
३९. कायापाँजी—१७-९२ बी।
४०. कुजाला कथा—४७-१।
४१. कूर्मावली—२३-१९८ के।
४२. खंडित ग्रन्थ (रेखता)—३८-७७ ए, बी, २९-१७९ यू, ४७-३।
४३. गरुड़ बोध—२३-१९८ ई, ४१-१७७ च।
४४. गुरु महिमा—३५-४९ एल।
४५. चाँचर—३५-४९ सी।
४६. चौका रमैनी—९-१४३ एन।
४७. चौंतीसा—९-१४३ ओ।
४८. छप्पै—९-१४३ एस।
४९. जंजीरा—३२-१०३ जे।
५०. जन्म पत्रिका रमैनी—३५-४९ ओ।
५१. जनम बोध—९-१४७ एल।
५२. ज्ञान गुदड़ी—९-१४३ आर, ३२-१०३ एफ़।
५३. ज्ञानचौंतीसी—९-१४३ क्यू, २०-७४ बी।

५४. ज्ञान तिलक—३२-१०३ एल, ४९-४।
५५. ज्ञानप्रगास या धर्मदास बोध—४१-२१६ (दे० बोध सागर—वेंकटेश्वर प्रेस)।
५६. ज्ञान बत्तीसी—३२-१०३ए।
५७. ज्ञान संबोध—९-१४३ आर, २३-१५८ एफ़।
५८. ज्ञान सागर—९-१४३ एस, ४४-३२ ग (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित)।
५९. ज्ञानस्तोत्र—६-१७७ सी।
६०. ज्ञानस्थिति ग्रन्थ—२९-१७९ एल, एम।
६१. ज्ञान सरोदय—९-१४३ टी, २६-२१४ बी
६२. झूलना—२९-१७९ जे, के।
६३. तत्वसरोदय—३२-१०३ बी।
६४. तिरजा की साखी—२३-१९८ ओ।
६५. तीसा जन्त्र—९-१४३ के।
६६. दत्तात्रेय की गोष्ठी—२९-१७९ जी।
६७. दोहे—२-५४, ३२-१०३ आई।
६८. द्वादश शब्द—२३-१९८ डी (१२ पद)।
६९. नौपदी रमैनी—३५-४९ आर।
७०. नसीहतनामा—३२-१०३ आर।
७१. नामदेव की लीला—४१-२१ ल।
७२. नाम महातम की साखी—९-१४३ ए।
७३. नाम माला—४९-कबीर।
७४. नाम माहात्म्य—२९-१४३ बी।
७५. निर्णयसार—४७-कबीर।
७६. निर्भय ज्ञान—६-१७७ आर। ९-१४३ ओ।
७७. पंचमुद्रा—३५-४९ एस।
७८. पिय पहिचानिबे को अंग—९-१४३ सी २।
७९. पुकार—९-४३ डी।
८०. ब्रह्म निरूपण—६-१७७ एम।
८१. बलख की पैज—९-१४३ आई।
८२. बसंत—३५-४९ एक्स।
८३. बानी—६-१७७ ए, बी, ९-१४३ एम, ३२-१०३ एन
८४. बार ग्रंथ—३५-४९ ई।
८५. बारहमासी—९-१४३ जे, ३२-१०३, डी०, ई०, ४७-६।
८६. बावनी रमैनी—३५-४९ एफ़।
८७. बिरहुली—३५-४९ जे।
८८. बीजक—९-१४३ एल, २०-७४ए। २३-१९८ आई, जे २९-१७९ डी०, ४७-७।
८९. बीजक चितावणी—३५-४९ एच।
९०. बेहुल—३५-४९ जी।
९१. भवतारण ग्रन्थ—४१-२१ ग, ४७-८
९२. भक्ति को अंग—९-१४३ के।
९३. मंगल शब्द—९-१४३ वाई।
९४. मंत्र—३२-१०३ क्यू।
९५. मखौना खंड चौंतीसी—९-१४३ एन।
९६. मनुष्य बिचार—२३-१९८ एल।
९७. मुहम्मद बोध—९-१४३ जेड, ४१-२१ज
९८. मूलज्ञान—४४-३२ च, ४७-९।
९९. मूलबानी—४४-३२छ।
१००. यज्ञ समाधि—२३-१९८ आर।
१०१. रमैनी—६-१७७ ई, २-१८५, २३-१९८ एन, २९-१७९ ओ।
१०२. रागोड़ा ग्रन्थ—२२-५१ बी।
१०३ रामरक्षा—६-१७७ एस, ३२-१०३ एस।
१०४. रामसार—१-१०८।
१०५. रेखता—२९-१७९ पी, ९-१४३ पी, ६-१७७ डी।
१०६. बशिष्ठ बोध—४४-३२ ड।
१०७. विचारमाल—१७-९२ ए (वस्तुतः अनाथदास कृत)।
१०८. विप्रमतीसी—३५-४९ आई।
१०९. शब्द—३५-४९ टी (बीजक के शब्द)।
११०. शब्द अलहतुक—९-१४३ ई२।
१११. शब्द कहरा—३२-१०३ यू।
११२. शब्द काफी और फगुवा—९-१४३ जी।
११३. शब्द प्रथम मंगलादि ३२-१०३ (बीजक का मंगल)।
११४. शब्द रमैनी—३२-१०३ एक्स।
११५. शब्द राछरौ—३२-१०३ डब्लू।
११६. शब्द राग गौरी और भैरौ। ९-१४३ एफ़० २।
११७. शब्द वंशावली—६-११७ जी २।
११८. शब्दावली—६।१७७ पी०, क्यू।
११९. षट्दर्शन सार—३५-४९ वी।
१२०. संतों की गाली—२६-२१४ डी। (राग गाली के ५ पद)।
१२१. संतोषबोध—४१-२१ च।
१२२. सतनाम या सतकबीर—९-१४३ क्यू।
१२३. सतकबीर बंदी छोर—६-१७७ एफ़।
१२४. सतसंग को अंग—९-१४३ आई २।
१२५. सतपदी रमैनी—३५-४९ डी, यू।
१२६. सांस गुंजार—१४३ जे, २९-१७९ वी।
१२७. साखी—१-३५, २-५३, ६-१७७ ओ,

११-४३ वी, २२-५१ जी, ३२-१४३ओ, आई, जेड, ४१-१७७ डी।
१२८. साध को अंग—९-१४३ एच २।
१२९. सार भेद—४७-कबीर।
१३०. साधु माहात्म्य—२९-१७९ क्यू (कई अंगों की साखियाँ)।
१३१. सुकृत ध्यान—४७-३२ ज।
१३२. सुख निधान—४१-२१ ज।
१३३. सुखसागर—४१-२१ ज।
१३४. सुमिरन साठिका—२३-१९८न।
१३५. सुरति सब्द संवाद—२९-१७९। आर, २-७४ सी
१३६. सोहल कला (तिथि)—३५-४९डब्लू।
१३७. सरोदय—४१-२१
१३८. हंस मुक्तावली—६-१७७ एन। ९-१४३ पी ३५-४९ यन
१३९. हनुमत बोध—४४-३२क्ष।
१४०. हिंडोला या रेखता—६-१७७ डी

इनमें से अधिकांश रचनाएँ हमें अन्यत्र भी मिल चुकी हैं। कई कारणों से खोज-रिपोर्टों की यह संख्या बहुत बड़ी हो गयी है। अनेक परवर्ती रचनाएँ, जो निश्चित रूप से अन्य संतों की कृतियाँ हैं, कबीर के नाम से सम्मिलित कर लेने के अतिरिक्त हमें कुछ नाम स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में ऐसे भी मिलते हैं जिनकी वास्तव में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए सन् १९०९-११ की रिपोर्ट में १४३ संख्या के ई २, एफ़ २, जी २ पर क्रमशः 'शब्द अलहतुक', 'शब्द राग गौड़ी' और 'राग भैरो' तथा 'शब्द राग काफी' और 'राग फगुवा' नामक ग्रन्थों का उल्लेख है और इसी में संख्या के, सी २, एच २ तथा आई २ पर क्रमशः 'भक्ति को अंग', 'पिय पहिचानबे को अंग' 'साधु को अंग' और 'सतसंग को अंग' शीर्षक ग्रन्थों के नाम दिये गये हैं। वास्तव में पहले वर्ग में रचनाओं के नाम कबीर के पदों की विभिन्न रागों के नाम हैं, और दूसरे वर्ग में साखियों के विभिन्न अंगों के। इन्हें क्रमशः 'पद' और 'साखी' शीर्षक के अंतर्गत सरलता से दिखाया जा सकता है। सन् १९३२-३४ की रिपोर्ट में १०३ यू, वी, डब्लू, एक्स पर क्रमशः 'शब्द कहरा', 'शब्द प्रथम मंगलादि', 'शब्द राछरो', 'शब्द रमैनी' नाम से दिये हुए स्वतन्त्र ग्रन्थों के नाम सैनपुरा के बालाप्रसाद की एक प्रति में मिलने वाले पदों की विभिन्न रागों के नाम हैं। कहीं-कहीं एक ही ग्रन्थ का नाम भूल से दो या अधिक बार दे दिया गया है। 'कबीर सरोदय', 'ज्ञान-सरोदय', 'तत्वसरोदय' और 'सरोदय' वास्तव में एक ही ग्रन्थ के विभिन्न नाम हैं। इसी प्रकार 'चौंतीसा', 'ज्ञान-चौंतीसी' अथवा 'कबीर-चौंतीसी' तथा 'कबीर-बतीसी' और 'ज्ञान-बतीसी' में कोई अंतर नहीं। सारांश यह कि रिपोर्टों में अधिक से अधिक संख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। कारण जो भी हो, किन्तु इस अव्यवस्था से खोज-रिपोर्टों की सूची अत्यधिक भ्रामक हो गयी है।

अन्य फुटकल उल्लेख

श्री अगरचन्द नाहटा ने 'संतवाणी' (वर्ष २, अंक ११) के 'राजस्थान में संत-साहित्य की खोज की आवश्यकता' शीर्षक निबंध में श्री नरोत्तमदास जी

(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डूंगर कालेज, बीकानेर) के संग्रह की तीन-चार प्रतियों का उल्लेख किया है जिनमें संत-साहित्य मिलता है। उन्होंने एक बड़े गुटके का संक्षिप्त परिचय भी दिया है जो ६०६ पत्रों का है और साधु सुखरामदास द्वारा संवत् १६५६ वि० में लिखा गया था। परिचय देखने से ज्ञात होता है कि यह निरंजनीपंथ का संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें पहले गोरखनाथ की सबदियाँ देकर हरिदास तथा अन्य निरंजिनियों की वाणियाँ लिखी गयी हैं, तत्पश्चात् कबीर साहिब की वाणी मिलती है जिसमें ७० अंग की साखियाँ, १५ रमैणियाँ, ६ झूलने तथा ६०२ पद हैं। कबीर के अतिरिक्त नामदेव, रैदास, पीपा तथा तुरसीदास निरंजनी की वाणियाँ भी मिलती हैं, तत्पश्चात् गोरख, चरपट, भरथरी आदि चौंतीस नाथ-योगियों की रचनाएँ मिलती हैं। अंतिम अंश में रामानन्द आदि १२० संतों के २६२ पद तथा 'हरिदास की परिचई' आदि कुछ फुटकल ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। ऊपर दादू-विद्यालय तथा ना० प्र० सभा की प्रतियों के प्रसंग में इस प्रकार के कई निरंजनी गुटकों का विवरण दिया गया है।

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' (भारती भंडार, प्रयाग सं० २०११) के परिशिष्ट में निरंजनी-संप्रदाय के पाँच और दादूपंथी पंचवाणी के तीन गुटकों का उल्लेख किया है जिनका विवरण देखने से ज्ञात होता है कि इनकी सारी विशेषताएँ लगभग वही हैं जो ऊपर उल्लिखित दादूपंथी तथा निरंजनी गुटकों की हैं।

सरस्वती-भंडार, जोधपुर द्वारा प्रकाशित सूचीपत्र में भी कबीरवाणी की कुछ ऐसी प्रतियों का उल्लेख है जिनमें उनके साखी-पदों का संग्रह है। किन्तु कोई असाधारण सामग्री वहाँ भी नहीं है।

कबीर पर कार्य करने वाले कुछ अन्य लेखकों ने भी अपने ग्रन्थों में कबीर की रचनाओं का उल्लेख किया है। श्री रामदास गौड़ ने 'हिन्दुत्व' नामक अपने ग्रन्थ में कबीरदास के ७३ ग्रन्थ गिनाये हैं। उक्त तालिका का आधार ना० प्र० सभा से प्रकाशित खोज-रिपोर्ट ही ज्ञात होती हैं, क्योंकि उनकी सूची के सभी नाम रिपोर्टों में मिल जाते हैं।

श्री वेस्टकट साहब ने 'कबीर एंड दी कबीरपंथ' नामक ग्रन्थ में कबीरपंथ के ८४ ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनमें भ्रम से कई ऐसे ग्रन्थों के नाम भी आ गये हैं जो अत्यन्त ही आधुनिक हैं।

प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन ने अपने 'रिलिजन ऑफ़ दी हिंदूज़' (पृ० ७३-७७) नामक ग्रन्थ में कबीर साहब के निम्नलिखित ग्रन्थों के नाम गिनाये हैं—

१. आनन्दराम सागर, २. बलक की रमैनी, ३. चाँचर, ४. हिंडोला, ५. झूलना, ६. कबीरपाँजी, ७. कहरा, ८. शब्दावली।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'कबीर-बचनावली' (पृ० २६-२८) में कबीर चौरा के 'ख़ास ग्रन्थों' के रूप में २१ रचनाओं का विवरण दिया है जिनके नाम निम्नलिखित हैं—१. सुखनिधान, २. गोरखनाथ की गोष्ठी, ३. कबीरपाँजी, ४. बलख की रमैनी, ५. आनन्द राम, ६. रामानंद की गोष्ठी, ७. शब्दावली, ८. मंगल, ९. बंसत, १०. होली, ११. रेखता, १२. झूलना, १३. कहरा, १४. हिंडोला १५. बारहमासा, १६. चाँचर, १७. चौंतीसा, १८. अलिफनामा, १९. रमैनी, २०. साखी, २१. बीजक।

डा० के ने (कबीर एन्ड हिज़ फ़ालवर्स, पृ० १६५) और फिर उन्हीं के आधार पर डा० बड़थ्वाल ने (दि निर्गुण स्कूल ऑफ़ हिंदी पोइट्री, पृ० ३०७) लिखा है कि गरीबदास के 'ग्रन्थ साहिब' में कबीर की ७००० साखियाँ संकलित हैं—यद्यपि उन्होंने इस ग्रन्थ को देखा नहीं था, यह दोनों विद्वानों के उल्लेखों से प्रकट है। उक्त ग्रन्थ सन् १९२४ ई० में आर्य सुधारक प्रेस, बड़ौदा से मुद्रित होकर श्री स्वामी अजरानंद गरीबदासी 'रमताराम' द्वारा प्रकाशित हो चुका था। मुझे यह ग्रन्थ बड़ैया गद्दी (ज़ि० जौनपुर) के दयालदास कबीरपंथी से देखने को मिला था। ग्रन्थ बड़ा अवश्य है, किन्तु कबीर की केवल ४२५ साखियाँ (१८ अंगों में) ही ग्रन्थ के अंतिम २० पृष्ठों में मिलती हैं, जिनमें से सभी सीयाबाग, बड़ौदा से प्रकाशित साखी-ग्रन्थ में मिल जाती हैं।

२. मुद्रित प्रतियाँ

बीजक की प्रतियाँ

जहाँ तक पता है, कबीर की वाणियों में सर्वप्रथम 'बीजक' ही छापा गया। इसका सबसे पहला संस्करण "विश्वनाथ सिंह जू देव बांधवेश स्वर्गवासी कृत पाखंडखंडिनी टीका सहित बनारस लाइट प्रेस में गोपीनाथ पाठक ने छापा।" यह संस्करण लीथों में है और सं० १९२४ वि० (सन् १८६८ ई०) में छपा। इस बीजक में साखी वाला प्रकरण नहीं है। यह संस्करण अब उपलब्ध नहीं है। इसकी एक प्रति श्री उदयशंकर शास्त्री के संग्रह में है। इसके पश्चात् बीजक के अनेक सटीक तथा अटीक संस्करण निकले जिनकी सूची नीचे दी जा रही है—

२. बीजक कबीरदास—रीवाँ-नरेश श्री विश्वनाथ सिंह जी की टीका और छन्नू लाल द्विवेदी के प्राक्कथन सहित (६५६ पृष्ठ), प्रकाशक : नवलकिशोर

प्रेस, लखनऊ। इसके छठी बार के रिप्रिंट पर सं० १६२६ वि० (१८७२ ई०) की तिथि मुद्रित है।

३. बीजक कबीर साहब—रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह जू देव की पाखंड-खंडिनी टीका सहित; प्रकाशक : वंकटेश्वर प्रेस, बंबई सं० १६६१ वि०।

४. बीजक ग्रॉफ़ कबीर—पादरी प्रेमचन्द द्वारा संपादित तथा उन्हीं के द्वारा मैल्कियड स्ट्रीट, कलकत्ता से प्रकाशित, सन् १८६० ई०। इसकी कोई प्रति हमें देखने को नहीं मिली।

५. बीजक श्री कबीर साहब—बुरहानपुर, नागझिरी स्थान वाले पूर्णदास की त्रिज्या टीका सहित; प्रकाशक : गंगा प्रसाद वर्मा ब्रदर्स प्रेस, लखनऊ, सितम्बर, १८६२ ई०।

६. बीजक श्री कबीर साहब का—पूर्णदास की त्रिज्या सहित जिसे कटरा, इलाहाबाद के मिस्त्री बालगोविन्द ने अपने प्रबन्ध से प्रकाशित किया; मुद्रक : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, सन् १६०५ ई०।

७. बीजक श्री कबीर साहब का—पूर्णदास की त्रिज्या सहित; प्रकाशक : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १६२१ ई०।

८. बीजक ग्रॉफ़ कबीर—सम्पादक पादरी अहमद शाह; प्रकाशक : बैप्टिस्ट मिशन, कानपुर, सन् १६११ ई०। महर्षि शिवव्रत लाल की उर्दू टीका (सं० १६७१ वि०) इसी पाठ पर आधारित है।

९. बीजक ग्रॉफ़ कबीर—सन् १६११ के हिन्दी पाठ पर अंग्रेज़ी अनुवाद, जिसे अनुवादक (अहमदशाह) ने हमीरपुर, उ० प्र० से सन् १६१७ में प्रकाशित किया। इसमें मूल पाठ नहीं है।

१०. संत कबीर का बीजक (३ भाग)—महर्षि शिवव्रत लाल एम० ए० की टीका सहित; प्रकाशक : नन्दू सिंह, सेक्रटरी, राधास्वामी धाम, गोपीगंज, वाराणसी, सन् १६१४ ई०।

११. कबीर साहब का बीजक मूल—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६२६ई०।

१२. कबीर साहब का बीजक—विचारदास की टीका सहित, जिसे गोंडा ज़िला-निवासी श्री नागेश्वर बख़्श सिंह जी, ताल्लुक़ेदार ने सत्यनाम प्रेस, मैदागिन, बनारस में मुद्रित करा कर अमूल्य वितरित किया (सं० १६८३ वि०)। इसकी एक प्रति हमें इलाहाबाद के गुदड़ी-बाज़ार में मिल गयी थी।

१३. बीजक—सम्पादक तथा टीकाकार श्री विचारदास शास्त्री; प्रकाशक : राम

नारायण लाल, कटरा, इलाहाबाद, सन् १६२८। विचारदास द्वारा सम्पादित बीजक का पाठ कबीरचौरा में सुरक्षित पाँच प्रतियों पर आधारित है।

१४. बीजक—सम्पादक : साधु लखनदास (कबीरचौरा); प्रकाशक : महाबीर प्रसाद, नेशनल प्रेस, बनारस कैंट।

१५. बीजक मूल (शब्द-शतक सहित)—"जिसे भक्त जितलाल मुन्शी ने प्रकाशित किया और जो सत सुधाकर प्रेस में मुद्रित हुआ।" मिलने का पता : श्री साधुशरणदास जी, मुहल्ला दरजी टोला, पो० मुरादपुर, पटना।

१६. बीजक—हनुमानदासकृत शिशुबोधिनी टीका सहित (३ भाग), सन् १६२६ ई०। मिलने के पते : १. शिवधर दास जी, मु० पो० फतुहा, कबीर साहब के संगत, ज़िला पटना; २. साधु शरणदास जी, पो० मुरादपुर, दरजी टोला, पटना।

१७. संस्कृत बीजक ग्रन्थ—स्वामी हनुमानदासकृत स्वानुभूति संस्कृत व्याख्या सहित; प्रकाशक : कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा सन् १६३६ ई०। इसका संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण दो भागों में 'बीजक-सुरहस्य' नाम से लम्बी भूमिका के साथ वहीं से सन् १६५० ई० में प्रकाशित हुआ है।

१८. मूल बीजक—स्वामी हनुमानदास जी द्वारा सम्पादित तथा महन्त श्री हरिनन्दन जी, फतुहा, पटना द्वारा प्रकाशित, सन् १६५० ई०।

१६. कबीर साहब नुं बीजक (२ भाग)—प्रकाशक : प्राणलाल प्रभाशंकर बख़्शी, हनुमान पोल, बैजवाड़ा, बड़ौदा, सन् १६३३ ई०।

२०. कबीर साहब नुं बीजक, श्री पूरनसाहब नी त्रिज्या सहित—प्रकाशक : मणिलाल तुलसीदास मेहता, रावपुर कोठी, बड़ौदा, सन् १६३७ ई०।

२१. मूल बीजक : गोसाई श्री भगवान साहब का पाठ—भगताही शाखा का बीजक, प्रकाशक : महन्त मेथी गोसाँई साहब, आचार्य, मानसर गद्दी पो० दाऊदपुर, ज़िला छपरा (सारन); मुद्रक : कबीर-प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सन् १६३७ ई०।

२२. मूल बीजक : भगवान गोस्वामी साहब का पाठ, भगताही की गुरुप्रणाली सहित; संशोधक तथा प्रकाशक : पं० रामखेलावन गोस्वामी, आयुर्वेदाचार्य, सन् १६३८ ई०। मिलने का पता : अधिकारी जीयुत

गोस्वामी, घनौती बड़ा मठ, पो० भाटा पोखर, ज़ि० सारन, बिहार ।

२३. कबीर बीजक : पं० महराज राघवदासकृत भाषा-टीका सहित—प्रकाशक : बैजनाथ प्रसाद, बुकसेलर, राजा दरवाजा, बनारस सिटी (सन् १९३६ ई०) ।

२४. बीजक मूल—संशोधक तथा प्रकाशक : महराज राघवदास जी, कबीरमठ, काशी, सन् १९४६ ई० ।

२५. बीजक मूल : पं० राघवदास जी विरचित सर्वांगपदप्रकाशिक टीका सहित प्रकाशक : वही, सन् १९४८ ई० ।

२६. बीजक मूल (गुटकाकार)—प्रकाशक : स्वसंवेद कार्यालय, सीयाबाग बड़ौदा, सन् १९४१ ई० ।

२७. बीजक मूल—प्रकाशक : भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस ।

२८. कबीर साहब का बीजक—सम्पादक : हंसदास शास्त्री, महाबीर प्रसाद (श्री उदय शंकर शास्त्री का भी सहयोग इसमें प्राप्त था); प्रकाशक : कबीर-ग्रन्थ-प्रकाशन-समिति, मुकाम-पोस्ट हरक, जिला बाराबंकी, सं० २००७ वि० ।

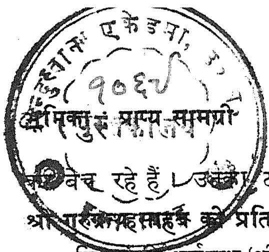
२९. बीजक कबीर साहब—प्रकाशक : सरस्वती-विलास प्रेस, नरसिंहपुर (म० प्र०) सन् १३०७ ई० ।

३०. कबीर साहब का बीजक मूल—आगरा से रंग-बिरंगी जिल्द में अख़बारी काग़ज़ पर छपा हुआ, जो आजकल मेलों में बहुत दिखाई देता है ।

३१. इनके अतिरिक्त एक बीजक मिहींदास की टीका के साथ पहले कभी प्रकाशित हुआ था, किन्तु कहीं मेरे देखने में नहीं आया । श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'कबीर साहित्य की परख' (पृ० ५९) में कबीरचौरा से प्रकाशित एक मिहींदासकृत टीका (सं० १९७२ वि०) का उल्लेख किया है । संभव है, यह वही ग्रन्थ हो ।

३२. रीवाँ-नरेश विश्वनाथ सिंह संपादित एक अन्य बीजक का उल्लेख वेस्टकट साहब ने भी 'कबीर एंड दि कबीरपंथ' (पृ० ४८) में किया है । उक्त लेखक के अनुसार इसका प्रकाशन गया से हुआ था और इसमें टीका का अंश नहीं था ।

सम्भव है, उक्त ३२ संस्करणों के अतिरिक्त बीजक के अन्य संस्करण भी कहीं से छपे हों जो मेरे देखने में न आ सके हो, क्योंकि आजकल मेले वाले दूकानदार अथवा कबीरपंथी गद्दियों के महंथ व्यापार की दृष्टि से भी बीजक छाप-छाप



[illegible] बेच रहे हैं । उसका ठीक-ठीक लेखा-जोखा कौन लगा सकता है ?

श्री गुरुग्रन्थ साहब की प्रतियाँ

सिक्खों के धर्मग्रन्थ 'श्री गुरुग्रन्थ साहब' में भी कबीर की वाणी मिलती है। इसके पाँच मुद्रित संस्करण मेरे देखने में आये हैं। पाँचों संस्करण 'गुरुग्रन्थ साहब' की मूल प्रति (लि० का० सं० १६६१ वि०,) पर आधारित हैं जो आजकल करतारपुर में सुरक्षित बतायी जाती है। पाँचों के नाम-धाम ये हैं :

१. आदि श्री गुरुग्रन्थ साहेब जी (गुरुमुखी संस्करण)—प्रकाशक : भाई मोहन सिंह वैद्य, तरन तारन, अमृतसर।
२. आदि श्री गुरुग्रन्थ साहब जी (नागरी संस्करण)—प्रकाशक : वही, सन् १९२७ ई०।
३. श्री गुरुग्रन्थ साहब (गुरुमुखी)—प्रकाशक : भाई गुरुदियाल सिंह, अमृतसर।
४. श्री गुरु ग्रन्थ साहब (नागरी संस्करण)—प्रकाशक : सर्व-हिन्द-सिक्ख-मिशन, अमृतसर, सन् १९३७ ई०।
५. श्री गुरुग्रंथ साहब (गुरुमुखी)—प्रकाशक : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर।

गुरुग्रन्थ साहब के मुद्रित संस्करण भी आसनी से नहीं मिलते।

'गुरुग्रन्थ साहब' के पाठ को ही ले कर बाबा किशनदास उदासी निरंजनी ने सन् १८७६ ई० में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से 'कबीर-पद-संग्रह' नाम से और आगे चल कर प्रयाग-विश्वविद्यालय के डॉ० राम कुमार वर्मा ने सन् १९४३ ई० में साहित्य-भवन लि०, इलाहाबाद से 'संत कबीर' नाम से भूमिका, शब्द-कोश तथा टीका-टिप्पणियों के साथ प्रकाशित करवाया। 'कबीर-पदसंग्रह' अब नहीं मिलता। इसकी एक फटी-पुरानी प्रति अहियापुर, इलाहाबाद के भारती-भवन पुस्तकालय में पड़ी है।

ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. कबीर-ग्रन्थावली—सम्पादक : बाबू श्याम सुन्दर दास, सन् १९२८ ई०।
२. कबीर-वचनावली—सम्पादक : अयोध्यासिंह उपाध्याय, यह बेलवेडियर प्रेस की 'शब्दावली' पर अधिक आधारित है; नवाँ संस्करण, सं० २००३ वि०।

शब्दावली की प्रतियाँ

कबीर की शब्दावली (पदसंग्रह) के निम्नलिखित छपे संस्करण मिले हैं। कबीर-चौरा से सम्बन्धित संस्करण—

१. कबीर साहेब की शब्दावली—संपादक : बड़े बिशुनदास, कबीरचौरा, काशी।

२. कबीर साहेब की बड़ी और छोटी शब्दावली—साधु लखनदास, कबीर-चौरा।

३. सत्यकबीर-शब्दावली अर्थात् कबीर-भजनावली—प्रकाशक : साधु अमृतदास, कबीरचौरा स्थान, बनारस, सन् १६५० ई०। अन्य प्राप्ति स्थान : साधु अमृतदास, घी कांटा, कबीर मंदिर, अहमदाबाद।

अन्य संस्करण—

४. कबीर साहेब की शब्दावली (४ भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १६०७ ई० से।

५. कबीर (४ भाग)—आचार्य श्री क्षिति मोहन सेन द्वारा सम्पादित।

६. ग्रन्थ शब्दावली—रा० रा० श्री गोविन्दराम दुर्लभराम, ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई।

७. सत्य कबीर की शब्दावली (२ भाग)—सम्पादक : महर्षि शिवव्रत लाल, 'संत' पत्रिका, जिल्द १, नं० ५, ६; राधास्वामी धाम, गोपीगंज, वाराणसी।

साखी-ग्रन्थ

१. सत्य कबीर की साखी—सम्पादक: स्वामी युगलानन्द कबीरपंथी; प्रकाशक : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १६०८ ई० (इसके परशिष्ट में 'कबीर-परिचय की साखी, भी दी हुई हैं।)।

२. कबीर साहेब का साखी-संग्रह (२ भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित : सन् १६२६ ई०।

३. सत कबीर की साखी—सम्पादक : महर्षि शिवव्रत लाल, 'संत' पत्रिका, जिल्द १ नं० १, २, ३; पता, वही।

४. सत कबीर की साखी—सम्पादक श्री हुजूर साहब, राधास्वामी धाम, स्वामी बाग, आगरा।

५. सद्गुरु कबीर साहब का साखी-ग्रन्थ—महन्त श्री विचारदास शास्त्री (वर्तमान पं० श्री हुजूर प्रकाशमणिनाम साहेब) कृत विरल टीका-सहित, प्रकाशक : मंहत श्री बालकदास जी, कबीर-धर्म-वर्धक-कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा।

६. सद्गुरु कबीर साहेब का सटीक साखी-ग्रन्थ—टीकाकार : महराज राघवदास जी, लहरतारा धाम; प्रकाशक : बाबू बैजनाथ प्रसाद, बुकसेलर, राजा दरवाजा, वाराणसी। इसका पाठ सीयाबाग से प्रकाशित 'साखी-ग्रन्थ' से मिलता है।

७. कबीर-साखी-सुधा—टीकाकार : प्रोफ़ेसर रामचन्द्र श्रीवास्तव 'सुधांशु';

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा, आगरा। इसमें 'कबीर-ग्रन्थावली' का पाठ स्वीकृत हुआ है।

८. इनके अतिरिक्त २५०० साखियों के एक अन्य संस्करण का उल्लेख वेस्टकट ने किया है। उक्त लेखक के अनुसार यह एडवोकेट प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ था, किन्तु प्रकाशन-समय की सूचना लेखक ने नहीं दी है।

फुटकल संकलन

१. उपदेश-रत्नावली—बीजक की २२५ साखियों का पतला संग्रह, जिसे 'भारत-बन्धु' के सम्पादक श्री तोताराम वर्मा, वकील, हाईकोट ने संग्रहीत किया और मोतीलाल कापीनवीस ने लिखा तथा भारत-बन्धु-यंत्रालय, अलीगढ़ से लीथो में छप कर सं० १८८२ वि० में प्रकाशित हुआ। इसकी एक प्रति ना० प्र० सभा में है।
२. कबीर-पदावली—डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
३. कबीर—नरोत्तमदास स्वामी, हिन्दीभवन, लाहौर, सं० १९९७ वि०।
४. शब्द-विलास—प्रकाशक : गुरुशरणपति साहेब, आचार्य गद्दी बड़ैया, पो० अभिया वाया सुरियावाँ, वाराणसी।
५. कबीर-भजनावली—प्रकाशक : बैजनाथ प्रसाद, बुकसेलर, वाराणसी।
६. कबीर-भजनावली—पटना के एक अज्ञात प्रेस से प्रकाशित।
७. कबीर-संगीत-रत्नमाला—भल्ला साहब, वरदा प्रेस, बम्बई १९६३ वि०।
८. महात्मा कबीर—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी, सूरी ब्रदर्स, लाहौर, सं० १९९३।
९. वन् हंड्रेड पोएम्स ऑफ़् कबीर—रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैकमिलन एंड को, १९२३ ई०।
१०. कबीर (परशिष्ट के १०० पद)—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक : ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९४२ ई०।
११. संत-काव्य—श्री परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, प्रयाग, सं० २००९ वि०।

उपर्युक्त पुस्तकों में कबीर की वाणियों के संकलनमात्र हैं।

परवर्ती रचनाएँ

श्री वेंकटेश्वर प्रेस तथा लक्ष्मी वेंकटेश्वर, बम्बई और कुछ कबीरपंथी प्रकाशकों की ओर से कई ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं जो वास्तव में कबीर के तो नहीं हैं किन्तु उनमें यत्र-तत्र कबीर का नाम आ जाने से अथवा कबीर-पंथियों की सम्प्रदाय-गत श्रद्धा के कारण पंथ के प्रधान प्रेरक कबीर के ही माने

जाते हैं। ऐसे ग्रन्थों की संख्या बहुत बड़ी है। जो हमें मिल सके हैं उनकी सूची नीचे दी जा रही है।

कबीर-सागर—जिल्द १ में (१) ज्ञानसागर, जिल्द २ में (२) अनुरागसागर, जिल्द ३ में (३) अम्बुसागर, (४) सर्वज्ञसागर, (५) विवेकसागर। बोधसागर—जिल्द ४ में (६) ज्ञानप्रकाश, (७) अमरसिंहबोध, (८) वीरसिंहबोध।

बोधसागर—जिल्द ४ में (६) ज्ञानप्रकाश, (७) अमरसिंहबोध, (८) वीरसिंहबोध ; जिल्द ५ में (९) हनुमानबोध, (१०) लक्ष्मणबोध, (११) गरुड़बोध, (१२) भूपालबोध ; जिल्द ६ में (१३) मुहम्मदबोध, (१४) काफिरबोध, (१५) सुल्तानबोध ; जिल्द ७ में (१६) निरंजनबोध, (१७) चौका सरोदय, (१८) अमरमूल, (१९) कर्मबोध, (२०) ज्ञानबोध, (२१) भवतारणबोध, (२२) मुक्तिबोध, (२३) कबीरबानी, (२४) अलिफनामा; जिल्द ८ में (२५) ज्ञानस्थिति-बोध, (२६) कायापाँजी, (२७) पंचमुद्रा, (२८) संतोषबोध, (२९) उग्रगीता; जिल्द ९ में (३०) आत्मबोध, (३१) जैनधर्मबोध, (३२) स्वसंवेदबोध, (३३) धर्मबोध ; जिल्द १० में (३४) कमालबोध, (३५) सुमिरणबोध, (३६) स्वासागुंजार, (३७) आगमनिगम-बोध; जिल्द ११ में (३८) कबीरचरित्र बोध, (३९) गुरुमाहात्म्य, (४०) जीवधर्मबोध ; इनके अतिरिक्त, (४१) 'कबीरपंथी बालोपदेश' नामक पुस्तक में 'ककहरा' (बीजक की 'ज्ञान चौंतीसी'), विप्रमतीसी, कहरा आदि भी छपे हैं; (४२) मीनगीता (लक्ष्मी बेंकटेश्वर)।

उक्त ग्रन्थों में से 'अनुराग-सागर', 'कायापाँजी', 'सुमिरणबोध' ('सुमिरण-स्वरपांजी' के नाम से) स्वसंवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा से भी प्रकाशित हो चुके हैं। सीयाबाग से 'श्री गुरु-महिमा' और 'तीसा-जन्त्र' नाम की दो रचनाएँ तथा कई अन्य छोटी-छोटी रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर के स्वामी श्री नन्हेलाल मुरलीधर ने निम्निलिखित ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं—

(१) अंबुसागर—तुल० कबीर-सागर, वेंकटेश्वर प्रेस, जि० २, (२) अनंतानंद की गोष्ठी, (३) अनुरागसागर, १९३० ई०, (४) अमरमूल, १९२९ ई०, (५) कबीरकृष्णगीता, (६) कबीरनिरंजनगोष्ठी, १९२८ ई०, (७) कबीरभजनावली, (८) धर्मदासबोध या ज्ञानप्रकाश—तुल० वेंक० प्रेस, बोध-सागर, जि० ४, (९) निर्भयज्ञान—तुल० कबीरचौरा संस्करण, (१०) बीजक सुखनिधान, (११) वीरसिंहबोध—तुल० वेंक० प्रेस, (१२) भवतारण, १९०७

ई०—तुल० 'बोधसागर' जि० ४, (१३) भोपालबोध, (१४) मुक्तिमाला, (१५) संतोषबोध, (१६) हनुमानबोध, (१७) ज्ञान-उपदेश, (१८) ज्ञान-सागर—तुल० बेंक० प्रेस, कबीर-सागर ।

पाँचवें तथा सातवें को छोड़कर शेष सब में रचयिता अथवा संग्रहकर्ता के रूप में धर्मदास का ही नाम दिया हुआ है ।

कबीरचौरा से 'निर्भय ज्ञान', 'भेदसार', 'आदि टकसार', 'गोरखगोष्ठी', 'रामानंदगोष्ठी', 'कबीरसर्वाजीतगोष्ठी' आदि फुटकल ग्रन्थ भी छापे गये हैं ।

ऊपर जिन रचनाओं के नाम आये हैं, उनमें से अधिकांश का उल्लेख सभा की खोज-रिपोर्ट में भी कबीर की रचनाओं के रूप में हुआ है । जिसकी चर्चा पीछे हो चुकी है ।

§२. प्राप्त सामग्री का विश्लेषण

इसके पूर्व हमने कबीर के नाम से प्रचलित साहित्य का परिचय दिया । उक्त सूची में जितनी रचनाएँ मिलती हैं उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं जो न कबीर के हैं, न कबीरपंथ के; किंतु कबीर के नाम पर चल रहे हैं। कुछ ऐसे हैं जिनकी रचना कबीर के पश्चात् उनके पंथ के संत-महात्माओं द्वारा हुई ज्ञात होती है । उनमें भाषा तथा भाव स्पष्ट रूप से न कबीर के हैं और न उनके जीवन-काल के ही, केवल कहीं-कहीं कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण-वाक्य की तरह कबीर की साखियों अथवा पदों का दृष्टान्त दिया गया है । इनके अतिरिक्त जो रचनाएँ मिलती हैं, उन्हीं में कबीर की कृतियाँ हैं, यद्यपि सम्पूर्ण रूप से किसी भी एक ग्रन्थ को कबीर का नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसमें स्पष्ट रूप से अशुद्ध अथवा प्रक्षिप्त पाठ न मिलते हों । जो भी हो, इसी तीसरे वर्ग की रचनाओं को ही प्रस्तुत पुस्तक में अध्ययन का मुख्य विषय बनाया गया है । नीचे उक्त तीनों वर्गों की रचनाओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

वर्ग १ : कबीर के नाम पर प्रचलित अन्य संप्रदायों के ग्रन्थ

इस वर्ग की रचनाओं में **विचारमाल, रतनजोग, काफिरबोध, जैन-धर्म-बोध, अष्टांग जोग, नामदेव कौ झगड़ौ, अजब उपदेस, नाममाला, नसीहतनामा, चेतावनी, मीनगीता** नामक ग्रन्थ लिये जा सकते हैं—

१. **विचारमाल**—खोज-रिपोर्ट सन् १९१७-१९ की संख्या ९२ ए पर यह कबीरकृत बताया गया है। हमें यह ग्रन्थ अन्यत्र भी कई स्थलों पर मिला है। 'विचारमाल' की एक प्रतिलिपि दादू-महाविद्यालय की एक पोथी में है, जिसका विवरण उक्त विद्यालय की नवीं प्रति के रूप में पहले ही दिया गया है। विद्यालय की सूची में भी भ्रम से इसे भगवानदास निरंजनी की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया गया है। पुरोहित जी के संग्रह में भी 'विचारमाल' की एक प्रति है, जिसकी चर्चा उन्होंने 'सुन्दर-ग्रंथावली' में पृ० १०४ पर की है। मयाशंकर याज्ञिक के संग्रह में इसकी कई प्रतियाँ हैं। संख्या ६२६-५३ पर वहाँ इसकी एक लीथो प्रति भी है। आवरण पृष्ठ न होने से पता नहीं चलता कि यह कब और कहाँ छपी थी। इन सभी प्रतियों के पाठ रिपोर्ट वाली प्रति से मिलते हैं। वस्तुतः इसके रचयिता अनाथदास हैं, जिसका संकेत रचना के अन्तर्गत कई दोहों में मिलता है।[1] अंत के एक सोरठे[2] में इसका रचनाकाल सं० १७२६ वि० दिया हुआ है, जब कि कबीर वर्तमान ही नहीं थे। अतः यह रचना किसी भी प्रकार से कबीर की नहीं मानी जा सकती। वर्ण्य विषयों की दृष्टि से यह कबीरपंथी रचना भी नहीं हो सकती। वास्तव में सभा की ओर से खोज करने वाले कर्मचारी को 'विचारमाल' की जो प्रति मिली थी उसके अंत में कबीर का एक 'कहरा' लिखा हुआ था। कदाचित् यही देख कर निश्चय कर लिया गया कि सम्पूर्ण रचना कबीर की ही है।

२. **काफिरबोध**—वेंकटेश्वर प्रेस के 'कबीर-सागर' में इसे कबीर की रचना माना गया है, किंतु वस्तुतः यह योगी रतननाथकृत है। 'काफिरबोध'

---

१. तात मात भ्राता सुहृद, इष्टदेव नृप प्राण।
अनाथ सुगुरु सब तें अधिक, दान ज्ञान विज्ञान॥—१-५।
अनाथ श्रवन बहुतैं कियौ, कह्यौ जु बहुत प्रकार।
अव सु बिचार बिचार पुनि, कर्‍ता न परै बिचार॥—७-३६।
हौं अनाथ केतक सुमति, बरणौं माल बिचार।
राम मया सतगुरु दया, साधु संग निरधार॥—७-३८।

२. सत्रह सै छब्बीस, संबत् माधवमास शुभ।
मो मति जितक हुतीस, तेतक बरणि प्रगट करी॥—८-४१।

संत-साहित्य की कुछ पोथियों में बाबा गोरखनाथ के नाम से भी मिलता है, किन्तु यह न तो कबीरकृत है और न गोरखनाथकृत। उसमें रचयिता के रूप में स्पष्ट ही रतननाथ का नाम आता है; यथा—

बैठी रहौ मामा हौवा। कुफ्र वले अपनी रावा।

इतना सवाल रतन हाजी ने कह्यौ।—कबीर-सागर, जिल्द ६, पृ० २६ ॥

किंतु प्रकाशित संस्करण में रचना के अंत में "कहै **कबीर** पीर को जानी, काफिरबोध संपूरन बानी।" भी मिलता है जो स्पष्ट ही किसी कबीरपंथी द्वारा बाद में जोड़ा हुआ जान पड़ता है।

३. रतनजोग अथवा अष्टांगजोग—यह भी किसी नाथपंथी की रचना प्रतीत होती है, न कि कबीर अथवा कबीरपंथी की। 'रतनजोग अष्टांग' नाम की एक रचना ओरिएटंल कॉलेज, लाहौर की पत्रिका (मई, १९३५ ई०) में छापी गयी थी और उसमें यह सिद्ध किया गया है कि यह रचना रतननाथ की नहीं प्रत्युत अठारहवी शताब्दी के किसी नाथ-योगी की है।

४. जैनधर्म-बोध—यह वेंकेटेश्वर प्रेस के 'कबीर-सागर' की नवीं जिल्द में छपा है, और कहीं से भी कबीरपंथी ग्रन्थ नहीं ज्ञात होता। आदिमध्यावसानेषु जैनी धर्म-ग्रन्थ लगता है। इसमें आरंभ के ही एक दोहे में घोषणा कर दी गयी है कि—

जगत अनादि निधन अहै, तासु न कबहूं नास।
बीज ते रचना सकल हो, यह जग स्वयंप्रकास॥
याको कर्ता नाहिं कोइ, यह जग आपै आप।
कर्म प्रेरि करवाव सब, कर्महिं रचना थाप॥
कर्म जनित भोगैं फल सारे। आतम सब के न्यारे न्यारे॥

उत्पत्ति-कथा में यह बताया गया है कि पहले दिन-रात, चन्द्र-सूर्य, राव-रंक का विभाजन नहीं था। कल्पवृक्ष की आभा सर्वत्र विद्यमान थी, सर्वत्र आनंद ही आनंद था। फिर जब चौथा काल लगा तब रात-दिन अलग हो गये, कल्प वृक्ष लुप्त हो गया और उसके स्थान पर ईख का पेड़ हो गया। ईख की खेती से ही इक्ष्वाकु कुल सर्वप्रथम चला, फिर गुण-दोष के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये तीन वर्ण हुए। तदनतंर पंचम काल में जब बड़ा अनाचार फैला तब तीर्थंकर देव पृथ्वी पर आये। ॠषभनाथ आदि-तीर्थंकर हुए। उनके पुत्र राजा भरत ने दयावंत लोगों को छाँट कर एक चौथा वर्ण ब्राह्मण नाम से चलाया। तब से चार वर्णों की छाप चली, किन्तु पंचम काल में ब्राह्मण प्रबल हो गये

और जैन-विरुद्ध कार्य करने लगे। वेद बना कर उसमें ब्राह्मणों की प्रशंसा की। अश्वमेध, नरमेध, गोमेध (?) आदि यज्ञ चलाये। किन्तु उक्त रचना के अनुसार चौथा काल जब फिर आयेगा तो ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा कम हो जायगी। इसके बाद इसमें चौबीस तीर्थंकरों, बारह चक्रवर्तियों, नौ नारायणों, नौ प्रतिनारायणों, तिरसठ सलाका पुरुषों, अष्टकर्म विधान, नाना प्रकृतियों, गोत्र-कर्म, अन्तराय-कर्म, सागर-प्रमाण, जैन यति के अट्ठाईस मूल गुणों, उसकी बाईस परीक्षाओं, स्वर्ग-नर्क तथा प्रलय इत्यादि का जैनागमों के अनुसार वर्णन है। कहीं भी कबीर अथवा कबीरपंथ का नामोल्लेख तक नहीं किया गया है, केवल आरम्भ में "चार पुरुष और बयालिस वंश की दया" मनायी गयी है। ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-विरोधी तथा अहिंसा-परक ग्रन्थ होने के कारण ही इसे कबीरपंथी ग्रन्थों में समाविष्ट कर लिया गया।

५. नामदेव को झगड़ो—इसमें संत नामदेव की कथा दी हुई है। सभा की खोज-रिपोर्ट (सन् १९४१-४३-२१ ख) के अनुसार इसकी कोई प्रति नौनेरा, भरतपुर के दीपचन्द्र जी के यहाँ मिली थी, जिसका अंतिम अंश है—

पातसाह तब पकड़े पाय। बकसौ नामदेव तुम्हारी गाय॥

नामदेव पातसाह झगड़ौ पड़ौ। हित कर दास कबीर कह्यौ॥

यही अंतिम पंक्ति, जो संभवतः बाद की जोड़ी हुई है, इस रचना को कबीरकृत कहलाने की जिम्मेदार हुई।

६. अजब उपदेस—सन् १९३२-३४ की खोज-रिपोर्ट में इसका उल्लेख कबीर की रचना के रूप में हुआ है, किंतु कबीर का नाम इसमें कहीं भी नहीं मिलता।

७. नाममाला—यह कोश के ढंग की रचना है जिसमें आध्यात्मिक प्रतीकों के विभिन्न अर्थ दिये हुए हैं। यह दादूपंथ अथवा निरंजनीपंथ के किसी संत की रचना ज्ञात होती है, और संभवतः कबीरपंथी संग्रह-ग्रन्थ में लिखी होने के कारण ही कबीर की मान ली गयी है।

८. नसीहतनामा—सन् १९३२-३४ की १०३ आर संख्यक रिपोर्ट के अनुसार इसमें काफ़िर की व्याख्या है, किंतु कबीर का नाम कहीं नहीं मिलता है। इसका अंतिम अंश है—

ए मोमन हजरत कहै, हरीदास का प्यार।

एही तालिब अलह के, एही अलह के यार॥

९. चेतावनी—सन् १९३२-३४ की १०३ एच संख्यक रिपोर्ट में इसका उल्लेख है, किंतु यह स्पष्ट ही हरिसिंहराम की रचना प्रतीत होती है। केवल अंतिम

पंक्ति में "सुनि सौ बात की एक बात, **कबीरा** सुमिर त्रिभुवन तात।" आ जाने के कारण इसे कबीरकृत मान लिया गया है।

१०. **मीनगीता**—प्रकाशक (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस) द्वारा यह 'कबीर साहब-कृत' बतायी गयी है, किन्तु उसमें एक भी पंक्ति ऐसी नहीं है जिससे वह कबीर की अथवा किसी कबीरपंथी की रचना ज्ञात हो। अर्जुन ने कृष्ण से मछली की उत्पत्ति के बारे में पूछा। कृष्ण ने बताया कि एक बार मनु ने जब बड़ी तपस्या की तो इन्द्र ने डर कर यम को भेजा। यम ने ब्राह्मण का रूप धारण कर मनु से महामांस-भोजन पाने की इच्छा प्रकट की। मनु ने एक महीने की मुहलत लेकर चौरासी लाख जीवों का रुधिर मँगा कर स्फटिक की कोठरी में बंद कर दिया। जब एक महीने के बाद यम आये और कोठरी खोली गयी तो नाना खानियों के मीन दिखलाई पड़े। हाथी से रोहू, गिरगिट से सिंघी, उल्लू से टेंगरा, चील से चल्हवा—अर्थात् "चौरासी लख जीव हैं ते तो मीन हैं खान। नहिं मानो तो देख लो गीता है परमान।" यम ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया और यह वचन दिया कि जो मछली खायेंगे उन्हें नर्क होगा और जो न खायेंगे उन्हें हरिभक्ति मिलेगी।

वर्ग : २ कबीर के नाम पर कबीरपंथ की परवर्ती रचनाएँ

दूसरे वर्ग में जो रचनाएँ आती हैं उनकी संख्या बहुत बड़ी है। इनमें से कुछ तो प्राचीन हैं, किंतु अधिकांश बिलकुल आधुनिक हैं। प्रायः ऐसा होता है कि विभिन्न सम्प्रदायों तथा परम्पराओं की सामयिक आवश्यकता के अनुसार लोग ग्रन्थ-रचना करते जाते हैं और उसे प्रभावशाली बनाने के लिए रचयिता के रूप में परम्परा के आदि प्रवर्तक का नाम दे दिया करते हैं। कर्मकांड और धर्म के वाह्याचार में ऐसा करना बहुत आवश्यक हो जाता है, अन्यथा लोग उसका सम्मान ही न करें। तुलसीदास को भी 'मानस' में वेद की दुहाई देनी पड़ी थी। इसी प्रकार कबीरपंथ में भी हुआ। ज्यों-ज्यों परिस्थितियाँ बदलती गयीं, संप्रदाय की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गयीं, और उसका संगठन दृढ़ करने के लिए आचार अथवा धर्म-संबंधी अनेक रचनाएँ भी तैयार करनी पड़ीं। उन्हें सम्मान-योग्य बनाने के लिए सभी के आदि-अंत में कबीर साहब का नाम दे दिया गया। कुछ ग्रन्थों में तो स्वयं कबीर का ही माहात्य अंकित है।

१. गोष्ठी-साहित्य

कबीर-गोरख-गोष्ठी, कबीर-शंकराचार्य-गोष्ठी, कबीर-दत्तात्रेय-गोष्ठी

---

३. 'कबीर गोरख गुष्टि' तथा 'कबीर साहब और सर्वाजीत की गोष्ठी' कबीरचौरा के साहु लखनदास द्वारा क्रमशः सं० १९८३ तथा १९८७ वि० में प्रकाशित हो चुके हैं।

कबीर-देवदूत-गोष्ठी, कबीर-जोगाजीत-गोष्ठी, कबीर-सर्वाजीत (शास्त्रज्ञ पंडित) गोष्ठी[३]**, कबीर-बशिष्ठ-गोष्ठी, कबीर-हनुमान-गोष्ठी** आदि ग्रन्थों में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार कबीर ने अपने प्रतिपक्षियों को (जिनके नाम विभिन्न ग्रन्थों में आये हैं) शास्त्रार्थ में हराया और उनके ज्ञान को थोथा सिद्ध करते हुए उन्हें अपना शिष्य बनाया। वास्तव में हारने वाले लोग ऐसे संप्रदायों के प्रतीक हैं जिनसे कबीरपंथ को कालांतर में मोर्चा लेना पड़ा। इन ग्रन्थों की भाषा बहुत ही तीक्ष्ण और प्रभावशालिनी है। किसी को शास्त्रार्थ में किस प्रकार नीचे गिराना चाहिए, इन ग्रन्थों में इसे पूर्ण रूप से दिखाया गया है। कबीरपंथ को गोरखपंथी जोगियों से सर्वाधिक टक्कर लेनी पड़ी थी, अतः गोरखनाथ की कई गोष्ठियाँ प्रचलित हैं। बानगी के लिए कबीर और गोरखनाथ की एक छोटी सी गोष्ठी का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

प्रश्न गोरखनाथ : **सिद्धा कौने दीनां डंड कमंडल, किन दीनीं मृगछाला।**
कौने तुमको हरिनांम सुनाया, किन दीनीं जपमाला॥
उत्तर कबीर : **ब्रह्मां दीनां डंड कमंडल, शिव दीनीं मृगछाला।**
गुरू हमारे हरि नांम सुनाया, विष्नु दीनीं जपमाला॥
प्रश्न गोरखनाथ : **अंडाण मंडाण चारि खुरी दो कान।**
जांनैं तौ जांन नहीं झोली माला आगे आंन॥
उत्तर कबीर : **अंडान धरती मंडान आकास, चार खूंट चार खुरी चन्द सूर दो कान॥**
नहीं आंनौं झोली नहीं आंनौं माला, मोहि गुरु रामानंद जी की आंन।
सींगी झोली और चरपटी। फिर बोलै तो मारौं कनपटी॥

—संवत् १८४५ की एक ह० लि० पोथी से।

इस प्रकार का वाद-विवाद प्रायः अब भी अखाड़ों में चल पड़ता है। किसी ने 'रैदास-रामायण' में रैदास की महिमा गायी तो सीयबाग, बड़ौदा से "मिथ्या-प्रलाप-मर्दन अर्थात् रैदास-रामायण का मुंह तोड़ उत्तर" छापना पड़ा। 'धर्मदास-गोष्ठी' और 'कबीर-कमाल गोष्ठी' में क्रमशः धर्मदास और कमाल को शिष्य बनाने और उनको उपदेश देने का वर्णन है। 'कबीर-रामानंद-गोष्ठी' में कबीर के प्रति रामानंद के उपदेश हैं। साधारण कबीरपंथी जनता पर ऐसे ग्रन्थों का बहुत प्रभाव है।

२. सृष्टि-प्रक्रिया तथा कबीर के जीवन से संबद्ध पौराणिक शैली के ग्रन्थ

कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें पौराणिक शैली में कबीरपंथी सृष्टि-प्रक्रिया का और

कबीर के जन्म तथा जीवन-लीलाओं का अतिरंजित चित्रण मिलता है। **अनुराग-सागर, ज्ञान-सागर, अम्बुसागर, स्वसंवेद-बोध, निरंजन-बोध, सर्वज्ञ-सागर, ज्ञान-स्थिति-बोध** तथा **सुक्रित-ध्यान** आदि ऐसे ही ग्रन्थ हैं। जिस प्रकार हिन्दुओं के अठारह पुराणों में कुछ हेर-फेर के साथ सृष्टि की उत्पत्ति, माया, ब्रह्म, जगत् तथा इस प्रपंच से मुक्ति के वर्णन मिलते हैं उसी प्रकार इन ग्रन्थों में भी समझना चाहिए। 'कूर्मावली' में धर्मराय (निरंजन) और कूर्म की लड़ाई तथा कूर्म से सृष्टि-जाल छीने जाने का वर्णन है।

पहले आकाश-पाताल, कूर्म-वाराह-शेष, गौरी-गणेश, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, शास्त्र-वेद-पुराण आदि कुछ नहीं थे, केवल एक सत्यपुरुष था और सृष्टि का सब प्रपंच उसी में समाया हुआ था--जैसे वट-वृक्ष में छाँह। फिर पुरुष ने अपनी इच्छा से अट्ठासी सहस्र द्वीपों की रचना की और अपने अंश के रूप में कर्म, ज्ञान, विवेक, काल, निरंजन आदि सोलह पुत्रों को जन्म दिया। सारी रचना शब्द के द्वारा हुई। शब्द ही से उसने लोक-द्वीप बनाये और शब्द ही से पुत्रों को आकार दिया। फिर धरमराय अथवा निरंजन ने सत्तर युग और तपस्या कर सत्यपुरुष से मानस-सरोवर और शून्य-देश प्राप्त कर लिया। अंत में सृष्टि रचने की आज्ञा मिली। किन्तु निरंजन को सृष्टि-रचना का साज मालूम ही नहीं था। सृष्टि-जाल प्राप्त करने के लिए उसने अपने बड़े भाई कूर्म का पेट काट डाला। जब निरंजन ने सृष्टि-रचना के लिए खेत, बीज आदि देने की प्रार्थना की तो सत्यपुरुष ने आद्या नामक अष्टांगी कुमारी को जन्म दिया और सृष्टि-रचना के लिए निरंजन के पास भेजा। निरंजन ने आद्या से ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक तीन पुत्रों को जन्म देकर स्वयं गुप्तवास किया। तीनों लड़के जब सयाने हुए तो उन्होंने समुद्र का मंथन कर चौदह रत्न प्राप्त किये। ब्रह्मा को वेद मिला जिसे निरंजन ने अपने श्वास से बना कर समुद्र में छिपा दिया था। वेद पढ़ कर ब्रह्मा को निराकार का ज्ञान हो गया, जो गुप्त था। उसने आद्या से अपने उस पिता का पता पूछा। आद्या ने निरंजन का भेद नहीं बताया, किन्तु बहुत हठ करने पर ब्रह्मा को ऊपर की ओर और विष्णु को नीचे की ओर भेजा। विष्णु तो लौट आया किन्तु ब्रह्मा न लौटा, तो आद्या को बड़ी चिन्ता हुई और उसने गायत्री की सृष्टि की और उसे ब्रह्मा को मनाने के लिए भेजा। ब्रह्मा उस पर मुग्ध हो गया और उसके साथ भोग किया। फिर सावित्री हुई और झूठी साखी दिलाने के लिए उससे भी संभोग किया। जब तीनों माता के पास आ गये तो उसने निरंजन का ध्यान कर सब जान लिया और तीनों को शापभ्रष्ट

कर दिया। विष्णु और शिव के ऊपर प्रसन्न होकर माता ने बरदान दिये जिससे द्वापर में विष्णु का कृष्णावतार हुआ और शंकर को चार युगों तक का अमरत्व प्राप्त हुआ। फिर आद्या ने पुत्रों की सहायता से चार खान सृष्टि और चौदह लाख (?) योनियों की रचना की। ऊष्मज में दो तत्व, अंबुज में तीन, पिंडज में चार और मनुष्य में पाँच तत्व दिये। ब्रह्मा ने अपनी रचना से जीवों को बहुत भटकाया। वेद, स्मृति, शास्त्र-पुराण बनाकर उसने यावत् जीवों को उलझा दिया। उसने अड़सठ तीर्थ, बारह राशि, सत्ताईस नक्षत्र, सात वार, पन्द्रह तिथि, देव-देवल आदि प्रपंचों की सृष्टि की, जिसमें प्राणी भटका खाते रहते हैं। इस प्रकार दुख भोगते-भोगते जब सारे संसार में हाहाकर मचा तब सत्यपुरुष ने कबीर को अपने अंश के रूप में उनके रक्षार्थ भेजा। सतयुग में सत्यसुकृत नाम से अवतार लेकर धोंधल राजा और मथुरा की खेमसरी मालिन को उपदेश दिया। त्रेता में मुनींद्र नाम से आकर लंका के विचित्र भाट, विचित्र वनिता और मन्दोदरी को पान-परवाना देकर सत्यलोक का दर्शन कराया तथा रावण को उसकी मूर्खता पर राम के द्वारा मारे जाने का श्राप दिया। इसके पश्चात् अवधपुर के मधुकर विप्र को उपदेश दिया। द्वापर में करुणामय नाम से उनका अवतार हुआ। गिरिनार की रानी इन्द्रमती को और काशी के श्वपच सुदर्शन को उपदेश दिया जिसके भोजन करने पर युधिष्ठिर का घंटा बजा था। यह श्वपच और उसकी स्त्री कई जन्म से कबीर के भक्त थे, और यही आगे चल कर कलियुग में नीरू-नीमा हुए जिन्हें लहरतारा में कबीर कमल-पुष्प पर मिले और जिनके यहाँ कबीर का लालन-पालन हुआ। कबीर स्वयं सत्यपुरुष हैं और जीवों को निरंजन के जाल से बचाने के लिए आये थे। यहाँ आकर उन्होंने धर्मदास को चौका-आरती कर दीक्षित किया और अपने अंश से चार गुरुओं (बंके जी, सहते जी, चतुर्भुजदास जी और धर्मदास जी) को मुख्य कड़िहार (=कर्णधार, मुक्तिदाता) थापा और धर्मदास से बयालिस वंश की स्थापना की जो अपने-अपने समय में जीवों का उद्धार करेंगे। मृत्यु-लोक में आने के पूर्व ही काल-निरंजन ने कबीर से यह वरदान ले लिया था कि साथ ही साथ उसका कर्म-व्यापार भी न रुकने पायेगा और वह कबीर के नाम पर नाना पंथ चला कर जीवों को ठगता रहेगा। फलतः कबीर के नाम से ही काल-निरंजन द्वारा बारह अन्य पंथ भी चलाये गये। धर्मदास के पुत्र नारायणदास ने जब पिता से विमुख हो अलग पंथ चला लिया तो कबीर की कृपा से उन्हें चूड़ामणि नाम के द्वितीय पुत्र हुए, जिनसे उनकी गद्दी चली। अब तक जो प्राणी इस वंश के किसी

भी अधिकारी से पान-परवाना पा जाते हैं उन्हें काल-निरंजन कुछ नहीं बोलता और वे यमजाल से मुक्त होकर साहब के सत्यलोक में विहार करते हैं। कुछ हेर-फेर के साथ यही संक्षेप में इन ग्रन्थों का वर्ण्य विषय है।

ग्रन्थ भवतारणबोध—में कबीर के चारों अवतारों, उनके क्रिया-कलापों तथा धार्मिक उपदेशों का साम्प्रदायिक वर्णन है। यह ग्रन्थ धर्मदास के नाम से सरस्वती-विलास प्रेस, नरसिंह पुर (मध्य प्रदेश) से सन् १९०८ ई० में प्रकाशित भी हो चुका है।

३. पंथ के बाह्याचार से संबद्ध ग्रन्थ

सुमिरन-बोध, सुमिरण-साठिका, चौका-सरोदय, एकोतरा सुमिरण, इकतार की रमैनी, आरती, अठपहरा, चौका पर की रमैनी, अमरमूल, स्वासाभेद, टकसार आदि ग्रन्थों में कबीरपन्थी कृत्यों का अथवा भिन्न-भिन्न अवसरों पर चौका-आरती सजाने तथा पान-परवाना देने आदि का विवरण है। इसके अतिरिक्त विभिन्न अवसरों पर गायी जाने वाली रमैनियाँ तथा मंत्र भी इनमें दिये हुए हैं।

विवेक-सागर तथा **धर्मबोध** में गृहस्थ और बैरागी की रहनी का ब्यौरा है।

४. नाम-माहात्म्य संबंधी ग्रन्थ

ज्ञान-बोध, कबीर-भेद, मुक्तिबोध, कबीरबानी (वेंकटेश्वर प्रेस, जिल्द ८), **नाममाहात्म्य, ब्रह्म-निरूपण, हंस-मुक्तावली, मूलबानी, मूल-ज्ञान** में नाम-महात्म्य और कबीर का नाम-यश गाने से मुक्तिलाभ का वर्णन है।

५. योग-साधन संबंधी ग्रन्थ

कायापाँजी, मूलपाँजी, पंचमुद्रा, श्वासगुंजार, संतोषबोध, कबीर-सुरति-योग, सुरति-शब्द-संवाद में कबीरपंथी साधन-साधनिका का वर्णन है। 'कायापाँजी' तथा 'मूलपाँजी' में बताया गया है कि त्रिकुटी के आगे सुमेर है जिसकी बाँई ओर धर्मराय का स्थान है और दाहिनी ओर सुरति-द्वार है। सुमेर के आगे सुरति-कँवल है जिसके एक योजन आगे अक्षय वृक्ष है। उसका वर्ण श्वेत है और उसमें मोतियों की झालर लगी है। यही कबीर का स्थान है—

तहां उमगे जोति लाल अरु हीरा। ताहां बैठे हमहिं कबीरा॥

अंत में इस उपदेश को गुप्त रखने का आदेश दिया गया है जिसका पालन करने के लिए धर्मदास वचनबद्ध होते हैं।

आप सरीखा राखिहों समरथ दुहाई। प्रगट न भाखिहों।
धर्मदास किरिया करै, छुअै खसम के पांव।
साहिब तुमसूं बीछरूं, तो मूल बस्त बाहर जाव॥

इन पंक्तियों के रहते हुए उक्त रचनाओं को कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में सम्मिलित करना असंगत लगता है।

'संतोष-बोध' ज्ञान-सागर प्रेस, बम्बई से और 'सुरति-शब्द-संवाद' ज़िला जौनपुर की बड़ैया गद्दी से छप चुके हैं। दोनों की भाषा अत्यन्त आधुनिक है।

स्वरपाँजी—में धर्मदास के प्रति कबीर का उपदेश है जिसके द्वारा इडा, पिंगला, सुषुम्ना का रहस्य बताते हुए जल, थल, आकाश, अग्नि तथा वायु के गुण, परिमाण और इष्ट देवताओं का वर्णन किया गया है। अंत में मूल शब्द की उपासना करने का आदेश दिया गया है—

सुरति सरूपी मकरी, तार सरूपी सांस।
मन पवना कर एकता, अरध तें चढ़ै अकास॥
अहो धरमदास जीव लै उठो जीव लै बैठो, जीव आज्ञा लै सोवो।
जीवां जीव करो मिलावा, तबै अगम गुरु पावो॥

इसमें प्रतिपादित विचार कबीर के सिद्धान्तों से मेल अवश्य खाते हैं, किन्तु रचना की अंतिम पंक्तियाँ कुछ संदेहास्पद हैं। इनका पाठ है—

कबीर साहिब दया करि दीनी। धर्मदास सरधा सुनि लीनी॥
सुरपांजी परसिद्ध गोसांईं जीवन मुक्त सो कही॥

इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि उक्त रचना कबीर के अतिरिक्त किसी अन्य संत की (संभवतः प्रसिद्ध गोसांईं की?) है, जो कबीर से प्रभावित था। रचना के अंत में केवल एक साखी ऐसी है जो वास्तव में कबीर की है। उसका पाठ है—

वाणी मेरी पलटिया, या तन याही देस।
खारी सूं मीठी भई, सतगुरु के उपदेस॥

संभवतः इसी को देख कर खोज-रिपोर्ट में इसे कबीरकृत मान लिया गया।

स्वरोदय में नासिका के श्वास-संचालन के अधार पर भविष्य जानने का वर्णन है। इसमें भी कबीर और धर्मदास का संवाद है। यह कई स्थानों से मुद्रित भी हो चुका है।

६. नीति-ग्रन्थ

ज्ञान-गूदड़ी, ज्ञानस्तोत्र, तीसाजन्त्र, मनुष्य-विचार, उग्रज्ञान-मूल-सिद्धान्त या दशमात्रा कबीरपंथ के परवर्ती नीति-ग्रन्थ हैं, जिनमें कहीं-कहीं कबीर की भी दो-एक साखियाँ मिल जाती हैं। इनमें से कुछ तो अत्यन्त आधुनिक हैं।

अखरावत, अक्षरखंड की रमैनी तथा **अलिफनामा** में देवनागरी तथा फ़ारसी अक्षरों पर नीति कही गयी है।

७. अन्य ग्रन्थ

मुहम्मदबोध, सुल्तानबोध, गरुड़बोध, अमरसिंहबोध, वीरसिंहबोध, जगजीवन-बोध, भूपालबोध, कमालबोध, गुरु-माहात्म्य में विभिन्न व्यक्तियों के प्रति कबीर के द्वारा ज्ञानोपदेश दिये जाने का वर्णन है। 'मुहम्मदबोध' में इस्लाम के प्रवर्त्तक मुहम्मद साहब को उपदेश दिलाया गया है, 'सुल्तान बोध' में बलख़ के बादशाह इब्राहिम अधम को, 'गरुड़बोध' में विष्णु के वाहन गरुड़ को, 'अमरबोध' में लंका के राजा अमरसिंह को, 'बीरसिंहबोध' में बनारस के राजा वीरसिंह को और 'जगजीवनबोध' में राजा जगजीवन को, 'भूपालबोध' में जलन्धर के राजा भूपाल को, 'कमालबोध' में दिल्ली के सिकन्दर शाह तथा अहमदाबाद के दरिया ख़ां को तथा 'गुरु-महात्म्य' में श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा रायमोहन को उपदेश देकर कबीरपंथ की दीक्षा देने का वर्णन है। उक्त सभी कबीर के जीवन-काल के कई वर्ष पश्चात् की रचनाएँ ज्ञात होती हैं। 'ज्ञान-प्रकाश' या 'धर्मदासबोध' में धर्मदास के शिष्य बनने का आख्यान वर्णित है। ये सभी ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हो चुके हैं। सभी एक ही शैली में दोहा-चौपाई में लिखे गये हैं, जिनमें यत्र-तत्र ही कबीर की साखियाँ मिलती हैं।

अर्जनामा, कबीर अष्टक, पुकार, सतनाम या **सतकबीर बन्दी छोर** में कबीरपन्थी संतों द्वारा कबीर की ही स्तुति या उनका माहात्म्य वर्णित है।

मन्त्र, जंजीरा में साँप, बिच्छू आदि के विष उतारने के कबीरपंथी मन्त्र हैं।

उग्रगीता अथवा **गुरुगीता** की रचना श्रीमद्भगवद्गीता के अनुकरण पर हुई ज्ञात होती है। इसमें भी अठारह अध्याय हैं जिनमें सृष्टि-उत्पत्ति, वर्णव्यवस्था, गुरु-शिष्य-महिमा, भक्तियोग आदि विषयों की कबीरपन्थी व्याख्या है। 'गुरुगीता' 'स्वसंवेद पत्रिका' में श्री सुकृतदास बरारी की टीका के साथ छप चुकी है।

यज्ञ-समाधि में कबीर-धर्मदास के संवाद रूप में कृष्ण-चरित्र का निर्गुण वर्णन है। **वशिष्ठबोध** या **ज्ञान-सम्बोधन-ग्रन्थ** में वशिष्ठ और राम के संवाद में सतसंगति की महिमा बतायी गयी है।

निर्णयसार, जो सन् १९४७-४९ की रिपोर्ट में उल्लिखित है, कबीरपंथी साधु पूरणदासकृत है। यह ग्रन्थ बंसूदास जी की टीका के साथ स्वसंवेद-कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित हो चुका है। रिपोर्ट में इसे भूल से कबीर के ग्रन्थों में सम्मिलित किया गया है।

कबीर-परिचय, या **तिरजा की साखी** में ८३३ साखियाँ मिलती हैं, और, यद्यपि अधिकांश में कबीर का नाम है, किन्तु ये कबीर की रचनाएँ नहीं ज्ञात होतीं। इसमें परा, पश्यंती, मध्यमा, बैखरी (वाणी के चार प्रकार), नाम-रूप, देहात्मवाद, वाम-मार्ग, सगुण-निर्गुण, माया-सम्प्रदाय आदि का दार्शनिक विवेचन है और कहीं-कहीं बड़ी अश्लील भाषा का प्रयोग हुआ है जो कबीर जैसे महात्मा के लिए अत्यन्त अशोभनीय लगता है। ज्ञात होता है कि उनकी रचना बीसवीं शताब्दी के किसी कबीरपंथी साधु ने की है। यह ग्रन्थ वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित युगलानंद की 'सतकबीर की साखी' और रामरहस्यदास की 'पंचग्रन्थी' में छप चुका है।

रामसार या **रामसागर,** जो सन् १९०१ की खोज-रिपोर्ट में कबीर के नाम से दिया हुआ है, ज्ञानी जी का अथवा किसी अन्य कबीरपंथी का ज्ञात होता है। बाबा राघवदासकृत 'भक्तमाल'[४] (अप्रकाशित) में ज्ञानी को कबीर का शिष्य बयाया गया है और आगे से उनका पृथक् वर्णन करते हुए कहा गया है कि उन्होंने पश्चिम दिशा में कबीर का प्रचार किया। 'रामसार' ग्रन्थ में बताया गया है कि नीमसार (नैमिषारण्य) तीर्थ में सब ऋषि स्नान कर यह विचार कर रहे थे कि बिना दान-पुण्य अथवा तप-साधन के संसार से उद्धार कैसे हो सकता है, उसी समय नारद जी वहाँ पधारे और उन्होंने राम नाम की महिमा बतायी ('श्री सत्यनारायण-व्रत-कथा' से तुलनीय)। इसकी अंतिम पंक्तियाँ, जो रिपोर्ट में उद्धृत हैं, इस प्रकार हैं—

श्री गुरु रामानंद प्रताप। हरि जी प्रगटे अंत आपु॥
कहत कबीर अभेद अगाध। ज्ञानी बिरला समझै साध॥
पूर्ण ज्ञान का है निज सार। जीव सीव की बाणी निरधार॥
सीखै सुनै बिचारै कोई। ताकूं मोख परमपद होई॥
रामसार मन राखो धीर। ज्ञानी का गुरु कहै कबीर॥
बटक बीज की मांझ में, देखि भया मन धीर।
जन ज्ञानी का संसा मिटा, सतगुरु मिले कबीर॥

---

४. ज्यूं नाराइन नव निर्मए, त्यूं कबीर किये सिष नव।
प्रथम दास कमाल, दुती है दास कमाली।
पदमनाभ पुनि त्रितिय, चतुर्थय राम कृपाली॥
पंचम षष्ठम नीर खीर, सप्तम पुनि ग्यानी।
अष्टम है धरमदास, नवम हरदास प्रमानी॥९०७॥
—राघवदास कृत अप्रकाशित 'भक्तमाल' से।

ज्ञानी जी की कुछ सबदियाँ संत-साहित्य के हस्तलिखित गुटकों में मिलती हैं[५] और उनमें ऊपर उद्धृत साखी भी है। बहुत सम्भव है कि यह पूरी रचना ज्ञानी जी की ही हो।

ग्रन्थ आत्मबोध (वेंकटेश्वर प्रेस, नवीं जिल्द) के रेख़ते तथा अन्य रेख़ते और झूलने जो हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं, किन्हीं मनोहरदास के ज्ञात होते हैं, क्योंकि यद्यपि कबीर का नाम प्रायः प्रत्येक रेख़ता या झूलता में आया है, किन्तु यत्र-तत्र मनोहरदास का नाम भी आ जाता है; उदाहरणतया—

मनोहरदास नहीं एक रंग रहत है, करै किरकंट ज्यौं रंग केता।
गहै बैराग अरु चढ़ै आकास को, गिरै धरनि फिर नांहि चेता॥

—आतमबोध, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० १३१७।

हाथ के मांहि तो सुमिरनी फिरत है, जीभहू फिरत है मुक्ख मांहीं।
दास मनोहर तो चहुँ दिसि फिरत है, मन अरु पवन की गम्म नांहीं॥

—वही, पृ० १३१६।

कबीर-मंदिर, मोतीडूँगरी की प्रति में भी इसी प्रकार मनोहरदास का नाम कई झूलनों में मिलता है। उसी प्रति में ६६, ६७, ६८—७३, ८५, ११० संख्यक झूलनों में वली का नाम और १०३ से १०६ तक में धरमदास का तथा ७४, ६० में सत्तराम का नाम भी मिलता है। बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'शब्दावली' में भी कुछ झूलने मिलते हैं, जिनके चौथे और छठे झूलने में दया (-राम या-दास) का नाम रचयिता के रूप में मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त रेख़तों और झूलनों के मूल रचयिता मनोहरदास थे और बाद में अन्य कबीरपंथी भी अपनी रचनाएँ उनमें जोड़ते गये। अन्यथा रेख़ते उच्च-कोटि की आध्यात्मिक रचनाएँ हैं जिनकी भाषा भी बड़ी प्रभावशालिनी है, किन्तु वह कबीर की कदापि नहीं कही जा सकती। उसमें **गूँगा तणी** (वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० १३०५), **'चौथा तणी'** (पृ० १३०७ व १३२४) **कूंड़ियां, कंथियां** (पृ० १३२३), **'बाझड़ी धेनु'** (पृ० १३११) आदि कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उनका रचयिता या तो राजस्थानी प्रदेश का था या उसकी प्रतियाँ ही राजस्थान में लिखी गयीं।

ज्ञान-तिलक, जो पंजाब-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय तथा अन्य संग्रहों में है, प्राचीन रचना है, किन्तु उसके रचयिता कबीर नहीं ज्ञात होते। इसकी प्रति-

५. दे० संतवाणी, वर्ष २ अंक ३ में 'संत ज्ञानी और उनकी सबदियाँ' शीर्षक लेख।

लिपि स्वामी मंगलदास जी ने एक निरंजनीपंथी पोथी से कराकर मेरे लिए भेजा था। इसमें पहले 'आदि जुगाद पवन अरु पानी, ब्रह्मा बिस्नु महादेव जानी।' से प्रारम्भ होने वाली एक रमैनी है जिसकी पूरक साखी का पाठ है : "रामानंद के बदन पर सदकै करूं सरीर। अबकी बेर उबारिहौ मैं कमधज दास कबीर ॥" किन्तु इसके बाद छन्द बदल गया है और इसमें 'गोरखबानी' के समान सबदियाँ मिलने लगती हैं। इन सबदियों में कबीर-रामानंद का संवाद है—'गुरु जी' का संबोधन कर कबीर कुछ आध्यात्मिक-साधना सम्बन्धी प्रश्न पूछते हैं और रामानंद 'सुनो कबीर जी' कह कर उत्तर देते हैं। बीच में केवल तीन[६] सबदियाँ ऐसी हैं जो अन्यत्र कबीर की साखियों के रूप में मिलती हैं। किसी-किसी पोथी में यह रचना रामानंद के नाम से भी मिलती है। किन्तु इसके वास्तविक रचयिता न तो रामानंद हैं और न कबीर, प्रत्युत दोनों महात्माओं के जीवन-काल के पश्चात् का कोई संत ज्ञात होता है। यह गोष्ठी-ग्रन्थों की कोटि का एक ग्रन्थ है।

रामरक्षा दुर्गा के कवच-स्तोत्र की तरह का एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसमें शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की रक्षा के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं का आह्वान किया गया है, यथा—'रोम की रक्षा रोम रिष करै। चाम की रक्षा राम जी करै। माल की रक्षा महादेव करै। हाड़ की रक्षा राजा धुज करै।' इत्यादि। अन्त में 'चौकी फिरती रहै बलि बावन बीर की। सत्य राम रक्षा करै भनै **दास कबीर**' लिख कर कबीर की छाप दे दी गयी है। ठीक इसी से मिलता-जुलता एक 'रामरक्षास्तोत्र' रामानंद के नाम से और दूसरा गोरखनाथ के नाम से भी प्रचलित है। रामानंद के नाम से मिलने वाले स्तोत्र में निरंजन-निराकार की दुहाई दी गयी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह रचनाएँ गोरखनाथ, रामानंद और कबीर से बहुत बाद की हैं।

ग्रन्थ बत्तीसी, कबीर-बत्तीसी, ज्ञान-बत्तीसी, सार-बत्तीसी एक ही रचना के विभिन्न नाम हैं। इसमें दो पद मिलते हैं। कुल मिला कर बत्तीस अक्षरों में कड़ियाँ या द्विपदियाँ होने के कारण ही कदाचित् इसका ऐसा नामकरण किया गया है। 'बत्तीसी' में कबीर ने अवधू को संबोधन कर योग, शास्त्र आदि को व्यर्थ बताते हुए राम-नाम की महिमा इस प्रकार बतायी है—

सहस बात की एक बात है, आदि र अंत बिचारी।
भज रमतीत राम भै पारा, कहा पुरुष कहा नारी ॥

---

६. अनहद गरजै नीझर झरै उपजै ब्रह्म निधान। ताका जल कोई हंसा अंचवै....... ।
आकासै उर्द्ध मुख कुंआं पाताले पनिहार। ताका जल कोई हंसा अचवै आपू सुरति बिचार।
घन गरजै हीरा निपजै घटा परै टकसार। जहां कबीर से पारखू कोई अनभौ उतरै पार ॥

किन्तु 'बत्तीसी' के दोनों पद अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलते। अतः इन्हें कबीर-कृत मानने में कठिनाई है।

जन्मबोध, जन्मपत्रिका की रमैनी अथवा **जन्मपत्रिका प्रकाश की रमैनी** सब एक ही ग्रन्थ के विभिन्न नाम हैं। इसमें पाँच साखियों की रमैनियाँ हैं जिनमें कुल मिला कर ३७० पंक्तियाँ हैं। कबीर ने अपने मुख से पुरुष-पिता और शक्ति-माता से अपनी उत्पत्ति बता कर सगुण और निर्गुण दो साधन-धाराओं का विवेचन किया है और निर्गुण-साधना को श्रेयस्कर बताया है। नानक के नाम से भी एक 'जनमसाखी' नामक ग्रन्थ मिलता है, जिसमें उनके जन्म का रहस्योद्‌घाटन उन्हीं के मुख से कराया गया है। इस प्रकार का साहित्य प्राचीन-अर्वाचीन सभी धर्मों में पाया जाता है। बौद्ध-धर्म के जातकों में बुद्ध की और ईसाई-धर्म के गास्पेल्स में पीटर, जेम्स, टॉमस आदि देवदूतों की आत्मकथाएँ उनके सिद्धान्तों के विवेचन सहित वर्णित हैं। **'अगाधबोध ग्रंथ'** भी, जिसमें केवल एक पद है और जिसमें निर्गुण ज्ञान की प्रशंसा ह; इसी कोटि में रक्खा जा सकता है।

राम मंत्र में बीस रमैनियाँ तथा दो साखियाँ हैं। इसमें भी राम-नाम की महिमा गायी गयी है। इसकी अंतिम पंक्ति है—'रामानंद कबीर की मैं बलिहारी जाउँ।' जिससे स्पष्ट है कि यह रचना रामानंद और कबीर के अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति की है जिसने उक्त दोनों महापुरुषों की वन्दना की है।

सबदभोग ग्रन्थ में, जो निरंजनी पंथ की पोथियों में मिलता है, 'प्रान पुरुष के भोग' लगाने की रमैनी है। ऊपर चौका-विधान सम्बन्धी कई प्रतियों का उल्लेख हुआ है। यह रचना भी उसी कोटि में रक्खी जा सकती है।

ब्रह्म-निरूपण में संस्कृत श्लोकों में अद्वैत-सिद्धान्त का निरूपण है। 'मसि-कागद' न छूने वाले कबीर के नाम से इस रचना का सम्बन्ध जोड़ना नितान्त हास्यास्पद है।

ऊपर जिन ग्रन्थों का संक्षिप्त प[illegible]या गया है उनकी कोई सीमित संख्या नहीं है। पंथ की जितनी ही [illegible]खी जायँगी उतनी ही इनकी संख्या में भी वृद्धि होती जायगी। किन्तु ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि उक्त सभी रचनाएँ कबीर के जीवन-काल के पश्चात् पंथ के अन्य संतों द्वारा रची गयीं। विवेच्य विषयों के अतिरिक्त इन ग्रन्थों की भाषा भी अत्यन्त अर्वाचीन है। यहाँ तक कि कुछ में यत्र-तत्र गद्य का भी समावेश हुआ है। इनमें से जो पुरानी से पुरानी रचनाएँ हैं, वे भी सत्रहीं शताब्दी के पूर्व की नहीं हो सकतीं। इनसे अथवा इस प्रकार के अन्य अर्वाचीन ग्रन्थों से कबीर की रचनाओं के

सम्पादन में किसी भी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती। इनसे पंथ के आचार-विचार और दार्शनिक अथवा सृष्टि-प्रक्रिया आदि के सिद्धान्तों का क्रमिक विकास समझा जा सकता है, जिसका प्रस्तुत अध्ययन से कोई सम्बन्ध नहीं। इनके अतिरिक्त जो प्रतियाँ शेष रह जाती हैं उन्हीं के आधार पर कबीर की प्रामाणिक वाणी का पता लगाया जा सकता है, अतः उन्हीं प्रतियों को अध्ययन का प्रमुख विषय बनाया गया है।

सामग्रियों का मिलान करने पर ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रतियों के पाठ तथा क्रम आदि में कुछ ऐसी समानताएँ तथा विषमताएँ मिलती हैं जो स्वतः उन्हें विभिन्न वर्गों अथवा समुदायों में विभाजित कर देती हैं। अध्ययन की सुविधा और परिश्रम के बचाव की दृष्टि से इन प्रतियों को स्थूल रूप से विभिन्न वर्गों में रक्खा जाय। जिससे किसी भी विशेष प्रकार की प्रतियों की स्थूल विशेषताएँ विभाजित कर लिया गया है। विभाजन करते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि उन्हें यथासंभव अधिक से अधिक वर्गों में हमारे सामने आने से वंचित न रह जायँ और उनका पारस्परिक मूल्य आँका जा सके।

वर्ग ३ : प्रमुख आधारभूत सामग्री : विभिन्न परंपराएँ

१. दा० अथवा दादूपंथी शाखा—ऊपर हमने देखा कि राजस्थान के दादू-पंथ में कबीर की वाणियाँ मिलती हैं, जिनमें पंचवाणी-परम्परा की प्रतियों का आधिक्य है। इन सभी प्रतियों के पाठ स्थूल रूप से एक ही प्रकार के हैं, किन्तु क्रम आदि में अन्तर अवश्य मिलता है। इनमें आये हुए पाठ का मिलान करने के लिए उक्त प्रतियों में से केवल पाँच प्रतियाँ चुनी गयी हैं, क्योंकि सभी का मिलान करने से प्रायः पिष्टपेषण के अतिरिक्त कुछ न रह जाता। कबीर के प्रसंग में पंचवाणी-प्रतियों का रूपान्तर केवल दादूपंथ में ही मिलता है अतः इस वर्ग की प्रतियों का संकेताक्षर दा० (दादूपंथी शाखा) रखा गया है। मिलान की हुई पाँच प्रतियों में प्रथम तीन दादू[illegible] की हैं और शेष दो पुरोहित जी के संग्रह की। विद्यालय की प्रथम दो [illegible]तियाँ सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रन्थावली' से अत्यधिक मिलती हैं। तीसरी प्रति, जैसा कि आगे विदित होगा, साखी तथा पदों की संख्या, क्रम और पाठ में कुछ भिन्न पड़ती है और तिथि में भी अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है; अतः पाठ-मिलान के लिए उसे भी चुना गया है। पुरोहित जी की प्रतियाँ प्राचीनता की दृष्टि से सम्मिलित की गयी हैं।

२. नि० या निरंजनीपंथी शाखा—राजस्थान के निरंजिनीपंथ में भी जो रचनाएँ मिलती हैं, अधिकांश रूप से दादूपंथी रूपान्तर के ही समान हैं, किन्तु

कुछ स्वतंत्र विशेषताएँ ऐसी भी मिलती हैं जो दा० प्रतियों में नहीं हैं। इस शाखा की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, सब का पाठ शब्दशः समान है। केवल दो-एक पदों का अंतर मिलता है, जो इतने बड़े आकार की दृष्टि से नगण्य है। इस शाखा की प्रतियों के लिए **नि०** (= निरंजनपंथी) संकेताक्षर रक्खा गया है और इसके प्रतिनिधि रूप में दादू-विद्यालय की प्रति का मिलान किया गया है। पाठ-पाठान्तर भी उसी से लिये गये हैं।

३. गु० या 'गुरु ग्रंथ साहब' की शाखा—'गुरु ग्रंथ साहब' के विभिन्न संस्करणों में पाठ-भेद प्रायः नहीं मिलता। प्रस्तुत प्रबंध में सर्व-हिन्द-सिक्ख-मिशन द्वारा संस्करण का उपयोग हुआ है और विवेचना तथा पाठ-मिलान में उसके लिए **गु०** (=गुरु ग्रन्थ साहब) का संकेत दिया गया है।

४. बी० या 'बीजक' की शाखा—पाठ की दृष्टि से 'बीजक' के तीन मुख्य रूपांतर माने जा सकते हैं: एक सामान्य बीजक की परम्परा, जिसके अन्तर्गत शास्त्री जी के संग्रह की प्रथम तीन प्रतियाँ तथा अधिकांश प्रकाशित 'बीजक' आते हैं, दूसरी फतुहा वाली परम्परा जिसके अन्तर्गत शास्त्री जी के संग्रह की चौथी, पाँचवीं तथा छठी प्रतियाँ और स्वामी हनुमानदास जी द्वारा संपादित 'बीजक' के प्रकाशित संस्करण आते हैं और तीसरी भगताही शाखा वाली परम्परा, जिसके अन्तर्गत शास्त्री जी के संग्रह की सातवीं, आठवीं तथा नवीं प्रतियाँ, कबीर-मंदिर, मोती डूँगरी की आठवीं प्रति और मानसर मठ के मेथी भगत तथा धनौती मठ के राम खेलावन गोस्वामी द्वारा प्रकाशित संस्करण आते हैं। विस्तृत मिलान के लिए तीनों के प्रतिनिधि स्वरूप प्रथम दो के लिए शास्त्री जी के संग्रह की क्रमशः पहली तथा पाँचवीं प्रतियाँ और तीसरी परम्परा के लिए मेथी गोसाँई द्वारा प्रकाशित संस्करण लिया गया है। भगताही शाखा के धनौती मठ की ओर से श्री राम खेलावन गोसाँई द्वारा संपादित एक अन्य 'बीजक' मेथी भगत के उक्त संस्करण के एक वर्ष बाद निकला, किन्तु इसमें सम्पादक की ओर से अत्यधिक संशोधन किये गये हैं। इसके विपरीत मानसर गद्दी का बीजक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें मूल प्रति के पाठ में लेश-मात्र भी संशोधन-परिवर्धन नहीं किया गया है। इसीलिए भगताही शाखा के प्रतिनिधि-रूप में धनौती मठ का 'बीजक' न ले कर मानसर गद्दी वाला 'बीजक' ही लिया गया है। तीनों शाखाओं के लिए क्रमशः बी० (=बीजक, सामान्य), बीफ० (=बीजक, फतुहा परम्परा का) तथा बीभ० (=बीजक, भगताही शाखा का) के संकेत चुने गये हैं।

५. स्फुट पदों की शाखा—फुटकल पदों के संग्रहों के लिए कबीरचौरा और

बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित शब्दावलियाँ ली गयी हैं और उनके लिए क्रमशः **शक०** (=शब्दावली, कबीरचौरा की) और **शबे०** (=शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस की) के संकेत दिये गये हैं। जैसा पहले कहा गया है, कबीरचौरा से 'शब्दावली' के तीन संस्करण निकले हैं; किन्तु तीनों में विशेष अन्तर नहीं है। अतः साधु अमृतदास का संस्करण ही प्रतिनिधि रूप में स्वीकार किया गया है और शेष छोड़ दिये गये हैं। बेलवेडियर प्रेस के चार विभिन्न भागों के लिए संकेत में क्रमशः **शबे०** (१) (=शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, प्रथम भाग), **शबे०** (२) (=शब्दावली बेलवेडियर प्रेस, द्वितीय भाग) आदि दिये गये हैं।

६. साखी-प्रतियों की शाखा—निम्नलिखित प्रतियाँ ऐसी हैं जिनमें कबीर की केवल साखियाँ मिलती हैं।

साखियों के लिए सर्वप्रथम प्रति, जिसका मिलान किया गया है, कबीर-मंदिर, मोतीडूँगरी की पहली प्रति है। यह बम्बई से प्रकाशित 'सत्य कबीर की साखी' नामक ग्रन्थ से मिलती है अतः सुविधा के लिए इस प्रति में आयी हुई साखियों का स्थल-निर्देश बम्बई के उक्त संस्करण के अनुसार ही किया गया है। इसके लिए संकेत **सा०** (=साखी-प्रति) दिया गया है।

स्वतंत्र साखी-प्रतियों की अधिक से अधिक छान-बीन हो सके, इस मन्तव्य से बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'कबीर साहब का साखी संग्रह' तथा कबीर-धर्म-वर्धक-कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा से प्रकाशित 'सतगुरु कबीर साहब का साखी-ग्रन्थ' का भी पाठ-मिलान किया गया है और उनके लिए क्रमशः **साबे०** (साखी-ग्रन्थ, बेलवेडियर प्रेस का) तथा **सासी०** (=साखी-ग्रन्थ, सीयाबाग का) के संकेत दिये गये हैं।

७. प्रचीन संकलनों की शाखा—कबीर की कृतियों के दो प्राचीन हस्तलिखित संकलन मिलते हैं : पहला रज्जब का **सर्वंगी** नामक ग्रन्थ और दूसरा जगन्नाथ का **गुणगंजनामा**। पहले में कबीर की साखी, पद तथा रमैनी—तीनों का संकलन मिलता है और दूसरे में केवल साखियों का संकलन मिलता है। 'सर्बंगी' के पाठ-मिलान के लिए दादू-विद्यालय की प्रति ली गयी है जिसमें लिपिकाल नहीं है और 'गुणगंजनामा' के लिए भी उक्त विद्यालय की ही प्रति ली गयी है जिसकी पुष्पिका में लिपिकाल सं० १८५३ वि० दिया हुआ है। पहली प्रति का संकेत **स०** (=सर्बंगी) और दूसरी **गुण०** (=गुणगंजनामा) निश्चित किया गया है।

डॉ० मोहन सिंह ने अपने 'गोरखनाथ एंड दि मेडिईवल मिस्टिसिज़्म'

अंग्रेजी ग्रन्थ (पृ० ८६) में **सबद-सलोक** नामक एक संकलन-ग्रन्थ की चर्चा की है जिसमें गोरखनाथ से लेकर गरीबदास तक की रचनाओं का संग्रह है और जिसे किसी सिंधी ने सं० १६०० वि० से लगभग प्रस्तुत किया था। उक्त लेखक के अनुसार यह ग्रन्थ गुरुमुखी अक्षरों में लाहौर से सन् १९०१ ई० में प्रकाशित भी हो चुका है; किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी कोई प्रति अथवा यह संस्करण प्राप्त नहीं हो सका।

८. **मौखिक परम्परा**—कबीर की साखियाँ और पद गेय होने के कारण साधारण जनता में अत्यधिक प्रचलित हैं। इस परम्परा में कबीर की रचनाओं का क्या स्वरूप रहा, इसका भी अनुमान लगाने का प्रयास किया गया है। इसके लिए आचार्य क्षिति मोहन सेन की 'कबीर' नामक पुस्तक का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अपनी निजी खोज के सिलसिले में साधु-संतों के सत्संग में कबीर के नाम से नयी रचनाएँ जहाँ कहीं भी मिलती गयीं संग्रहीत की गयी हैं, किंतु अन्ततोगत्वा उनसे पाठसंपादन में विशेष सहायता नहीं मिल सकी।

इस प्रकार कबीर के नाम से प्रचलित प्रतियों की बड़ी संख्या में से पाँच प्रतियाँ दादूपंथी शाखा की, एक प्रति निरंजनी शाखा की, एक गुरुग्रन्थ की, दो बीजक की, दो शब्दावलियों की, तीन साखियों की, एक 'सर्बंगी' की, एक 'गुणगंजनामा' की और एक आचार्य सेन की (आंशिक रूप में) अर्थात् ९ शाखाओं की कुल सत्रह प्रतियाँ ही ऐसी हैं जिनका विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ में कबीर की वाणियों का यथासम्भव प्राचीनतम तथा प्रामाणिकतम पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है। ये प्रतियाँ कबीर के नाम पर उपलब्ध प्रतियों के विपुल समुदाय का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर देती हैं, अर्थात् कबीर की वाणी का पाठ जिन विभिन्न रूपों से होकर गुज़रा है, उनके सम्बन्ध में जितना उक्त प्रतियाँ बता देती हैं उसके बाहर जानने को प्रायः कुछ नहीं (अथवा बहुत कम) रह जाता है। उदाहरण के लिए दा० परिवार की पाँच प्रतियाँ अलग कर लेने पर विद्यालय की शेष पंचवाणी प्रतियाँ, सम्मेलन की एक प्रति, पंजाब-विश्वविद्यालय की एक प्रति और सभा की दस पंचवाणी-प्रतियाँ, जिनके परिचय पहले दिये गये हैं, मिलाने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि इनमें से कुछ दा१, दा२ के समान, कुछ दा३, दा४ के समान और कुछ दा५ के समान ही पाठ प्रस्तुत करती हैं। निरंजनीपंथ की सारी प्रतियाँ प्रायः एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं, अतः एक प्रति का पाठ ग्रहण कर लेने पर इस शाखा की शेष ४ प्रतियों का, जो दादू-विद्यालय, ना० प्र० सभा

और इंडिया ऑफ़िस लायब्रेरी तथा नरोत्तमदास जी के संग्रहों में हैं, शब्दशः मिलान कर पाँच गुना अतिरिक्त समय लगाना व्यर्थ था। यही बात 'साखी', 'बीजक' और 'शब्दावली' की फुटकल प्रतियों के संबंध में भी लागू होती है।

एक ही पाठ की अनेक प्रतियाँ मिलने से केवल इतना निश्चित रूप से प्रमाणित हो जाता है कि उस पाठ की एक विशिष्ट परम्परा प्रचलित हो गयी थी जिसे एक विशिष्ट वर्ग के लोग प्रामाणिक मानते आ रहे हैं। किन्तु, वास्तव में, किसी भी एक शाखा का पाठ समग्र रूप से प्रामाणिक नहीं; क्योंकि कोई भी शाखा ऐसी नहीं है जिसमें अशुद्ध अथवा प्रक्षिप्त पाठ न मिलते हों। इतना अवश्य है कि ये सब एक ही मूल से उद्भूत वृक्ष की विभिन्न शाखाएँ और टहनियाँ हैं। हम इन्हीं को पकड़ कर जड़ तक पहुँच सकते हैं। जड़ हमारी आँखों से ओझल है, किन्तु किसी एक टहनी को पकड़ कर उसे ही मूल मान लेना नितांत भ्रम होगा। पहले कभी एक प्रासाद बना था, उसके अधिवासियों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उसे बाँट लिया और फिर अपने-अपने हिस्से को बढ़ाया-घटाया; किसी-किसी ने गिरा कर उसे एकदम नये सिरे से बना लिया। आज उस भवन की रूपरेखा बिगड़ गयी है, किन्तु उसकी ईंटें अभी मौजूद हैं। उन्हें एकत्र कर उनको परखना है, और उनकी मौलिक काट-छाँट के अनुसार, जहाँ तक सम्भव हो सके, उन्हें अपने मौलिक स्थान तक पहुँचाना है और हो सके तो मूल भवन का पुनर्निर्माण करना है; क्योंकि आज हम उसे पुनः प्राप्त करने के लिए आतुर हैं। इस ग्रन्थ में कबीर की वाणी के पाठ का इसी प्रकार पुनर्निर्माण किया गया है। यह किन युक्तियों के आधार पर किया गया है, इसकी जानकारी आगे की विवेचना से प्राप्त होगी।

अन्य सहायक सामग्री—पाठ-निर्धारण में प्रतिलिपिकारों अथवा संपादकों की मनोवृत्तियों का अध्ययन करने में प्राचीन टीका-टिप्पणियाँ भी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इन टीकाओं से जटिल स्थलों का अर्थ समझने में भी सहायता मिलती है, अतः कबीर की रचनाओं की प्राचीन टीकाओं की भी (जो उपलब्ध हो सकीं) पूरी सहायता ली गयी है। इस प्रकार की मुख्य टीकाएँ निम्नलिखित हैं—

पहली १२१ पदों की एक अप्रकाशित टीका है, जिसका परिचय ऊपर दादू-विद्यालय की निरंजिनी-सम्प्रदाय की पहली पोथी और सभा की आठवीं पोथी के विवरणों में प्रस्तुत किया गया है। मेरे पास इसकी जो प्रतिलिपि है वह दादू-विद्यालय की प्रति से उतारी गयी है। किन्तु सभा की प्रति का भी मिलान कर लिया गया है और उसके पाठान्तरों का यथास्थान निर्देश भी किया गया है।

प्राचीन टीकाओं में मुझे यह सर्वोत्तम समझ पड़ी, और इसीलिए कबीर के पदों का अर्थ समझने में इसका स्वभावतः सब से अधिक उपयोग भी हुआ है। संयोग-वश यह सब से अधिक प्राचीन भी है।

दूसरी टीका साधु पूरणदास की है जो इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से छपी है।

तीसरी रीवाँ नरेश की 'पाखंड-खंडिनी-टीका' है।

चौथी विचारदास की 'बीजक'-टीका है।

इन टीकाओं के अतिरिक्त इतःपूर्व कबीर पर जितनी भी टीकाओं तथा विवेचनाओं का पता लग सका है, सब का यथोचित उपयोग किया गया है। इनमें क्रमशः डॉ० राम कुमार वर्मा की 'संत कबीर' की टीका, नरोत्तमदास स्वामी की टीका (जिसका कुछ अंश 'संतवाणी' में प्रकाशित हुआ है), श्री राम चन्द्र 'सुधांशु' की 'साखी-सुधा' तथा 'संतकाव्य' में श्री परशुराम चतुर्वेदी की टिप्पणियाँ और बाराबंकी से प्रकाशित बीजक-कोष की सामग्री अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

कबीर की कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जो अन्य संतों अथवा कवियों के नाम से भी मिलती हैं। ऐसी पंक्तियों की खोज के लिए संत-साहित्य की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ और अन्य प्रकाशित ग्रन्थ भी देखने पड़े हैं। उनका उल्लेख निर्धारित पाठ में यथास्थान किया गया है।

§३. आधार-प्रतियों का विस्तृत विवरण

नीचे उन प्रतियों का विवरण किंचित् विस्तार के साथ दिया जा रहा है जिन्हें विस्तृत पाठ-मिलान के लिए चुना गया है।

दा० प्रतियों का विवरण

दा१ प्रति—यह प्रति, जैसा पहले निर्देश किया गया है, जयपुर नगर में मोती-डूँगरी मुहल्ले के श्री दादू-विद्यालय में है। विद्यालय की क्र० सं० कुछ नहीं पड़ी

है। कुल पत्र-संख्या ६५०; प्रति पृष्ठ लगभग ५१ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर। कागज़ सफ़ेद, पुराना, चिकना। पुस्तकाकार सुन्दर रेशमी जिल्द में बँधी हुई। स्पष्ट और आकर्षक देवनागरी में आदि से अन्त तक एक ही व्यक्ति द्वारा लिपिबद्ध ; लिपिकाल पुष्पिका के अनुसार सं० १८३१ वि०। पोथी के आरम्भ में 'ततकारा का ब्यौरा' लिख कर विस्तृत सूची-पत्र दिया हुआ है। इसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य संतों की रचनाएँ भी संगृहीत हैं। लगभग ४४,००० अनुष्टुप-प्रमाण का यह ग्रन्थ बाबा बनवारीदास की शिष्य-परम्परा के मोतीराम दादूपंथी द्वारा सं० १५३१ वि० में लिखा गया। पुस्तक के अंत में बाँयें पृष्ठ पर पोथी बेचने के अवसर की गवाही-साखी है जिससे ज्ञात होता है कि सं० १९१३ वि० में पं० श्री निश्चलदास ('वृत्ति-प्रभाकर' के रचयिता प्रसिद्ध दादूपंथी विद्वान्) ने इसे हंसदास नामक किसी साधु से चौवालिस रूपयों में ख़रीदा था।

कबीर की वाणी का जो रूपान्तर इसमें है, स्थूल रूप से सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रन्थावली' की प्रति से मिलता है। अन्य पाठांतरों के अतिरिक्त साखी तथा पदों की संख्या में 'क' प्रति से केवल निम्नलिखित अन्तर हैं—

१—'क' प्रति का १५ वाँ अंग दा१ में नहीं है, उसकी सब साखियाँ इसके १४ वें अंग अर्थात् 'सूखिम मारग' में ही मिल जाती हैं।

२—'क' प्रति की साखी २०-२०, ३१-३ तथा ४५-२५ दा१ में नहीं मिलतीं।

३—'क' प्रति की साखी ५४-७ के पूर्व दा१ में एक साखी और मिलती है: "आपनपौ न सराहिए" इत्यादि।

४—दा१ में 'क' प्रति के पद १०५, १४८, १८९, २०१, २०८, २३६, २३७, २४८, २३९, २५२, २८७, २९९, ३३६, ३७२, ३७३, ३७९, ३८८, ३९५—अर्थात् कुल १८ पद नहीं हैं।

इस प्रकार दा१ में साखियों की संख्या ८०७ है जब कि 'क' प्रति की संख्या ८०९ है। पदों की संख्या दा१ में ३८५ है और 'क' प्रति में ४०३; रमैनियों की संख्या में कोई अंतर नहीं। दा१ की पुष्पिका में साखियों की तथा पदों की संख्याएँ क्रमशः ८११ तथा ३८४ दी हुई हैं, जो अशुद्ध हैं। वाणी का क्रम 'क' प्रति से बिल्कुल मिलता है।

अन्य विशेषताएँ—यह विशेषताएँ प्रायः उसके प्रतिलिपिकार की प्रवृत्तियों से संबंधित हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१—साखियों अथवा पदों की संख्या लिखने में अनेक स्थलों पर भ्रम हो गया है। उदाहरण के लिए 'जीवन मृतक अंग' में ११ वीं साखी पर भूल से १२ संख्या डाल दी गयी है, जिसे आगे चलकर १४ दो बार लिखकर सुधारा गया है। संख्याओं के बड़े योग में भी अशुद्धियाँ हैं जिन्हें सुधारने का प्रयत्न किया गया है—कहीं हरताल लगा कर और कहीं स्याही से ही।

२—कुछ साखियाँ (उदाहरणतया ग्रन्था०साखी १२-११, १३-१६, २०-५ आदि) ऐसी हैं जो लेखक के ही द्वारा पोथी के हाशिये में लिखी मिलती हैं। इसी प्रकार के संशोधन पदों में भी यत्र-तत्र मिलते हैं। किन्तु पाठ में संशोधन प्रायः नहीं मिलते जिससे स्पष्ट है कि इसका मिलान एक से अधिक प्रतियों से नहीं हुआ है।

दा२ प्रति—यह प्रति भी जयपुर के उक्त महाविद्यालय में है और आकार में लगभग सवा फ़ुट लम्बी और ६ इंच चौड़ी है। इसमें कुल ६६५ पत्रे हैं जिनमें प्रति पृष्ठ लगभग ४२ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति ३० अक्षर आये हैं। इसमें पुष्पिका नहीं है। अन्त के कुछ पत्रे अभी सादे पड़े हैं जिससे अनुमान होता है कि कदाचित् कुछ और लिखने को शेष रह गया था, जो किसी कारणवश न लिखा जा सका। काग़ज़ मटमैला और पुराना है। अनुमान से यह प्रति सं० १८३० वि० के लगभग की लिखी हुई ज्ञात होती है। पोथी एक ही व्यक्ति द्वारा नागरी में लिखी हुई है। इसमें भी कबीर की वाणी के साथ अन्य अनेक संतों की रचनाएँ मिलती हैं।

कबीर की वाणी के अन्त में यद्यपि "रमैणी ७ राग १५ पद ३८४ साखी ८१०" दिया हुआ है, किन्तु मिलान करने पर ज्ञात होता है कि साखियों की संख्या में पर्याप्त अन्तर है और पुष्पिका में दी हुई संख्या अशुद्ध है। इसके साखी-प्रकरण में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं जो ग्रन्थावली (ना० प्र० स०) की तुलना से अधिक स्पष्ट हो जावेंगी—

१—इसमें ग्रन्था० 'क' प्रति की साखी १-३४, १-३५, २-३, २-१५, २-१६, ३-३६, ३-४४, ३-४५, १२-२३, १२-३५, १६-१४, ३२-३, ३२-४, ३८-१२, ४१-१२, ५४-६, ५५-७, ५५-८ तथा ५६-१—अर्थात् कुल १६ साखियाँ नहीं मिलतीं।

२—ग्रन्था० 'ख' प्रति की अधिकांश साखियाँ इसमें मिल जाती हैं, किन्तु कुछ साखियाँ ऐसी भी हैं जो नहीं मिलतीं। 'ख' प्रति की न मिलने वाली साखियाँ हैं : ११-११, ११-१२, ५-१०, ३-४६, १-२६, १२-७६, ८०, ८३, ८५,

१३-२७, २८, ३५, १४-३, ४, १६-२, २५, २६, १७-१४, १५, १६, १७-२१, २४, २८, २०-५, ६, ३२-२३, ४, ५, २४-८, ३२-२, ५, ६, ३४-३, ३५-१५, २०, ३६-५, ३८-१, ३६-५, ४१-१, ४३-१५, १६, ४६-८, २८-३१, ४०-४६, ५३-१०, ५६-३, ५८-७—अर्थात् कुल ५० साखियाँ नहीं मिलतीं, शेष ८० मिलती हैं।

३—सोलह साखियाँ दा२ में ऐसी हैं जो न 'क' प्रति में मिलती हैं और न 'ख' में।

४—ग्रंथा० के ४० वें अंग को 'सार सबद' नाम दिया गया है और इसके पूर्व 'सुसबद' नामक एक नया अंग जोड़ा हुआ है जिसकी ६ साखियाँ ऊपर ४०-वें अंग में दी हुई हैं। इस प्रकार दा२ में ७६० 'क' प्रति की, ८० 'ख' की और १६ निजी साखियाँ मिला कर कुल ८८६ साखियाँ मिलती हैं। कहीं-कहीं क्रम में उलट-फेर है, किन्तु वह नाममात्र का है। साखी ३१-६ की प्रथम पंक्ति तथा २४-१३ का द्वितीय चरण लिखने से छूट गये हैं।

दा३ प्रति—यह प्रति भी उक्त विद्यालय में है। अन्य प्रतियों की अपेक्षा यह आकार में में कुछ छोटी है और लगभग ७ इंच लम्बी तथा ५½ इंच चौड़ी है। इसमें प्रति पृष्ठ १८ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर आये हैं। इसकी स्याही असाधारण रूप से चमकीली है। पूर्वार्द्ध तक पत्र-संख्या डाली हुई है जिससे पूरी पोथी ४१६ पत्रों की ज्ञात होती है, किन्तु आरम्भ तथा अंत के कुछ पत्रे खंडित हैं। काग़ज़ मटमैला है और इतना जीर्ण हो गया है कि मुड़ने पर टूट जाता है। पुष्पिका में लिपिकाल सं० १७६८ वि० दिया हुआ है। गुटके के ऊपर "डीडवाने की चैनसुखदास को भेजी सं० १७६८ की आषाढ़ बदि ११ सं० १९७६ वि०" लिख कर किसी ने इसका सूचीपत्र भी बना दिया है। इस पोथी में भी कबीर के अतिरिक्त कुछ दादूपंथियों की रचनाएँ लिखी हैं। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति....संपूर्ण। संवत्१७६८। का मिती सांवण वदि। १४। बार मंगलवार स्वामी प्रागदास जी। माधो दास जी। लिषमी दास जी। तत्र सिष जगन्नाथ दास शहर डीडपुर मधे। पोथी लिषतं जगन्नाथदास स्वामी प्रागदास जी के असतलि (=स्थल) लिखतं जगन्नाथदास दादूपंथी।"

यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि इसके लेखक और 'गुणगंजनामा' के संकलयिता जगन्नाथदास एक ही व्यक्ति हैं अथवा भिन्न-भिन्न।

इस प्रति में जो कबीर की वाणी मिलती है उसके संबंध में कुछ विशेष ज्ञातव्य बातें हैं। पहली विशेषता यह है कि इसमें पंचवाणी-परम्परा का कोई अवलम्बन नहीं ज्ञात होता। इसमें पहले सुन्दरदास की रचनाएँ देकर तब दादू

और प्राणदास की रचनाएँ आती हैं, तत्पश्चात् कबीर की । अन्य प्रतियों की तुलना में साखी-पदों की संख्या में कुछ अन्तर तो है ही, क्रम में अत्यधिक अंतर मिलता है ।

इसमें 'ग्रन्थावली' के १८ वें, १९ वें अंग नहीं हैं किन्तु उनमें आयी हुई साखियाँ अन्यत्र मिलती हैं । इस प्रकार 'ग्रन्थावली' के ५९ अंगों के स्थान पर दा३ में केवल ५७ अंग मिलते हैं ।

इसमें ग्रन्थावली के ६, १६, ४२, ४८, ६४, ६६, ६९, ७८, ९२, ९८, १०१, १०३, ११४, १२२, १२६, १३५, १३८, १४८, १५२, १६०, १६१, १६७, १८०, १८१, १८२, १८९, १९४, १९६, १९९, २०१, २०६, २०८ २०९, २१२, २१७, २२२, २२५, २२७, २२९, २३१, २३७, २३८, २३९, २४१, २५१, २५२, २५६' २६०, २६६, २७४, २७९, २८५, २८७, २९५, २९९, ३०४, ३३१, ३३३, ३३६, ३४७, ३५७, ३५९, ३६०, ३६१, ३७३, ३७९, ३९२, ३९५, ३९७, ३९८, ४००—अर्थात ७१ पद नहीं हैं, शेष ३३२ मिलते हैं । इसके अतिरिक्त ११ पद नये मिलते हैं जो 'ग्रन्थावली' में नहीं हैं । इस प्रकार पदों की संख्या ३४३ होती है । पोथी में यह संख्या ४०० दी हुई है जो अशुद्ध है ।

रमैनियों के क्रम में भी, जैसा सूची से ज्ञात होगा, अन्य प्रतियों से अन्तर है । 'बावनी रमैनी' जो दा१ तथा दा२ में नहीं मिलती, किन्तु 'ग्रन्थावली' की 'ख' प्रति में मिलती है, इसमें भी है ।

दा३ में तीन पद (ग्रन्थावली पद ३६, ५९ तथा १३४) ऐसे हैं जो दो बार आये हैं । इससे ज्ञात होता है कि इसके अथवा इसकी आधारभूत प्रति के लिपिकर्त्ता के सामने एक से अधिक आदर्श थे । प्रति में कहीं-कहीं कोई-कोई पंक्ति (उदाहरणस्वरूप ग्रन्थावली साखी ५-४४-१ अथवा बड़ी अष्टपदी ८-१३ तथा १४-१) लिखने से छूट गयी है। हाशिये के संशोधन प्रायः नहीं के बराबर हैं ।

दा४ प्रति—यह पोथी स्वर्गीय पुरोहित हरि नारायण जी के संग्रह में बस्ता नं० ७ की क्र० सं० ४८५-८३९ पर है । यह लगभग ८ इंच लम्बी और इतनी ही चौड़ी है । पत्र-संख्या ५८२, प्रति पृष्ठ २२ पंक्तियाँ और प्रति-पंक्ति २६ अक्षर । काग़ज़ मटमैला और अत्यन्त ही जीर्ण । बीच के कुछ पत्रे नत्थी से अलग हो गये हैं, किन्तु प्रति अभी खंडित नहीं है और बड़ी सावधानी से सुरक्षित है । यह भी एक बड़ा संग्रह-ग्रन्थ है जिसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य कई संतों की वाणियाँ आयी हैं । इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

परचई संपूरण समाप्तः ॥ श्री श्री श्री ॥ सं० १७१५ वर्षे साके १५८० महा मांगलीक फाल्गुन मासे सुक्ल पक्षे त्रयोदश्याम १३ तिथौ गुरु वासरे डिंडपुर मधे स्वामी पिरागदास जी शिष्य स्वामी माधोदास जी तत्शिष्य विन्द्रावनेनालेखि आत्मार्थी ॥ शुभम्भवतः ॥ श्री रामो जयति ॥"

पोथी की यह पुष्पिका मूल लेखक की लिखी हुई नहीं ज्ञात होती। इसकी स्याही, लेखनी, लेखन-शैली, सभी स्पष्ट रूप से भिन्न हो गयी हैं। किन्तु जो लिपिकाल इसमें दिया हुआ है वह असम्भव नहीं ज्ञात होता।

इस प्रति में कबीर की जितनी वाणी है, दा३ से अक्षरशः मिलती है। इसका मिलान साखी-प्रकरण के 'बिरह अंग' तक और पदों में राग गौड़ी तक किया गया है और जब दा३ से इसकी एकरूपता सिद्ध हो गयी तो पाठ-मिलान बंद कर दिया गया। एकरूपता का अनुमान एक बात से और भी दृढ़ हो गया कि जहाँ दा३ में लिखना छूट गया है वहाँ दा४ में भी वैसा ही हुआ है और पुनरावृत्तियाँ भी ज्यों की त्यों दोनों में मिलती हैं। दोनों प्रतियाँ डीडवाने में प्रागदास के थाँभे में तैयार हुईं, इसलिए दोनों का अभिन्न होना स्वाभाविक भी है।

दा५ प्रति—यह पोथी भी उक्त पुरोहित जी के संग्रह में बस्ता नं० ३, क्रम-संख्या २३६-२३७ में है। इसमें कुल ३३० पत्रे हैं जो लगभग ८ इंच चौड़े और ६ इंच लम्बे हैं। प्रति पुस्तकाकार बँधी है और प्राचीन है। लिपिकाल सं० १७४१ वि० दिया हुआ है। यह पीले रंग की जिल्द में बँधी हुई है जिसे कदाचित् पुरोहित जी ने बाद में पोथी की सुरक्षा के निमित्त बनवाया था। यह भी एक संग्रह-ग्रन्थ है जिसमें कबीर के अतिरिक्त अन्य संतों की भी वाणियाँ संग्रहीत हैं।

पोथी के पाना २९० पर लिपिकाल के रूप में सं० १७४१ वि० का उल्लेख है। पोथी के अन्त में पुष्पिका नहीं है जिससे अन्य ब्योरे ठीक-ठीक नहीं ज्ञात हो सके।

इसमें 'ग्रन्थावली' की साखियों के १८, १९, २२, ३२, ४०, ४२, ४९ तथा ५७, अर्थात् ८ अंगों के नाम नहीं मिलते। उन्नीसवाँ 'साह का अंग' नया है। इस प्रकार इसमें अंगों की संख्या ५२ होती है। साखियों की संख्या में भी इसी प्रकार के कुछ अन्तर हैं। इसमें 'ग्रन्थावली' की 'क' प्रति की ८०९ साखियों में से ६३८ साखियाँ मिलती हैं, शेष १७१ नहीं। 'ख' प्रति की ५६ साखियाँ मिलती हैं और ८ साखियाँ अतिरिक्त मिलती हैं। इस प्रकार साखियों की कुल संख्या ७०२ होती है।

पदों में 'ग्रन्थावली' 'क' प्रति के पद १४८ तथा १७९ नहीं मिलते, किन्तु २२ पद अधिक मिलते हैं। इस प्रकार पदों की संख्या ४२३ हो जाती है। रमैनियों

में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं। साखियों के क्रम में बहुत अंतर मिलता है।

दा० प्रतियों की सामान्य विशेषताएँ

कुछ विशेषाताएँ ऐसी हैं जो दा० प्रतियों में समान रूप से मिलती हैं, अतः उनका उल्लेख पृथक्-पृथक् न कर एक ही स्थान पर किया जा रहा है—

(क) राजस्थानी प्रभाव—यह सभी प्रतियाँ राजस्थान में प्रायः राजस्थानियों द्वारा ही लिपिबद्ध हुईं। हमें जो दा० प्रतियाँ मिली हैं उनको एक लम्बी परम्परा है और जब पहले-पहल कबीर की बानी वहाँ पहुँची तब से लेकर उस समय तक उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ हो चुकी थीं तथा प्रतिलिपिकारों के माध्यम से, जिनके ऊपर समय की परिस्थतियाँ और भाषा सदैव ज़ोर मारा करती हैं, अनेक प्रांतीय तथा साम्प्रदायिक विशेषताएँ उनमें जुड़ती गयीं। आज हमें उसका यही परिवर्धित रूप मिलता है। राजस्थानी प्रभाव बहुत व्यापक है जो साखियों में सब से अधिक है, और पदों तथा रमैनियों में कुछ कम। इस प्रवृत्ति के यहाँ केवल थोड़े से उदाहरण दिये जा रहे हैं। स्थल-निर्देश 'ग्रन्थावली' के अनुसार किया जा रहा है।

साखियों के उदाहरण—साखी ३-६ : अंदेसड़ौ, भाजिसी; १२-१२ : मारिसी; १२-५२: बूड़िसी, पड़िसी; २०-१७ : बकससी; २७-२ : चपेटसी; २८-२ : गंवाइसी, देसी; ३१-६ : रहिस्यूं; ३४-७ : जुड़सी; १२-४८ : होसी; १६-३१ : त्यांह; १६-२६ पणि।

पदों के उदाहरण—ग्रन्था० ३९० : दांम **छै** (=हिन्दी 'है') **पंणि** (=हिन्दी 'पर') काम नाँहीं ज्ञान **छै पंणि** अंध रे। श्रवण **छै पंणि** सुरति नाहीं नैन **छै पंणि** अंध रे॥

रमैणियों के उदाहरण—'बावनी' दोहा ४ : थारौ।

'कबीर-ग्रन्थावली' के संपादकों ने जिसे भूमिका में पंजाबी-प्रभाव कहा है और जिसका कारण उनकी समझ में नहीं आ रहा था वह अधिकांशतः राजस्थानी-प्रभाव है, और उसका कारण स्पष्ट रूप से यही है कि जिस प्रति के आधार पर 'कबीर-ग्रन्थावली' छापी गयी थी वह पंचवाणी-परिवार की ही एक प्रति थी। जैसा कि ऊपर बताया गया है, पंचवाणी-प्रतियों का निर्माण तथा लेखन प्रायः राजस्थान के दादूपंथ में ही होता रहा।

(ख) पंजाबी-प्रभाव भी मिलता है, किन्तु उसकी मात्रा राजस्थानी-प्रभाव से कम है। नीचे पंजाबी-प्रयोगों के भी कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

साखी १२-११-१ : चाम **पलेटे** हड; १२-६०-२ : रुई **पलेटी** आगिः ४५-

३७-१ : चित धरि एक **बमेक** (=हिन्दी 'विवेक'); १-२-१ : बलिहारी गुरु **आपणीं** (=आपकी); पद ६२ : **कीता, उसदा** ।

दा३ तथा दा५ में ऊपर उल्लिखित उदाहरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रयोग भी मिल जाते हैं जिनसे उन पर पंजाबी-प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ; उदाहरणतया साखी २६-१८-२ का पाठ सभी दा० प्रतियों में "भाग तिन्हौं का हे सखी" है; किन्तु दा३ में उसका पाठ है : भाग **तहंदा** हे सखी" । 'दा' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पंजाबी का है ।

दा५ में रांमकली पद ८७ : मियाद मेरै तूही मिलनां नहीं बिछोहा ।

कूंजड़ियां कुरलाइयां सारस कुरली ताल **वे** ।

एक बिछोहा भी मरण **तिसदा कूंण** हवाल **वे** ।

(ग) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—(१) 'ग्रन्थ बावनी' पंक्ति ३ का दा० प्रतियों में पाठ है : "तुरक **मुरीकत** जानिए, हिंदू बेद पुरांण ।" नि० तथा गु० में 'मुरीकत' के स्थान पर 'तरीकत' पाठ मिलता है । हिन्दुओं के वेद-पुराण की तुलना में तुर्कों का 'तरीकत' ही सार्थक है, 'मुरीकत' नहीं । अतः 'मुरीकत' पाठ विकृत ज्ञात होता है । लिपिजनित संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि नागरी या नागरी से विकसित अन्य लिपियों में 'तरीकत' से 'मुरीकत' होना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं, क्योंकि नागरी के 'त' और 'म' में बहुत अन्तर होता है । केवल फ़ारसी लिपि से इस विकृत का समाधान हो सकता है ।

२—'बावनी' में ही आगे की साखी में दूसरी पंक्ति का पाठ दा० में है—"नांहीं देखि न भाजिए **प्रेम** सयानप एह ।" नि०, गु० ('बावनअखरी' पंक्ति १६) तथा बी० ('ज्ञानचौंतीसा' पंक्ति २२) में 'प्रेम' के स्थान पर 'परम' पाठ मिलता है । दा० में यह विकृति भी उर्दू मूल के कारण ही ज्ञात होती है ।

३—'दुपदी रमैनी' की ७२ वीं पंक्ति में "बाजै संख सबद धुनि **बेनां,** तन मन चित हरि गोबिंद लीनां ।" का 'बेना' शब्द वस्तुतः उर्दू मूल 'बीना' (=एक बाजा) का विकृत रूप ज्ञात होता है । तुक की दृष्टि से भी 'लीनां' की संगति में 'बीनां' पाठ ही संगत लगता है ।

४—दा० गौड़ी ४८-३ का पाठ है : "जांमैं **मरै न संकुट** आवै" । गु० गउड़ी ७०-५ में 'संकुट' के स्थान पर 'संकटि' (=संकट में) पाठ मिलता है जो सुसंगत है । दा० में यह विकृति उर्दू के ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण आयी ज्ञात होती है ।

५—इसी प्रकार दा० बिलावल १ (ग्रन्था० पद ३६२) की प्रथम पंक्ति के

द्वितीय चरण का पाठ है : "गुरु गमि भेद **सहर** का पावै।" इसमें 'सहर' शब्द निरर्थक है और 'सु हरि' का विकृत रूप ज्ञात होता है। तुलनीय गु० गौड़ी ७७-१ : गुर गमि भेदु **सु हरि** का पावउ। यह विकृति भी फ़ारसी-लिपि के ही कारण हुई जान पड़ती है।

६—दा० केदारौ ८-४ (ग्रन्था० पद ३०७-४) का पाठ है : "**आंन** न भावै नींद न आवै......।" शबे० (१) विरह-प्रेम ४ में 'आंन' के स्थान पर 'अन्न' पाठ मिलता है जो सार्थक और प्रसंगसम्मत है। 'अन्न' का 'आंन' होना उर्दू में ही संभव है।

इस प्रकार की विकृति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। आगे इसकी चर्चा पग-पग पर मिलेगी और अन्य प्रतियों के साथ दा० के भी उदाहरण अनेक मिलेंगे। नीचे केवल दा० प्रतियों में मिलने वाली कुछ ऐसी विकृतियों का स्थल-निर्देश किया जा रहा है जो फ़ारसी-लिपि-जनित ज्ञात होती हैं।

७—दा० गौड़ी ३१-४ : **भगति** [तुल० नि० गौड़ी ३१-४ : भगत]

८—दा२ आसावरी ५६-६ (ग्रन्था० २५७-६) **हाजिरां सूर** [तुल० गु० तिलंग : हाजिर हजूर]

९—दा० साखी ३७-१०-१ : **मंदिल** [तुल० गु० ११३-१ : मादलु]

१०—दा० १३-१६-२ : **गलका** [तुल० दा३, नि० सा० साखी २९-५-२ : गटका]

कई विकृतियाँ ऐसी मिलती है (जैसे : इब, निजरि, रिन) जो अन्यथा प्रांतीय प्रभाव के कारण भी मानी जा सकती हैं, अतः सन्देहास्पद होने के कारण उन्हें यहाँ नहीं सम्मिलित किया गया।

(घ) नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—नागरी लिपि के कारण मिलने वाली विकृतियों की संख्या उर्दू की तुलना में बहुत कम है। प्राप्त उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१—दा० गौड़ी ७८-१ का पाठ है : "बिनती एक रांम सुनि थोरी। अब न **बचाइ** राखि पति मोरी॥" नि० गौड़ी ८१ में 'बचाइ'—जो यहाँ निरर्थक है—के स्थान पर 'नचाइ' पाठ मिलता है जो प्रसंगसम्मत लगता है। जान पड़ता है, नागरी के 'न' और 'ब' की समानता के कारण ही दा० के पाठ में यह विकृति हुई है।

२—दा० गौड़ी ८८-५ में दा३ का पाठ है : "कहै कबीर **सुनि मुनि** उपदेसा।" अन्य प्रतियों में "सुर मुनि उपदेसा" पाठ मिलता है। कैथी में 'न'

श्रौर 'र' एक-से होते हैं, इसी के कारण दा३ में यह विकृत पाठ श्राया हुश्रा ज्ञात होता है।

३, ४—इसी प्रकार दा० श्रासावरी २५-१ (ग्रंथावली २२६-१) का पाठ दा३ में "मैं **सासने** पिय गौहनि श्राई" है जब कि श्रन्य प्रतियों में 'सासने' के स्थान पर 'सासरे' पाठ मिलता है जो सार्थक श्रौर प्रसंगसम्मत है। इसी प्रकार दा० बिलावल ४-८ (ग्रंथा० ३६५-८) : तीन बेर **पतियानां** लीन्हां। 'पतियानां' यहाँ निरर्थक है; तुलना श्रन्य पाठ : 'पतियारा'।

(ङ) पुनरावृत्तियाँ—दा० में कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं जो एक से श्रधिक स्थलों पर मिलती हैं। कहीं-कहीं ये पंक्तियाँ ज्यों की त्यों दुहरायी हुई हैं श्रौर कहीं कुछ शब्दांतर के साथ मिलती हैं। उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१—दा० साखी १-७ : **सतगुरु सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक।**
लागत ही भैं मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक॥

यही साखी शब्दशः इसी प्रकार श्रागे दा० ४०-४ पर भी मिल जाती है।

२—तुल० दा० १२-१२ तथा ४६-१९—

कबीर कहा गरिबियौ; काल गहे कर केस।
न जांणौं कहां मारिसी, कै घर कै परदेस॥

३—तुल० दा० १३-२० : **मैंमंता मन मारि रे; नांन्हां करि करि पीसि।**
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीसि॥

तथा ५२-४ : **इस मन को मैदा करौ, नांन्हां करि करि पीसि।**
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीसि॥

[श्रंतर केवल प्रथम चरण के पाठ में है।]

कुछ साखियाँ ऐसी भी हैं जिनकी केवल एक पंक्ति में समानता मिलती है; उदाहरणतया—

तुल० दा० ४-४ : **झल उठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।**
जोगी था सो रमि गया, श्रासन रही बिभूति॥

तथा दा० ४१-७ : **मन मार्‍या ममता मुई, श्रहं गई सब छूटि।**
जोगी था सो रमि गया, श्रासणि रही बिभूति॥

इसी प्रकार—तुल० दा० ५-५ तथा ५-६; ४०-६ तथा ४०-७।

पदों में भी कुछ पंक्तियों की पुनरावृत्ति मिलती है, किन्तु उनकी श्रावृत्ति में विशेष श्रस्वाभाविकता नहीं खटकती; उदाहरणतया—

१—तुल० दा० गौड़ी २-१ : **बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाए। भाग बड़े घर बैठें आए ॥**
तथा दा० गौड़ी ३-३ : **बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाए। भाग बड़े घर बैठे आए॥**
२—तुल० दा० गौड़ी ६२-१० : **कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मांनां।**
तथा आसावरी ५४-१० : **कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मांनां।**
३—तुल० दा० आसावरी ४०-३, ४ (ग्रंथा० २४१-३, ४)—

जौ जारै तो होइ भसम तन रहत कृम ह्वै जाई।
कांचै कुंभ उदक भरि राख्यौ ताकी कौंन बड़ाई ॥

तथा केदारौ १६-३, ४ (ग्रंथा० ३११)—

जे जारै तौ होइ भसम तन रहित किरम जल खाई।
सूकर स्वांन काग कौ भखिन तामैं कहा भलाई ॥

रमैनियों के उदाहरण—

१—तुल० दा० सतपदी १-२-१ : **सत रज तम थैं कीन्हीं माया।**
आपण मंझै आप छिपाया ॥
तथा बड़ी अष्टपदी १-२-१ : **सत रज तम थैं कीन्हीं माया।**
चारि खानि बिस्तारि उपाया ॥
२—तुल० दा० सतपदी ४-४ : **जिन जांन्या ते निरमल अंगा।**
नहीं जांन्या ते भए भुजंगा ॥
तथा बारहपदी ५-५ : **जिन चीन्हां ते निरमल अंगा।**
जे अचीन्ह ते भए पतंगा ॥

३—इसी प्रकार तुल० सतपदी ७-४ तथा बड़ी अष्टपदी ८-१५; (४) सतपदी साखी ७ तथा बड़ी अष्टपदी ८; (५) बड़ी अष्टपदी ५-१ तथा ७-४; (६) बड़ी अष्टपदी ५-११, तथा दुपदी २-२६-१; (७) बड़ी अष्टपदी ५-१४ तथा दुपदी २-१४; (८) बड़ी अष्टपदी ५-१५-१ तथा दुपदी २-४८-१ तथा वही ५६-१।

नि० प्रति का विवरण

यह प्रति जयपुर के दादू-महाविद्यालय में है और कुछ समय के लिए हमें अध्ययन-कार्य के हेतु उधार मिल गयी थी। यह भी लगभग १३ इंच लम्बी और ७ इंच चौड़ी ३६९ पत्रों को मोटी पोथी है। इसमें प्रति पृष्ठ ३६ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति २६ अक्षर आये हैं। कबीर की वाणी इसके १६४ वें पत्रे से आरम्भ होकर २७० पत्रे तक मिलती है। सम्पूर्ण पुस्तक एक ही व्यक्ति द्वारा लिखी हुई है—केवल कहीं-कहीं क़लम बदल जाने से अक्षर कुछ मोटे-पतले हो गये हैं। पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री सरब पुस्तक संपूरण ॥ पुस्तक की बाणी आयी सवा सैतीस हजार ॥ ३७८०० ॥ निरगुण सरगुण सोधि के लिखी बस्तु ततसार ॥ समत ॥ १८६१ ॥ की मिती फागुण मासै कृष्ण पक्षे तिथ्यौ नाम एकादशी ॥ ११ ॥ बार मंगलवार के दिन लिषतं च ग्राम टेहरी मध्ये लिषतं च साध हरिरामदास स्वामी श्री श्री १०८ अमरदास जी को पोता शिष बावा जी श्री श्री १०८ दरसणदास जी को शिष हरिरामदास ॥"

इससे ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ संवत् १८६१ में अमरदास निरंजनी के प्रपौत्र शिष्य साधु हरिरामदास द्वारा टेहरी ग्राम में लिखा गया। इसमें कबीर के अतिरिक्त सेवादास, हरिदास, तुरसीदास आदि निरंजिनी संतों, नाथ-योगियों तथा रामानंद आदि अन्य संतों की वाणियाँ मिलती हैं। इस ग्रंथ में कबीर, नामदेव तथा गोरखनाथ के सटीक पद भी दिये गये हैं।

नि० प्रति में साखी, पद, रमैनी के अतिरिक्त कबीर के सात रेख़ते भी आते हैं। नि० में आने वाले आधे से अधिक साखी-पद दा० प्रतियों में मिलते हैं, किन्तु क्रम और संख्या में यह उनसे नितांत भिन्न हैं। 'ग्रन्थावली' की 'क' प्रति की ८०९ साखियों में से ८४ साखियाँ नि० में नहीं मिलतीं[1], शेष ७२५ साखियाँ मिल जाती हैं। 'ख' प्रति की अतिरिक्त साखियों में से, जो मुद्रित संस्करण में नीचे दी गयी हैं, ९२ साखियाँ मिलती हैं। इसके अतिरिक्त ५६९ साखियाँ नि० प्रति में ऐसी मिलती हैं जो न 'क' प्रति में हैं और न 'ख' में। इस प्रकार नि० में कुल मिला कर ७२५ + ९१ + ५६९ अर्थात् १३८५ साखियाँ हैं। पुष्पिका में दी हुई १३७६ संख्या अशुद्ध ज्ञात होती है।

पोथी में कबीर के पदों की संख्या ६६२ दी गयी है, किन्तु वास्तव में वह ६६१ ही है। 'ग्रन्थावली' की 'क' प्रति के ४०३ पदों में केवल २ (पद १४८ तथा ३६२) नि० में नहीं मिलते, शेष सब मिल जाते हैं। इनके अतिरिक्त २६० पद नि० में और हैं।

रमैनियों के लिए भी पुष्पिका में १३ संख्या दी हुई है, किन्तु वास्तविक संख्या १२ ही है; शीर्षक क्रमशः इस प्रकार हैं: १. सकल गहगरा, २. सतपदी, ३. बड़ी अष्टपदी, ४. दुपदी, ५. लहुरी अष्टपदी, ६. बारहपदी, ७. चौपदी, ८. बावनी, ९. दुपदी दूसरी, १०. अगाधबोध, ११. श्रीपा जोग, १२. सबद-भोग जोग। पहले आठ के नाम दा० में भी मिलते हैं, किन्तु शेष चार न दा०

---

१. ग्रंथा० १-१८, २२, ३४, २-४, १६, ३१५, ९९, ४१, ४५, ५-२, ६, ६-५, ११, ३, ६, १३, १५, ६, १२-४, १२, १४, १८, २१, २४, ३०, ४१, ४२, ४७, ६१, १३, ३, २०, २७, १५-२, १६-१०, २८-३१, १७-१२ २२, २०-१२, ३२, १३, १४४. २४-२४, २५-६, २६-६, २७-१, २८-११, २९-१०, १२, १६, २१ ३०-१०, २२-१, ३, ४, ३३-१, ३४, ३, १०, ३५-७, ३८-१२, ४१-२, ४२-३, ४५-११. ३६, ४६-५, १२, १५, २०, २३, २६, ३२, ४७-६, ७, ४८-४, ५२-५, ५४-३, ४, ५, ७, ९, ५५-७, ८, ५६-१, ६, ७, ५९-२३ कुल ८४ साखियाँ 'क' प्रति की ऐसी हैं जो नि० में नहीं मिलतीं।

में मिलते हैं और न किसी अन्य शाखा में।

निरंजनीपंथ की जितनी पोथियाँ मिली हैं सब के पाठ प्रायः समान हैं। विद्यालय की दूसरी प्रति पहली से अक्षरशः मिलती है, केवल सभा की प्रति में दो एक अन्तर हैं, जो नगण्य हैं। सभा की प्रति में राग बिहंगड़ौ का इक्कीसवाँ पद ठीक उस स्थान पर नहीं मिलता, कुछ आगे चल कर पत्रा १७६ की २४ वीं संख्या पर मिलता है। इसके अतिरिक्त उसमें ऊपर की नि० प्रति के सात पद नहीं हैं, शेष सब विशेषताएँ वही हैं।

अन्य विशेषताएँ

नि० द्वारा कबीर की वाणी का जो पाठ प्रस्तुत होता है उसकी अन्य विशेषताएँ दा० के समान ही हैं। इसमें भी राजस्थानी तथा पंजाबी के प्रभाव और लिपि-संबंधी विकृतियाँ तथा पुनरावृत्तियाँ मिलती हैं। नीचे क्रमशः इनके उदाहरण दिये जा रहे हैं।

राजस्थानी-प्रभाव—दा० के प्रसंग में राजस्थानी प्रभाव के जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे सब प्रायः नि० में भी मिलते हैं। नीचे कुछ ऐसे प्रयोगों का स्थल-निर्देश किया जा रहा है जो नि० में स्वतंत्र रूप से मिलते हैं—

१—नि० १६-६३-२ : एक **दिहाड़े** सोइवौ [तुल० दा० २-११-२ : एक दिनां है सोवनां, तथा गु० १२८-२ : एक दिन सोवन होइगो]।

२—नि० ५-९-२ : यहु तन **जासी** छूट [तुल० दा० २-२५-२ : यहु तन जैहै छूट, तथा गु० ४१-२ : प्रान जाहिगे छूट)।

३—नि० ७-२४-२ : इक दिन रांम **पधारिसी** [तुल० साखी० १४-३९-२ : आयेंगे]।

४—नि० ५१-२४-२ : इस फल को सोई भखै, **जीवतड़ा** मरि जाइ [तुल० साखी० ४२-२०-२ : जो जीवत मरि जाइ]।

५—नि० ४०-१८-२ : क्यूं हमहीं **तणां** बसेख ['तणां' राजस्थानी प्रत्यय= हिं० का, को]।

६—नि० ५०-१७-२ : मारणहारा **जांणिसी** [तुल० दा० ४४-११५-२ : बाहन-हारा जांनिहै]।

७—नि० १-३६-१ : जो दीसै सो **बिनससी** [तुल० सा० १-६५ : बिनसिहै]।

८—नि० २१-१४-१ : पर नारी के राचणैं, अवगुण **छै** गुण नांहि [तुल० दा० २०-५ : औगुन है गुन नांहि; राज० 'छै'=हिन्दी 'है']।

कबीर-वाणी की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, राजस्थानी-प्रभाव नि० में सब से अधिक है।

पंजाबी-प्रभाव—नि० में पंजाबी के वे सभी उदाहरण मिलते हैं जो ऊपर दा० प्रतियों के विवरण में दिये गये हैं। उनके अतिरिक्त भी एकाध स्थल ऐसे मिलते हैं जिनमें पंजाबी-प्रभाव परिलक्षित होता है; यथा—

१—नि० साखी७-२४-१ : बिचार **बमेक** [तुल० सासी० १४-३६ : बिबेक]।

२—नि० गौड़ी १३६ में सभी पंक्तियों के अंत में 'बे' शब्द मिलता है। यह पद बी० शब्द ६१ तथा शबे० (१) चिता० उप० ३८ के रूप में भी मिलता है। बी० में 'बे' के स्थान पर कुछ नहीं मिलता, शबे० में 'हो' मिलता है जो कबीर की भाषा के लिए अधिक स्वाभाविक है। नि० प्रति का 'बे' पाठ स्पष्ट रूप से पंजाबी-प्रभाव के कारण आया हुआ ज्ञात होता है।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१—नि० ४४-३४-१ का पाठ है : कबीर हरिणी दूबली, इस हरिआरै **माल**। दा३ ४४-३३, बी० १८, तथा गु० ५३ में 'माल' के स्थान पर 'ताल' पाठ मिलता है और उक्त प्रसंग में दूसरा पाठ ही अधिक उपयुक्त लगता है। नि० में यह पाठ कैसे आया, इसकी संभावनाओं पर विचार करते हुए अनुमान होता है कि यह विकृति कदाचित् फ़ारसी लिपि के कारण हुई है। पहले किसी उर्दू प्रति में 'ताल' पाठ रहा होगा। आगे चल कर उर्दू 'ते' के दोनों नुक़्ते उसके शोशे में मिल जाने से किसी प्रतिलिपिकार ने उसे 'माल' पढ़ लिया होगा और फिर वही पाठ चलने लगा।

२—नि० ३३-११ : **तांबा** फिरि **कांसी** भया, राम जी भया रहीम। मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥ दा० ३१-१०, सा० ६३-१४, सासी० ३७-८ में इसकी प्रथम पंक्ति का पाठ है : 'काबा फिरि कासी भया, राम जु भया रहीम।' राम-रहीम के प्रसंग में काबा-काशी का अभेद प्रसंग-सम्मत लगता है। 'तांबा' और कांसी के एक होने में कोई विशेष तुक नहीं दिखाई देता, क्योंकि तांबा अगर कांसी हो जाय तो इससे न हिन्दुओं का कुछ बनता-बिगड़ता है और न मुसलमानों का। इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी उठ सकता है कि केवल नि० प्रति में यह पाठ क्यों आ गये? 'काबा' का 'तांबा' होना उर्दू लिपि में ही सम्भव हो सकता है। 'काबा' का 'तांबा' (धातु) हो जाने पर विषमता दूर करने की दृष्टि से 'काशी' का भी 'कांसी' कर लिया गया—ऐसा ज्ञात होता है।

३—नि० १७-३०-२ : कोई इक **औकर** मन बसा, दह मैं पड़ी बहोरि। दा० १३-२४ में 'औकर' के स्थान पर 'अक्खिर' पाठ मिलता है। 'औकर' पाठ उक्त प्रसंग में निरर्थक ज्ञात होता है और फ़ारसी लिपि में लिखे हुए 'अक्खिर' या 'आखर' का विकृत रूप ज्ञात होता है। उर्दू में अलिफ़, काफ़, हे, रे मिलाकर 'अक्खिर' या 'आखर' लिखा जाता है। यह ध्यान देने की बात है कि यदि 'हे' के नीचे लगाया हुआ शोशा, जो घसीट में लिखने पर 'वाव' की तरह भी लग सकता है, तनिक भी दाहिने खिसक जाय तो 'आखर' को सरलता से 'औकर' पढ़ा जा सकता है। नि० की इस पाठ-विकृति का यही समाधान उचित प्रतीत होता है।

४—नि० २३-१५ : काला मुंह करि करद का, दिल तें **दूरि** निवारि। सब सूरत सुबिहान की, **अहमुख** मुला न मारि॥ साबे० ७७-११ तथा सासी० ७०-३० में 'दूरि' के स्थान पर 'दुई' तथा 'अहमुख' के स्थान पर 'अहमक' पाठ मिलते हैं। नि० में उक्त दोनों विकृतियाँ उर्दू लिपि के माध्यम से ही आयी हुई ज्ञात होती हैं। स्थल-संकोच के कारण कुछ अन्य उदाहरणों का निर्देश मात्र किया जा रहा है, जो निम्नलिखित हैं—

५—नि० ३-२४ : हरि सुमिरन हाजिर **खड़ा**, लेहु बुझाइ बुझाइ। [तुल० दा० २-३२, सा० ३०-९८, सासी० १३-११३ : हरि सुमिरण हाथौं घड़ा]।

६—नि० २३-१२, १ : **इंडा** किन बिसमिल किया [तुल० सा० ९०-२० सासी० ७३-२१ : अंडा। किन्तु यह विकृति पश्चिमी उच्चारण के प्रभाव स्वरूप भी मानी जा सकती है]।

७—नि० गौड़ी १५६-५ : एकहिं गाल **तिवार्वाहंगे** [तुल० दा० गौड़ी १५० : एकहिं घालि तवावहिंगे]।

८—नि० आसावरी ५२-६ : बांभन ग्यारसि करै चौबीसौ काजी **मिहर-सुदाना**। [तुल० दा० आसावरी ५८ : काजी महरम जाना, गु० विभास प्रभाती २ : काजी महरम जाना, बी० ९७, बी० ५२ : रोजा मूसलमाना]।

९. नि० गौड़ी १४८-२ : कौन **चित्र** ऐसा चित्रणहारा [तुल० दा० गौड़ी १४१ : चतुर]।

१०—नि० मारू १-२ : पेट भरौ पसुवा ज्यूं सूत्यौ **मिनख** जनम इन हारचौ। [तुल० गु० मारू १० : मनुख ; किंतु पश्चिमी उच्चारण के प्रभाव से भी संभव।]

११—नि० बिहंगड़ौ ९-५, ७ : एरंड रूख करै मलियागर चहुं दिसि **फूलै**

बासा। **पिंगो** मेर सुमेर उलंघै अंधरा देख तमासा ॥ [तुल० बी० २३ तथा शबे० (२) सतगुरु० २० : फूटै, पंगा]।

१२—नि० सारंग ७-८ : कहै कबीर सोई गुरु मेरा घर की रार **नबेड़ै**। [तुल० बी० ३-६ : निबेरै]।

१३—नि० आसावरी ६५-५ : धरणि **दुसणि** नहिं धारी [तुल० 'दसन'=दाँत]

१४—नि० ८०-५ : कहै कबीर फिरि **जूनि** न आवै [तुल० स० : जोनि]।

१५—नि० केदारौ २१-४ : मोहिं तोहिं आदि अंति बनि आई। जैसे **सिलता** सिंधु समाई ॥ [तुल० शबे० (१) विरह-प्रेम ३४-५ : सलिता]

१६—नि० सोरठि ५७-८ : कूरम **किला** पछांणि कै बिचरै निज दासा। [तुल० शबे० (३) साधु० ४-८ : कला]।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—नि० में नागरी लिपि की विकृतियों के केवल दो उदाहरण मिल सके हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१—नि० आसावरी ५१-७ : असमांन **ग्यांनैं** लहंग दरिया तहां गुसल करदा बूद। [तुल० दा० आसावरी ५७-७, गु० तिलंग १-८ : म्यांनैं=मध्य]।

२—नि० भैरूं ४६-७ : घाटी चढ़त बैल इक थाको गयो **रांनि** छिटकाई। [तुल० गु० गौड़ी ४९-८ : गोनि। 'गोनि' या 'गूनि' टाट के उस थैले या खुरजी को कहते हैं जिसमें सौदा भर कर व्यापारी लोग बैल या घोड़े की पीठ पर लाद देते हैं और वह दोनों ओर लटकती रहती है। नि० का 'रांनि' जिसकी व्युत्पत्ति अस्पष्ट है, 'गूनि' का ही विकृत रूप ज्ञात होता है। हिन्दी में 'गूनि' के ऊकार की मात्रा यदि 'ग' के पूर्वार्द्ध से मिल जाय तो 'गूनि' को 'रानि' पढ़ लिया जा सकता है। नि० की इस विकृति का कदाचित् यही कारण है।

पुनरावृत्तियाँ—नि० में भी दा० के समान कुछ पंक्तियाँ एक से अधिक स्थलों पर मिलती हैं, किंतु उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। नीचे उनका निर्देश किया जा रहा है—

१—तुल० नि० १७-२३ तथा ५०-१०३ : **काया कजली बन है, मन कुंजर मैंमंत।**
खेवट ग्यांन रतन है, कोई समझै साधू संत ॥

२—नि० २०-४४ : **कबीर जो दिन आजि है, सो दिन नांहीं कालि।**
खेत कबीरा चुणि गया, पंडित ढूंढ़ै बालि ॥

ल० नि० ४४-६१ : **कबीर जो दिन आजि है, सो दिन नांहीं कालि।**
चेति सकै तो चेतिए, मीच पड़ी है ख्यालि ॥

दोनों की पहली पंक्तियाँ समान हैं।

३—तुल० नि० २३-१६ : **जोरी करि जिबहै करैं, कहते हैं ज हलाल।**
साहब लेखा मांगिसी, तब होसी कवन हवाल।

तथा नि० २३-१९ : **गला काटै कालमां भरै, कीया कहै हलाल।**
साहब लेखा मागिसी, तब होसी कौंन हवाल ॥

दा० के प्रसंग में पुनरावृत्तियों के जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें से प्रथम चार को छोड़ कर शेष सब नि० में भी मिल जाते हैं। रमैनियों में जो पुनरावृत्तियाँ दा० में हैं वे नि० में भी शब्दशः उसी प्रकार मिलती हैं।

गु० का विवरण

'श्री गुरु ग्रन्थ साहब', जो सिक्खों का धर्मग्रंथ है, समूचे संत-साहित्य का एक विशाल संग्रह-ग्रंथ है। इसकी मूल प्रति का संकलन सिक्खों के पाँचवें गुरु श्री अर्जुन देव ने अपने निरीक्षण में कराया था। सिक्खों के एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ 'सूरज-प्रकाश' के अनुसार संवत् १६६१ वि० (सन् १६०४ ई०) के भादों महीने में शुक्ल पक्ष की पहली तिथि को 'ग्रंथ साहब' पूर्ण हुआ और अर्जुन देव ने उस पर 'मुदावनी' लिखी। इसकी आधारभूत प्रतियों या मौखिक परंपराओं के संबंध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें यहाँ उद्धृत करने से कोई लाभ नहीं होगा।

'ग्रन्थ साहब' का सिक्खों में अत्यधिक सम्मान है। दसवें गुरु गोविन्द सिंह जी जब मरने लगे तो उन्होंने उस की ओर लक्ष्य कर अपने अनुयायियों से कहा था कि "सिक्खो, मेरे बाद अब तुम्हारा कोई शरीरधारी गुरु नहीं होगा, 'ग्रन्थ साहब' को ही अपना गुरु समझना। उसकी शिक्षाओं पर चलना और उसके सम्मान की रक्षा करना।" तब से उसकी एक-एक मात्रा को गुरुमन्त्र समझ कर सिक्ख लोग उसका पठन-पूजन करते हैं। उनका विश्वास है कि 'ग्रंथ साहब' में उनके दसों गुरुओं की वाणियों के साथ उनकी आत्माएँ भी निवास करती हैं। यही कारण है कि पहले 'ग्रंथ साहब' छापा नहीं जाता था और जब छापा गया तो उसकी शुद्धता की पूरी सावधानी रक्खी गयी।

'ग्रन्थ साहब' के प्रकाशित संस्करण—सब से पहले भाई मोहन सिंह वैद्य ने तरनतारन प्रेस, अमृतसर से गुरुमुखी में 'आदि श्री गुरुग्रंथ साहब जी' का एक संस्करण प्रकाशित किया। आगे चल कर हिन्दी का विशेष प्रचार होते देख उन्होंने गुरुमुखी बीड़ को ज्यों का त्यों नागरी में भी छपवाया। सर्व-हिन्द-सिक्ख-मिशन (अमृतसर) ने भी एक हिंदी संस्करण सन् १९३७ में प्रकाशित किया।

इनके अतिरिक्त खालसा प्रेस तथा शिरोमणि गुरुद्वारा, अमृतसर के संस्करण भी हैं। जैसा पहले निर्देश किया गया है, प्रस्तुत पुस्तक में पाठ-मिलान सिक्ख-मिशन संस्करण पर ही आधारित है। इसमें तरनतारन-संस्करण की तरह सभी शब्द सरपट नहीं, प्रत्युत विच्छेद सहित छापे गये हैं। शब्दों का विच्छेद करने में यद्यपि सावधानी बहुत रक्खी गयी है, किन्तु यत्र-तत्र भूलें रह गयी हैं।

धार्मिक भावना के कारण एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि 'श्री गुरुग्रंथ साहब' का प्रकाशित संस्करण, जो आज हमारे सामने है, निरापद रूप से सं० १६६१ की मूल प्रति का प्रतिरूप माना जा सकता है। उसकी एक मात्रा में भी अन्तर नहीं आने पाया है। अन्य प्राचीन प्रतियों की भाँति वह किसी सम्पादक या लिपि-कर्त्ता द्वारा न तो शोधा गया है और न परिवर्तित-परिवर्धित किया गया है; यहाँ तक कि 'चलइीआ', 'मानीअहि', 'स्री गुोपाल', 'पीओइीऔ' आदि अनेक रूप जो आज-कल बड़े अटपटे लगते हैं, ज्यों के त्यों अब भी छापे जाते हैं।

'ग्रंथ साहब' में प्रमुखता सिक्ख-गुरुओं की वाणियों को दी गयी है, किन्तु साथ ही अन्य संतों की वाणियाँ भी संकलित हैं। इनमें सर्वप्रमुख स्थान कबीर को दिया गया है। कबीर की जो रचनाएँ 'गुरु ग्रंथ साहब' में मिलती हैं, उनका ब्यौरा ग्रंथ के अनुसार निम्नलिखित है—

पद :	१. रागु सिरी	पद संख्या २	२. गउड़ी	पद संख्या ७७
	३. आसा	" " ३७	४. गूजरी	" " २
	५. सौरठि	" " ११	६. धनासरी	" " ५
	७. तिलंग	" " १	८. सूही	" " ५
	९. बिलावल	" " १२	१०. गौंड	" " ११
	११. रामकली	" " १२	१२. मारू	" " ११
	१३. केदारा	" " ६	१४. भैरउ	" " २०
	१५. बसंतु	" " ८	१६. सारंग	" " ३
	१७. बिभास प्रभाती	" " ५	(कुल २२८ पद)	

सलोक (=साखियाँ) कुल २४३।

किन्तु कबीर के प्रकरण में दिये हुए २४३ सलोकों में कुछ ऐसे हैं जिनमें स्पष्ट रूप से दूसरे सन्तों के नाम मिलते हैं। सलोक सं० २१२, २१३ तथा २४१ में नामदेव का नाम आया है, २२० में नानक का (महला ३ अर्थात् गुरु अमरदास जी का[२]) और २४२ में रैदास का नाम आया है। इनके अतिरिक्त

२. दे० श्री गुरुग्रंथ साहब, मिशन संस्करण, पृ० १३७६।

सलोक सं० २०६, २१०, २११, २१४ तथा २२१ में महला ५ का निर्देश है जिससे ज्ञात होता है कि वे गुरु अर्जुन देव द्वारा रचित हैं[३]। सलोक २३५ तथा २३६ को भी मैकॉलिफ़[४] ने गुरु अर्जुनदेवकृत बताया है। यदि इन १२ सलोकों को पहली संख्या में से निकाल दिया जाय, तो 'गुरु ग्रंथ साहब' में कबीर के सलोकों की संख्या २३१ ही रह जाती है। पदों में गउड़ी १४ के आरंभ में महला ५ (गुरु अर्जुनदेव) का निर्देश है[५]।

पाठ-संबंधी प्रमुख विशेषताएँ

फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—गु० प्रति में मिलने वाली पाठ-विकृतियों में अधिकांश फ़ारसी-लिपि-जनित हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१—गु० आसा २४ में पहली पंक्ति का पाठ है: **तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ** पाचउ तत बराती।

दा० नि० गौड़ी १-३ तथा शबे० (१) विरह-प्रेम ७-३ में इस पंक्ति का पाठ है: तन रत करि मैं मन रत करिहौं पंचू तत्त बराती। गु० के पाठ से कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'रैनी' का तात्पर्य 'सुगन्धित रेणु से सज्जित' मान कर इस पंक्ति का अर्थ किया है: "तन और मन को बारंबार सुगंधित पराग कणों में परिवर्तित कर मैं पाँचों तत्वों को बराती बनाऊँगी।"[६] यह अर्थ संतोषजनक नहीं लगता, किन्तु 'गुरु ग्रंथ साहब' का पाठ अक्षरशः प्रामाणिक मान लेने पर टीकाकार के सामने अन्य कोई विकल्प था भी नहीं। समस्त संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ऐसी विकृति फ़ारसी लिपि में ही अधिक संभव है। 'मैं मन रत करिहौं' यदि उर्दू में लिखा जायगा तो मीम, ये, ज़ेर, नूं (=मैं) और मीम नूं रे, ते, ज़बर (=मन रत), काफ़, रे, ज़ेर, हे, नूं, ज़बर (=करिहौं) अक्षर जोड़े जायँगे। 'करिहौं' सभी प्रतियों में समान रूप से मिलता है। उर्दू 'मैं' में यदि नीचे 'ये' के दो नुक़्ते और ज़ेर न लगाये जायँ तो 'मन' हो जायगा और इसी प्रकार 'मन रत' का उर्दू में 'पुनरपि' होना भी असम्भव नहीं। 'रत करि' या 'रत कै' (रे, ते, काफ़, ये) को एक में मिला कर घसीट लिखने से 'रैनी' हुआ ज्ञात होता है, क्योंकि उर्दू घसीट में 'काफ़' के ऊपर की लकीर अलग होकर प्रायः ज़बर के रूप में हो जाती है, या कम होते-होते बिल्कुल नुक़्ता-जैसी रह जाती है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि 'गुरु ग्रंथ साहब' में कबीर की वाणी जिस आदर्श से ली गयी या तो वह या

३. वही, पृ० १३७५-७६। ४. सिक्ख रिलिजन, भाग ५, पृ० ३१५। ५. गुरु ग्रंथ साहब, पृ० ३२६। ६. संत कबीर, परिशिष्ट, पृ० ३८।

उसका कोई पूर्वज फ़ारसी लिपि में था जिससे गु० में भी इस विकृति का समावेश हो गया।

२—गु० आसा १५ में पंक्ति ३, ४, ५ तथा ६ का पाठ है—

मेरी मेरी करते जनमु गइओ। साइर सोखि भुजं बलइओ॥
सूके सरवरि पालि बंधावै लूंणै खेति **हथवारि** करै।
आइओ चोर **तुरंतह** लै गइओ मेरी राखत मुगधु फिरै॥ २॥
चरन सीस कर कंपन लागे **नैनी** नीरु **असार** बहै।

दा० आसावरी ४२ (ग्रंथा० २४३), नि० आसावरी ३७ तथा स० में 'हथ' के स्थान पर 'हठि', 'बारि' के स्थान पर 'बाड़ि', 'तुरंतह' के स्थान पर 'तुरंगम' तथा 'असार' के स्थान पर 'असराल' पाठ मिलते हैं। पहले उर्दू में 'ते' के ऊपर एक पड़ी लकीर खींच कर 'टे' बनाते थे। यदि वह लकीर भूल से छूट जाती थी तो 'ठ' का सरलता से 'थ' हो जाता था। उर्दू 'रे' तथा 'ड़े' में भी कोई विशेष अंतर नहीं रहता। गु० का यह विकृत तथा निरर्थक पाठ (क्योंकि 'हथवारि' का यहाँ कोई प्रसंग-सम्मत अर्थ नहीं ज्ञात होता) मूलतः उर्दू में ही लिखे जाने के कारण आया हुआ ज्ञात होता है। इसी प्रकार गु० के 'तुरंतह' तथा 'असार' भी 'तुरंगम' अथवा 'तुरंगहि' (='घोड़ा' या 'घोड़े को') तथा 'असराल' (=निरंतर) के विकृत रूप ज्ञात होते हैं और इन विकृतियों की भी संभावना अधिकांशतः फ़ारसी लिपि के ही कारण ज्ञात होती है। दा० नि० स० द्वारा प्रस्तुत पाठ के अनुसार उक्त पंक्तियों का अर्थ होगा : "सूखे तालाब की तू पाली[७] बँधाता है और फ़सल कट जाने पर खेत को जबर्दस्ती रूँधता है। घोड़ा तो चोर चुरा ले गया और तू, मूर्ख! उसकी मोहड़ी रखाता फिरता है!!"

यद्यपि प्राप्त पाठांतरों से स्पष्ट सिद्ध नहीं होता, किन्तु मेरा अनुमान है कि ऊपर उद्धृत अंश में 'भुजं बलइओ' पाठ 'भुजंग लइओ' का विकृत रूप है और उर्दू 'गाफ़' को भ्रम से 'बे' पढ़ लेने के कारण हुआ ज्ञात होता है (गाफ़ के ऊपर की लकीरों की अव्यवस्था के अनेक उदाहरण 'पदमावत' की प्रतियों में भी मिलते हैं)।

३—गु० गउड़ी ५७-१ : कालबूत की हसतनी मन बउरा रे **चलतु** रचिओ जगदीस। बी० चांचर २ में 'चलतु' के स्थान पर 'चित्र' पाठ मिलता है। यहाँ बी० का पाठ ही मूल प्रति का ज्ञात होता है। गु० की इस

७. पालि—सं० पालि (= तालाब की बंधी या ऊँचा कगार); तुल० जायसी, पदमावत ६८-६ : पालि जाइ सब ठाढ़ी भईं। तथा ६७-५ : टूटि पालि सरवर बहि लागे।

विकृति के कारण उसके टीकाकार के सामने कितनी कठिनाई उपस्थित हुई है इसका अनुमान निम्नलिखित उदाहरण से लगाया जा सकता है। इस पंक्ति पर डॉ० वर्मा की टीका है: "कच्चे भराव की तरह यह पागल मन ऐसी हस्तिनि है जिसने **अपनी गति में (?) ईश्वर की रचना कर डाली है।"** फिर मानों इस अर्थ से असन्तुष्ट होकर उन्होंने आगे कोष्ठक में इतना और जोड़ दिया : "अथवा हे पागल मन, कच्चे भराव की तरह यह शरीर की हस्तिनि ऐसी है जिसने अपनी **बुद्धि के विकास में** स्वयं ईश्वर की सृष्टि कर डाली है।"[८] बीजक के पाठ से यह कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं और इतनी कष्टकल्पना की आवश्वकता नहीं रह जाती। उसके अनुसार इस पंक्ति का सीधा अर्थ होगा : बावरे मन, ईश्वर ने (इस मायिक जगत का) जो चित्र उरेह रक्खा है वह कालबूत की हस्तिनी के समान है (जिस पर मुग्ध होकर अनेक कामान्ध हाथी स्वयं फँस जाते हैं)। जंगल में शिकारी लोग गड्ढा खोद कर हथिनी का पुतला खड़ा कर देते हैं। हाथी स्वभाव से ही कामुक होने के कारण गड्ढे में आकर फँस जाते हैं। मायाग्रस्त लोगों का वर्णन करने के लिए कबीर ने इसी रूपक का आश्रय लिया है। गु० की इस विकृति की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि संभवत: यह भी फ़ारसी लिपि के कारण ही आयी है। उर्दू में चित्र चे, ते, रे मिला कर लिखा जाता है। 'ते' का शोशा अगर कुछ ऊपर उठ जाय और उसके दोनों नुक़्ते कुछ और बाँई ओर को खिसक जायँ तो वह मिलावट वाले 'लाम' की तरह हो सकता है और 'रे' के पेट पर दोनों नुक़्तों के आ जाने पर उसकी शक्ल 'ते' की सी लग सकती है।

४—गु० आसा १६ की अंतिम पंक्ति में **'चिरगट** फारि चटारा लै गइओ' पाठ मिलता है। 'चिरगट' वस्तुत: अवधी अथवा भोजपुरी 'चिरकुट' (=जीर्ण शीर्ण वस्त्र) का विकृत रूप है जो उर्दू में ही सम्भव हो सकता है।

इसी प्रकार के कई अन्य स्थल भी मिलते हैं जिनका निर्देश नीचे तुलनात्मक रूप में किया जा रहा है। किस प्रकार गु० का पाठ विकृत और अन्य पाठ मूल का है, यह लिपि और प्रसंग की संभावनाओं पर ध्यान देने से स्वत: स्पष्ट हो जायगा।

(क) उर्दू 'काफ़', 'गाफ़' के सादृश्य से उत्पन्न विकृतियाँ—

५—गु० बावनअखरी ११-२ : लिखि **अरु** मेटै ताहि न माना।

---

८. संत कबीर, परिशिष्ट, पृ० १७।

तुल० दा० नि० बावनी ७-२ : लिखि करि मेटै ताहि न माना।

६—गु० गउड़ी ५४-१, २ : गज नव गज दस गज **इकीस** पुरीआ एक तनाई।
साठ सूत नव **खंड** बहतरि पाटु लगो अधिकाई॥

तुल० दा० रांमकली ४१-२, ३, नि० रांमकली ४०-२, ३ तथा बी० १५-२, ३ : गज नव गज दस गज उगनीसा (बी० उनइस की) पुरिया एक तनाई।
सात सूत नव गंड बहत्तरि पाट लागु अधिकाई॥

७—गु० बसंत २-४ : हणवंतु जागै धरि **लकूरु**।

तुल० दा० बसंत ११-४, नि० बसंत १०-६ : हनवंत जागै लै लंगूर।

८—गु० गउड़ी ८-१ : **अंधकार** सुखि कबहिं न सोईहै।

तुल० दा० गौड़ी १३१-४, नि० गौड़ी १३-४ : कंधि काल सुख कोई न सोवै।

९—गु० सोरठि १-३ : राम बिन संसार अंध **गहेरा**।

तुल० दा० केदारौ १८-१, नि० केदारौ १९-१ : रांम बिनां संसार धुंध कुहेरा।

(ख) उर्दू 'ज़बर', 'ज़ेर', 'पेश' की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न विकृतियाँ—

१०—गु० बावनअखरी १० : मन समझावन कारनै **कछुअक** पड़ीऐ गिआन।

तुल० दा० नि० बावनी ४ : कछु इक पढ़िऐ ग्यांन।

११—गु० गउड़ी २५-३ : **मुचु मुचु** गरभ गए कीन बचिआ।

तुल० दा० गौड़ी १२५-२, नि० गौड़ी १२८-२ (ग्रन्थावली १२५) : गरभ मुचे मुचि भई किन बांझ।

[संस्कृत में 'मुच्' धातु का प्रयोग त्याग के अर्थ में होता है। गु० में इस पंक्ति का पाठ विकृत है, क्योंकि उससे अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इसके विपरीत दा० नि० स० का पाठ भ्रांति-हीन है, जिसके अनुसार इस पंक्ति का अर्थ होगा : 'वह (जो राम का भक्त नहीं है उसकी माता) गर्भ त्याग कर बाँझ क्यों नहीं हो गयी ?' अर्थात् दुष्ट पुत्र पैदा करने की अपेक्षा उसका बाँझ रह जाना ही अधिक श्रेयस्कर था।]

१२—गु० केदारा ६-४ : मरघट लगि सब लोग कुटंबु मिलि हंसु **इकेला** जाइ।

तुल० दा० केदारा १६, नि० केदारा १७, शबे० (२) चितावनी ५ तथा स० : मरहट लौं सब लोग कुटुंबी हंस अकेलौ जाइ। [किंतु यह विकृति पंजाबी उच्चारण के प्रभाव से भी मानी जा सकती है।]

१३—गु० सलोक २५-२ : भावै **घररि** मुड़ाइ।

तुल० दा० २४-११, नि० २३-५ : भावै घुरड़ि मुड़ाइ।

१४—गु० सलोक १७३-१ : कबीर संसा दूरि करु, कागद **देह बिहाइ**।

तुल० दा० १६-२, नि० २४-२०, सा० ४०-३७ साबे०, सासी० ५८-८ :
कबीर पढ़िबा दूरि करु, पुस्तक देहु बहाइ ।

१५—गु० सलोक १-१ तथा १६०-२ : **सिमरनी** तथा **सिमरै** ।
तुल० सा० ११५-१, सासी० १३-११४ : सुमिरनी; तथा दा० ३-६ : सुमिरै ।

[किंतु गु० में नानक आदि की वाणियों में भी 'सुमिरना' के लिए सर्वत्र 'सिमरना' रूप ही प्रयुक्त हुआ है, अतः इसे पंजाबी उच्चारण का प्रभाव भी माना जा सकता है ।]

१६—गु० सलोक ८१-१ : सात समुंदहि **मसु** करउ ।
तुल० दा० ३८-५, सा० ७२-२१ : सात संमद की मसि करौं ।

[इस विकृति का समाधान अन्यथा भी हो सकता है; क्योंकि गु० में अन्य अनेक स्थलों पर स्याही के अर्थ में 'मसु' या 'मंसु' शब्द का ही प्रयोग हुआ है ।]

१७—गु० सलोक ११७-२ : जइहै आटा लोन जिउ, **सोनि** समान सरीरु ।
तुल० दा० १२-४८, नि० २१-५३ : सोन सवांन सरीर ।

(ग) उर्दू 'ये' की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न विकृतियाँ—

उर्दू में 'ऐ' की ध्वनि के लिए कविता में प्रायः छोटी 'ये' लिख कर ऊपर ज़बर का चिह्न लगा देते हैं जो भ्रम से कभी-कभी 'ई' पढ़ लिया जाता है । गु० में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो फ़ारसी लिपि की इस अव्यवस्था के कारण हुए ज्ञात होते हैं ; जैसे—

१८—गु० गउड़ी १०-२ : ना जाना बैकुंठ कहा**ही** । जानु जानु सभ कहहि तहा**ही** ।। तुल० दा० गौड़ी २४-१ चलन चलन सब कोई कहत है । नां जानौं बैकुंठ कहां है ।

१६—गु० भैरउ ६-४ : जब लगु कालि **ग्रसी** नहिं काइआ । तुल० दा० भैरूं २४-४ तब लगि काल ग्रसै नहिं काया ।

२०—गु० सलोक २३०-२ : पंखी चले **दिसावरी** बिरखा सुफल फलंत । तुल० दा० ४७-७ : दिसावरै ।

(घ) अन्य वर्णों के साम्य के कारण उत्पन्न विकृतियाँ—

२१. गु० सलोक ८८-२ : उह भूलै उह चीरीऐ साकत संगु **न हेरि** ।
तुल० दा० २५-४-२, सा० ५६-८-२ : वो हालै वो चीरिऐ, साखित संग नबेरि । तथा बी० २४२-२ : वो हालै वो चीघरै, बिधना संग निबेरि ।

(उर्दू 'बे' के नीचे वाले नुक़्ते और बड़ी 'हे' के नीचे लगने वाले शोशे के सादृश्य के कारण ।)

२२—गु० सलोक ७०-२ : काइआ हांडी काठ की, ना ओहु **चरहै** बहोरि ।

तुल० दा० १२-३१-२, नि० १६-३५-२, सा० ३०-५१-२, सासी० १३-२३-२ : काया हांडी काठ की, नां वो चढ़ै बहोरि ।

(उर्दू 'रे' तथा 'ड़े' में रूप-सादृश्य के कारण)

२३—गु० सलोक १२४-१ : अंबर घनहरु छाइआ, बरखि भरे **सर ताल** ।

तुल० दा० ३-२-१, सा० १६-२-१ : सासी० १६-२-१ : गरजि भरे सब ताल । (उर्दू 'बे' के नीचे की बिंदी छूट जाने पर 'रे' के समान हो जाने के कारण । अन्यथा 'सर' और 'ताल' समानार्थी होने से पुनरुक्ति-दोष का भय है ।)

२४—गु० गउड़ी २५-३ : मुचु मुचु गरभ गए किन **बचिआ** ।

तुल० दा० गौड़ी १२५-२ तथा नि० गौड़ी १२८-२ : गरभ मुचे मुचि भई किन बांझ ।

२५—गु० आसा ५-२ : **लुंजित** मुंजित मौनि जटाधर ।

तुल० दा० आसावरी ४७-७ (ग्रंथा २४८), नि० आसावरी ४२-७ : लुंचित मुंडित मोनि जटाधर (सं० लुञ्चन=नोचना) ।

२६-गु० सलोक २२४-१ : काइआ कजली बन भइआ, मनु **कुंचरु** महमंतु ।

तथा पद गोंड ४-६ : बांधि पोटि **कुंचरु** कउ दीना ।

तुल० नि० १७-३३-१, ५०-१०३, सा० ३१-४२ तथा सासी० २६-७३ : काया कजरी बन है, तामैं मन कुंजर महमंत । तथा दा० नि० बिलावल ४ (ग्रन्था० ३३५) : बांधि पोट कुंजर कूं दीन्हां ।

[ऊपर की तीनों विकृतियाँ उर्दू 'जीम' तथा 'चे' के सादृश्य के कारण हुई ज्ञात होती हैं, किन्तु 'कुंचरु' रूप नानक आदि की वाणियों में भी मिलता है, अतः बहुत संभव है कि गु० में तत्कालीन पंजाबी-प्रभाव के कारण कबीर आदि की वाणियों में भी यही रूप प्रचलित हो गया हो ।]

२७—गु० भैरउ ४-३ : **मिसमिल** तामसु भरमु कदूरी ।

तुल० दा० गौड़ी ६१-४, नि० गौड़ी ६४-४ : बिसमिल ।

२८—गु० सलोक १६६-१ : दुनीआ के **दोखे** मूआ ।

तुल० दा० १२४-६, नि० १६-५४, सासी० १७-८६ : दुनिया के धोखे मुवा ।

२६—गु० मारू ६ का अंतिम सलोक : सूरा सो पहिचानीऐ, जु लरै **दीन** के हेत ।

तुल० दा० ४५-६, नि० ५०-१ : सूरा तबही परखिए, लड़ै धनीं के हेत। (धनी=मालिक, संरक्षक)।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—गु० में भी दा० नि० के समान नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ उर्दू की अपेक्षा बहुत कम मिलती हैं। सब मिला कर केवल दो विकृतियाँ मिली हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१—गु० गउड़ी ३६-४ का पाठ है : "सनकादिक नारद मुनि सेखा। तिन **भी तन** महि मनु नही पेखा॥ दा० गौड़ी ३३, नि० गौड़ी ३७ तथा स० में इसका पाठ है : ध्रू प्रहिलाद बिभीखन सेखा। तन भीतरि मन उनहुं न पेखा। बी० शब्द ६२ में भी "तनके भीतर मन उनहुं न पेखा।" पाठ मिलता है। यद्यपि गु० के पाठ से भी अर्थ वही निकलता है जो अन्य प्रतियों के पाठ से, किन्तु केवल गु० में ही ऐसा पाठान्तर मिलने से उसकी स्थिति विचारणीय हो जाती है। कैथी या पुरानी नागरी में 'र' प्रायः 'न' की तरह ही लिखा जाता था, अंतर केवल यह रहता था कि 'न' की बेड़ी लकीर का सिरा कुछ अधिक गोल कर दिया जाता था, जबकि 'र' का सिरा गोल नहीं किया जाता था। यही कारण है कि नागरी में लिखी हुई प्राचीन पोथियों की प्रतिलिपि करने में 'न' तथा 'र' की अनेक भूलें मिलती हैं। दा० नि० स० तथा बी० सभी में 'भीतर' पाठ रहने से यह संकेत मिलता है कि मूल प्रति में यही पाठ था, किन्तु आगे चल कर उसकी किसी नागरी प्रति की प्रतिलिपि करते समय लिपिकार को 'तर' के स्थान पर 'तन' का भ्रम हो गया जिससे उसने पूरी पंक्ति का पाठ ही तोड़-मरोड़ कर अपने अनुकूल बना लिया और वही पाठ आगे चल कर गु० में भी समाविष्ट कर लिया गया। यह भी सम्भव है कि स्वतः 'गुरु ग्रंथ साहब' के संकलनकर्ता या लिपिकर्ता को ही यह भ्रम हो गया हो।

२—इसी प्रकार का एक भ्रम अन्यत्र भी मिलता है। गु० आसा ६-३ का पाठ है : "राजा राम ककरिआ बरे पकाए, किनै **बूझनहारै** खाए।" दा० गौड़ी १२, नि० गौड़ी १३ की यह पहली पंक्ति है जहाँ इसका पाठ है : "हरि के खारे बड़े पकाए जिनि जारे तिनि खाए।" वस्तुतः 'जारे' और 'बूझनहारे' दोनों पाठ विकृत हैं, क्योंकि पहले में कोई सार्थकता ही नहीं है और दूसरे से अर्थ तो निकल आता है किन्तु भाषा की अस्वाभाविकता तथा वाक्यरचना का लचरपन खटकता है। अनुमानतः मूल में 'जिनि जाने तिनि खाए' पाठ रहा होगा जो प्राचीन नागरी के 'न' तथा 'र' के भ्रम से 'सर्वंगी' आदि में 'जारे' हो गया। गु० के संकलनकर्त्ता के सामने भी 'सर्बंगी' के समान ही कोई पाठ आया

होगा, जिसका अर्थ ठीक न लगते देख उसने गु० के लिए 'किनै बूझनहारै खाए' पाठ रख लिया होगा। उसका 'किनै' शब्द भी कुछ ऐसी ही कहानी की ओर संकेत करता है।

निम्नलिखित स्थल गु० में ऐसे और मिलते हैं जिनकी विकृतियाँ नागरी लिपि के कारण सम्भव हो सकती हैं—

३—गु० सलोक ६७-१ : डूबा था पै उबरिओ, **गुन** की लहरि झबकि।
तुल० दा० १-२५, नि० १-२०, सा० २-२०, सासी० १-५६ : बूड़े थे परि परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि। (नागरी 'न' और 'र' के सादृश्य से)।

४—गु० सलोक १५२-२ : तहां कबीरै **मटु** कीआ, खोजत मुनि जन बाट।
तुल० दा० १०-३, नि० १४-२, सा० २६-३, सासी० ५३-१६ : तहां कबीरै मठ किया (नागरी ट और ठ के सादृश्य से)।

५—गु० १८२-१ : **मारे** बहुत पुकारिआ, पीर पुकारै अउर।
तुल० दा० ४०-८, नि० ४२-४, सा० ७४-४, सासी० १९-३० : **सारा** बहुत पुकारिया (सारा=शूरवीर; विकृति नागरी 'म' और 'स' के सादृश्य से)।

राजस्थानी-प्रभाव के कारण आयी हुई विकृतियाँ—गु० में राजस्थानी-प्रभाव के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। केवल निम्नलिखित स्थल उल्लेखनीय हैं।

गु० 'बावन अखरी' में ७ वीं पंक्ति का पाठ है : "अलह लहंता भेद छै कछु कछु पाइओ भेद।" डॉ० राम कुमार वर्मा ने 'छै' को छः (संख्या) का बोधक मानकर अर्थ किया है : "अल्लाह को पाने के छः भेद हैं।"[१] किन्तु 'छै' यहाँ हिंदी 'है' की समानार्थी राजस्थानी क्रिया ज्ञात होती है, जिसके अनुसार उक्त पंक्ति का अर्थ होगा—"अल्लाह को पाने में एक रहस्य है जिसका कुछ कुछ भेद मैंने पा लिया है।"

'बावन अखरी' में ही आगे चल कर ६८ वीं पंक्ति में 'सूरउ **थारउ** नाउ' पाठ मिलता है। 'थारा' या 'थारौ' स्पष्ट ही राजस्थानी के सर्वनाम हैं (तुल० हिन्दी 'तुम्हारा')।

पंजाबी-प्रभाव के कारण आयी हुई विकृतियाँ—'ग्रंथ साहब' यद्यपि पंजाब में एक पंजाबी द्वारा लिखा गया किन्तु उसकी यह बड़ी आश्चर्यजनक विशेषता है कि अन्य प्रदेश के संतों की वाणियों में पंजाबी प्रभाव अधिक नहीं आने पाया है। कबीर, रैदास आदि पूर्वी संतों की वाणियों की राजस्थानी-प्रतियों में जहाँ णकार प्रधान शब्दावली तथा अन्य प्रादेशिक रूपों की भरमार है वहाँ 'ग्रन्थ

१. संत कबीर, परिशिष्ठ, पृ० २३

साहब' में ऐसे स्थल क्वचित् कदाचित् ही मिलते हैं। इस सम्बन्ध में गुरु अर्जुन देव की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' के संकलनकर्ता, लिपिकर्ता पर अपने देशकाल का कोई प्रभाव पड़ा ही नहीं। मनुष्य कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो, कहीं न कहीं उसे अपनी स्वभावगत दुर्बलताओं का शिकार होना ही पड़ता है। 'ग्रंथ साहब' में आयी हुई कबीर की वाणी में भी कुछ ऐसे स्थल अवश्य मिलते हैं जिनमें पंजाबी-प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। नीचे उनका उल्लेख किया जा रहा है—

१. गु० 'बावन अखरी' में ४० वीं पंक्ति का पाठ है—

चड़ि सुमेरि ढूंढ़ि जब आवा। जिह **गड़ु गड़िओ** सु **गड़** महि पावा॥

यहाँ 'ढ़' के स्थान पर सर्वत्र 'ड़' आया है जो कदाचित् पंजाबी उच्चारण के प्रभाव से ही हुआ है।

२. पंजाबी-प्रभाव ऐसे पदों में अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है जो केवल गु० में पाये जाते हैं। इन पदों में पंजाबी के जैसे सटीक प्रयोग मिलते हैं, कबीर-वाणी की अन्य प्रतियों में क्या गु० में भी कबीर के प्रकरण में अन्यत्र नहीं मिलते। उदाहरण के लिए गु० गउड़ी का ५० वाँ पद पूरा-पूरा उद्धृत किया जा सकता है—

पेवकड़ै दिन चारि है **साहुरड़ै** जाणा।
अंधा लोकु न जाणई मूरखु **एआणा**॥
कहु **डडीआ** बाधै धन खड़ी।
पाहू घरि आए **मुकलाऊ** आए॥ १॥
ओह जि दिसै **खूहड़ी** कउन लाजु वहारी।
लाजु **घड़ी सिउ** तूटि पड़ो उठि चलो पनिहारी॥ २॥
साहिबु होइ दइआलु क्रिपा करे अपुना कारजु सवारे।
ता सोहागणि जाणीऐ गुर सबदु बीचारे॥ ३॥
किरत की बांधी सभ फिरै देखहु बीचारी।
एस नो किआ आखीऐ किआ करै विचारी॥ ४॥
भई निरासी उठि चली चित बंधि न धीरा।
हरि की **चरणी** लागि रहु भजु सरणि कबीरा॥ ५॥

काशी में रहने वाले कबीर इस प्रकार की भाषा कभी नहीं बोल सकते थे। यह स्पष्ट ही किसी पंजाबी की रचना जान पड़ती है। इसी से मिलता-जुलता

एक अन्य पद महला तीन के अन्तर्गत मिलता है[१०] जिसकी प्रथम पंक्ति का पाठ है : 'पेईअड़ै दिन चारि है हरि हरि लिख पाइआ।' ऊपर उद्धृत पद भी निश्चित रूप से किसी सिक्ख गुरु की रचना जान पड़ती है जो कबीर की रचनाओं में प्रक्षेप रूप में समाविष्ट हो गयी है।

३. गु० मारू ८ में प्रथम पंक्ति का पाठ है : अनभउ किने न देखिआ **बैरागीअड़े,** बिनु भै अनभउ होउ **वणाहंबै** । आगे की सभी पंक्तियों में इसी प्रकार 'बैरागीअड़े' और 'वणाहंबै' की टेक मिलती हैं। यह दोनों पंजाबी के विशिष्ट प्रयोग हैं (बैरागीअड़े=हे बैरागी, वणाहंबै=ठीक है) जिनका पंजाबी गीतों में प्रायः ध्रुवक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह पद भी गु० के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलता।

४. गु० में अतिरिक्त रूप से मिलने वाले पदों में इसी प्रकार के कुछ अन्य प्रयोग भी मिलते हैं; उदाहरणतया गु० सिरी १ में '**इतनाकु**' (=इतना भी), **इतु संगति** (=इसके साथ), **जां** (=जो); गउड़ी २७ में **चीनत** (=चीन्हत); आसा २ में **जिन्हा** (=जिनके); सोरठि ११ में **कीता लबो**, तथा **फबो** आदि ऐसे ही रूप हैं।

(ङ) **पुनरुक्तियाँ तथा पुनरावृत्तियाँ**—गु० में सात साखियाँ ऐसी हैं जो दो-दो स्थलों पर मिलती हैं और अंतर केवल शाब्दिक हैं, उदाहरणतया—

१. गु० का १४ वाँ सलोक जिसका पाठ है—

कबीर हज जह हउ फिरिओ कउतक ठाओ ठाइ।
इक राम सनेही बाहरा ऊजरु मेरै भांइ॥

१५१ वें सलोक से तुलनीय है जिसका पाठ है—

पाटन ते ऊजरु भला राम भगति जिह ठाइ।
राम सनेही बाहरा जमपुरु मेरे भांइ॥

२. तुल० सलोक ४२ : **कबीर ऐसा कोई न जनमिओ अपनै घर लावै आगि।**
पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि॥

तथा ८३ : **कबीर ऐसा को नही मंदर देइ जराइ।**
पांचउ लरिके मारि कै रहै राम लिउ लाइ॥

स्थानाभाव के कारण शेष उदाहरणों का केवल स्थल-निर्देश किया जा रहा है जो इस प्रकार हैं—(३) तुल० सलोक १०६ तथा २२६; (४) सलोक ११२ तथा १५०; (५) सलोक १५७ तथा १६४; (६) सलोक १८७ तथा १६६;

१०. दे० गुरु ग्रंथ साहब, मिशन-संस्करण, पृष्ठ १६२।

(७) सलोक २३८ तथा राग रामकली के १२ वें पद की अंतिम दो पंक्तियाँ।

पदों में भी कहीं-कहीं दो-एक पंक्तियों की और कहीं-कहीं पूरे पद की आवृत्ति मिल जाती है। उदाहरणतया—

१. गु० धनासरी २ की ६ ठी तथा ७ वीं पंक्तियाँ जिनका पाठ है—

कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छोड़हु मन के भरमा।
केवल नाम जपहु रे प्रानी परहु एक की सरना॥

राग 'बिभास प्रभाती' के दूसरे पद की अंतिम दो पंक्तियों से तुलनीय हैं जिनका पाठ है—

कहतु कबीर सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना।
केवल नाम जपहु रे प्रानी तबही निहचै तरना॥

इसी प्रकार निम्नलिखित स्थल भी तुलनीय हैं—

(२) राग गउड़ी ११-४ तथा गउड़ी १६-१; (३) गउड़ी १२ तथा २२ की की अंतिम पंक्तियाँ; (४) सोरठि १० तथा ११ की अंतिम पंक्तियाँ।

५. गु० में एक पूरा पद ही थोड़े हेर-फेर के साथ दो स्थलों पर मिलता है। दोनों के दो भिन्न स्रोत ज्ञात होते हैं। गउड़ी १० का पाठ इस प्रकार है—

जो जन परमिति परमनु जाना। बातन ही बैकुंठ समाना॥
ना जाना बैकुंठ कहा ही। जानु जानु सभि कहहि तहाही॥ १॥
कहन कहावन नह पतीअईहै। तउ मनु जानै जाते हउमै जईहै॥२॥
जब लगु मनि बैकुंठ की आस। तब लगु होइ नही चरन निवास॥३॥
कहु कबीर इह कहीऐ काहि। साध संगति बैकुंठै आहि॥४॥

यह गु० भैरउ १६ से तुलनीय है जिसका पाठ है—

सभु कोई चलन कहत है ऊहां। ना जानउ बैकुंठु है कहां॥
आप आप का मरमु न जानां। बातन ही बैकुंठु बखानां॥१॥
जब लगु मन बैकुंठ की आस। तब लगु नाही चरन निवास॥२॥
खाई कोटु न परल पगारा। ना जानउ बैकुंठ दुआरा॥३॥
कहि कमीर अब कहीऐ काहि। साध संगति बैकुंठै आहि॥४॥

'ग्रंथ साहब' में संकलित कबीर-वाणी के इतने लघु परिमाण में इतनी अधिक संख्या में पुनरावृत्तियाँ मिल जाने से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि उसके निर्माण में अनेक आदर्शों अथवा स्रोतों की सहायता ली गयी है।

(च) मिश्रित पद—गु० में कुछ ऐसे पद भी मिलते हैं जो विभिन्न सूत्रों से

मिल कर बने हुए ज्ञात होते हैं। उदाहरण के लिए गु० गउड़ी ३५ उद्धृत किया जा सकता है, जिसका पाठ है—

जिहि सिरि रचि रचि बाधत पाग। सो सिरु चुंच सवारहि काग ॥
इस तन धन को किआ गरबईआ। राम नामु काहे न द्रिड़ीआ ॥१॥
कहत कबीर सुनहु मन मेरे। इही हवाल होहिगे तेरे ॥२॥

उक्त पद की प्रथम पंक्ति दा० नि० सोरठि ३४ (ग्रन्था० २९५) में चौथी पंक्ति के रूप में और बी० शब्द ९९ में तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है। शेष चार पंक्तियाँ दा० गौड़ी ९३ में तथा नि० गौड़ी ९७ में मिलती हैं।

इसी प्रकार गु० तिलंग १ की आठ पंक्तियाँ दा० आसावरी ५६ में और शेष दो पंक्तियाँ दा० आसावरी ५७ में (ग्रन्था० २-५७ तथा २-५८) मिलती हैं।

(छ) स्थानांतरित पंक्तियाँ—कहीं-कहीं इस बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि अन्य प्रतियों में मिलने वाले पद की विभिन्न पंक्तियाँ गु० के कई पदों में बिखरी हुई मिलती हैं। उदाहरण के लिए दा० गौड़ी ४३ का पद लिया जा सकता है। दा० में इस पद का पाठ, जो नि० और स० में भी ज्यों-का-त्यों मिलता है, इस प्रकार है—

हंम न मरैं मरिहै संसारा। हमकूं मिल्या जियावनहारा ॥ टेक ॥
अब न मरौं मरनैं मन मांनां। तेई मुए जिनि रांम न जांनां ॥
साकत मरैं संत जन जीवैं। भरि भरि रांम रसांइन पीवैं ॥
हरि मरिहैं तो हंमहूं मरिहैं। हरि न मरै हंम काहे कौं मरिहैं ॥
कहै कबीर मन मर्नांहि मिलावा। अमर भए सुखसागर पावा।

इसकी प्रथम पंक्ति गु० गउड़ी १२ में द्वितीय पंक्ति के रूप में मिलती है, वहाँ इसका पाठ है—

मै न मरउ मरिबो संसारा। अब मोहि मिलिओ है जीआवनहारा।

द्वितीय पंक्ति गु० गउड़ी २० की द्वितीय पंक्ति से मिलती है जिसका पाठ है—

अब कैसे मरउ मरनि मनु मानिआ। मरि मरि जाते जिन रामु न जानिआ ॥

इसकी तीसरी पंक्ति गु० गउड़ी १३-४ में इस प्रकार मिलती है—

साकत मरहि संत सभि जीवहि। राम रसाइनु रसना पीवहि ॥

गु० के किसी-किसी पद की केवल एकाध पंक्ति अन्य प्रतियों में मिल जाती है, शेष का कोई मेल नहीं मिलता। ऐसी उड़ती-पुड़ती पंक्तियाँ गु० में अनेक हैं,

जिनमें से कुछ के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. गु० गउड़ी ७ की तीसरी पंक्ति है : जउ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ। तउ आन बाट काहे नही आइआ ॥ जो दा० गौड़ी ४१ की चौथी पंक्ति के रूप में मिलती है। दा० का यह पद नि० गौड़ी ४५ तथा बी० रमैनी ६२ के रूप में भी मिलता है। पाठ दा० के ही समान है।

२. गु० के उक्त पद में ही अगली पंक्ति : "तुम कत ब्राहमण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध ॥" दा४ गौड़ी ७९-२ में मिलती है। इसी प्रकार निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं—

३. गु० गउड़ी १२-४ तथा नि० भैरूं ४२-२, शबे० (२) चितावनी ३८;

४. गु० गउड़ी ३४ तथा बी० रमैनी ३२ की अंतिम पंक्तियाँ;

५. गु० गउड़ी ४१-१, २ तथा नि० आसावरी ११०-२, ३;

६. गु० आसा १३-२२ तथा दा० नि० आसावरी ५५-५;

७. गु० केदारा ३-३ तथा गौड़ी ७४-१।

उपर्युक्त दोनों विशेषताओं तथा उनके उदाहरणों से गु० के आदर्श-बाहुल्य की बात और भी पुष्ट हो जाती है।

(ज) **अन्य विशेषताएँ**—गु० में कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं जिन्हें सामान्य पाठक भी दो-एक पृष्ठ पढ़ लेने के पश्चात् सरलता से समझ सकता है।

१. पहली विशेषता पदों में पंक्तियों के क्रम से संबंधित है। अन्य प्रतियों के पदों में मिलने वाली प्रथम एक या दो पंक्तियाँ, जिन्हें टेक या 'ध्रुवक' कहा जाता है, गु० में प्रायः दो पंक्तियों के बाद मिलती हैं; उदाहरणतया गु० गउड़ी ५१ में पंक्तियों का क्रम इस प्रकार है—

जोगी कहहि जोगु भल मीठा अवरु न दूजा भाई।
रुंडित मुंडित एकै सबदी एइ कहहि सिधि पाई ॥
हरि बिनु भरमि भुलाने अंधा।
जापहि जाउं आपु छुटकावनि ते बाधे बहु फंधा ॥ इत्यादि।

दा० तथा नि० गौड़ी १३३ में इन पंक्तियों का क्रम है—

हरि बिनु भरमि बिगूते गंदा।
जापै जाउं आपनपौ छुड़ावण ते बीधे बहु फंदा ॥टेक॥
जोगी कहै जोग सिधि नीकी और न दूजी भाई ॥ इत्यादि।

बी० ३८ तथा बीभ० ८४ में भी यह पद मिलता है जिसका क्रम दा० नि० के समान है। ध्रुवक की पंक्ति इसी प्रकार गु० को छोड़ कर प्रायः सभी प्रतियों

में पदों के आरम्भ में ही आती है। 'ग्रन्थ साहब' में ध्रुवक का ऐसा क्रम कबीर की ही वाणी में नहीं, अपितु सभी संतों तथा सिक्ख-गुरुओं की वाणी में मिलता है। अपवाद केवल कहीं-कहीं मिल जाते हैं। ज्ञात होता है, संतों अथवा गुरुओं के पद सिक्ख लोग इसी क्रम में गाया करते थे और गुरु अर्जुनदेव जी ने भी अपने संकलन में उनकी यह परम्परा अक्षुण्ण रखी।

२. दूसरी विशेषता गुरुमुखी लिपि के कारण है। गुरुमुखी में 'य' नहीं होता, अतः 'ग्रन्थ साहब' में 'य' के लिए सर्वत्र 'इअ' का प्रयोग मिलेगा। उदाहरणतया—गु० 'माइआ' (=माया), 'लाइआ' (=लाया), 'संधिआ' (=संध्या), 'किआ' (=क्या), 'काइआ' (=काया), 'दइआ' (=दया) 'दइआल' (=दयाल), 'गइआ' (=गया), 'बीआपारी' (=ब्यापारी), 'रघुराइआ' (=रघुराया), 'इआ' (=या), 'बिआकरना' (=ब्याकरना)। गु० में ऐसे रूपों की भरमारें है। पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रदेश वालों को 'गुरु ग्रन्थ साहब' पढ़ते समय उसकी यही विशेषता सर्वप्रथम उनका ध्यान आकर्षित करती है।

३. गुरुमुखी में मिलावट के अक्षर नहीं होते, अतः जहाँ केवल आधे अक्षरों की आवश्यकता होती है वहाँ भी वे पूरे लिखे जाते हैं। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में ऐसे रूप भी अनेक मिलते हैं। उदाहरणतया 'वसतु' (=वस्तु), 'मसतकि' (=मस्तकि) 'दिसटि' (=दिष्टि), 'भिसति' (=भिस्ति)।

४. 'गुरु ग्रन्थ साहब' में अनुस्वार का प्रयोग मिलता तो है, किन्तु कहीं-कहीं आवश्यक होते हुए भी उसका प्रयोग नहीं किया गया है; उदाहरणतया—गउड़ी ४-२ : 'नही', गउड़ी ५ की आरम्भिक पंक्तियों में : 'कराही', 'माही', 'नाही', 'जाही', 'रचाही', 'नाही', गउड़ी ५१ में : 'कहहि', 'जापहि', 'जाउ', 'बाध', 'जहते' इत्यादि।

पाठ-निर्णय में इन विशेषताओं को भी ध्यान में रखा गया है।

बी०, बीफ० तथा बीभ० प्रतियों का विवरण

बी० प्रति—यह प्रति बनारस में रामापुर के श्री उदयशंकर शास्त्री (आजकल हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय में ह० लि० ग्रंथ सहायक) के निजी संग्रह में है। यह लगभग ५ इंच लम्बी और ३ इंच चौड़ी है और अपनी लम्बाई में नागराक्षरों में लिखी हुई है। इसमें प्रति पृष्ठ ७ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग १८ अक्षर आये हैं। पुष्पिका में लिपिकाल आदि का ब्यौरा इस प्रकार है—

"इति सत शब्द टकसार बीजक संपूर्ण। मिती ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ३ तिथि वार सुमार सं०

१९४२ शके १८०७ दसखत साधु मंगलदास के असथान बुरहानपुर झोपड़ा महू (?) की छावनी।"

इसमें कबीर की वाणी निम्नलिखित रूप में मिलती है : रमैनी ८४—पत्रा १ से ५१ तक, शब्द (पद) ११५—पत्रा ५१ से १२० तक, ग्यानचौंतीसा १, विप्रमतीसी १, कहरा १२, बसंत १२, चाँचर २, बेलि २०, बिरहुली १, हिंडोला ३, साखी ३५४।

इसमें रमैनियों का आरम्भ "अंतर जोति सब्द एक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।" आदि से होता है। प्रति आरंभ से अंत तक एक ही व्यक्ति द्वारा स्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई है। जैसा पहले निर्देश किया गया है, इस प्रति का क्रम तथा पाठ आदि का विस्तार स्थूल रूप से श्री विचारदास शास्त्री अथवा हंसदास शास्त्री और महाबीरप्रसाद द्वारा सम्पादित बीजकों से मिलता है।

बीफ० प्रति—यह प्रति भी उक्त शास्त्री जी के ही संग्रह की है, जिसमें लगभग १३ इंच लम्बे और ४ इंच चौड़े ८४ पत्रे पुस्तकाकार नत्थी किये हुए हैं। लिखावट लम्बाई में और सुन्दर नागरी अक्षरों में है। इसमें प्रति पृष्ठ ९ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति लगभग ५० अक्षर आये हैं। बीजक के अंत में पुष्पिका इस प्रकार दी हुई है—

लिखि के समाप्त निज पाणि भीषमदास रहे विश्वनाथपुरी जब सों।
चीत्र के नक्षत्र आश्विन मास चेतन वट में बीजक लिष्यो तब सों॥
बिश के दशम अंत शशि जो षोढ़श उदय तिथि मंगलवार है।
पंथ है अगम जाहि लिखौं मैं निमित्त पाठ बीजक सार है॥
सोरठा : मंगलवार पुनीत संबत चालिस दश भए। पारण पाव सुनीत पंथ अगम है जाहि में॥१॥
दो० सोभ जाहि षोडशउदय, बीश दशम के अंत। सार ग्रंथ बीजक लिखा नाम सो भीषम संत॥२॥

इससे ज्ञात होता है कि इसे भीखमदास नामक साधु ने संवत् १९५० में आश्विन शुक्ला प्रतिपदा (?) चित्रा नक्षत्र मंगलवार को काशी में स्वपठनार्थ लिख कर समाप्त किया। इसमें वाणियों का क्रम निम्नलिखित है : १. रमैनी ८४ (पत्रा १ से १७ तक), २. शब्द ११३ (पत्रा १७ से ३९ तक), ३. कहरा १२ (पत्रा ४० से ४३ तक), ४. विप्रमतीसी १ (पत्रा ४४ पर), ५. हिंडोलना ३ (पत्रा ४४ से ४५ तक), ६. बंसत १२ (पत्रा ४५ से ४७ तक), ७. चाँचरि २ (पत्रा ४८ पर), ८. चौंतीसी (पत्रा ४९ से ५० तक), ९. बेलि २ (पत्रा ५१ पर), १०. बिरहुली १ (पत्रा ५२ पर) ११. साखी ३८४ (पत्रा ५२); इसके पश्चात् 'लिषते साखी नवीन' शीर्षक के अंतर्गत ३२५ साखियाँ अतिरिक्त रूप से मिलती हैं।

बीभ० प्रति—यह प्रति मूल बीजक[११] के नाम से मानसर गद्दी के आचार्य महंत

---

११. प्राप्ति-स्थान : श्री १०८ महंत श्री मेथी गुसाँई साहेब, मुकाम मानसर, पो० दाऊदपुर, जिला छपरा (सारन) तथा कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा।

श्री मेथी गोसाँईं साहब के द्वारा सं० १९९४ (सन् १९३७ ई०) में प्रकाशित हुई है। प्रकाशक ने इसकी प्रस्तावना में निवेदन किया है कि यह बीजक का गोसाँईं भगवान साहब वाला पाठ है जो इसके पूर्व कहीं भी छपा नहीं था। संत लोग इसकी प्रतिलिपि उतार कर पाठ किया करते थे अतः संत-महात्माओं की सुविधा के लिए उन्होंने 'मूल हस्तलिखित प्रत' के अनुसार छपवा कर इसे प्रकाशित किया है। पाठ का मिलान करने पर ज्ञात होता है कि प्रकाशक का यह वक्तव्य अक्षरशः सत्य है। इसीलिए मुद्रित होते हुए भी मूल हस्तलिखित प्रति के रूप में इसका उपयोग किया गया है।

इस पुतक के मूल भाग में कुल २८६ पृष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त आरम्भ में संस्कृत के पाँच श्लोक कबीर की वंदना के रूप में और १२ हिन्दी दोहे मानसर मठ की गुरु-प्रणाली के रूप में दिये हुए हैं। इस प्रणालिका के अनुसार वहाँ की गुरु-परम्परा इस प्रकार है: १. नारायण गोसाँईं, २. अजगैब गोसाँईं, ३. गोपी साहब, ४. द्वारिका गोसाँईं, ५, बालमुकुन्द गोसाँईं, ६. जगदेव गोसाँईं, ७. मेथी गोसाँईं।

इस बीजक में कबीर की वाणियों का क्रम निम्नलिखित है: १. रमैनी ८४—पृष्ठ १ से ७८ तक, २. शब्द ११२—पृ० ७९ से १८९ तक, ३. साखी २९७—पृ० २३४ तक, ४. कहरा १२—पृ० २५० तक, ५. बसंत १२—पृ० २६१ तक, ६. बेईली २—पृ० २६४ तक, ७. बिरहुली १—पृ० २६६ तक, ८. चाँचरि २—पृ० २७० तक, ९. हिंडोला ३—पृ० २७४ तक, १०. चौंतीसी १—पृ० २८१ तक, ११. विप्रमतीसी १—पृ० २८५ तक, जमाबचन ५२७—पृ० २८६ पर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें शब्दों तथा साखियों की संख्या अन्य दोनों रूपांतरों से कम है। बीभ० में रमैनियों का क्रम बी० के समान है।

हम देखते हैं कि बीफ० में 'जीव रूप एक अंतर बासा' से प्रारम्भ होने वाली रमैनी पहले है जो अन्य बीजकों में दूसरी रमैनी के रूप में मिलती है तथा अन्य बीजकों की पहली रमैनी इसमें दूसरी के रूप में आती है। रमैनियों के इस स्थानान्तरण के सम्बन्ध में कबीरपंथियों में एक किंवदंती प्रचलित है। कहा जाता है कि जग्गूदास और भग्गूदास नामक दो भाई कबीर साहब के प्रिय शिष्य थे। अपना अंतिम समय निकट आया देख उन्होंने अपनी वाणियों का संग्रह करा कर उक्त दोनों शिष्यों की माता के पास सुरक्षित रख दिया। परन्तु कबीर साहब के तिरोधान के पश्चात् दोनों भाइयों में ग्रन्थ के लिए जब कलह खड़ा हो गया तो उसका निबटारा करने के लिए माता ने इसकी प्रथम दो रमैनियों के क्रम में

उलट-फेर कर इसके दो संस्करण बना दिये और दोनों को एक-एक देकर उन्हें संतुष्ट किया। आगे कबीरपंथियों में दोनों रूपांतर चलते रहे।

यह ध्यान देने की बात है कि जग्गूदास कबीरपंथ की बिद्दूपुर शाखा (ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार) के प्रवर्तक माने जाते हैं और भग्गूदास अथवा भगवान साहब वर्तमान घनौती शाखा (ज़िला छपरा बिहार) के, जिसकी गद्दी पहले लढ़िया ग्राम (ज़िला चंपारन, बिहार) में थी। इस प्रकार दोनों शाखाओं की प्रधान गद्दियाँ बिहार प्रांत में ही हैं।

रमैनियों में केवल प्रथम दो के क्रम में अंतर मिलता है, किंतु अन्य छन्दों के क्रम में परस्पर बहुत अंतर है। उदाहरण के लिए बीभ० में शब्दों का क्रम यथा बी० १३, ५९, ६०, ५, ६, ६२, ७, ६९, २६, ८२, ४८, ४३, ४१, २५, २४ इत्यादि है और साखियों का यथा बी० २३, २२, २७, २६, २४, २५, २८, ३, ७, २, ४ इत्यादि। इसी प्रकार का अंतर अन्य छंदों के संबंध में भी है।

तीनों के विभिन्न क्रमों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बीभ० का क्रम अन्य दोनों रूपांतरों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक तथा प्रसंगानुकूल है। यह निम्नलिखित विवरण से ज्ञात हो जायगा—

बीभ० के आरंभिक छः शब्दों (=पदों) में माया का वर्णन है, सातवें से बीसवें शब्द तक आध्यात्मिक अनुभवों का वर्णन है—७ वें में सहज ज्ञान का, ८, ९, १० तथा ११ वें में अनहद नाद का, १२, १३ तथा १४ वें में परमतत्व का तथा १५ वें से २० वें तक उल्टवाँसियों में अद्भुत ज्ञान का वर्णन है। बीसवें शब्द के पश्चात् २१ वें से २७ वें शब्द तक हिंदू-मुस्लिम धर्मों की भ्रमात्मक धारणाओं (अवतारवाद तथा बाह्याचार आदि) का खंडन है। आगे के तीन शब्दों में जुलाहों के क्रिया-कलाप का आधार लेकर दिव्य आध्यात्मिक उपदेश दिये गये हैं। ३१ वें से ३९ वें तक उल्टवाँसी या विपर्यय के पद हैं जिनमें से कुछ में माया-मोह की प्रचंडता का वर्णन है और कुछ अन्य में आध्यात्मिक अहेर का। ४१वें से ५२ वें तक बारह शब्दों में भक्ति की अनुपम मदिरा, उसकी ख़ुमारी, परम पद, अथवा परमतत्व की महिमा और राम नाम की महिमा का वर्णन है। आगे के पाँच पदों में भ्रम का (विशेषतया ब्राह्मणों का, जैसे ऊँची कथनी नीची करनी, छुआछूत, जीवहिंसा, प्रेत पूजा आदि का) खण्डन है। आगे ६२ वें से ८१ वें तक के बीस पदों में काल का वर्णन है, जिसकी ज्वाला में सारा संसार जल रहा है और जिससे बचने का एक मात्र अस्त्र राम नाम बताया गया है। संख्या ८२ से ९९ तक के शब्दों में परमात्मा अथवा ब्रह्म के

संबंध में प्रचलित लौकिक-वैदिक सारे भ्रमात्मक सिद्धांतों का निराकरण कर संत मत द्वारा उपस्थापित सूक्ष्म निरंजन तत्व का निर्देश किया गया है। इसके पश्चात् १११ वें शब्द तक नश्वर जगत् के पीछे पागल बने रहने वालों के लिए चेतावनी के रूप में उपदेश हैं और अंतिम अर्थात् ११२ वें पद में निर्णायिक ज्ञान का वर्णन है।

बी० अथवा बीफ० में विषय के अनुसार क्रम नहीं मिलता, उनमें अक्षरक्रम की ओर अधिक झुकाव समझ पड़ता है। उनमें आरंभ के बारह पदों में प्रत्येक के आदि में 'संतो' शब्द आता है, १३वें से २१ वें तक प्रत्येक के आदि में 'राम' या 'रामुरा' आता है। इसी प्रकार २२ से २५ पर्यंत 'अवधू', २६ से ३० तक 'भाई रे', ३१ से ३९ तक 'हंसा' अथवा 'है' (हकारादि), ४० से ४८ तक 'पंडित' या 'पांडे' और' ४९ से ५३ तक 'बुझ बुझ' आता है। इसी प्रकार की प्रवृत्ति अन्य शब्दों के संबंध में भी परिलक्षित होती है—अपवाद केवल नौ शब्दों के संबंध में ही है।

अक्षरक्रम के साथ बी० अथवा बीफ० में विषयक्रम का भी निर्वाह नहीं मिलता, यह एक ही उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। 'भाई रे' से प्रारंभ होने वाले पाँच पदों में (अर्थात् २७ से ३० तक) पाँच विभिन्न विचारधाराओं का विवेचन मिलता है। छब्बीसवें पद में राम नाम को मूल तत्व और आसन, प्राणायाम, योग, श्रुति-स्मृति, ज्योतिष आदि को पाखंड बताया गया है। अगले पद में ब्रह्म रूपी विलक्षण तत्व का वर्णन है, उसके पश्चात् २८ वें में माया रूपी गाय का, २९ वें में जगत् के प्रपंचों का त्याग कर ब्रह्मानन्द में लीन होने का वर्णन है और ३८ वें में हिंदू-मुसलमानों का ऊपरी मतवैभिन्य निरर्थक बताया गया है—अर्थात् अल्लाह–राम, करीम-केशव, हिंदू-तुरुक, मौलवी-पांडे आदि वस्तुतः एक ही हैं, इनमें कोई भेद-भाव न होना चाहिए।

साखियों के क्रम में भी पारस्परिक भिन्नता मिलती है, किंतु उसके संबंध में दोनों की कोई विशिष्ट प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं होती।

बीफ० के क्रम की स्वाभाविकता देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रूपांतर अन्य दोनों की अपेक्षा कदाचित् प्राचीनतर भी है। कुछ बातें ऐसी और भी मिलती हैं जिनसे इस निर्णय की पुष्टि होती है। बी० तथा बीफ० में कुछ साखियाँ ऐसी मिलती हैं जिनकी प्रचीनता के संबंध में निम्नलिखित कारणों से संदेह उत्पन्न होता है; उदाहरणतया—

१—बी० साखी ३४६-४८ इस प्रकार हैं—

ब्रह्मा पूछे जननि सों, कर जोरी सीस नवाय ।
कवन बरन वह पुरुष है, माता कहु समुझाय ।।
रेख रूप वै है नहीं, अधर धरी नहिं देह ।
गगन मंदिल के मध्य में, निरखो पुरुष विदेह ।।
धरे ध्यान गगन के मांहीं, लाए बज्र किवांर ।
देखि प्रतीमा आपनी, तीनिउं भए निहाल ।।

जिन्होंने 'अनुरागसागर', 'ज्ञानसागर', 'अंबुसागर', 'स्वसंवेदबोध', 'निरंजनबोध', आदि कबीरपंथी ग्रन्थों का अध्ययन किया है, उन्हें ज्ञात होगा कि इन साखियों का सीधा संबंध सृष्टि-प्रक्रिया के वर्णन से है। उसके अनुसार सत्य पुरुष ने सृष्टि-रचना के लिए अपने मानस पुत्र निरंजन को आद्या नामक अष्टांगी कुमारी दी थी जिससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पुत्र उत्पन्न कर निरंजन आद्या को अकेली छोड़ गुप्तवास करने लगा। तीनों पुत्र जब सयाने हो गये तो माता से उन्होंने अपने पिता के संबंध में जिज्ञासा प्रकट की। यह साखियाँ उसी प्रसंग की हैं, जिनमें क्रमशः ब्रह्मा की जिज्ञासा, आद्या द्वारा उनका समाधान, और फिर तीनों के द्वारा उनके विलक्षण रूप का दर्शन किया जाना बताया गया है। परवर्ती कबीरपंथ में प्रचलित उक्त सभी सिद्धांत कबीर साहब को भी मान्य थे, ऐसा मानने के लिए हमारे पास कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है। सृष्टि-रचना के इन कबीरपंथी आख्यानों के निर्माण में वस्तुतः कबीर का उतना प्रभाव भी नहीं जितना बिहार-उड़ीसा आदि में प्रचलित धर्म-संप्रदाय तथा निरंजनी संप्रदाय का है, जिसके विस्तार में जाने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं ज्ञात होती।

ऐसा जान पड़ता है कि उक्त साखियाँ बी० तथा बीफ० में किसी कबीरपंथी द्वारा बाद में प्रक्षिप्त हुई। बीभ० में यह साखियाँ नहीं मिलतीं, अतः वह स्पष्ट ही अन्य दोनों रूपांतरों से प्राचीनतर है।

२. बी० तथा बीफ० की साखी १९२ का पाठ ग्यारहवीं रमैनी की समापक साखी से शब्दशः मिलता है। बीभ० में उक्त साखी केवल रमैनी में ही मिलती है, साखी-प्रकरण में नहीं। अतः यह कहा जा सकता है कि बी० तथा बीफ० के साखी-प्रकरण में यह पंक्तियाँ बाद में किसी व्यक्ति द्वारा जोड़ दी गयीं और इस प्रकार उक्त दोनों रूपांतर, जिनमें यह अनावश्यक आवृत्ति मिलती है, बीभ० की अपेक्षा—जो उक्त दोष से मुक्त है—बाद के ज्ञात होते हैं।

३. बी० तथा बीफ० की साखी २७९ की द्वितीय पंक्ति साखी ३२७ में

दुहराई हुई मिलती है; तुलनीय—

सा० २७९ : **जहां गाहक तहां हौं नहीं, हौं तहां गाहक नांहि ।**
बिनु बिबेक भटकत फिरै, पकड़ि शब्द की छांहि ॥

तथा सा० ३२७ : **गृह तजि के जोगी भये, जोगी के गृह नांहि ।**
बिनु बिबेक भटकत फिरै, पकड़ि शब्द की छांहि ॥

बीभ० में यह अनावश्यक पुनरावृत्ति नहीं मिलती क्योंकि उसमें दूसरी साखी आयी ही नहीं है । इससे भी उसकी प्राचीनता सिद्ध होती है ।

४. इसी प्रकार बी० की ३१२ तथा ३१७ संख्यक साखियों की भी पुनरावृत्ति खटकती है और बीभ० में उक्त दोनों ही साखियाँ नहीं मिलतीं ।

५. इसके अतिरिक्त बीभ० का आकार भी अन्य दोनों से छोटा है । इसमें शब्दों की संख्या ११२ है जब कि बीफ० में उनकी संख्या ११३ और बी० में ११५ है । साखियों की संख्या बीभ० में केवल २९७ है (शास्त्री जी के संग्रह की एक प्रति में तो साखियों की संख्या केवल २४८ है), जब कि बी० में उनकी संख्या ३५४ और बीफ० में ३८४ है । यही नहीं, बीफ० की किसी-किसी प्रति में ३२५ साखियाँ अतिरिक्त रूप से जोड़ी हुई भी मिलती हैं ।

किंतु बीजक का प्राचीनतम रूपांतर भी कबीर के जीवनकाल में नहीं, प्रत्युत उनके बहुत समय पश्चात् संकलित हुआ, यह निम्नलिखित तर्कों के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है—

क—बी० शब्द ९० (बीभ० ८८) की अंतिम दो पंक्तियों का पाठ है—

हिंदू कहैं हमहिं ले जारब, तुरुक कहैं हमारो पीर ।
दोऊ आय दीन महं झगरैं, ठाढ़े देखहिं हंस कबीर ॥

इन पंक्तियों से बीजक के संबंध में एक नवीन समस्या खड़ी हो जाती है जिसकी ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था । कहानी प्रसिद्ध है कि कबीर साहब की मृत्यु के पश्चात् उनके शव के लिए हिंदू-मुसलमानों में परस्पर विवाद खड़ा हुआ था, किंतु अंत में चादर उठा कर देखने पर शव अदृश्य हो गया था, उनके स्थान पर बच रहे थे केवल फूल जिन्हें आधा-आधा बाँट कर दोनों दल वालों ने उनकी अंत्येष्टि क्रिया की । स्पष्ट है कि इन पंक्तियों का संबंध उक्त प्रसिद्धि से है । अतः यह मानना पड़ेगा कि उक्त पंक्तियाँ कबीर के निधन के पचात् प्रचलित कहानी के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बीजक में जोड़ दी गयी हैं । बीजक के सभी रूपांतरों में इन पंक्तियों के मिलने से यह भी कहा जा सकता है कि मूल बीजक का संकलन कबीर की मृत्यु के पश्चात् ऐसे

समय हुआ जब कि उक्त प्रवाद ख़ूब ज़ोर पकड़ चुका था।

ख, ग—इस संबंध में दो अन्य उल्लेख भी विचारणीय हैं जिनकी ओर श्री परशुराम चतुर्वेदी[१२] ने भी संकेत किया है। इनमें से एक उल्लेख पीपा के के संबंध में है जो बी० शब्द ८६ (बीभ० ३८) की पंक्ति ९, १० में इस प्रकार मिलता है—

ब्रह्मा वरुण कुबेर पुरंदर पीपा औ प्रहलादा।
हिरनाकुस नख वोद्र बिदारे तिनहूं को काल न राखा॥

अब तक 'पीपा' नाम से प्रसिद्ध एक ही संत का पता है जिनकी वाणियों में कबीर का नाम अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिया गया है जिससे यह भी ज्ञात होता है कि कबीर साहब कदाचित् उनसे कुछ पहले ही हो चुके थे। पीपा के एक पद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जो कलि मांझ कबीर न होते।
हमसे पतित कहा कहि रहते कौन प्रतीत मन धरते।
नाना बानी देखि सुनि स्रवना वहौ मारग अणसरते।
भगति प्रताप राख्यबे कारन निज जन आप पठाया।
नाम कबीर सांच परकास्या तहां पीपै कछु पाया॥

('संत कबीर' की प्रस्तावना में पृ० ४४ पर डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा उद्धृत)

यदि बीजक में उल्लिखित पीपा वही हैं जिनकी वाणी ऊपर उदधृत की गयी है तो बीजक की प्राचीनता पर स्वाभाविक रूप से संदेह किया जा सकता है।

इसी प्रकार दूसरा उल्लेख बीजक की ६९ वीं रमैनी की पाँचवीं पंक्ति में 'बंदूक' शब्द के संबंध में है, यथा—

नारद कब बंदूक चलाया। ब्यासदेव कब बंब बजाया॥

'बंदूक' पाठ बीजक की सभी प्रतियों में मिलता है। एक विद्वान् का मत है कि 'बंदूक' का पता उत्तरी भारत में कबीर के समय तक नहीं माना जा सकता।[१३]

घ—इसी प्रसंग में बीजक की उन पंक्तियों की ओर भी निर्देश किया जा सकता है जो अन्यत्र दूसरे संतों की रचनाओं के रूप में भी मिलती हैं, उदाहरणतया—

---

१२. दे० कबीर-साहित्य की परख, भारती भंडार, पृ० ८२ तथा उसी ग्रंथ की प्रस्तावना, पृ० ४।
१३. दे० हाफ़िज़ मुहम्मद ख़ां शीरानी का मत (कबीर-साहित्य की परख, पृ० ८२ पर उद्धृत)।

१—बीजक का दसवाँ पद—'संतो राह दुनौ हम दीठा' इत्यादि—कुछ शाब्दिक अंतरों के साथ बखना (दादूपंथी) के नाम से भी मिलता है।[१४]

२—बीजक की साखी २५२ (बीभ० २३६)—

रही एक की भई अनेक की, बिस्वा बहुत भतारी।
कहँहि कबीर काके संग जरिहै, बहु पुरुषन की नारी ॥

बखना के पद ३२ की पंक्ति १७, १८ से भी तुलनीय है जिनका पाठ है—

एक की नहीं घणां की हूई, दीसै बहु भरतारी।
बखना कहै कौण संगि बलसी, घण पुरखां की नारी ॥[१५]

बखना दादू के देहावसान के समय (सं० १६६० वि०) जीवित थे, यह उनके 'बीछड़ियां राम सनेही रे' इत्यादि पद[१६] से सिद्ध होता है जिसे उन्होंने दादू के वियोग में गाया था।

३—बी० शब्द १४ (बीभ० १०६)—'रामुरा संसय गांठि न छूटै' इत्यादि—की अंतिम चार पंक्तियों को छोड़ कर शेष सभी रैदास के भी एक पद में मिल जाती हैं।[१७]

४—बी० शब्द २० (बीभ० ४७)—'कोई रसिक राम रस पीयहुगे' इत्यादि संत-साहित्य के ह० लि० ग्रन्थों में स्वामी सुखानंद के नाम से मिलता है।[१८]

५—बी० शब्द ७६ (बीभ० ४०)—'आपुनपौ आपू ही बिसरो' इत्यादि सूरदास (सं० १५३५-१६३८ वि० ?) के नाम से भी मिलता है।[१९]

६—बीजक की 'विप्रमतीसी' अन्यत्र[२०] परशुराम की रचना के रूप में मिलती है—उल्लेखनीय अंतर केवल चार पंक्तियों के संबंध में है। खोज-रिपोर्टों से परशुराम नाम के कई रचनाकरों का पता चलता है। 'रामसागर'—जिसमें 'विप्रमतीसी' मिलती है—के रचयिता निम्बार्क-संप्रदाय के आचार्य श्रीभट्ट और हरिव्यास के शिष्य बताये गये हैं[२१] जो सं० १६६० वि० के लगभग वर्तमान थे।

७—बीजक के प्रथम 'कहरा' (बीभ० के ८ वें) की केवल कुछ को छोड़ कर शेष सभी पक्तियाँ डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'महरी बाईसी',[२२]

---

१४. बखना जी की वाणी, संपा० मंगलदास जी स्वामी, जयपुर, दे० पद ६०, पृ० ८९-९०। १५. वही, पृ० ७८। १६. वही, पद १२८, पृ० १४३-४४। १७. श्री गुरु ग्रंथ साहब, पृ० ९७३ (सर्व हिंद सिक्ख मिशन संस्क०) तथा निरंजनी संप्रदाय की ह० लि० पोथी (स्थान : ना० प्र० स०, संख्या ८७३, लि० का० सं० १५६ वि०), पत्रा ३४५, पद संख्या १३। १८. दे० वही, पत्रा ५४४। १९. सूरसागर, ना० प्र० स०, पद ३६९ (प्र० खंड, पृ० १२२-२३)। २०. दे० परशुराम देव कृत 'रामसागर' की ह० लि० प्रति (ना० प्र० स०), पत्रा ४२ तथा ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ४५, अंक ४, माघ १९९७ में डॉ० बड़थ्वाल द्वारा उद्धृत 'विप्रमतीसी'। २१. श्री परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संतपरम्परा, पृ० ५१८ तथा निम्बार्क माधुरी, पृ० ६९ २२. जायसी-ग्रंथावली,

जिसके रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी समझे जाते हैं, के छंद ४, ६, ७, ८ तथा १५ में बिखरी हुई मिल जाती हैं

८—बी० बसंत १ (बीभ० ३) रज्जबदास द्वारा संकलित 'सर्बंगी'[२३] में मुकुंद जी के नाम से भी मिलता है।

९—बी० साखी १९६ (बीभ० १७०) तथा २११ (बीभ० २०२) अन्यत्र[२४] संत दादूदयाल (मृ० सं० १६६० वि०) की रचना के रूप में मिलती हैं।

ऊपर जिन पक्तियों की ओर संकेत किया गया उनके संबंध में दो प्रकार के अनुमान लगाये जा सकते हैं : एक तो यह कि वे मूलतया कबीरकृत ही हों और आगे चलकर अन्य कवियों अथवा उनकी रचनाओं के प्रतिलिपिकारों द्वारा अपनी रचनाओं अथवा पोथियों में ग्रहण कर ली गयी हों अथवा यह भी संभव है कि वे मूलतया दूसरों की ही रचनाएँ रही हों और बीजक के मूल संकलनकर्त्ता द्वार अथवा उसके परवर्ती लिपिकारों द्वारा कबीर की रचना के रूप में ग्रहण कर ली गयी हों। दोनों पक्ष समान रूप से मान्य कहे जा सकते हैं और इस विवाद क अंतिम निर्णय तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उपर्युक्त सभी संतों अथवा कवियों की रचनाओं का प्रामाणिक संपादन नहीं हो जाता। उक्त विवाद के उत्तर पक्ष के आधार पर बखना की रचना बीजक में मिल जाने से डॉ० बड़थ्वाल ने यह अनुमान लगाया है कि बीजक का संकलन सं० १६६० वि० (दादू की मृत्यु) के पश्चात् हुआ होगा।[२५] यद्यपि यह तर्क सर्वथा मान्य नहीं कहा जा सकता, किंतु उसे सर्वथा अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। डॉ० बड़थ्वाल के अनुमान की पुष्टि दादू, सूर, परशुराम आदि की रचनाएँ बीजक में मिल से भी होती है। उक्त संतों का आविर्भाव भी लगभग उसी समय कुछ वर्षों के आगे-पीछे माना जाता है।

संत-संप्रदायों में प्रचलित अनुश्रुतियाँ

महर्षि शिवव्रतलाल ने, कदाचित् जनश्रुति के आधार पर, लिखा है कि भगवान गोसाँई कबीर साहब के भ्रमण-काल में सदा उनके साथ रहा करते थे औरउनके भजन आदि लिखते जाते थे। अंत में उन्होंने कबीर साहब के लगभग छ: सौ वचन साखियों आदि के रूप में तरतीब देकर अपने लिए उनका एक गुटका भी बना लिया। उक्त लेखक के अनुसार वर्तमान बीजक-ग्रन्थ का मूलाधार भगवान

हिंदुस्तानी एकेडेमी, पृ० ७१२-१५, ७१८। २३. श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर की ह० लि० प्रति, लि० का० सं० १८४१, पत्रा २६९। २४. दादूदयाल जी की वाणी, स्वामी मंगलदास संपादित, दे० क्रमशः साखी २५-८५ तथा ३४-१२। २५. दि निर्गुन स्कूल ऑफ़ हिंदी पोयट्री, बनारस, पृ० २७४।

साहब का यही गुटका था। उन्होंने आगे चल कर यह भी बताया है कि वे बांधवगढ़ गये थे जहाँ धर्मदास ने उनसे यह गुटका ले लेने का प्रयत्न किया था, किंतु भगवान साहब उसे लेकर बिहार प्रांत में चले गये और वहीं किसी स्थान पर कबीरपंथ की भगताही शाखा का प्रवर्तन कर अपने उसी गुटके को पंथ के धर्मग्रन्थ के रूप में मान्यता प्रदान की।

उक्त कथन में यद्यपि भगवान गोसाँई और कबीर साहब के समकालीन होने की बात विश्वसनीय नहीं जान पड़ती, किन्तु बीजक के मूल संकलयिता भगवान साहब ही थे—इस कथन में पर्याप्त सत्यता जान पड़ती है। पीछे हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बीजक का संकलन कदाचित् कबीर के जीवनकाल में नहीं हुआ था और साथ ही यह भी दिखलाने का प्रयास किया है कि इ समय प्रचलित बीजक के सभी रूपांतरों में भगताही शाखा का रूपांतर ही प्राचीनतम सिद्ध होता है। आगे अंत:साक्ष्य के ही आधार पर कुछ ऐसे प्रमाण उपस्थित किये जा रहे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उसका संकलन सर्वप्रथम काशी के पूर्व, संभवत: बिहार प्रांत में ही, कहीं हुआ था।

बीजक के सभी रूपांतरों में भाषा की दृष्टि से पूर्वी प्रयोगों के उदाहरण अत्यधिक संख्या में मिलते हैं। लकारांत क्रियाएँ तथा विशेषण, जो पूर्वी भाषाओं में प्रमुख रूप से मिलते हैं, बीजक में भी पर्याप्त रूप से मिलेंगे, उदाहरणतया—

रमैनी—१ : बसावल, रचल; २ : पूछल; ५ : फैल गयल, बांधल, बूड़ गइल; १४ : लागल; १८ : अनबेधल हीरा; २३ : नियरायल आई; २६ : कर्म क बांधल; ४२ : जब हम रहल....रहल सब कोई, हमरे कहल; ४७ : रहल, गयल; ५५ : साजल, देखल; ७४ : भरम क बांधल; मांडल, बंधल; ८२ : परिल।

शब्द—६ : धइल रहल; ३२ : भूलल, कैलिन, मानल; ५०-५१ : मरलि, बांधलि; ६२ : रखलौं, परलौं, रचल, बिछावल, सुतिलिउं, मेटल, छूटल, गहिलौं; ६३ : फूलल, गांथल, निरासल; १०८ : भयल, पूरबल, चलि अइलीं, कइल।

कहरा—११ : निंदले, रहलि, मुअल; **बेलि** : जागलि, भागलि, गयल बिगोय, दिहल, रहल, इत्यादि।

इन शब्दों का प्रचलन काशी के आसपास के प्रदेशों में भी माना जा सकता है, जहाँ पर कबीर ने अधिकांश जीवन व्यतीत किया था। किंतु बीजक में कुछ प्रयोग ऐसे भी मिलते हैं जिनका प्रचलन काशी से पूर्व बिहार प्रांत में ही मिलता है; उदाहरणतया—कहइत भयल (=कहते हुए हो गया; रमैनी १४ तथा ५०),

'होखे' (बीभ० शब्द ५६-१४), 'जेकरा' (बीभ० कहरा ९), 'तोहरा को' (=तुम्हें, बी० शब्द ४६, बीभ० ५८); 'अछलों' (=था), तजलौं (=तज दिया, बी० १०८ बीभ० ४८), 'तोहरा' (बी० बसंत ११), 'राउर', 'जतइत', 'कोदइत' (बी० कहरा २, बीभ० ८), 'गहेजुवा', 'गिरदान' आदि ऐसे शब्द हैं जो बलिया के भी पूर्व छपरा आदि के आसपास तक बोले जाते हैं।

बिहार प्रांत में सखियाँ परस्पर वार्तालाप में 'गे' (=संबोधन सूचक 'हे' या 'हो') का प्रयोग करती हैं। बीजक के एक 'कहरा' में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है; जैसे—ननदी गे, संसारा गे, हमारा गे, इत्यादि।

इस प्रकार के प्रयोग, जो बीजक में साँस की तरह समाये हुए हैं, इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उसका संग्रह ही सर्वप्रथम कदाचित् बिहार प्रांत में किसी स्थान पर तैयार किया गया। बीजक में प्रयुक्त कुछ छंद भी—जैसे, बेलि, बिरहुली, चाँचरि—पूर्वीय लोक-गीतों के जान पड़ते हैं। श्री राहुल सांकृत्यायन ने बतलाया है कि एक लय विशेष में गाये जाने वाले भोजपुरी बिरहे हज़ारीबाग की ओर 'चाँचर' के नाम से पुकारे जाते हैं।[२४] 'बिरहुली' भी 'बिरहा' शब्द से ही व्युत्पन्न ज्ञात होता है और बीजक की 'बिरहुली' की शब्द-योजना से ज्ञात होता है कि वह भी पूर्वीय प्रदेशों में प्रचलित लोक-गीतों का ही कोई छंद है। डॉ० सुभद्र झा ने तो कुछ अन्य तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कबीर का जन्म ही वस्तुतः मिथिला में हुआ था और वहीं उन्होंने अपना आरंभिक जीवन भी व्यतीत किया था।[२५] किंतु उनके तर्क मान्य नहीं ज्ञात होते।[२६]

शिवव्रतलाल जी का यह कथन कि बीजक के मूल संकलनकर्ता भगवान साहब थे, कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर भी ठीक जँचता है। प्रसिद्ध है कि भगवान साहब पहले निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हुए थे और कबीरपंथ के प्रभाव में वे बाद में आये। यह बात भगताही संतों को भी मान्य है जो धनौती मठ के 'मूल बीजक' में उद्धृत 'गुरुप्रणाली' के निम्नलिखित दोहे से सिद्ध है—

निमानंद आचार्य के, अनुजाई परबीन।
गोस्वामी भगवान थे, पथ परदर्शक भीन ॥११॥

कहा जाता है कि भगताही शाखा के अधिकांश संत अब भी निम्बार्क संप्रदाय

---

२४. दोहाकोश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, भूमिका, पृ० ६५। २५. जर्नल ऑफ़ दि यूनिवर्सिटी ऑफ़ बिहार, भाग २, नवंबर १९५६ में 'संत कबीर की जन्मभूमि' शीर्षक निबंध। २६. सम्मेलन-पत्रिका, भा० ४३ संख्या ४ में 'कबीर की जन्मभूमि मिथिला : एक समाधान'।

के भेषादि धारण करते हैं।[२७] पीछे हमने देखा कि बीजक की 'विप्रमतीसी' निम्बार्क-संप्रदाय के अनुयायी परशुराम देव कृत 'रामसागर' नामक ग्रन्थ में भी मिलती है। 'विप्रमतीसी' का मूल रचयिता चाहे जो हो, किंतु एक ओर बीजक में और दूसरी ओर परशुरामकृत 'रामसागर' में एक ही प्रकार की रचना मिल जाने से निम्बार्क-संप्रदाय तथा कबीरपंथ के पारस्परिक आदान-प्रदान का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। भगवान साहब को दोनों के बीच की शृंखला मान लेने में कोई कठिनाई नहीं जान पड़ती।

उक्त भगवान साहब के प्रति एक अप्रत्यक्ष संकेत 'अनुराग सागर' नामक एक कबीरपंथी ग्रन्थ में भी मिलता है जहाँ उन्हें 'तिमिर दूत' कहा गया है। इस संबंध में उक्त ग्रन्थ का निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य है जिसमें कबीर साहब धर्मदास से भविष्यवाणी के रूप में कहते हैं—

तिमिर दूत दूजा चलि आवै। जाति अहीरा नफर कहावै।
बहुतक ग्रंथ तुम्हार चुरैहै। आपन पंथ बिहार चलैहै ॥[२८]

(पाठां० 'नियार')।

भगवान साहब के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे जाति के अहीर थे और मूलतः पिठौराबाद के निवासी थे। पिठौराबाद को डॉ० के ने[२९] ज़िला बुंदेलखंड में बताया है, किंतु धनौती बीजक के मंगलाचरण में उसे अलवर राज्य के अंतर्गत बताया गया है। बीजक में 'हता' (=हिं० था : बी० साखी १-१, बीभ० १५-१) 'मौरसी' (=हिं० बौरेगा, बी० सा० ५६-१, बीभ० ३२-१) 'दुहेलड़ा' (=हिं० दुहेला, बी० सा० १४८-२, बीभ० १५४-२) तथा 'कधी' (=कभी भी, बी० सा० २०२-१) आदि प्रयोगों से भगवान साहब और बीजक के संबंध पर और भी प्रकाश पड़ता है। 'अनुराग सागर' में उन्हें ग्रन्थ-चोर कहा गया है, किंतु सांप्रदायिक ग्रन्थों में ईर्ष्यावश अपने प्रतिद्वंद्वियों पर इसी प्रकार छींटा उछालने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। हम यह देखते हैं कि कबीरपंथी साहित्य में भगवान साहब की चर्चा जहाँ-जहाँ मिलती है, वहाँ-वहाँ उनका संबंध 'ग्रंथ' से अवश्य जोड़ा गया है। इससे ज्ञात होता है कि कबीर साहब की वाणियों के मूल ग्रन्थ पर वस्तुतः उन्हीं का अधिकार था। संभवतः इसीलिए वे अन्य कबीरपंथी महंथों की ईर्ष्या के पात्र बने। वास्तव में भगवान साहब ग्रन्थ के

---

२७. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० २७४।
२८. अनुराग सागर, बेलवेडियर प्रेस, पृ० ९१, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० १२०, सीयाबाग, पृ० ७६।
२९. कबीर एण्ड हिज़ फ़ॉलवर्स, पृ० १०५।

अपहरणकर्त्ता नहीं, प्रत्युत उसके संरक्षक ज्ञात होते हैं; क्योंकि पहले हमने यह देख लिया है कि उनके द्वारा प्रवर्तित भगताही शाखा में मान्य बीजक की परंपरा जितनी प्राचीन ठहरती है उतनी न धर्मदास द्वारा प्रवर्तित छत्तीसगढ़ी शाखा के बीजक को और न सुरतिगोपाल द्वारा प्रवर्तित कबीरचौरा शाखा के ही बीजक की।

भगवान साहब कब हुए थे, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। संत-संप्रदायों में प्रचलित परंपरा के अनुसार वे कबीर साहब के समकालीन माने जाते हैं। डॉ० के का अनुमान है कि भगवान गोसाँई सन् १६०० ई० (सं० १६५७ वि०) के लगभग हुए थे।[३०] धनौती मठ से प्रकाशित 'मूल बीजक' में वहाँ के गद्दीधारियों की जो परंपरा उद्धृत की गयी है उससे डॉ० के की तालिका में यद्यपि अंतर मिलता है, किंतु दोनों की पीढ़ियों की संख्या लगभग समान है। डॉ० के ने प्रत्येक गद्दीधारी का औसत कार्यकाल २५ वर्ष मान कर भगवान साहब के समय का अनुमान लगाया है। डॉ० के की सूची के अनुसार बनवारी गोसाँई भगवान साहब के पौत्र शिष्य अर्थात् तीसरी पीढ़ी के सिद्ध होते हैं और बीजक की तालिका के अनुसार वे कोकिल गोसाँई के समकालीन अर्थात् पाँचवीं पीढ़ी में पड़ते हैं। एक महंथ का कार्यकाल यदि स्थूल रूप से २५ वर्ष का माना जाय तो के साहब की तालिका के अनुसार भगवान साहब सं० १७०० वि० के लगभग और दूसरी तालिका के अनुसार वे सं० १६५० वि० के लगभग वर्तमान सिद्ध होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० के ने जिस तालिका का आधार लिया था वह यद्यपि भ्रमपूर्ण है, किंतु भगवान साहब के संबंध में उन्होंने जो अनुमान लगाया है वह अन्य तालिका से भी संभव सिद्ध होता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि बीजक के मूल रूपांतर का संकलन भी अनुमानतः सं० १६५० वि० के पश्चात् विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के उतरार्ध में अर्थात् कबीर साहब के देहांत के लगभग सौ वर्ष बाद हुआ होगा। बीजक में मिलने वाले अत्यधिक मैथिली पुट से यह अनुमान लगाना भी असंगत न होगा कि यद्यपि बीजक का मूल गुटका भगवान गोसाँई ने ही तैयार किया होगा, किंतु उसको अंतिम रूप देने में उनके शिष्य घनश्याम आदि का भी हाथ कम न रहा होगा; क्योंकि 'मूल बीजक' की गुरु-प्रणाली में बताया गया है कि भगवान साहब पिठौराबाद में रहते थे—तिरहुत में उनकी गद्दी की स्थापना उनके उक्त शिष्य द्वारा ही हुई।[३१]

---

३०. वही, पृ० १०६। ३१. दे० मूलबीजक, धनौती की 'गुरु-प्रणाली', पृ०, ४६ पर दोहा ४५-४६—
प्रथम पिठवराबाद म, गोस्वामी भगवान। घनश्याम ताके भए, शिष्य सु ग्यान निधान॥
गुरु से अज्ञा पाइके, तिरहुत देश मझार। नाम खेमसर ग्राम को, कियो ज्ञान विस्तार॥

बीजक के एक लघुतर रूपांतर की चर्चा पहले की जा चुकी है जिसकी एक प्रति श्री उदयशंकर शास्त्री के पास है और जिसमें साखियों की संख्या केवल २४८ है, जब कि अन्य रूपांतरों में उसकी संख्या ३८४ तक पहुँच चुकी है। मेरा अनुमान है कि भगवान साहब द्वारा संकलित मूल बीजक का परिमाण और भी छोटा रहा होगा और उसमें साखियों की संख्या २०० से अधिक न रही होगी। इसी प्रकार शब्दों की संख्या भी ११२ या ११५ न होकर और भी कम—संभवतः १०० के लगभग—रही होगी। बिहार प्रांत की कबीरपंथी गद्दियों में यदि खोज की जाय तो ऐसी ही किसी प्राचीन बीजक प्रति का मिल जाना असंभव नहीं माना जा सकता।

बी० बीफ० तथा बीभ० की अन्य सामान्य विशेषताएँ

उर्दू मूल की विकृतियाँ—बीजक में कई विकृतियाँ ऐसी मिलती हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि कदाचित् उसका कोई पूर्वज फ़ारसी लिपि में था। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. बी० बीफ० तथा बीभ० की ६५ वीं रमैनी में छठी पंक्ति का पाठ है : हरि उतंग तुम जाति पतंगा। **जमघर** (बीभ० **जम के घर**) कियहु जीव को संगा॥ दा० नि० दुपदी रमैणी के दूसरे पद की दूसरी पंक्ति में इसका पाठ है : हरि उतंग मैं जाति पतंगा। जंबुक केहरि के ज्यूं संगा॥ दा० नि० के पाठ का स्पष्ट अर्थ होगा : परमात्मा बहुत ऊँचा (=श्रेष्ठ, उत्तुंग) है और मैं (जीव) कीड़े-मकोड़ों की जाति का हूँ, अर्थात् अत्यन्त तुच्छ हूँ—जैसे सिंह के साथ गीदड़। बी० के 'जमघर' पाठ से कोई सन्तोषप्रद अर्थ नहीं निकलता। 'जमघर' (=यमपुरी या नर्क) का यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं। स्पष्ट ही बीजक का पाठ यहाँ विकृत है। सभी संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ऐसी विकृति केवल फ़ारसी लिपि में ही हो सकती है। उर्दू 'जम्बुक केहरि' में 'बे' के नीचे का नुक़्ता उड़ जाने से 'जम्बुक' को सरलता से 'जमक' या 'जमके' पढ़ा जा सकता है। इसी प्रकार 'ये' के नुक़्तों के अभाव में 'काफ़' तथा 'गाफ़' के सादृश्य के कारण उर्दू 'केहरि' का 'घर' (गाफ़, हे, रे,) पढ़ लिया जाना भी असम्भव नहीं। बीजक की इस अशुद्धि का यही मूल कारण ज्ञात होता है।

२. बी० शब्द ७९ (बीभ० ६४) की दूसरी पंक्ति का पाठ है : अम्मर मधे दीसै तारा। एक चेता (बीभ० चेते) दूजा **चेतवनहारा**। दा० नि० गौड़ी १४१ में इस पंक्ति का पाठ है : अम्बर दीसै केता तारा। कौंन चतुर (दा२ चितर, नि० चत्र) ऐसा चित्रनहारा॥ और गु० गउड़ी २६ में इसका पाठ

है : ओह जु दीसहि अंबरि तारे। किनि ओइ चीते चीतनहारे ।। बी० का 'चेतवनहारा' पाठ यहाँ भ्रमात्मक है । वस्तुतः इस प्रसंग में 'चित्रनहारा' पाठ ही भ्रांतिहीन जान पड़ता है । गु० का 'चीतनहारा' भी इसी पाठ की पुष्टि करता है । बी० के पाठ में यह विकृति फ़ारसी लिपि की भ्रांतियों के कारण आयी हुई ज्ञात होती है, क्योंकि उर्दू में ('ति' के बाद वाले 'रे' को 'वाव' पढ़ लेने से) 'चित्रनहारा' का 'चितवनहारा' या 'चेतवनहारा' सरलता से हो सकता है । अन्य लिपियों में इसकी संभावना कम है।

३. बी० शब्द ८७ (बीभ० ३९) की दूसरी पंक्ति का पाठ है : बपु बारी (बीभ० आरि) **आनंद** मीरगा रुचि रुचि सर मेलै । दा० आसावरी ९, नि० आसावरी ८ तथा स० में इस पंक्ति का पाठ है : बपु बाड़ी अनगु मृग रुचिहीं रुचि मेलै । इस पद में अहेर का रूपक लेकर काया-साधना द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों को विनष्ट करने का साधन बताया गया है । बी० पाठ के अनुसार उक्त पंक्ति के प्रथम चरण का तात्पर्य यह होगा कि शरीर रूपी वन में आनंद रूपी मृग है । पाठान्तर के अनुसार इसका अर्थ होगा : शरीर रूपी जंगल में अनंग (=काम) रूपी मृग है। प्रसंग के अनुसार यहाँ 'आनंद' की अपेक्षा 'अनंग' ही अधिक उपयुक्त लगता है, क्योंकि साधक को जिन विकारों पर विजय प्राप्त करनी होती है उनमें काम ही सब से अधिक दुर्जेय होता है । आनंद की गणना विकारों में वस्तुतः करनी भी नहीं चाहिए । पुनः काम स्वभाव से ही मृग के समान चंचल होता है । आनंद में चंचलता नहीं, प्रत्युत समुद्र की सी गंभीरता रहती है । इस दृष्टि से भी आनंद के लिए मृग का रूपक ठीक नहीं जँचता । सिद्धों तथा संतों की वाणियों में मृग का रूपक मन (जो अनंग अर्थात् अंगहीन होता है) के लिए भी मिलता है । उस दृष्टि से भी दा० नि० स० का पाठ प्रसंगसम्मत है और बी० का पाठ वस्तुतः विकृत है । बी० में यह विकृति कैसे आयी, इसका समाधान केवल एक ही प्रकार से किया जा सकता है, और वह यह कि बी० का कोई पूर्वज अनुमानतः फ़ारसी लिपि में रहा होगा । ('अनंग' में 'गाफ़' की ऊपरी लकीरों के लुप्तप्राय हो जाने पर उसे 'दाल' समझ लेने के भ्रम का उदाहरण) ।

४. बी० शब्द ६२ (बीभ० ६) की पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : पार परोसिन करउं कलेवा संगहि बुधि महतारी । शबे० (३) भेद० शब्द १६ में भी उक्त पद मिलता है जिसमें इस पंक्ति का पाठ है : रांध पड़ोसिन कीन्ह कलेवा धरि बुढ़िया महतारी । पद भर में सासु, ननद, जेठ आदि रूपक के उपमेय पक्ष ही गिनाये गये हैं । जिन आध्यात्मिक तत्वों या मनोविकारों के लिए इनका

निर्देश हुआ है, उनका उल्लेख नहीं हुआ है अन्यथा विपर्यय का सौन्दर्य नष्ट हो जाता। बी० के 'बुधि' पाठ में यह दोष है, अतः शबे० का पाठ ही यहाँ अधिक उपयुक्त समझा जायगा। 'बुढ़िया' का 'बुधि' हो जाना उर्दू में ही अधिक सम्भव ज्ञात होता है।

५. बी० शब्द १३-१ का पाठ है : राम तेरी माया **दुंद मचावै**। बीभ० शब्द १ में इसका पाठ है : राम तेरी माया दोंदि बजावै। मध्यकालीन साहित्य में 'दुंद' शब्द संस्कृत 'दुंदुभि' (=नगाड़ा) के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है; तुल० पदमावत १८९-२ : बाजे ढोल दुंद औ भेरीं; तथा ३४४-१ : चढ़ा असाढ़ गँगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा॥ प्रस्तुत प्रसंग में भी 'दुंद' का प्रयोग इसी अर्थ में ज्ञात होता है; अतः उसके साथ 'बजावै' पाठ ही अधिक उपयुक्त है; 'मचावै' नहीं। इस प्रकार बीभ० का पाठ स्पष्टतया प्राचीनतर ज्ञात होता है। बी० की पाठविकृति फ़ारसी लिपि के कारण उतत्पन्न हुई प्रतीत होती है।

६. बी० साखी १९७ (बीभ० ११२) की पहली पंक्ति है : **नौ** मन दूध बटोरि के टिपके किया बिनास। नि० २८-१० तथा सा० ५८-५ में 'नौ' के स्थान पर 'सौ' पाठ मिलता है। साखी का भाव यह है कि दूध कितना ही इकट्ठा किया जाय, उसमें खटाई की एक बूँद पड़ जाने के कारण वह फट कर बेकार हो जाता है। 'नौ' की अपेक्षा 'सौ' में परिमाण अधिक होने के कारण कथन की तीव्रता और भी बढ़ जाती है; अतः दूसरा पाठ ही अधिक समीचीन ज्ञात होता है। सा० के 'सौ' के स्थान पर बीजक में 'नौ' हो जाना भी फ़ारसी लिपि के ही कारण ज्ञात होता है, क्योंकि उर्दू में यदि लम्बे 'सीन' में 'वाव', 'ज़बर' लगा कर 'सौ' लिख दिया जाय तो उसे 'सौ' भी पढ़ा जा सकता है और 'नौ' भी।

७. बी० शब्द ४०-७ (बीभ० ५७-१७) : सांची प्रीति विषय माया सों हरि भगतन की **फांसी**। तुल० दा० नि० तथा स० (दा० गौड़ी ४०-७) में 'फांसी' के स्थान पर 'हांसी'।

८. बी० शब्द २३ (बीभ० ४६) : याते **लोग** (बीभ० लवंग) **हरफ** ना लागे। तुल० शबे० (२) सतगुरु-महिमा २० : यातें लवंगहि फल ना लागै।

बीभ० में फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ और भी अधिक स्पष्ट हो गयी हैं। उनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. बीभ० शब्द ६१-४ का पाठ है : काटि काटि जीव **सौतुक** देखा। बी० १०५ तथा बीफ० में 'सौतुक' के स्थान पर 'कौतुक' है, जो वास्तव में सार्थक और प्रमाणित लगता है। 'कौतुक' से 'सौतुक' हो जाने का कौतुक केवल उर्दू में ही हो सकता है।

२. बीभ० साखी १५२-१ का पाठ है : मन **मसनंद** गई अरहने, मनसा भई सैंचान। बी० १४५ तथा बीफ० में इसका पाठ है : मन मतंग गइयर हने, मनसा भई सचान। दोनों पाठों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि बीभ० का पाठ कदाचित् भ्रमात्मक और विकृत है। 'मतंग' (=मस्त हाथी) के स्थान पर बीभ० में 'मसनंद' (=तकिया) बन जाने की संभावना पर विचार करने से अनुमान लगता है कि कदाचित् यह विकृति भी फ़ारसी लिपि के ही कारण हुई है। उर्दू 'मतंग' में यदि 'गाफ़' की दोनों लकीरें छोटी पड़ जायँ तो वह 'दाल' के सदृश लगने लगता है और 'ते' तथा 'नु' के नुक़्तों में घटबढ़ होने से उसे 'मसनंद' भी पढ़ा जा सकता है। बहुत संभव है कि बीभ० में यह परिवर्तन इसी प्रकार हुआ हो। 'मतंग' (=हाथी; सं० मातंग) तथा 'गइयर'[३२] (=गैवर; सं० गजेन्द्र) में पुनरुक्ति-दोष नहीं माना जायगा, क्योंकि 'मातंग' शब्द का प्रयोग कालांतर में लक्षणा द्वारा विशेषण रूप में होने लगा—ठीक उसी प्रकार जैसे 'विशाल' शब्द का प्रयोग पहले केवल हाथी के लिए होता था, बाद में भवन आदि के विशेषण रूप में भी होने लगा। ग्रामीण लोग प्रायः 'मतंगा हाथी' (=मस्त हाथी) कहा करते हैं।

३. बीभ० साखी १७१-१ : **सन** कागद छूवौं नहीं, कलम गहौं नहीं हाथ। बी० १८७ में 'सन' के स्थान पर 'मसि' पाठ मिलता है जो स्पष्ट ही शुद्ध और निर्भ्रान्त है। बीभ० में यह विकृति फ़ारसी लिपि की अव्यवस्था के कारण ही आयी हुई ज्ञात होती है। उर्दू 'मसि' में 'मीम' का शोशा 'सीन' में मिल कर 'स' जैसा बन सकता है और आगे सीन के पेट में 'नु' की भी भ्रांति हो सकती है।

४. बीभ० शब्द १८ की अंतिम पंक्ति में : आप **तरी** मोहिं तारै। (तुल० बी० शब्द १६ : तरै)।

५. बीभ० शब्द ४२-८ : ब्रह्म **कोलाल** चढ़ाइन भाठी (तुल० बी० शब्द २६-५ : कुलाल)।

६. बीभ० साखी २१५-२ : दुरजन **सभा** कुंभार का (तुल० बी० २२५ : कुंभ)।

७. बीभ० कहरा ६-३ : मेली **सीस्ति** चराचित राखहु (तुल० बी० क० १-२ : सिस्टि)।

८. बीभ० विप्रमतीसी दोहा : बहा है बहि जात है, **करि गहे चहुं ओर**। (तुल० बी० वही : करि गहि ऐंचहु ओर)।

---

३२. बी० बाराबंकी में 'गइयर' का अर्थ 'गाय के स्वभाव वाला या सीधा' दिया हुआ है, किन्तु यह अर्थ संतोषजनक नहीं ज्ञात होता।

नागरी लिपि-जनित विकृतियाँ—अन्य प्रतियों की भाँति बीजक में भी ऐसी पाठ-विकृतियों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जो नागरी अथवा कैथी लिपि के कारण उसमें आयी हों। केवल दो उदाहरण (और वे भी संदिग्ध) मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं।

१. बी० शब्द ३४ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : मुक्ताहल लिए चोंच **लभावैं**। मौन रहैं की हरि जस गावैं ॥ दा० भैरूं २०, नि० भैरू १६ तथा स० (ग्रन्था० पद ३४४) में यह तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है जहाँ इसके पहले चरण का पाठ है : मुक्ताहल बिन चंच न लावै। इस पद में भक्त की तुलना हंस से की गयी है। 'लभावैं' के लिए बीजकों में लम्बा करना (=लम्बाना) अर्थ[३३] दिया गया है, किन्तु अवधी या भोजपुरी में 'लंबाना' के लिए प्राय: 'लमाउब' धातु का प्रयोग होता है, 'लभाउब' का नहीं। अनुमान यह है कि 'लभावै' कदाचित् नागरी 'लगावै' का विकृत रूप हो।

२. बी० साखी ६ की पहली पंक्ति का पाठ है : इहंई सम्मल करि ले, आगे **बिषयी** बाट। सा० १०-१५, सासी० १८-१६ में इसका पाठ है : यहाँ बिसाहन करि चलो आगे बिषमी बाट। बीभ० (२५) में भी 'बिषमी' पाठ ही है। बी० का 'बिषयी' पाठ भ्रांतिपूर्ण है और सा० अथवा सासी० के 'बिषमी' पाठ का विकृत रूप ज्ञात होता है। मार्ग का बिषम होना ही अधिक सार्थक है, 'बिषयी मार्ग' निरर्थक है। 'बिषमी' का 'बिषयी' हो जाना अनुमानत: नागरी 'म' तथा 'य' के सादृश्य से संभव हुआ है।

बीभ० में नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप में मिलती हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. बीभ० शब्द १२-६ का पाठ है : **सजन** सहित भाव नहिं उहवां सो दहुं एक कि दूजा। बी० ४३-५ में 'सजन' के स्थान पर 'संजम' पाठ मिलता है जो वस्तुतः प्रसंगसम्मत लगता है। 'संजम' का 'सजन' ('न' और 'म' के सादृश्य के कारण) नागरी लिपि में ही सम्भव हो सकता है।

२. बीभ० ३६-५ : चेतत रावल पवन **खेढा**। तुल० बी० ८७-३ : चेतत रावल पवन खेदा। (नागरी 'द' और 'ढ' के सादृश्य के कारण)

३. बीभ० कहरा ८-२५ : दुई चकरी जनि **दरर** पसारहु। तुल० बी० कहरा २-१३ में : दरन (कैथी 'न' और 'र' के सादृश्य के कारण)।

४. बीभ० कहरा ६-३५, ३६ : जिन्हि **सम** जुक्ति अगुमन कै राखिन्ह

---

३३. उदाहरण के लिए दे० बी० बाराबंकी, परिशिष्ठ, पृ० ११६।

घरिन्हि मंछ भरि डेहरि हो। तुल० बी० कहरा १-१८ : 'सम' के स्थान पर 'सभ' और 'घरिन्हि' के लिए 'धरिन्हि'।

६. बीभ० चाँचरि २-५ : कालबूत की **हासनी**; तथा २-७ : भसम **करिनि** जाके साज। तुल० बी० चाँचरि २-२ : 'हस्तिनी' तथा 'किरिम'।

पुनरावृत्तियाँ—बीजक में कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी हैं जो एक से अधिक स्थलों पर मिलती हैं। नीचे उनका निर्देश किया जा रहा है।

१. बी० तथा बीभ० की पहली रमैनी और बीफ० की दूसरी रमैनी की समापक साखी का पाठ है—

कहहिं कबीर पुकारि के, ई लेऊ ब्यौहार।
राम नाम जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार ।।

कुछ हेर-फेर के साथ यही साखी ७४ वीं रमैनी में फिर इस प्रकार आती है : **भरम क बांधल ई जग, कोई न करै बिचार।**
हरि की भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार ।।

२. तुल० बी० र० ११-५ : **वै उतंग तुम जाति पतंगा।**
जमघर किएहु जीव को संगा ।।

तथा० र० ६५-६ : **हरि उतंग तुम जात पतंगा।**
जमघर कियो जीव को संगा ।।

इसी प्रकार तुल० (३) र० सा० ११ तथा सा० १६२, (४) र० सा० १२ तथा ७२, (५) र० १४-१२-१ तथा ५०-१-१, (६) र० १६-४-१ तथा ४३-२-१, (७) र० ३४-४-२ तथा ४३-३-२, (८) र० सा० ५२ तथा ६५, (९) सा० १२६-२ तथा २९१-२, (१०) सा० २८९-२ तथा ३२७-२, (११) सा० ३१२-१ तथा ३१७-१, (१२) बी० शब्द २१-५ (बीभ० ७६-९) तथा बी० ६५-४ (बीभ० ८९-७, ८)। इतनी अधिक पुनरावृत्तियाँ मिलने से दो बातें सिद्ध होती हैं—या तो बीजक के आदर्श अनेक हैं या फिर उसकी प्रतिलिपि-परंपरा में बड़ी अव्यवस्था रही। ऐसा लगता है कि स्मृति के आधार पर अनेक परवर्ती संशोधन-परिवर्धन कालांतर में लगातार होते रहे।

साखियों में छंद-भिन्नता—संतों की साखियों में दोहा छंद की तरह दो पंक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पंक्ति के दोनों चरणों में क्रमशः १३ तथा ११ मात्राएँ आती हैं। कबीर की भी साखियाँ इसी छंद में हैं (यद्यपि मात्राओं की संख्या में न्यूनाधिक्य भी मिल सकता है), किन्तु बीजक के साखी-प्रकरण में कुछ ऐसी साखियाँ भी हैं जिनमें मात्राओं की बहुत भिन्नता मिलती है। उदाहरणतया

बी० सा० २६, ६६, १२४, १५०, १८८, २००, २०४, २२०, २३४, २४७, २५२, २५७ २८७, २९३, ३०७, ३१६, ३२२, ३३१=कुल मिला कर १८। इनमें से साखी २६, १५०, २०४ तथा २५२ अर्थात् ४ साखियाँ ऐसी हैं जिनमें रमैनियों की तरह चार चरण हैं और प्रत्येक में १६ या १७ मात्राएँ आती हैं, जैसे—

जहां बोल तहां अक्षर आया। जहां अक्षर तहां मनहिं दिढ़ाया ॥

बोल अबोल एक होइ जाई। जिन यह लखा सो बिरला होई ॥ (साखी २०४)

साखी ६६, १८८, २५७, २९३, ३०७, ३२२, ३३१ अर्थात् सात साखियाँ ऐसी हैं, जिनमें चार चरण हैं और प्रथम, तृतीय तथा द्वितीय, चतुर्थ चरणों में क्रमशः १६ तथा १२ मात्राएँ हैं, जैसे—

दिल का मरहम कोइ न मिलिया, जो मिलिया सो गरजी।

कहहिं कबीर असमानहिं फाटा, क्योंकर सीवै दरजी ॥३३१॥

शेष ऐसी हैं जिनमें कोई विशिष्ट क्रम नहीं मिलता; उदाहरणतया बी० सा० २०० (बीभ० १८६)—

जो मोहिं जानै ताहि मैं जानौं। (९+९=१८ मात्राएँ)

लोक बेद का कहा न मानौं ॥ (८+८=१६ मात्राएँ)

अथवा बी० सा० २४७—

सुनिए सब की, निबेरिए अपनी। (८+१०=१८ मात्राएँ)

सेंदुर का सिंधौरा, झपनी की झपनी ॥ (११+१०=२१ मात्राएँ)

किसी-किसी में चौपाई की भाँति एक अर्द्धाली मिल जाती है; जैसे सा० २८७—

भूँभरि घाम बसै घट माहीं। सब कोइ बसै सोग की छांहीं ॥

ऊपर उद्धृत सा० २०४ दा० नि० 'ग्रन्थ बावनी' में पाँचवीं तथा ६ठीं पंक्तियों के रूप में मिलती है, और वहीं प्रसंगसम्मत भी है। अनुमानतः किसी संत के मुख से सुन कर बी० की किसी पूर्व-प्रति के हाशिए में यह पंक्तियाँ लिख ली गयी थीं और कालान्तर में प्रतिलिपि करते समय मूल भाग में मिला ली गयीं। ऊपर जिन छन्दों का निर्देश किया गया है उनमें से अधिकांश इसी प्रकार से बीजक में प्रविष्ट हुए ज्ञात होते हैं। हाशिए में अतिरिक्त प्रक्षेप जोड़ने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। संस्कृत की प्राचीन प्रतियों में भी इस प्रकार के परिवर्धन बहुत मिला करते हैं जिनका निर्देश 'अत्र शोध पत्रम्' द्वारा कर दिया जाता है।

शक० प्रति का विवरण

यह एक मुद्रित प्रति है जिसे कबीरचौरा स्थान, वाराणसी के साधु अमृतदास

जी ने प्रकाशित किया है। कबीरचौरा से सर्वप्रथम बिशुनदास साहब ने एक शब्दावली छपवायी थी, फिर उसी के दो रूपांतर, बड़ी (१९८२ वि०) तथा छोटी शब्दावली के नाम से, साधु लखनदास ने छपवाये। प्रस्तुत ग्रन्थ (मूल भाग २२४ पृ० का) इसी का आधुनिकतम रूपांतर है, जिसके चौथे संस्करण पर गुरु-पूर्णिमा सं० २००७ वि० (सन् १९५० ई०) की तिथि अंकित है। प्रकाशक के संक्षिप्त वक्तव्य के पश्चात् इसमें तीन संस्कृत श्लोकों में सद्गुरु कबीर साहब की स्तुति है तत्पश्चात् 'आज' पत्र से उद्धृत 'कबीर का अद्भुत व्यक्तित्व' शीर्षक एक छोटा सा लेख (लेखक श्री विश्वनाथ सिंह, सहायक-सम्पादक) और उसके पश्चात् श्री रामेश्वरानंद द्वारा विरचित काशी कबीरचौरा की गुरु-प्रणाली पहले संस्कृत में फिर हिन्दी में दी हुई है।[३४]

पुस्तक में कबीर के अतिरिक्त सम्प्रदाय के अन्य संतों की रचनाएँ भी आती हैं, जिसका निर्देश प्रकाशक ने अपने वक्तव्य में ही कर दिया है। कारण यह है कि इसका संकलन एक कबीरपंथी द्वारा कबीरपंथियों के लिए किया गया है। जैसा कि आगे सामग्री के विवरण से प्रकट होगा, पदों का क्रम-विभाजन भी प्राय: पंथ की दिनचर्या आदि की दृष्टि से किया गया है। पुस्तक में निम्नलिखित रचनाएँ आयी हैं—संध्या गौरी (१९ शब्द), संध्या साखी (१० साखियाँ), संध्या आरती (१६ शब्द); इसके पश्चात् धर्मदासकृत 'दयासागर', नाभा जी कृत ६ छप्पय और ४ साखियाँ, संत साहब कृत अष्टक (कबीर की स्तुति) तथा रामरहस्य, पूरणदास आदि अन्य कबीरपंथियों द्वारा रचित कुछ फुटकल रचनाएँ दी हुई हैं। तत्पश्चात् मंगल (१६ शब्द), मंगल चौका आरती (१ शब्द), नरियर मोरने का शब्द (१ पद), भोग लगाने तथा आचमन के शब्द (२ पद) देकर पुन: किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कबीर की स्तुति और धर्मदास कृत 'आदि मंगल' और 'अगाध मंगल', 'सिंहासन रमैनी' तथा 'छंद रमैनी' नामक रचनाएँ दी हुई हैं। इसके पश्चात् क्रमश: पंचायतन मंगल (५), झूमर (४), सुहेलो (१), मंगल (१), हंसाल (४), झूमड़ा (२), भंडारा धुन भोग लगाने का शब्द (१), तिनका तोरने का शब्द (१) आते हैं जिनमें से कुछ में स्पष्ट रूप से धर्मदास

---

३४. १. कबीर साहब (परमाचार्य)—२. सुरतिगोपाल साहब—३. ज्ञान साहब—४. श्याम साहब—५. लाल साहब—६. हरिसुख साहब—७. शीतल साहब—८. सुख साहब—९. हुलास साहब—१०. माधो साहब—११. कोकिल साहब—१२. राम साहब—१३. महा साहब—१४. हरि साहब—१५ शरण साहब—१६. पूरण साहब—१७. निर्मल साहब—१८. रंगी साहब—१९. गुरु साहब—२०. प्रेम साहब—२१. रामविलास साहब (वर्तमान)। कबीर और रामविलास साहब के चित्र भी हैं।

की छाप है। उत्तरार्द्ध में निम्नलिखित रागों के शब्द मिलते हैं जिनकी संख्याओं का भी निर्देश यहाँ कर दिया जा रहा है—सोहर २, हंसावली ५, गारी १३, बसंत १२, होरी २७, धमार ३, उलारा फाग ३, चैता ३, घाटो २, सायरी शब्द ३६[३५], कबीरगोरख संवाद ३, ध्रुपद १ (कबीर कृत नहीं), लावनी २, खेमटा १३, सोरठि ४, पूर्वी १, मांड १, कहरा ४, प्रभाती १३, नाछू ३, उछाह मंगल ६। अंत में छः रेखते, जिनकी भाषा अत्यन्त आधुनिक है और चार पद जतसारी राग के मिलते हैं जिनमें अत्यधिक पूर्वी प्रभाव है।

ऊपर धर्मदास की जिन रचनाओं का उल्लेख हुआ उनके अतिरिक्त भी अनेक पद ऐसे मिलते हैं जिनमें उनका नाम स्पष्ट रूप से आया है। आरती १, ३, ५, १३, १६, मंगल २, १४, सुहेला मंगल, तिनका तोरने का शब्द १, तथा २, होरी ९, १५, २३ चैता १, सायरी १०, २४, प्रभाती ११, १२, उछाह मंगल २, ३, ४, ५, ६ तथा रेखता में भी धर्मदास का नाम मिलता है। अतः इनके भी रचयिता निश्चित रूप से धर्मदास ही हैं। इसी प्रकार गौड़ी ५ में नाभादास की छाप और खेमटा १३ में कमालिन (कबीर की तथाकथित पुत्री या शिष्या) की छाप मिलती है। इस प्रकार सारी पुस्तक का लगभग एक तिहाई अंश दूसरों की रचनाओं से भरा पड़ा है। जो शेष बचता है उसमें भी कई छंद ऐसे हैं जिनमें यद्यपि नाम तो स्पष्ट रूप से किसी का नहीं मिलता, किन्तु उनके रचयिता कबीर नहीं हो सकते। पाठ में संशोधन भी बहुत किये गये हैं जिनका संकेत प्रकाशक ने वक्तव्य में ही कर दिया है। इन परिस्थितियों में पाठ संबंधी विकृतियों का पता लगाना बड़ा कठिन हो जाता है, फिर भी उनके कुछ न कुछ लक्षण आज तक शेष हैं जिनसे इसकी निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है।

फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—शक० में निम्नलिखित पाठ-विकृतियाँ ऐसी मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इसकी भी मूल प्रति, जिसकी प्रतिलिपि-परम्परा में यह प्रति पड़ती है, उर्दू में ही थी। नीचे उनका निर्देश किया जा रहा है—

१. शक० गौरी ८-५ का पाठ है: सूरा काहे मरन को डरपै, सतियौ न **संशय** भाँड़े। दा० गौड़ी १२९, नि० गौड़ी १३२, गु० गौड़ी ६८, शबे० (१) चितावनी-उपदेश २२ तथा स० में 'संशय' के स्थान पर 'संचै' पाठ मिलता है और स्पष्ट रूप से यही पाठ प्रसंगसम्मत और सार्थक भी है। यदि 'भाँड़ना' का

३५-पुस्तक में ३८ संख्या दी हुई है जो ग़लत है, उसमें ११ संख्या भूल से दो बार छप गयी है।

अर्थ तोड़ना या नष्ट करना भी लिया जाय तो संशय न भाँड़ना का अर्थ होगा संदेह या दुविधा नष्ट न करना, जो उक्त प्रसंग के विपरीत है। शक० की इस विकृति को संभावनाओं पर विचार करने से अनुमान होता है कि यह भी फ़ारसी लिपि के ही कारण संभव हुई है। उर्दू में 'संचै' सीन, नु, चे और ये मिला कर लिखा जायगा। यदि 'चे' के शोशे और नुक़्तों में कुछ स्खलन आ जाय तो 'संचै' का 'संशय' हो जाना असम्भव नहीं है; क्योंकि इसके अतिरिक्त शेष सब अक्षर दोनों में एक से हैं।

२. शक० गौरी १९-५,६ का पाठ है : सुंदर बदन देखि मत भूलो, **क्या** सांवर क्या गोरा। भजन बिना तन काम न अइहै, कोटि सुगंध **चहुँ ओरा**॥ शबे० (१) चिता० उप० ७० में इन पंक्तियों का पाठ है : या काया कौ गर्भ न कीजै क्या सांवर क्या गोरा रे। बिना भक्ति तन काम न आवै कोटि सुगंध चभोरा रे॥ 'चहुं ओरा' और 'चभोरा' दो पाठों में से कोई एक ही प्रामाणिक हो सकता है। शक० के अनुसार दूसरी पंक्ति का अर्थ होगा : भजन के बिना यह शरीर व्यर्थ है, चाहे इसके चारों ओर करोड़ों प्रकार की सुगंधियाँ हों; और शबे० के अनुसार इसका अर्थ होगा : भक्ति बिना यह शरीर व्यर्थ है, चाहे करोड़ों ही प्रकार की सुगंधियों से चभोरी हुई हो (चभोरी=डुबोई हुई, लथपथ)। शक० में भाव की शिथिलता स्पष्ट ही खटकती है, अतः यहाँ शक० का पाठ विकृत ज्ञात होता है। 'चभोरा' का 'चहुँ ओरा' बन जाना उर्दू में ही सम्भव हो सकता है।

३. शक० बसंत २ में सातवीं पंक्ति का पाठ है : पुहपु **पुरानी** गयौ है सूख। और दसवीं पंक्ति का पाठ है : दहुं दिसि चितवै **मधु कराय**। दा० नि० बसंत १२ तथा शबे० (२) चिता० ३१ में 'पुरानी' के स्थान पर 'पुराने' और 'मधु कराय' के स्थान पर दा नि० में 'मधुपराय' और शबे० में 'भुंइ पराय' पाठ मिलते हैं। 'पुहुप' (पुल्लिंग) के साथ 'पुरानी' स्त्री० विशेषण व्याकरण-विरुद्ध है और 'दहुं दिसि चितवै' के साथ शक० का 'मधु कराय' पाठ अर्थ-हीन है। वस्तुतः यहाँ दा० नि० का पाठ ही प्रामाणिक ज्ञात होता है। दोनों विकृतियाँ केवल उर्दू में ही संभव हैं। उर्दू 'मधुपराय' में यदि 'पे' के नीचे के नुक़्ते ग़ायब हो जायँ तो 'पे' का पेट ऊपर के 'वाव' से मिल कर 'काफ़' की शक्ल का हो सकता है और इस प्रकार 'मधुपराय' का 'मधु कराय' पाठ हो सकता है। 'पुराने' का 'पुरानी' उर्दू में प्रायः ही हुआ करता है। अन्य लिपियों में यह विकृतियाँ सम्भव नहीं।

४. शक० सायरी ११-११ का पाठ है : मन मारि अगम गढ़ लीन्हा। **चितमित** पर डेरा कीन्हा। 'चितमित' के स्थान पर नि० सोरठि ६२ में 'जत सत' और शबे० (३) सूरमा ३ में 'चित्रगुप्त' पाठ हैं। 'चितमित' की प्रस्तुत प्रसंग में कोई सार्थकता नहीं ज्ञात होती। शक० की यह विकृति भी उसकी किसी ऐसी प्रतिलिपि-परंपरा की ओर संकेत करती है जिसमें कोई प्रति फ़ारसी लिपि में लिखी रही होगी।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—ऐसी विकृतियों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जिनकी उत्पत्ति नागरी अथवा कैथी लिपि की अव्यवस्था के कारण हुई हो। पुस्तक भर में केवल एक उदाहरण मिलता है जिसे इस कोटि में रक्खा जा सकता है और वह निम्नलिखित है।

'सत का बिलोवना बिलोय मोरि माई।' से प्रारम्भ होने वाली छठी प्रभाती की अंतिम पंक्ति का पाठ शक० में है : कहैं कबीर **गुंजर** बहुरानी। फुटि गई मटकी शब्द समानी॥ दा० नि० भैरू ३० (ग्रन्थावली ३५४) पहले चरण का पाठ है : कहै कबीर **गुजरी** बौरानी। इस पद में आध्यात्मिक साधना द्वारा परम पद को प्राप्त करने का रूपक जमाये हुए दूध को बिलो कर माखन निकालने से बाँधा गया है। 'गूजरी' का अर्थ ग्वालिन या अहीरिन होता है, जो मट्ठा मारती है। गुजरी∠गुज्जरि∠गुज्जर∠गुञ्जर∠गुंजर—इस विकृति का यही क्रम ज्ञात होता है। अंतिम पंक्ति का तात्पर्य यह है कि गूजरी अर्थात् मनसा पागल हो जाती है, क्योंकि मटकी अथात् शरीर फूट कर नष्ट हो गयी और आत्मा परमज्योति में समा गयी। 'बहुरानी' का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। ज्ञात होता है कि नागरी 'उ' और 'हु' के सादृश्य से किसी ने 'बउरानी' का 'बहुरानी' पढ़ लिया और वही पाठ शक० में भी आ गया।

पंजाबी प्रभाव—शक० में आयी हुई वाणी में यत्र-तत्र पंजाबी-प्रभाव भी दृष्टिगत होते हैं जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

शक० प्रभाती १ की प्रत्येक पंक्ति के अंत में **बे** शब्द मिलता है। इस प्रकार की टेक प्राय: पंजाबी गीतों में मिलती है और यह उसी का प्रभाव ज्ञात होता है (तुल० दा५ रामकली २७)। इसी प्रकार गौरी १५ में **दीता** (=दिया), **कीता** (=किया) शब्द भी पंजाबी के ही ज्ञात होते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि शक० जिस प्रति पर आधारित है, उसका कोई पूर्वज पंजाब भी पहुँचा था जिसके फलस्वरूप इस स्थिति में पहुँचने के पूर्व उक्त

पंजाबी प्रयोग भी इसमें सम्मिलित हो गये।

पुनरावृत्तियाँ—शक० में कुछ पंक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जो दो या दो से अधिक स्थलों पर अनावश्यक रूप से दुहरायी हुई मिलती हैं। इन पुनरावृत्तियों का नीचे निर्देश किया जा रहा है।

१. तुल० मंगल ३-११, १२ : **मंगल कहँहि कबीर संत जन गावहीं।**
गुरु संगति सतलोक सो हंस सिधावहीं॥

तथा मंगल १५-२५, २६ : **यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं।**
कहँहि कबीर सतभाव तो लोक सिधावहीं॥

और मंगल १-१९, २० : **परम आनन्द जब होय तो गुरुंहि मनाइए।**
कहँहि कबीर सतभाव सो लोक सिधाइए॥

२. 'चंदन आँगन लिपाइहौं मोतियन चौक पुराऊँ।' यह एक ही पंक्ति शक० में चार स्थलों पर (सुहेला १-२, २-२ तथा झूमड़ा १-६, २-२) मिलती है।

३. तुल० सायरी शब्द २०-६, ७, ८, ९ :

लज्जा कहै मैं जम की दासी। एक हाथ मुदगर दूजे हाथे फाँसी॥
माया कहै मैं अबला बलिया। ब्रह्मा विश्नु महेश्वर छलिया॥१॥

तथा प्रभाती ७-२, ३, ४, ५, ६, ७ :

नीद कहै मैं जमकी दासी। एक हाथे मुग्दर दूजे हाथ फाँसी॥
नीद कहै मैं अबला बलिया। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर छलिया॥

(अंतर केवल 'लज्जा' और 'नीद' का है)।

इसी प्रकार तुल० शक० गौरी १४-११ तथा ३७-६; सिंहासन रमैनी ३-१२, १३ तथा ६-८, ९; झूमड़ा २-३ तथा सायरी १४-३।

अन्य विशेषताएँ

सांप्रदायिक प्रभाव—आरम्भ में दादूपंथ, निरंजनीपंथ, कबीरपंथ, अथवा नानकपंथ आदि संत-सम्प्रदाओं में नाम-स्मरण के लिए प्रायः राम नाम की सब से अधिक महत्ता थी। प्रत्येक पंथ का प्रवर्तक महात्मा इसी नाम पर दीवाना था और इसी नाम की महिमा उनकी प्राचीन वाणियों में मिलती है। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय में पार्थक्य की दृष्टि से उपास्य तत्व का एक विशिष्ट और पृथक् नाम भी चुन लिया गया। इस प्रकार कबीरपंथ में 'सत्यनाम', दादूपंथ में 'सत्तराम', राधास्वामीपंथ में 'राधास्वामी' की उपासना होने लगी। इस दृष्टि से प्राचीन वाणियों का संशोधन भी किया जाने

लगा। शक० में भी इस प्रकार के संशोधन यत्र-तत्र मिलते हैं। उदाहरण के लिए इसमें गौरी ७ की अंतिम पंक्ति ली जा सकती है, जिसका पाठ है : कहहिं कबीर **सत्यव्रत साधो** नव निधि होइ रहे चेरा। नि० बिहंगड़ौ १८ में इसका पाठ है : 'कहै कबीर **राजा राम** भजन सूं नवनिधि ह्वोइगी चेरो।' और शबे० में इसे एकदम बदल कर 'कहै कबीर सुनो भाई साधो हो रहु **सतगुरु चेरो**' कर दिया गया है। शक० और शबे० दोनों ही साम्प्रदायिक संकलन हैं : पहला कबीरपंथी और दूसरा राधास्वामीपंथी। शबे० में जो पाठ-परिवर्तन किया गया है वह कुछ खप सकता है, किन्तु शक० का संशोधन 'सत्यव्रत साधो' स्पष्ट ही खटकता है। इसी प्रकार 'राम' के स्थान पर 'नाम', 'हरि' के स्थान पर 'गुरु' आदि के परिवर्तन भी बहुत मिलते हैं। इन संशोधनों के पीछे सांप्रदायिक प्रवृत्ति की पुष्टि ऐसे उदाहरणों से होती है जहाँ दो या दो से अधिक स्वतंत्र शाखाओं में प्रायः एक पाठ और सांप्रदायिक ग्रंथों में उसके स्थान पर दूसरा संशोधित पाठ मिलता है।

ध्रुवक के क्रम में परिवर्तन—शक० की अन्य विशेषता इसकी प्रथम पंक्ति के संबंध में है। इन पंक्तियों के क्रम में अन्य प्रतियों की तुलना में कुछ अन्तर मिलता है - उदाहरणतया शबे० के 'जन को दीनता जब आवै' से आरम्भ होने वाले पद का पाठ शक० गौरी ४ में 'दीनता जो आवै जन को' है। इस प्रकार का परिवर्तन इसके अधिकांश पदों में मिलता है।

शबे० प्रति का विवरण

यह बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित है और चार भागों में निकली है। इसमें कबीर के शब्दों का विभाजन विषय के अनुसार विभिन्न अंगों में मिलता है। इसका प्रथम भाग, जो ११२ पृष्ठों का है, सर्वप्रथम सन् १९०८ ई० में छपा था। यह उक्त प्रेस से प्रकाशित संतबानी पुस्तकमाला (कुल ४४ पुस्तकें) की चौथी पुस्तक है। दूसरे, तीसरे तथा चौथे भाग क्रमशः इसके पश्चात् निकले। प्रथम भाग के आरम्भ में कबीर साहब का संक्षिप्त जीवनचरित (४ पृष्ठों में) दिया हुआ है, उसके पश्चात् इसमें उनके २२४ शब्द मुद्रित हैं, जिनका क्रम तथा विभाजन निम्नलिखित है : १. सतगुरु और शब्द महिमा १३ शब्द, २. विरह और प्रेम ३५ शब्द, ३. चितावनी और उपदेश ९१ शब्द, ४. भेद बानी २९ शब्द, ५. शब्द झूलना, ७ शब्द, ६. होली ६ शब्द, ७. रेखता ३१ शब्द, ८. मिश्रित १२ शब्द=कुल २२४ शब्द।

दूसरे भाग में २४२ शब्द हैं जिनका विभाजन निम्नलिखित ढंग से है :

१. उपदेश ३७ शब्द, २. सतगुरु महिमा २५ शब्द, ३. चितावनी ४६ शब्द, ४. भेद २८ शब्द, ५. प्रेम ३८ शब्द, ६. होली ३० शब्द, ७. मंगल १५ शब्द, ८. मिश्रित २३ शब्द=कुल २४२ शब्द। अंत में एक 'निरख प्रबोध की रमैनी' दी हुई है जिसमें ६ दोहे आते हैं।

तीसरे भाग में निम्नलिखित क्रम से ११६ शब्द दिये हैं : १. आदि बानी १ शब्द, २. महिमा आदि धाम १२ शब्द, ३. महिमा नाम ८ शब्द, ४. महिमा शब्द ३ शब्द, ५. साधु महिमा ६ शब्द, ६. बिरह प्रेम ९ शब्द, ७. सूरमा ३ शब्द ८. विनती ३ शब्द, ९. दीनता २ शब्द, १०. भेदबानी १७ शब्द, ११. चेतावनी २१ शब्द, १२. उपदेश ९ शब्द, १३. माया २ शब्द, १४. मिश्रित २३ शब्द= कुल ११९ शब्द।

चौथे भाग में मंगल १२ शब्द, गारी ३ शब्द, झूलना ३, कहरा २, दस-मुकामी रेखता १, जतसार १, बंसत १, होली ४, दादरा २, कुल मिलाकर २० शब्द मिलते हैं। अन्त में एक ककहरा दिया हुआ है जिसमें नागरी के ३४ अक्षरों पर ('क' लेकर 'क्ष' तक) ३४ छंद मिलते हैं। प्रत्येक छंद में पदों के समान चार पंक्तियों के साथ एक दोहा मिलता है।

इस प्रकार शबे० में कुल ६१५ शब्द, एक निरख प्रबोध रमैनी और एक ककहरा मिलते हैं। किसी भी प्रकाशित प्रति में कबीर के इतने शब्द नहीं मिलते और फिर मोटे टाइप में छपे होने के कारण साधुओं और साधारण जनता में इसका बहुत प्रचार है।

पाठ-संबंधी विशेषताएँ

सांप्रदायिक प्रभाव—शबे० की सब से प्रमुख विशेषता यह है कि उसपर सांप्रदायिक प्रभाव अत्यधिक मात्रा में मिलता है। कबीरपंथियों द्वारा प्रकाशित वाणियों में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु 'शब्दावली' के सम्पादक ने अपना सिद्धांत जितने पक्के ढंग पर निबाहा है उतना किसी ने नहीं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि बेलवेडियर प्रेस के स्वामी राधास्वामी-संप्रदाय के हैं। उन्होंने कबीर की वाणियों का इतना सुन्दर संकलन छपवा कर जहाँ संत-साहित्य का बड़ा उपकार किया वहीं सांप्रदायिकता के लोभ में उन्होंने इसका महत्व घटा भी दिया। विशेष परिवर्तन ईश्वरपरक नामों में किया गया है, जिसकी चर्चा पीछे शक० के प्रसंग में भी की गयी है। बीजक, शक० अथवा सासी० आदि कबीरपंथी प्रकाशनों में तो कहीं-कहीं 'राम', 'गोविंद', 'हरि' आदि परमात्मपरक शब्दों के दर्शन हो जाते हैं, किन्तु

शबे० में इन नामों के दर्शन भी दुर्लभ हैं। यह नाम अपवाद रूप में केवल ऐसे स्थलों पर आ गये हैं जिनमें उनके प्रति कोई विरोधी विचार प्रकट किया गया है। यह उसकी ऐसी स्थूल विशेषता है कि इसकी पुष्टि में उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। पुस्तक को सरसरी निगाह से देख जाने से कोई भी व्यक्ति (चाहे वह राधास्वामी-संप्रदाय का ही क्यों न हो) उसकी इस विशेषता से अवगत हो सकता है। फिर भी कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. शबे० (१) विरह-प्रेम शब्द ७ का पाठ निम्नलिखित है—

दुलहिन गावहु मंगलचार।
हम घर आए परम पुरुष भरतार॥
तन रत करि मैं मन रत करिहौं पंच तत्व तब राती।
गुरू देव मेरे पाहुन आए मैं जोबन में माती॥२॥
शरीर सरोवर बेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा।
गुरूदेव संग भांवरि लेइहौं धन धन भाग हमारा॥

दा० नि० गौड़ी १ तथा गु० आसा २४ में शबे० की द्वितीय पंक्ति के 'परम पुरुष' के स्थान पर 'राजा रांम' और चौथी तथा छठी पंक्तियों के 'गुरूदेव' के स्थान पर क्रमशः 'रांम देव' और 'रांम राय' पाठ मिलते हैं। जैसा आगे हम देखेंगे, दा० नि० तथा गु० में परस्पर किसी प्रकार का संकीर्ण-संबंध नहीं है, क्योंकि पाठ-विकृति का ऐसा एक भी उदाहरण नहीं जो तीनों में समान रूप से मिलता हो। अतः इन तीनों में समान रूप से मिलने वाला पाठ सिद्धांततः ग्राह्य होना चाहिए। इस प्रकार शबे० के संशोधन परवर्ती ज्ञात होते हैं।

२. इसी प्रकार दा० गौड़ी ४०, नि० गौड़ी ४४ तथा बी० शब्द ४० और शक० की कुछ पंक्तियों का पाठ है—

पंडित बाद बदै सो झूठा।
रांम के कहे जगत गति पावै खांड कहे मुख मीठा।
नर के साथ सुवा हरि बोलै हरि परताप न जानैं।
जो कबहूं उड़ि जाइ जंगल मैं तौ हरि सुरति न आनैं॥
सांची प्रीति बिषै माया सौं हरि भक्तन सौं हांसी।
कहै कबीर एक रांम भजे बिन बांधे जमपुर जासी।

शबे० (३) मिश्रित २२ पर भी यह पद मिलता है जिसमें केवल पहला 'राम' यथावत् है (यह अर्थ लेकर कि राम-राम करने से दुनिया में किसी की

मुक्ति नहीं होती), अन्यथा शेष पंक्तियों का पाठ इस प्रकार है—

नर के पास सुवा आइ बोलै गुरु परताप न जाना ।
जो कबहीं उड़ि जात जंगल में बहुरि सुरति नहिं आना ॥
सांची हेतु विषय माया से सतगुरु शब्द की हांसी ॥
कहै कबीर गुरू के बेमुख बांधे जमपुर जासी ॥

जैसा हम आगे देखेंगे दा० नि० स० बी० में भी किसी प्रकार का संकीर्ण-संबंध नहीं है, अत: दा० नि० गु० के समान दा० नि० स० बी० में मिलने वाला समान पाठ भी निरापद रूप से प्रामाणिक माना जाना चाहिए और शबे० द्वारा प्रस्तुत पाठ-भेद मान्य नहीं होना चाहिए । वास्तव में यह परिवर्तन साम्प्रदायिक प्रभाव के कारण हुआ ज्ञात होता है, क्योंकि राधास्वामी-संप्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार उनका (कबीर का) इष्ट 'सत्य-पुरुष निर्मल चैतन्य देश का धनी था जो ब्रह्म, और पारब्रह्म सब से ऊँचा है । उसी की भक्ति उन्होंने दृढ़ाई है और अपनी बानी में उसी परम पुरुष और उसके धुन्यात्मक नाम की महिमा गायी ।'' इसी सिद्धांत के आधार पर उन्होंने यह निर्णय भी निकाल लिया है कि इसके अतिरिक्त (अर्थात् 'सत्य-पुरुष', 'परम पुरुष' 'नाम' आदि के अतिरिक्त 'राम' 'हरि', 'गोविन्द' आदि पाठ के साथ आने वाले) जो शब्द कबीर साहेब के नाम से प्रसिद्ध हैं, वह पूरे या थोड़े-बहुत क्षेपक हैं ।[३६] इस कसौटी पर जो पद खरे नहीं उतरे हैं उन्हें, प्रक्षिप्त समझ कर, पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया है; इस बात की घोषणा प्रत्येक भाग के आरम्भ में ही कर दी गयी है : ''जिसमें कबीर साहब के अति मनोहर पद **शोध कर और क्षेपक निकाल कर** छापे गये हैं ।'' राधास्वामी-संप्रदाय वालों का (जिसमें बेलवेडियर प्रेस के स्वामी भी सम्मिलित हैं) विश्वास है (जैसा कि बीजक के सम्बन्ध में कबीरपंथियों का या 'गुरु ग्रन्थ साहब' के सम्बन्ध में सिक्खों का है) कि इसकी एक-एक मात्रा परम प्रामाणिक है, इसकी प्रामणिकता पर अविश्वास करने वाला या इसके पाठ में परिवर्तन करने वाला सीधे नर्क में पड़ेगा । इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह उनकी श्रद्धा का प्रश्न है ।

राधास्वामी-प्रभाव के अतिरिक्त शबे० में परवर्ती कबीरपंथी प्रभाव भी मिलता है । अतिरिक्त रूप से मिलने वाले पदों में ऐसे अनेक हैं जो स्पष्ट रूप से कबीरपंथियों की परवर्ती रचनाएँ ज्ञात होते हैं । उदाहरण

३६. शबे० भाग१, भूमिका पृष्ठ २ (तुल० शिवव्रत लाल द्वारा संपादित 'बीजक' की भूमिका में 'कबीर साहिब का इष्ट' शीर्षक निबंध) ।

के लिए प्रथम भाग में 'भेद बानी' के शब्द २२,२३ तथा द्वितीय भाग में 'भेद बानी' शब्द १८ लिये जा सकते हैं, जिनमें नाना लोकों, शून्य-लोकों तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं और 'चकरियों' का विस्तृत विवरण दिया हुआ है। किसी-किसी में तो कबीर का नाम भी नहीं मिलता, किन्तु उन्हें मूल वाणी के रूप में स्वीकृत किया गया है। यहाँ ऐसे पदों की चर्चा की जा रही है जो शबे० को छोड़ अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलते।

अन्य विशेषताएँ

पाठ में मनमाना संशोधन करने के कारण शबे० की लिपिजनित विकृतियाँ पकड़ने का अवसर बहुत कम रह जाता है, फिर भी ऐसी विकृतियाँ मिलती अवश्य हैं। इसमें उर्दू की अपेक्षा नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ अधिक मिलती हैं अतः पहले उन्हीं का विवरण दिया जा रहा है।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—(१) शबे० (२) भेद शब्द १५ की चौथी पंक्ति का पाठ है : धनुष बान ले चला पारथी, धनुआ के **परच** नहीं है रे। दा० नि० तथा स० (ग्रन्था० पद २१२) में 'परच' के स्थान पर 'पनच' पाठ मिलता है। आशय यहाँ धनुष की प्रत्यंचा से है। सं० 'प्रत्यञ्चा' से हिंदी में 'पनच' होता है, न कि 'परच'। अतः शबे० का पाठ यहाँ विकृत है। कैथी अथवा प्राचीन नागरी लिपि में नकार और रकार में विशेष रूप-वैभिन्य नहीं होता था। इसी भ्रम से किसी प्रतिलिपिकार ने 'पनच' (=प्रत्यंचा) को 'परच' पढ़ लिया और वही अशुद्ध पाठ शबे० में भी आ गया।

२. शबे० (१) विरह-प्रेम ७ में चौथी पंक्ति का पाठ है : गुरूदेव मेरे पाहुन आये मैं जोबन **में माती**। उक्त पद दा० नि० गौड़ी १ तथा गु० आसा २४ में भी मिलता है। दा० नि० में उक्त पंक्ति का पाठ है : रांमदेव मोरैं पाहुनैं आए मैं जोबन मैंमाती। 'मैंमाती' (=मदमाती) एक शब्द है, किन्तु शबे० में 'मैं' को 'में' के अर्थ में अलग कर 'माती' पृथक् रखा गया है, जो नागरी में ही स्वाभाविक रूप से हो सकता है।

३. शबे० (१) चिता० उप० शब्द ३८ की तीसरी पंक्ति का पाठ है : **घाटे बाढ़े** सब जग दुखिया क्या गिरही बैरागी हो। नि० गौड़ी १३६ में 'घाटे बाढ़े' के स्थान पर 'हाटे बाटे' और बी० ६१ में 'बाटे बाटे' पाठ है—अर्थात् शबे० के 'बाढ़े' के स्थान पर नि० तथा बी० में 'बाटे' पाठ आता है। वास्तव में 'हाटे बाटे' या 'घाटे बाटे' (=जो जहाँ है वहीं) एक मुहावरा है (तुल० **घाट बाट** कहुं अटक होइ नहिं सब कोउ देइ निबाहि—सूर) जो नागरी 'ट' और 'ढ' के

भ्रम से शबे० में 'घाटे बाढ़े' (=घट बढ़ कर) हो गया है ।

४. शबे० (३) साधु-महिमा शब्द १ की प्रथम तथा चतुर्थ पंक्तियों का पाठ है : साधु **घर** सील संतोष बिराजै। आसन **अदल** अरु छमा अग्र धुज तन तजि अंत न धावै ।।उक्त पद शक० गौरी ३ में भी मिलता है, और उसमें इन पंक्तियों का पाठ है : शील संतोष विराजै साधु घट । आसन अटल क्षमा धीरज धरु तन तजि अंत न जावै । शबे० का पाठ यहाँ स्पष्ट रूप से विकृत है। शील-संतोष घट (=शरीर) के ही गुण होते हैं, घर के नहीं । इसी प्रकार शबे० के 'आसन अदल अरु छमा अग्र धुज' के अर्थ में भी बड़ी कष्टकल्पना करनी पड़ती है। इसके विपरीत शक० के पाठ से भाव सरलता से स्पष्ट हो जाता है । शबे० की पहली विकृति नागरी 'ट' और 'र' के सादृश्य के कारण और दूसरी 'ट' तथा 'द' के सादृश्य के कारण हुई ज्ञात होती है ।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—शबे० में उर्दू-लिपि-जनित विकृतियाँ बहुत कम हैं । उनके केवल दो उदाहरण मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. शबे० (३) मिश्रित शब्द १४ की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों का पाठ है : को काको पुरुष कौन काकी नारी । अकथ कथा जम **दुष्ट** पसारी। यह पद दा० नि० गु० तथा बी० में भी मिलता है । बी० में 'दुष्ट' के स्थान पर 'दिष्ट' पाठ मिलता है । 'दिष्ट' का 'दुष्ट' बन जाना उर्दू में ही संभव है ।

२. शबे० (३) प्रेम ३७-२ का पाठ है: बरसत **बिसद** अमी के बादर भीजत है कोइ संत । शक० गौरी १० में 'बिसद' के स्थान पर 'शब्द' पाठ मिलता है, जो प्रसंगोचित लगता है । उर्दू 'सबद' में यदि 'बे' का नुक़्ता ज़रा सा और पीछे हो जाय तो 'सबद' को 'बसद' या 'बिसद' आसानी से पढ़ा जा सकता है, क्योंकि 'बे' और 'सीन' के शोशे प्रायः एक से होते हैं।

पंजाबी-प्रभाव—पंजाबी-प्रभाव के भी कुछ उदाहरण शबे० में मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१. शबे० (१) चिता० उप० ७२-७ : बावरिया ने बावर डारी फंद जाल सब **कीता** रे। तुल० नि० सोरठि ८०-७ : बावरियौ बन में फंद रोपै संग मैं फिरै नचीता ।

२. शबे० (१) चिता० उप० ८५-३ : नाचे कूदे क्या होय **भैना** ।।

३. शबे० २ चिता० ४२-१ : **किसी दा** भइया क्या ले जाना । **ओहि गया ओहि गया** भंवर निदाना ।।

उक्त पंक्तियों में 'कीता' (=किया), 'भैना' (=बहन), 'किसी दा' (=किसी का), 'ओहि गया' (=वह गया) स्पष्टतया पंजाबी के प्रयोग हैं।

परवर्ती प्रक्षेप—शबे० में कुछ अतिरिक्त पद ऐसे मिलते हैं जिनकी भाषा तथा शब्दावली अत्यन्त आधुनिक है। उदाहरण के लिए इसके प्रथम भाग में चिता० उप० के शब्द ३२ तथा विरह-प्रेम के शब्द २५ की कुछ पंक्तियाँ ली जा सकती हैं—

सुनता नहीं धुन की खबर अनहद का बाजा बाजता।
रस मंद मंदिर बाजता बाहर सुने तो क्या हुआ॥
पोथी किताबें बांचता औरों को नित समझावता।
त्रिकुटी महल खोजै नहीं बक बक मरा तो क्या हुआ॥
सतरंज चौपड़ गंज था इक नर्द है बदरंग की।
बाजी न लायी प्रेम की खेला जुआ तो क्या हुआ॥
जोगी दिगम्बर सेवड़ा कपड़ा रंगे रंग लाल में।
वाकिफ नहीं उस रंग से कपड़ा रंगे से क्या हुआ॥ (शब्द ३२)

तथा **हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या।**
रहें आजाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या॥
न पल बिछुड़ें पिया हमसे हम बिछुड़ें पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या॥ इत्यादि॥ (शब्द २५)

पुनरावृत्तियाँ—शबे० में कुछ नहीं तो सोलह पद ऐसे हैं जो दो बार आते हैं। इनका निर्देश नीचे क्रमशः किया जा रहा है—

१. शबे० (१) सतगुरु-महिमा, शब्द २—

सतगुरु चरन भजस मन मूरख, का जड़ जन्म गंवावस रे॥ टेक॥
कर परतीत जपस उर अंतर, निसि दिन ध्यान लगावस रे॥१॥
द्वादस कोस बसत तेरा साहेब, तहां सुरत ठहरावस रे॥२॥
त्रिकुटी नदिया अगम पंथ जहं बिना मेंह झर लावस रे॥३॥
दामिनि दमकत अंमृत बरसत, अजब रंग दरसावस रे॥४॥
इंगला पिंगला सुखमन से धस, नभ मंदिर उठि धावस रे॥५॥
लागी रहे सुरत की डोरी, सुन्न में सहर बसावस रे॥६॥
बंकनाल उर चक्र सोधि के, मूल चक्र फहरावस रे॥७॥
मकर तार के द्वार निरखि के, तहां पतंग उड़ावस रे॥८॥
बिन सरहद अनहद जहां बाजै, कौने सुर जहं गावस रे॥९॥

कहैं कबीर सतगुरु पूरे से, तब परिचै सो पावस रे ॥१०॥

तुल० वही, भाग ३, भेद० शब्द ७—

सतगुरु सब्द गहो मोरे हंसा, का जड़ जन्म गंवावसु हो ॥टेक॥
त्रिकुटी धार बहै इक संगम, बिना मेघ झरि लावसु हो ॥१॥
लौका लौकै बिजुली तड़पै, अजब रूप दरसावसु हो।
करहु प्रीति अभिअंतर उर में, कवने सुर लै गावसु हो।
गगन मंदिल में जोति बरतु है, तहां सुरत ठहरावसु हो ॥२॥
इंगला पिंगला सुखमनि सोधो, गगन पार ठहरावसु हो।
मकर तार के द्वारे निरखो, ऊपर गढ़ी उठावसु हो ॥३॥
बंकनाल षट खिरकि उलटि गै, मूल चक्र पहिरावसु हो।
द्वादस कोस बसै मोर साहिब, सूना सहर बसवासु हो ॥४॥
दूनौं सरहद अनहद बाजै, आगे सोहंग दरसावसु हो।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर लोक पहुंचावसु हो ॥५॥

दोनों में केवल क्रम का अंतर मिलता है। वैसे पाठ स्थूल रूप से दोनों का एक ही है।

२. तुल० शबे० (१) सतगुरु-महिमा, शब्द ९—

सांई दरजी का कोई मरम न पावा ॥टेक॥
पानी की सुई पवन के धागा, अष्ट मास नव सीयत लागा ॥१॥
पांच पेंवद की बनी रे गुदरिया, तामें हीरा लाल लगावा ॥२॥
रतन जतन का मुकुट बनावा, प्रान पुरुष को लै पहिरावा ॥३॥
साहेब कबीर अस दरजी पावा, बड़े भाग गुरु नाम लखावा ॥४॥

तथा (२) मिश्रित, शब्द १३—

हरि दरजी का मरम न पाया, जिन यह चोला अजब बनाया ॥१॥
पानी की सुई पवन के धागा, आठ मास दस सीवत लागा ॥२॥
पांच तत्त के गुदरी बनायी, चांद सुरज दुइ थेगली लगाई ॥३॥
जतन जतन करि मुकुट बनाया, ता बिच हीरा लाल जड़ाया ॥४॥
आपहि सीवे आप बनावे, प्रान पुरुष को ले पहिरावै ॥५॥
कहै कबीर सोई जन मेरा, या चोले का करै निबेरा ॥६॥

दूसरे में केवल पाँचवीं पंक्ति अधिक है और अंतिम पंक्ति का पाठ कुछ भिन्न है, शेष पाठ स्थूल रूप से एक ही है।

इसी प्रकार तुल० शबे० (१) सतगुरु महिमा, शब्द ६ तथा विरह प्रेम, शब्द १५;

शबे० (१) चिता० उप० १७ तथा (२) भेद ८; (१) चिता० उप० ४० तथा (२) उप० २०; (१) चिता० उप० ५९ तथा (२) उप० ३५; (१) चिता० उप० ७९ तथा वही, भेद २५; (१) चिता० उप० ८८ तथा (२) चिता० ३; (२) उप० ६ तथा २६; (२) उप० ९ तथा भेद ४; (२) उप० १८ तथा प्रेम;३२ (२) उप० ३२ तथा (३) महिमा नाम ५; (२) होली ९ तथा १७; (२) होली २२ तथा (४) होली २; (२) मंगल २ तथा (४) मंगल १०; (२) मिश्रित २ तथा (३) मिश्रित १४।

पूरे-पूरे पदों की इतनी अधिक पुनरावृत्तियाँ मिलने से यह सिद्ध होता है कि शबे० का संकलन कदाचित् एक नहीं बल्कि अनेक प्रतियों के आधार पर किया गया है। पदों को छाँटने में पूर्ण सावधानी न रखने के कारण पहले छपे हुए पद दूसरे भागों में (और कभी-कभी उसी भाग में) दोबारा छप गये हैं। प्रत्येक भाग के आरम्भ में पदों की आरम्भिक पंक्तियाँ अकारादि क्रम से दी गयी हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि शबे० के संपादक ने उक्त सूची के प्रथम अक्षर मिला कर ही पदों को छाँटा है, उनकी पूर्णरूप से तुलना नहीं की। यही कारण है कि प्रथम पंक्ति में थोड़ा भी हेर-फेर रहने पर वही पद पुनः सम्मिलित कर लिये गये हैं।

पदों में अतिरिक्त पंक्तियों की भी पुनरावृत्ति मिलती है। उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. शबे० (१) चिता० उप० शब्द ६४ की छठी पंक्ति भाग २ चिता० १३ की पाँचवीं पंक्ति के रूप में फिर मिलती है। दोनों का एक ही पाठ है।

२. तुल० शबे० (१) चिता० उप० ६९ की पंक्ति ४, ५, ८, ९,—

पेट पकरि के माता रोवे बाँहि पकरि के भाई।
लपट झपटि के तिरिया रोवे हंस अकेला जाई॥
चार गजी चर गजी मंगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारों कोने आग लगाया फूंक दियो जस होरी॥

तथा उसी में आगे शब्द १३५ की पंक्ति ३, ४, ७, ८—

चार जने मिलि लेन को आये लियो काठ की घोड़ी।
जोय लकड़ियां फूंक असि दीन्हीं जस बिन्द्राबन की होरी॥
पाटी पकरि वाकी माता रोवे बहियां पकरि सग माई।
लट छिटकाए तिरिया रोवे बिछुरत है मोरी हंस की जोरी॥

केवल शाब्दिक अंतरों को छोड़ कर दोनों पाठ प्रायः समान ही हैं।

३-४. इसी प्रकार तुल० शबे० (१) भेद २६-६, ७ तथा (३) भेद ४ और

(४) मंगल ४-१५, १६ तथा वही १२-२३, २४।

कुछ अन्य विशेषताएँ—शबे० में पदों के साथ-साथ यत्र-तत्र साखियाँ भी मिलती हैं और साखियों के रूप में उनका निर्देश भी मिलता है। उदाहरण के लिए देखिए शबे० (२) भेद २ के पश्चात् की दो साखियाँ। किन्तु कहीं-कहीं उसके पदों में भी कुछ पंक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जो अन्यत्र साखियों के रूप में हैं। उनका निर्देश नीचे किया जा रहा है :

१—शबे० (२) प्रेम ७ की आरम्भिक आठ पंक्तियाँ हैं—

जो तू पिय की लाड़िली अपना करि ले री।
कलह कल्पना मेटि के चरनन चित दे री॥
पिय को मारग कठिन है खांडे की धारा।
डिगमिगाय तौ गिर पड़े नहिं उतरै पारा॥
पिय को मारग सुगम है तेरो चाल अनेड़ा।
नाच न जानै बावरी कहै आंगन टेढ़ा।
जो तू नाचै नीकसी तो घूंघट कैसा।
घूंघट का पट खोल दे मत करै अंदेसा॥

उक्त चारों द्विपदियाँ अन्यत्र चार साखियाँ हैं। पहली दोनों पंक्तियाँ साबे० १३-१५ तथा सासी० ५३-११ पर साखियों के रूप में मिलती हैं। वहाँ इनका पाठ है—

जो तू पिय की प्यारनी, अपना करि ले री।
कलह कल्पना मेटि करि, चरनों चित दे री॥

दूसरी द्विपदी पाँच प्रतियों में साखी के ही रूप में मिलती है, तुल० दा० ४५-२५, नि० ५०-५३, सा० १५-२७, साबे० १२-५, सासी० १२-१२—

भगति दुहेली रांम (सासी० नाम साबे० गुरुन) की, जस खांडे की धार।
डगमगाइ तौ गिरि पड़ै, नहितर उतरै पार॥

तीसरी द्विपदी साबे० १५-५३, सासी० १५-६२ पर मिलती है जिसका पाठ है—

पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेड़।
नाच न जानै बावरी, कहै आंगना टेढ़॥

और अंतिम द्विपदी साबे० १५-५२ तथा सासी० १५-६१ पर मिलती है—

पिये का मारग कठिन है, खांडा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूंघट कैसा॥

इस प्रकार के और भी कई उदाहरण मिलते हैं, जिनका संक्षिप्त निर्देश नीचे किया जा रहा है : २—तुल० शबे० (३) विरह-प्रेम १-६, ७ (पद) तथा दा० २६-१०, सासी० १६-६७ (साखी); ३—तुल० शबे० (३) सूरमा २-६, ७ (पद) तथा साबे० ८-६२, सासी० २४-२० (साखी); ४—तुल० शबे० (३) दीनता २-६, ७ (पद) तथा गु० सलोक २३८ और सासी० ८३-१६ (साखी)।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शबे० का पाठ जिन प्रतियों से लिया गया है उनके लिपिकर्ताओं द्वारा पदों के बीच-बीच में कबीर की साखियाँ भी प्रसंगानुकूल जोड़ी हुई थीं।

इसके अतिरिक्त इस बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि विभिन्न पदों की विभिन्न पंक्तियाँ लेकर शबे० में एक नया अतिरिक्त पद खड़ा कर लिया गया है। उदाहरण के लिए तीसरे भाग के भेद-प्रकरण का चौथा शब्द लिया जा सकता है, जिसका पाठ निम्नलिखित है—

बिन गुरु ज्ञान नाम ना पइहै बिरथा जनम गंवाई हो ।।टेक।।
जल भरि कुम्भ धरे जल भीतर बाहेर भीतर पानी हो ।।
उलट कुम्भ जल जलहिं समइहै तब का करिहो ज्ञानी हो ।।१।।
बिनु करताल पखावज बाजे बिनु रसना गुन गाया हो ।
गावनहार के रूप न रेखा सतगुरु अलख लखाया हो ।।२।।
है अथाह थाह सबहिन में दरिया लहर समानी हो ।
जाल डारि का करिहौ धीमर मीन के होइगे पानी हो ।।३।।
पंछी के खोज मीन के मारग ढूंढ़े ना कोई पाया हो ।
कहै कबीर सतगुरु मिलि पूरा भूले को राह बताया हो ।।४।।

इसकी पंक्ति २ तथा ३ दा० गौड़ी ४४ में पंक्ति ४ तथा ५ के रूप में मिलती हैं, पंक्ति ४ तथा ५ दा० नि० स० (ग्रन्था० पद १६५) तथा बी० शब्द २४ में पंक्ति ६, ७ के रूप में मिलती हैं। यही नहीं यह दोनों पंक्तियाँ शबे० में भी अन्यत्र (भाग १, भेद २६) मिलती हैं। अंतिम दो पंक्तियों का भाव भी शबे० के उक्त पद की अन्तिम पंक्तियों से मिलता है। इस प्रकार केवल तीन पंक्तियाँ ऐसी बच जाती हैं जो इसमें नयी हैं और जिनके मिश्रण से यह नया पद बना लिया गया है। इस प्रकार के सम्मिश्रण स्मृति के आधार पर किए हुए ज्ञात होते हैं।

शबे० में ऐसे उदाहरण और भी मिलते हैं जिनकी चर्चा आगे संकीर्ण-सम्बन्ध के प्रकरण में आयेगी।

सा० प्रति का विवरण

यह ग्रन्थ जयपुर के मोतीडूंगरी स्थान के कबीर-मंदिर में है। यह एक मोटे संगह-ग्रंथ का आरम्भिक अंश-मात्र है। सम्पूर्ण पोथी में २८७ × २ अर्थात् ५७४ पत्र हैं। कबीर की साखियाँ पहले के एक सौ बयालिस पत्रों तक मिलती हैं। साखी-ग्रन्थ के पश्चात् ज्ञानसागर, विवेकसागर आदि २९ अन्य कबीरपंथी ग्रन्थ भी मिलते हैं, जिनके सम्बन्ध में पीछे विचार हो चुका है। आकार में यह पोथी लगभग ७ इंच लम्बी और ६ इंच चौड़ी है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में २१ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १६-२० अक्षर आये हैं। पुष्पिका इस प्रकार है—

संबत् संख्या जानि मानि शुभ कीजिये। अष्टादस को साल इक्यासी लीजिये॥
ज्येष्ठ मास शुभ जानि पक्ष कृष्ण सही। चतुर्दशी तिथि मानि चंद बासुर लही॥
देश ढुंढ़ाहर मंगलकारी। जैपुर नगर तहां सुखकारी॥
मोतीडूंगरी मुक्ता रूप। तहां बिराजे संत स्वरूप॥
तिनको नाम प्रगट करि कहिए। सतगरु पूरण पूरण लहिए॥
तत शिष्य केशवदास गोसाईं। जिनके दरश परमपद पाई॥
तिनकौ शिष्य भगवतीदासा। निज कर लिखौ ग्रंथ परकासा॥
सीखैं सुनैं पढ़ैं निज नामा। तेही लहैं परम सुख धामा॥

जिससे ज्ञात होता है कि मोतीडूंगरी के साधु पूरणदास के पौत्र शिष्य साधु भगवतीदास ने इसे संवत् १८८१ वि० में ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी चन्द्रवार को लिख कर समाप्त किया।

पुष्पिका में साखियों की संख्या २,८८८ दी हुई है, किन्तु वास्तव में इसकी संख्या २,८०० से कुछ कम है। यह साखियाँ १०८ अंगों में विभाजित हैं।

यह रूपांतर यत्किंचित् अंतरों के साथ वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित 'सत्य कबीर का साखी-ग्रन्थ' नामक पुस्तक से मिलता है अतः सुविधा के लिए साखियों का स्थल-निर्देश उक्त मुद्रित संस्करण के ही अनुसार और पाठ का मिलान हस्तलिखित प्रति से किया गया है।

पाठ संबंधी विशेषताएँ

राजस्थानी प्रभाव—सा० में भी यत्र-तत्र राजस्थानी प्रयोग मिलते हैं, किन्तु उनकी संख्या उतनी अधिक नहीं है जितनी दा० या नि० में है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. सा० २०-१-२ : पाछा सूं हरि **आवसी** सगरी सौंज समेत॥
(राज० 'आवसी'=हिन्दी 'आयेंगे')

२. सा० २०-३-२ : **कहिबेरी** सोभा नहीं, देखे ही परमान ।
(राज० विभक्ति 'री'=हिन्दी 'की')

३. सा० ३६-१७-१ : सब आसन आसा **तणां** निबरति के को नाहिं ।
(राज० विभक्ति 'तणां'=हिन्दी 'का' 'को', 'के लिए')

४. सा० ६६-१-२ : भांड़ा **घड़िया** मुख दिया, सोई भरणै जोग ।
(राज० 'घड़िया'=हि० 'गढ़ा')

५. सा० ३०-१६-२ : **बीछड़ियां मिलसी** नहीं, ज्यौं कांचली भुवंग ।
(राज० 'बीछड़ियां'=हिन्दी 'बिछुड़ने पर'; राज० 'मिलसी=हिन्दी 'मिलेगा')

६. सा० ३३-७६-२ : कूर बड़ाई **बूड़सी,** भारी **पड़सी** काल ।

७. सा० ३६-११ : **अंदेसड़ौ** न **भाजिसी,** संदेसौ कहियां ।
कै हरि आयां **भाजिसी,** कै हरि पासि गयां ।।

८. सा० ५८-२-२ : धीरे बैठ **चपेटिसी,** यौं ले बूड़ै ज्ञान ।

९. सा० ६०-३०-२ : साहब लेखा **मांगिसी,** तब **होसी** कौन हवाल ।

१०. सा० ६०-१५ : हन्या सोही **हन्नसी,** भावै जाति बिजांन ।
करि गहि चोटी **तानिसी,** साहेब के दीवांन ।।

फ़ारसी जनित विकृतियाँ—दा० नि० गु० की भाँति सा० में भी फ़ारसी लिपि-संबंधी विकृतियाँ अधिक मिलती हैं। कैथी, नागरी आदि की विकृतियाँ अपेक्षाकृत कम हैं। गुरुमुखी की विकृतियों का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। नीचे इन विकृतियों के क्रमशः उदाहरण दिये जा रहे हैं।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० ६०-२८-२ का पाठ है : खालिक दर खूनी खड़ा, मार **मुंही मुंह** खाय ।। दा० नि० गु० तथा सासी० में 'मुंही मुंह' के स्थान पर 'मुंहैं मुंह' मिलता है, जो वस्तुतः स्वाभाविक प्रतीत होता है। सा० का 'मुंही मुंह' उर्दू 'ये' की अव्यवस्था के कारण आया हुआ ज्ञात होता है।

२. सा० ३८-५-२ का पाठ है : मान **बड़ी** मुनिवर गले, मान सबन को खाय। दा० १६-१७ तथा बी० १४० में 'बड़ी' के स्थान पर 'बड़े' पाठ मिलता है। सा० का 'बड़ी' पाठ व्याकरण-विरुद्ध है। 'बड़े' से बिगड़ कर 'बड़ी' हो जाना उर्दू में ही सम्भव हो सकता है।

३. सा० ३०-६३-२ का पाठ है : जासी आटा लोन बिनु, **सूना** हुआ सरीर। दा२ १२-४८, नि० २१-५३, गु० ११७, साबे० तथा सासी० १८-५९ में 'सूना' के लिए 'सोना' पाठ है, जिसके अनुसार इसका अर्थ होगा : सोने के

समान तुम्हारी यह काया आटा लोन की भाँति विनष्ट हो जायगी। इसके विपरीत सा० का पाठ अप्रासंगिक लगता है। उर्दू में सीन, वाव, नु और अलिफ़ मिला कर 'सूना' भी पढ़ सकते हैं और 'सोना' भी।

४. सा० ७२-२२-२ : अबरन बरनै **बाहरी,** करि करि थका उपाय। सा० का 'बाहरी' पाठ विकृत है। यह वास्तव में 'बाहिरे' का विकृत रूप है, जैसा कि नि० ४०-६-२ तथा सासी० ८४-१६-२ में है। सा० की यह विकृति भी उर्दू 'ये' की अव्यस्था के कारण हुई ज्ञात होती है।

अन्य उदाहरण—

५. सा० १-५६-२ : मेरा मारा फिर जिये, तो बहुरि न गहूं **कुबांण**। तुल० सासी० २-१७-२ : ·······तौ हाथ न गहूं कमान।

६. सा० ८४-८-२ : फिरि फिरि भवन जौ चित धरै, तौ बाना **बृद्ध** लजाय। तुल० सासी० ३४-११६ : बाना बिरद लजाय।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ : नागरी-लिपि-जनित विकृतियों के उदाहरण कम मिलते हैं। जो भी विकृतियाँ मिल सकी हैं उनका निर्देश नीचे किया जा रहा है—

१. सा० २०-२७-२ : सुरति निरति परचा भया, तब खुलि गया **सिंधु** दुवार। तुल० दा० ५-२२ तथा नि० ८-३७ : खुलि गया सिंभु दुवार।

२. सा० ५६-२७-१ का पाठ है : अगम पंथ को मन गया, सुरति भई **अनुबानि**। सासी० में 'अनुबानि' के स्थान पर 'अगुवानि' पाठ मिलता है, जो अधिक प्रासंगिक है। हिन्दी 'ग' लिखने में यदि ऊपर की लकीर कुछ मोटी पड़ जाय और पहले की छोटी खड़ी लकीर यदि अस्पष्ट हो जाय तो 'ग' को सरलता से 'न' पढ़ा जा सकता है।

३. सा० ३६-६ का पाठ है : आसा **तर्क सवादियां,** नै नै गए सुजान। घने पंखेरू मारिया, जाजरि जोरि कमान॥ सासी० ६८-१० में 'आसा **तरकस बांधिया**' पाठ मिलता है। 'पंखेरू' मारने के प्रसंग में तरकस बाँधना ही स्वाभाविक लगता है। सा० के 'तर्क सवादियां' पाठ से कोई समुचित अर्थ नहीं निकलता। यह विकृति पद-विच्छेद के प्रमाद के कारण ज्ञात होती है, क्योंकि हस्तलिखित प्रतियों में प्रायः सभी शब्द एक में ही मिला कर लिखे जाते थे।

५. सा० १६-२-१ : अमर कुंज **उरलाइया,** गरजि भरे सब ताल। दा० ३-२, नि० ६-१२ तथा गुण० २०-५ में 'अंबर कुंजां कुरलियां' पाठ मिलता है

और सासी० १६-२ में 'अमर कुंज कुरलाइया' मिलता है। गु० में इसका भिन्न पाठ है। 'अंबर घनहरु छाइआ; किन्तु 'अंबर' शब्द इसमें भी है। 'कुंज' का अर्थ है क्रौंच पक्षी। यह साखी 'विरह अंग' की है। दा० नि० तथा गुण० द्वारा प्रस्तुत पाठ के अनुसार इसका अर्थ होगा : कौंच पक्षी आकाश में कुररने लगे (=बोलने लगे) तो गरज के साथ वर्षा हुई और ताल-तलैया भर गये। इस प्रसंग में 'कुरलिया' या 'कुरलाइया' पाठ ही मूल के निकट का प्रतीत होता है, सा० के 'उरलाइया' पाठ का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। नागरी में 'कु' और 'उ' में प्रायः भ्रम हुआ करता है। सा० की विकृति कदाचित् इसी भ्रम के कारण हुई है।

सा० में पाठ-विकृतियों के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं जो सा० के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में भी आने के कारण आगे संकीर्ण-संबंध के प्रकरण में दिये गये हैं। यहाँ केवल ऐसी विकृतियों की चर्चा हुई है जो सा० में स्वतंत्र रूप से मिलती हैं।

पुनरावृत्तियाँ—सा० में सत्रह साखियाँ ऐसी हैं जो दो बार आती हैं। नीचे उनका स्थल-निर्देश किया जा रहा है—

तुल० (१) सा० ७-४ तथा ४०-३; (२) सा० २०-५८ तथा ३४-४३; (३) २०-७१ तथा ६६-१५; (४) २१-१४ तथा ३२-३; (५) २६-२ तथा २६-१०; (६) ६१-२१ तथा ६१-३५; (७) ३०-३७ तथा ३४-२५; (८) ३४-१७ तथा ४३-४३; (६) ५५-३८ तथा १०१-५; (१०) ५७-१५ तथा ६१-१२; (११) २६-२६ तथा ८५-३५; (१२) ६३-३ तथा ६४-६; (१३) ७६-१३ तथा ८८-१ (७८-३६ भी); (१४) ६०-२८ तथा ६०-३०; (१५) ६०-१५ तथा ८७-७; (१६) १०३- २ तथा १०३-४; (१७) ४६-४ तथा ७४-२।

इतनी अधिक पुनरावृत्तियों से सा० प्रति का आदर्श-बाहुल्य सिद्ध होता है।

साबे० प्रति का विवरण

बेलवेडियर प्रेस ने 'शब्दावली' के अतिरिक्त कबीर की साखियों का भी एक संकलन 'कबीर साहब का साखी-संग्रह' नाम से दो भागों में छपाया है। संग्रह का सर्वप्रथम संस्करण कब छपा था, यह ठीक ठीक ज्ञात नहीं, किंतु उसका संशोधित संस्करण अक्टूबर सन् १६२६ ई० में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत अध्ययन में पाठ-मिलान इसी द्वितीय संस्करण पर आधारित है। आरम्भ में इसके सम्पादक ने एक पृष्ठ में अपना 'निवेदन' छापा है जिससे ज्ञात होता है कि उनके द्वारा प्रकाशित साखी-संग्रह मुख्यतया तीन प्रतियों के आधार पर तैयार किय ा यगहैं

पहली प्रति लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से छपी है और बाबा युगलानंद कबीर-पंथी द्वारा संपादित है; दूसरी और तीसरी हस्तलिखित प्रतियाँ हैं जो क्रमशः बाँदा के बाबू सरजू प्रसाद, मुवाफ़ीदार और वेस्टकोस्ट के साधू साहबदास से उक्त सम्पादक महोदय को मिली थीं। वस्तुतः इन्हीं दोनों हस्तलिखित प्रतियों से लखनऊ-संस्करण की त्रुटियों का परिहार कर एक नया साखी-संग्रह तैयार कर लिया गया है। प्रतियों का अन्य कोई विवरण प्राप्त नहीं और न उन सिद्धांतों का कोई उल्लेख हुआ है जिनके आधार पर प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता में विवेक किया गया है।

इस पुस्तक में कुल २,१२८ साखियाँ हैं जो ८४ अंगों में विभाजित मिलती हैं। भारतीय साहित्य में ८४ संख्या का बड़ा महत्व है[३७] अंगों की यह संख्या उक्त परम्परा के अनुकूल निर्धारित की हुई ज्ञात होती है।

सम्पादक ने बताया है कि लखनऊ की छपी हुई प्रति और उपर्युक्त हस्त-लिखित प्रतियों में अनेक साखियाँ दो-दो, तीन-तीन बार भिन्न-भिन्न अंगों में दी हुई थीं। इनको छाँट कर निकालने में संपादक को बड़ा परिश्रम करना पड़ा। इतना परिश्रम करने पर भी साबे० के पहले संस्करण में बहुत सी पुनरावृत्तियाँ रह गयी थीं। अधिकांश द्वितीय संस्करण में छाँटी गयीं। इतनी काट-छाँट होने पर अभी दस-बीस नहीं, १०० से भी अधिक साखियाँ ऐसी हैं जो साबे० में एक से अधिक स्थलों पर कभी केवल शाब्दिक अंतरों के साथ और कभी ज्यों की त्यों दुहरा उठी है। विस्तार-भय से नीचे इनका स्थल-निर्देश मात्र किया जा रहा है—

तुल० (१) साबे० १-२४ तथा १-१०५; (२) १-२६ तथा ७१-२४; (३) १-१२ तथा १-३०; (४) १-६६ तथा १५-६८; (५) १-७३ तथा ४५-१; (६) १-८० तथा १-९२; (७) १-८५ तथा ८-७०; (८) १-९३ तथा ५७-७; (९) १-१०७ तथा १०८; (१०) १-११७ तथा ८४-५०; (११) २-१४ तथा ५०-२८; (१२) २-१५ तथा ३७-४७; (१३) ४-५ तथा ५६-२४; (१४) १४-५२ तथा ३३-४४ तथा ४०-११ (तीन बार); (१५) १-३६ तथा ५७-१५; (१६) १-८० तथा १-९२; (१७) १-८६ तथा ८-७१; (१८) ६-१२ तथा १५-३३; (१९) ६-२० तथा ८४-२७; (२०) ६-२३ तथा ८४-२८; (२१) ६-२४ तथा ३७-४४; (२२) ६-२५ तथा ८४-२२; (२३) ६-२६ तथा ८४-२३; (२४) ६-२७ तथा

---

३७. विस्तृत जानकारी के लिए दे० 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में अगरचन्द नाहटा का 'चौरासी संख्यात्मक बातें' शीर्षक निबंध।

८४-२४; (२५) ६-२८ तथा ८४-२५; (२६) ७-२६ तथा ७४-१३; (२७) ७-२७ तथा ४०-५; (२८) ८-२७ तथा ८-६५; (२९) ८-३६ तथा ८-७४; (३०) ११-६ तथा १६-३५; (३१) १२-१७ तथा ५०-११; (३२) १२-२० तथा ५०-१२; (३३) १३-२६ तथा ५३-४; (३४) १२-२८ तथा १९-५०; (३५) १२-३१ तथा ३४-६० (३६) १३-६ तथा ४३-४२; (३७) १३-१८ तथा ८४-३; (३८) १४-६८ तथा १९-७७; (३९) १५-१९ तथा ३४-४७; (४०) १५-२० तथा ३६-२०; (४१) १५-२१ तथा ३६-१९; (४२) १५-६७ तथा ३५-१७; (४३) १५-४० तथा ३३-१०; (४४) १६-२८ तथा ७०-१२; (४५) १७-६ तथा ७०-९; (४६) १७-९ तथा ५०-५; (४७) १८-६ तथा ४३-५१; (४८) १८-१० तथा ४६-२५; (४९) १८-११ तथा ८४-५; (५०) १८-२३ तथा १९-७०; (५१) १८-१४ तथा ७१-१९; (५२) १८-२५ तथा ४३-९; (५३) १८-३४ तथा ४५-२३; (५४) १९-७ तथा १९-१८६ (५५) १९-९ तथा ८४-५४; (५६) १९-१२ तथा ८४-३९; (५७) १९-५७ तथा १९-१६९; (५८) १९-६४ तथा ३७-४; (५९) १९-६८ तथा ३७-३; (६०) १९-७३ तथा ७४-६; (६१) १९-७४ तथा ७४-१; (६२) १९-७५ तथा ७४-३; (६३) १९-८४ तथा १९-१६६; (६४) १९-८५ तथा १९-१६८; (६५) १९-८६ तथा १९-१७३; (६६) १९-८७ तथा १९-१७१; (६७) १९-१९४ तथा ५०-१५; (६८) १९-९५ तथा ५४-१; (६९) १९-११३ तथा ८४-३०; (७०) १९-१२१ तथा १९-१७९; (७१) १९-१९३ तथा ८४-३०; (७२) १९-१९५ तथा ८४-२९; (७३) २२-६ तथा ८४-७१; (७४) २३-३ तथा ८३-११; (७५) २७-४ तथा ५३-११; (७६) २३-२ तथा ७१-४४; (७७) ३१-११ तथा; (७८) ३२-३ तथा ८४-७९; (७९) २९-८ तथा ४७-३८; (८०) ३३-९ तथा ८४-७९; (८१) ३३-२४ तथा ५९-९; (८२) ३३-२५ तथा ५९-१०; (८३) ३३-४२ तथा ३९-५०; (८४) ३३-४३ तक ८०-३; (८५) ३६-२३ तथा ७२-३८; (८६) ३७-८ तथा ५७-२१; (८७) ३७-११ तथा ६४-४; (८८) ३७-१४ तथा ६२-५; (८९) ३७-३८ तथा ६७-२०; (९०) ३७-४० तथा ६९; (९१) ३७-४१ तथा ६८-८; (९२) ३७-४८ तथा ५९-३; (९३) ३७-४९ तथा ८४-६५; (९४) ३७-५१ तथा ८३-१३; (९५) ३७-५२ तथा ८३-८; (९६) ३८-११ तथा ८४-८७; (९७) ४७-३ तथा ४६-२६; (९८) ४३-३० तथा ४३-५८; (९९) ४३।६६ तथा ८४-७२; (१००) ४६-२८ तथा ६५-७; (१०१) ४७-२९ तथा ६९-२; (१०२) ४७-९८ तथा ८२-७; (१०३) ४७-३६ तथा ७१-३५; (१०४) ५०-२९ तथा ७४-१०; (१०५) ६०-१ तथा ७२-१४; (१०६) ७१-२२ तथा ७४-२ ।

साबे० में पाठ का संशोधन भी यथाशक्ति किया गया है, किन्तु मूल आदर्श की अनेक पाठ-विकृतियाँ अब भी उसमें ज्यों की त्यों वर्तमान हैं और द्वितीय संस्करण तक भी उनका संशोधन नहीं हो सका है। फ़ारसी लिपि के कारण पैदा हुई पाठ-विकृतियों के उदाहरण अन्य प्रतियों की भाँति साबे० में भी यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। नागरी लिपिजनित विकृतियाँ उससे कुछ कम मिलती हैं। नीचे दोनों का विवरण दिया जा रहा है।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं :

१. साबे० १४-३६-१ का पाठ है : अंबर कुज्जा करि लिया, गरजि भरे सब ताल। दा० ३-२, नि० ६-१२ तथा गुण० २०-५२ में इसका पाठ है : अंबर कुंजां कुरलियां, सासी० १६-२ में इसका पाठ है : अमर कुंज कुरलाइयां। दा० नि० सासी० तथा गुण० के अनुसार इसका अर्थ होगा : आकाश में क्रौंच पक्षी विलाप करने लगे और वर्षा से सब ताल-तलैया भर गये। साबे० की पाद-टिप्पणी में 'कुज्जा' का अर्थ मिट्टी का भाँड़ा (=कुल्हड़, कुज्झा) दिया गया है। साबे० के सम्पादक ने इसका अर्थ कदाचित् यह लगाया है कि आकाश को कुल्हड़ बना लिया और गरज-बरस कर सब ताल भर दिया (जैसे कोई कुल्हड़ से पानी उलेड़ कर भर दे!)। साबे० का न तो यह अर्थ ही संतोषजनक ज्ञात होता है और न पाठ ही। इसके विपरीत दा० नि० सासी० तथा गुण० का पाठ सार्थक और प्रामाणिक जान पड़ता है। दा० नि० आदि के 'कुरलियां' से साबे० के 'करि लिया' पाठ की विकृति पर विचार करने से यह अनुमान होता है कि साबे० का पाठ कदाचित् किसी उर्दू प्रति से आया है। उर्दू में ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण 'कुरलिया' को 'करि लिया' भी पढ़ा जा सकता है। 'कुंजा' का 'कुज्जा' नागरी-लिपि-जनित प्रमाद के कारण हुआ है।

२. साबे० १६-२६-२ का पाठ है : कबीर गर्व न कीजिए, अस जोबन की आस। दा० १२-८, नि० १६-६, सा० ३०-१८ तथा सासी० १७-२ में 'अस' के स्थान पर 'इस' आता है। 'अस' (=ऐसे) का प्रयोग ऐसे स्थलों पर किया जाता है जहाँ उसके सम्बन्ध में कोई पूर्व विवरण आ चुका हो। यहाँ ऐसे विवरण के अभाव में 'अस' पाठ निरर्थक होगा। वास्तव में यहाँ अन्य प्रतियों का 'इस' पाठ शुद्ध है और साबे० का 'अस' उसी का विकृत रूप ज्ञात होता है। यह परिवर्तन भी उर्दू में ही संभव है।

३. साबे० ४३-४५ का पाठ है : कबीर मन मधुकर भया कीया नर तरु बास। कंवल जो फूला नीर बिनु, कोइ निरखै निज दास॥ दा० ५-६, नि० ८-

६, सा० २०-५ तथा सासी० १४-५३ में 'नर तरु' के स्थान पर 'निरंतर' पाठ मिलता है जो अधिक प्रासंगिक लगता है। साबे० के पाठ का अर्थ यदि यह लिया जाय कि मन रूपी भौंरे ने नर रूपी वृक्ष पर वास लिया है, तो भी यह अर्थ संतोष-जनक नहीं होगा; क्योंकि भौंरा फूल की ओर आकर्षित होता है, वृक्ष की ओर नहीं। उर्दू 'निरंतर' में यदि दूसरे 'नु' का नुक़्ता छूट जाय या 'ते' के नुक़्तों से मिल जाय तो इसे सरलता से 'नर तरु' पढ़ा जा सकता है। साबे० की पाठ विकृति का यही कारण ज्ञात होता है।

४. साबे० ८-४१ का पाठ है : कायर भया न छूटिहौ, कछु सूरता समाय। भरम भालका दूरि करि, सुमिरन **सील** मजाय ॥ दा० ४५-१, नि० ५०-३, सा० ८४-१, सासी० २४-८५, स० ६१-२ तथा गुण० ७८-३ में 'सील' के स्थान पर 'सेल' पाठ मिलता है। यहाँ 'भरम' की उपमा 'भालका' (=गाँसी या भाला) से दी गयी है; अतः 'सुमिरन' के साथ भी किसी अस्त्र का उल्लेख होना चाहिए; क्योंकि एक अस्त्र छोड़ कर दूसरे को ग्रहण करने का आदेश दिया गया है। इस आवश्यकता की पूर्ति 'सेल' पाठ से ही हो सकती है, 'सील' से नहीं। 'सुमिरन' और 'सील' दोनों ही सात्विक गुण हैं और एक से दूसरे की उपमा देने में कोई संगति नहीं। उर्दू में 'सेल' और 'सील' एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं अतः एक के स्थान पर दूसरे का भ्रम हो सकता है।

५. दा० २-१६, नि० ११-४५, सासी० १३-७६ तथा गु० २२३ का पाठ है : केसौ कहि कहि कूकिए, न सोइए असरार। रात दिवस के कूकने, कबहुंक लगै पुकार ॥ साबे० ७४-६ में 'असरार' के स्थान पर **इसरार** पाठ है। 'असरार' का अर्थ होता है : निरंतर या लगातार। कहीं-कहीं इसका अर्थ 'शौक़' भी किया गया है किन्तु साबे० की टिप्पणी में, पता नहीं किस आधार पर, 'इसरार' का अर्थ 'भेद' दिया गया है। 'असरार' शब्द कबीर में अन्यत्र भी 'निरंतर' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है; तुल० दा० आसावरी ४२-६ तथा नि० आसावरी ३७-६ : सीस चरन कर कंपन लागे नैन नीर असराल बहै। अतः साबे० का 'इसरार' पाठ निश्चित रूप से प्रयोग-विरुद्ध और विकृत है। यह विकृति भी उर्दू मूल के ही कारण ज्ञात होती है।

स्थल-संकोच के कारण नीचे शेष विकृतियों का संक्षिप्त निर्देश-मात्र किया जा रहा है। साबे० की इन विकृतियों को उर्दू मूल के ही कारण आया हुआ समझना चाहिए।

६. साबे० १८-३-१ : गागर ऊपर गागरी, **चोले** ऊपर द्वार। तुल० सा०

२४-३ तथा सासी० ५६-६ : गागर ऊपर गागरी, चोली ऊपर हार।

७. साबे० ८३-१५ : नहिं कागद नहिं लेखनी, नहिं अक्षर है सोय। **पांचहिं** पुस्तक छांड़ि कै, पंडित कहिए सोय॥ तुल० सा० ४०-३८ तथा सासी० ५८-११ : बांचहिं पुस्तक छांड़ि के, पंडित कहिए सोय।

८. साबे० ७-१३-२ : दुर दुर करै तो **बाहिरे**, तू तू करै तो जाय। तुल० दा० ११-१५ : तो तो करै तो बाहुरौं, दुर दुर करै तौ जाउं।

९. साबे० १२-२-१ : भक्ति बीज बिनसे नहीं, आइ पड़ै जो **चोल**। तुल० सासी० १२-४-१ : 'चोल' के स्थान पर 'झोल'। साबे० की टिप्पणी में 'चोल' का अर्थ 'चोला' या 'योनि' दिया हुआ है—अर्थात् चाहे जैसी ऊँची-नीची योनि में जीव जा पड़े, भक्ति का बीज विनष्ट नहीं होता। किन्तु यह अर्थ संतोष-जनक नहीं लगता। वास्तव में बीज के प्रसंग में 'झोल' पाठ ही अधिक सार्थक है। 'झोल' का अर्थ है आपत्ति या तूफ़ान—अर्थात् कैसा भी तूफ़ान आवे, भक्ति का बीज विनष्ट नहीं होता, वह अंकुरित होकर ही रहता है। साबे० की यह विकृति भी उर्दू मूल के कारण ही ज्ञात होती है।

१०. साबे० ४-१-१ : सेवक **सुखी** कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं। तुल० सासी० १०-३ : सेवक सुखै कहावई।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. साबे० १४-३६-१ का पाठ है : अम्बर **कुज्जा** करि लिया, गरजि भरे सब ताल। दा०३-२, नि० ६-१२ तथा गुण० २०-५३ में 'कुज्जा' के स्थान पर 'कुंजा' और सा० १६-२ तथा सासी० १६-२ में 'कुंज' पाठ आते हैं। जैसा पहले बताया गया है, साबे० का यह विकृत पाठ 'कुंजा' या 'कुञ्जा' को भूल से 'कुज्जा' पढ़ लेने के कारण आया है।

२. दा० १६-१२, नि० १६-१४, सा० ३६-३, सासी० ६८-४ तथा गुण० ८३-५ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : आसा जीवै जग मरै, लोक मरे मरि जांहि। किन्तु साबे० ५६-१ में 'मरे मरि' के स्थान पर **मरै मन** पाठ है जिसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। कैथी या प्राचीन हिन्दी में 'र' और 'न' प्रायः एक-से लिखे जाते थे। 'मरि' के स्थान पर 'मन' कदाचित् इसी कारण से आया है।

३. साबे० ८-४५-१ का पाठ है : कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचों **स्वान**। नि० ५०-४० तथा सासी० २४-१० में 'स्वान' के स्थान पर **'खान'** पाठ है। गढ़ के प्रसंग में 'खान' (=सरदार, सिपहसालार) ही अधिक उपयुक्त प्रतीत

होता है, 'स्वान', (=कुत्ता) नहीं। नागरी में 'खान' का 'स्वान' बड़ी सरलता से हो सकता है।

४. साबे० १४-७३ का पाठ है : यह तन जारि कै मसि करौं, लिखौं गुरू का नांव। करौं लेखनी **करम** की, लिखि लिखि गुरू पठांव ॥ दा० ३-१२, नि० ६-१४, सा० १६-१५ तथा गुण० १८-६७ में दूसरी पंक्ति का पाठ है : लेखनि करौं करंक की, लिखि लिखि रांम पठांव। 'करंक' (=अस्थि) की तुलना में साबे० का 'करम' पाठ स्पष्ट ही निरर्थक और अप्रासंगिक है। हिन्दी में यदि 'क' लिखने में कुछ असावधानी कर दी जाय और उसके उत्तरार्ध का लटकता हुआ अंश यदि ऊपर की पंक्ति में कहीं मिल जाय तो उसे सरलता से 'करम' पढ़ा जा सकता है। साबे० की उक्त पाठ-विकृति का यही मूल कारण ज्ञात होता है।

५. साबे० १८-३ का पाठ है : गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर **द्वार**। सूली ऊपर सांथरा, जहां बुलावै यार ॥ साबे० के 'चोले ऊपर द्वार' का स्पष्ट अर्थ नहीं समझ पड़ता। यदि इसका तात्पर्य 'चोला' (=शरीर) के ऊपर वाले द्वार अर्थात् ब्रह्मरंध्र से लिया जाय तो भी यह कष्ट-कल्पना ही मानी जायगी। साबे० का पाठ वस्तुतः यहाँ विकृत ज्ञात होता है। सा० ३४-३ तथा सासी० ५६-९ में 'चोले ऊपर द्वार' के स्थान पर 'चोली ऊपर हार' पाठ मिलता है। यार द्वारा बुलाये जाने के प्रसंग में सा० तथा सासी० का पाठ ही अधिक उपयुक्त लगता है, साबे० का नहीं। इस साखी का भाव यह है कि प्रिय का निवास शूली की नोक पर है, वहाँ कोई बिरला ही पहुँच सकता है। वह इतना विकट है जैसे घड़े के ऊपर घड़ा रक्खा हो (घड़ा पर घड़ा रख कर सँभालने में नितान्त तन्मयता अपेक्षित रहती है)। वह इतना नाजुक और गूढ़ है जैसे प्रेयसी की चोली पर का हार हो (बिना अंतरग भेदी के उसका साक्षात्कार भला कौन कर सकता है?)। 'हार' के स्थान पर 'द्वार' की विकृति नागरी लिपि में ही संभव है।

अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं—

६. साबे० ७१-४७-१ : मेरा मन हंसा रमै, हंसा **गमन** रहाय। तुल० नि० २७-१८ तथा सासी० ९-१५ : 'गमन' के स्थान पर 'गगन' (नागरी 'ग' तथा 'म' के सादृश्य के कारण)।

७—साबे० ७-११-२ : सेवक मन **सों प्यार** है, निस दिन चरनन लाग। तुल० सासी० १०-१० : सेवक मन सौंप्या रहै (पद-विच्छेद की भ्रांति के कारण)।

राजस्थानी प्रभाव—सावे० में यद्यपि राजस्थानी प्रयोग कम करने का पूरा प्रयत्न किया गया है, फिर भी वे यत्र-तत्र मिल ही जाते हैं। उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

१—सावे० १२-१७ : देखा देखी भगति का, कबहुं न **चड़सी** रंग।
बिपति पड़े यों **छांड़िसी**, ज्यों केंचली भुवंग॥

२—सावे० १६-१३-२ औसर **जासी** चाल।

३—सावे० १६-१६-१ : काल अचानक **मारिसी**।

४—सावे० १६-५५ २ : उज्ज्वल होइ न **छूटिसी**।

५—सावे० ३३-३७-२ : तब जिव **होसी** सीव।

६—सावे० ७३-३७-२ : जब **देसी** मुख धूरि।

७—सावे० ७३-३६-२ : उड़ि कै भस्म जो **लागिसी**।

८—सावे० ७४-८-२ : साहिब हक्क न **राखिसी**।

६—सावे० ७७-६ : हनिया सोई **हनसी**, भावै जगत बिजान।
करि गहि चोटी **तानिसी**, साहिब के दीवान॥

१०—सावे० ७७-१०-२ : साहिब लेखा **मांगिसी**। इत्यादि

साम्प्रदायिक प्रभाव—पहले शवे० के प्रसंग में जिन-जिन साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का उल्लेख हुआ है वे सब सावे० में भी उसी मात्रा में मिलती हैं, क्योंकि दोनों पुस्तकें एक ही प्रेस से एक ही सम्पादक द्वारा सम्पादित होकर निकली हैं। फलतः इसमें भी शवे० की भाँति 'राम' के लिए 'नाम', 'हरि' के लिए 'गुरु' और 'राम नाम' के लिए 'सत्यनाम' का प्रयोग सर्वत्र हुआ है।

सावे० में एक 'नाम का अंग' भी दिया हुआ है जो अन्य प्रतियों में नहीं मिलता। उसकी छठी साखी में 'राम' और 'नाम' का भेद इस प्रकार समझाने का प्रयत्न किया गया है—

राम राम सब कोइ करै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुर मिलै, नाम कहावै सोय॥

इसकी पाँचवीं साखी में यह बताया गया है कि संसार में परमात्मा के करोड़ों नाम प्रचलित हैं, लेकिन वे सब व्यर्थ हैं। उसका आदि नाम गुप्त है, जिसे कोई विरला ही जानता है, और वही सब कुछ है—

कोटि नाम संसार में, तातें मुक्ति न होइ।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोइ॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।
कह कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुवा संसार॥

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि यह साखियाँ कबीरकृत रचनाओं के रूप में साबे० के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलतीं।

साबे० की यह साम्प्रदायिक प्रवृत्ति इतनी स्पष्ट है कि उसके दो-चार उदाहरण किसी भी पृष्ठ में देखे जा सकते हैं। इस संशोधन पर सम्पादक इतना तुल गया है कि खोजने पर भी कहीं 'राम', 'हरि', 'गोविन्द' आदि नामों का दर्शन नहीं हो सकता। अपवाद-स्वरूप केवल दो-एक उदाहरण ऐसे मिल जाते हैं, जो कदाचित् संपादक की दृष्टि से बच गये थे, और अभी ज्यों के त्यों पड़े हैं; उदाहरणतया—

१. साबे० ६७-१० : कंचन केवल **हरि** भजन, दूजा कांच कथीर। सासी० ८१-१७ में 'हरि भजन' को शोध कर 'गुरु भजन' कर दिया गया है! यहाँ भी ऐसा ही किया जा सकता था।

२. इसी प्रकार साबे० २२-१ में भी 'मेरी चिंता **हरि** करै' के कारण 'हरि' शब्द दिखायी पड़ जाता है। यहाँ भी 'हरि' के स्थान पर 'गुरु' हो सकता था।

३. साबे० १६-१३ में 'राम' शब्द भी अनुचित रूप से निकल गया है।

इन उदाहरणों को छोड़ कर 'राम', 'हरि' आदि शब्द ऐसे ही स्थलों पर मिलेंगे जहाँ उनके विरोध में कुछ कहा गया है।

सासी० प्रति का विवरण

यह प्रति 'सद्गुर कबीर साहब का साखी ग्रन्थ' नाम से कबीर-धर्म-वर्धक, कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा से सन् १६३५ ई० में प्रकाशित हुई है[३८]। विरल-टीका-टिप्पणीकार के रूप में इस पर विचारदास शास्त्री (वर्तमान हुज़ूर प्रकाश मणि नाम साहब) का नाम छपा हुआ है। सम्पादक का नाम इसमें नहीं बताया गया है। सीयाबाग से प्रकाशित होने के कारण इसका संक्षिप्त नाम **सासी०** (साखी-ग्रन्थ, सीयाबाग, बड़ौदा का) निर्धारित किया गया है। इसमें भी साबे० के समान अंगों की संख्या ८४ है, किन्तु उनके नामों में कुछ भिन्नता मिलती है।

अंत में ७४ साखियों का एक **'प्रश्नोत्तर को अंग'** अतिरिक्त रूप में दिया हुआ है। कबीर के नाम से जितनी भी साखी-प्रतियाँ या प्रकाशित ग्रन्थ मिलते हैं उनमें सीयाबाग से प्रकाशित प्रस्तुत ग्रन्थ आकार की दृष्टि से सब से बड़ा है।

---

३८. प्रस्तुत अध्ययन में पाठ-मिलान इसकी द्वितीयावृत्ति पर अधारित है जो सन् १९५० में प्रकाशित हुई थी।

इसमें प्रश्नोत्तर वाले अंग की ७४ साखियों को भी मिला कर कुल ३,८७२ साखियाँ मिलती हैं। साखियों की इतनी बड़ी संख्या अन्य किसी भी प्रति या पुस्तक में नहीं मिलती। किन्तु इस संस्करण को प्रस्तुत करने में कई आदर्शों की सहायता ली हुई ज्ञात होती है, क्योंकि इसमें पुनरावृत्तियों का इतना बाहुल्य है जितना अन्य किसी भी प्रति या संस्करण में नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भिन्न क्रम तथा आकार के अनेक आदर्श सामने रहने पर थोड़ी सी भी असावधानी से छंद ज्यों के त्यों पुनः आ जाते हैं, और यदि थोड़ा-बहुत पाठ-भेद उनमें हुआ तो यह सम्भावना और भी अधिक हो जाती है। इसकी पुनरावृत्तियों के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. कुछ साखियाँ ऐसी हैं जो सासी० में चार बार मिलती हैं।

उदाहरणतया सासी० १५-५१ : **यह रस महंगा सो पिये, छांड़ि जीव की बानि।**
माथा सांटै जो मिलै, तौ भी सस्ता जानि॥

यही साखी आगे २४-१३७ पर इस प्रकार मिलती है—
सिर सांटै का खेल है, छांड़ि देइ सब बानि।
सिर सांटै साहिब मिलै, तौहु हानि मत जानि॥

आगे फिर यही साखी २८-७ तथा ८ पर भी मिल जाती है जिनके पाठ हैं—
हरि रस महंगा पीजिए, छांड़ि जीव की बानि।
सिर के सांटे हरि मिलै, तब लग सुहंगा जानि।

तथा : **सिर दीए जो पाइए, देत न कीजै कानि।**
सिर के सांटे हरि मिलै, तब लगि सोंहगा जानि॥

कुछ साखियाँ ऐसी हैं जो इसमें तीन-तीन बार आती हैं, तुल०—

२. सासी० ६-१०१ : **साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर।**
शब्द बिबेकी पारखी, ते माथे के मौर॥

सासी० २४-१२६ : **साधू सबही सूरमा, अपनी अपनी ठौर॥**
जिन ये पांचों चूरिया, सो माथे का मौर॥

तथा सासी० ७५-१० : **साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।**
शब्द बिबेकी पारखी, सो माथे का मौर॥

(दूसरी के केवल तीसरे चरण का पाठ कुछ भिन्न है, शेष शब्दावली तीनों में समान है।)

३. तुल० सासी० २६-११८ : **यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छूट।**
बेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूट॥

४२-१६ : मन की मनसा मिट गई, अहं गई सब छूट।
गगन मंडल में घर किया, काल रहा सिर कूंट ॥
तथा ४३-४ : कबीर तो पियु पै चला, माया मोह से तोरि।
गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोर ॥

(इन साखियों में भी कुछ शाब्दिक अंतर अवश्य मिलते हैं, किन्तु स्थूल रूप से तीनों साखियाँ एक ही हैं।)

४. इसी प्रकार सासी० ५४-२३ आगे ५४-२५ तथा ८५-४१ पर पुनः मिलती है। ऊपर उल्लिखित साखियाँ ऐसी हैं जो चार बार या तीन बार मिलती हैं। दो-दो बार मिलने वाली साखियों की संख्या बहुत बड़ी है। अतः विस्तार-भय से यहाँ उनका संक्षिप्त स्थल-निर्देश कर दिया जा रहा है। सभी संख्याएँ सासी० के अनुसार हैं जिनमें पहली संख्या अंगों की है और दूसरी साखियों की। निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं—

(५) सासी० १-६ तथा १०-३७; (६) १-१३ तथा ८५-१६; (७) १-२१ तथा ३-२०; (८) १-४२ तथा ३-३०; (९) १-५७ तथा ६६-१; (१०) १-७९ तथा १०-१०; (११) २-१७ तथा २४-१३०; (१२) २-६१ तथा २-८६; (१३) २-९० तथा १५-७१; (१४) २-९२ तथा २२-१३; (१५) ३-१ तथा ३-२; (१६) ३-४४ तथा २७-६५; (१७) ४-११ तथा ४२-४२; (१८) ४-१८ तथा १५-२२; (१९) ४-१९ तथा १८-६१; (२०) ४-३१ तथा १६-३६; (२१) ४-४४ तथा १०-६; (२२) ५-८ तथा ५-२६; (२३) ५-१३ तथा १९-६०; (२४) ५-२० तथा ९-३३; (२५) ५-२० ९-१९; (२६) ५-३४ तथा ६-१२५; (२७) ५-३७ तथा ६-७६; (२८) ६-७६ तथा २९-२७; (२९) ६-१०२ तथा ७५-८; (३०) ६-११० तथा १०-२७; (३१) ६-१२३ तथा ४७-९; (३२) ३-१४३ तथा ६५-१३; (३३) ६-२०१ तथा ११-५; (३४) ७-१५ तथा ७-३१; (३५) ७-३२ तथा १३-१४८; (३६) ७-३४ तथा १२-४६; (३७) ७-४४ तथा ९-८५; (३८) ९-२० तथा २९-१०४; (३९) ९-३५ तथा ११-२७; (४०) ११-१६ तथा ११-१७; (४१) ११-२१ तथा ४२-३१; (४२) ११-२२ तथा ५९-१६; (४३) १२-३४ तथा ६२-४; (४४) १२-३७ तथा १८-७३; (४५) १३-११ तथा २३-१६; (४६) १३-२६ तथा १५-५२; (४७) १३-४१ तथा १६-५२ (४८) १३-५९ तथा २२-३२; (४९) १३-५६ तथा ६८-२; (५०) १३-६२ तथा १४-११२; (५१) १३-६४ तथा ६७-३५; (५२) १४-३ तथा ४२-३८ (५३) १४-१२ तथा १४-१३; (५४) १४-१७ तथा ५६-२४; (५५) १४-२२ तथा १८-५८; (५६) १४-४० तथा १६-८४; (५७) १४-४६ तथा १४-१०८; (५८) १४-४७ तथा १५-

३९; (५९) १४-५५ तथा ३८-४२; (६०) १४-५८ तथा ३८-४०; (६१) १४-७२ तथा ५३-१७; (६२) १४-७३ तथा ५३-५७; (६३) १४-७६ तथा ५६-११; (६४) १४-८७ तथा १४-१२२; (६५) १४-१२७ तथा ५६-१०; (६६) १४-१२९ तथा १८-६०; (६७) १४-१३० तथा २४-१०६; (६८) १५-४५ तथा ३३-३०; (६९) १५-४६ तथा ३३-३८; (७०) १५-५० तथा ४९-११; (७१) १५-६९ तथा १९-२५; (७२) १६-२८ तथा १६-१०३; (७३) १६-२९ तथा १६-३१; (७४) १६-३८ तथा १६-१०६; (७५) १६-४९ तथा १६-८६; (७६) १६-९३ तथा ४१-८; (७७) १६-१११ तथा २२-२३; (७८) १७-४ तथा १७-५; (७९) १७-२५ तथा ३-६६; (८०) १७-३२ तथा १७-१७९; (८१) १७-३५ तथा ८१-१६; (८२) १७-४७ तथा ३४-५; (८३) १७-७५ तथा १७-१७०; (८४) १७-७७ तथा ३२-३०; (८५) १७-१११ तथा ७७-५; (८६) १७-१८६ तथा ४६-३५; (८७) १७-२१ तथा १८८; (८८) १८-२५ तथा ७७-५; (८९) १८-२६ तथा १९-६९; (९०) १९-२८ तथा ८०-१; (९१) १९-४७ तथा ७६-१२; (९२) २०-११ तथा ८०-११; (९३) २०-२८ तथा ७१-१५ तथा; (९४) २१-६ तथा २१-२०; (९५) २२-२७ तथा ३८-३५; (९६) २३-३ तथा ८३-११; (९७) २३-९ तथा ३२-७९; (९८) ४२-४७ तथा २९-१२२; (९९) २४-६१ तथा २४-६२; (१००) २४-६४ तथा २४-६५; (१०१) २४-६८ तथा २४-६९; (१०२) २४-८५ तथा २४-८६; (१०३) २७-४ तथा ८३-९; (१०४) २७-१० तथा २७-५३; (१०५) २७-१३ तथा २७-५८; (१०६) २७-५२ तथा ४१-९; (१०७) २८-९ तथा ७४-३२; (१०८) २८-१७ तथा ८०-१०; (१०९) २९-३५ तथा ४६-३२; (११०) २९-४३ तथा २९-४४; (१११) २९-५० तथा ८५-१५; (११२) २९-८२ तथा ३४-२४; (११३) २९-१०९ तथा ४२-५; (११४) २९-११९ तथा ४२-२६; (११५) ३०-२१ तथा ३०-७२; (११६) ३०-३९ तथा ६८-२२; (११७) ३१-२२ तथा ३४-२०; (११८) ३३-५५ तथा ६६-८; (११९) ३२-४८ तथा ३२-४९; (१२०) ३२-७५ तथा ६२-१२; (१२१) ३४-१ तथा ३४-२१; (१२२) ३५-२० तथा ३५-२१; (१२३) ३५-२८ तथा ६२-६; (१२४) ३७-८ तथा ४०-४; (१२५) ३८-१७ तथा ७८-८; (१२६) ४०-९ तथा ७६-१३; (१२७) ४१-११ तथा ४१-१४; (१२८) ४१-२० तथा ४१-४८; (१२९) ४२-२२ तथा ५५-२; (१३०) ४२-२४ तथा ४२-२५; (१३१) ४२-३९ तथा ५३-२०; (१३२) ४६-६३ तथा ७३-३८; (१३३) ५२-१ तथा ७१-१० (१३४) ५३-३ तथा ५३-५; (१३५) ६७-१० तथा ७१-४; (१३६) ७०-१ तथा ८९-२१; (१३७) ७३-३१ तथा ७३-३३; (१३८) ७५-४ तथा ७६-२२; (१३९) ७८-५ तथा ७९-४० ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि कई साखियाँ सासी० में ऐसी हैं जो एक ही अंग में दो बार मिलती हैं। इनमें से कुछ तो अनजाने में दुहरायी हुई प्रतीत होती हैं और कुछ जान-बूझ कर, थोड़े शाब्दिक अंतर के कारण, पास ही पास रक्खी हुई हैं।

इनके अतिरिक्त एक पंक्ति की पुनरावृत्तियाँ भी सासी० में बहुत मिलती हैं। निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं—

सासी० १२-१४-१ तथा १२-६२-१; २४-१३६-१ तथा ७७-३-१; ७-१२-१ तथा ७-१३-१; १२-४०-१; तथा १२-४१-१; १२-५४-१ तथा ४६-३३-१; १४-६५-१ तथा १४-६६-१; १६-४५-१ तथा १६-८८-१; १६-८७-१ तथा २७-६४-१; १८-३-१ तथा १८-४-१; २४-१२८-१ तथा २४-१२६-१; ३१-३३-१ तथा ३१-३४-१; ३८-३२-१ तथा ५६-१५-१; ५२-१४-१; तथा ५७-५-१, ५६-२६-१; तथा ६७-८-१; ७६-१६-१ तथा ८२-१४-१; ८२-६-१ तथा ८२-७-१ इत्यादि।

पाठ-मिलान से यह ज्ञात हुआ कि सासी० के सम्पादन में वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित 'सत्य कबीर का साखी ग्रन्थ' तथा बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'कबीर साहेब का साखी-संग्रह' का भरपूर उपयोग किया गया है। दोनों की केवल चार-छः साखियाँ ही ऐसी रह जाती हैं जो सासी० में नहीं आ सका हैं, शेष प्रायः सब मिल जाती हैं। इनमें भी साबे० का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है, यह आगे भी सिद्ध होगा। इन पुस्तकों का उपयोग करने में सम्पादक ने सावधानी से काम नहीं लिया है। कई पुनरावृत्तियाँ ऐसी हैं जो सा० या साबे० में पहले से ही रहने के कारण सीधे सासी० में भी आ गयी हैं। यदि सम्पादक ने दोनों ग्रन्थों की सभी साखियों की अकारादि क्रम से सूची बना ली होती तो पुनरावृत्तियाँ पकड़ने में अधिक सुविधा होती और इतनी अधिक संख्या उनकी न बढ़ने पाती। किन्तु ऐसा न कर स्मृति का ही अधिक आधार लिया हुआ ज्ञात होता है।

अन्य विशेषताएँ—सासी० में भी साबे० के समान इसके सम्पादक द्वारा पाठ का पर्याप्त संशोधन किया गया है। किन्तु पाठ संबंधी विकृतियाँ अब भी उसमें यथेष्ट मात्रा में विद्यमान हैं। नीचे इन विकृतियों का विवरण दिया जा रहा है।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—

१. सासी० १६-५३-१ का पाठ है : सब रग तांती **रबाब** तन, बिरह बजावै नीत। दा० ३-२०, नि० ३-८, सा० १६-३६, साबे० १४-७८ तथा स० ७-७

सब में 'सत्र रग तांत रबाब तन' पाठ मिलता है । 'रबाब' एक बाजा है जिसके तारों की उपमा शरीर की नसों से दी गयी है। 'खाब' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं। नागरी लिपि में 'खाब' तथा 'रबाब' प्रायः एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं। सासी० में यह विकृति कदाचित् इसी भ्रम से आयी हो, अथवा यह भी संभव है कि सासी० के प्रूफ-संशोधन में ही यह अशुद्धि रह गयी हो।

२. दा० ५८-१, नि० ६१-१, सा० १०६-६ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : जालन आनी लाकड़ी, ऊठी कोंपल मेलि ॥ सासी० २७-४२ में 'आनी' के स्थान पर कानी पाठ मिलता है। 'जालन आनी लाकड़ी' का अर्थ स्पष्ट है : जलाने के लिए लायी हुई लकड़ी; किन्तु 'कानी लाकड़ी' निरर्थक ज्ञात होता है। नागरी लेख में कभी-कभी 'अ' और 'क' एक ही आकृति के हो जाते हैं। कदाचित् इसी कारण से सासी० में यह विकृत पाठ आ गया है।

अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं—

३. सासी० १७-४-२ का पाठ है : हैवर ऊपर छत्र तट, तौ भी देवें गाड़ ॥ सा० ३०-२०, साबे० १६-३१ तथा गु० ३७ में 'छत्र तट' के स्थान पर 'छत्र तर' पाठ मिलता है। 'छत्र तर' पाठ के अनुसार उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का अर्थ होगा : जो हाथी के ऊपर और छत्र के नीचे बैठते हैं वे भी, अन्त में, धरती में गाड़े जाते हैं। इसके विपरीत 'छत्र तट' के अनुसार इसका कोई प्रसंगोचित अर्थ नहीं निकलता; अतः यह हिन्दी 'छत्र तर' का ही विकृत रूप ज्ञात होता है; क्योंकि हिन्दी 'र' और 'ट' में प्रायः ही भ्रम हो जाया करता है।

४. सासी० १७-१८७-२ का पाठ है : जमराना बढ़ भेलसी, बोल गले गोपाल। सासी० का 'बोल गले' पाठ निरर्थक है। इस पंक्ति का पाठ नि० १६-७७-२ से तुलनीय है जिसमें उसके स्थान पर 'वोलग लै गोपाल' पाठ मिलता है। नि० का यह पाठ प्रासंगिक है। कबीर की रचनाओं में 'वोलग' शब्द प्रायः 'शरण' अथवा 'रक्षा-स्थान' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सासी० में भ्रम से 'वोलग' का 'ग' आगे आने वाले शब्द में मिला दिया गया है और 'व' के स्थान पर 'ब' कर दिया गया है, जिससे यह पाठ विकृत हो गया है।

५. सासी० ४-२५-१ : डाल जु ढूंढ़े मूल को, मूल डाल के पाहिं। तुल० सा० ५-३५-१ तथा साबे० ६-२१-१ : मूल डाल के माहिं।

६. सासी० ७-१३-२ : धीरै बैठि चपेटसी, यों ले बूड़ै ज्ञान। तुल० दा० २७-२, नि० २८-२-२, सा० ५८-२-२, साबे० ५०-३-२ : धोरै (=निकट)।

७. सासी० ७२-१०-१ : अन पानी का हार है, स्वाद संग नहिं जाय।

तुल० सा० १००-४-१ तथा साबे० ७६-४-१ : अन पानी आहार है।

फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ—कुछ पाठ-विकृतियाँ सासी० में ऐसी मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सासी० का भी कोई पूर्वज उर्दू में था। इन विकृतियों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१. सासी० ३२-१४ का पाठ है : राम कहा जिन कहि लिया, जरा पहूँची आय। **मुंदर** लागो द्वार सों, अब कुछ कही न जाय॥ दा० ४६-२४, नि० ४४-३५, सा० ७८-१७, गु० १३२ तथा गुण० १७७-३१ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का 'लागी मंदिर द्वार तैं, अब क्या काढ़ा जाय।' पाठ मिलता है। इस पाठ के अनुसार इसका सीधा अर्थ होगा : जिन्होंने राम का सुमिरन कर लिया, उन्होंने कर लिया। अब तो वृद्धावस्था घर का दरवाज़ा रोक कर खड़ी हो गयी है, अब क्या काढ़ा जा सकता है? 'मुंदर' पाठ से अर्थ के लिए कष्ट-कल्पना करनी पड़ती है, अतः यह विकृत ज्ञात होता है। 'मंदिर' के स्थान पर 'मुंदर' हो जाना केवल उर्दू में (ज़बर ज़ेर, पेश न लगाने के कारण) संभव है।

३. सासी० ३१-६३ का पाठ है : त्रिया कृतघ्नी पापिनी, तासों प्रीति न जोड़। **पढ़िए चढ़िए आखड़ै,** लागै मोटी खोड़॥ 'पढ़िए चढ़िए आखड़ै' निरर्थक है। दा० १६-१४ तथा नि० ११-१६ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का पाठ है : 'पैड़ी चढ़ि पाछां पड़ै, लागै मोटी खोड़।' जो उपयुक्त प्रतीत होता है। यदि उर्दू 'पैड़ी' में 'ये' के नुक़्तों में कुछ हेर-फेर हो जाय तो इसे सरलता से 'पढ़िए चढ़िए' भी पढ़ा जा सकता है। सासी० की इस विकृति का यही कारण ज्ञात होता है।

आगे स्थल-संकोच के कारण अन्य विकृतियों का केवल संक्षिप्त निर्देश किया जा रहा है—

४. सासी० २२-५३-२ : मेरे भिस्ति न चाहिए, **बांछि** पियारे तुज्झ। तुल० दा० ११-७, नि० १५-८, सा० २७-२६, गुण० ५१-४ : भिस्ति न मेरै चाहिए, बाझ पियारे तुज्झ। [बाझ ∠ सं० बाह्य = हिं० 'बिना' या 'बग़ैर'। सासी० की विकृति उर्दू 'जीम' और 'चे' के सादृश्य के कारण।]

५. सासी० ६-२०८-१ : कबीर साधू की दूरमति, ज्यौं पानी में **लात**। तुल० नि० २६-८-१ : हरि जन कै दुरमति इती, ज्यौं पानी में सांट॥

[सांट = छड़ी या लाठी का आघात। डंडे से मार देने पर थोड़ी देर के लिए पानी अलग हो जाता है, किन्तु फिर ज्यों का त्यों मिल जाता है। सासी० की विकृति उर्दू 'स' और 'ल' में रूप-सादृश्य के कारण।]

सासी० में पाठ-विकृतियों के और भी कई उदाहरण मिलते हैं किन्तु साथ ही अन्य प्रतियों में भी मिलने के कारण उनका उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

राजस्थानी प्रभाव—राजस्थानी प्रभाव सासी० में भी यथेष्ट मात्रा में विद्यमान हैं, यद्यपि उन्हें हटाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. सासी० १६-१०१-१ : फट रे हिया फाटे नहीं, **सांई तनो** बियोग।

२. सासी० १७-९-१ : कबीर केवल हाड़ का, **माटी तना** बंधान।

३. सासी० १७-४२-१ ऊजड़ खेड़े टेकरी, **घड़ि घड़ि** गए कुम्हार।

४. सासी० ७-४४-१ : दूध दूध सब एक है, दूध आक **बी** होय।

५. राजस्थानी की '—सी' प्रत्ययांत क्रियाएँ भी मिलती हैं, जैसे राज० 'मारसी' =हिन्दी 'मारेगा', 'जाइसी'=जायगा, आदि। सासी० में ऐसे प्रयोग बहुत हैं; उदाहरणतया—दे० सासी० ६-२०० : **तारसी**; १६-१११ : **भाजिसी**; १७-५४ : **मारिसी**; १७-९२ : **छूटिसी**; १७-१८७ : **भेलसी**; ३१-५१ : **बूड़िसी**; इत्यादि।

साम्प्रदायिक प्रभाव—जिन स्थलों पर अन्य शाखाओं में 'हरि', 'राम' आदि परमेश्वरवाची नाम हैं, वहाँ पर सासी० में भी साबे० की भाँति पाठ-भेद मिलता है। 'राम' के लिए अधिकांश स्थलों पर 'नाम', 'राम नाम' के लिए 'सत्यनाम' तथा 'हरि' के लिए 'गुरु' आदि पाठांतर इसमें भी मिलते हैं। अन्तर केवल इतना है कि सासी० में यह परिवर्तन उतनी कठोरता से नहीं निबाहा गया है जितना साबे० में।

छंद-भिन्नता—साखी छंद प्रायः दोहे के समान होता है, किन्तु सासी० में कई स्थल ऐसे मिलते हैं जिनके छंद साखियों से नितांत भिन्न हैं। उदाहरण के लिए इसके निम्नलिखित छंद देखे जा सकते हैं—

१. सासी० १८-८२ : **सब से हिलिए सब से मिलिए, सब का लीजै नाम।**
हांजी हांजी सब से कहिए, बसिए अपने ठाम।

२. सासी० ३६-५० : **तन की जानै मन की जानै, जानै चित की चोरी।**
वह साहिब से क्या छिपावै, जिनके हाथ में डोरी॥

३. सासी० ७३-४७ : **जो जाको काटे, सो फिरि ताहे बाटे।**
कहै कबीर न छूटे, सामा सामी साटे॥

पहले उदाहरण में १६ तथा ११ मात्राओं पर, दूसरे में १६ तथा १२ पर और तीसरे में १० तथा १२ पर यति है जबकि साखियों में साधारणतया १३ तथा

११ मात्राओं पर यति होती है (यद्यपि कहीं-कहीं कुछ अंतर भी मिलता है)।

परवर्ती प्रक्षेप—सासी० में साखियों की संख्या अधिक होने के साथ ही साथ प्रक्षेपों की संख्या भी सभी प्रतियों से अधिक है, क्योंकि इसमें बहुत सी साखियाँ अतिरिक्त रूप से मिलती हैं जो उल्लखित प्रतियों में से अन्य किसी में भी नहीं मिलतीं।

जितना अधिक से अधिक हो सका है, कबीर के नाम पर ग्रहण कर सासी० को साखियों का बड़ा से बड़ा रूपान्तर बनाने का प्रयत्न किया गया है। सासी० में कबीर के नाम से ऐसी अनेक साखियाँ मिलती हैं, जो अन्यत्र बिहारी, रहीम आदि की प्रामाणिक रचनाओं में आती हैं। कुछ साखियाँ ऐसी भी मिलती हैं जो निश्चित रूप से परवर्ती कबीरपंथियों की रचनाएँ ज्ञात होती हैं और जिन्हें सासी० में कबीर की रचनाओं के रूप में ग्रहण किया गया है। एक उदाहरण उल्लेखनीय है। सासी० २०-४० का पाठ है—

भजन भरोसे आपके, मगहर तजा शरीर।
तेज पुंज परकास में, पहुंचे दास कबीर॥

अर्थात् आपके (परमात्मा, भगवान, सत्यपुरुष, राम—जो कुछ भी माना जाय) भजन के बल पर कबीरदास ने मगहर में शरीर छोड़ा और (गधा न होकर) ज्योति स्वरूप हो गया। स्पष्ट ही यह रचना न तो कबीर की है और न उनके जीवन-काल की ही।

स० प्रति का विवरण

स० अर्थात् 'सर्बंगी' संत-साहित्य का एक उत्कृष्ट कोटि का संकलन-ग्रन्थ है जिसका प्रणयन दादू के शिष्य रज्जब (मृत्युकाल संवत् १७४६[३९]) ने किया था। हमें इस ग्रन्थ की चार हस्तलिखित प्रतियाँ देखने को मिली हैं—तीन प्रतियाँ दादू-महाविद्यालय जयपुर में और एक ना० प्र० सभा, वाराणसी में। प्रस्तुत अध्ययन में कबीर की वाणियों का पाठ-मिलान जिस प्रति से किया गया है वह दादू-विद्यालय की पहली प्रति है, जिस पर लिपिकाल नहीं दिया हुआ है और जिसके आकार आदि का विवरण ऊपर दा२ प्रति के प्रसंग में दिया हुआ है। यह अनुमान से सं० १८३० वि० के लगभग की लिखी हुई ज्ञात होती है। शेष तीनों प्रतियों के लिपिकाल क्रमशः सं० १८४७, १८४१ तथा १८३६ वि० हैं। 'सर्बंगी' में कुल मिला कर लगभग ६६ संतों तथा सिद्धों की वाणियाँ मिलती

---

३९. दे० संतवाणी, वर्ष १ अंक ४, पृ० १२ पर पु० हरिनारायण शर्मा का प्रमाण।

हैं[४०] जो १४२ अंगों में विभक्त हैं। पुष्पिका के अनुसार सम्पूर्ण पोथी में २,६६१ साखियाँ ८०० पद, १७३ संस्कृत श्लोक, ७३ फ़ारसी बैत तथा कतिपय कवित्त और अरिल्ल संग्रहीत हैं। इतने बड़े साहित्य का मंथन कर उसे विभिन्न प्रकरणों में सजा कर रज्जब ने सचमुच बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है। 'सर्वंगी' के आमुख में उन्होंने निवेदन किया है कि—

सुरति सुक्ति मधि नीपजै, सबद मुक्त सु अभोग।
रज्जब माला मोहिनीं, गोबिंद ग्रीवा जोग॥
आंनीं गिरिवर ग्यांन तैं, सबद शिला अहि काज।
रज्जब जोड़ी राज गुरु, सक्ति समद सिर पाजि॥
ततबेत्ता तरवर भले, मत मधु आंन्यां छांनि।
सबगी मांनूं सहत, प्रांण पुष्ट रस पांनि॥

और 'सर्वंगी' के संबंध में रज्जब का उक्त निवेदन अक्षरशः सत्य है।

जैसा कि नाम से विदित होता है, स० प्रति में अंगों के विभाजन को विशेष महत्व दिया गया है। दादूपंथ में यह प्रसिद्धि चली आ रही है कि पहले दादू की वाणियों में अंगों का विभाजन नहीं था। रज्जब ने ही अन्य संतों के परामर्श से उसे विभिन्न अंगों में विभक्त कर उसका नाम 'अंगबंधू' रक्खा था। तब से यही रूपान्तर प्रायः सर्वमान्य हो चला। असम्भव नहीं कि कबीर आदि अन्य संतों की वाणियों में भी अंगों का विभाजन रज्जब के ही समय से चला हो।

पाठ-संबंधी विशेषताएँ—स० प्रति में कबीर के १५५ पद, एक रमैनी तथा १८१ साखियाँ मिलती हैं जिनमें केवल ६ साखियाँ ऐसी हैं जो इसमें अतिरिक्त रूप से आई हैं, शेष सभी अन्य प्रतियों में मिल जाती हैं। इसमें लिपि-जनित विकृतियों की प्रायः वे समस्त विशेषताएँ मिलती हैं, जिनका उल्लेख ऊपर दा० प्रतियों के संबंध में किया

---

४०. रचनाकारों के नाम निम्नलिखित हैं : १. दादू, २. कबीर, ३. कृष्णदास पौहारी, ४. भैरूं, ५. हरदास, ६. नापा, ७. नामदेव, ८. काजी महमूद, ९. जन गोपाल, १०. सूरदास, ११. परमानन्ददास, १२. बखना, १३. मुकुन्द भारथी, १४. नानक, १५. अहमद, १६. सम्मन, १७. कणेरीपाव, १८. गोरखनाथ, १९. वाजिद, २०. गो० तुलसीदास, २१. तुरसीदास निरंजनी, २२. छीतर, २३. रैदास, २४. अग्रदास, २५. पीपा, २६. माधोदास, २७. बांसा, २८. परशुराम, २९. भीखजन, ३०. सोम, ३१. चतुर्भुजदास, ३२. जगन्नाथदास, ३३. पृथ्वीनाथ (नाथयोगी), ३४. बेणीदास, ३५. फरीद, ३६. अमरदास, ३७. खेमदास, ३८. दीपदास, ३९. भीखदास, ४०. गरीबदास, ४१. नरसी मेहता, ४२. अंगद, ४३. हनुमंत सिद्ध, ४५. तिलोचन, ४६. सांवलिया, ४७. बोहितदास, ४८. तिलोक, ४९. दंवल, ५०. बीभल, ५१, गोविन्ददास, ५२. कृष्ण दास, ५३. अनन्त माथुर, ५४. नागर, ५५. नारायणदास, ५६. वेणीदास, ५७. अमदास, ५८. मांड, ५९. कील्हकरण ६०. बिहबलदास ६१. हरिसिंहराम माली, ६२. संतदास, ६३. रामानंद, ६४. नंदनास, ६५. फरीद, ६६. जगजीवन दास। इनके अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवत', 'नीति-शतक', 'गीता' आदि से संस्कृत के श्लोक भी प्रसंगानुसार आये हैं और यत्र-तत्र फ़ारसी के बैत भी मिलते हैं।

गया है। किन्तु यह पाठ-विकृतियाँ स० के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में भी समान रूप से मिलती हैं, अतः इनका निर्देश आगे संकीर्ण-संबंध के प्रकरण में किया गया है। स० में स्वतंत्र रूप से मिलने वाली केवल एक विशेषता है जो निम्नलिखित है—

पुनरावृत्ति—स० के छठे अंग की पहली साखी का पाठ है—

कबीर सोइ अखिर सोई बयरा, जन जु जु बाचवंत।
कोई जन मेल्है केलवरिा, अमीं रसाइंरा हुंत॥

यही साखी पुनः ३१-१ पर भी मिलती है। पाठ शब्दशः वही है। संकलन-ग्रन्थों में प्रसंगानुसार इस प्रकार की पुनरावृत्ति हो सकती है, अतः इससे आदर्श-बाहुल्य नहीं सिद्ध किया जा सकता।

गुण० प्रति का विवरण

गुरा० अर्थात् 'गुरागंजनामा' भी 'सबंगी' के समान ही एक संकलन-ग्रंथ है, जिसे जगन्नाथदास दादूपंथी ने तैयार किया था। जगन्नाथदास भी रज्जब के ही समकालीन थे। जैसा पहले निर्देश किया गया है, हमें 'गुरागंजनामा' की दो प्रतियाँ मिली हैं: एक जयपुर के दादू-महाविद्यालय में और दूसरी ना० प्र० सभा, वाराणसी में। प्रस्तुत अध्ययन में दादू-विद्यालय की ही प्रति का उपयोग किया गया है। इसमें लगभग ५ इंच चौड़े और एक फ़ुट लम्बे चार सौ खुले पत्रे हैं। पोथी अपनी लम्बाई में सुन्दर नागरी अक्षरों में लिखी हुई हैं। अन्त में इसका लिपिकाल सं० १८५३ वि० दिया हुआ है।

'गुरागंजनामा' में अंगों की संख्या 'सबंगी' से अधिक है। इसमें 'नमस्कार-बंदना' से लेकर 'हरिजन अबिहड़' तक कुल १७९ अंग मिलते हैं, किन्तु इसमें पद आदि बड़े छंद न ग्रहरा कर केवल साखियाँ या साखियों से मिलते-जुलते ऐसे छंद लिये गये हैं, जो दो या चार पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं। गुरा० में मिलने वाले छंदों के नाम हैं: साखी, श्लोक (संस्कृत में), सबदी (सिद्धों की), सोरठा, चौपाई, चौमुखी, गूढ़ा (कूट) अरैल, चौबोला तथा गाथा। इसमें निम्नलिखित कवियों की रचनाओं से उद्धरण लिये गये हैं—

१. दादू, २. जगजीवन, ३. कबीर, ४. चैन, ५. रज्जब, ६. जगन्नाथ (संकलयिता), ७. परशुराम, ८. जैमल, ९. दूजन, १०. रामदास, ११. नानक, १२. बाजिद, १३. ज्ञानी, १४. जनगोपाल, १५. माधौदास, १६. रैदास, १७. बखना, १८. अग्रदास, १९. मोहन, २०. भीम, २१. संतोषदास, २२. नामदेव, २४. तुरसी, २४. श्यामदास, २५. ईश्वरदास, २६. सेऊ सम्मन, २७. असरफ, २८. अहमद, २९. जमाल, ३०. मल्ल, ३१. बिहारी, ३२. शंकरदास,

३३. जसवंत, ३४. मूसन, ३५. गरीबदास, ३६. मुहम्मद, ३७. फ़रीद, ३८. बुरहान, ३९. मधुसूदन, ४०. टोडर, ४१. कासिम, ४२. रांका, ४३. पृथ्वीदास, ४४. कालू, ४५. जोधा, ४६. नरहरि, ४७. खोजी, ४८. व्यास, ४९. कविनाथ, ५०. कूबा, ५१. गो० तुलसीदास, ५२. शंकराचार्य, ५३. गोरखनाथ, ५४. पृथ्वीनाथ, ५५. पीपा, ५६. डूंगर, ५७. कमाल, ५८. प्रयागदास, ६०. राघवदास, ६१. लालदास, ६२. चरपट, ६३. कल्यान, ६४. जीता, ६५. नंददास ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवियों की संख्या 'सर्बंगी' के समान ही है। पुष्पिका के अनुसार इसमें कुल ५,५८६ साखियाँ संकलित हैं ; किन्तु छंद छोटे होने के कारण इसका आकार अंत में 'सर्बंगी' से छोटा ही उतरता है। इसमें कुल मिला कर कबीर को लगभग ४०० साखियाँ मिलती हैं जिनमें ८६ साखियाँ ऐसी हैं जो अन्य प्रतियों में नहीं मिलतीं। गुण० में कई अंग ऐसे भी मिलते हैं जिनमें कबीर की साखियाँ नहीं हैं।

पाठ-संबंधी विशेषताएँ

इसकी पाठ-संबंधी विशेषताएँ मुख्यतया दा० नि० प्रतियों से मिलती हैं और विकृतियों में फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियाँ हिन्दी विकृतियों से अधिक हैं। नीचे क्रमशः सभी विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

राजस्थानी-प्रभाव—राजस्थान में ही परम्पराबद्ध रूप में लिपिबद्ध होने के कारण राजस्थानी-प्रभाव इसमें भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। दा० नि० के समान इसमें भी कहीं-कहीं पूरी की पूरी साखियाँ राजस्थानी रंग में रँगी हुई हैं। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित साखियाँ उद्धृत की जा सकती हैं—

१. गुण० १९-९६ : **अंदेसड़ौ न भाजिसी**, संदेसौ कहियांहं।
कै हरि आयां **भाजिसी**, कै हरि पासि गयांहं ॥

२. गुण० १९-९७ : इहि अंग औलू **भाजिसी,** जदि तदि तुझ मिलियांहं ॥

३. इनके अतिरिक्त **आंखड़ियां, दुखड़ियां, रतड़ियां,** (तीनों गुण० १८-७३ में), **करंतड़ा** (गुण० १७७-५४) तथा **पड़सी** (गुण० १२०-९), **मिलसी** (गुण० ५६-११) आदि राजस्थानी क्रियाओं के प्रयोग भी कम नहीं हैं।

फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियाँ—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. गुण० १७७-१६७-१ का पाठ है : रोवनहारै भी मुए, मुए **चलावनहार**। दा० ४६-३१, नि० ४४-४१, सा० ३०-३५, ७८-३६, साबे० १९-१५९ तथा सासी० १७-६, ३२-३१ सब में उक्त साखी की पहली पंक्ति में 'जलावनहार' पाठ आता है। यहाँ जगत् की नश्वरता का वर्णन है जिसमें दा० नि०

आदि का पाठ ही अधिक प्रासंगिक है। उसके अनुसार इसका अर्थ होगा : जो विलाप कर रहे थे वे भी मर गये, जो जलाने गये थे वे भी मर गये। 'चलावनहार' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं उठता। अतः गुण० का पाठ यहाँ विकृत ज्ञात होता है। इस विकृति की संभावनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस प्रकार की पाठ-विकृति उर्दू में 'जोम' और 'चे' के सादृश्य के कारण हो सकती है।

२. गुण० ५०-२ : **संपट** माँहि समाइया। तुल० सा० ६७-२० : संपुट माँहि समाइया (उर्दू में ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण)।

नागरी-लिपि-जनित विकृतियाँ—इस प्रकार की विकृतियों के केवल दो-एक उदाहरण मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. गुण० ८४-३५ का पाठ है : **आमन** चिंता हरि करै, जो तोहिं चित न कोइ। नि० ३७-१६, सा० ६६-८, साबे० २२-१, सासी० २०-६ में 'आमन' के स्थान पर 'आपन' और गु० २१६ में 'अपना' पाठ मिलते हैं। 'आमन' स्पष्ट ही विकृत और निरर्थक पाठ है। नागरी में 'प' और 'म' प्रायः एक से लगते हैं और उनमें भ्रम हो जाना असम्भव नहीं। गुण० में यह विकृति इसी भ्रम से आयी ज्ञात होती है।

गुण० में पाठ-विकृतियों के कुछ अन्य उदाहरण भी मिलते हैं किन्तु साथ ही अन्य प्रतियों में भी मिलने के कारण उनकी चर्चा आगे हुई है।

पुनरावृत्तियाँ—'गुणगंजनामा' में दो साखियाँ ऐसी हैं जो दो स्थानों पर मिलती है। उसके अठारहवें अंग की ६६ वीं साखी है—

बिरह भुवंगम तनि बसै, मंत्र न लागै कोइ।
रांम बियोगी नां जिवै, जिवै तौ बौरा होइ॥

यही साखी आगे २६ वें अंग अर्थात् 'बिरह प्रीति प्रभाव' में ६ वीं साखी के रूप में फिर मिलती है। दोनों के पाठों में एक मात्रा का भी अंतर नहीं है।

इसी प्रकार १६वें अंग की ४१वीं साखी आगे चल कर ३५ वें अंग की १७वीं साखी के रूप में पुनः ज्यों की त्यों मिल जाती है। उक्त दोनों साखियों का पाठ है—

ज्यूं मन मेरा तुज्झ सौं, यूं जे तेरा होइ।
ताता लोहा यूं मिलै, संधि न लखई कोइ॥

संकलन-ग्रन्थों में एक प्रति सामने रहने पर भी प्रसंगानुसार इस प्रकार की कुछ पुनरावृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से हो सकती हैं, अतः इतने अल्प उदाहरणों के आधार पर 'गुणगंजनामा' में आदर्श-बहुलता नहीं प्रमाणित की जा सकती।

§४ : प्रतियों का संकीर्ण-संबंध

नीचे ऐसी भूलों या पाठ-विकृतियों के उदाहरण दिये जा रहे हैं, जो किन्हीं दो या दो से अधिक प्रतियों में समान रूप से मिलती हैं, और जिनके आधार पर उन-उन प्रतियों में परस्पर संकीर्ण-सम्बन्ध स्थापित होता है। किसी पाठ की शुद्धाशुद्धि का निर्णय जिन तर्कों के आधार पर किया गया है, उनका भी उल्लेख यथास्थान हुआ है। कबीरवाणी के पाठ में ऐसी विकृतियाँ जिन कारणों से आयी हैं उनकी सम्भावनाओं पर भी विचार किया गया है और उनके संबंध में अपना निर्णय दिया गया है।

दा० तथा नि० का संबंध

दा० तथा नि० प्रतियों के पाठ में अत्यधिक साम्य मिलता है। साखियों में अंगों के नाम, पदों में रागों के नाम तथा उनके अंतर्गत पदों के विभाजन, रमैनियों के क्रम तथा पाठ स्थूल रूप से प्रायः समान हैं। मुख्य अंतर केवल इतना है कि नि० का आकार दा० से बड़ा है अर्थात् नि० के अनेक पद, साखियाँ तथा रमैनियाँ दा० में नहीं मिलतीं। इसके अतिरिक्त क्रम में अन्तर मिलता है। पाठ-भेद भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, किन्तु अन्य प्रतियों की तुलना में उनकी संख्या गौण ही माननी पड़ेगी। विशेषतया निम्नलिखित विकृति-साम्य विचारणीय हैं—

(क) **फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य**—इस वर्ग में दा० तथा नि० में समान रूप से मिलने वाली ऐसी अशुद्धियों का उल्लेख किया गया है, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि उनके मूल रूप (अर्थात् शुद्ध रूप) कभी फ़ारसी लिपि में लिखे थे और जो फ़ारसी लिपि की ही भ्रांतियों के कारण आज इस रूप में दा० तथा नि० में मिलते हैं। निम्नलिखित उदाहरण इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि इनके आदर्श कभी उर्दू में थे और मूलतः उर्दू में लिखे

---

१. हस्तलिखित प्रतियों का लेखन-कार्य प्रायः परम्परागत रूप में चलता है। एक प्रति को देख कर या सुन कर ही दूसरी प्रति उतारी जाती है। इस प्रक्रिया में प्रायः ऐसा हुआ करता है कि पहली प्रति की प्रतिलिपि-संबंधी या अन्य भूलें और प्रक्षिप्तियाँ दूसरी में भी प्रायः ज्यों की त्यों चली आती हैं और प्रत्येक प्रतिलिपि-पीढ़ी में नई भूलें और प्रक्षिप्तियाँ बढ़ती चलती हैं। जब कई भूलें या प्रक्षिप्तियाँ दो या दो से अधिक प्रतियों में उन्हीं-उन्हीं स्थलों पर ज्यों की त्यों मिल जाती हैं और जब इस संदेह के लिए स्थान नहीं रह जाता कि उनमें यह स्वतन्त्र रूप से आयी हुई हैं, तो उन प्रतियों को परस्पर संकीर्ण रूप से सम्बद्ध माना जाता है। प्रतियों के परस्पर संकीर्ण रूप से सम्बद्ध होने का अर्थ यह है कि उनमें मिलने वाला समान पाठ निश्चित रूप से मूलग्रंथ का तब तक स्वीकृत नहीं किया जा सकता जब तक कि उसकी पुष्टि अन्य किसी ऐसी प्रति से न हो जाय जो उनसे पृथक् किसी स्वतन्त्र परम्परा का हो।

जाने के कारण ही उनकी यह दुर्गति हुई है, जो आज हमें नागरी प्रतियों में देखने को मिलती है।

पदों के उदाहरण—

१. दा० गौड़ी १०५ तथा नि० बिहंगड़ौ १४ की पंक्ति ४ तथा ५ का पाठ है : एकनि दीनां पाट पटंबर एकनि सेज निवारा। एकनि दीनीं **गरै** (दा३ नि० **गलै**) गूदरी एकनि सेज पयारा। गु० आसा १६ में यह पंक्तियाँ आरम्भ में ही मिलती हैं, जहाँ इनका पाठ है : काहू दीन्हें पाट पटंबर काहू पलघ निवारा। काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा ॥ दा० तथा नि० की द्वितीय पंक्ति के 'गरै' या 'गलै' पाठ अशुद्ध हैं। अवधी 'गरै' का अर्थ होगा : गले या गरदन में। 'गूदरी' के प्रसंग में गले का कोई प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि गुदरी ओढ़ने-बिछाने के काम में आती है, गले में नहीं लपेटी जाती। यहाँ गु० द्वारा प्रस्तुत किया हुआ 'गरी' (=सड़ी गली या जीर्ण) पाठ ही प्रसंगानुकूल ज्ञात होता है। इस प्रकार की विकृति फ़ारसी के अतिरिक्त अन्य किसी भी लिपि में नहीं हो सकती। उर्दू में 'गरी' तथा 'गरे' दोनों एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं; इसलिए इस पाठ-विकृति की संभावना प्रकट है।

२. दा० आसावरी ४२ तथा नि० आसा० ३७ की चौथी पंक्ति का पाठ है : **सूखे तरवरि** पालि बंधावै लुंणे खेत हठि बाड़ि करै। गु० आसा १५ में 'तरवरि' के स्थान पर 'सरवरि' पाठ मिलता है। 'पालि' सरोवर के बाँध या ऊँचे कगार को कहते हैं (तुल० जायसी, पदमावत ६०-१ : खेलत मान-सरोबर गईं। जाइ पालि पर ठाढ़ी भईं ॥ तथा ६७-५ : टूटि पालि सरवर बहि लागे)। उसके प्रसंग में 'सरवरि' शब्द ही अधिक उपयुक्त है। दा० नि० में संभवतः यह विकृति फ़ारसी लिपि के ('सीन' तथा 'ते' में सादृश्य) कारण आयी है। इस विकृति की संभावना नागरी लिपि में भी है, क्योंकि उसके भी 'स' तथा 'त' में कभी-कभी भ्रम हो जाना असंभव नहीं है।

३. दा० आसावरी ५७ तथा नि० आसावरी ५१ की आठवीं पंक्ति का पाठ है : करि फिकर दद सालक **जसम** जहां स तहां मौजूद। दा० नि० का पाठ यहाँ स्पष्ट ही भ्रष्ट हो गया है, क्योंकि इसका कोई प्रसंगोचित अर्थ नहीं निकलता। दादू-विद्यालय में मिली हुई अप्रकाशित टीका (जिसका विवरण अन्यत्र दिया गया है) में इस पंक्ति का अर्थ किया गया है : 'करि फिकिर हम चिंता करिं दर्दसाल दुख है हमारे। मौजूद तैयार जहाँ तहाँ।' किन्तु यह अर्थ संतोषजनक नहीं ज्ञात होता। 'जसम' के लिए उक्त टीका में कोई अर्थ ही नहीं मिलता।

दा० नि० की उक्त पंक्ति गु० तिलंग १ की आठवीं पंक्ति के रूप में मिलती है। गु० में इसका पाठ है : करि फकरु दाइम लाइ **चसमे** जहा तहा मउजूद । यह पाठ अधिक सार्थक और प्रसंगानुकूल प्रतीत होता है (दाइम=सदैव, निरंतर; चसमें =नेत्रों में । उसे सदैव अपनी आँखों में रख कर उसी का चिंतन कर, ऐसा करने पर वह तुम्हें यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान मिलेगा ।) । 'चसमे' के स्थान पर दा० नि० में 'जसम' पाठ मिलना उर्दू में ही सम्भव हो सकता है, क्योंकि उर्दू में 'जीम' और 'चे' प्रायः एक ही ढंग के होते हैं—अंतर केवल नुक़्तों का रहता है। अन्य लिपियों के 'च' और 'ज' में पर्याप्त भिन्नता रहती है अतः उनमें इस प्रकार का भ्रम होना संभव नहीं ज्ञात होता।

साखियों के उदाहरण—

४. दा० १७-४-१ तथा नि० २०-३-१ का पाठ है : स्वामी हूवा **सीत** का, पैकाकार पचास। सा० २-२३, साबे० २-१६, सासी० ३-४६ तथा ३४-१४ में इसका पाठ है : गुरुवा तो सस्ता भया, पैसा केर पचास । वास्तव में मूल पाठ 'सेंत' ज्ञात होता है, क्योंकि अवधी, भोजपुरी में सस्ता या बिना दाम के अर्थ में 'सेंत' शब्द का ही प्रयोग होता है 'सीत' का नहीं (तुल० साबे० ८४-७६, : सेंत मेंत ही देत हौं, गाहक कोई नांहि) । सा० साबे० सासी० में सरल करने की दृष्टि से उसी का समानार्थी रूप 'सस्ता' दिया गया है । उर्दू में 'सेंत' लिखने के समय 'नु' का नुक़्ता लगने से यदि रह जाय तो उसे 'सीत' पढ़ा जा सकता है।

५. दा० ३-७-१ का पाठ है : बिरहिन ऊठै **भी** पड़ै, दरसन कारन रांम । नि० ६-६ में इसका पाठ है : कबीर बिरहिन **भी** पड़ै, दरसन कारन रांम ।। सा० १६-७, साबे० १४-७० तथा सासी० १६-१२ में इस पंक्ति का पाठ है : बिरहिन उठि उठि भुइं पड़ै, दरसन कारन राम । स्पष्ट ही यहाँ अंतिम पाठ प्रसंगसम्मत है और शेष दोनों विकृत हैं । राजस्थानी में 'भी' का अर्थ पुनः या अतिरिक्त होता है, किन्तु यहाँ उसका कोई प्रसंग नहीं । यहाँ बिरहिन की विकलता का वर्णन है । वह उठती है और फिर मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है, यही अर्थ स्वाभाविक लगता है । 'भुइं' से 'भी' की विकृति पर विचार करने से अनुमान होता है कि फ़ारसी छोड़ अन्य किसी भी लिपि में इस प्रकार की विकृति सम्भव नहीं ।

६. दा० २२-१५ तथा नि० २३-२४ का पाठ है : कबीर लज्जा लोक की, सुमिरै नांहीं सांच । जांनि बूझि कंचन तजै, **काठौ** पकड़ै कांच ।। इसकी दूसरी पंक्ति में 'काठौ' शब्द संदिग्ध ज्ञात होता है । सा० ५२-११, साबे० ६७-१५ तथा

साखी० ८१-१३ में 'काठौ' के स्थान पर 'का तू' पाठ मिलता है। इस पाठ से अर्थ में कष्ट-कल्पना नहीं करनी पड़ती, अतः यही मूल पाठ ज्ञात होता है। कबीर की कृतियों में 'काठहिं' या 'काठौं' का प्रयोग 'तट' अथवा 'निकटस्थ स्थल' के अर्थ में हुआ है (तुल० दा० १७-१६ : कासी काठैं घर करै, पीवै निरमल नीर)। प्रस्तुत साखी में तट आदि का कोई प्रश्न नहीं उठता, अतः 'काठौ' पाठ विकृत ज्ञात होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, उर्दू में 'त' तथा 'ट' के लिए एक ही अक्षर का प्रयोग होता है, अतः उनमें भ्रम होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार 'ऊ' और 'औ' की ध्वनियों के लिए भी 'वाव' का ही प्रयोग होता है। 'का तू' से 'काठौ' हो जाने का यही कारण ज्ञात होता है।

रमैनियों के उदाहरण—

७. दा० नि० बड़ी अष्टपदी रमैनी के दूसरे दोहे की ग्यारहवीं पंक्ति का पाठ है : तरिपै बरिसै अखंड धारा। रैंनि **भांमिनीं** भया अंधयारा ॥ बी० रमैनी १६-६ में इसका पाठ है : बरिसै तरिपै अखंडित धारा। रैनि भयावनि कछु न अधारा ॥ पूरी रमैनी में सांसारिक उलझनों का रूपक बाँधा गया है। आरम्भ से ही रूपक के उपमेय पक्ष के ही उपकरण गिनाये गये हैं। अतः बीच में 'भामिनी' (=स्त्री) आ जाने से स्वाभाविक शृंखला टूट जाती है। बी० के पाठ में यह दोष नहीं आने पाता। उर्दू में 'भयावनि' लिखते समय 'ये' के नुक़्तों में गड़बड़ी हो जाने और 'वाव' तथा 'नु' के आपस में मिल जाने पर 'भयावनि' का 'भामिनी' हो जाना असम्भव नहीं।

८. दा० नि० की बावनी रमैनी में पहली ही पंक्ति का पाठ है : बावन अखिर लोक **त्री सब** कुछ इनहीं नाहिं। गु० गउड़ी ७५ में 'त्री' के स्थान पर 'त्रै' पाठ है। मूल पाठ 'त्रै' रहा होगा 'त्रि' नहीं, क्योंकि प्रसंग से 'लोकत्रय' का ही अर्थ अपेक्षित है। 'त्री' का प्रयोग कबीर में स्त्री के अर्थ में मिलता है। दा० नि० की यह विकृति भी फ़ारसी लिपि के ही कारण माननी पड़ेगी, क्योंकि उर्दू में 'त्री' और 'त्रै' एक ही ढंग से लिखे जाते हैं।

स्थल-संकोच के कारण नीचे के शेष उदाहरणों के संबंध में लिपि-विभ्रम का संक्षिप्त निर्देश मात्र किया जा रहा है। दा० नि० का पाठ इन उदाहरणों में प्रसंगसम्मत नहीं है, यह स्वतः देखा जा सकता है। इसलिए प्रसंग की दृष्टि से इन पाठों के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है।

९. दा० १२-८ तथा नि० १६-९ : कबीर कहा गरिबियौ, इस जोबन की आस। **केसू** फूले दिवस दुइ, खंखर भए पलास ॥ तुल० सा० ३०-१८, साबे०

१६-२६ तथा सासी० १७-२ : 'केसू' के स्थान पर 'टेसू' [उर्दू 'ट' में यदि ऊपर की पड़ी रेखा कुछ दाहिनी ओर हट जाय तो वह 'काफ़' के सदृश लगने लगता है। किंतु यह उदाहरण पूर्णतया निस्सन्दिग्ध नहीं; क्योंकि भाषा-भेद से भी यह परिवर्तन सम्भव है : किंशुक>केशू>टेसू]

१०. दा१ २०-६-२ तथा नि० २१-५०-२ : खूंणैं बैसि र खाइए, परगट होइ **दिवांनि**। तुल० सा० ४३-१२, साबे० ७३-१०, सासी० ३१-३६, गु० १७, स० ११२-१७ तथा गुण० ११०-१८: सब में 'दिवांनि' के स्थान पर 'निदांनि' (निदांनि=अंत में)। नुक़्ते के साथ मिल जाने पर 'नु' के शोशे तथा 'दाल' में और 'दाल' तथा 'वाव' के सादृश्य के कारण 'द' तथा 'व' में भ्रम हो जाने से ही कदाचित् यह विकृति संभव हुई है।

११. दा० १६-१७ तथा नि० १६-२ में के अंतिम चरण का पाठ है : **मांनि** सबनि कौं खाइ। तुल० सा० ३८-५, साबे० ५७-२, सासी० ६७-६, गुण० १५६, बी० १४० : सब में 'मांनि' के स्थान पर 'मान' या 'मानु'। कर्ता 'मान' के स्थान पर अधिकरण 'मानि' अनावश्यक तथा भ्रमात्मक है।

१२. दा० आसावरी ११ तथा नि० आसावरी १० की चौथी पंक्ति का पाठ है : पैली पार के पारधी ताकी **धुनहीं** पनच नहीं रे। तुल० शबे० (२) भेद १५ : 'धुनहीं' के स्थान पर 'धनुवां' (विकृति उर्दू ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण अथवा भाषा-भेद के कारण संभव प्रतीत होती है)।

१३. दा० ५८-४, नि० ६३-४ : ससा सींग की **धुनहड़ी**, रमै बांझ का पूत। (उपर्युक्त उदाहरण के सदृश)।

१४. पुनः इसी प्रकार दा० ५-२४, नि० ८-१८ : कहै कबीरा संत हो, पड़ि गया **निजरि** अनूप। तुल० सा० २०-२२, साबे० ४३-२८, सासी० १४-४३ : 'निजरि' के स्थान पर 'नजरि'।

१५. दा० १६-२५, नि० १६-२६ : **सांकुल** ही तैं सबल है, माया इहि संसार। तुल० सा० ३७-२८, सासी० ३०-४० : सांकल।

१६. दा० तथा नि० १-२२ : संसय खाया सकल **जुग**, संसा किनहुं न खद्ध। तुल० सा० ७८-८६, साबे० २३-६, सासी० ३२-५७ : सकल जग। अंतिम पाँच विकृतियों के उदाहरण प्रांतीय भाषा-भेद के कारण भी संभव हैं।

(ख) नागरी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य—नागरी लिपि-जनित विकृतियों का केवल एक साम्य है जो निम्नलिखित है—

१. दा० ५३-३-१ तथा नि० ५६-५-१ का पाठ है : सो सांई तन मैं

बसै, **भरमि** न जानैं तासु । तुल० सा० १०३-२ तथा सासी० ४१-१४ : सो साहिब तन में बसै, मरम न जानै तास । 'मरम' (=भेद) पाठ स्पष्ट ही यहाँ प्रासंगिक तथा प्रामाणिक ज्ञात होता है । दा० नि० का पाठ इसी का विकृत रूप ज्ञात होता है । नागरी के 'भ' तथा 'म' में विशेष अन्तर नहीं रहता, इसलिए 'मरम' से 'भरम' हुआ और 'भरम' को कदाचित् व्याकरणोचित बनाने के लिए 'भरमि' कर दिया गया ।

(ग) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—पीछे विभिन्न प्रतियों के विवरण में हमने देखा है कि दा० तथा नि० में से प्रत्येक में राजस्थानी का अत्यधिक प्रभाव मिलता है । उक्त प्रसंग में ऐसे उदाहरण उद्धृत किये गये थे जो केवल दा० या केवल नि० में मिलते हैं । राजस्थानी के ऐसे अनेक प्रयोग हैं जो दा० तथा नि० दोनों में समान रूप से भी मिलते हैं । उनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं । स्थल-संकोच के कारण उनका निर्देश-मात्र किया गया है । उनका राजस्थानी-पन स्वतः सिद्ध है । काले अक्षरों में छपे शब्द विशेष रूप से विचारणीय हैं—

१. तुल० दा० ३-६, नि० ६-६ अंदेसड़ा न **भाजिसी,** संदेसौ कहियां । कै हरि आयां **भाजिसी,** कै हरि ही पास गयां ।।

२. दा० २६-३, नि० ८-६६ : तन खीनां मन उनमनां, जग **रूठड़ा** फिरंत ।

३. दा० २०-१३, नि० २१-२० : कबीर भग की **प्रीतड़ी,** केते गए गडंत । केते अजहूं **जाइसी,** नरकि हसंत हसंत ।।

४. दा० ५६-२-२, नि० १७-३६-२ : देखत ही दह मैं पड़ै, दई **किसांकौं** दोस ।

५. दा० ५६-१-२, नि० ८-४७-२ : हिलि मिलि ह्वै करि **खेलिसूं,** कदे बिछोह न होइ ।

६. दा० ३४-७-२, नि० ५-५-२ : पैका पैका जोड़तां, **जुड़िसी** लाख करोड़ि । (तुल० बी० २०६ : कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जौरे लाख करोड़ि) ।

७. दा० २-२१-२, नि० ५-५-२ : ओसां प्यास न **भाजिसी,** जब लगि धसै न आभ ।

८. दा० ३१-६-२, नि० ३३-६-२ : चरन कमल की मौज मैं, **रहिस्यूं** अंति रु आदि ।

९. दा० ४६-६-२, नि० ४४-६-२ : काल अच्यंता **झड़पसी,** ज्यूं तीतर कौं बाज ।

१०. दा० १३-२३, नि० १७-२८ : मिरतक कूं घीजौ नहीं, मेरा मन

बी है। बाजै बाव बिकार की **भी** मूवा जीवै ॥ (राज० बी=हिं० वही; भी=फिर)।

इनके अतिरिक्त दोनों में 'लह्या', 'प्रगट्या', 'कह्या' आदि रूप, -सी प्रत्ययांत क्रियाएँ तथा णकारान्त शब्दावली का बाहुल्य है, जो राजस्थानी की स्थूल विशेषताएँ हैं। इनके उदाहरण दा० नि० में अगणित हैं। कहीं-कहीं राजस्थानी के ऐसे ठेठ प्रयोग आ गये हैं कि बिना उक्त भाषा का ज्ञान प्राप्त किये उनका अर्थ समझना कठिन हो जाता है।

यह एक विचारणीय बात है कि पदों की तुलना में साखियों में राजस्थानीपन अधिक मिलता है।

(घ) पंजाबी-प्रभाव का साम्य—कुछ विकृतियाँ दा० नि० में ऐसी मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि दोनों पर पंजाबी का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। दोनों में पंजाबी-विकृतियाँ समान रूप से मिलने के कारण दोनों में संकीर्ण-सम्बन्ध भी सिद्ध होता है। ऐसी विकृतियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० १२-११-१ तथा नि० १६-१२-१ : चांम **पलेटे हड**।
२. दा० १२-६०-२ तथा नि० १६-४३-२ : रूई **पलेटी** आगि। इसी प्रकार दा० १६-३२ तथा नि० १६-४२ में भी : रूई **पलेटी** आगि।
३. दा० १७-३-१ तथा नि० २०-२-१ : स्वांमीं **हूंणां** सोहरा, दोद्धा **हूंणां** दास। तुल० सा० ४०-३ तथा सासी० ११-१५ : होना।
४. दा० ४३-१०, नि० ४८-१३ : माया मिलै महोबती, कूड़े **आखै** बैंन। कोई घायल बेधा ना मिलै, सांई **हंदा** सैंण।

(ङ) पुनरावृत्तियों में साम्य—दा० तथा नि० के रमैणी-प्रकरण में कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं, जो दोनों में दो-दो बार मिलती हैं। इस संबंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ तुलनीय हैं—

१. सतपदी रमैनी के चौथे दोहे की चौथी पंक्ति है—

जिनि जांन्या ते निरमल अंगा। नहीं जांन्या ते भए भुजंगा॥

यही पंक्ति पुनः बारहपदी रमैनी के ५वें दोहे की ५वीं पंक्ति के रूप में इस प्रकार मिलती है—

जिनि चीन्हां ते निरमल अंगा। जे अचीन्ह ते भए पतंगा॥

यह पंक्ति बीजक में केवल एक स्थल पर (अर्थात् चौथी रमैनी में) मिलती है।

२. इसी प्रकार तुल० सतपदी ७-४ : **भवसागर अति वार न पारा।**
ता तिरबे का करहु बिचारा ॥

तथा बड़ी अष्टपदी ८-१६ : **भवसागर अति वार न पारा।**
ता तिरबे का करहु बिचारा ॥

३. तुल० सतपदी दोहा ७ : **भवसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ रांम अधार।**
कहै कबीर हंम हरि सरन, तब गोपद खुर बिस्तार ॥

तथा बड़ी अष्टपदी ८ : **भाव भगति हित बोहिथा, सतगुरु खेवनहार।**
अलप उदिक तब जांणिए, जब गोपद खुर बिस्तार ॥

इसी प्रकार निम्नलिखित स्थल भी तुलनीय हैं, जिन्हें स्थल-संकोच के कारण विस्तार से नहीं उद्धृत किया जा रहा है—

(४) सतपदी पंक्ति २ तथा बड़ी अष्टपदी पंक्ति २; (५) बड़ी अष्टपदी ५-१ तथा वही ७-४; (६) बड़ी अष्टपदी ५-११ तथा दुपदी २-२६; (७) बड़ी अष्टपदी ५-१४ तथा दुपदी २-१४; (८) बड़ी अष्टपदी ५-१५ तथा दुपदी २-२५; (९) दुपदी २-४८-१ तथा ५६-१।

किसी एक व्यक्ति की रचना में, या उस रचना की मूल प्रति में इतनी अधिक पंक्तियों की पुनरावृत्ति खटकती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि दो स्थलों पर आयी हुई पंक्तियाँ प्रायः एक ही स्थान पर प्रसंग और प्रयोगसम्मत रहती हैं, दोनों स्थानों पर नहीं। अनुकूल प्रसंग आ पड़ने पर एकाध की पुनरुक्ति की बात दूसरी है। अतः इन्हें एक ही स्थान पर प्रामाणिक मानना ठीक होगा।

इनके अतिरिक्त दा३, दा४ तथा दा५ की कुछ विकृतियाँ दा० की अन्य प्रतियों में न मिल कर नि० में मिलती हैं, जिससे इनका नैकट्य सिद्ध होता है, उदाहरणतया—दा१ तथा दा२ के पाँचवें अंग में ४३वीं के बाद आने वाली साखी इस प्रकार है—

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म ग्यांन।
अबिगत अंतर प्रगटै, लागै प्रेम धियांन ॥

दा३ दा४ में इसकी दूसरी पंक्ति लिखने से रह गयी है और इसके स्थान पर ४५वीं साखी की पहली पंक्ति मिलती है। नि० में यह साखी ८वें अंग की ५६ संख्या पर आती है। उसमें भी ठीक उसी स्थल पर उसी प्रकार की भूल मिलती है।

आगे रमैणी-प्रकरण में भी इसी प्रकार का एक साम्य और मिलता है। दा१

दा२ बड़ी अष्टपदी के नवें छंद की पंक्ति १२, १३ तथा १४ का पाठ है : त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता । मनिखा जनम भयौ चित चेता ।। **आतमां सुरछि सुरछि जरि जाई । पिछले दुख कहतां न सिराई ।। सोई त्रास जे जांनै हंसा ।** तौ अजहूं न जीव करै संतोसा ।। दा३ दा४ में काले अक्षरों में छपी पंक्तियाँ लिखने से छूट गयी हैं । नि० में भी ठीक ऐसा ही हुआ है ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि दा४ तथा नि० प्रति-लिपि की एक ही परम्परा में पड़ती हैं । इस निर्णय की पुष्टि बहिर्साक्ष्य से भी होती है । प्रतियों के विवरण में दा३ तथा दा४ की जो पुष्पिकाएँ दी गयी हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि यह दोनों प्रतियाँ डीडवाने के स्वामी प्रयागदास (दादू के शिष्य) के स्थान पर उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध हुई थीं । नि० प्रति हरिरामदास नामक निरंजनी साधु द्वारा लिखी गयी है जो स्वामी अमरदास का पौत्र शिष्य था । राजस्थान के निरंजनी सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी हरिदास (उपनाम हरिराय) थे । यह हरिदास भी डीडवाने के ही थे और प्रयागदास को अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे । इन बातों के लिए लिखित प्रमाण भी मिलते हैं । स्वामी राघवदास ने अपने 'भक्तमाल' (अप्रकाशित) के छंद १०६२ तथा १०६९ में हरिदास के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है उसमें निम्नलिखित पंक्तियाँ इस प्रसंग में विचारणीय हैं । छप्पय १०६२ की अंतिम पंक्तियाँ हैं—

सिर परि करि प्रागदास कौ, गोरखनाथ को मत लियौ ।
जन हरिदास निरंजनी, ठौर ठौर परचौ दियौ ।।

ऐसा प्रसिद्ध है कि हरिदास पहले दादूपंथ में ही थे किन्तु बाद में नाथपंथ की ओर अधिक रुझान होने के कारण उन्होंने निरंजनीपंथ नाम से अपना एक अलग संप्रदाय स्थापित कर लिया । छंद १०६९ की (जिसमें निरंजनियों के निवासस्थान गिनाये गये हैं) अंतिम पंक्ति है—

ध्यानदास म्हारि भए डीडवाणे हरीदास, दास जगजीवन सु भादवें लुभाए हैं ।।

निरंजनीपंथ से प्रागदास की व्यक्तिगत घनिष्टता के साथ ही साथ उनके स्थान में सुरक्षित प्रतियों की सन्निकटता भी स्वाभाविक है ।

दा५ तथा नि० में यह पाठ-संबंध और अधिक गहरा प्रतीत होता है, जो नीचे के उदाहरण से ज्ञात होगा । दा५ गौड़ी ८७ तथा नि० भैरूं ४९ के रूप में जो पद मिलते हैं उनमें पंजाबी के कई प्रयोग हैं । इनके अतिरिक्त दोनों की छठी

तथा सातवीं पंक्तियाँ दा० नि० में ही अन्यत्र साखी के रूप में मिलती हैं; तुल० दा० ३-२ तथा नि० ६-१२—

अंबर कुंजां कुरलियां, गरजि भरे सब ताल।
जिनपैं गोबिंद बीछुटे, तिनके कौंन हवाल॥

यह पंक्तियाँ अन्य प्रतियों में भी किंचित् पाठांतर के साथ साखी के ही रूप में मिलती हैं जिससे साखी-रूप में उनकी प्रमाणिकता अक्षुण्ण है (तुल० सा० १६-२, साबे० १४-३६, सासी० १६-२, गुण० २०-५२ तथा गु० १२४)। केवल दा५ तथा नि० में पदों के बीच भी इन पंक्तियों का मिलना दोनों के संकीर्ण-संबंध की पुष्टि करता है।

ऊपर केवल दा० नि० में मिलने वाली विकृतियाँ दी गयी हैं। जो विकृतियाँ दा० नि० के अतिरिक्त अन्य प्रतियों में भी मिलती हैं उनके लिए दा० नि० स०, दा० नि० गुण०, दा० नि० सा०, दा० नि० स० गुण०, दा० नि० सा० स० गुण०, दा० नि० सा० सासी० के प्रकरण देखने चाहिए। दा० नि० संबंधी इन समस्त पाठ-विकृतियों को देखने पर दोनों के संकीर्ण-सम्बन्ध की यथार्थता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

दा० तथा गु० का संकीर्ण-संबंध

दा० तथा गु० में पाठ-विकृति का साम्य कहीं नहीं मिलता, केवल एक साखी ऐसी मिलती है जो दोनों में दो-दो बार आती है। तुल० दा० १-७—

सतगुर सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भै मिटि गया, पड़चा कलेजैं छेक॥

तथा दा० ४०-४ : पाठ अक्षरशः वही।

यही साखी गु० में भी दो स्थलों पर मिलती है : एक बार १५७ संख्या पर, जिसका पाठ है—

सांचा सतगुर मैं मिलिआ सबदु जु बाहिआ एकु।
लागत ही भुंइ मिलि गइआ परिआ कलेजे छेकु॥

और फिर १९४ पर, जिसका पाठ है—

कबीर सतगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु।
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु॥

गु० में साखियों की केवल प्रथम पंक्तियों में थोड़ा सा अन्तर मिलता है, किन्तु कुल मिला कर पुनरावृत्ति स्पष्ट रूप से सिद्ध है। इसके अतिरिक्त केवल एक संदिग्ध शब्द ऐसा और है जो दा० तथा गु० दोनों में मिलता है। दा० १२-

४६-२ का पाठ है : तब कुल किसका **लाजसी**, जब ले धरचा मसांणि । इसमें 'लाजसी' का -सी प्रत्ययांत रूप राजस्थानी का है । गु० सलोक १६६ में भी यह शब्द ज्यों का त्यों मिलता है । किन्तु दा० और गु० दोनों ही पश्चिमी प्रतियाँ हैं, इसलिए दोनों में पश्चिमी प्रभाव दिखाई पड़ना नितान्त स्वाभाविक है । असम्भव नहीं कि पश्चिमी अपभ्रंश से यह रूप दोनों पश्चिमी भाषाओं में पहुँच गया हो, और दोनों के इतने बड़े आकार में केवल एक राजस्थानी शब्द समान रूप से मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

इस प्रकार हम दा० गु० के राजस्थानी-साम्य को छोड़ सकते हैं, किन्तु दोनों में एक पूरी साखी की पुनरावृत्ति इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करती है कि दा० तथा गु० दोनों संकीर्ण-सम्बन्ध से सम्बद्ध हैं । यह पुनरावृत्ति केवल संयोग-वश भी नहीं मानी जा सकती ।

नि० तथा गु० का संकीर्ण-सम्बन्ध

नि० तथा गु० में भी केवल एक स्थान पर विकृति-साम्य मिलता है । नि० आसावरी ४५ की चौथी पंक्ति का पाठ है : अन झूठा पांनीं पुनि झूठा, **जूठी** बैसि पकाया । यह पद गु० बसंत हिंडोल ७ पर भी मिलता है, जिसमें उक्त पंक्ति का पाठ है : अगनि भी जूठी पानी जूठा **जूठी** बैसि पकाइआ । दा० आसावरी ५०-४ में 'जूठी' शब्द के स्थान पर 'जूठै' पाठ मिलता है । यदि ध्यान से देखा जाय तो यहाँ दा० का पाठ ही अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा, नि० तथा गु० का नहीं । इस पद में ब्राह्मणों की छुआछूत का खंडन है । 'जूठी बैठि पकाया' का तात्पर्य यह होगा कि बैठ कर भोजन पकाने वाली भी जूठी है । भोजन केवल स्त्रियाँ ही नहीं पकातीं, पुरुष भी पकाते हैं । फिर यह बात उन कर्मकांडी ब्राह्मणों पर लागू नहीं होगी जो स्त्री का स्पर्श किया हुआ भोजन ग्रहण ही नहीं करते, और कबीर का व्यंग विशेषतया ऐसे ही ब्राह्मणों के संबंध में है । उनका पहला प्रश्न है : कहु पंडित सूचा कवन ठांव । यदि 'जूठी' पाठ ठीक भी मान लिया तो 'बैसि' (=बैठ कर) शब्द यहाँ निष्प्रयोजन हो जायगा, क्योंकि पकाने वाली चाहे बैठ कर पकावे या खड़े-खड़े, इसका यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं आना चाहिए । 'जूठै बैठि' पाठ शुद्ध मान लेने से यह सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं । इसके अनुसार उक्त पंक्ति का अर्थ होगा : अन्न भी जूठा है, पानी भी जूठा है, और जहाँ बैठ कर पकाते हो वह स्थान भी जूठा है । नि० और गु० में यह विकृति फ़ारसी लिपि के कारण आयी हुई ज्ञात होती है, क्योंकि उसमें 'जूठी' और 'जूठे' एक ही ढंग से लिखे जाते हैं ।

किन्तु केवल एक (और वह भी निर्बल) साक्ष्य के आधार पर ही नि० गु० को परस्पर सम्बद्ध नहीं मान लिया गया। नि० गु० का संबंध नि० गु० सा० सासी० में मिलने वाली पुनरावृत्ति के आधार पर निर्धारित किया गया है, अतः इस संबंध में नि० गु० सा० सासी० के संकीर्ण-संबंध का प्रकरण भी द्रष्टव्य है।

दा० नि० तथा स० का संकीर्ण-संबंध

दा० नि० स० में जितना अंश मिलता है उसका पाठ स्थूल रूप से एक ही है। विकृतियों के भी अनेक साम्य मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

(क) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृतियों के साम्य—दा० नि० स० तीनों में समान रूप से ऐसी अनेक पाठ-विकृतियाँ मिलती हैं जो फ़ारसी लिपि के प्रमाद से उत्पन्न हुई ज्ञात होती हैं। नीचे क्रमशः उनका उल्लेख किया जा रहा है—

१. दा० गौड़ी ६७, नि० गौड़ी ७० तथा स० ६२-२ में तीसरी पंक्ति का पाठ है : संत मिलैं कछु कहिए कहिए। मिलै असंत **मुष्टि** करि रहिए। दा० नि० स० का उक्त पद गु० में गोंड १ के रूप में मिलता है जिसमें इस पंक्ति का पाठ है : संत मिलै किछु सुनीऐ कहीऐ। मिलै असंतु मसटि करि रहीऐ॥ प्रसंग यहाँ चुप होने का है जिसके लिए अवधी, भोजपुरी में 'मस्ट' या 'महट' शब्द ही प्रचलित है, 'मुष्टि' नहीं। 'मुष्टि' शब्द मुष्टिका या मुट्ठी का द्योतक है। इस विकृति का कारण भी स्पष्ट है। उर्दू में ज़बर, ज़ेर, पेश न लगाये जाने पर (जो प्रायः नहीं लगाये जाते) 'मष्टि' का 'मुष्टि' पढ़ लिया जाना अस्वाभाविक नहीं है। दा० नि० स० की मूल प्रति, जिससे कबीर की वाणी तीनों में आयी, अथवा उसकी परम्परा में उसका कोई पूर्वज फ़ारसी लिपि में लिखा हुआ ज्ञात होता है। बीजक की रमैनी ७० में भी यह पंक्ति मिलती है, किन्तु वहाँ 'मस्टि' के स्थान पर 'मौन' पाठ मिलता है जो 'मस्टि' (जो कुछ अपरिमार्जित सा लगता है) का परिमार्जित रूप ज्ञात होता है।

२. दा० आसावरी २५, नि० आसावरी २४ तथा स० ७६-२६ में पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : नांनां रंगै भांवरि फेरी गांठ जोरि बाबै **पतिताई**। बी० शब्द ५४ में इस पंक्ति का पाठ है : नाना रूप परी मन भांवरि गांठि जोरि भाई पतिआई। शबे० (१) चिता० उप० १२ में इसका पाठ 'गांठि जोरि भइ पति की आई' मिलता है। विश्वास में डालने या पड़ने के अर्थ में 'पतियाना' शब्द का प्रयोग होता है, 'पतिताई' इस प्रसंग में निरर्थक ज्ञात होता है और 'पतियाई' अथवा 'पतिआई' का ही विकृत रूप जान पड़ता है। इस प्रकार की विकृति उर्दू में ही सम्भव जान पड़ती है, क्योंकि उसमें 'ते' और 'ये' की मिलावटों में विशेष अन्तर

नहीं रहता—शोशे एक ही प्रकार के होते हैं अन्तर केवल नुक़्तों का ही होता है।

३. दा० नि० केदारौ ६ तथा स० ३७-२ की पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : तन मन डस्यौ भुजंग भांमिनीं **लहरी** वार न पारा। शबे० (१) बिरह-प्रेम ३ में 'लहरी' के स्थान पर 'लहरैं' पाठ मिलता है। स्त्री-रूपी सर्पिणी के डसे जाने पर लहरों का (प्रस्वेद, कँपकपी आदि का) वार-पार नहीं रहता। इस प्रसंग में 'लहर' शब्द का षष्ठ्यंत रूप होना चाहिए। इस दृष्टि से शबे० का 'लहरैं' (=लहरों का) पाठ ही प्रामाणिक जान पड़ता है, दा० नि० स० का 'लहरी' नहीं। मूल पाठ वस्तुतः 'लहरइं' प्रतीत होता है जिसे कदाचित् उर्दू में रहने के कारण किसी प्रतिलिपिकार ने 'लहरी' पढ़ लिया और वही पाठ दा० नि० स० में चलने लगा।

४. दा० आसावरी ६, नि० आसावरी ८, तथा स० ६२-१ में चौथी पंक्ति का पाठ है : ध्यांन **धनक** जोग करम ग्यांन बांन सांधा। 'धनक' शब्द स्पष्ट ही 'धनुक' का विकृत रूप है। बी० शब्द ८७ में 'धनक' के स्थान पर 'धनुष' पाठ ही मिलता है। 'धनुष' या 'धनुक' का 'धनक' होना फ़ारसी लिपि में ही सम्भव हो सकता है। इस विकृति का समाधान अन्यथा पश्चिमी उच्चारण के फलस्वरूप भी किया जा सकता है।

५. दा० रांमकली १४, नि० रांमकली १५, तथा स० ७०-१६ में पंक्ति ३ तथा ४ का पाठ है : तरवर एक अनंत मूरति सुरता लेहु पिछांणीं। साखा **पेड़** फूल फल नांहीं ताकी अमृत **बांणीं**॥ पहली पंक्ति में 'तरवर' मौजूद रहने से पुनः अगली पंक्ति में 'पेड़' शब्द आ जाने पर पुनरुक्ति स्पष्ट है। गु० रामकली ६-१, २ में इन पंक्तियों का पाठ है : तरवरु एक अनंत डार साखा पुहुप पत्र रस भरीआ। इह अमृत की बाड़ी है रे तिनि हरि पूरै करीआ॥ सम्पूर्ण पद में मानव शरीर के लिए पुष्प-पत्रों से सुसज्जित हरे-भरे वृक्ष का रूपक उपस्थित किया गया है। इस प्रसंग में गु० का 'बाड़ी' पाठ ही निर्दिष्ट अर्थ की पूर्ति करता है। ऐसा ज्ञात होता है कि दा० नि० स० में 'बाड़ी' (=उद्यान) को 'बांणीं' (=वचन, बोल) पढ़ लेने के कारण ही सारे पाठ-परिवर्तन करने पड़े हैं। उर्दू में बे, अलिफ़, ड़े, ये मिलाकर 'बाड़ी' लिखा जाता है। हिन्दी में इसे कोई 'बांणी' भी पढ़ सकता है। अन्य लिपियों में ऐसा भ्रम होने की सम्भावना कम है, क्योंकि अन्य लिपियों के 'ड़' और 'ण' में पर्याप्त भिन्नता होती है।

६. दा० रांमकली १३, नि० रांमकली १४, तथा स० ७०-२५ में दूसरी पंक्ति का पाठ है : तरवर एक **पेड़** बिनु ठाढ़ा बिनु फूलां फल लागा। इस पाठ में

भी उसी प्रकार का पुनरुक्ति-दोष है। अनुमान है कि मूल प्रति में 'पेड़' के स्थान पर 'पीड़', या 'पींड' (जैसे : कटहर डार पींड सों पाके।—जायसी, पदमावत छंद २०) पाठ था, किन्तु मूल-प्रति फ़ारसी लिपि में लिखी रहने के कारण किसी प्रतिलिपिकार ने भ्रम से उसे 'पेड़' पढ़ लिया, क्योंकि उसमें दोनों शब्द एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं।

७. दा० आसावरी ४२, नि० आसावरी ३७ तथा स० ६४-१ में पाँचवीं पंक्ति का पाठ है : आयौ चोर तुरंगम लै गयौ **मोरी** राखत मुगध फिरै। गु० आसा १५ में 'मोरी' के स्थान पर 'मेरी' पाठ मिलता है। प्रस्तुत प्रसंग में न तो 'मोरी' उपयुक्त लगता है और न 'मेरी'। जिस पद में यह पंक्ति आयी है उसका मुख्य भाव यह है कि संसारी व्यक्ति अज्ञान में पड़ कर मूल वस्तु अर्थात् भगवद्-भजन, को गँवाकर व्यर्थ माया संग्रह करने के पीछे पागल बने रहते हैं। यहाँ तुरंग के प्रसंग में 'मोरी' के स्थान पर किसी ऐसी गौण वस्तु का नाम रहना चाहिए जिसका घोड़े की अनुपस्थिति में कोई महत्व न हो। 'मोरी' शब्द का प्रयोग अवधी, भोजपुरी में प्रायः छोटे पुल के लिए किया जाता है जिसमें से छोटी-मोटी नालियों का पानी निकला करता है। यहाँ उसका कोई प्रयोजन नहीं समझ पड़ता। ऐसा लगता है कि मूल पाठ यहाँ 'मोहड़ी' (=घोड़े के मुख पर लगाया जाने वाला एक साज) था जो कदाचित् उर्दू में लिखा रहने के कारण भ्रम से 'मोरी' पढ़ लिया गया। गु० में 'मोरी' के स्थान पर 'मेरी' पश्चिमी रूप देने की दृष्टि से किया हुआ ज्ञात होता है।

रमैनियों में विकृति-साम्य नहीं मिलते, क्योंकि स० में दा० नि० की बारह-पदी रमैनी के केवल ६वें छंद की ही रमैनी मिलती है, शेष नहीं मिलतीं।

(ख) नागरी लिपि-जनित विकृति-साम्य—दा० नि० स० में केवल एक विकृति ऐसी मिलती है जो नागरी लिपि के कारण हुई ज्ञात होती है और वह निम्नलिखित है—दा० गौड़ी १२, नि० गौड़ी १३ तथा स० ७०-८ प्रथम पंक्ति का पाठ है : हरि के खारे बरे पकाए जिनि **जारे** तिन खाए। यहाँ 'जारे' पाठ निरर्थक ज्ञात होता है। दा० नि० स० का उक्त पद गु० में भी आसा ६ पर मिलता है। उसमें इस पंक्ति का पाठ है : राजा राम ककरीआ बरे पकाए किनै बूझनहारे खाए। 'किनै बूझनहारे' स्पष्ट रूप से परवर्ती संशोधन है, किन्तु यह मूल पाठ की ओर संकेत अवश्य करता है। इस पाठान्तर से इतना स्पष्ट हो जाता है कि "परमात्मा के नमकीन बरे वही खायेंगे जिन्होंने उनका रहस्य जान लिया है"—यही उक्त पंक्ति का भाव है। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से दा० नि० स० का पाठ अस्वीकृत कर

गु० का पाठ ग्रहण किया जा सकता है; किन्तु दा० नि० स० का पाठ विकृत है, यह जितने निस्संदिग्ध रूप में कहा जा सकता है, गु० का पाठ अस्वाभाविक है, इसे भी उतनी ही दृढ़ता से कहा जा सकता है। दा० नि० स० की विकृति-संबंधी विभिन्न संभावनाओं पर विचार करने से अनुमान लगता है कि कदाचित् 'जारे' के स्थान पर मूल प्रति में 'जाने' पाठ था जो नागरी या कैथी में लिखे रहने के कारण भ्रम से 'जारे' पढ़ लिया गया और वही विकृत पाठ दा० नि० स० में चला आया। प्राचीन नागरी या कैथी लिपि में 'न' और 'र' लगभग एक ही आकृति के होते थे। ऐसा लगता है कि जिस प्रति से दा० नि० स० के पाठ लिखे गये या तो उसमें या उसके किसी पूर्वज में यह भ्रांति इसी कारण से आ गयी थी और आगे भी परम्परावद्ध रूप में चलती रही।

(ग) पंजाबी प्रभाव का साम्य—दो उदाहरण पंजाबी प्रभाव के भी तीनों प्रतियों में समान रूप से मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. दा० गौड़ी ६२, नि० गौड़ी ६५ तथा स० ७६-१ कवित: प्रकट का पाठ है : दिल नहिं पाक पाक नहीं चीन्हां **उसदा** खोज न जानां 'वाव' तथा स० में 'उसता' मिलता है किन्तु 'उसदा' या 'उसता' पंजाबी के ठेंठ प्रयोग हैं, जो हिन्दी प्रदेश में कहीं नहीं व्यवहृत होते। उक्त पद गु० में भी विभास प्रभाती राग के अन्तर्गत चौथी संख्या पर मिलता है। उसमें उक्त पंक्ति का पाठ है : तूं नापाक पाकु नही सूझिआ तिसका मरमु न जाना। गु० प्रति पंजाब में लिपिबद्ध हुई थी, फिर भी उसमें 'तिसका' पाठ मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि यह दा० नि० स० की निजी विशेषता है।

२. इसी पद की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों का पाठ दा० नि० स० में इस प्रकार है : सरजी आंनैं देह बिनासै माटी बिसमिल **कीता**। जोति स्वरूपी हाथि न आया कहौ हलाल क्या **कीता**॥ 'कीता' शब्द भी पंजाबी का है। गु० में यहाँ भी दोनों स्थलों पर 'कीता' के स्थान पर ठेंठ अवधी रूप 'कीआ' मिलता है। इस प्रकार के ठेंठ पंजाबी प्रयोग मिलने का अर्थ यह है कि दा० नि० स० तीनों एक ही प्रतिलिपि-परम्परा की हैं और साथ ही यह भी सिद्ध हो जाता है कि तीनों का कोई पूर्वज पंजाब में लिपिबद्ध हुआ था।

दा० नि० स० के संकीर्ण-संबंध के लिए इन उदाहरणों के अतिरिक्त दा० नि० स० गुण० तथा दा० नि० स० सा० गुण० के प्रकरण भी देखने चाहिए, क्योंकि उनमें अन्य प्रतियों के साथ दा० नि० स० के भी विकृत-साम्य मिलते हैं।

दा० नि० तथा गुण० का संकीर्ण-संबंध

दा० नि० गुण० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलते हैं—

(क) फ़ारसी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ३६-१, नि० ३६-१ तथा गुण० ५०-२ में पहली पंक्ति का पाठ है : **संपटि** मांहि समाइया सो साहिब नहिं होइ। 'संपटि' 'संपुट' (=मूर्ति रखने का पात्र) का विकृत रूप है। उक्त साखी सा० ६८-२०, साबे० ३६-८ तथा सासी० २४-८ में भी मिलती है जहाँ 'संपटि' के स्थान पर 'संपुटि' पाठ ही मिलता है। यह विकृति उर्दू में पेश का चिह्न न लगाये जाने के कारण आयी हुई ज्ञात होती है।

२. दा० ४६-१, नि० ४४-२ तथा गुण० १७७-१५७ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : खलक **चबींणां** काल का, कछु मुख मैं कछु गोद। तुल० सा० ७८-१, साबे० १६-~~१४,~~ सासी० ३२-४ में 'चबैना'। यह विकृति उर्दू में ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण अथवा पश्चिमी उच्चारण के प्रभावस्वरूप मानी जा सकती है। श्री, भोज,

(ख) नागरी लिपि-जनित विकृतियों का साम्य—नागरी विकृतियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ४६-१७, नि० ४४-२२ तथा गुण० १७७-१६८ में पहली पंक्ति का पाठ है : मंदिर मांहि **झबूकती**, दीवा की सी जोति। सा० ७८-४२, साबे० १६-१५२ तथा सासी० १७-१३७ में इसका पाठ है : मंदिर मांहीं झलकती दीवा की सी जोति। दीपक की ज्योति के टिमटिमाने के अर्थ में 'झलकती' पाठ ही अधिक प्रसंग-सम्मत लगता है, 'झबूकती' नहीं। यह विकृति नागरी अथवा नागरी से निकली हुई किसी लिपि के 'ल' को 'ब' पढ़ने के कारण हुई प्रतीत होती है।

(ग) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—तीनों प्रतियों में कुछ राजस्थानी-प्रयोग भी समान रूप से मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. दा० ३-६, नि० ६-६ तथा गुण० १६-६६ : **अंदेसड़ौ न भाजिसी,** संदेसौ कहियांह। कै हरि आयां **भाजिसी,** कै हरिही पास गयांह॥

२. दा० २६-३, नि० ८-६६ तथा गुण० ७२-२० की दूसरी पंक्ति का पाठ है : तन खींनां मन उनमनां, जग **रूठड़ा** फिरंत। तुल० सा० ६०-५, साबे० ७-२२, तथा सासी० ११-५ : जगतैं रूठि फिरंत।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त दा० नि० गुण० के विकृति-साम्य के लिए दा०

नि० स० गुरा० तथा दा० नि० स० सा० गुरा० के संकीर्ण-संबंध में उद्धृत उदाहरण भी देखने चाहिए।

दा० नि० गुरा० में संकीर्ण-संबंध स्थापित हो जाने पर दा० नि०, दा० गुरा० तथा नि० गुरा० का सम्बन्ध स्वतः सिद्ध हो जाता है।

दा० नि० स० गुण० का संकीर्ण-सम्बन्ध

निम्नलिखित पाठ-विकृतियाँ ऐसी हैं जो दा० नि० स० तथा गुरा० चारों में समान रूप से मिलती हैं—

(क) फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साम्य—इस साम्य का केवल एक उदाहरण मिलता है जो निम्नलिखित है—

१. दा० २०-६, नि० २१-५०, स० ११२-११७ तथा गुरा० ११०-१८ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : **खूंणैं** बैसि र खाइए, परगट होइ निदांन। सा० ४३-१२, साबे० ७३-१०, सासी० ३१-३६, तथा गु० १७ में 'खूंणैं' के स्थान पर 'कोनै' पाठ मिलता है। 'कोनै' की सार्थकता तथा 'खूंणैं' की निरर्थकता स्वतः प्रकट है। ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू में लिखे हुए 'कोनै' के 'काफ़' तथा 'वाव' के बीच में लिखावट की अस्पष्टता के कारण 'हे' की स्थिति भी मान कर प्रतिलिपि करने से 'कोनै' का 'खूनैं' हो गया। यह भी संभव है कि उसे पश्चिमी उच्चारण के अनुसार परिवर्तित कर लिया गया हो।

(ख) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ४५-२, नि० ५०-१२, सा० ६१-३ तथा गुरा० ७८-६ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : कबीर मड़ि मैदान मैं, करि **इंद्रयां सूं झूझ**। तुल० सा० ८५-१, साबे० ८-४२ तथा सासी० २४-८३ : करि इंद्रिन सौं जूझ।

२. दा० २०-८, नि० २१-१६, सा० ११२-१० तथा गुरा० ११०-१० : **कांइ** गमावै देह, कारिज कोई नां सरै॥ तुल० सा० ४३-२३, साबे० ७३-४८ तथा सासी० ३१-२७ : कहा गंवावै देह।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त दा० नि० स० तथा गुरा० के संकीर्ण-संबंध के लिए दा० नि० सा० स० गुरा० में मिलने वाले विकृति-साम्य को भी दृष्टि में रखना चाहिए, क्योंकि उसमें भी दा० नि० स० गुरा० का समुच्चय वर्त्तमान है। निम्नलिखित पाठ-विकृति ऐसी है जो उक्त पाँचों प्रतियों में समान रूप से मिल जाती है। दा० ६-१, नि० ६-२, सा० २१-३, स० ५८-६ तथा गुरा० ४८-२१ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न **थाकि**। तुल० साबे० १५-३५ तथा सासी० १५-३७ : बाकी रही न छाकि। 'हरि-रस'

पीने के प्रसंग में 'थाकि' शब्द की प्रासंगिकता संदिग्ध है, क्योंकि कोई मद या रस-रसायन भरपूर पी लेने के अर्थ में प्रायः 'छकना' क्रिया का ही प्रयोग मिलता है (तुल० दा० नि० रांमकली ३-७ : नीझर झरै अमी रस निकसै तिहि मदि रावल छाका ।) नागरी 'छ' और 'थ' में विशेष अंतर न रहने के कारण कभी-कभी दोनों में भ्रम हो जाया करता है ।

दा० नि० स० गुण० तथा दा० नि० सा० स० गुण० में सामूहिक रूप से संकीर्ण-सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर इनके अन्तर्गत आयी हुई विभिन्न प्रतियों में पृथक्-पृथक् सम्बन्ध स्वतः सिद्ध हो जाता है । इनमें से कुछ के विकृति-साम्य का उदाहरण पहले भी दिया जा चुका है । नीचे दा० स० गुण० में आने वाली एक अतिरिक्त विकृति का उदाहरण भी दिया जा रहा है जिससे उक्त प्रतियों का संकीर्ण-संबंध और भी दृढ़तर सिद्ध हो जाता है ।

दा० स० गुण० का संकीर्ण-सम्बन्ध

दा० स० गुण० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलता है—

१. दा० ३५-६, स० ४६-१, गुण० ८४-३५ का पाठ है : कबीर का तू चितवै, का तेरे चिंते होइ। **आमन** चिंता हरि करै, जी तुहिं चित न होइ।। इसकी द्वितीय पंक्ति में 'आमन' पाठ संदिग्ध है । यह साखी नि० ३७-१६, सा० ६९-८, साबे० २२-१, सासी० २०-६ तथा गु० २१६ में भी मिलती है । 'आमन' के स्थान पर नि० में 'आपन' और गु० में 'अपना' पाठ मिलता है । प्रसंग की दृष्टि से 'आमन' पाठ वस्तुतः अनुपयुक्त लगता है और 'आपन' (=अपना) का ही विकृत रूप ज्ञात होता है जो नागरी लिपि के 'प' तथा 'म' के सादृश्य से संभव हो सकता है ।

नि० गु० सा० सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति का साम्य—एक साखी ऐसी है जो नि० गु० सा० तथा सासी० सब में दो-दो बार मिलती है ।

तुल० नि० २३-१६ : **जोरी करि जिबहे करैं, कहते हैं ज हलाल ।**
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौंन हवाल ।।

तथा पुनः नि० २३-१९ : **गला काटै कलमा पढ़ै, कीया कहै हलाल ।**
साहिब लेखा मांगिसी, तब होसी कौंन हवाल ।।

इसी प्रकार तुल० गु० १८७ : **कबीर जोरी कीए जुलमु है कहता नाउ हलालु ।**
दफतरि लेखा मागीऐ तब होइगो कउनु हवालु ।।

तथा सलोक १९९ : **कबीर जीअ जु मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु ।**
दफतरु दई जब काढ़िहै होइगा कउनु हवालु ।।

सा० ६०-२८ : जोरी करि जबह् करै, मुखसौं कहै हलाल ॥
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौंन हवाल ॥

तथा ६०-३० : गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
साहब लेखा मांगिसी, तब होसी कौंन हवाल ॥

इसी प्रकार तुल० सासी० ७३-३१—

जोरि करी जिबहै करै, मुखसों कहै हलाल ।
साहिब लेखा मांगिसी, होसी कौन हवाल ॥

तथा ७३-३३ : गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
साहबि लेखा मांगिसी, तबही कौन हवाल ॥

नि० गु० सा० तथा सासी० के अतिरिक्त यह साखी दा० में भी मिलती है, किन्तु दा० में वह केवल एक स्थल पर ही आती है, उपर्युक्त प्रतियों की भाँति दो-दो बार नहीं। इस प्रकार नि० गु० सा० सासी० में समान रूप से एक अनावश्यक पुनरावृत्ति मिल जाने से चारों में संकीर्ण-संबंध स्पष्ट है।

नि० गु० सा० तथा सासी० में संकीर्ण-सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर नि० गु०, नि० सा०, नि० सासी०, गु० सा०, गु० सासी०, सा० सासी०, नि० गु० सा०, नि० गु० सासी०, गु० सा० सासी० आदि का संकीर्ण-संबंध स्वतः सिद्ध हो जाता है। नि० गु० के विकृति-साम्य-संबंधी उदाहरण पहले भी दिये जा चुके हैं, आगे नि० गु० सा० तथा नि० सा० से संबद्ध उदाहरण भी दिये जा रहे हैं।

नि० गु० सा० का विकृति-साम्य

नि० गु० तथा सा० में समान रूप से केवल एक विकृति मिलती है जो निम्नलिखित है—

दा० १-१० का पाठ है : गूंगा हूआ बावला, बहरा हूवा कांन। पाऊं तैं **पंगुल** भया, सतगुर मारा बांन॥ नि० १-२६ में 'पंगुल' के स्थान पर 'पिंगुल', सा० १-६२ में 'पिंगला' और गु० में 'पिंगल' पाठ मिलते हैं। यह तीनों पाठ विकृत ज्ञात होते हैं। उक्त तीनों विकृतियाँ प्रायः एक ही प्रकार की हैं जो मूल पाठ 'पंगुल' (=सं० पंगु) से फ़ारसी-लिपि-जनित भ्रम के कारण उत्पन्न हो गयी हैं। उर्दू में ज़बर, ज़ेर, पेश न लगाने के कारण ऐसी विकृतियाँ प्रायः हुआ करती हैं।

नि० तथा सा० का संकीर्ण-सम्बन्ध

निम्नलिखित विकृतियाँ ऐसी हैं जो नि० तथा सा० में समान रूप से मिलती हैं—

(क) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. नि० १६-७५, सा० ११-३६ पाठ है : कबीर सूता क्या करै, उठिकै न रोवै दुक्ख । जाका बासा **घोर** मैं, सो क्यूं सोवै सुक्ख ।। दा०२-१३, साबे० ७४-४, सासी० १३-७३, स० ७७-२२, तथा गु० १२७ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति में 'घोर' के स्थान पर 'गोर' पाठ मिलता है । इस प्रसंग में 'गोर' (=क़ब्र) की उपयुक्तता और 'घोर' की अनुपयुक्तता तथा निरर्थकता स्वतः प्रकट है । यह विकृति फ़ारसी लिपि के कारण हुई ज्ञात होती है, क्योंकि 'ग' तथा 'घ' में रूप-सादृश्य केवल उसी में होता है । उसके दोनों वर्णों में अन्तर केवल 'हे' का है जो कभी-कभी नगण्य हो जाता है ।

२. साबे० २२-४ तथा सासी० २०-१२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है: अंडा पालै काछुवी, बिन थन राखे कोख । नि० ३७-२४ तथा सा० ६६-१३ में 'काछुवी' के के स्थान पर **काछिवी** पाठांतर मिलता है । प्रसंग में नि० तथा सा० द्वारा प्रस्तुत किया हुआ 'काछिवी' पाठ निरर्थक है और 'काछुवी' का ही विकृत रूप ज्ञात होता है । पेश के अभाव में 'काछुवी' को उर्दू में सरलता से 'काछिवी' पढ़ा जा सकता है ।

३. दा० ५-१८, सासी० १४-९७, स० ६६-२ तथा गु० १७७ का पाठ है : भली भई जो भै परा, गई दसा सब भूलि । पाला गलि पानी भया, ढुरि मिलिया उस कूलि ।। नि० ८-१६ तथा सा० २०-२० में 'परा' के स्थान पर **मिटा** पाठ मिलता है । दा० गु० आदि के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : अच्छा हुआ कि सांसारिक विपत्तियाँ मेरे ऊपर पड़ीं । उससे मुझे अपनी स्थिति का ध्यान नहीं रह गया और मैं पाले के समान (पूर्व पक्ष में : त्रिविध ताप से) गल कर पानी हो गया और ढुलक कर अपने मूल स्रोत में मिल गया । वस्तुतः यही अर्थ स्वाभाविक भी ज्ञात होता है। यदि यहाँ नि० सा० के अनुसार 'मिटा' पाठ स्वीकार किया जाय तो उक्त साखी के अर्थ में व्यतिक्रम उपस्थित हो जाता है। लिपि-संबंधी संभावनाओं की दृष्टि से इस विकृति का समाधान ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता । यह पाठ-विकृति कदाचित् अज्ञानवश नहीं बल्कि जान-बूझ कर की हुई ज्ञात होती है ।

(ख) पुनरावृत्तियों का साम्य—(१) नि० ३२-२१ का पाठ है—

चंदन की कुटकी भली, नां बबूल बनराव ।
साधन की छपरी भली, नां साखित का गांव ।।

यह साखी सा० में ६१-२१ पर मिलती है । पाठ में अन्तर केवल यह है कि दोनों पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित हो गयी हैं । नि० तथा सा० में यही साखी

थोड़े शब्दान्तर के साथ आगे पुनः एक स्थल पर मिलती है; तुल० नि० ३२-२२—

साधन की छपरी भली, नां साखित का गांव ।
ऊंचा मिंदर किस कांम का, जहां नहीं हरि नांव ॥

तथा सा० ६१-३५ : **चंदन की कुटकी भली, कहा बबूल बनराव ।**
साधन की छपरी भली, बुरो असाधु को गांव ॥

नि० में साखी का उत्तरार्द्ध अवश्य भिन्न है किन्तु पूर्वार्द्ध तो उसमें भी पुनरुक्ति-पूर्ण है। यह साखी अन्य प्रतियों में केवल एक ही स्थल पर मिलती है। दा० में यह साखी ३०-१ पर, साबे० में ४७-८० पर तथा सासी० में ६-६३ पर मिलती है जिसके पाठ ऊपर उद्धृत नि० ३२-२१ से मिलते-जुलते हैं।

ऊपर दिये हुए उदाहरण ऐसे हैं जो केवल नि० तथा सा० में मिलते हैं। नि० सा० के संकीर्ण-सम्बन्ध के अन्य उदाहरणों के लिए नि० गु० सा०, नि० गु० सा० सासी०, दा० नि० सा०, दा० नि० सा० सासी० के उदाहरण भी विचारणीय हैं, क्योंकि उनमें अन्य प्रतियों के साथ नि० सा० के साक्ष्य भी वर्त्तमान हैं।

नि० सा० सासी० का संकीर्ण-संबंध

नि० सा० तथा सासी० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलते हैं जिनके आधार पर तीनों का परस्पर संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होता है—

१. नि० ५८-४, सा० १०२-४ तथा सासी० ५३-२४ का पाठ है : सद पानी पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव । बासी **पावक** पड़ि मुवा, बिषै बिलंबा जीव ॥ दा० ५०-५ में 'पावक' के स्थान पर 'पावस' पाठ मिलता है। प्रसंग से ज्ञात होता है कि यहाँ 'पावस' (=वर्षा का जल) ही अधिक उपयुक्त है, 'पावक' (=अग्नि) नहीं। 'पावस' पाठ के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : ऐ कबीर, तू पाताल से निकला हुआ ताज़ा पानी पी, मेह के बासी जल में कुछ नहीं है, उसमें तो विषयासक्त जीव फँस कर सड़े हुए हैं। साधना के पक्ष में इसका अर्थ यह होगा कि अपने अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान में जो मौलिक आनन्द है वह शास्त्रों अथवा पुस्तकों के जूठे ज्ञान में नहीं—वह तो सीमित विचार वाले व्यक्तियों के लिए है। 'पावक' शब्द को प्रामाणिक मान लेने पर दूसरी पंक्ति का उपयुक्त अर्थ ही नहीं निकलेगा, अतः यह पाठ विकृत ज्ञात होता है। ऐसी विकृति नागरी या फ़ारसी दोनों ही लिपियों में संभव है, क्योंकि दोनों में लेखन-प्रमाद से 'क' को 'स' पढ़ा जा सकता है।

२. नि० ४१-६, सा० ७३-४ तथा सासी० १६-४२ की दूसरी पंक्ति का पाठ

है : पख छांड़े निरपख रहै (सा० सासी० बिख छांड़े निरबिख रहै) **सब दिन** दूखा जाय। दा० ३६-३ तथा गुरण० १५२-६ में 'सब दिन' के स्थान पर 'सबद न' पाठ मिलता है जो प्रसंगोचित है। इस पाठ-भेद के अनुसार उक्त पंक्ति का तात्पर्य होगा कि निष्पक्ष व्यक्ति का शब्द कोई 'दूख' नहीं सकता अर्थात् कोई उसका प्रतिवाद नहीं कर सकता। 'सब दिन दूखा जाय' का अर्थ होगा : सब दिन दुख में ही बीतते हैं, जो वस्तुतः मूल-भाव के विपरीत है। यह पाठ-विकृति फ़ारसी लिपि की ज़बर, ज़ेर आदि की अव्यवस्था के कारण ज्ञात होती है।

पुनरावृत्ति-साम्य—एक साखी उक्त तीनों प्रतियों में दो बार मिलती है। नि० २८-८, सा० २८-१० तथा सासी० ३२-७६ का पाठ है—

कबीर पगरा दूरि है, आइ पहूंची सांझ।
जन जन को मन राखतां, बेस्या रहि गई बांझ॥

(सा० में पहली पंक्ति का पाठ है : कबिरा पंथ निहारता, आनि परी है सांझ।)

तुल० नि० ३२-७ तथा सा० ३०-२७ : **धामां धूमैं दिन गया, चितवत भई ज सांझ।**
रांम भजन हरि भगति बिनु, जननीं जनि गई बांझ॥

और सासी० २३-९ : **कबीर पंथ निहारता, आनि पड़ी है सांझ।**
जन जन को मन राखतां, बेस्या रहि गई बांझ॥

इन साखियों में थोड़ा सा शाब्दिक अंतर केवल तृतीय चरण के पाठ में मिलता है—शेष शब्दावली सब में प्रायः एक ही है। बीजक में इनसे मिलती-जुलती केवल एक साखी मिलती है जिसका पाठ है—

झाल पड़े दिन आथए, अंतर परि गई सांझ।
बहुत रसिक के लागते, बेस्या रहि गई बांझ॥ (बी० सा० ५१)

इन उदाहरणों के अतिरिक्त नि० सा० सासी० के संकीर्ण-सम्बन्ध के लिए दा० नि० सा० सासी०, दा३ नि० सा० सासी० गुण०, नि० सा० साबे० सासी०, नि० गु० सा० सासी० के प्रसंग में उद्धृत उदाहरणों पर भी ध्यान रखना चाहिए।

नि० सा० सासी० में संकीर्ण-सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर नि० सा०, नि० सासी० तथा सा० सासी० का सम्बन्ध स्वतः सिद्ध हो जाता है। फिर भी उनमें स्वतन्त्र रूप से मिलने वाले विकृति-साम्य का उल्लेख आगे प्रसंगानुसार किया जायगा।

सा० तथा सासी० का संकीर्ण-संबंध

सा० तथा सासी० में निम्नलिखित विकृति-साम्य मिलते हैं—

(क) **फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साम्य**—इसके निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. सा० ७३-४ तथा सासी० १९-४२ का पाठ है : सीतलता तब जानिए, समता रहै समाय। **बिख** छांड़ै **निरबिख** रहै, सब दिन दूखा जाय॥ यह साखी दा० में ३९-३ पर, नि० में ४१-६ पर और गुण० में १५२-६ पर आती है। इन प्रतियों में उक्त साखी का पाठ है : सीतलता तब जानिए, समता रहै समाय। पख छांड़ै निरपख रहै, सबद न दूखा जाइ (नि० सब दिन सुख मैं जाइ)। द्वितीय पंक्ति के पाठान्तर पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि प्रथम चरण के दो पाठ मिलते हैं : एक में 'बिख छांड़ै निरबिख रहै' और दूसरे में 'पख छांड़ै निरपख रहै।' दोनों में से एक ही पाठ मूल प्रति का हो सकता है। पहली पंक्ति में समत्व का प्रसंग आया है, अतः आगे 'बिख' और 'निरबिख' का कोई प्रश्न नहीं उठता। इसके विपरीत दा० नि० और गुण० का पाठ अधिक प्रसंग-सम्मत सिद्ध होता है। किसी को मानसिक शीतलता तभी मिलती है, और वह आप्त तभी माना जाता है जब कि वह पक्षपात छोड़ कर निष्पक्ष रहे। सा० सासी० की पाठ-विकृति उर्दू में ही सम्भव ज्ञात होती है। उर्दू के 'पे' और 'बे' में केवल नुक़्तों का अन्तर होता है। 'पे' में तीन नुक़्ते होते हैं, जो सिमिट कर एक के समान लग सकते हैं, अथवा नुक़्ता छूट जाने पर और भी सुगमता से 'प' के स्थान पर 'ब' का अनुमान लगाया जा सकता है।

२. दा० ४-५, नि० ७-७ तथा गुण० २५-२२ का पाठ है : अगिनि जु लागी नीर मैं, कांदौं जरिया झारि। उतर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि॥ सा० १९क-७ तथा सासी० २७-८ में 'उतर दखिन' के स्थान पर **उत्तर दिसि** पाठ मिलता है। उर्दू 'दक्खिन' या 'दकन' में यदि 'काफ़' के ऊपर की लकीर अलग हो जाय और 'नु' की बिन्दी शीघ्रता के कारण लगने से रह जाय तो 'काफ़' के पेट से 'नु' का दायरा मिल कर हूबहू 'सीन' की शक़्ल का हो जाता है। इस प्रकार उर्दू में 'दकन' से 'दस' या 'दिसि' होना कठिन नहीं है।

३. दा० ५९-२ तथा गुण० १७९-७ का पाठ है : कबीर सिरजनहार बिनु, मेरा हितू न कोइ। गुन अवगुन बिहड़ै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ॥ सा० ७३-५ तथा सासी० ४५-५ में दूसरी पंक्ति के 'बिहड़ै' के स्थान पर **बेड़ै** पाठ मिलता है जो विकृत ज्ञात होता है। बनारस के राघवदास जी ने अपने 'सटीक

साखी-ग्रन्थ' (पृ० ५५६) में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का (जिसमें 'बेड़ै' पाठ प्रामाणिक माना गया है) अर्थ दिया है : 'संसारी लोग सब स्वार्थ में बँधाये हैं, गुण अवगुण नहीं **समझते**। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने 'बेड़ै' का अर्थ 'समझना' किया है, जो कदाचित् अनुमान से ही किया हुआ ज्ञात होता है। 'बिहड़ै' 'वि' उपसर्ग-सहित संस्कृत 'भज्' धातु का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ होगा : विभक्त करना या भेद करना। अतः 'स्वार्थ में बँधे हुए व्यक्ति को गुण-अवगुण में कोई भेद-भाव नहीं जान पड़ता'—यही उक्त साखी की द्वितीय पंक्ति का भाव है। इससे ज्ञात होता है कि सा० तथा सासी० का 'बेड़ै' दा० तथा गुण० के 'बिहड़ै' पाठ का विकृत रूप है। यदि 'हे' के नीचे वाले शोशे में 'ये' के दो नुक़्तों का भ्रम हो जाय (जो असम्भव नहीं है) तो उर्दू में 'बिहड़ै' को सरलता से 'बेड़ै' भी पढ़ा जा सकता है। अन्य लिपियों में ऐसा पाठ-भेद होना असम्भव है।

४. दा० ३६-२७, नि० ४४-३७ तथा स० ६७-८ की प्रथम पंक्ति का पाठ है: कबीर हरि सों हेतु करि, कूड़ै चित्त न लाइ। सा० ७८-६२ तथा सासी० ३२-२८ में 'कूड़ै' का पाठान्तर **कोरै** मिलता है। इस पंक्ति में कबीर का मन्तव्य यह ज्ञात होता है कि अपना मन हरि-स्मरण में लगाना चाहिए, निकृष्ट कोटि के झमेलों में नहीं। इस प्रसंग में 'कूड़ै' शब्द ही अधिक उपयुक्त होगा, 'कोरै' नहीं। ग्रामीण बोली में 'कोरा' का अर्थ या तो 'गोद' होता है (संज्ञा रूप में) या 'ताज़ा' अथवा 'सादा' (जैसे 'कोरा माल', या 'कोरा काग़ज़'—विशेषण रूप में) किन्तु इन प्रयोगों का यहाँ कोई प्रसंग नहीं। सा० सासी० की इस पाठ-विकृति का उद्गम भी फ़ारसी लिपि के कारण ही माना जा सकता है, क्योंकि उसमें काफ़, वाव, रे, ये मिलाकर उसे 'कूड़ै', 'कोड़ै' या 'कोरै' कुछ भी पढ़ा जा सकता है।

स्थल-संकोच के कारण नीचे सा० तथा सासी० में मिलने वाली फ़ारसी-लिपि जनित विकृतियों का संक्षिप्त निर्देश मात्र किया जा रहा है—

५. सा० ४१-१३, सासी० ५१-१८ : चतुराई चूल्है पड़ौ, जानपनौ **चलि** जाइ। तुल० नि० २८-४ : जांणिपणौं जलि जाइ। (सा० सासी० की विकृति उर्दू 'जीम' और 'चे' के सादृश्य के कारण)।

६. सा० १०४-५, सासी० ५-५६ : पारब्रह्म पड़ौ मोतिया, झड़ी बांधि सिखर। **सुगरां सुगरां** चुनि लिया, चूकि पड़ी निगुर ॥ तुल० दा० **५५-३**, नि० ६०-२, सा० ८९-६ तथा गुण० ६०-६ : 'सुगरां' के स्थान पर 'सगुरां' (विकृति उर्दू ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण)

७. सा० ८१-२-१, सासी० ६९-२-१ : कबीर तहाँ न जाइए, जहां **जुनाना**

भाव। तुल० नि० ४७-७ : जहां जनांनां भाव।

(यह विकृति भी उर्दू ज़बर, ज़ेर, पेश की अव्यवस्था के कारण)

(ख) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० ५५-१७ तथा सासी० १३-१५९ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : कबीर माला काठ की, मेली मुगध **डुलाय**। दा२ २२-६, नि० २५-६, सा० ६४-११ में 'डुलाय' के स्थान पर 'झुलाय' पाठ मिलता है जिसके अनुसार उक्त पंक्ति का सीधा अर्थ होगा : 'मूर्ख ने काठ की माला (गले में) झुला रखी है'। 'डुलाय' पाठ इस प्रसंग में निरर्थक-सा लगता है। राजस्थान में हिंदी की जो प्राचीन पोथियाँ मिलती हैं उनमें 'ड' तथा 'झ' लगभग समान आकृति के होते हैं। उनके सूक्ष्म अंतर से अपरिचित प्रतिलिपिकार को दोनों में भ्रम हुए बिना नहीं रह सकता। सा० सासी० की उक्त विकृति इसी प्रकार उत्पन्न हुई ज्ञात होती है।

२. सा० ६१-८४-१ तथा सासी० ६-१४१-१ का पाठ है : ऊंडा चित अरु **सम दसा**, साधू गुन गंभीर। तुल० नि० ३१-१८ : ऊंडा चित्त समंद सा, साधु गुनां गंभीर। (सा० सासी० की विकृति अनुस्वार भूल जाने तथा विच्छेद-भ्रांति के कारण)।

३. सा० ४-९, सासी० ५-९ की द्वितीय पंक्ति का पाठ है : निगुरा तौ **कुबट** चलै, जब तब करै कुदाव। साबे० ५-५ में 'कूबट' के स्थान पर 'ऊबट' पाठ मिलता है। 'बाट' का विलोमार्थी (जिसका यहाँ प्रसंग है) 'ऊबट' ही होता है, 'कूबट' नहीं। तुल० दा० नि० रामकली २३-३ (ग्रन्था० पद १७५-३) ऊबट चले सु नगर पहूंते बाट चले ते लूटे। अथवा गु० केदारा ३ की अंतिम पंक्ति : ऊबटि चलंते इहु मद पाइआ जैसे खोंद खुमारी। राजस्थान में मिलने वाली हिन्दी प्रतियों में 'कु' तथा 'उ' में बहुत कम अंतर रहता है। सा० सासी० की विकृति कदाचित् इसी भ्रम से हुई है।

(ग) पदच्छेद-संबंधी विकृति-साम्य—इस प्रकार का एक उदाहरण मिलता है जो निम्नलिखित है—

१. सा० १९क-१० तथा सासी० २७-११ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : जा बन में **की लाकड़ी**, दाझत है बन सोइ। दा० ४-८ में 'जा बन मैं क्रीला करी' पाठ मिलता है। सा० सासी० का पाठ यहाँ स्पष्ट ही अशुद्ध है। मृग, जो जीवधारी होते हैं, अपने को लकड़ी (निर्जीव) नहीं कह सकते। यह उदाहरण भ्रमात्मक पदच्छेद का है और नागरी तथा उर्दू दोनों प्रकार की प्रतियों में हो सकता है।

(घ) अन्य विकृति-साम्य—सा० तथा सासी० में एक अन्य विकृति-साम्य मिलता है जिसका कारण स्पष्ट नहीं ज्ञात होता। वह विकृति निम्नलिखित है—

सा० ७१-६ तथा सासी० ६-१४५ का पाठ है : कबीर सब जग हेरिया, **मेल्यौ** कंध चढ़ाय। हरि बिनु अपना कोइ नहीं, सब देखा ठोंक बजाय।। इसमें 'मेल्यौ' शब्द कुछ संदिग्ध ज्ञात होता है। यह साखी दा० में ३७-१० पर, नि० में ३६-६ पर, गुण० में १०६-७ पर तथा गु० में ११३ पर मिलती है। 'मेल्यौ' के स्थान पर दा० नि० तथा गुण० में 'मंदला' और गु० में 'मादलु' पाठ मिलता है। इसका यह तात्पर्य है कि सा० तथा सासी० के अतिरिक्त सभी प्रतियों का पाठ प्रायः समान है। यदि 'मेल्यौ' पाठ प्रामाणिक मान लिया जाय तो 'मेल्यौ' क्रिया के कर्म के अभाव में अर्थसंबंधी कठिनाई उपस्थित होती है। राघवदास ने अपने 'सटीक साखी-ग्रंथ' (पृ० ११०) में उक्त साखी की टीका देते हुए लिखा है : 'संसार को कन्धे चढ़ा के भली-भाँति ठोंक ठठा के देख लिया कि अपना हरि बिना हितकारी कोई नहीं।' इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने कदाचित् 'जग' को ही 'मेल्यौ' क्रिया का कर्म माना है, किन्तु यह अर्थ किसी भी प्रकार से संतोषजनक नहीं माना जा सकता। 'मंदला 'या' मादलु' पाठ स्वीकार कर लेने से सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। 'मंदला' (तुल० सं० 'मर्दल') एक प्रकार का बाजा होता है, जो आकार में ढोल से मिलता-जुलता है। मंदला काँधे पर चढ़ा कर घूमने का तात्पर्य है मुनादी करना या डुग्गी पीटना। कबीर ने डुग्गी पीट-पीट कर सारा संसार छान डाला कि कहीं उसका कोई मिले। किन्तु अन्त में उसे कोई भी अपना न मिला। इस प्रकार 'मंदला काँधे पर चढ़ाना' यहाँ मुहावरे के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सा० तथा सासी० में 'मंदला' का विकृत रूप 'मेल्यौ' किस प्रकार हुआ होगा, इसका ठीक-ठीक कारण नहीं ज्ञात होता। संभवतः 'मंदला' शब्द से अनुकूल अर्थ की संगति न बैठते देख किसी ने जान-बूझ कर उसका इस प्रकार सुधार कर लिया।

(ङ) छंद-भिन्नता का साम्य—कुछ साखियाँ सा० तथा सासी० में ऐसी मिलती हैं जिनकी छन्द-भिन्नता विशेष रूप से विचारणीय है। कबीर की साखियाँ दोहा छंद के समान हैं, केवल कहीं-कहीं दो-एक सोरठे मिल जाते हैं। सा० तथा सासी० की निम्नलिखित साखियाँ इस संबंध में विशेष आपत्तिजनक हैं—

१. सा० ६४-४, ५ तथा सासी० ५६-२२, २३ का पाठ है—

निंदक न्हाय गहन (सासी० गगन) कुरु खेत। अरपै नारि सिंगार समेत।।
चौसठ कूवा बाय दिखावै। तौ भी निंदक नरकै जावै।।

अठसठि तीरथ निंदक न्हाई । देह पलोसै मैल न जाई ।।
छप्पन कोटि धरती फिरि आवै । तो भी निंदक नरकहिं जावै ।।

२. सा० ६८-३ तथा सासी० ५४-१७ का पाठ है—

तीनि देव को सब कोइ ध्यावै । चौथे देव का मरम न पावै ।।
चौथा छांड़ि पंच चित लावै । कहै कबीर हमरे ढिग आवै ।।

३. इसी प्रकार सा० ६८-१४, १५, १६, सासी० ५४-२३, २४, २५ भी द्रष्टव्य हैं जिनका पाठ है—

एक राम दशरथ घर डोले । एक राम घट घट में बोले ।।
एक राम का सकल पसारा । एक राम तिरगुन तें न्यारा ।। इत्यादि
कौन राम दशरथ घर डोले । कौन राम घट घट में बोले ।।
कौन राम का सकल पसारा । कौन राम तिरगुन तें न्यारा ।।
आकार राम दशरथ घर डोले । निराकार घट घट में बोले ।।
बिंदुराम का सकल पासारा । निरालंब सबही तें न्यारा ।।

इन उदाहरणों के प्रत्येक चरण में चौपाई के समान लगभग १६ मात्राएँ हैं । पूरी साखियाँ चौपदी से मिलती-जुलती हैं । इस प्रकार की चौपदियाँ कबीर की अन्य प्रतियों में नहीं मिलतीं अतः इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है । इसके अतिरिक्त तीसरे उदाहरण की दूसरी तथा तीसरी साखियों में एक आपत्ति-जनक बात और मिलती है । कबीर की साखियाँ भाव की दृष्टि से मुक्तक के समान स्वतः पूर्ण हुआ करती हैं, उनका कहीं भी अनयोन्याश्रित संबंध नहीं मिलेगा । उक्त साखियों में ऐसी बात नहीं है । उनमें से एक प्रश्न के रूप में और दूसरी उसके उत्तर के रूप में आयी है । इस प्रकार के प्रश्नोत्तर की श्रृंखला सा० तथा सासी० में और भी कई स्थलों पर मिलती है । उदाहरण के लिए सा० प्रति के ७४वें अंग की २८, २९ ३०, ३१, ३४, ३५ संख्यक साखियाँ ली जा सकती हैं जो सासी० के 'प्रश्नोत्तर अंग' में क्रमशः ५, ६, ७, ८, ९, १० पर मिलती हैं । सा० ९१-१४ तथा सासी० ७४-३ भी तुलनीय हैं जिनका पाठ है—

अमल माँहि अवगुन कहा, कहौ मोहिं समुझाय ।
उत्तर प्रश्नहिं में सुनो, मन को संशय जाय ।।

इस प्रकार की पौराणिक शैली अन्य शाखाओं में नहीं मिलती । अतः केवल सा० तथा सासी० में इनकी स्थिति से दोनों का नैकट्य विचारणीय हो जाता है ।

(च) पुनरावृत्ति-साम्य—दोनों में कुछ साखियाँ ऐसी मिलती हैं जो अनावश्यक रूप से दो-दो बार आयी हैं । उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० १६-७४ तथा सासी० १६-८४ का पाठ है—

अबिनासी की सेज का, कैसा है उनमान ।
कहिबे को शोभा नहीं, देखे ही परमान ॥

यही साखी सा० में २०-३ पर तथा सासी० में १४-४० पर भी मिलती है। वहाँ इसका पाठ है—

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।
कहिबे की सोभा नहीं, देख्यां ही परमान ॥

अन्तर केवल प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध के पाठों में है। यह साखी दा० नि० गुण० साबे० तथा गु० में केवल एक स्थल पर मिलती है, सा० तथा सासी० की भाँति दो स्थलों पर नहीं। तुल० दा० ५-३, नि० ८-२, गुण० ४२-३१, साबे० ४३-२५—

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमांन ।
कहिबे की सोभा नहीं, देखे ही परमांन ॥

तथा गु० १२१ : **चरण कमल की मउज को कहु कैसे उनमान ।**
कहिबे कउ सोभा नही देखा ही परवान ॥

२. सा० ६३-१४ तथा सासी० ३७-८ :

काबा फिर कासी भया, राम जो भया रहीम ।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥

तुल० सा० ७६-४ तथा सासी० ४०-४ :

कासी काबा एक है, एकै राम रहीम ।
मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥

यह साखी दा० नि० गुण० में केवल एक-एक स्थल पर ही मिलती है जिनका पाठ ऊपर उद्धृत पाठों में से पहले पाठ से मिलता है (दे० दा० ३१-१०, नि० ३७-११, गुण० १२०-१३)।

इसी प्रकार तुल० (३) सा० ३१-२४ तथा ५४-६ और सासी० २६-३५ तथा ४६-३२; (४) सा० १०३-२ तथा १०३-४ और सासी० ४१-१४ तथा ४१-११; (५) सा० ७४-२ तथा ४६-४ और सासी० १६-२८ तथा ८०-१।

सा० तथा सासी० दोनों में पाँच-पाँच साखियों की अनावश्यक पुनरावृत्ति समान रूप से मिल जाने से दोनों का संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होने में कोई बाधा नहीं रह जाती।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त सा० तथा सासी० के संकीर्ण-संबंध के लिए नि० सा० सासी०, सा० साबे० सासी०, दा० नि० सा० सासी०, नि० सा० साबे०

सासी०, नि० गु० सा० सासी० के संबंध में दिये हुए उदाहरण भी विचारणीय हैं, क्योंकि अन्य प्रतियों के साथ उसमें सा० तथा सासी० के साम्य भी वर्त्तमान हैं।

साबे० तथा सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति-साम्य—साबे० तथा सासी० में भी कई साखियों की अनावश्यक पुनरावृत्ति समान रूप से मिल जाती है जिससे इन दोनों के संकीर्ण-संबंध के विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता। नीचे उन पुनरावृत्तियों के उदाहरण दिये जा रहे हैं—

१. साबे० १-३६ तथा सासी० १-५५७ का पाठ है—

अहं अगिनि निसि दिन जरे, गुरु सो चाहे मान।
ताको जम न्यौता दिया, हो हमार मेहमान॥

यही साखी साबे० में ५७-१५ पर और सासी० में ६१-१ पर फिर मिलती है, दोनों में उसका पाठ इस प्रकार है—

अहं अगिनि निसिदिन जरै, गुरु सों चाहे मान।
तिनको जम न्यौता दिया, हो हमरे मेहमान॥
(अंतर केवल 'ताको' और 'तिनको' का है।)

२. साबे० ३३-२५ तथा सासी० १३-५६ का पाठ है—

आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवारि।
दूजी आसा मारिसी, ज्यों चौपरि की सारि॥

यही साखी सा० ५१-१० तथा सासी० ६८-२ पर फिर मिलती है जिसका पाठ अक्षरशः उपर्युक्त पाठ से मिलता है।

३. साबे० ३७-११ तथा सासी० १८-२५ का पाठ है—

कबीर काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि दुरिए नहीं, कूकर भुसैं हजार॥

और साबे० ६४-४ तथा सासी० ७७-५ का पाठ है—

कबीर तू काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हाथी चढ़ि करि डोलिए, कूकर भुसैं हजार॥

४. साबे० १-२६, ७१-२४, और सासी० १-१३, ८५-१६ का पाठ है—

गुरु धोबी सिख कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइए, निकसै रंग अपार।

५. तुल० साबे० १-८६, सासी० २४-६१ :

कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान ।
केते जोधा पचि गए, खींचै संत सुजान ।।

तथा साबे० ८-७१, सासी० २४-६२—

कड़ी कमान कबीर की, धरी रही मैदान ।
सूरा होइ तो खींचई, नहिं कायर का काम ।।

साबे० सासी० में पुनरावृति-साम्य के उदाहरणों की संख्या अधिक होने से नीचे उनका स्थल-निर्देश मात्र किया जा रहा है—

६. साबे० ४६-२८, सासी० २७-४, तथा साबे० ६५-७, सासी० ८३-९ ।
७. साबे० १२-२६, सासी० १२-३४, तथा साबे० ५३-४, सासी० ६२-४ ।
८. साबे० ११-९, सासी० १७-४७, तथा साबे० ८४-५४, सासी० ३४-४ ।
९. साबे० ४३-६६, सासी० १४-८७ तथा साबे० ९४-७२, सासी० १४-१२२ ।
१०. साबे० १८-६, सासी० १४-७६, तथा साबे० ४३-५१ सासी० ५६-११ ।
११. साबे० १८-११, सासी० १४-१२७, तथा साबे० ८४-५, सासी० ५६-१० ।
१२. साबे० १४-८८, सासी० १६-३८, तथा साबे० १४-८९, सासी० १६-१०६ ।
१३. साबे० ६-२४, सासी० ४-१९, तथा साबे० ३७-४४, सासी० १८-६१ ।
१४. साबे० ४३-३, सासी० १४-३, तथा ४६-२६, सासी० ४२-३८, ।
१५. साबे० ११-८, सासी० २३-३, तथा साबे० ६५-९, सासी० ८३-११ ।
१६. साबे० ६-१२, सासी० ४-१८, तथा साबे० १५-३३, सासी० १५-२२ ।
१७. साबे० १८-२५, सासी० १४-१७, तथा साबे० ४३-९, सासी० ५६-२४ ।
१८. साबे० ४७-३६, सासी० ६-७६, तथा साबे० ७१-३५, सासी० २९-२७ ।
१९. साबे० १५-२०, सासी० १५-४५, तथा साबे० ३६-२०, सासी० ३३-३० ।
२०. साबे० २९-८, सासी० ६-१२३, तथा साबे० ४७-३८, सासी० ४७-९ ।
२१. साबे० १५-४०, सासी० १३-२६, तथा साबे० ३३-१०, सासी० १५-५२ ।
२२. साबे० १५-६७, सासी० १५-६६, तथा साबे० ३५-१७, सासी० १९-२५।
२३. साबे० ४७-२९, सासी० ६-१०१, तथा साबे० ६९-२, सासी० ७५-१० ।
२४. साबे० १२-२०, सासी० ७-३४, तथा साबे० ५०-१२, सासी० १२-४६ ।
२५. साबे० २७-४, सासी० ३५-२८, तथा साबे० ५३-१२, सासी० ६२-६ ।
२६. साबे० १७-९, सासी० ७-१५, तथा साबे० ५०-५, सासी० ७-३१ ।
२७. साबे० ३७-४१, सासी० ११-४७, तथा साबे० ६८-८, सासी० ७६-१२ ।
२८. साबे० ४३-१६, सासी० २९-११८, तथा साबे० ४६-१९, सासी० ४२-१६ ।
२९. साबे० ३३-४३, सासी० १३-११ तथा साबे० ८०-३, सासी० २३-१६ ।

पीछे सासी० के विवरण में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि उसके संपादन में साबे० का भरपूर उपयोग किया गया है और इस तथ्य का यह सब से पुष्ट प्रमाण है। साबे० पर आधारित होने के कारण ही उसकी बहुत सी साखियाँ जो दो-दो स्थलों पर मिलती हैं सासी० में भी ज्यों की त्यों दो-दो बार आ गयी हैं।

(ख) **प्रक्षेप-सम्बन्ध**—पुनरावृत्तियों के अतिरिक्त कुछ संदिग्ध साखियाँ साबे० तथा सासी० में ऐसी और मिलती हैं जिनसे दोनों के संबंध की कल्पना की और भी पुष्टि होती है। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित साखी ली जा सकती है। साबे० २-२१ तथा सासी० ३-६६ का पाठ है—

गुरु है पूरा सिख है पूरा, बाग मोर रन पैठि।
सत्य सुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठि॥

कबीरपंथी साहित्य में 'सत्य सुकृत' विशेषण कबीर के लिए ही आता है। प्रायः प्रत्येक कबीरपंथी ग्रंथ में मंगलाचरण के रूप में कबीर तथा कबीरपंथ के पूर्ववर्ती गुरुओं की स्तुति मिलती है जिसका प्रारंभिक अंश इस प्रकार रहता है—

सत्य सुकृत आदि अदली अजर अचिन्त पुरुष मुनीन्द्र करुणामय कबीर सुरति योग संतायन की दया। चार गुरू वंश बयालिस की दया। धनी धर्मदास की दया। इत्यादि।

उपर्युक्त साखी में जो उपदेश दिया गया है उसे दृष्टि में रखते हुए यह नितांत अस्वाभाविक लगता है कि इसके रचयिता कबीर ही रहे होंगे। साबे० तथा सासी० दोनों में इस संदिग्ध साखी की स्थिति से दोनों में संकीर्ण- सम्बन्ध सिद्ध होता है।

साबे० तथा सासी० के संकीर्ण-संबंध के लिए उक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त नि० सा० साबे० सासी०, सा० साबे० सासी० तथा साबे० सासी० गुण० के संबंध में आये हुए साक्ष्य भी सम्मिलित समझना चाहिए।

सा० तथा साबे० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्तियों का साम्य—सा० तथा साबे० में तीन साखियाँ ऐसी हैं जो अनावश्यक रूप से दो-दो बार मिलती हैं; उदाहरणार्थ—

१. दा० १२-१४ तथा सासी० १७-६८ का पाठ है—

जांमन मरन बिचारि करि, कूड़े कांम निवारि।
जिनि पंथा तोहि चालनां, सोई पंथ संवारि॥

नि० में यह साखी १८-१६ पर मिलती है जिसका पाठ है—

हरि हरि हरि हथियार करि, कूड़ी गल न मारि ।
ज्यां ज्यां पंथों चालणां, सोइ सोइ पंथ संवारि ।।

सा० तथा साबे० दोनों में यह साखी एक बार दा० तथा सासी० के समान पाठ से युक्त क्रमशः ३०-३७ तथा १६-७० पर इस प्रकार मिलती है—

जामन मरण बिचारि के, कोरे काम निवारि ।
जिन पंथा तोंहि चालना, सोई पंथ संवारि ।।

और फिर क्रमशः ३४-२५ तथा १८-२३ पर नि० के समान पाठ से युक्त इस प्रकार मिलती है—

कबिरा हरि (साबे० गुरु) हथियार करि, कूरा गलो निवारि ।।
जो जो पंथा चालना, सो सो पंथ संभारि ।।

२. सासी० १४-३८ का पाठ है—

पवन नहीं पानी नहीं, नहिं धरनी आकास ।
तहां कबीरा संत जन, साहिब पास खवास ।।

सा० में यह साखी एक बार २०-५८ पर मिलती है जिसका पाठ है—

पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरति आकास ।
एक निरंजन देव का, कबिरा दास खवास ।।

और फिर उसी के ३४वें अंग की ४३ वीं साखी के रूप में आती है, जिसका पाठ है—

नाहीं आवागमन था, नहीं धरति आकास ।
हतो कबीरा राम जन, साहिब पास खवास ।।

साबे० में भी यह साखी सा० के सदृश दो स्थलों पर मिलती है : पहले १८-३४ पर जिसका पाठ सा० ३४-४३ से मिलता है (अन्तर : 'राम जन' के स्थान पर 'दास जन'), फिर ४३-२३ पर, जिसका पाठ सासी० १४-३८ से शब्दशः मिलता है जो ऊपर उद्धृत है ।

३. इसी प्रकार सा० २०-७१ से ६६-१५ तथा साबे० २२-६ से ८४-७१ भी तुलनीय हैं जिनके पाठ क्रमशः निम्नलिखित हैं—

जब दिल मिला दयाल सों, फांसी परी बिलाय ।
मोंहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ ।।

तथा : **राम नाम सों दिल मिला, जम से परा दुराय ।**
मोंहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ ।।

थोड़ा सा शाब्दिक अन्तर केवल पहली पंक्ति में मिलता है, अन्यथा स्थूल रूप से दोनों एक ही साखी के दो रूपान्तर हैं।

उपर्युक्त साम्य के अतिरिक्त सा० तथा साबे० का विकृति-साम्य नि० सा० साबे० सासी०, बी० सा० साबे० के संकीर्ण-सम्बन्ध के प्रसंग में आयी हुई विकृतियों पर भी आधारित है, क्योंकि अन्य प्रतियों के साथ उक्त समुच्चय में सा० तथा साबे० भी सम्मिलित हैं।

नि० तथा साबे० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति-साम्य—नि० तथा साबे० में एक साखी की पुनरावृत्ति समान रूप से मिलती है। नि० में 'निगुणां नर' के अंग में सातवीं साखी निम्नलिखित रूप में मिलती है—

पसुवा सौं पांनौं पड़ौ, रहि रहि हया म खीज।
ऊसर बोए न नीपजै, भावै तेता बीज॥

और २६वें अर्थात् 'कुसंगति के अंग' में दसवीं साखी के रूप में इस प्रकार मिलती है—

कुसंगा सेती संग किया, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बाह्या न नीपजै, भावै दूनै बीज॥

साबे० में भी यह साखी नि० के समान दो स्थलों पर मिलती है : एक बार सोलहवें अंग की २८वीं साखी के रूप में और फिर ७०वें अंग की १२वीं साखी के रूप में जिनके पाठ क्रमशः इस प्रकार हैं—

पसुवा से पाला पारचौ, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न उपजिसी, घालै दूना बीज॥

तथा : **पसुवा से पाला परा, रहि रहि हिए में खीज।**
ऊसर परा न नीपजै, केतक डारौ बीज॥

(ख) फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साम्य—इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. दा०१२-२, सा०३०-२, सासी०१७-३६ तथा गुण०१७६-२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : जिनके नौबत बाजती, मैंगल बंधते बारि। नि० तथा साबे० में यह साखी क्रमशः १६-२ तथा १६-१६ पर मिलती है। इन दोनों प्रतियों में 'मैंगल' के स्थान पर **मंगल** पाठ मिलता है। 'मैंगल' (=मदमत्त हाथी) इस प्रसंग में अधिक उपयुक्त है, 'मंगल' उसी का विकृत रूप ज्ञात होता है यह विकृति उर्दू में ही संभवतः हो सकती है।

नि० तथा साबे० का संकीर्ण-सम्बन्ध इन उदाहरणों के अतिरिक्त नि० सा० साबे० सासी० के संकीर्ण-सम्बन्ध के प्रसंग में आये हुए उदाहरणों पर भी आधारित है।

सा० साबे० सासी० का संकीर्ण-संबंध

कई पाठ-विकृतियाँ ऐसी हैं जो सा० साबे० तथा सासी० तीनों में समान रूप से मिलती हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि इन तीनों में भी घनिष्ठ संबंध है। आगे उन विकृतियों के उदाहरण दिये जा रहे हैं।

(क) उर्दू-विकृतियों के साम्य—निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. सा० ५१-४, साबे० २५-५ तथा सासी० ३६-५ की पहली पंक्ति का पाठ है : सहजहिं सहजहिं सब गया, सुत बित **काम निकाम**। दा० २१-३ तथा नि० २२-४ में 'कांमिनि कांम' पाठ मिलता है। यहाँ स्पष्ट ही दा० नि० का पाठ शुद्ध और सा० साबे० सासी० का पाठ विकृत है। सा० साबे० तथा सासी० का पाठ यदि प्रामाणिक माना जाय तो उसके अनुसार उक्त पंक्ति का अर्थ होगा : धीरे-धीरे पुत्र, धन, काम और निष्कामता सब से नाता छूट गया। किन्तु निष्काम होने के ही लिए तो अनेक प्रकार की साधनाएँ की जाती हैं, फिर उससे विमुख होने का प्रश्न क्यों? ज्ञात होता है कि जिस प्रति से इन प्रतियों का पाठ आया वह अथवा उसका कोई पूर्वज कदाचित् उर्दू में था, जिससे 'ज़ेर' के अभाव में सा० साबे० तथा सासी० की पाठ-परम्परा में ऊपर कहीं किसी ने भ्रम से 'कामिन काम' के स्थान पर 'काम निकाम' पढ़ लिया और वही पाठ आगे भी चलता रहा। पदच्छेद की असावधानी से भी इस प्रकार की विकृति संभव है।

२. नि० २१-३७ का पाठ है : जहाँ जराई सुंदरी, तूं जनि जाइ कबीर। उड़ि के भसम जु लागसी, दहसी सोना सवां सरीर ॥ सा० ४२-६७, साबे० ७३-३९ तथा सासी० ३१-५२ में उक्त साखी की दूसरी पंक्ति का पाठ है : उड़ि के भसम जो लागिसी, **सूना** होइ सरीर। सुन्दरी की भस्म लग जाने पर शरीर 'सूना' (=शून्य या सुन्न) होने की कल्पना यहाँ अप्रासंगिक है। नि० के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : ऐ कबीर, जहाँ सुन्दरी जलाई गयी हो, वहाँ भी तू मत जा, नहीं तो भस्म उड़ कर तुम्हारे शरीर पर पड़ेगी और उसकी चिनगारी से तुम्हारा सोने का सा शरीर जल कर राख हो जायगा। अर्थात् जीवित स्त्री की कौन कहे, जली हुई स्त्री के संपर्क का परिणाम भी भयावह हो सकता है। यह अर्थ पूर्ण रूप से सन्तोष-जनक प्रतीत होता है, अतः सा० साबे० तथा सासी० द्वारा प्रस्तुत किया हुआ पाठ विकृत ज्ञात होता है। यह विकृति भी फ़ारसी लिपि

में ही हो सकती है, क्योंकि सीन, वाव, नु, अलिफ़ मिलाकर उसे 'सोना', 'सूना' 'सौना' सभी कुछ पढ़ा जा सकता है।

३. सा० ४३-४८, साबे० ७३-३८ तथा सासी० ३१-५१ का पाठ है : रज बीरज की **कोठरी**, तापरि साजै रूप। एक नाम बिनु बूड़िहै, कनक कामिनी कूप ॥ दा० १६-१६, नि० २१-३६ में 'कोठरी' के स्थान पर 'कोथली' है जो प्रस्तुत प्रसंग में ठीक जँचता है। इस साखी में उन कामान्धों के प्रति उपदेश दिया गया है, जो पार्थिव शरीर की सुन्दरता पर दीवाने होकर भगवान को भूल जाते हैं। 'कोथली' का अर्थ 'खलीती' या 'थैली' होता है। रजोवीर्य से निर्मित एक खलीती पर रूप साजा गया है—यही है मानव शरीर जो परमात्मा के नाम का आधार छूट जाने पर कनक-कामिनी के गर्त्त में विलीन हो जायगा। यही उक्त साखी का सीधा अर्थ ज्ञात होता है। कोठरी भर रज-वीर्य को कल्पना बड़ी घृणास्पद लगती है। पुरानी उर्दू-प्रतियों में 'ते' तथा 'टे' प्रायः एक ही प्रकार से लिखे जाते थे। कदाचित् इसी भ्रम से उर्दू 'कोथली' को किसी ने 'कोठली' पढ़ लिया और फिर 'कोठली' के स्थान पर उसका सरल रूप 'कोठरी' कर दिया।

४. दा० १७-६, नि० २०-५ तथा स० ८६-१३ का पाठ है; कलि का स्वांमीं लोभिया, पीतल धरै खटाइ। राज दुवारै यौं फिरै, ज्यौं हरहाई गाइ॥ सा० ४०-६, साबे० ८४-५८ तथा सासी० ३४-७ में दूसरी पंक्ति के 'हरहाई' के स्थान पर 'हरियाई' पाठ मिलता है। दुष्ट गाय के प्रसंग में सम्पूर्ण मध्यकालीन साहित्य में 'हरहाई' शब्द का ही प्रयोग मिलता है, 'हरियाई' का नहीं। इस प्रसंग में बीजक के शब्द २८ की छठी पंक्ति तुलनीय है, जिसका पाठ है : एतक लै गम कीन्हेसि गइया गइया अति हरहाई। इससे यह सिद्ध होता है कि सा० साबे० सासी० का 'हरयाई' पाठ 'हरहाई' का ही विकृत रूप है। उर्दू 'हे' के नीचे लटकने वाले 'शोशे' को भ्रम से 'ये' का नुक़्ता समझ लेने पर 'हरहाई' को सरलता से 'हरियाई' पढ़ा जा सकता है।

५. सा० ८५-६१, साबे० ८-३७, सासी० १५-७२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : आगि **आंचि** सहना सुगम, सुगम खड़ग की धारि। नि० ५०-६६ में उक्त पंक्ति का पाठ है : पांच अगिनि सहणीं सुगम, और सुगम खगधार। शरीर को क्लेश देने के लिए प्रायः लोग पंचाग्नि तापा करते हैं। एक ओर से आग की आँच सहना उतना कठिन नहीं है जितना पंचाग्नि का ताप सहना, और उक्त साखी में कठिनाई का ही प्रसंग है, अतः नि० का 'पांच अगिनि' पाठ अधिक उपयुक्त लगता है। सा० साबे० तथा सासी० में 'पांच' के स्थान पर 'आंचि' कदाचित्

फ़ारसी लिपि के कारण हुआ है। नागरी में 'अ' के स्थान पर 'प' हो सकता है किन्तु 'प' से 'अ' बन जाना अपेक्षाकृत कम सम्भव है। विस्तार-भय से आगे शेष विकृतियों का स्थल-निर्देश-मात्र किया जा रहा है।

६. सा० ८०-१, साबे० ५८-१, सासी० ६९-१ : कबीर तहां न जाइए, जहां कपट का हेत। **जानौ** कली अनार की, तन राता मन सेत॥ तुल० दा० ४२-१, नि० ४७-१, गुण० ६२-५४ : जालूं कली कनीर की, तन राता मन सेत। (सा० साबे० सासी० की विकृति उर्दू 'लाम' और 'नु' के शोशें में सादृश्य के कारण।)

७. सा० ४३-१३, साबे० ७३-१८, सासी० ३१-१३ : नारी निरखि न देखिए, निरखि न कीजै **दौर**। तुल० नि० २१-११-१ : नारी दसा (=दिशा) न देखिए, देखि न कीजै डोर। (उर्दू 'डाल' और 'दाल' के सादृश्य के कारण)

८. सा० ५५-३६, साबे० ५०-२१, सासी० ७-३९ : **पहले** बूड़ी पिरथवी, झूठे कुल की लार। तुल० दा० २४-२१-१, नि० २५-१९-१ : पख लै बूड़ी पिरथमीं। (उर्दू के काफ़, हे में यदि 'काफ़' के ऊपर की लकीर अलग होकर कुछ छोटी हो जाय तो वह 'ज़बर' के सदृश हो जायगी और 'पख ले' के स्थान पर 'पहले' पढ़ा जा सकता है।)

९. सा० ९०-३७, साबे० ७७-१४, सासी० ३०-४० : खुश **खाना** है खीचड़ी, मांहि पड़ा टुक लौन। मास पराया खायकर, गला कटावै कौन॥ तुल० दा २२-१२, नि० ३२-७, सा० ७६-१ तथा गु० १८८ : खूब खान है खीचड़ी।

१०. सा० ३४-२२, साबे० १८-२०, सासी० ५६-१ : कबीर मारग कठिन है, रिखि मुनि बैठे थाकि। तहां कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुर की **साक**॥ तुल० दा० १४-९, नि० १८-११, गुण० ४४-६ : 'साक' के स्थान पर 'साखि' (=साक्षी, कथन ; विकृति कदाचित् 'काफ़' में लगे हुए 'हे' के छूट जाने के कारण हुई है अथवा ऊपर 'थाकि' का तुक मिलाने के लिए जानबूझ कर 'साखि' का 'साक' कर लिया गया है।)

(ख) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. सा० ९२-८, साबे० ३२-२, सासी० ४९-३७ की द्वितीय पंक्ति का पाठ है : परखनहारा **बाहिरी**, कौड़ी बदले जाय। दा० ४८-२, नि० ५३-३, गु० १५४ तथा गुण० १४२-२४ में 'बाहिरी' के स्थान पर 'बाहिरा' पाठ मिलता है जो वस्तुतः सार्थक और श्रेष्ठतर है। इस पंक्ति का भाव यह है कि बिना सच्चे पारखी के हीरा कौड़ी के मोल बिकता है। इससे ज्ञात होता है कि 'बाहिरी' या

'बाहिरा' का प्रयोग 'बिना' (अभाव-सूचक) अर्थ में किया गया है। कबीर की रचनाओं में इस अर्थ में सर्वत्र 'बाहिरा' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। इस प्रसंग में निम्नलिखित स्थल तुलनीय है : दा० १२-१५, नि० १६-२२ : राखनहारे बाहिरा, चिड़ियैं खाया खेत। यह साखी सा० साबे० तथा सासी० में भी (क्रमशः ३०-३९, १९-४०, १७-६६ पर) मिलती है और 'बाहिरा' शब्द इन तीनों प्रतियों में भी ज्यों का त्यों मिलता है, उसके स्थान पर 'बाहिरी' नहीं मिलता। यह ध्यान देने की बात है कि इस साखी में 'बाहिरा' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में हुआ है जिसमें वह 'परखनहारा' के साथ आया है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि 'बाहिरी' पाठ विकृत है। पहले संकेत किया जा चुका है कि राजस्थानी नागरी में 'आ' की मात्रा ऊपर फुला कर इस ढंग से लगाते थे कि उससे कहीं-कहीं ईकार की मात्रा का भ्रम होने लगता है। सा० साबे० तथा सासी० की विकृति इसी प्रवृत्ति तथा तज्जनित भ्रम के कारण आयी हुई ज्ञात होती है।

२. सा० २०-१३, साबे० ४३-२७, सासी० १४-४२ : पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास। **सुख करि सूती महल में,** बानी फूटी बास॥ दा० ५-१४, नि० ८-९ में इसकी द्वितीय पंक्ति का पाठ है : मुखि कसतूरी महमही, बांनीं फूटी बास। दा० नि० के अनुसार उक्त साखी का अर्थ होगा : जिसके शरीर में प्रेम का प्रवेश हो जाता है उसका हृदय उसके प्रकाश से उद्भासित हो जाता है, मुख में कस्तूरी का बास हो जाता है और वाणी से सुगन्धि फूट कर निकलने लगती है, अर्थात् जिसने प्रेम का वास्तविक महत्व समझ लिया उसे दिव्य ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है; वह जो कुछ बोलता है उसमें संसार भर का ज्ञान अपने आप छिपा रहता है, इसलिए सारा विश्व उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। 'मुख कस्तूरी महमही' का यही भाव है। यदि उसके स्थान पर 'सुख करि सूती महल में' पाठ ग्रहण किया जाय तो पूरे वाक्य में उसका कोई पूर्वापर संबंध नहीं स्पष्ट होता। 'सूती' क्रिया के कर्ता का भी अभाव खटकता है, इसलिए यह पाठ विकृत ज्ञात होता है और दा० तथा नि० का पाठ ही मूल के अधिक निकट का जान पड़ता है। विभिन्न सम्भावनाओं पर विचार करने से यह अनुमान लगता है कि कदाचित् यह विकृति नागरी अथवा उससे निकली हुई लिपि के ही कारण आयी है।

३. सा० ८५-५५, साबे० ८-६१, सासी० २४-२२ का पाठ है : सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम। तीर तुपक बरछी बहै, **बगसि** जायगा चाम। नि० ५०-६२ में

'बिगसि' के स्थान पर 'बिनसि' पाठ मिलता है। 'चाम' (=चमड़ा) के साथ 'बिगसि' (=विकसित होना) शब्द कुछ असंगत सा लगता है। वास्तव में इस प्रसंग में 'बिनसि' (=क्षत विक्षत होना) शब्द ही अधिक उपयुक्त लगता है और यही पाठ प्राचीनतर भी ज्ञात होता है। नागरी और उससे निकली हुई लिपियों में यदि नकार की बेड़ी लकीर अपने ऊपर की रेखा से मिल जाय तो उसका गोला खड़ी रेखा से अलग होकर 'ग' के गोले के सदृश लगने लगता है। 'बिनसि' के स्थान पर 'बिगसि' हो जाने की भूल कदाचित् इसी प्रकार हुई है।

४. सा० ३०-४२, साबे० १६-३३, सासी० १३-४६ : जिहिं घट प्रीति न प्रेम रस, पुनि रसना नहिं नाम। ते नर आय संसार में, उपजि **खपे** बेकाम॥ दा०२-१७, नि० १६-११ तथा गुण० ३०-२७ में 'खपे' के स्थान पर 'खये' पाठ मिलता है। 'खये' (=क्षये, नष्ट हुए) 'खपे' की अपेक्षा प्राचीनतर लगता है। नागरी लिपि में 'प' तथा 'य' में अधिक अंतर नहीं होता, अतः दोनों में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है।

(ग) पुनरावृत्ति-साम्य—सा० साबे० सासी० तीनों में चार साखियों की अनावश्यक पुनरावृत्ति समान रूप से मिल जाने के कारण तीनों के संकीर्ण-संबंध की पूर्णतया पुष्टि हो जाती है। विस्तार के लिए निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य हैं—

१. पहली साखी जो सा० साबे० तथा सासी० में दो बार आती है, पहले तीनों के 'लौ' (सासी० लगनी) अंग में मिलती है और फिर तीनों के 'परिचय अंग' में। 'लव अंग' में यह साखी तीनों में क्रमशः २६-६, १३-६ तथा ५३-१७ पर मिलती है। तीनों स्थलों पर इसका पाठ है —

जेहिं बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाइ।
रैनि दिवस की गमि नहीं, तहां कबीर लौ लाइ॥

तीनों प्रतियों के 'परिचय अंग' में भी यह साखी क्रमशः २०-६६, ४३-४२ तथा १४-७२ पर मिलती है, जिसका पाठ तीनों में इस प्रकार है—

जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाइ।
रैनि दिवस की गमि नहीं, रहा कबीर समाइ॥

नाममात्र का अंतर केवल अंतिम चरण के पाठों में है।

२. सा० ६०-१५, साबे० १४-५२ तथा सासी० १६-६३ का पाठ है—

पावक रूपी राम (साबे० सासी० नाम) **है, सब घट रहा समाय।**
चित चकमक चहुंटै नहीं, धूंवा होइ होइ जाय॥

यही साखी सा० साबे० सासी० में क्रमशः ८७-७, ४०-११ तथा ४१-८ पर पुनः

मिलती है जिनका पाठ है—

पावक रूपी सांइयां, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागे नहीं, ताते बुझ बुझ जाय ।।

दा० तथा नि० में यह साखी केवल एक-एक बार मिलती है, तुल० क्रमशः २६-१६ तथा ७-२०—

पावक रूपी रांम है, घटि घटि रह्या समाइ ।
चित चकमक लागै नहीं, तार्थैं धूवां ह्वै ह्वै जाइ ।।

इसका पाठ ऊपर की पहली साखी से अधिक मिलता है ।

३. सा० साबे० तथा सासी० में एक निरर्थक पुनरावृत्ति एक ही साखी में मिलती है । सा० ७८-३६, साबे० १६-१५६, सासी० ३२-३१ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : **जारनहारा** भी मुवा, मुवा **जलावनहार** । इस पंक्ति के पूर्वार्द्ध का वही भाव है जो उसके उत्तरार्द्ध का है, इसलिए यह पाठ भ्रामक हो गया है । दा० ४६-३१ तथा गुण० १७७-१६७ में इसका पाठ है : रोवणहारे भी मुए, मुए जलावनहार । यह पाठ उक्त दोष से मुक्त है ।

४. सा० साबे० तथा सासी० में एक साखी ऐसी है जो अन्यत्र एक पद की दो पंक्तियों के रूप में मिलती है । इस साखी का पाठ है—

अक्षै पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार ।
तिर देवा साखा भए, पात भया संसार ।।

यह नि० बिलावल ११, बी० ११४, शबे० (१) भेद ६ की दूसरी तथा तीसरी पंक्तियों से तुलनीय है, जिनका पाठ है—

सत्य पुरुष (नि० अजर अमर, बी० आदि पुरुष) **इक वृक्ष निरंजन डारा ।**
तिर देवा साखा भए, पाती संसारा ।।

नि० बी० शबे० समुच्चय में जो पद मिलते हैं, उनमें कहीं भी विकृति-साम्य नहीं मिलता । इसलिए उनमें समान रूप से मिलने वाला पाठ प्रामाणिक माना गया है । एक बार पदों में मिल जाने पर पुनः इन पंक्तियों का साखी रूप में पाया जाना खटकता है अतः सा० साबे० सासी०, जिनमें यह अनावश्यक पुनरावृत्ति मिलती है, परस्पर संकीर्ण रूप से संबद्ध हैं ।

उक्त तीनों प्रतियों के संकीर्ण-संबंध के लिए इन साक्ष्यों के अतिरिक्त नि० सा० साबे० सासी० के विकृत-साम्य भी विचारणीय हैं क्योंकि उनमें भी नि० के अतिरिक्त सा० साबे० सासी० के भी साक्ष्य वर्तमान हैं ।

सा० साबे० सासी० में संकीर्ण-संबंध प्रमाणित हो जाने पर सा० साबे०,

सा० सासी० तथा साबे० सासी० के संकीर्ण-संबंध भी सिद्ध हो जाते हैं।

साबे० सासी० गुण० का संकीर्ण-संबंध

पुनरावृत्ति-साम्य—निम्नलिखित साखी ऐसी है जो तीनों में अनावश्यक रूप से दो-दो बार मिलती है—

१. साबे० १५-२१, सासी० १५-४६, गुण० १६-४१ का पाठ है—

ज्यों मेरा मन तुज्झ सों, यों जो तेरा होइ।
अहिरन ताता लोह ज्यूं, संधि लखै नहिं कोइ॥

यही साखी पुनः तीनों में क्रमशः ३६-१६, ३३-३८ तथा ३५-१७ पर इस प्रकार मिलती है—

मेरा मन जो तोहिं सों, यों जो तेरा होइ।
अहिरन ताता लोह ज्यौं, संधि लखै नहिं कोइ॥

उपर्युक्त तीनों प्रतियों में संकीर्ण-संबंध मान लेने पर साबे० सासी०, साबे० गुण०, सासी० गुण० का परस्पर संकीर्ण-संबंध भी सिद्ध हो जाता है।

दा० सा० साबे० सासी० का संकीर्ण-संबंध

प्रक्षेप-साम्य—दा० ३३-९ का पाठ है—

मन नहिं छांड़ै बिखै, बिखै नहिं छांड़ै मन कौ।
इनकौ इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौ।
पंडित मूल बिनास, कहै किमि बिग्रह कीजै।
ज्यौं जल मैं प्रतिबिंब, त्यूं सकल रांमहिं जांणीजै।
सो मन सो तन सो बिखै, सो त्रिभुवन पति कहूं कस।
कहै कबीर बिंदहु नरा, ज्यूं जल पूरा सकल रस॥

इस छंद में छः पंक्तियाँ हैं, और कुछ विशेषताओं को छोड़ कर मात्रा तथा यति आदि की दृष्टि से यह छप्पय छन्द से मिलता है। दा२ में इसे तीन साखियाँ समझ कर दो-दो पंक्तियों के पश्चात् पृथक् संख्या दी गयी है। सा० तथा सासी० प्रतियों में भी दा२ के समान यह छंद तीन भिन्न साखियों के रूप में मिलता है, और पाठ भी तोड़-मरोड़ कर साखियों के ही अनुकूल कर लिया गया है। सा० में यह साखियाँ ३१वें अंग में क्रमशः ७०, ७१, ७२ संख्याओं पर और सासी० में २९वें अंग की ३१, ८३ तथा ८४ संख्याओं पर मिलती हैं। दोनों में पाठ क्रमशः इस प्रकार है—

मन नहिं छांड़ै विषय रस, विषय न मन को छांड़ि।
इनका यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि॥

पंडित मूल बिनासिया, कहै क्यों बिग्रह कीज।
ज्यौं जल में प्रतिबिंब है, त्यौं सकल राम जानीज ।
सो मन सोनो सो विषय, त्रिभुवन पति कहु कस ।
कहै कबीर बैदा नरा, जल पूरा सकल रस ॥

साबे० में ७१-७१ पर उक्त छंद की केवल प्रथम दो पंक्तियाँ मिलती हैं जिनका पाठ सा० तथा सासी० से शब्दशः मिलता है। प्रथम दोनों पंक्तियों के आने से सम्पूर्ण छंद की स्थिति का स्पष्ट संकेत मिल जाता है, क्योंकि साबे० के सा० द्वारा प्रभावित होने के पर्याप्त प्रमाण हमें मिल चुके हैं। अतः साबे० में भी इस विकृति की स्थिति समान रूप से माननी पड़ेगी। वस्तुतः साखियों के प्रकरण में छप्पय छंद का मिलना अनुपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि कबीर की साखियाँ सर्वत्र दो पंक्तियों की ही मिलती हैं।

दा० सा० साबे० सासी० में संकीर्ण-संबंध मान लेने पर दा० सा०, दा० साबे०, दा० सासी०, दा० सा० साबे०, दा० सा० सासी० और साबे० सासी० का सम्बन्ध भी सिद्ध हो जाता है, क्योंकि उक्त समुच्चय में इन प्रतियों के भी विकृति-साम्य हैं।

बी० सा०, बी० साबे० तथा बी० सा० साबे० के संकीर्ण-संबंध

(क) प्रक्षेप-साम्य—

१. बी० १३१ तथा साबे० ३५-३५ का पाठ है—

बलिहारी वहि दूध की, जामै निकरै घीव ।
आधी साखि कबीर की, चारि बेद का जीव ॥

इसका अर्थ होगा : बलिहारी उस दूध की है जिससे घी निकले (अर्थात् जिस दूध में घी न निकले उसकी क्या प्रशंसा की जाय ?)। **इसी प्रकार बलिहारी कबीर की साखियों की है जिसके अर्द्धांश में चारों वेदों का सार छिपा रहता है। क्या** वेदों का खंडन करने वाले कबीर अपनी साखियों को वेद-सम्मत कहने का लोभ करेंगे ? और क्या इस साखी की वाक्य-रचना से यह ध्वनित नहीं होता कि वास्तव में यह कबीर की प्रशंसा के निमित्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा रची गयी है? अधिक सम्भव यही है कि कदाचित् यह किसी अन्य व्यक्तित की रचना हो।

२. साबे० ३७-४६ और बी० र० सा० ५८ का पाठ है—

साधु संत तेई जना, जिन मानल बचन हमार ।
आदि अंत उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥

इस साखी की भी प्रथम पंक्ति संदिग्ध है। कबीर का यह कहना कि मेरी

बात मानने वाले ही सच्चे साधु संत हैं, कुछ अनुपयुक्त सा लगता है।

३. बी० ७४ तथा साबे० ६७-२५ का पाठ है—

सांचा शब्द कबीर का, हृदया देखि बिचारि।
चित दै समुझत है नहीं, मोहि कहत भैल जुग चारि ॥

यह स्पष्ट ही किसी परवर्ती कबीरपंथी साधु की रचना ज्ञात होती है जिसमें उसके आदि आचार्य का प्रचारात्मक अनुमोदन किया गया है। चार युगों का उल्लेख होने से कबीरपंथियों की उस कल्पना का संकेत मिलता है जिसके अनुसार कबीर ने विभिन्न नाम धारण कर चारों युगों में अवतार लिया था।

यह ध्यान देने की बात है कि उक्त तीनों साखियाँ अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलतीं, केवल बी० और साबे० में ही मिलती हैं। अतः दोनों के नैकट्य का सन्देह होता है। इस सन्देह के पक्ष में और भी साक्ष्य मिलते हैं जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

(ख) पुनरावृत्ति-साम्य—पहले इस बात का संकेत किया गया है कि साबे० में कई साखियाँ दो-दो बार मिलती हैं, जिससे उसका आदर्श-बाहुल्य सिद्ध होता है। बीजक से उसका मिलान करने पर यह भी ज्ञात होता है कि उसकी कुछ पुनरावृत्तियाँ बीजक के ही प्रभाव से आयी हैं। उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित साखियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

१. साबे० ६-२८ का पाठ है—

एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, तहां दूसरा नाहि ॥

यही साखी पुनः ज्यों की त्यों साबे० में ८४-२५ पर भी मिल जाती है। बी० तथा साबे० के अतिरिक्त यह साखी सा० में भी ५-४५ पर मिलती है, जिसका पाठ उक्त साखी के पाठ से शब्दशः मिलता है। साबे० का छठा अंग और सा० का पाँचवाँ अंग 'गुरु शिष्य हेरा' के हैं। सा० तथा साबे० का परस्पर संकीर्ण-संबंध भी पहले सिद्ध हो चुका है, इससे यह अनुमान होता है कि साबे० में पहली बार यह साखी सा० के प्रभाव से आयी है, किन्तु पुनः ८४वें अर्थात् 'मिश्रित अंग' में उसी साखी के पुनः मिल जाने से यह संकेत मिलता है कि यह अनावश्यक पुनरावृत्ति कदाचित् किसी अन्य आदर्श के प्रभाव से हुई है। यह अन्य आदर्श बीजक ही ज्ञात होता है। इस प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण मिल जाने से इस संदेह की पुष्टि हो जाती है। निम्नलिखित उदाहरण इस प्रसंग में विचारणीय हैं—

२. साबे० ३७-४० का पाठ है : **कर बंदगी बिबेक की, भेस धरे सब कोय।**
कर बंदगी बहि जान दे, जहां शब्द बिबेक न होय ॥

यही साखी पुनः साबे० १६९-९ पर इस प्रकार मिलती है—

कर बंदगी बिबेक की, भेस धरे सब कोय।
वा बंदगी बहि जान दे, जहं शब्द बिबेक न होय ।।

यह साखी सा० ५०-३ से तुलनीय है, जिसका पाठ अक्षरशः इसी साखी से मिलता है। दोनों में यह साखी 'बिबेक अंग' में मिलती है। साबे० ३७-४० बी० (२९४) के प्रभाव से आयी हुई ज्ञात होती है जिसका पाठ है—

करु बंदगी बिबेक की, भेस धरे सब कोय।
सो बंदगी बहि जान दे, जहं सब्द बिबेक न होय ।।

३. साबे० ६७-२० का पाठ है—

जाके बोली बंध नहिं, सांच नहीं मन मांहि।
ताके संग न चालिए, छांड़े पैंड़े मांहि ।।

तुल० साबे० ३७-३८ : **जाकी जिभ्या बंध नहिं, हिरदै नाहीं सांच।**
ताके संग न लागिए, घालै बटिया माझ ।।

पहली साखी सा० ५२-२४ से प्रभावित ज्ञात होती है जिसका पाठ है—

जाके बोली बंध नहिं, सांच नहीं मन मांहि।
ताके संग न चालिए, छोड़ै पैड़ा मांहि ।।

और दूसरी साखी बी० ८३ से प्रभावित ज्ञात होती है, जिसका पाठ है—

जाके जिभ्या बंध नहिं, हृदया नाहीं सांच।
ताके संग न लागिए, घालै बटिया माझ ।।

४. इसी प्रकार तुल० साबे० ३७-४८—

जो तू चाहै मुज्झ को, छांड़ि सकल की आस ।
मुझ ही ऐसा ह्वै रहै, सब सुख तेरे पास ।।

तथा साबे० ५९-३ : **जो तू चाहे मुज्झ को, राखो और न आस।**
मुझहिं सरीखा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ।।

दूसरी साखी सा० ३६-१४ से प्रभावित ज्ञात होती है, जिसका पाठ है—

जो तू चाहै मुझहिं को, मत कछु राखै आस।
मुझहि सरीखा ह्वै रहो, सब कुछ तेरे पास ।।

किन्तु पहली साखी बी० के ही प्रभाव से आयी हुई ज्ञात होती है—

तुल० बी० २९८ : **जो तू चाहे मुज्झ को, छांड़ि सकल की आस।**
मुझ ही ऐसा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ।।

५. तुल० साबे० ६-२७ : **बूंद समानी समुंद में, यह जानै सब कोय।**
समुंद समाना बूंद में, बूझै बिरला कोय।।
साबे० ८४-८४ : पाठ शब्दश: वही।
पहली सा० ५-४१ से प्रभावित ज्ञात होती है और दूसरी बी० ६६ से।
सभी प्रतियाँ इस साखी का एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं।
६. दा० ४६-३, नि० ४४-४, सा० ६७-१ तथा गुण० १७७-११६ का
है—

काल सिरहांणैं यौं खड़ा, जाग पियारे मिंत।
रांम सनेही बाहिरा, तूं क्यों सोवै नचिंत।।

७८-३ तथा सासी० ३२-३ में इस साखी का पाठ है—

काल चिचाना है खड़ा, तू जाग पियारे मिंत।
नाम सनेही बाहिरा, क्यों तूं सोवै निचिंत।।

ाखी बी० में भी १०२ संख्या पर मिलती है, जहाँ इसका पाठ है—

काल खड़ा सिर ऊपरे, जाग बिराने मिंत।
जाका घर है गैल में, क्या सोवै निहचिंत।।

में यह साखी दो बार मिलती है : एक बार १६-१७६ पर जिसका पाठ

काल चिचावत है खड़ा, जागु पियारे मिंत।
नाम सनेही जग रहा, क्यौं तूं सोय निचिंत।।

ृक बार पहले ही १६-१२१ पर मिल जाती है, जहाँ इसका पाठ है—

काल खड़ा सिर ऊपरै, जाग बिराने मिंत।
जाका घर है गैल में, क्यों सोवै निहचिंत।।

पष्ट है कि साबे० में १६-१७६ पर आने वाली साखी दा० नि० सा० साबे० स० तथा गुण० में आयी हुई साखी के समानान्तर पाठ प्रस्तुत करती है ६-१२१ पर आने वाली साखी बीजक वाले पाठ की शब्दश: प्रतिलिपि है, दोनों के पाठों में एक मात्रा का भी अंतर नहीं मिलता। इससे यह ज्ञात कि दा० नि० सा० आदि से सम्बद्ध रहने के कारण यह साखी साबे० की ते में पहले से ही विद्यमान थी, किन्तु उसके सम्पादन में बीजक का भी होने से इस साखी का एक दूसरा रूपान्तर भी उसमें प्रविष्ट हो गया जो क में मिलता है।
. नि० ४५-१२, सा० ७६-१२ तथा सासी० १६-३८ का पाठ है—

जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निरमई, भला करैगा सोय ॥

यह साखी बी० में भी ३१० संख्या पर मिलती है जिसका पाठ है—

जाहु बैद घर आपने, बात न पूछै कोय।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहेगा सोय ॥

साबे० में यह साखी भी दो बार मिलती है : एक बार १४-८८ पर और फिर उसी अंग की ८६ संख्या पर। साखी ८८ का पाठ है—

जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिनि यह बेदन निरमई, भला करैगा सोय ॥

और ८९ का पाठ है : **जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय।**
जिन या भार लदाइया, निरबाहेगा सोय ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि पहली साखी का पाठ नि० सा० सासी० से प्रभावित है और दूसरी का पाठ बी० से।

इस प्रकार हमने देखा कि साबे० की पुनरावृत्तियों में बी० का पर्याप्त प्रभाव है, जिससे यह सिद्ध होता है कि साबे० के संकलयिता के सम्मुख बीजक की भी कोई प्रति थी जिसका उसने उपयोग किया है।

साबे० में नौ साखियाँ ऐसी भी मिलती हैं जो बी० में रमैणियों के प्रकरण में आती हैं, जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध भी कल्पना को और भी अधिक पुष्टि मिलती है।

साबे० के सदृश सा० में भी दो साखियाँ ऐसी हैं जो बी० में रमैणियों के अन्तर्गत आती हैं—तुल० (१) सा० ७४-१२ तथा बी० र० सा० ३७ : 'बीजक बतावै वित्त को' इत्यादि; (२) सा० २०-६४ तथा बी० र० सा० ७ : 'अबिगत की गति क्या कहूं' इत्यादि। इनमें से दूसरी साखी दा० नि० में भी 'अष्टपदी रमैनी' की पहली साखी के रूप में मिलती है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह साखियाँ मूलतः रमैणी में ही थीं, उक्त साखी-प्रतियों के लिपि-कर्त्ताओं अथवा संकलन-कर्ताओं ने किसी दूसरी प्रति से लेकर इन्हें अतिरिक्त रूप से जोड़ा है। सा० तथा साबे० के अतिरिक्त अन्य किसी भी साखी-प्रति में इस प्रकार रमैनियों की एक भी साखी नहीं मिलती। हमने यह देखा है कि सा० तथा साबे० में जो साखियाँ इस प्रकार अतिरिक्त रूप से मिलती हैं, उनके पाठ बीजक की उल्लिखित साखियों से शब्दशः मिल जाते हैं, अतः बीजक से उक्त दोनों प्रतियों का संकीर्ण-सम्बन्ध मानना पड़ता है। साथ ही बी० सा० तथा साबे० तीनों में समान रूप

से कुछ अन्य विकृति-साम्य मिल जाने से (जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है) बी० सा० तथा बी० साबे० का संकीर्ण-सम्बन्ध और भी दृढ़तर सिद्ध हो जाता है।

बी० सा० साबे० का संकीर्ण-संबंध

निम्नलिखित विशेषताएँ बी० सा० साबे० में समान रूप से मिलती हैं।

(क) फ़ारसी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० १६-३२ तथा नि० १९-४२ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : माया की झल जग जल्या, कनक कांमिणीं लागि। सा० ३७-३७, साबे० ७२-२५ तथा बी० १४१ (बीभ० १४०) में 'झल' के स्थान पर **झक** पाठ मिलता है। यहाँ पर संसार के जलने का प्रसंग है, अतः 'झल' (=आग की ज्वाला या लपट) की प्रामाणिकता निर्विवाद रूप से स्वीकार की जायगी। 'झक' का प्रयोग सर्वत्र 'जक' अथवा 'धुन' अर्थ में किया गया है; तुल० नि० ८-१०, सा० २०-१४, साबे० ४३-५ तथा सासी० १४-५ : झक लागो जोगी हुआ, मिटि गई ऐंचातान। ज्वाला के अर्थ में 'झल' शब्द का प्रयोग कबीर की रचनाओं में कई स्थलों पर मिलता है। निम्नलिखित स्थल इस सम्बन्ध में विशेष रूप से तुलनीय हैं—

अ—दा० ३८-७, नि० ४०-१३, सा० ७२-१९, सासी० ७०-६ : झल बावैं झल दाहिनैं, झलहिं मांहि ब्यौहार। आगैं पीछैं झलहि है, राखै सिरजनहार॥ (अर्थात् चारों ओर अग्नि प्रज्वलित है, विधाता ही इससे बचावें।)

आ—दा० १७-१, नि० ६-५२, सा० १९-७२, साबे० १४-८२ तथा सासी० १६-८१ : साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ॥ (अर्थात् न तो स्वामी मिलता है न ज्वाला शांत होती है।)

इ—दा० ४-४, नि० ७-६ : झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटम फूट। (अर्थात् अग्नि की लपट से झोली जल गई।)

ई—दा० नि० गौड़ी ८ तथा गु० गउड़ी ४७ की अंतिम पंक्ति : कहै कबीर गुर दिया पलीता, सो झल बिरलै देखी। (यहाँ भी 'झल' का तात्पर्य पलीते की लपट या फुलझड़ी से है।)

यह ध्यान देने की बात है कि अन्य प्रतियों के अतिरिक्त साबे० में भी 'ज्वाला' के अर्थ में 'झल' पाठ ही मिलता है।

उक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि प्रस्तुत प्रसंग में 'झक' पाठ विकृत है और 'झल' पाठ ही श्रेष्ठ तथा मूल प्रति का है। इस प्रकार की विकृति संभवतः उर्दू में ही हो सकती है। उर्दू में 'झल' के 'लाम' की खड़ी लकीर के

पास 'ज़बर' रहने से 'काफ़' का भ्रम हो सकता है। कदाचित् इसी भ्रम से उसे 'झक' पढ़ लिया गया।

२. इसके अतिरिक्त सा० तथा साबे० में एक साखी ऐसी है जो बीजक की 'विप्रमतीसी' में मिलती है और दोनों में दो साखियाँ ऐसी हैं जो बीजक के रमैणी-प्रकरण में मिलती हैं—तुल० (१) सा० १८-५०, १०-५७, साबे० ३७-३० तथा बी० विप्रमतीसी की अंतिम साखी : 'बहते को बहि जान दे' इत्यादि; (२) सा० ४१-१०, साबे० १८-१३ तथा बी० र० सा० ३३ : 'रामहिं राम पुकारते जिभ्या परि गइ रौंस' इत्यादि, (३) सा० ९०-१३, साबे० ७७-१३ तथा बी० र० सा० ४६ : 'दिन को रोजा रहते हैं' इत्यादि।

नि० सा० साबे० सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य : निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. नि० २५-३, सा० ५५-१३, साबे० ३४-१५ तथा सासी० १३-१४२ का पाठ है : माला फेरत **मन खुशी,** तातैं कछू न होइ। दा० २४-३, सा० ६४-१२ तथा गुण० १२६-१० में 'मन खुशी' के स्थान पर 'मनमुखी' पाठ मिलता है, केवल दा३ में 'मन सुखी' पाठ है। विचारणीय यह है कि उक्त तीनों पाठों में से कौन सा पाठ यहाँ मूल प्रति का है।

'गुरुमुख' और 'मनमुख' संत-साहित्य के पारिभाषिक शब्द हैं। 'मनमुखी' वह है जो गुरु की आज्ञा न मान कर अपने मन की ही आज्ञा मानता है, अर्थात् सदैव अपनी काम-वासनाओं की पूर्ति में लगा रहता है और परमार्थ का लेश-मात्र भी चिन्तन नहीं करता। साबे० ४-३ में ऐसे व्यक्तियों के संबंध में कहा गया है—

फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम॥

इस प्रकार 'माला फेरैं मनमुखी' का अर्थ यह होगा कि माला मनमुखी लोग फेरा करते हैं (इस आशा से कि माला की जितनी गुरियाँ फिरेंगी, पुण्य का खाता उतना ही बढ़ता जायगा)। सा० ५५-१४ तथा सासी० ७-३० पर मिलने वाली साखी में 'मनमुखी' शब्द आया है। उक्त साखी का पाठ है—

माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरैं अचेत।
गांगी रोलै बहि गया, हरि सों किया न हेत॥

दूसरी बात यह है कि 'माला फेरत मन खुसी' कह लेने पर 'तातें कछू न होइ' कहने की कोई संगति नहीं रह जाती, क्योंकि माला फेरने से यदि मन प्रसन्न

हो जाय तो यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं। ऐसा ज्ञात होता है कि नागरी में लिखे हुए 'मनमुखी' से पहले दा३ में 'मन सुखी' ('म' और 'स' के सादृश्य के कारण) हुआ और फिर नि० सा० साबे० सासी० में उसका समानार्थी 'मन खुसी' पाठ कर लिया गया।

(ख) **फ़ारसी लिपि-जनित विकृति-साम्य**—जिसके उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. दा० २९-२, सा० २७-१ तथा गुण० ७२-१२ का पाठ है—

संत न छांड़ै संतई, जे कोटिक मिलहिं असंत।
चंदन भुवंगा बेढ़ियौ, तऊ सीतलता न तजंत॥

नि० २९-२, सा० ५९-५, साबे० ४७-५७, सासी० ६-१२४ में उक्त साखी की द्वितीय पंक्ति के 'बेढ़ियौ' के स्थान पर **बेधिया या बेधियौ** पाठ-भेद मिलते हैं। इन प्रतियों के अतिरिक्त यह साखी गु० में भी १७४वें सलोक के रूप में मिलती है: और वहाँ भी 'बेढ़ियौ' पाठ ही मिलता है। इस प्रकार उक्त शब्द के पाठ के संबंध में प्रतियों के मुख्यतया दो पक्ष हो जाते हैं—एक पक्ष दा० स० गुण० तथा गु० का है, जो 'बेढ़िया' या 'बेढ़िऔ' पाठ प्रस्तुत करता है और दूसरा नि० सा० साबे० सासी० का है जो 'बेधिया' या 'बेधियौ' पाठ प्रस्तुत करता है। 'बेधना' क्रिया का प्रयोग लक्ष्य-संधान करने, छिद्र करने अथवा अत्यन्त उग्र गंध का प्रसार करने के अर्थ में होता है। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इन अर्थों में से किसी की भी उपयुक्तता सिद्ध नहीं होती। इस पंक्ति का मूल भाव यह है कि सर्पों द्वारा प्रभावित होने पर भी चन्दन अपनी शीतलता नहीं छोड़ता। इस भाव में 'बेढ़ना' पाठ ही अधिक समीचीन होगा। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' के शब्दकोष (पृ० १४३) में 'बेढ़ियौ' शब्द का अर्थ (कदाचित् संस्कृत 'वेष्ट्' के आधार पर) 'घिरा हुआ' दिया है। खेतों में बाड़ लगाने या रूँधने के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग प्रचलित है। कबीर ने अन्यत्र इसका प्रयोग निम्नलिखित प्रसंग में किया है; तुल० दा० नि० केदारौ १२, गु० केदारा ४ तथा बी० शब्द ७२ : चलत कत टेढ़ो टेढ़ो टेढ़ो। नऊं (बी० दसहुं) दुवार नरक धरि मूंदे (गु० असति चरम बिसटा के मूदे) तूं दुर्गंधि कौ बेढ़ौ॥ यहाँ 'बेढ़ौ' से 'आवरण' या उससे मिलता-जुलता कोई अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। 'बेढ़ना' का प्रयोग आग लगने या लगाने के अर्थ में भी किया जाता है। इसी अर्थ में अवधी, भोजपुरी का 'बेढ़ा बाजै' अर्थात् 'आग लगे' (तिरस्कारसूचक) मुहावरा प्रचलित है जो प्रायः स्त्रियों द्वारा व्यवहृत होता है। कदाचित् ज्वाला की ही लक्षणा पर इसका प्रयोग सर्प आदि विषैले जन्तुओं के तीक्ष्ण विष अथवा किसी तीक्ष्ण बात के प्रसार के लिए

भी किया जाता है। सर्प अथवा बिच्छू द्वारा काटे जाने पर सारा शरीर उनके विष से 'बेढ़ा हुआ' कहा जाता है और इसी प्रकार किसी कटुवचनी की तीक्ष्ण बातों द्वारा सारा गाँव 'बेढ़ा हुआ' कहा जाता है। जिस साखी के पाठ पर विचार किया जा रहा है उसमें 'वेढ़ियौ' शब्द का प्रयोग रूँधे जाने अथवा विष की ज्वाला से दग्ध किये जाने के अर्थ में ही किया गया प्रतीत होता है। आगे शीत-लता के प्रसंग से इस अर्थ की प्रमाणिकता और भी अधिक विचारणीय हो जाती है। अर्थ जो भी हो, किंतु 'बेधिया' की अपेक्षा 'वेढ़िया' या 'वेढ़ियौ' पाठ की श्रेष्ठता अक्षुण्ण है। नि० सा० साबे० सासी० की यह विकृति फ़ारसी लिपि के कारण पैदा हुई ज्ञात होती है, क्योंकि उसमें शीघ्रतावश 'डाल' (=ड) के स्थान पर प्रायः लोग 'दाल' (=द) लिख जाया करते हैं।

(ग) राजस्थानी-प्रभाव का साम्य—निम्नलिखित राजस्थानी-प्रयोग नि० सा० साबे० सासी० में समान रूप से पाये जाते हैं—

१. नि० २१-४८, सा० ४३-४७, साबे० ७३-३७ तथा सासी० ३१-५ की दूसरी पंक्ति का पाठ है : हरि बिच पाड़ै अंतरा, जम **देसी** मुख धूरि ॥

२. नि० २१-३७, सा० ४२-६७, साबे० ७३-३६ तथा सासी० ३१-५२ की द्वितीय पंक्ति का पाठ है : उड़ि के भसम जु **लागसी,** सूना होय सरीर।

३. नि० २०-३७, सा० ४०-१६, साबे० २-२२, सासी० ३-१४ की द्वितीय पंक्ति : ते जन ऊभा **सूखसी,** ज्यौं दाहै दाझा रूख।

४. नि० ३-१, सा० ११-१, साबे० ३४-३८, सासी० १३-८६ की द्वितीय पंक्ति : सांस सांस संभालतां, इक दिन **मिलसी** आय। यह साखी गुण० ८-८ पर दादू के नाम से मिलती है, वहाँ इसका पाठ है—

दादू सांस सांस संभारतां, इक दिन मिलिहै आय।
सुमिरन पैंड़ौ सहज का, सतगुर दिया दिखाय॥

दादू की छाप मिलने से नि० सा० साबे० सासी० में इस साखी की स्थिति और भी चिंत्य हो जाती है।

(घ) पुनरावृत्ति-साम्य—नि० सा० साबे० सासी० के संकीर्ण-संबंध का एक अकाट्य प्रमाण यह है कि एक ही साखी इन चारों प्रतियों में अनावश्यक रूप से दो-दो बार आयी है। नि० ४५-४ में जो साखी आती है उसका पाठ है—

कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थैं टूटि।
गगन मंडल आसन किया, काल गया सिर कूटि॥

नि० ५१-११ पर यही साखी थोड़े हेर-फेर से पुनः मिल जाती है जहाँ इसका पाठ है—

मन मनसा ममता मुई, अहं गई सब छूटि।
गगन मंडल मैं घर किया, काल गया सिर कूटि।।

दोनों में पाठ-भेद नाम मात्र का है। दोनों की दूसरी पंक्तियों का पाठ लगभग एक ही है। नि० के समान सा० साबे० में भी यह साखी दो-दो बार मिलती है : एक बार सा० १६-४ तथा साबे० ४५-४ पर, जिसका पाठ है—

कबीर तौ हरि (साबे० पियु) पै चला, माया मोह सों तोरि।
गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि।।

और फिर सा० ८८-२३ तथा साबे० ४६-१६ पर, जिसका पाठ है—

मन की मनसा मिट गई, अहं गई सब छूटि।
गगन मंडल में घर किया, काल रहा सिर कूटि।।

सा० तथा साबे० की पहली साखी में कुछ परिवर्तन 'तोरि' और 'मोरि' के द्वारा प्रकट होता है, किन्तु भाव, और अधिकांश शब्दावली भी, वस्तुतः वही है जो दूसरी साखी में है।

सासी० में तो यह साखी तीन स्थलों पर आती है : एक बार २६-११८ पर, जिसका पाठ है—

यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छूटि।
बेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूटि।।

दूसरी बार ४२-१६ पर, जिसका पाठ है—

मन की मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूटि।
गगन मंडल में घर किया, काल रहा सिर कूटि।।

और तीसरी बार ४३-४ पर, जिसका पाठ है—

कबीर तौ पिउ पै चला, माया मोह से तोरि।
गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि।।

दा० प्रतियों में भी यह साखी मिलती है, किन्तु उसका पाठ देखने से ज्ञात होता है कि उसमें नि० सा० साबे० सासी० की भाँति पुनरावृत्ति नहीं है। नि० ४५-४ दा० में ४७-३ के रूप में मिलती है और पाठ भी शब्दशः वही है, किन्तु दूसरी साखी, जो दा० में ४१-७ पर मिलती है, इस प्रकार है—

मन मारचा ममिता मुई, अहं गई सब छूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति।।

उक्त साखी के पाठ पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि इसकी प्रथम पंक्ति का पाठ अन्य प्रतियों के पाठ से मिलता है, किन्तु द्वितीय पंक्ति का पाठ नितान्त भिन्न

हो गया है। यदि दूसरी पंक्ति का पाठ दा० में भी अन्य प्रतियों के समान ही मिलता तो दा० नि० सा० साबे० सासी० अर्थात् पाँचों में संकीर्ण-संबंध मानना पड़ता, किन्तु दा० में पुनरावृत्ति के अभाव से यह संबंध केवल नि० सा० साबे० सासी० तक ही सीमित रह जाता है।

नि० सा० साबे० सासी० में संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध हो जाने पर नि० सा०, नि० साबे०, नि० सासी०, सा० साबे०, सा० सासी०, साबे० सासी०, नि० साबे० सा०, नि० सा० सासी० और सा० साबे० सासी० का सम्बन्ध भी सिद्ध होता है, क्योंकि उक्त सभी समुच्चय नि० सा० साबे० सासी० के अन्तर्गत समाहित हैं।

दा० नि० सा० सासी० का संकीर्ण-संबंध

(क) पुनरावृत्ति-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. दा० ३-४, नि० ४०-२१, सा० १९-४, साबे० १४-६९, सासी० १६-४ स० ७-३ तथा गुण० २०-५३ का पाठ है—

बासुरि सुख नां रैंन सुख, नां सुख सुपिनंतर मांहि।
कबीर बिछुड़े रांम सौं, नां सुख धूप न छांहि॥

दा० ३१-४, नि० ३३-४, सा० ६३-१२ तथा सासी० ३७-६ पर यह साखी पुनः इस प्रकार मिलती है—

बासुरि गम नहिं रैंन गम, नहिं सुपिनंतर गंम।
कबीर तहां बिलंबिया, जहां छांह नहिं घंम॥

२. दा० ५१-४ (ग्रन्था० पाद-टिप्पणी में), नि० ५६-३, सा० ९७-७ तथा सासी० ८२-६ का पाठ है—

दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा कोइ।
को पुत्रा को बांधवा, को धन हीनां होइ॥

तुल० दा० ५१-३, नि० ५६-४, सा० ९७-८, सासी० ८२-७—

दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा कोइ।
जहं जहं भक्ति कबीर की, तहं टुक धीरज होइ॥

दोनों की प्रथम पंक्तियों का पाठ शब्दशः वही है।

(ख) राजस्थानी, पंजाबी-प्रभाव का साम्य—निम्नलिखित उदाहरण विशेष रूप से विचारणीय हैं—

१. दा० ३५-२, नि० ३७-३, सा० ६९--१, सासी० २०-५ : भांडा **घड़ि** जिन मुख दिया, सोई पूरण जोग।

२. दा२ दा३ २२-७, नि० १६-६, सा० ३०-७, सासी० १७-४२ : ऊजड़ खेड़े ठीकरी, **घड़ि घड़ि** गए कुम्हार।

३. दा० १६-२७, नि० १९-२६, सा० ३६-१७, सासी० ६८-१६ : सब आसन आसा **तणां**, निरवरत के कोई नांहि।

४. दा२ दा३ १२-२४, नि० १६-२४, सा० ३०-११, सासी० १७-६ : कबीर केवल हाड़ का, माटी **तणां** बंधांन।

प्राचीन पश्चिमी-हिन्दी तथा अप्रभ्रंश में भी 'तणां' का प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है, किन्तु यह विभक्ति कबीर की रचनाओं में अपवाद रूप से ही मिलती है, इसलिए संभावना इसके विषय में पश्चिमी-प्रभाव की ही यथेष्ट है।

(ग) प्रक्षेप-साम्य—दा२ दा३ ५३-६, नि० ५०-६६, सा० १०४-८, सासी० ५-५७ तथा गुण० १७२-४० का पाठ है—

बेकांमीं कौं सर जिन बाहै। सांटी खोवै मूल गंवावै॥

दास कबीर ताहि को बाहै। रार समय सनमुख सरसावै॥

कबीर की साखियों से इसका छंद भिन्न होने के कारण इसकी प्रामाणिकता में सन्देह होता है, और इसीलिए वह समुच्चय भी संदिग्ध माना गया है जिसमें यह चौपदी मिलती है।

दा० नि० सा० सासी० तथा दा३ नि० सा० सासी० गुण० में परस्पर संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो जाने पर दा० नि०, दा० सा०, दा० सासी०, नि० सा०, नि० सासी०, सा० सासी०, दा० नि० सा०, दा० नि० सासी० तथा नि० सा० सासी० के संकीर्ण-संबंध भी सिद्ध हो जाते हैं।

बी० साबे० का संकीर्ण-संबंध

(क) नागरी-लिपि-जनित विकृति-साम्य—इस प्रसंग में निम्नलिखित उदाहरण विचारणीय हैं—

१. दा० गौड़ी ८९, नि० गौड़ी ९२ तथा गु० गउड़ी ३९ की प्रथम दो पंक्तियों का पाठ है : हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई। हरि के बियोग कैसै जिअउं मेरी माई॥ दा० नि० गु० का उक्त पद बी० तथा शबे० में भी मिलता है। बी० शब्द ३६ तथा शबे० (२) मिश्रित १४ में 'माई' के स्थान पर **भाई** पाठ मिलता है। 'भाई' (=भ्राता) अपने सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। 'माई' शब्द का प्रयोग मध्यकालीन साहित्य में मुख्यतया दो अर्थों में होता था : एक 'माता' अर्थ में और दूसरा सखी अर्थ में। कबीर की रचनाओं में भी इसके प्रयोग दोनों अर्थों में मिलते हैं। पहले अर्थ के लिए द्रष्टव्य : दा० नि०

गौड़ी २१-३, ४ तथा गु० गूजरी २-३, ४—

ठाढ़ी रोवै कबीर की माइ । ऐ लरिका कैसे जीवैं खुदाइ ॥
कहै कबीर सुनो री माई । पूरणहारा त्रिभुवनराई ॥

अथवा बी० शब्द १००-१ : **देखौ लोगा हरि कै सगाई ।**
माइ धरै पुत्र धिया संग जाई ।

तथा बी० कहरा ११-५ : **माई मोर मुवल पिता के संगे,**
सर रचि मुवल संघाती गे ।

किन्तु प्रेम, विरह आदि का प्रसंग रहने पर यह शब्द सखी के प्रेमपूर्ण सम्बोधन का द्योतक होता है । तुल० दा० गौड़ी ११७-१ तथा नि० गौड़ी १२०-१—

हरि मोरा पीव माई हरि मोरा पीव । हरि बिनु रहि न सकै मोरा जीव ॥

(अर्थात् हे सखी ! हरि मेरा पति है, उसके बिना मैं जी नहीं सकती ।)

बी० तथा शबे० में भी अन्यत्र कई स्थलों पर यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । तुलना के लिए दे० बी० ६-१—

माई मोर मनुसा अति सुजान । धंधा कुटि कुटि करै बिहान ॥

(अर्थात् हे सखी, मेरा ख़सम बड़ा ही भला है. . . इत्यादि ।)

इस अर्थ में 'माई' शब्द का प्रयोग मध्यकालीन साहित्य में बहुत व्यापक रूप से मिलता है । कबीर के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाओं में भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है ; उदाहरणतया—

माई री घन घन अंतर दामिनि ।—सूर

अथवा : **माई मुझे कब मिलिहै मेरौ जियरा कौ प्रान अधार ।**—मीरां

जिस पंक्ति के पाठान्तरों पर विचार किया जा रहा है उसमें हरि के वियोग का प्रसंग रहने से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि आगे हरि से वियुक्त जीवात्मा की उक्ति है । कबीर के साहित्य में परमात्मा-जीवात्मा के सम्बन्ध का वर्णन सर्वत्र पति-पत्नी के रूप में मिलता है । जीवात्मा के स्थान पर जहाँ कहीं कबीर ने स्वयं अपना आरोप किया है वहाँ कबीर की उक्तियाँ भी उसी रूप में आयी हैं । इस प्रकार उक्त प्रसंग में 'माई' पाठ ही वस्तुतः सार्थक और प्रयोगसम्मत सिद्ध होता है, 'भाई' नहीं; क्योंकि कोई स्त्री अपने स्वाभाविक प्रेमोद्‌गार अपनी सखी को ही सुनाती है, भाई को नहीं । इस परिवर्त्तन का मूल कारण यह ज्ञात होता है कि जिस प्रति से यह पाठ अन्य प्रतियों में आया उसके प्रतिलिपिकार को 'माई' शब्द का ठीक अर्थ न ज्ञात रहने के कारण इस स्थल पर भ्रम हो गया । इसी भ्रम में लिपि-भ्रम भी सम्मिलित हो गया । नागरी और उससे उत्पन्न लिपियों

में 'म' तथा 'भ' में इतना सूक्ष्म अन्तर रहता है कि भ्रम हो जाना कठिन नहीं। उर्दू में इस प्रकार के भ्रम की सम्भावना नहीं है।

(ख) पुनरुक्ति-साम्य—अनावश्यक पुनरुक्ति-साम्य के निम्नलिखित स्थल विचारणीय हैं—

१. बी० शब्द ६८ की प्रथम दो पंक्तियों का पाठ है : जो चरखा जरि जाइ **बढ़इया ना मरै**। कातौं सूत हजार चरखुला जिन जरै ॥ और आगे उसी की नवीं तथा दसवीं पंक्तियों का पाठ है : देव लोक मरि जाहिंगे **एक न मरै बढ़ाय** ॥ यह मन रंजन कारनै चरखा दियो दृढ़ाय ॥ दोनों के गहरे काले अक्षरों वाले अंश विचारणीय हैं। पहले एक बार 'बढ़इया ना मरै' आ चुकने पर पुनः 'एक न मरै बढ़ाय' आना सन्देह उत्पन्न करता है। कुछ हेर-फेर से शबे० में भी इसी प्रकार की पुनरुक्ति मिल जाती है। शबे० में यह पद पहले भाग के मिश्रित पदों के अन्तर्गत चौथी संख्या पर मिलता है। उसकी पहली पंक्ति का पाठ है—

चरखे का सिरजनहार बढ़इया एक न मरै।

फिर आगे छठी तथा सातवीं पंक्तियों का पाठ है—

सास मरै ननदी मरै रे लहुरा देवर मरि जाइ।
एक बढ़इया ना मरै चरखे का सिरजनहार ॥

शबे० में यह पुनरुक्ति और भी अधिक स्पष्ट हो गयी है। दा० गौड़ी १३, नि० गौड़ी १४ तथा सा० ७०-५ की आरम्भिक पंक्तियों का पाठ है—

चरखा जिनि जरै।

कातौंगी हजरी का सूत नणद के भइया की सौं ॥

शेष दोनों पंक्तियों का पाठ इस प्रकार है—

सब जगही मरि जाइयो एक बढ़इया जिनि मरै।
सब रांणनि कौ साथ चरखा को धरै ॥

(ग) प्रक्षेप-साम्य—बी० और शबे० के संकीर्ण-सम्बन्ध का तीसरा और सब से अधिक पुष्ट प्रमाण यह है कि दोनों में एक पद ऐसा मिलता है जिसकी विभिन्न पंक्तियाँ अन्य प्रतियों के विभिन्न पदों से ली हुई ज्ञात होती हैं। बी० शब्द ९९ तथा शबे० (२) चितावनी १३ में इसका पाठ निम्नलिखित रूप में मिलता है—

अब कहँ चले हौ अकेले मीता। उठहु न करहु घरहु की चिंता ॥
खीर खांड घृत पिंड संवारा। सो तन लै बाहरि करि डारा ॥
जिहि सिर रचि रचि बांधौ पागा। सो सिर रतन बिडारै कागा ॥

हाड़ जरै जस जंगल लकरी । केस जरै जस त्रिन की कूरी ।।
आवत संघ न जात संघाती । काह भए दर बांधे हाथी ।।
माया को रस लेन न पाया । अंतर जम बिलार होइ धाया ।।
कहहिं कबीर नर अजहुं न जागा । जम का मुग्दर मंझ सिर लागा ।।

इसकी दूसरी पंक्ति दा० नि० गौड़ी ९३ में दूसरी पंक्ति के रूप में मिलती है जहाँ इसका पाठ है—

खीर खांड घृत पिंड संवारा । प्रान गए लै बाहर जारा ।।

तीसरी पंक्ति दा० सोरठि ३४, नि० सोरठि ३३ (ग्रन्था० २९५) में चौथी पंक्ति के रूप में और गु० गउड़ी ३५ में प्रथम पंक्ति के रूप में मिलती है । दा० नि० में इसका पाठ है—

जा सिर रचि रचि बांधत पागा । ता सिर चंच संवारत कागा ।।

और गु० का पाठ है—

जिहि सिर रचि रचि बाधत पाग । सो सिरु चुंच सवारहि काग ।।

चौथी पंक्ति गु० गौंड २ में तृतीय पंक्ति के रूप में इस प्रकार आती है—

हाड जले जैसे लकरी का तूला । केस जले जैसे घास का पूला ।।

पाँचवीं पंक्ति दा० गौड़ी ९८ तथा नि० गौड़ी १०२ (ग्रंथा० पद ९८) की चौथी पंक्ति के रूप में और गु० भैरउ २ की तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है । दा० नि० गु० में इस पंक्ति का पाठ है—

आवत संघ न जात संघाती । कहा भएउ दर बाधे हाथी ।।

छठी पंक्ति दा० गौड़ी १०१ तथा नि० गौड़ी १०५ (ग्रंथा० पद १०१) की प्रथम पंक्ति है, जहाँ इसका पाठ है—

माया का रस खान न पावा । तब लगि जम बिलवा ह्वै धावा ।।

इसी प्रकार उक्त पद की अंतिम पंक्ति दा० भैरूं २६ तथा गु० गौंड २ की अंतिम पंक्तियों के रूप में मिल जाती है जहाँ इनका पाठ है—

कहै कबीर तबहीं नर जागै । जम का डंड मूड़ महिं लागै ।।

किसी एक पद की विभिन्न पंक्तियों को अकारण अनेक पदों में बिखेर देने की अपेक्षा अनेक स्थलों से कुछ पंक्तियाँ लेकर एक नये पद की सृष्टि कर देना अधिक स्वाभाविक लगता है ।

इस पद के संबंध में एक विशेष बात और भी मिलती है । इसकी पाँचवीं पंक्ति शबे० की ७वीं पंक्ति से भी तुलनीय है जिसका पाठ है—

आवत संघ न जात संघाती । कहा भए दल बांधे हाथी ।।

शबे० के अतिरिक्त यह पद दा० में गौड़ी ९८ पर, नि० में गौड़ी १०२ पर गु० में भैरउ २ पर और शक० में सायरी १८ पर भी मिलता है। ऊपर उद्धृत पंक्ति सभी प्रतियों में समान रूप से इसी पद में मिलती है। विभिन्न परम्परा वाली अनेक प्रतियों के समान साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि उक्त पंक्ति की स्थिति वस्तुतः इसी पद में होनी चाहिए। अतः शबे० के पहले पद में यह अनावश्यक रूप से आ गयी है। यह ध्यान देने की बात है कि शबे० के जिस पद में यह अनावश्यक पुनरावृत्ति मिलती है वह इसके अतिरिक्त केवल बी० में ही मिलता है, अन्य प्रतियों में नहीं। इससे यह स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि शबे० में यह पंक्ति एक बार अपने उपयुक्त स्थल पर आकर पुनः दूसरी बार बीजक के प्रभाव से ही आयी है।

शक० तथा शबे० का संकीर्ण-संबंध

(क) **पुनरुक्ति-साम्य**—इस प्रकार के साम्य का निम्नलिखित उदाहरण शक० तथा शबे० में समान रूप से मिलता है—

१. दा० गौड़ी १२९, नि० गौड़ी १३२ तथा स० ६१-१ की सातवीं पंक्ति का पाठ है: यहु संसार सकल है मैला राम कहैं ते सूचा। शक० गौड़ी ८, शबे० (१) चिता० उप० २२ में उक्त पंक्ति का पाठ है: यह **संसार** सकल **जग** मैला नाम गहे तेहि सूचा। एक बार 'संसार' का उल्लेख हो जाने पर पुनः उसका समानार्थी 'जग' मिलने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं समझ पड़ता। इससे ज्ञात होता है कि शक० और शबे० में यह पुनरुक्ति केवल भ्रम के कारण हुई है। इसके विपरीत दा० नि० स० का पाठ जो ऊपर उद्धृत किया गया है, इस त्रुटि से वंचित रहने के कारण श्रेष्ठ और प्रामाणिक ज्ञात होता है।

(ख) **पुनरावृत्ति-साम्य**—एक पद की दो पंक्तियाँ ऐसी हैं जो शक० और शबे० में दो-दो बार मिलती हैं। तुलनीय शक० मंगल ३ की अंतिम दो पंक्तियाँ—

मंगल कहहि कबीर संत जन गावहीं। गुरु संगति सतलोक सो हंस सिधावहीं॥

तथा उसी के १५वें मंगल की अंतिम दो पंक्तियाँ—

यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं। कहहिं कबीर सतभाव तो लोक सिधावहीं॥

शक० के समान शबे० में भी यह पंक्तियाँ लगभग उसी रूप में दो बार मिलती हैं। तुल० शबे० (४) मंगल ४ की अंतिम पंक्तियाँ—

यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं। कहहिं कबीर समुझाय बहुरि न आवहीं॥

तथा उसी के मंगल १२ की अंतिम दो पंक्तियाँ—

यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं। कहहिं कबीर समुझाय बहुरि नहि आवहीं ।।

इन पंक्तियों की अधिकांश शब्दावली वही है जो शक० की है। इतना ही नहीं, दोनों की अंतिम पंक्ति दोनों में एक-एक स्थल पर और भी मिल जाती है। उदाहरण के लिए तुल० शक० मंगल १ की अंतिम पंक्ति—

पर्म आनंद जब होय तो गुरुहिं मनाइए। कहहिं कबीर सतभाव तो लोक सिधाइए ।।

इसकी दूसरी पंक्ति शब्दशः वही है जो उसके तीसरे और १५वें मंगल में मिलती है। शक० का पहला मंगल शबे० (४) में पाँचवें पद के रूप में मिल जाता है जिसकी अंतिम पंक्तियों का पाठ है—

परमानंदित होय तो गुरुहिं मनाइए। कहहिं कबीर सतभाव तो लोक सिधाइए ।।

इस प्रकार दो पंक्तियाँ दोनों में दो-दो स्थलों पर और एक पंक्ति दोनों में तीन-तीन स्थलों पर मिलती है।

(ग) प्रक्षेप-साम्य—उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. शबे० (१) विरह शब्द १ की अंतिम पंक्तियों का पाठ है—

दास कबीर यह करत बिनती महा पुरुष अब मानिए।
दया कीजै दरस दीजै अपना करि मोहिं जानिए ।।

किन्तु शक० में इनका पाठ है—

धर्मदास जन करत बिनती साहब कबीर अब मानिए।
नैन भरि भरि दरस दीजै निमिष नेह न तोड़िए ।।

जिससे यह सन्देह होता है कि उक्त पद कदाचित् कबीर का नहीं, प्रत्युत उनके तथा-कथित शिष्य धर्मदास का है। उनकी छाप के कुछ अन्य पद भी मिलते हैं।

२. इसी प्रकार का एक अन्य छंद भी 'पंचायतन मंगल' के नाम से दोनों में समान रूप से मिलता है। शक० में यह छंद पृ० ८१ से आरम्भ होता है और शबे० में भाग ४ के पृ० ७ से। छंद लंबा है अतः उसका केवल प्रथम मंगल उद्धृत किया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

सत्य सुकृत सत नाम को आदि मनाइए। सुर्त जोग संतायन निसि दिन ध्याइए ।।
सतगुर चरन मनाय परम पद पाइए। कै दंडवत प्रनाम सुमंगल गाइए ।।

मंगल गावहिं कामिनी जहां शशि (शबे० सत्य) **शीतल स्थान है।**
परम पावन ठांव अबिचल जहं शशि सूरज की खान है ।।
मानिकपुर एक गांव अबिचल जहं न रैनि बिहानि है।
कहै कबीर सो हंस पहुंचे जो सत्य नामहिं जानिहै ।।

'पंचायतन मंगल' में इसी प्रकार के पांच छंद मिलते हैं और उक्त छंद की

अंतिम पंक्ति सभी के अंत में आती है। इसमें सन्देह के लिए पर्याप्त सामग्री वर्तमान है। पद की पहली पंक्ति में 'सत्य सुकृत' तथा 'सुर्त जोग संतायन' का ध्यान करने का उपदेश दिया गया है। जैसा एक बार पहले संकेत किया जा चुका है, कबीरपंथी साहित्य में 'सत्य सुकृत', 'आदि अदली', 'पुरुष मुनीन्द्र', 'सुरति जोग संतायन' आदि विभिन्न शब्द कबीर के ही बोधक हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह रचना पंथ के किसी परिवर्ती संत की है जिसमें उसने अपने आदि गुरु कबीर के प्रति यह विनयपूर्ण मंगल पद गाया है। शक० तथा शबे० में इस प्रकार के संदिग्ध पद समान रूप से मिलते हैं, अतः दोनों में संकीर्ण-संबंध मानना पड़ेगा।

३. शक० तथा शबे० में समान रूप से कई पद ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें चौका-आरती, पान-परवाना, नरियर-मोरन आदि अनेक परवर्ती साम्प्रदायिक कृत्यों का विधान है। उदाहरण के लिए तुल० शक० मंगल ६ और शबे० (४) मंगल ४—

मंगल अगम अनूप संत जन गावहीं।
उपजत प्रेम बिलास तौ आनंद बधावहीं॥
प्रथमहिं मंदिर झराय के चंदन लिपावहीं।
बहु बिधि आरति साजि के (शबे० मोतियन थार भराय के) **कलश धरावहीं।**
सत गुर बिप्र बुलाय के लग्न सुधावहीं।
सजन कुटुंब परिवार सुमंगल गावहीं।
हीरा जीव (शबे० हंस) **बैठाय के शब्द सुनावहीं॥**
तेहि कुल उपजे दास परम पद पावहीं।
मिट्यो करम को अंक अगम गम तब भयो॥
पायौ सुरत सनेह (शबे० सूरति सोहं) **तो संसय सब गयो॥**
भक्ति हेतु चित लाय कै आरति उर धरे।
तजि पाखंड अभिमान तो दुरमति परिहरे॥
[शबे० में अतिरिक्त : **तन मन धन और प्रान निछावरि कीजिए।**
त्रिगुन फंद निरवारि पानि निज लीजिए॥]
मंगल कहंहि कबीर भाग सो पावहीं।
सतगुर के परसंग हंस चलि जावहीं॥
(शबे० **कहंहि कबीर समुझाय बहुरि नहिं आवहीं।**)
यह मंगल सतलोक के हंसा गावहीं॥

इसी प्रकार शक० मंगल १ तथा शबे० (४) मंगल ५ में भी यही क्रिया-कलाप और अधिक विस्तार से गिनाये गये हैं। इस पद का पाठ है—

पूरणमासी आदि सुमंगल गाइए। सतगुर के पद परस परम पद पाइए ।।
प्रथमहिं मंदिर झराइ के चंदन लिपाइए। नूतन बस्तर आनि के चंदवा तनाइए ।।
पल्लव सहित सो कलशा तहां धराइए। पांच जोति के दीप सो तहां बराइए ।।
गज मोतियन के चौक सो तहां पुराइए। तापर नरियर धोती मिष्ठान्न चढ़ाइए ।।
तब सतगुर के हेतु तो आसन बिछाइए। गुर के चरण पखार के आसन बिठाइए।।
केरा और कपूर सो बहु बिधि लाइए। अष्ट सुगंध सुपारी सो पान चढ़ाइए ।।
जल दल शील सुधारि के जोति बराइए। ताल मृदंग बजाइ के मंगल गाइए ।।
साधु संत मिलि आइ के आरति उतारिए। आरति करि पुनि नरियर तहवां मुराइए।।
पुरुष को भोग लगाइ सखा मिलि पाइए। जुग जुग छुधा बुझाय तो पाय अघाइए ।।
परम आनंद जो होइ तो गुरुहिं मनाइए। कहंहि कबीर सतभाव तो लोक सिधाइए ।।

इस पद में कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम उद्धृत पद की तीसरी पंक्ति दूसरे में भी तीसरी पंक्ति के रूप में मिलती है। इसके अतिरिक्त इस पद में 'पूरनमासी' शब्द भी विचारणीय है। यह पूर्णिमा कौन सी है—इसका उत्तर कबीरपंथी साहित्य में मिल जाता है। कबीरपंथियों में कबीर के जन्म-दिवस के सम्बन्ध में एक चौपदी प्रचलित है—

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए ।।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए ।।

इस प्रसिद्धि के अनुसार यह सिद्ध होता है कि कबीर का जन्म सं० १४५५ वि० में ज्येष्ठ पूर्णिमा चंद्रवार को हुआ था। कबीरपंथियों में इस तिथि के संबंध में दो मत नहीं हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस पूर्णिमा को शुभ दिन मान कर यह मंगल गाया गया है वह वास्तव में कबीर का जन्म-दिवस है। बरसायत का उत्सव अब भी कबीरपंथियों में बड़े धूमधाम से मनाया जाता है जिसमें इस प्रकार के मंगल मुख्य रूप से गाये जाते हैं। प्रश्न यह उठता है कि कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में क्या इन मंगल-गीतों को सम्मिलित किया जा सकता है ? क्या कबीर या कबीर की कोटि का कोई अन्य महापुरुष अपने जन्म-दिवस के गीत बना कर गायेगा ? कबीर की अन्य रचनाओं को दृष्टि में रखते हुए यह प्रवृत्ति नितांत अस्वाभाविक लगती है।

एक अन्य उदाहरण भी कम रोचक नहीं है। शक० में पृ० ६० पर नारियल मोरने का एक शब्द (=पद) दिया हुआ है जो शबे० (४) में 'राग गारी' के

अन्तर्गत तीसरे शब्द के रूप में मिलता है। पद इस प्रकार है—

बनजारिन बिनती करै सुन साजना। नरियर लीन्हों हाथ संत सुन साजना ॥
बिना बीज को वृक्ष है सुन साजना। बिनु धरती अंकूर संत सुन साजना ॥
ताको मूल पताल है सुन० नरियर फल शुभ जान (शबे० नरियर सीस अकास)।
शक० में अतिरिक्त : **नरियल लायो भेंट हो सुन० हंस उधारण काज संत०।**
शबे० में अतिरिक्त : **बिना शब्द जिनि मोरहू सुन० जीव एकोतर हानि संत०।**
गुर के शब्द ले मोरहू सुन० हंस उतारो पार (शबे० फूटे जम को कपार)।
सखियां पांच सहेलरी सुन० नौ नारी विस्तार संत०।
कहैं कबीर बघेल सों सुन० रानी इंदुमती (शबे० इंद्रमती) **सरदार संत सुन० ॥**

कबीरपंथ में 'चौका आरती' को बड़ा महत्व दिया जाता है। कदाचित् इससे बढ़ कर अन्य कोई धार्मिक कृत्य उक्त पंथ में नहीं है। इसी के अन्तर्गत एक कृत्य नारियल मोड़ने (=तोड़ने) का भी होता है, और उक्त मंगल उसी अवसर पर गाये जाने के लिए है। कबीरपंथ में इस मंगल का बड़ा आध्यात्मिक महत्व है और कबीरपंथियों के समक्ष इसकी गणना कबीर की अप्रामाणिक रचनाओं में करना बड़े साहस का कार्य है। उनके अनुसार बनजारिन जीवात्मा का प्रतीक है और नारियल ब्रह्मांड का। जिस प्रकार नारियल तोड़ कर गरी अलग कर लेते हैं उसी प्रकार जड़-चेतन की ग्रंथि तोड़ कर जीव को विषय-वासनाओं से विमुख करना चाहिए, जिससे वह पाँच तत्वों, पचीस प्रकृतियों तथा नौ नाड़ियों के बंधन से—अर्थात् पार्थिव शरीर के बंधन से—मुक्त हो जाय।[1]

किन्तु यहाँ आध्यात्मिक गंभीरता का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या कबीर ने अपने जीवन-काल में कोई संप्रदाय चलाकर चौका-आरती आदि के लिए नियम-विधान की सृष्टि की थी और उक्त अवसरों पर गाये जाने के लिए कुछ विशिष्ट पदों की रचना की थी या नहीं? समस्या विचारणीय है। अंतिम पंक्ति में बघेल और रानी इंद्रमती के उल्लेख से सन्देह के लिए और भी अधिक सामग्री मिल जाती है। यह इन्द्रमती कौन है, इसका ठीक पता नहीं लगता। वर्त्तमान रीवाँ-नरेश के भूतपूर्व पर्सनल असिस्टेंट श्री रमाशंकर मिश्र से पूछने पर ज्ञात हुआ है कि रीवाँ की राज-वंशावली में इन्द्रमती नाम की कोई महारानी नहीं मिलती। रीवाँ गज़ेटियर में कबीर के समकालीन नरेशों का निम्नलिखित विव-

---

१. दे० महन्त वंशूदास जी रचित तथा स्वसम्वेद कार्यालय, सीयाबाग द्वारा प्रकाशित 'चौका विधान', पृ० २४-२९।

रण मिलता है—

वंश-क्रम	समय	नरेश	रानियाँ
१५	अज्ञात	नरहरि देव	महारानी रतनकुँवरि
१६	सन् १४७० से ९५ ई०	भीरदेव या भैरदेव	रणदेवी, दूसरी का नाम अज्ञात
१७	१४९५-१५०० ई०	सालिवाहन	कनककुँवरि
१८	१५००-१५४० ई०	वीरसिंह देव	सूर्यकुँवरि
१९	१५४०-१५५५ ई०	बीरभान	रतनकुँवरि
२०	१५५५-१५९२ ई०	रामचन्द्र या रामसिंह	अज्ञात

ज्ञात होता है कि इन्द्रमती बघेल-वंश के किसी अन्य छोटे-मोटे राजा की स्त्री थी, जिसका उल्लेख उक्त पद में हुआ है। कबीरपंथी साहित्य में गिरिनार के चंद्रविजय नामक राजा की स्त्री इन्द्रमती को ज्ञानी (कबीरदास का द्वापर-युगीन अवतार) द्वारा पान-परवाना देने का वर्णन मिलता है (उदाहरण के लिए दे० अनुराग-सागर, सीयाबाग, पृ० ५२-६२)। संभव है, यहाँ भी उसी इन्द्रमती की ओर संकेत हो। जो भी हो, इसे कबीर की रचना निरापद रूप से नहीं माना जा सकता।

नि० शक० का संकीर्ण-सम्बन्ध

(क) प्रक्षेप-साम्य—दो पद ऐसे हैं जो शक० में धर्मदास के नाम से मिलते हैं और वे नि० में भी ज्यों के त्यों मिल जाते हैं—अंतर केवल इतना है कि नि० में रचयिता के रूप में कबीर की छाप मिलती है। इनमें से प्रथम पद शक० में प्रभाती राग के अन्तर्गत ग्यारहवीं संख्या पर मिलता है। वहाँ उसकी अन्तिम पंक्ति का पाठ है—

धर्मदास को बीनती अबिगत सुनि लीजे।
दरसन दीजे पट खोलि कै अब बिलंब न कोजे॥

नि० में उक्त पद बिलावल १० में मिलता है, जहाँ इन पंक्तियों का पाठ है—

दास कबीर की बीनती अबिगत सुनि लीजे।
आड़ा परदा खोलि के मोहिं दरसन दीजे॥

इसी प्रकार नि० तथा शक० दोनों में आरती के छठे पद की अंतिम पंक्ति

भी विचारणीय है। शक० में उसका पाठ है : अबिगत रूप अधर परकास। आरति गावै **कबीर धर्मदास** ।। नि० में उत्तरार्द्ध का पाठ है : आरती गावै **कबीरा दास**। शक० में धर्मदास का नाम मिलने से यह सन्देह उत्पन्न होता है कि उक्त पदों के मूल रचयिता कदाचित् वही थे और कबीर के शिष्य होने के नाते किसी प्रति में कबीर की वाणी के साथ ही साथ उनके भी कुछ पद संकलित कर लिए गये। आगे चल कर शक० में उन्हें ज्यों का त्यों ही रक्खा गया और नि० में उनके नाम के स्थान पर कबीर की छाप लगा दी गयी।

इसी प्रकार का एक अन्य पद भी है जिसमें संदेह के लिए सामग्री वर्तमान है। नि० आसावरी १२६ तथा शक० 'कबीर-गोरख सम्बाद' ३ का पाठ है—

संतो मैं अबिगत सूं चलि आया।
मेरा मरम किनहूं नहिं पाया ।। टेक ।।
नां मेरे जनम न गरभ बसेरा बालक ह्वै दिखलाया।
कासी पुरी जंगल (शक० जलज) **विच डेरा तहैं जुलाहै पाया।**
[शक० में अतिरिक्त : **मातु पिता मेरे कछु नाहीं ना मेरे गृहिणी दासी।**
जुलहा के सुत आन कहाए जगत करत है हांसी ।।]
ना मेरे धरनि गगन पुनि नांहीं ऐसा अगम अपारा।
जोति स्वरूप निरंजन देवा (शक० सत्य स्वरूप नाम साहब का) **सो है नाम हमारा ।।**
[शक० में अतिरिक्त :
अधर दीप जहां गगन गुफा में तहां निज बस्तु हमारा।
जोत स्वरूपी अलख निरंजन सो जपै नाम हमारा ।।]
ना मेरै रक्त हाड़ नहिं चामा एकै नाम उपासी।
अपरंपार पार परसोत्तम (शक० तारण तिरण अभै पद दाता)
कहै कबीर अबिनासी ।।

इसमें कबीर द्वारा 'अपने मुख तें आपनि करनी' का वर्णन है। कबीर के जन्म आदि से संबद्ध तथ्य वही हैं जो कबीरपंथ में अथवा साधारण जनता में प्रचलित हैं, किन्तु जिस शैली में यहाँ उनका उल्लेख हुआ है उससे यही ध्वनि निकलती है कि यह कबीरपंथ के किसी परवर्ती संत की रचना है जिसमें उसने अपने सम्प्रदाय के मूल प्रेरक की जीवन-संबंधी घटनाओं को अतिरंजित रूप देकर अंत में उसी की छाप लगा दी है जिससे उसकी सत्यता में किसी को किंचिन्मात्र भी सन्देह न रह जाय और उस विवाद का सदैव के लिए अन्त हो

जाय जो उनके जन्म को लेकर उठाया जाता है। शक० में 'जलज' का पाठ-परिवर्त्तन उस सांप्रदायिक विश्वास की ओर संकेत करता है जिसके अनुसार कबीर का आविर्भाव लहरतारा में कमल के पुष्प पर ज्योतिष्पुंज के रूप में हुआ था। पद की अंतिम पंक्ति में कबीर के लिए जो विशेषण आये हैं, वे भी कम विचारणीय नहीं हैं। कबीर के समान कोई महात्मा अपने लिए इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करे—यह बात बड़ी अस्वाभाविक लगती है।

संदिग्ध संकीर्ण-संबंध के समुच्चय

ऊपर जिन-जिन प्रतियों में पारस्परिक संकीर्ण-संबंध सिद्ध किया गया है केवल उन समुच्चयों में आने वाले छंद निश्चित रूप से प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। जिन दो या दो से अधिक प्रतियों में किसी भी प्रकार का विकृति-साम्य नहीं मिल सका है केवल उन्हीं-उन्हीं में मिलने वाले पाठ तथा पद पूर्ण रूप से प्रामाणिक माने जा सकते हैं। इस प्रकार के स्वीकृत समुच्चयों का विस्तृत विवरण अगले अध्याय में मिलेगा। इन समुच्चयों में आयी हुई विभिन्न प्रतियों में ऐसे कोई विकृति-साम्य नहीं मिलते जिनसे उनमें किसी भी प्रकार का संकीर्ण-संबंध स्थापित किया जा सके। दा० नि० बी०, दा० नि० गु०, दा० नि० गु० स०, दा० नि० स० शबे० तथा नि० शबे० में एकाध उल्लेखनीय विकृति-साम्य मिल जाते हैं, किन्तु उनके साक्ष्य इतने निर्बल पड़ते हैं कि उन्हें प्रायः नगण्य कहा जा सकता है। फिर भी यहाँ उनका निर्देश किया जाना आवश्यक है।

(क) दा० नि० बी०—एक पंक्ति ऐसी है जो दा० नि० बी० तीनों के पदों में दो-दो बार मिलती है। दा० आसावरी ४० तथा नि० आसावरी ३५ की तीसरी तथा चौथी पंक्तियों का पाठ है—

जौ जारै तौ होय भसम तन रहत किरिमि ह्वै जाई।
कांचै कुंभ उदिक भरि राख्यौ तिनकी कौन बड़ाई॥

उक्त पद बी० में भी ७३वें शब्द के रूप में मिलता है, जिसमें उक्त दोनों पंक्तियों का पाठ है—

जारे देह भसम ह्वै जाई गाड़े माटी खाई।
कांचें कुंभ उदक ज्यौं भरिया तन की यही बड़ाई॥

उक्त दोनों पंक्तियों का पाठ दा० नि० केदारौ १२-३, ४ तथा बी० शब्द ७२-५, ६ से तुलनीय है जो इस प्रकार हैं—

जौ जारे तौ होय भसम तन (बी० भसम धुरि) **रहत किरम जल खाई।**
सूकर स्वांन काग को भखिन (बी० भोजन) **तामैं कहा भलाई।** दोनों

पदों की दूसरी पंक्ति में कुछ भिन्नता है किन्तु पहली पंक्ति का पाठ दोनों में प्रायः एक ही है, अन्तर केवल शाब्दिक है। पाठ-निर्धारण में पुनरावृत्तियों की समस्या विचारणीय हो जाती है। प्रस्तुत उदाहरण में एक बात और भी विचारणीय है। उक्त दोनों पद गु० में भी क्रमशः सोरठि और केदारा राग के अन्तर्गत मिलते हैं, किन्तु दूसरे में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं मिलतीं, केवल एक स्थान पर अर्थात् सोरठि २ में मिलती हैं जहाँ इनका पाठ है—

जब जरीऐ तब होइ भसम तन रहै किरम दल खाई।
काची गागरि नीरु परतु है इआ तन की इहै बड़ाई॥

गु० में इन पंक्तियों के एक ही स्थल पर मिलने से यह सन्देह होता है कि दा० नि० बी० में वे कदाचित् भ्रम से ही दो बार आ गयी हैं। किंतु यदि इसे भूल स्वीकार कर लिया जाय तो भी जितना अंश तीनों में समान रूप से मिलता है उसकी तुलना में केवल एक प्रमाण दोनों में संकीर्ण-संबंध स्थापित करने के लिए अपर्याप्त माना जायगा। यह भी सम्भव है कि मूल प्रति में उक्त पंक्ति उसी प्रकार से दो स्थलों पर रही हो जैसा कि वह दा० नि० बी० में मिलती है, क्योंकि दोनों पदों में शरीर की नश्वरता का प्रसंग है और उक्त पंक्ति, जो उस प्रसंग के अनुकूल एक स्वाभाविक उक्ति है, दोनों स्थलों पर आ सकती है।

(ख) दा० नि० गु०—दा० नि० गु० में एक शब्द ऐसा मिलता है जो भाषा की दृष्टि से कबीर की रचना के लिए सन्देहास्पद है। दा० १२-४६, नि० १६-५४ तथा गु० १६६ की दूसरी पंक्ति का पाठ है: तब कुल किसका **लाजिसी** जब ले धरहि मसान। 'लाजिसी' शब्द राजस्थानी का है और कबीर की मूल रचना में यह शब्द खटकने वाला है। जैसा कि प्रतियों के विस्तृत विवरण से ज्ञात होता है, दा० नि० गु० तीनों पश्चिमी प्रदेशों में वहाँ के ही निवासियों द्वारा लिपिबद्ध हुई थीं। प्रतियों का आदर्श सामने रहते हुए भी देश-काल के प्रभाव से वंचित रहना किसी भी प्रतिलिपिकार के लिए असम्भव हो जाता है। तीनों प्रतियों में 'लाजिसी' शब्द की स्थिति इसी प्रभाव के परिणाम-स्वरूप मानी जा सकती है और यह भी असम्भव नहीं कि तीनों में यह शब्द पृथक्-पृथक् सूत्रों से आया हो।

दा० नि० गु० में कबीर की वाणी का बहुत बड़ा अंश समान रूप से मिलता है। उस परिमाण की तुलना में केवल एक विकृति-साम्य उनमें संकीर्ण-संबंध स्थापित करने के लिए अत्यन्त अपर्याप्त है।

इस प्रसंग में एक अन्य बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। दा० बिलावल ४, नि० बिलावल ३, गु० गौंड ४ में, जिसकी प्रारंभिक पंक्ति है: 'आहि

मेरे ठाकुर तुम्हरा जोर, काजी बकिबो हस्ती तोर ॥' (दे० प्रस्तुत पुस्तक का पद २३), उस घटना की ओर संकेत है जब कि कबीर को हाथी द्वारा कुचलवाये जाने का आदेश दिया गया था, किन्तु उन्हें किसी प्रकार की क्षति नहीं हुई थी। इसी प्रकार दा० भैरू' १७, नि० भैरूं १६ तथा गु० भैरउ १८ (दे० प्रस्तुत पुस्तक का पद २४) में उन्हें गंगा में डुबाये जाने के असफल प्रयत्न का वर्णन मिलता है। योग तथा अध्यात्म की असाधारण शक्तियों तथा सिद्धियों के प्रति पूर्ण आस्था न रखने वालों के समक्ष कबीर के जीवन की उक्त दोनों घटनाओं की सत्यता प्रतिपादित करना कठिनाइयों से ख़ाली नहीं और इसीलिए उपर्युक्त तीनों प्रतियों के समुच्चय की प्रामाणिकता भी संदेह के परे नहीं मानी जा सकती जिसमें कि इन घटनाओं का उल्लेख मिलता है। किंतु कबीर जैसे महात्मा के लिए इस प्रकार के कार्यव्यापार नितांत असंभव भी नहीं माने जा सकते; क्योंकि यदि उनमें इतना आत्मबल न होता तो तत्कालीन निरंकुश यावनी शासन में रहते हुए भी ऐसा देशव्यापी प्रभाव उत्पन्न करना सहज काम नहीं था। फिर इन पदों का आध्यात्मिक अर्थ भी है और संतों की वाणी में उसी अर्थ की अपेक्षा अधिक करनी चाहिए।

(ग) दा० नि० गु० स०—दा० नि० गु० स० में भी दो सन्देहास्पद उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनके आधार पर चारों के संकीर्ण-संबंध की कल्पना की जा सकती है। एक सन्देहास्पद शब्द 'अहरखि' है जो दा० गौड़ी १०५, नि० बिहंगड़ौ १४, गु० आसा १६ और स० ८८-१ में मिलता है। इस शब्द की विकृति के संबंध में विस्तार-पूर्वक विचार अन्यत्र किया गया है। यहाँ केवल यह संकेत कर देना है कि यदि यह शब्द निश्चित रूप से विकृत मान लिया जाय तो इसका प्रभाव उक्त सभी प्रतियों के संकीर्ण-संबंध पर भी पड़ेगा जिनमें यह शब्द मिलता है।

दूसरा उदाहरण एक पंक्ति की पुनरावृत्ति का है। दा० गौड़ी ६२, नि० गौड़ी ६५, गु० विभास० ४ तथा स० ७६-१ की अंतिम पंक्ति का पाठ है : कहै कबीर भिसति छिटकाई (गु० भिसति ते चूका) दोजग ही मन मांनां। यही पंक्ति एक अन्य पद के अन्त में भी आती है, जो दा० आसावरी ४५, नि० आसावरी ४८, गु० आसा १७ और स० ७६-२ के रूप में मिलता है। वहाँ भी इसका पाठ है : कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मांनां। किन्तु कबीर-वाणी के इतने बड़े परिमाण में किसी एक पंक्ति का प्रसंगानुसार दो बार मिल जाना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

(घ) दा० नि० स० शबे०—इसी प्रकार की एक पुनरावृत्ति दा० नि० स०

शबे० में भी मिलती है। दा० नि० गौड़ी २, शबे० (२) प्रेम ६ तथा स० ३०-१ की प्रथम पंक्ति का पाठ है : बहुत दिनन तें प्रीतम आए। भाग बड़े घर बैठें पाए॥ यह पंक्ति थोड़े हेर-फेर के साथ एक अन्य पद में भी मिलती है; तुल० दा० नि० गौड़ी ३, शबे० (२) प्रेम १६ तथा स० ३०-२ : बहुत दिनन के बिछुरे पाए। भाग बड़े घर बैठें आए॥ किन्तु किसी भी कवि की रचना में प्रसंगानुकूल इस प्रकार की साधारण पुनरावृत्तियाँ हो सकती हैं। उन्हें दोनों स्थलों पर प्रामाणिक रूप से स्वीकार कर लेने में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती और न किसी प्रकार की अस्वाभाविकता ही खटकती है। इस उदाहरण में तो दोनों पद अधिकांश प्रतियों में आसपास ही मिलते हैं। इतने निकट मिलने वाले पदों में कोई प्रतिलिपिकार भूल से कोई पंक्ति दो बार नहीं लिख सकता, अतः यह पंक्तियाँ मूल प्रति में भी ज्यों की त्यों दो स्थलों पर आयी हुई ज्ञात होती हैं।

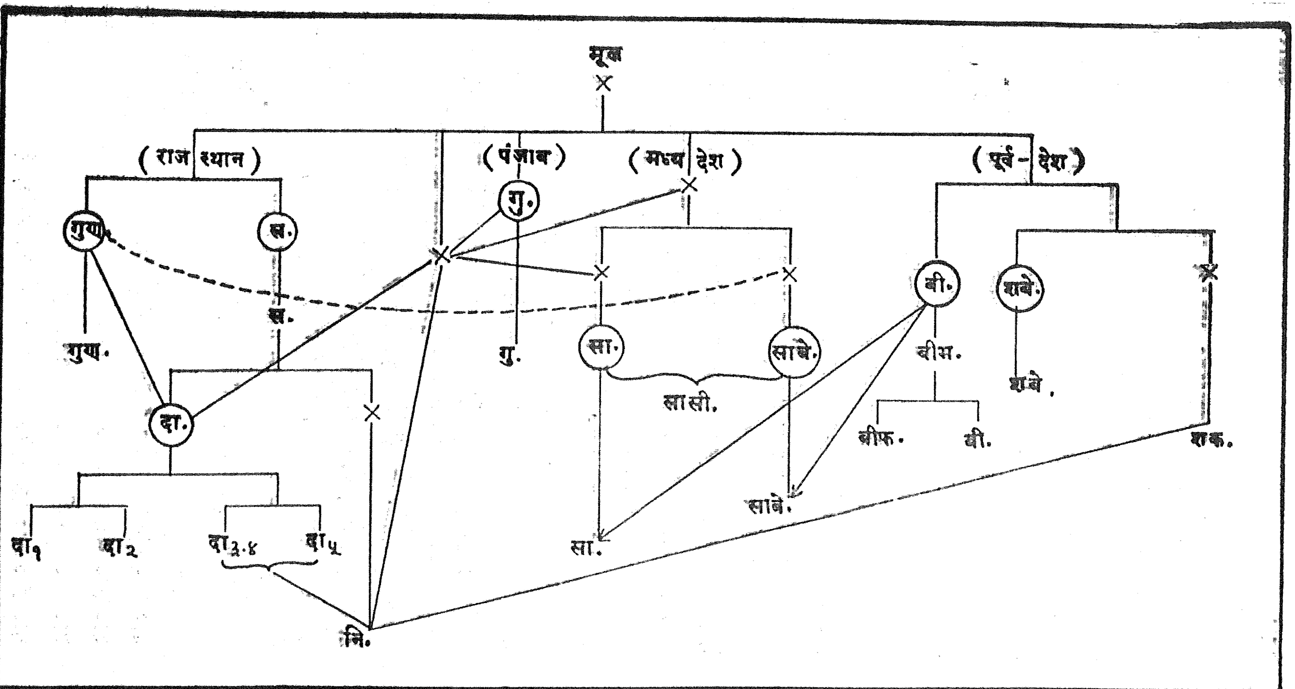
(ङ) **नि० शबे०**—इस समुच्चय में मिलने वाले दो-एक पद संदिग्ध ज्ञात होते हैं; किंतु उक्त दोनों प्रतियों में कोई विकृति-साम्य न मिलने के कारण उनमें समान रूप से मिलने वाले किसी पद का बहिष्कार नहीं किया जा सकता।

अगले पृष्ठ पर पाठ-परम्परा का एक कोष्ठक दिया जा रहा है जिससे संकीर्ण-सम्बन्ध का पूर्वापर क्रम अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

संकेत-विवृति

गु०=श्री गुरु ग्रंथ साहिब
गुण०=गुणगंजनामा (जगन्नाथदास-संकलित)
दा०=दादूपंथी प्रति (पंचवाणी-परंपरा)
नि०=निरंजनी संप्रदाय की प्रति
बी०=बीजक (सामान्य परंपरा का)
बीफ०=बीजक (फतुहा परंपरा का)
बीभ०=बीजक (भगताही शाखा या भगवान साहब का)
शक०=शब्दावली (कबीरचौरा से प्रकाशित)
शबे०=शब्दावली (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित)
स०=सबंगी (रज्जबदास-संकलित)
सा०=साखी-प्रति (१११ अंगों की)
साबे०=साखी-ग्रन्थ (बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित)
सासी०=साखी-ग्रन्थ (सीयाबाग, बड़ौदा से प्रकाशित)
O =अनुमानित पूर्व-स्थिति।

कबीर-वाणी की पाठ-परंपरा



§५ : पाठ-निर्णय और प्रस्तुत संकलन

संकीर्ण-संबंध की समस्या हल हो जाने पर पाठ-निर्णय की समस्या का बहुत कुछ अंश अपने आप सुलझ जाता है। जो पद, साखी अथवा रमैनी केवल उन प्रतियों में मिलती हैं जिनमें परस्पर संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो चुका है, उनको (उनकी प्रामाणिकता नितान्त रूप से निश्चित न होने के कारण) मूल वाणी के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता; और इसके विपरीत जिन दो या दो से अधिक प्रतियों में विकृति-साम्य नहीं मिलता उनमें मिलने वाली रचनाओं को अप्रामाणिक नहीं माना जा सकता। प्रामाणिक-अप्रामाणिक रचनाओं का यह विभेद भलीभाँति समझ लेने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ केवल दा० गु० अथवा नि० गु० समुच्चयों में मिलने वाली रचनाएँ प्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि पहले उनमें संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो चुका है। किन्तु दा० नि० गु० तीनों में मिलने वाली रचनाएँ अप्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि इस समुच्चय में विकृति-साम्य के ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनके आधार पर संकीर्ण-संबंध स्थापित किया जा सके। इसी प्रकार दा० नि० सा० सासी० में मिलने वाली साखियाँ निश्चित रूप से प्रमामाणिक कोटि में नहीं आ सकतीं, किन्तु जो उक्त प्रतियों में मिलने के साथ ही साबे० में भी मिलती हैं वे अप्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि दा० नि० सा० साबे० सासी० के समुच्चय में विकृति-साम्य नहीं मिलते और दा० नि० सा० सासी० में मिलते हैं।

अतः प्रस्तुत पुस्तक में केवल उन-उन पदों, रमैनियों और साखियों को संकलित कर उनके विषय में आवश्यक सम्पादन-सामग्री दी गयी है जो ऐसे समुच्चयों में आते हैं जिनकी प्रतियों में परस्पर किसी प्रकार का विकृति-साम्य नहीं मिलता है, और इसीलिए जो परस्पर संकीर्ण-संबंध से सम्बद्ध न होकर केवल मूल पाठ के द्वारा परस्पर संबद्ध हैं। ऐसे विभिन्न समुच्चयों में, जिनमें संकीर्ण-संबंध नहीं प्रमाणित होता है, कबीर के केवल निम्नलिखित छंद आते हैं। स्थल-निर्देश सम्पादित पाठ के अनुसार किया जा रहा है।

पद—

दा० नि० गु० स० शबे० शक० से पद सं० ५८		=१ पद
दा० नि० गु० स० शबे०	१००	=१ "
दा० नि० गु० बी० शबे०	४९, ६२	=२ "
दा० नि० बी० स० शबे०	१०८, १०९, ११०, १७९	=४ "

दा० नि० गु० बी० शक०	१९८	=१ पद
दा० नि० गु० शबे० शक०	९९	=१ "
दा० नि० गु० स० शक०	३७	=१ "
दा० नि० गु०बी० स०	२७, ४८, ६०, ६१, १११, १७७, १७८	=७ "
दा० नि० गु० स०	८, २९, ५०, ५१, ५२, ६३, ६४; ६५,	
	१०१, १०६, १०७, ११२, से ११८ तक,	
	१५३, १५४, १५९, १६६, १६७, १६८,	
	१७१ से १७४ तक, १८३, १८४, १८५	=३१ "
दा० नि० बी० स०	२८, ५३, ६६, १०२, ११९ से १२३ तक,	
	१६०, १६१, १६९, १७०, १८०, १८१, १८२	=१६ "
दा० नि० गु० बी०	६७, ६८, ६९, ७०, १२५, १९९, २००,	=७ "
		और चौंतीसी रमैनी
दा० नि० गु० शक०	२६, १२६, १२७	=३ "
दा० नि० गु० शबे०	५, ७१, ७२, ७३	=४ "
दा० नि० स० शबे०	६, ७, ३६, १२४	=४ "
दा० नि० शबे० शक०	७५, ९१	=२ "
दा० नि० स० शक०	९८	=१ "
दा० नि० गु०	९ से १२ तक, २० से २५ तक, ३०, ३१, ३२,	
	३८ से ४३ तक, ५४ से ५७ तक, ७८ से ८८	
	तक, १२८ से १३५ तक, १५५, १५६, १६२,	
	१८६ से १९२ तक	=५४"
दा० नि० शबे०	१३, ७६, १४२, १७५, १९३, १९४	=६ "
दा० नि० शक०	१४१	=१ "
दा० नि० बी०	४७, ८९, १०३, १३६ से १४० तक	=८ "
		तथा २० रमैनियाँ
नि० शबे० शक०	१४, ३३, ५९, १०४, १४३, १६४	=६ "
नि० गु० शबे०	७४	=१ "
नि० बी० शबे०	९०, १५२, १५७, १६३	=४ "
नि० स० शक०	१७६	=१ "
नि० शबे०	१ से ४ तक, १५ से १८ तक, ३४, ३५, ९२ से	
	९६ तक, १०५, १४४ से १४९ तक, १५८,	

	१६५, १६५	=२५ ,,
दा० बी०	१५१	=१ ,,
गु० बी०	४६, ६७, १५०, १६७	=४ ,,
गु० शबे०	१६, ४४, ४५	=३ ,,

कुल दो सौ पद, एक चौंतीसी रमैनी तथा बीस रमैनियाँ

साखी—

दा० नि० सा० साबे० सासी० गु० बी० स० गुण० से ४-१ =१ साखी

दा० नि० सा० साबे० सासी स० बी० गुण० १५-१, १५-२, ३१-१ =३ ,,

दा० नि० सा० साबे० सासी० स० गु० गुण० ४-२, १५-३, १५-४, २५-१, ३०-१, ३२-१, ३२-२, ३३-१ =८ ,,

दा० नि० सा० साबे० सासी० गु० बी० गुण० १८-१ =१ ,,

दा० नि० सा० साबे० स० गु० बी० गुण० २-१, १५-५, २१-१ =३ ,,

दा० नि० सा० साबे० सासी० स० गु० बी० १६-१ =१ ,,

दा० नि० सा० साबे० सासी० स० गुण० १-२, १-३, २-१५, १६, ४-१६, २०, ७-१, २, ६-१, १२-१, १४-६, ७, १५-४०, ४१, १६-१६, १७, २२-६ २५-४, ५, ६, ७, २६-६, ७, ३०-२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ६, ११, ३१-४, ५, ३३-३, ४, ५ =३७ ,,

दा० नि० सा० साबे० सासी० बी० गुण० १-६, १५-६ =२ ,,

दा० नि० सा० साबे० सासी० गु० गुण० २-३, ३-६, ६-२, १४-१, २, १५-२०, २१, १६-११, १६-१२, १८-२, २४-१, २६-१ =१२ ,,

दा० नि० साबे० सासी० स० गु० गुण० १४-५ =१ ,,

दा० सा० साबे० सासी० गु० बी० गुण० १६-१ =१ ,,

दा० नि० सा० साबे० गु० बी० गुण० १-५ =१ ,,

दा० नि० सा० साबे० सासी० स० गु० ३-१, ४-३, ५-१, ११-१,

	१५-१८, १६-६, २१-२, ३, २५-२, २६-१, २	=११ साखी
दा० नि० सा० साबे० सासी० गु० बी०	१५-७, ३१-३	=२ ,,
दा० नि० सा० साबे० सासी० स० बी०	५-२, २२-१	=२ ,,
दा० नि० सा० साबे० सासी० स०	१-१, २-१०, १७, ४-२१, ५-३, ५-५ से १० तक, ६-४, ६-५, ६, ११-७, ८, १२-२, ३, १४-८, १५-३६, ३७, ३८, १६-२५, १६-११ से १४ तक, २१-१७ से २१ तक, २२-७, ८, २३-२, २५-१०, ११, २६-८, ६, २६-५, ३०-१२ से, १५ तक, ३१-६, ७, ८, ३२-३, ३३-७, ८, ३४-१	=५१ ,,
दा० नि० सा० साबे० सासी० गुण०	१-१३ से १८ तक, २-१८ से २६ तक, ३-७ से १२ तक, ४-२२ से ३० तक, ६-५ से ६ तक, ७-३, ४, ६-७ से १४ तक, १०-८ से १० तक, ११-६, १०, १४-१० से २३ तक, १५-४२ से ४४ तक, १५-४६ से ५० तक, १६-१८ से २३ तक, १७-४, ५, ६, १८-५, २२-१२, २३-३, २४-११ से १४ तक, २५-१२, १३, २६-११, २६-६, ७, ३०-१८, ३१-१२ से १५ तक, ३२-४ से ७ तक	=१०४ ,,
दा० नि० सा० साबे० सासी० गु०	१-६, १०, ११, २-४, ५,	

	३-२, ३, ४-९, १०, ६-१, ७-१०, ८-१, २, ३, ९-३, ४, १०-७, १५-२२ से २७ तक, १९-२ से ४ तक, १९-७ से ९ तक, २१-४, २५-३, २९-८	=३२ साखी
दा० नि० सा० साबे० सासी० बी०	२-८, ९, २-११, ४-१६, १०-३, ४, ५, १५-६, १०, ११, १६-७, २१-१४, १६, २४-७, २५-८, ९, २८-६, २९-३	=१८ ,,
दा० नि० सा० सासी० स० गु०	४-४, ६, १५-१९, १५-२८, १८-३, २८-१	=६ ,,
दा० नि० साबे० सासी० गु० बी०	१५-८	=१ ,,
दा० नि० सा० साबे० गु० बी०	१६-२, २०-४, २४-२	=३ ,,
दा० नि० सा० साबे० बी० गुण०	२-२, २-७, ४-१५, १०-१, २	=५ ,
दा० सा० साबे० सासी० बी० गुण०	१-७	=१ ,,
दा० सा० साबे० सासी० गु० गुण०	२४-३	=१ ,,
दा० नि० सा० सासी० स० गुण०	४-४०, ४१, ४२, १२-४, ५, १५-७७, ७८, १६-२७, २०-९, २१-३३, २२-९, १०, ११, २४-१७, २६-१०, २७-४, २८-७, २९-२१, ३०-१९, २०, ३१-२५, ३२-१५, १६	=२३ ,,
दा० नि० सा० सासी० बी० गुण०	२-१३, ११-३,	=२ ,,
दा० नि० सा० सासी० गु० गुण०	४-५, ७, ८, १५-३०, ३१, १६-१३, २०-१ २१-७, २३-१, ३३-२	=१० ,,

नि० सा० साबे० सासी० गु० गुग्र०	२४-४	=१	,,
सा० साबे० सासी० गु० बी० गुग्र०	२४-६	=१	,,
दा० नि० सा० साबे० स० बी०	२२-२	=१	,,
दा० नि० सा० गु० बी० गुग्र०	१७-१	=१	,,
दा० नि० सा० साबे० सासी०	१-१९ से ३४ तक, २-३० से ४५ तक, ३-१३ से २३ तक, ४-३१ से ३९ तक, ५-४, १२, १३, ७-५ से ९ तक, ८-४ से ११ तक, ९-१५ से ३८ तक, १०-१२ से १५ तक, ११-११ से १५ तक, १४-२६ से ३५ तक, १४-३७, ३८, ३९, १५-४५, १५-५१ से ७५ तक १६-२६, १६-३४ से ३८ तक, १७-७, ८, १८-६, ७, ८, १९-१५, १६, २१-२२ से ३२ तक, २२-१४, २४-१५, १६, २५-१४ से १८ तक, २८-२ से ५ तक, २९-१० से २० तक, ३०-२१ से २४ तक, ३१-१६ से २४ तक, ३२-१० से १४ तक, ३३-९, ३४-२, ३	=२०८	,,
दा० नि० सा० सासी० स०	५-११, ८-१३, १४, १२-६, ७, १३-३, १४-९, १५-३९, १९-१७, २०-८, २१-३४, २२-१३, २३-७, ८, २५-१९, २०, २१, २९-२२, ३०-१६, १७, ३१-९, १०, ११	=२३	,,
दा० नि० सा० सासी० गुग्र०	२-४६ से ५४ तक, ३-२५,		

	२६, ६-१०, ११, १२, ८-१५, ६-३६, ४०, १०-१६, ११-१६, १२-८, १४-४०, ४१, १६-२८ से ३३ तक, १७-२, १८-६, २०-१०, २५-२२, २६-२३, ३१-२६, २७, ३२-८, ६	=३७ ,,
दा० नि० साबे० सासी० गुण०	१५-७६	=१ ,,
दा० नि० सा० सासी० बी०	१६-८, २५-६	=२ ,,
दा० नि० सा० सासी० मु०	१-१२, २-६, ३-५, ४-११, १२, १४-३, ४, १६-१०, २१-५, ६, ८	=११ ,,
दा० नि० साबे० सासी० गु०	१५-२६	= १ ,,
दा० नि० सा० साबे० बी०	१-८, २-१२, १३-१, १५-१२, १३, २१-१५, २६-५, ३१-२	=८ ,,
दा० नि० सा० सासी० स० बी०	१३-२	=१ ,,
दा० नि० सासी० गुण० बी०	२०-५	=१ ,,
दा० नि० स० गु० गुण०	२०-३	=१ ,,
दा० नि० सा० गु० बी०	१६-३	=१ ,,
दा० नि० साबे० सासी० स०	१५-८६	=१ ,,
दा० सा० साबे० सासी० मु०	३-४, ११-२, १७-३, १६-१०	=४ ,,
दा० सा० साबे० सासी० गुण०	१-४, ६-२, १०-११, १४-२४, २५, १५-७६, ८०, १६-२४, २३-४, ५, ६, २७-१, २, ३०-१०, ३१-२८	=१५ ,,
नि० सा० साबे० सासी० स०	२५-२३,	=१ ,,
नि० सा० साबे० सासी० गुण०	८-१२, २४-१८, २८-८	=३ ,,
नि० सा० साबे० सासी० बी०	२-१४, ३-२४, १५-१६, २६-४	=४ ,,

नि० सा० साबे० सासी० गु०	४-१३, १६-१४, १५, १८-४, १६-५, २४-५, २६-३, २६-२	=८	,,
सा० साबे० सासी० गु० गुण०	२१-६	=१	,,
सा० साबे० सासी० बी० गुण०	१५-१४	=१	,,
सा० साबे० सासी० स० गुण०	२०-११	=१	,,
सा० सासी० गु० बी०	२१-११	=१	,,
दा० नि० साबे० सासी०	१४-३६, ३०-२५	=२	,,
दा० नि० सासी० स०	२-५५, २५-२४	=२	,,
दा० नि० सा० बी०	१६-४, १८-११	=२	,,
दा० नि० साबे० गु०	१५-३०	=१	,,
दा० नि० गु० गुण०	६-३	=१	,,
दा० सा० सासी० गुण०	८-१६, १७, १२-६, १५-८१ से ८४ तक, १६-३६, ४०, २२-१५, २५-१५, १६, २७-५	=१३	,,
दा० सा० सासी० गु०	४-१४, २१-१२	=२	,,
नि० सा० साबे० बी०	४-१७, १८-१०	=२	,,
नि० सा० सासी० बी०	११-४	=१	,,
नि० सा० सासी० स०	१५-८५	=१	,,
सा० साबे० सासी० गु०	१५-३२, ३३, ३४, २१-१०, २४-६, २७-३	=६	,,
सा० साबे० सासी० गुण०	४-४३, २६-६	=२	,,
सा० साबे० सासी० बी०	४-१८, १०-६, ११-५, ६, १५-१५, १५-८७, ८८, ८६, १६-५, ६, १८-१२, २०-६, २२-३, ४, २४-८, २६-४, ३३-६	=१७	,,
सा० साबे० बी० गुण०	२४-१०	=१	,,
दा० नि० बी०	१६-६, २०-७	=२	,,
नि० सा० बी०	२०-२, २२-५	=२	,,

साबे० सासी० गु०	१५-३५	=१	,,
साबे० सासी० बी०	६-४१, १२-१०	=२	,,
साबे० गुण० बी०	१५-१७	=१	,,
गु० स०	२१-१३	=१	,,

कुल ७४४ साखियाँ ।

सिद्धांत

यहाँ तक तो स्वीकृत अंशों के संकलन की बात हुई, किन्तु इन अंशों में भी सभी प्रतियाँ एक ही पाठ नहीं प्रस्तुत करतीं । विभिन्न पाठान्तरों में कौन किस कारण से स्वीकृत अथवा अस्वीकृत किया जाय, इस समस्या पर भलीभाँति विचार किये बिना प्रामाणिक सम्पादन का कार्य अधूरा रह जायगा । यहाँ उन सिद्धांतों काउल्लेख किया जा रहा है जिनसे पाठ-निर्णय में सहायता मिलती है—

१. जो पाठ सभी प्रतियों में मिलता है, वह निर्विवाद रूप से मूल प्रति का है—इसके लिए उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं ।

२. यदि कोई पाठ किसी एक प्रति में, अथवा दो या दो से अधिक ऐसी प्रतियों में मिलता है जिनमें संकीर्ण-संबंध सिद्ध हो चुका है और उसके स्थान पर अन्य कोई पाठ किन्हीं ऐसी प्रतियों द्वारा प्रस्तुत होता हो जिनमें परस्पर संकीर्ण-संबंध नहीं स्थापित हुआ है तो दूसरा पाठ ही सिद्धांततः स्वीकृत किया गया है और उसकी तुलना में पहला पाठ अस्वीकृत किया गया है । इस सिद्धांत का प्रयोग इतने व्यापक रूप में हुआ है कि प्रस्तुत संकलन के किसी भी एक पद या साखी को लेकर उसमें इसका निर्वाह देखा जा सकता है । वास्तव में संकीर्ण-संबंध का सिद्धांत ही वह प्रमुख आधार है जिस पर प्रामाणिक पाठ के संकलन या संपादन का सारा ढाँचा खड़ा होता है । किन्तु इस संबंध-जाल को समझने के लिए कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है । यदि किसी स्वीकृत समुच्चय में एक ही परिवार की विभिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न पाठ मिलते हों तो उनमें से वही पाठ स्वीकृत किया गया है जो उक्त परिवार के अतिरिक्त अन्य स्वतंत्र प्रतियों में भी मिलता है । उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं—

(क) प्रस्तुत संकलन का ८७ संख्यक पद दा० नि० गु० प्रतियों में मिलता है । नि० तथा गु० प्रतियों में उसकी चौथी पंक्ति का पाठ है : टुक दम

करारी जौ करहु हाजिर हजूर खुदाइ । दा१ दा२ में 'हाजिरां सूर खुदाइ' पाठ मिलता है, किन्तु दा३ में उसके स्थान पर वही पाठ मिलता है जो नि० गु० में है, अतः दा१ दा२ का पाठ यहाँ अस्वीकृत कर दिया गया ।

(ख) पद १११-५ का निर्धारित पाठ है : अढ़ाई मैं जे पाव घटै तौ करकच करै घरहाई । इसके उत्तरार्द्ध के पाठान्तर निम्नलिखित हैं : दा१ नि०: करकस करै बझाई; दा३ करकच करै बतहाई; स०: करकच करै बजहाई; गु० : झगरु करै घरहाई; बीभ० : करकच करै घरहाई; बी० : करकच करै घहराई । 'करकच' पाठ दा३, बी० और स० के समान साक्ष्य के कारण और 'घरहाई' पाठ गु० तथा बीभ० के साक्ष्य के कारण स्वीकृत हुए हैं ।

(ग) साखी १२-५ की प्रथम पंक्ति का निर्धारित पाठ है : हरि रस पीया जानिए, जे उतरै नहीं खुमारि । दा१ तथा गुण० में द्वितीय चरण का पाठ है : जे कबहूं न जाइ खुमार । किन्तु दा३ नि० सा० सासी० स० में उक्त पाठ मिलने के कारण वही स्वीकृत हुआ है ।

(घ) साखी १५-५३ की प्रथम पंक्ति का निर्धारित पाठ है : ढोल दमांमां गड़गड़ी, सहनाई संगि भेरि । दा१, दा२, सा० तथा सासी० में 'गड़गड़ी' के स्थान पर 'दुरबरी' पाठ मिलता है, किन्तु दा३, नि० और साबे० में 'गड़गड़ी' मिलने के कारण वही स्वीकृत हुआ है, क्योंकि दा० नि० साबे० में विकृति-साम्य न मिलने के कारण तीनों का समुच्चय मान्य सिद्ध हुआ है ।

(ङ०) १६-१०-२ का निधारित पाठ है : पांसा परा करीम का, तातैं पहिरा जाल । उक्त साखी दा० नि० बी० में मिलती है । दा२ तथा नि० में 'करीम' के स्थान पर 'करम' पाठ मिलता है, किन्तु दा३ तथा बी० में 'करीम' मिल जाने से वही पाठ स्वीकृत हुआ है (दा० बी० का समान साक्ष्य मान्य होने के कारण) ।

(च) २४-८-१ : काजर केरी ओबरी, काजर ही का कोट । यह साखी सा० साबे० सासी० बी० में मिलती है । सा० साबे० सासी० में 'ओबरी' पाठ है और बी० में 'कोठरी'; किन्तु बीभ० में 'ओबरी' मिल जाने से वही मूल पाठ के रूप में स्वीकृत हुआ है ।

(छ) साखी २८-४-१ : पांनीं केरा पूतरा, राखा पवन संचारि । दा१ दा२

में 'संवारि' पाठ मिलता है, किन्तु दा३ दा४ नि० सा० साबे० सासी० में 'संचारि' पाठ मिल जाने से वही मान्य ठहरता है। यदि दा० की किसी प्रति में 'संचारि' पाठ न मिलता तो केवल नि० सा० साबे० सासी० में मिलने से वह सहसा स्वीकार्य न होता, क्योंकि नि० सा० साबे० सासी० का समुच्चय स्वतंत्र रूप से प्रामाणिक नहीं सिद्ध हुआ है।

अपवाद—स्वीकृत समुच्चयों के साक्ष्य सर्वत्र ही मान्य सिद्ध हुए हैं और सिद्धाततः ऐसा होना भी चाहिए; किन्तु एक अपवाद मिलता है। पद १११ की तृतीय पंक्ति का निर्धारित पाठ है : सात सूत दे गंड बहत्तरि पाट लागु अधिकाई। 'दे' पाठ दा० नि० स० प्रतियों में मिलता है। पाठान्तर 'नौ' है जो गु० तथा बी० द्वारा प्रस्तुत होने के कारण सिद्धांततः मान्य होना चाहिए, किन्तु 'नौ' शब्द उसी पद की द्वितीय पंक्ति में एक बार आ चुका है और वहाँ कोई पाठान्तर न मिलने के कारण प्रामाणिक रूप से स्वीकार भी किया गया है। अतः अगली पंक्ति में पुनः 'नौ' आ जाने से पुनरुक्ति-दोष उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'नौ' पाठ स्वीकार करने से अर्थ की संगति भी ठीक नहीं बैठती। 'दे' पाठ से इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

३. जब दो स्वीकृत समुच्चय दो विभिन्न पाठ प्रस्तुत करें और ऊपर से देखने में दोनों का महत्व समान ज्ञात हो, तब समस्या कठिन हो जाती है। ऐसे अवसर पर उन प्रतियों का पाठ अधिक प्रामाणिक माना गया है जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध की सम्भावना दूसरे वर्ग की अपेक्षा कम मिलती है। उदाहरण के लिए दा० नि० गु० द्वारा एक पाठ प्रस्तुत हो और उसकी तुलना में दूसरा पाठ दा० शबे० या स० शबे० द्वारा प्रस्तुत किया गया हो तो दा० शबे० अथवा स० शबे० के पाठ अधिक प्रामाणिक माने गये हैं, क्योंकि दा० नि० गु० प्रतियाँ लेखन-परंपरा की दृष्टि से एक दूसरे के कुछ अधिक निकट की सिद्ध हुई हैं और उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान की सम्भावना भी मानी जा सकती है; किन्तु स० शबे० अथवा दा० शबे० इतने दूर की सिद्ध होती हैं कि उनमें किसी भी प्रकार के आदान-प्रदान की तनिक भी सम्भावना नहीं रह जाती। अतः उनके साक्ष्य विशेष रूप से मान्य सिद्ध होते हैं। दो ऐसे गवाह जो जो एक दूसरे से कभी न मिले हों, यदि एक ही बात कहें, तो उनका कथन निस्संदिग्ध रूप से प्रामाणिक माना जायगा। यही सिद्धांत प्रतियों के साक्ष्य के सम्बन्ध में भी लागू होता है। इसी प्रकार यदि दा० नि० सा० साबे० सासी० में एक पाठ मिला है और उसके स्थान पर गु०

तथा बी० में समान रूप से कोई दूसरा पाठ आया है, तो गु० बी० का पाठ ही अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माना गया है। प्रतियों के पाठ-संबंध का कोष्ठक भलीभाँति समझ लेने पर यह बातें अधिक स्पष्ट हो जायँगी। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक के निम्नलिखित स्थल विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—

(क) पद ६८-६ का निर्धारित पाठ है : मूएं पीछैं लेहु लेहु करै भूत रहन क्यू दीनां। दा० नि० बी० में 'प्रेत' पाठ आता है, किन्तु गु० तथा बीभ० में 'भूत' मिलने से वही पाठ स्वीकृत हुआ है।

(ख) साखी २-१-१ का निर्धारित पाठ है : बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न मांनैं कोइ। दा० नि० सा० साबे० गुण० में 'लागै' पाठ है, किन्तु गु० और बी० में 'मांनैं' मिलने से वही स्वीकृत हुआ है। दा० नि० सा० साबे० गुण० सब में पश्चिमी प्रभाव एक ही प्रकार से मिलते हैं, अतः उनका पारस्परिक आदान-प्रदान सम्भव है, किन्तु गु० और बी० प्रतियाँ इतनी दूर की हैं कि उनमें किसी भी प्रकार का आदान-प्रदान सम्भव नहीं ज्ञात होता।

(ग) १६-१-१ : मरतां मरतां जग मुवा, मुवै न जांनां कोइ। दा० नि० सा० साबे० सासी० स० में उक्त पंक्ति के द्वितीय चरण का पाठ है : अवसर मुवा न कोइ। किन्तु बी० में 'मुवै न जाना कोय' और गु० में 'मरि भी न जानिआ कोइ' पाठ हैं; अतः गु० बी० के समान साक्ष्य के कारण वही पाठ स्वीकृत हुआ है।

(घ) २१-१-२ : रासि बिरांनीं राखतां, खाया घर का खेत। 'बिरांनीं' के स्थान पर दा० नि० सा० साबे० स० में 'पराई' पाठ है, किन्तु गु० बी० तथा गुण० में 'बिरांनीं' है अतः वही मूल रूप में स्वीकृत हुआ है।

जो अंश केवल दो ही प्रतियों के आधार पर, अथवा एक ही समुच्चय के आधार पर स्वीकृत हुए हैं उनके पाठ-निर्णय में लिपि, भाषा और भाव-सम्बन्धी विकृतियों की सम्भावनाओं तथा प्रसंगों और प्रामाणिक विचारों, प्रयोगों की सहायता से सिद्धांत स्थिर किये गये हैं। उनके उदाहरण क्रमशः नीचे दिये जा रहे हैं।

४. लिपि-भ्रम की दृष्टि से—इससे पूर्व प्रतियों के विस्तृत विवरण तथा संकीर्ण-संबंध के प्रकरण में लिपि-संबंधी विकृतियों का पर्याप्त निर्देश किया गया है। लिपि-संबंधी विभिन्न सम्भावनाओं पर मनन करने से पाठ-संबंधी निर्णय में भी

सहायता मिलती है। कोई भी पाठ अंतिम रूप से स्वीकार करने के पूर्व यह भली-भाँति निश्चित कर लिया जाता है कि अन्य पाठान्तर नागरी, फ़ारसी आदि लिपियों की विकृति के कारण हुए हैं, और मूल पाठ वास्तव में वही होना चाहिए जिसे प्रामाणिक रूप से स्वीकार किया गया है। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

पदों के उदाहरण—

(क) ४-७ का निर्धारित पाठ है : रिपु कै दल मैं सहजहिं रौदौं अनहद तबल घुराऊं जी। शबे० में **'आनंद तलब** बजाऊं जी' पाठ मिलता है। 'अन-हद' के स्थान पर **आनंद** फ़ारसी लिपि-जनित विकृति के कारण और 'तबल' (=तबला बाजा) के स्थान पर **तलब** वर्ण-विपर्यय के प्रमाद से हुआ ज्ञात होता है।

(ख) ९-४ : तूं सतगुर हौं नौतनु चेला।
दा० नि० का पाठान्तर: **नौतम** (नागरी नकार तथा मकार के सादृश्य के कारण; नौतन=नूतन, नौसिखुवा)।

(ग) १३-५ : अन्न न भावै नींद न आवै गृह बन धरै न धीर रे। 'अन्न' का पाठान्तर दा० नि० में **आंन** (फ़ारसी लिपि के कारण)।

(घ) ४१-३ : देही गांवां जिउधर महतौ बसहिं पंच किरसांनां। दा० नि० का पाठ है : नगर एक तहां **जीव धरम हता** बसहिं जु पंच किसांनां। कदा-चित् पदच्छेद की अव्यवस्था के कारण 'महतौ' का मकार पूर्ववर्ती शब्द में मिला लिये जाने के कारण यह अशुद्धि हुई है।

(ङ०) ४८-४ : ध्रू प्रहलाद बिभीखन सेखा। तन भीतर मन उनहुं न पेखा॥
स्वीकृत पाठ दा० नि० स० का है। बी० में इसका पाठ है : तन के भीतर मन उनहुं न पेखा। इससे निर्धारित पाठ की पुष्टि होती है, किन्तु गु० में इसका पाठान्तर **'तिन भी तन** महि मनु नही पेखा' है। 'तन' के स्थान पर 'तिन' फ़ारसी लिपि की विकृति के कारण और 'भीतर' के स्थान पर 'भी तन' नागरी लिपि की विकृति के कारण हुए ज्ञात होते हैं।

(च) ६१-२ : संत मिलहिं कछु सुनिए कहिए। मिलहिं असंत मस्टि करि रहिए॥
दा० नि० स० में पाठान्तर : **'मुष्टि** करि रहिए' (फ़ारसी लिपि के प्रमाद से)।

(छ) ७५-६ तथा ८ : पुहुप पुराने गए सूख। तब भवरहिं लागी अधिक भूख॥

दह दिसि जोवै मधुपराइ । तब भंवरी लै चली सिर चढ़ाइ ।। पाठान्तर 'गए' के स्थान पर दा० नि० में **भए** (नागरी लिपि-जनित) 'मधुप-राइ' के स्थान पर शबे० में **भुइं पड़ाय** और शक० में **मधु कराय** (दोनों फ़ारसी लिपि की विकृति के कारण)।

(ज) १०३-१ : को न मुवा कहु पंडित जनां। सो समुझाइ कहहु मोहिं सनां। 'को न' के स्थान पर दा० नि० में **कौन** (फ़ारसी लिपि से)।

(झ) ११५-१ : पवनपति उनमनि रहनि खरा। 'रहनि' के स्थान पर नि० में **रहति** तथा गु० में **रहनु** (फ़ारसी लिपि-जनित)।

(ञ) ११६-५ : तलि करि पत्ता उपरि करि मूल। बहुत भांति जड़ लागे फूल ।। 'मूल' का पाठान्तर गु० में **सूल** (नागरी लिपि-जनित)।

(ट) ११८-४ : तिस बाझ न जीया जाई। जौ मिलै तौ घालै खाई।। गु० का पाठांतर : जउ **मिलत घाल** अघाई (फ़ारसी लिपि-जनित)।

(ठ) १२१-३ : चित्त तरउवा पवन खेदा सहज मूल बांधा। 'खेदा' का पाठांतर बी० में **खेढ़ा** (नागरी-भ्रांति के कारण)।

(ड) १२२-४ : नव ग्रह मारि रोगिया बैठे जल महिं बिंब प्रकासै। 'ग्रह' का पाठान्तर दा० नि० स० में **ग्रिह** (उर्दू-भ्रांति)। इसी प्रकार आगे छठी पंक्ति में 'पारधी' के स्थान पर बी० में **पारथहिं** (नागरी-भ्रांति के कारण)।

(ढ) १२३-१० : परिहरि बकला ग्रहि गुन डारि। निरखि देखि निधि वार न पार। 'बकला' (=पेड़-पौधों की छाल) का पाठान्तर दा० स० में **बकुला** और नि० में **बिकुला** मिलता है (फ़ारसी लिपि-जनित भ्रांति के कारण)।

(ण) १३१-५ : कंकर कुईं पताल पांनियां सोनैं बूंद बिकाई रे। 'सोनैं' के स्थान पर दा१ दा२ में **सूनैं** (फ़ारसी लिपि की भ्रांति के कारण)।

(त) १७६-१ : आसन पवन दूरि करि रउरा। छांड़ि कपट नित हरि भजु बौरा।। 'नित' के स्थान पर दा३ तथा स० में **नट** (फ़ारसी लिपि-जनित)।

साखियों के उदाहरण—

(क) १-४-२ : गुरु बिनु अति ऊदै भए, तऊ दृष्टि रहि मंद। दा० गुण० में 'रहि' का पाठान्तर **नहिं** (कैथी लिपि के प्रमाद से)।

(ख) १-२३-२ : अंगि उघारै लागिया, गई दवा सौं फूटि। 'दवा'

(=दावाग्नि) के स्थान पर सा० में **दुवा**, साबे० में **धुवां** तथा दा२, सासी० में **दुवां** पाठ मिलते हैं; किन्तु यह सभी पाठ विकृत ज्ञात होते हैं और फ़ारसी लिपि-जनित भ्रांतियों के कारण संभावित जान पड़ते हैं।

(ग) २-६-१ : बिरहिन उठि उठि भुइं परै, दरसन कारन रांम। दा० तथा नि० में 'भुइं' के स्थान पर **भी** पाठ है (उर्दू 'भुइं' और 'भी' में हिज्जे के सादृश्य के कारण)।

(घ) ३-१-२ : जाका बासा गोर मैं, सो क्यूं सोवै सुक्ख। नि० तथा स० में 'गोर' (=क़ब्रस्तान) के स्थान पर **घोर** (फ़ारसी लिपि-जनित)।

(ङ०) ३-४-१ : केसौ कहि कहि कूकिए, नां सोइए असरार। 'असरार' के पाठांतर साबे० में **इसरार** और गु० में **असार** हैं (पहला फ़ारसी लिपि-जनित और दूसरा नागरी लिपि-जनित)।

(च) ३-६-२ : ते नर आइ संसार मैं, उपजि खए बेकांम। 'खए' (=क्षय हुए या विनष्ट हुए) के स्थान पर सा० साबे० में **खपे** (नागरी लिपि जनित)।

(छ) ४-१-१ : कबीर चंदन के बिड़ै, बेधे ढाक पलास। 'बिड़ै' के स्थान पर स० प्रति में **बिषै** (नागरी लिपि-जनित)।

(ज) १२-१-१ : कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न छाकि। 'छाकि' के स्थान पर दा० नि० सा० स० गुण० में **थाकि** (नागरी लिपि-जनित)।

(झ) १४-७-२ : भरम भलाका दूरि करि, सुमिरन सेल संबाहि। 'सेल' का पाठान्तर साबे० प्रति में **सील** (फ़ारसी लिपि-जनित)।

(ञ) १४-१६-२ : जिहिं भावै सो आइ ले, प्रेम आघु हंम कीन्ह। 'आघु' (=दुकान) के स्थान पर सा० सासी० में **आगु** और साबे० में **आगे** पाठ मिलते हैं (दोनों विकृतियाँ फ़ारसी लिपि-जनित)।

(ट) १५-१६-२ : काया हांड़ी काठ की, नां ऊ चढ़ै बहोरि। 'चढ़ै' के स्थान पर गु० में **चरहै** (उर्दू रे, ड़े के सादृश्य से)।

(ठ) १५-२६-२ : जैहहि आटा लोन ज्यौं, सोनां सवां सरीर। तुल० सा० **सूना**, गु० **सोनि** (दोनों विकृतियाँ फ़ारसी लिपि-जनित)।

(ड) २०-१०-१ : काबा फिरि कासी भया, रांमहि भया रहीम। तुल० नि० **तांबा** फिरि **कांसी** भया ('तांबा' फ़ारसी लिपि की विकृति से और 'कांसी' नागरी लिपि की विकृति से)।

(ढ) २१-१५-१ : सांईं सेती चोरियां चोरां सेती गुज्झ। सा० साबे० में 'गुज्झ' (=गुह्य वार्त्ता, घनिष्टता, मेलजोल) के स्थान पर **जुज्झ** (=युद्ध, लड़ाई); किन्तु यहाँ अप्रासंगिक अतः विकृत (नागरी लिपि-जनित)।

(ण) २२-१-२ : पंथी छांह न वीसवैं, फल लागैं ते दूरि। 'बीसवैं' (=विश्राम करना) के स्थान पर स० में **बैसवैं** पाठ है (फ़ारसी लिपि-जनित)।

(त) ३३-१-१ : कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुस्तग देहु बहाइ। गु० पुस्तग **देहु बिहाइ** (फ़ारसी लिपि-जनित)।

५. पुनरुक्ति-दोष की दृष्टि से—यों तो कभी-कभी पुनरुक्ति सभी कवियों की रचनाओं में मिल जाती है, किन्तु सामान्यतः प्रत्येक कवि पुनरुक्ति से बचता है। इसलिए जब हमारे सामने दो या अधिक पाठों का विकल्प होता है, अर्थात् अन्य दृष्टियों से वे बराबर ही मान्य होते हैं, तो ऐसा पाठ स्वीकार करना जिसमें पुनरुक्ति-दोष नहीं होता, सामान्यतः हमें मूल पाठ के अधिक निकट पहुँचाता है। अतः इस प्रकार की परिस्थिति में पुनरुक्ति-हीन तथा पुनरुक्ति-पूर्ण (किन्तु अन्यथा समान रूप से स्वीकार्य) पाठों में से हमने पुनरुक्ति-हीन पाठ को स्वीकार किया है और पुनरुक्ति-पूर्ण पाठ को अस्वीकृत किया है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जायगी।

पदों के उदाहरण—

(क) १-६ का निधारित पाठ है : समांनीं दरियाव दरिया पार नां लंघी। शबे० में इस पंक्ति का पाठ है : दरियाव दरिया जा समाने **संग में संगी**। उक्त पद नि० तथा शबे० में मिलने के कारण स्वीकृत हुआ है। यह ध्यान देने की बात है कि इसी पद में आगे आठवीं पंक्ति का पाठ नि० तथा शबे० दोनों प्रतियों में इस प्रकार से मिलता है : तत्त में निहतत्त दरसा संग में संगी। इस प्रकार शबे० द्वारा प्रस्तुत छठी पंक्ति का पाठ पुनरुक्ति-दोष के कारण विकृत सिद्ध होता है, अतः अस्वीकृत हुआ है।

(ख) ३-७, ८ : कहै कबीर भूलौ कहा कहं ढूंढ़त डोलै। बिनु सतगुरु नहिं पाइए घट ही मैं बोलै॥ शबे० प्रति में इन पंक्तियों का पाठ है : कहैं कबीर बिचारि कै **अंधा** खल डोलै। **अंधे को** सूझै नहीं घट ही में बोलै॥ शबे० के पाठ में 'अंधा' और 'अंधे' की पुनरुक्ति विचारणीय है।

(ग) ४-३ : सहज पलांनि चित्त कै चाबुक लौ की लगांम लगाऊं जी। नि० प्रति में 'चित्त कै चाबुक' के स्थान पर 'पवन का **घोड़ा**' पाठ मिलता है, किन्तु इससे पूर्व की ही पंक्ति में 'घोड़ा' शब्द मिलने से नि० के पाठ में पुनरुक्ति आ जाती है ; तुल० मन की मुहर धरौं गुरु आगै ज्ञान कै घोड़ा लाऊं जी ॥

(घ) ४-४ : बिबेक बिचार भरौं तन तरगस सुरति कमांन चढ़ाऊं जी। नि० प्रति में 'बिबेक' के स्थान पर **ग्यांन,** किन्तु तुल० पंक्ति २-२: ग्यांन कै घोड़ा लाऊं जी।

(ङ) ८-१ : रांम भगति अनियाले तीर। जेहिं लागै सो जांनैं पीर ॥ नि०: रांम **बांन** अनियाले **तीर** (तुल० 'बान' तथा 'तीर')।

(च) १८-२ : मोहिं तोहिं आदि अंत बनि आई। अब कैसै दुरत दुराई ॥ नि० में उक्त पंक्ति के उत्तरार्द्ध का पाठ है: **जैसैं सलिता सिंधु समाई** ॥ किन्तु तुल० पंक्ति ४ यथा : मोहिं तोहिं कीट भ्रिंग की नाईं। जैसैं सरिता सिंधु समाई ।

(छ) १८-३ : जैसै कंवल पत्र जल बासा। असै तुम साहब हंम दासा ॥ शबे० में इसके पश्चात् एक अतिरिक्त पंक्ति आती है जिसका पाठ है: जैसे चकोर तकत निसि चंदा। **ऐसे तुम साहब हम बंदा** ॥ किन्तु इसके उत्तरार्द्ध का भाव वही है जो ऊपर की पंक्ति के उत्तरार्द्ध का है।

(ज) २०-३ : दारा सुत देह ग्रेह संपति सुखदाई। दा० नि० में 'सुखदाई' के स्थान पर **अधिकाई** पाठ है, किन्तु इस पद की द्वितीय पंक्ति तुलनीय है जिसका पाठ है: रांम नांम सुमिरन बिन् बूड़त अधिकाई।

(झ) २५-३ : क्रोध प्रधांन लोभ बड़ दुंदर मन मैवासी राजा। तुल० गु० क्रोध प्रधान **महा बड़** दूंदर। 'महा' और 'बड़' दोनों समानार्थी हैं।

(ञ) २५-७ : ब्रह्म अगिनि सहजहिं परजाली एकहिं चोट ढहाया। दा० नि० का पाठ है : ब्रह्म अगिनि लै दिया **पलीता**। किन्तु इसी पद की छठी पंक्ति का पाठ है : प्रेम पलीता सुरति नालि करि गोला ग्यांन चलाया। अतः पुनरुक्ति स्पष्ट है।

(ट) ५०-३ : ऊभर था सो सूभर भरिया तृस्नां गागरि फूटी। गु० में प्रथम चरण का पाठ है : **कांम** क्रोध माइआ लै जारी। किन्तु इसी पद की चौथी पंक्ति का प्रथम चरण तुलनीय है जिसका पाठ है : **कांम** चोलनां भया पुरांनां।

(ठ) ५६-३ : गुड़ करि ग्यांन ध्यांन करि महुआ भौ भाठी मन धारा। दा० नि० में द्वितीय चरण का पाठ है : **भव भाठी** करि **भारा**। किन्तु 'भाठी' और 'भारा' दोनों पर्यायवाची हैं।

(ड) ५६-३ : कोइ सूर अड़ै मैदांनां। जिन मारि किया घमसांनां ॥ नि० का पाठ है : **मन मारि** किया घमसांनां। किन्तु उक्त पद की छठी पंक्ति में भी 'मन' शब्द आता है: तुल० मन मारि अगम पुर लीया।

(ढ) ६२-५ : हाड़ जरै जैसै लकड़ी झूरी। केस जरै जैसै त्रिन की पूरी ॥ दा० नि० में इसके स्थान पर जो पंक्ति मिलती है उसका पाठ है : **चोवा चंदन चरचत अंगा। सो तन जरै काठ कै संगा** ॥ किन्तु यह पंक्ति अन्यत्र भी एक पद में मिलती है, तुल० प्रस्तुत संकलन का पद ७६ जिसकी आरम्भिक पंक्तियों का पाठ है : लाज न मरहु कहहु घर मेरा। अंत की बार नहीं कछु तेरा ॥ उक्त पंक्ति इस पद की पाँचवीं पंक्ति के रूप में मिलती है।

(त) ६६-४ : सूकर स्वांन काग कौ मक्खिन तामैं कहा भलाई। बी० प्रति में इस पंक्ति का पाठ है : सूकर स्वान काग को भोजन **तन की इहै बड़ाई**। किन्तु पद ६८ की चौथी पंक्ति तुलनीय है, जिसका पाठ है : कांचै कुंभ उदिक ज्यौं भरिया या तन की इहै बड़ाई।

(थ) ८०-४ : कुंजी कुलफु प्रांन करि राखे करते बार न लाई। दा० नि० का पाठ है : **ताला** कूंची **कुलफ** कै लागै उघड़त बार न होई। 'ताला' और 'कुलफ' दोनों पर्यायवाची हैं।

(द) ८६-२, ३ : बेद पुरांन सभै मत सुनि कै करी करम की आसा। काल ग्रसत सभ लोग सयाने उठि पंडित पै चले निरासा ॥ दा० नि० में इन पंक्तियों का पाठ है : वेद पुरांन सुंम्रित गुन **पढ़ि पढ़ि पढ़ि गुनि** मरम न पावा। संध्या गायत्री अरु खट करमां तिनथैं दूरि बतावा ॥ ('पढ़ि पढ़ि' और 'पढ़ि गुनि' में पुनरुक्ति)।

(ध) ११६-४ : बैलहिं डारि गोनि घर आई। घोड़ै चढ़ि भैंस चरावन जाई॥ दा० स० में द्वितीय चरण का पाठ है : पकड़ि **बिलाई** मुरगै खाई, और नि० का पाठ है : मूसै पकड़ि **बिलाई** खाई। किन्तु 'बिलाई' का प्रसंग पहले आ जाने के कारण पुनरुक्ति। तुल० पंक्ति ३-२ : कुत्ता कौं लै गई बिलाई।

(न) १३०-१० : अरध उरध बिच लाइलै अकास। सुन्नि मंडल महिं करि

परगास। दा० नि० में द्वितीय चरण का पाठ है : **तहंवां जोति करै परकास**। किन्तु यह पंक्ति पहले भी एक बार आ चुकी है, तुल० अगम द्रुगम गढ़ि रचिऔ बास। जामहिं जोति करै परगास।

(प) १३६-१, २ : मन मोर रहटा रसनां पिउरिआ। हरि कौ नांव लै काति बहुरिया। बी० में 'मन' के स्थान पर **हरि** पाठ है, किन्तु अगली पंक्ति में भी 'हरि' रहने के कारण पुनरुक्ति स्पष्ट है।

(फ) १४९-२ : तीनि लोक से भिन्न राज। अनहद धुनि जहं बजै बाज॥ शबे० में द्वितीय चरण का पाठ है : जहं अनहद **बाजा** बजै **बाज** (किंतु 'बाजा' और 'बाज' दोनों पर्यायवाची)।

(ब) १४९-४ : कोटि कृष्न जहं जोरहिं हाथ। नि० का पाठ है : जहां कोटि कृष्न **कर** जोरचा **हाथ** ('कर' तथा 'हाथ' दोनों पर्ययिवाची)।

(भ) १६१-१ : संतौ आवै जाइ सो माया। नि० प्रति में 'आवै जाइ' के के स्थान पर **उपजै खपै** पाठ मिलता है, किन्तु अंतिम पंक्ति में भी यह शब्द आते हैं, कहै कबीर रांम अबिनासी उपजै खपै सो दूजा। प्रथम पंक्ति में आवागमन के प्रसंग पर ही अधिक बल दिया गया है, जिसे दूसरी पंक्ति में और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। द्वितीय पंक्ति का पाठ है : निराकार निरलेप निरंजन नां कहूं गया न आया।

(म) १८१-२ : क्या लै माटी (मूड़ी ?) भुइं सौं मारै क्या जल देह न्हवाएं। बी० प्रति में प्रथम चरण का पाठ है : क्या **मूड़ी** भूमी **सिर** नाए। किन्तु 'मूड़ी' और 'सिर' पर्यायवाची हैं, अतः यह पाठ भ्रामक हो गया है।

(य) १९१-१ : भूली मालिनीं है एउ। सतगुर जागता है देउ। दा० नि० स० प्रतियों में उक्त पंक्ति का पाठ है : भूली मालिनीं है गोबिंद। जागतौ जगदेव। **तू करै किसकी सेव**॥ इसका अंतिम अंश आगे इसी पद की नवीं पंक्ति में आता है : तीनि देव प्रतक्खि तोरहि करै किसकी सेउ। अतः दा० नि० स० की पहली पंक्ति में यह अनावश्यक है।

(र) १९२-५, ६ : पूरब जनम हंम बांभन होते ओछै करम तप होनां। रांम देव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हां॥ गु० में उक्त पंक्तियों का पाठ है : हम घरि सूत तनहि नित ताना कंठ जनेउ तुमारे। तुम तउ बेद पढ़हु गाइत्री **गोबिंद रिदै हमारे**॥ पद की पहली ही पंक्ति में आया है : मेरी जिम्या बिस्नु नैंन नारायन हिरदै बसै गोबिंदा; अतः

'गोबिंद रिदै हमारे' स्वीकार करने से पुनरुक्ति-दोष का भय है।

साखियों के उदाहरण—

(क) १-३२-२ : सतगुर सेती खेलतां, कबहुं न आवै हारि। दा० प्रति मे इसका पाठ है : कहै कबीरा **रांम जन,** खेलौ **संत** बिचार॥ 'रांम जन' और 'संत' प्राय: एक ही अर्थ के द्योतक हैं।

(ख) १-३३-१ : पांसा पकरा प्रेम का, सारी किया सरीर। नि० तथा साबे० में इसका पाठ है : **चौपड़ि माड़ी चौहटै,** सारी किया सरीर। किन्तु इसका प्रथम चरण पिछली साखी में भी आता है, तुल० १-३२-१ : चौपड़ि माड़ी चौहटै, अरध उरध बाजारि।

(ग) २-३-१ : अंबरि कुंजां कुरलियां, गरजि भरे सब ताल। गु० में द्वितीय चरण का पाठ है : बरखि भरे **सर ताल।** (किन्तु 'सर' और 'ताल' दोनों पर्यायवाची)।

(घ) २-६ : बिरहिन उठि उठि भुइं परै, दरसन कारन रांम। मूएं दरसन देहुगे, सो आवै कौनें कांम॥ सा० साबे० सासी० में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : **लोहा माटी मिलि गया, तब पारस कौनें कांम॥** किन्तु यह पंक्ति अगली साखी अर्थात् २-१६ में भी मिलती है। उक्त साखी का निर्धारित पाठ है : मूवां पीछैं मत मिलौ, कहै कबीरा रांम। लोहा माटी मिलि गया, तब पारस कौनें कांम। यहाँ यह पंक्ति दा० नि० सा० साबे० सासो० स० प्रतियों में समान रूप से मिलती है।

(ङ) ४-१५-१ : रांम नांम जिनि चीन्हिया, झीनां पंजर तासु। दा० नि० सा० तथा गुण० में प्रथम चरण का पाठ है : **कबीर हरि का भावता** किन्तु तुल० ४-२६-१ : कबीर हरि को भावता। दूरिहिं तैं दीसंत।

(च) ५-५-१ : ऐसा कोई नां मिलै, हमकौं लेइ पिछांनि। सासी० प्रति मे इस पंक्ति का पाठ है : **ऐसा कोई नां मिला, समुझै सैन सुजांन॥** किन्तु यह पंक्ति पिछली साखी में भी ज्यों की त्यों आती है; तुल० ५-४ : ऐसा कोई नां मिलै, समझै सैन सुजांन। ढोल बजंता नां सुनैं, सुरति बिहूंनां कांन॥

(छ) ११-६-२ : कहै कबीर कैसै बनैं, एक चित्त दुइ ठौर। बी० का पाठ है : लानत ऐसे **चित्त** पर, एक **चित्त** दुइ ठौर। बी० के पाठ मे 'चित्त' की पुनरुक्ति स्पष्ट है।

(ज) १५-५६-१ : राखनहारै बाहिरा, चिड़ियें खाया खेत। दा० तथा स०

प्रतियों में **'बिनु रखवाले बाहिरा'** पाठ मिलता है। किन्तु 'बिनु' और 'बाहिरा' दोनों समानार्थी हैं; उदाहरणतया तुल० १८-२-२ : परखन-हारै बाहिरा, कौड़ी बदलै जाइ—अर्थात् बिना पारखी के कौड़ी के मूल्य बिकता है।

(झ) १६-२४-१ : रोवनहारे भी मुए, मुए जलावनहार। सा० साबे० सासी० का पाठ है : **जारनहारा** भी मुवा, मुवा **जलावनहार**। पंक्ति के दोनों चरण एक ही भाव प्रकट करते हैं।

(ञ) १६-३२-२ : सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की फांसि। नि० सा० सासी० का पाठ है : **सुर** नर मुनि जन असुर **सुर**। 'सुर' शब्द अनावश्यक रूप से दो स्थलों पर आ जाता है।

(ट) २१-३३ : मोर तोर की जेवरी, गलि बंधा संसार। कांसि कुटुंबा सुत कलित, दाझनि बारंबार॥ साबे० तथा सासी० प्रतियों में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : दास कबीरा क्यों बंधै, **जाके नाम आधार**। किन्तु प्रस्तुत संकलन की साखी १६-२ तुलनीय है, जिसका पाठ है : बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार। एक कबीरा नां मुवा, जाके रांम अधार॥

अपवाद—किन्तु मुहावरों अथवा लोकोक्तियों में पुनरुक्ति-दोष नहीं माना गया है और उन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार किया गया है। ऐसे स्थल निम्न-लिखित हैं—

(क) पद ११६-६ का निर्धारित पाठ है : कहै कबीर या पद कूं बूझै। ताकौं तीनिउं त्रिभुवन सूझै॥ पाठांतर है : राम रमत तिसि सभ किछु सूझै। 'तीनिउं त्रिभुवन' में तीन संख्या का प्रयोग दो बार रहने से पुनरुक्ति अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु अवधी, भोजपुरी बोलियों में 'तीनिउं त्रिभुवन' या 'तीनिउं तिरलोक' अब भी मुहावरे के रूप में प्रचलित हैं। अतः उक्त पाठ स्वीकृत किया गया है।

(ख) साखी ४-१-१ : कबीर चंदन कै बिड़ै, बेधे ढाक पलास। तथा ४-९-२ : जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल ढाक पलास। 'ढाक' और 'पलास' समानार्थी हैं, किन्तु बोलियों में इस प्रकार के कई युग्म प्रचलित हैं जिनमें पुनरुक्ति-दोष नहीं माना जा सकता, जैसे : ओढ़ना-कपड़ा, कुसल-खेम, हाट-बजार, राय-सलाह, पेड़-रूख, बनिया- बक्काल।

६. **प्रसंग की दृष्टि से**—कई स्थल ऐसे मिलते हैं जिनमें पूर्वापर प्रसंग के

आधार पर विचार करने से पाठ-निर्णय में सहायता मिलती है। यदि दो पाठ ऐसे मिलते हों जो अन्यथा समान रूप से ग्राह्य हों किन्तु उनमें से एक प्रसंग में खपता हो और दूसरा उसके प्रतिकूल हो तो ऐसे स्थलों पर प्रसंग-सम्मत पाठ ही हमें मूल के अधिक निकट पहुँचाता है। अतः प्रस्तुत सम्पादन में जहाँ इस प्रकार का विकल्प आया है वहाँ दो समान पाठों में से प्रसंग-सम्मत पाठ को ही अधिक मान्यता प्रदान की गयी है, इसके विपरीत प्रसंग-विरुद्ध पाठ मूल रूप में ग्रहण नहीं किया गया है। इस संबंध में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

पदों के उदाहरण—

(क) पद ३-४ का निर्धारित पाठ है : कांम क्रोध मल भरि रहे कहा देह पखारै। शबे० प्रति में 'मल' के स्थान पर **मद** पाठ मिलता है, किंतु यहाँ पर शरीर के प्रक्षालन का प्रसंग है, अतः 'मल' (=मैल, गंदगी) पाठ ही अधिक प्रासंगिक है। "काम-क्रोध रूपी मल जब शरीर से नहीं जाते तो उसे बार-बार धोने से क्या लाभ है ?"—यही कवि का यथेष्ट भाव ज्ञात होता है।

(ख) ३-५, ६ का निर्धारित पाठ है : कागद की नौका बनीं बिच लोहा भारा। सबद भेद बूझै बिनां बूड़ै मझधारा॥ शबे० में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : सबद भेद जानै नहीं **मूरख पचि हारे**। नौक के प्रसंग में 'बूड़ै मझधारा' की उपयुक्तता और 'मूरख पचि हारे' की अनुपयुक्तता स्वतः स्पष्ट है।

(ग) ८-२ : तन महिं खोजउं चोट न पावउं। ओखद मूरि कहां घंसि लावउं॥ दा० नि० स० में 'तन महिं' के स्थान पर **तन मन** पाठ मिलता है। प्रस्तुत पद में इसके पूर्व की पंक्ति है : रांम भगति अनियाले तीर। जेहि लागै सो जांनैं पीर॥ प्रेम-बाण का लक्ष्य मन ही होता है और मन टटोलने पर तो चोट मिल ही जायगी—हाँ शरीर में उसका चिह्न नहीं मिलेगा। प्रेम-बाण से विद्ध व्यक्ति का बाह्य उपचार वस्तुतः व्यर्थ सिद्ध होता है। फिर यहाँ पर जड़ी-बूटी घिस कर लगाने का प्रसंग है, जो केवल शरीर से ही सिद्ध हो सकता है। मन में जड़ी-बूटी घिस कर नहीं लगायी जा सकती, अतः 'मन' पाठ प्रसंगोचित नहीं है।

(घ) ९-३ : तूं पिंजर हौं सुवटा तोर। जमु मंजार कहा करै मोर॥ दा० नि० में द्वितीय चरण का पाठ है : **दरसन देहु भाग बड़ मोरा**। किन्तु प्रथम चरण में पिंजड़े और तोते का जो रूपक बाँधा गया है उसमें

दा० नि० का पाठ किसी भी प्रकार से नहीं खप सकता। इसके विपरीत यम रूपी बिलाव से रक्षा पाने का उल्लेख पूर्णरूपेण प्रासंगिक है।

(च) १२-२ : मुसि मुसि रोवै कबीर की माइ। ए बारिक कैसै जीवैं खुदाइ॥ गु० में 'खुदाइ' के स्थान पर **रघुराई** पाठ मिलता है, किन्तु जुलाहे की माता के मुख से 'रघुराई' सम्बोधन उतना स्वाभाविक नहीं लगता जितना 'खुदाई' का।

(च) १२-४ : कहत कबीर सुनहु मेरी माई। पूरनहारा त्रिभुवनराई॥ गु० में द्वितीय चरण का पाठ है : हमरा इनका दाता एक **रघुराई**। प्रति-पालन और सामर्थ्य के प्रसंग में 'त्रिभुवनराई' (=तीनों लोकों का राजा) शब्द 'रघुराई' (=रघुकुल के राजा) की अपेक्षा अधिक व्यंजनापूर्ण है।

(छ) १३-६ : ज्यौं कांमीं कौं कांमिनि प्यारी ज्यौं प्यासे कौं नीर रे। दा० नि० में **ज्यौं कांमिनि कौं कांम पियारा** पाठ आता है। वासना की तीव्रता के प्रसंग में 'कांम' (सूक्ष्म) की अपेक्षा 'कांमिनि' (स्थूल) के प्रति आकर्षण दिखाना अधिक स्वाभाविक है।

(ज) १७-२ : सब मैं व्यापक सबकी जांनैं ऐसा अंतरजांमीं। शबे० में 'सब की जांनैं' के स्थान पर **सब से न्यारा** पाठ मिलता है, किन्तु अन्तर्यामी के प्रसंग में 'सब की जांनैं' पाठ ही अधिक समीचीन सिद्ध होता है।

(झ) १७-४, ५ : सील संतोख पहिरि दोइ कंगन होइ रही मगन दिवांनीं। कुमति जराइ करौं मैं काजर पढ़ी प्रेम रस बांनीं॥ 'कंगन' और 'काजर' के स्थान पर शबे० प्रति में क्रमशः **सतगुन** और **कोइला** पाठ आते हैं। उक्त पंक्तियों में भक्ति रूपी कामिनी के श्रृंगार का वर्णन है। उप-मेय पक्ष में शील तथा संतोष का निर्देश हो जाने पर उपमान पक्ष में किसी स्थूल आभूषण का उल्लेख अपेक्षित है न कि किसी सात्विक गुण का। शबे० के 'सतगुन' पाठ से रूपक की पूर्ण सिद्धि नहीं होती। इसके विपरीत 'कंगन' पाठ से उक्त समस्या हल हो जाती हैं। श्रृंगार की सामग्रियों में कोयले का कोई स्थान भी नहीं, क्योंकि कोयला जलाने में अथवा मुँह काला करने में भले ही प्रयुक्त हो, साज-श्रृंगार उससे नहीं हो सकता। इसके विपरीत काजल श्रृंगार-प्रसाधन की एक प्रमुख सामग्री है।

(ञ) २२-५ : नांउं मेरै निरधन ज्यूं निधि पाई। कहै कबीर जैसै रंक मिठाई। गु० में इस पंक्ति का पाठ है : **माइग्रा महि** जिसि रखै उदास। कहि कबीर हउ ताको दास ॥ संपूर्ण पद में नाम-माहात्म्य का प्रसंग रहने से पद की केवल अंतिम पंक्ति में अचानक माया के मध्य उदास रहने की बात नितांत अप्रासंगिक लगती है।

(ट) २५-८ : सत संतोख लै लरनैं लागा तोरे दुइ दरवाजा। गु० में 'दुइ' के स्थान पर **दस** पाठ मिलता है। पद के आरम्भ में ही दरवाज़ों की संख्या दो बतायी गयी है : कांम किंवार दुख सुख दरबांनीं पाप पुन्नि दरवाजा।

(ठ) ३६-१० तुम्ह समसरि नांहीं दयालु मोहिं समसरि पापी। दा० नि० का पाठ है : तुम्ह समांन दाता नहीं हमसे नहिं पापी। पापी के प्रसंग में दाता की उतनी सार्थकता नहीं जितनी दयालु की होती है।

(ड) ४०-५ : पर निंदा पर धन पर दारा पर अपवादहिं सूरा। गु० में इसका पाठ है : पर धन पर तन **परती निंदा** पर अपवाद न छूटै। दूसरे के धन अथवा स्त्री की निन्दा नहीं की जाती, प्राय: उनसे ईर्ष्या की जाती है अथवा और पतन होने पर अनुचित संबंध जोड़ा जाता है।

(ढ) ५०-६ : थाकी सौंज संग के बिछुरे रांम नांम बसि होई। दा० नि० स० प्रतियों में है : रांम नांम **मसि** धोई। किन्तु यहाँ 'मसि' (=कालिख, स्याही) धोने का कोई प्रसंग नहीं।

(ण) ७८-५ : हंसा सरवर कंवल सरीर। रांम रसाइन पिव रे कबीर ॥ गु० में 'कमल' के स्थान पर **काल** पाठ है, किन्तु सरोवर के रूपक में काल की प्रासंगिकता चिन्त्य है।

(त) ९२-६ : कहै कबीर इक भक्त न जैहैं जिनकी मति ठहरांनीं। नि० में इसका पाठ है : कहै कबीर तेरा **संत जाइगा** रांम भगति ठहरांनी ॥ पद में यह विचार प्रतिपादित किया गया है कि संसार की जितनी महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं—राजा-रानी, योगी-ज्ञानी, चन्द्र-सूर्य, पवन-पानी—सभी अंत में विलीन हो जाती हैं। इस नश्वर जगत् में केवल भक्त ऐसा बच रहता है जो भगवान के भरोसे कभी नष्ट नहीं होता अर्थात् उसकी कीर्ति अमर हो जाती है; किन्तु नि० प्रति के पाठ से कवि का प्रमुख मन्तव्य ही समाप्त हो जाता है।

(थ) १०३ : को न मुवा कहु पंडित जनां। सो समुझाइ कहहु मोहिं सनां ॥

मूए ब्रह्मां बिस्नु महेसा । पारबती सुत मुए गनेसा ।।
मूए चंद मुए रबि सेसा । मुए हनुमत जिन बांधल सेता ।।
मूए कृस्न मुए करतारा । एक न मुवा जो सिरजनहारा ।।
कहै कबीर मुवा नहिं सोई । जाकै आवागमन न होई ।।

दा० नि० में प्रथम पंक्ति के पश्चात् की पंक्तियों का पाठ है—

माटी माटी रही समाइ । पवनैं पवन लिया संग लाइ ।।
कहै कबीर सुनि पंडित गुनीं । रूप मुवा सब देखै दुनीं ।।

दोनों पाठों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पहला रूपांतर दूसरे की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और प्रसंगानुकूल है।

(द) १३६-१, २ : मन मोर रहटा रसनां पिउरिया । हरि कौ नांव लै काति बहुरिया ।। ब्री० में 'रसनां' के स्थान पर **रतन** पाठ है जो उक्त प्रसंग में निरर्थक है । इसके विपरीत 'रसनां' पाठ की सार्थकता स्पष्ट है । **मन** चर्खा है जिसमें जिह्वा पियुनी के समान है। उसके द्वारा हरि नाम रूप सूत कातो अर्थात् मन और वाणी से भगवान का नाम स्मरण करो ।

(ध) १३९-३, ४ : बालपनां के मीत हमारे । हमहिं छांड़ि कत चलेहु निनारे ।। बी० में 'निनारे' के स्थान पर **सकारे** पाठ है, किन्तु मित्रता के प्रसंग में 'सकारे' (=शीघ्र, समय के पूर्व) की अपेक्षा 'निनारे' (=न्यारे होकर, त्याग कर) पाठ मूल भाव के अधिक निकट का ज्ञात होता है।

(न) १६३ : बिखिया अजहूं सुरति सुख आसा ।
होन न देइ हरि के चरन निवासा ।।
सुख मागें दुख आगैं आवै । तातैं सुख मांग्या नहिं भावै ।।
ता सुख तैं सिव बिरंचि डेरानां। सो सुख हमहुं सांच करि जांनां ।।
सुख छांड़ा तब सब दुख भागा । गुर के सबद मेरा मन लागा ।।
कहै कबीर चंचल मति त्यागी । तब केवल रांम नांम लै लागी ।।

गु० में अंतिम दो पंक्तियों के स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

सनकादिक नारद मुनि सेखा । तिनभी तन महि मनु नही पेखा ।।
इस मन कउ कोई खोजहु भाई । तन छूटे मन कहां समाई ।।
गुरु परसादी जैदेव नामा । भगति के प्रेम इनही है जाना ।।
इस मनु कउ नही आवन जाना। जिसका भरम गइआ तिन सांच पछाना ।।

पूर्व उद्धृत पद में विषय-सुख का प्रसंग है, किन्तु गु० की अतिरिक्त पंक्तियों का विषय बदल गया है। वे स्पष्ट ही मन के संबंध में हैं। यह पंक्तियाँ दा० नि० स० तथा बी० प्रतियों में अन्यत्र एक स्वतंत्र पद के रूप में मिलती हैं, और प्रसंगानुकूल होने के कारण इस पुस्तक में वहीं के लिए स्वीकृत भी हुई हैं (दे० पद ४८)। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण पद १७९ में भी मिलता है जिसका विस्तार स्थलसंकोच के कारण यहाँ नहीं हो सकता।

(प) १७६-१ : आसन पवन दूरि करि रौरा। छांड़ि कपट नित हरि भजि बौरा॥ दा१, दा२ तथा नि० में **आसन पवन किए दिढ़ रहु रे** पाठ मिलता है। वास्तव में कबीर ने इस पद में हरि-भजन की तुलना में आसन-प्राणायाम आदि हठयोगी क्रियाओं को व्यर्थ बताया है। यह भाव पद की अगली पंक्तियों में और भी मुखर हो उठा है : का सींगी मुद्रा चमकाएं। का बिभूति सब अंग लगाएं। कहै कबीर कछु आंन न कीजै। रांम नांम जपि लाहा लीजै॥ दा० तथा नि० द्वारा प्रस्तुत पाठ में आसन-पवन की क्रियाओं का समर्थन किया गया है, जिससे यह पाठ भ्रामक हो जाता है।

(फ) १८५-४ : एक बूंद ते सृष्टि रचो है कौंन बांभन कौंन सूदा। दा० नि० स० में प्रथम चरण का पाठ है : एक **जोति** तैं सब उतपनां। ब्राह्मण-शूद्र के प्रसंग में ज्योति अथवा नूर से सृष्टि-रचना का वर्णन उपयुक्त नहीं लगता। नूर से सृष्टि की उत्पत्ति मुसलमानी धर्म में मानी गयी है। यहाँ पर पाराणिक सृष्टि-प्रक्रिया का आधार ही प्रसंगोचित है।

साखियों के उदाहरण—

(क) २-११ : भेरा पाया सरप का, भवसागर के मांहि। जौ छांड़ीं तौ बूड़िहीं, गहीं तौ डसिहै बांहि॥ 'बूड़िहीं' के स्थान पर साबे० में **बांचिहै** (=बच जायगा) पाठ है जो वस्तुत: विपरीत अर्थ प्रकट करता है।

(ख) ९-२३ : पंजरि प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास। मुखि कस्तूरी महमहीं, बांनीं फूटी बास॥ 'मुखि कस्तूरी महमहीं' के स्थान पर सा० साबे० सासी० में **सुख करि सूती महल में** पाठ आता है, जिसका यहाँ कोई प्रसंग नहीं।

(ग) २२-१० : पारब्रह्म बड़ मोतियां, झड़ि बांधी सिखरांहं। सगुरां सगुरां

चुनि लिए, चूकि पड़ी निगुरांहं ॥ दा० नि० स० गुण० में 'झड़ि' के स्थान पर **घड़ि** (=गढ़ कर) पाठ मिलता है। यहाँ मोतियों को गढ़ने का कोई प्रसंग नहीं है क्योंकि आगे की पंक्ति में उन्हें चुनने का भी उल्लेख है। वास्तव में कवि का तात्पर्य यहाँ यह है कि पर्वत-शिखर पर अर्थात् त्रिकुटी पर स्थित ब्रह्मरंध्र में परब्रह्म रूपी बड़े मोतियों की झड़ी लग रही है; जिन्हें सतगुर का ज्ञान प्राप्त है वे उसे चुन लेते हैं, निगुरे लोग धोखे में रह जाते हैं।

(घ) २४-६ : साधू की संगति रहउ, जौ की भूसी खाउ। खीर खांड भोजन मिलै, साकत संग न जाउ ॥ गु० में तृतीय चरण का पाठ है : **होनहार सो होइहै**। किन्तु जौ की भूसी के विरोध में खीर, खांड आदि व्यंजनों का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक और प्रासंगिक है।

(ङ) २४-१३-२ : सिर ऊपरि आरा सहै, तऊ न दूजा होइ। 'आरा' के स्थान पर नि० में **वोरा** पाठ है। आगे बिलग होकर दो होने का प्रसंग है, और यह कार्य 'आरा' (=चीरने का एक औजार) से ही सम्भव हो सकता है, 'वोरा' (=पाला, तुषार) से नहीं।

(च) २६-२ : कागद केरी ओबरी, मसि के किए कपाट। पाहन बोरी पिरथमीं, पंडित पाड़ी बाट ॥ 'कागद' के स्थान पर दा० नि० स० में **काजर** पाठ मिलता है। यहाँ पंडितों की पोथी का रूपक है जिसमें 'कागद' पाठ ही अधिक प्रासंगिक है, न कि 'काजर'।

(छ) २६-४-१ : तीरथि चाले दुइ जनां, चित चंचल मन चोर। बी० में 'तीरथ गए तीनि जन' पाठ आता है। किन्तु पंक्ति के उत्तरार्द्ध में केवल दो ही प्रकार के व्यक्ति गिनाये गये हैं।

(ज) २७-१ : खीर रूप हरि नांव है, नीर आंन ब्यौहार। हंस रूप कोइ साधु है, तत का छांननहार ॥ 'छांननहार' के स्थान पर दा० स० गुण० में **जांननहार** पाठ है। हंस द्वारा नीर-क्षीर-विवेक के प्रसंग में जानने की अपेक्षा छानने का भाव ही अधिक समीचीन सिद्ध होता है।

७. **शब्दों के क्लिष्टतर रूप की दृष्टि से**—प्रतिलिपिकारों की यह प्रवृत्ति होती है कि जटिल तथा अप्रचलित शब्दों के स्थान पर समान मात्रा अथवा गण वाला कोई प्रचलित और सरलतर शब्द रख दिया करते हैं। इसके मूल में उनकी यह धारणा ज्ञात होती है कि ऐसा परिवर्त्तन कर देने पर पाठकों को अर्थ-संबंधी कठिनाई नहीं रहेगी। किन्तु इस प्रवृत्ति से मूल पाठ धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है,

और कालान्तर में हम रचनाकार की विशिष्ट शब्दावली के ज्ञान से वंचित हो जाते हैं। कबीर-वाणी की प्रतियों में भी इस प्रकार के अनेक संशोधन मिलते हैं। वस्तुतः संकलन में जहाँ कहीं दो या दो से अधिक प्रतियों द्वारा अन्यथा समान रूप से ग्राह्य दो पाठ प्रस्तुत हुए हैं वहाँ उनमें से प्रायः क्लिष्टतर तथा अप्रचलित पाठ को ही मूल के अधिक निकट का समझ कर स्वीकृत किया गया और इसके विपरीत सरलतर पाठ को प्रायः अस्वीकृत किया गया है। निम्नलिखित उदाहरणों से इसकी पुष्टि हो जायगी।

पदों के उदाहरण—

(क) प्रस्तुत संकलन में पद ८-३ का निर्धारित पाठ है : एक भाइ दीसैं सब नारी। नां जांनौं को पियहिं पियारी ॥ तुल० दा० नि० स० : **एक रूप** दीसैं सब नारी।

(ख) १२-२ : मुसि मुसि रोवै कबीर की माइ। ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाइ ॥ तुल० दा० नि० : **ठाढ़ी** रोवै कबीर की माइ। ए **लरिका** कैसे जीवहिं खुदाइ ॥

(ग) ६४-३ : मुचि मुचि गरभ भई किन बांझ। बुड़भुज रूप फिरै कलि मांझ ॥ तुल० दा० नि० : **सूकरि रूप** फिरै कलि मांझ। बुड़भुज ∠ (सं० विड्भुज; विड्=बिष्ठा + भुज्=खाने वाला)।

(घ) ८२-६ : संपै देखि न हरखिऐ, बिपति देखि नां रोइ। ज्यौं संपै त्यौं बिपति है, करता करै सो होइ ॥ 'संपै' के स्थान पर दा० नि० में **संपति** पाठ मिलता है, किन्तु अपभ्रंश रूप होने के कारण 'संपै' ही स्वीकृत किया गया है।

(च) ११४-५ : उंदरी बपुरी मंगल गावै (सं० उन्दुरी (='चूहा' का स्त्रीलिंग) तुल० गु० : घर घर **मुसरी** मंगल गावै।

(छ) १६६-२ : काजल टीकि चसम मटकावै। तुल० शबे० **अंजन नैन दरश** चमकावै।

(ज) १७१-२ : जे नर भए भगति तें बाहज तिन तैं सदा डरांनैं रहिए। बाहज ∠ सं० बाह्य। तुल० दा० नि० स० : भगति थैं **न्यारे**।

(झ) १८१-७ : ग्यारह मास कहौ क्यूं खाली एकहि मांहि नियांनां। तुल० दा० नि० स० : एकहि मांहि **समांनां**, गु० एकहि माहि **निधाना**। 'नियाना' पाठ बीभ० प्रति में मिलता है और 'निधाना' (=कोष, खज़ाना) का प्राचीन्तर रूप होने के कारण वही स्वीकृत भी हुआ है।

(ञ) १९५-१ : पंडिम्रा कवन कुमति तुम लागे। दा० नि० में **पांडे** पाठ मिलता है, किन्तु अपभ्रंश रूप होने के कारण 'पंडिम्रा' (=पंडिता) ही स्वीकृत किया गया है।

साखियों के उदाहरण—

(क) २-३२-१ : आइ न सक्कौं तुज्झ पै, सकौं न तुज्झ बुलाइ। तुल० सा० साबे० सासी० : आय न सकिहौं **तोहिं पै**, सकहुं न **तोहिं** बुलाय।

(ख) २-४१ : बिरहिन थी तौ क्यूं रही, जरी न पिउ कै नालि। तुल० सा० साबे० सासी० : जरी न पिव के **साथ**। (नालि=समीप में, पास में)।

(ग) ३-२-२ : इक दिन सोवन होइगो, लांबे गोड़ पसारि। तुल० दा० नि० सासी० : लंबे **पांव** पसारि; सा० साबे० : लंबे **पैर** पसारि। किन्तु ठेठ अवधी का रूप होने के कारण गु० द्वारा प्रस्तुत किया 'गोड़' पाठ ही मूल रूप में स्वीकृत हुआ है।

(घ) ३-१०-२ तथा ३-११-१ : कोटि करम फिल पलक मैं (फिल=फ़ना फिल्ला, बिनष्ट)। तुल० सा० साबे० सासी० : कोटि करम पल में **कटै**।

(ङ) ४-५-२ : ते घर मरहट सारिखे, भूत बसैं तिन मांहि॥ तुल० गु० सा० सासी० : **मरघट**।

(च) ६-२६-२ : ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ। 'लाइ' (=अग्नि) के स्थान पर सा० साबे० में **आग** पाठ मिलता है, और उससे तुक मिलाने के लिए प्रथम पंक्ति का पाठ 'बाहर कतहुं न जाय' परिवर्तित कर 'बाहर कतहुं न लाग' कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त सासी० में 'बलंतो' के स्थान पर **जलती** पाठ कर दिया गया है, जो सरलीकरण की प्रवृत्ति का ही फल है।

(छ) १२-७-२ : देवल बूड़ा कलस सौं, पंखि तिसाई जाइ। 'तिसाई' ∠ सं० तृषार्त्त (=प्यासी)। 'तिसाई' के स्थान पर सासी० में **पियासा** पाठ मिलता है।

(ज) १५-३१-१ : कबीर सभ जग हंढिया, मादल कंध चढ़ाइ। हंढिया= भ्रमण किया; तुल० सरहपाद : एकली सबरी ए बन हिण्डइ कर्ण-कुंडल बज्रधारी। गु० सभु जगु हउं **फिरिम्रो**, नि० सज जग **देखिम्रा**; सा० सासी० सब जगह **हेरिया**।

(झ) १५-४३-१ : रांम नांम करि बौंहड़ा, बाहै बीज अघाइ। बौंहड़ा=

बीज-वपन में प्रयुक्त बाँस की एक नलिका जिसमें होकर बीज गिरता है, मालाबाँसा। सा० तथा साबे० में 'राम नाम **हल जोतिए**' पाठ आता है।

(ञ) १५-६५-१ : डागल ऊपरि दौरनां, सुख नींदरीं न सोइ। डागल=मकान के ऊपर की ढालुवाँ छत जिस पर दौड़ना ख़तरे से ख़ाली नहीं। सा० साबे० सासी० में 'डागल' के स्थान पर **कोठे** पाठ आता है।

(ट) १६-४०-२ : काल्हि अलहजा मैड़ियां, आज मसांनां दीठ। 'अलहजा' =फ़ा० आलीजाह, राजाधिराज, शाहंशाह। दा० गुरा० में इस पंक्ति का पाठ है : कालिह **जो बैठा** माड़ियां, आजु मसांनां डीठ।

(ठ) १७-१-२ : जिहि बैसंदर जग जरै, सो मेरै उदिक समांन। बैसंदर∠ सं० वैश्वानर=अग्नि का पर्यायवाची एक शब्द। गु० में इसके स्थान पर 'जिनि **जुआला** जग जारिया' पाठ मिलता है।

(ड) २१-१-१ : औरां कौं परमोधतां, मुहड़ै परिया रेत। 'परमोधतां' (=प्रबोधन करते हुए) के स्थान पर गु० में **उपदेसते** पाठ मिलता है और बी० में **सिखलावते**।

(ढ) २१-३-२ : हेरा रोटी कारनैं, गला कटावै कौंन। 'हेरा' (=मांस, गोश्त) के स्थान पर दा१ में **पेड़ा** पाठ मिलता है। किंतु यह लिपि-भ्रम से भी सम्भव हो सकता है।

(ण) २१-८-१ : कासी काठैं घर करै, पीवै निरमल नीर। 'काठैं' (=नदी के तट पर) के स्थान पर गु० में **तीर** पाठ मिलता है।

(त) २४-७-१ : काजर केरी ओबरी, असा यहु संसार। 'ओबरी'=(अत्यन्त अंधेरी और तंग कोठरी) के स्थान पर बी० तथा सा० में **कोठरी** है।

(थ) २५-८-२ : सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रहि गइ रेख। तुल० बी० सांई के परचे **बिनां**।

(द) ३०-८-१ : पासि बिनंठा कापड़ा, कदे सुरंग न होइ। पासि=पास में, बिनंठा=विनष्ट, सड़ा-गला। इसके अनेक पाठ-भेद मिलते हैं ; तुल० सा० **कपास अनूठा** कापड़ा, साबे० **पास न जाके** कापड़ा, सासी० **कपास बिनूठा** कापड़ा।

(ध) ३०-११-२ : आगि आगि सब एक है, तामैं हाथ न बाहि। हाथ न बाहि=हाथ मत डालो। सा० साबे० सासी० में इसका पाठ है : **हाथ दिये जरि जाय**।

८. **अर्थ की दुर्बोधता की दृष्टि से**—ऊपर ऐसे पाठ-परिवर्तनों की चर्चा की गयी है जिनमें अप्रचलित पाठों के स्थान पर उनका सरलीकृत रूप देने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु कहीं-कहीं मूल पाठ का भाव ठीक न समझ सकने के कारण प्रतियों में ऐसे पाठ-भेद मिलते हैं जिनसे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। ऐसी भ्रांतियाँ प्रायः भाषा के ठेठ शब्दों के सम्बन्ध में अथवा ऐसे शब्दों के संबंध में हुई हैं जिनका प्रयोग किसी विशिष्ठ अर्थ में होता है और जिससे अपरिचित होने के कारण प्रतिलिपिकार भूल कर बैठते हैं। ऐसे स्थलों पर विभिन्न पाठभेदों तथा उनके अर्थों पर मनन करने से उपयुक्त पाठ का निर्णय स्वतः हो जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित स्थल विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

पदों के उदाहरण—

(क) पद २३-८ का निर्धारित पाठ है: तीनि बेर पतिआरा लीन्हां। मन कठोर अजहूं न पतीनां॥ 'पतियारा' अवधी का एक ठेठ शब्द है। किसी वस्तु या व्यक्ति के खोटे या खरेपन का भलीभाँति निरीक्षण करने या कसने को 'पतियारा लेना' कहते हैं। इस अर्थ से कदाचित् अनवगत होने के कारण गु० में उक्त पाठ के स्थान पर 'पतिआ भरि लीना' पाठ मिलता है, जिसका यहाँ कोई प्रसंग नहीं।

(ख) ३६-३: उतपति बिंदु भयौ जा दिन तैं कबहूं सचु नहिं पायौ। कबहूं सचु नहिं पायौ=कभी सुख शान्ति न मिली। तुल० साखी ६-११-१: सचु पाया सुख ऊपनां, दिल दरिया भरपूरि। किन्तु कदाचित् इसे 'सच' (=सत्य) का पर्यायवाची समझ कर शबे० में '**सांच** कहूं नहिं पाया' कर दिया गया है।

(ग) ४०-१०: कहत कबीर भीर जन राखहु हरि सेवा करउं तुम्हारी। 'भीर जन राखहु'=जन की भीर रक्खो अर्थात् दास का कष्ट निवारण करो। किन्तु दा० नि० में उक्त पंक्ति का पाठ है: कहै कबीर धीर **मति** राखौ सांसति करौ हमारी। स्पष्ट है कि 'जन' को नकारात्मक 'जनि' (=मत) समझ लेने के कारण ही दा० नि० में उक्त भ्रामक पाठ आया है। 'सांसति करौ हमारी' से भी विपरीत अर्थ प्रकट होता है।

(घ) ८७-२: यहु जु दुनिया सिहरमेला कोई दस्तगीरी नांहि। 'सिहरमेला' =प्रातः काल लोहा लगने के समय अन्धकार और प्रकाश का मेल, जो क्षणिक होता है (सिहर ∠ फ़ा० सह्र=प्रातःकाल)। दा१ दा२

में इस पंक्ति का पाठ है : **महल माल अजीज औरति** कोई दस्तगीरी नांहि । दा३ तथा नि० में '**सहज अमल अजीज** है' पाठ मिलता है ।

(ङ) ६३-२ : जाके घर मैं कुबुधि बिण्यांणीं (=बनांनीं) पल पल मैं चित चोरै । 'बिण्यांणीं' अथवा 'बनांनीं'=बनिया की स्त्री, बानिन । शबे० में प्रथम चरण का पाठ है : घर में दुबिधा कुमति **बनी** है ।

(च) ११२-३, ४ : तरवर एक अनंत डारि साखा पुहुप पत्र रस भरिया । यहु अंम्रित की बाड़ी है रे तिनि हरि पूरै करिया ॥ बाड़ी=बाग, उद्यान; अर्थात् यह अमृतमय उद्यान है जिसकी रचना परमेश्वर ने की है । दा० नि० स० में उक्त पंक्तियों का पाठ है : तरवर एक अनंत मूरति सुरता लेहु पछांणीं । साखा पेड़ फूल फल नांहीं ताकी अंम्रित **बांणीं** ॥ 'बाड़ी' तथा 'बाणी' में कदाचित् उच्चारण-साम्य के कारण दा० नि० स० का पाठ यहाँ भ्रमात्मक हो गया है ।

(छ) साखी २६-६-१ का निर्धारित पाठ है : जप तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बेसास । बेसास=धोखा, विश्वासघात । तुल० 'बिसासी सुजान के आंगन लै बरसौ' (घनानंद) । सा० साबे० सासी० में 'बेसास' के स्थान पर **विश्वास** पाठ दिया गया है । 'बेसास' का विशिष्ट अर्थ न समझ सकने के कारण ही कदाचित् यह पाठ-परिवर्तन किया गया है ।

९. **भाषा की दृष्टि से**—यह प्रायः निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि कबीर का अधिकांश जीवन काशी अथवा उसके आस-पास के प्रदेशों में व्यतीत हुआ था । भाषा की दृष्टि से काशी अवधी तथा भोजपुरी दोनों क्षेत्रों की सीमा पर स्थित है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर की भाषा में पूर्वी प्रयोगों का अधिक मिलना नितांत स्वाभाविक है, और इसके विपरीत अन्य प्रादेशिक बोलियों का प्रभाव सामान्यतः प्रक्षिप्त रूप में ही माना जा सकता है । अतः जहाँ दो अन्यथा समान रूप से मान्य पाठों में से एक उनकी स्थानीय भाषा के निकट का और दूसरा उससे दूर का ठहरता है, वहाँ स्वाभावतः निकटवर्ती प्रयोग को ही मान्यता दी गयी है और उसकी तुलना में अन्य को अस्वीकृत कर दिया गया है । साथ ही यदि ऐसे पूर्वी पाठ किसी पश्चिमी प्रति में मिलते हैं तो वे और भी ग्राह्य हो जाते हैं । उदाहरण के लिए निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं—

(क) पद १६-२ का स्वीकृत पाठ है : जब हंम रहलीं हठिल दिवांनीं तब पिय मुखहु न बोलै । पाठान्तर : तुल० नि० **पहली थी बंदी मांन गुमांनण** जब पिय मुखां न **बोल्या वे** ।

(ख) ५३-६ : जोलहै तनि बुनि पांन न पावल फारि बिनै दस ठांई हो। तुल० बी० : जोलहा तांन बान नहि **जानै**।

(ग) ५३-७ : त्रिगुन रहित फल रमि हम राखल तब हमरो नांव रामराई हो। तुल० बी० : तिरबिधि रहौं सभनि मां **बरतौं** नाम मोर राम राई हो।

(घ) १७०-३, ४, ५, ६ का निर्धारित पाठ है—

चंदन कै ढिग बिरिख जो भैला। बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला॥
पारस कौं जे लोह छिवैला। बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला॥
गंगा मैं जे नीर मिलैला। बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला॥
कहै कबीर जे रांम कहैला। बिगरि बिगरि सो रांमहिं ह्वैला॥

'भैला', 'ह्वैला', 'छिवैला', 'मिलैला', 'कहैला' आदि पूर्वी रूप दा० तथा स० प्रतियों में मिलते हैं। नि० प्रति में यह सभी शब्द **'—गा'** प्रत्ययान्त हो गये हैं, जैसे **ह्वैगा, छिवैगा** आदि और गु० में उक्त पंक्तियों का पाठ निम्नलिखित है—

चंदन के संगि तरुवर **बिगरिओ**। सो तरुवर चंदन ह्वै **निबरिओ**॥
पारस के संग तांबा बिगरिओ। सो तांबा कंचन ह्वै **निबरिओ**॥
गंगा के संग सरिता बिगरी। सो सरिता गंगा ह्वै **निबरी**॥
संतन संगि कबीर **बिगरिओ**। सो कबीर रामहिं ह्वै **निबरिओ**॥

(ङ) १७६-१ : आसन पवन दूरि करि रउरा। छांड़ि कपट नित हरि भजु बउरा॥ तुल० दा१ दा२ नि० : आसन पवन किए दृढ़ **रहु रे** (विपरीतार्थी भी)।

(च) १८७-३, ४ : सरजीव आंनैं देह बिनासै माटी बिसमिल कीया। जोति सरूपी हाथि न आया कहौ हलाल क्यूं कीया॥ दा० नि० स० में 'कीया' के स्थान पर **कीता** पाठ मिलता है, जो स्पष्टतः पंजाबी का शब्द है।

(छ) १८७-६ : दिल नापाक पाक नहि चीन्हां तिसका मरम न जांनां। दा१ में द्वितीय चरण का पाठ है : **उसदा** खोज न जांनां। दा२ नि० स० में 'उसदा' के स्थान पर **उसता** पाठ है, किन्तु यह दोनों शब्द पंजाबी के हैं।

साखियों के उदाहरण—

(ज) २-३३-२ : मारनहारा जांनिहै, कै जिहिं लागी सोइ। तुल० नि० **मारणहारा जांणिसी** (राजस्थानी)।

(झ) ४-३५-२ : भाग तिनहुं का हे सखी, जिहिं घटि परगट होय। तुल० दा३ : भाग तहंदा हे सखी।

(ञ) १४-६ : कोनैं परे न छूटिहै, सुनि रे जीव अबूझ। कबीर मरि मैदांन मैं, करि इंद्रिन सौं जूझ ॥ तुल० दा० नि० स० गुरा० : 'खूणैं पड़्या न छूटिहै' तथा 'इंद्रचां सौं' (राजस्थानी)।

(ट) १५-६३-२ : ऊजर भए न छूटिहै, सुख निंदरी न सोइ। 'छूटिए' के स्थान पर नि० सा० साबे० सासी० में छूटिसी है।

किन्तु जहाँ स्वीकृत समुच्चयों का साक्ष्य मिल जाता है वहाँ पूर्वी रूप रहते हुए भी सिद्धांततः वही पाठ स्वीकृत करना पड़ता है जो स्वीकृत समुच्चय से सिद्ध हो। किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। उदाहरण के लिए पद १३-६-२ का निर्धारित पाठ है : हरि का नांउ लै काति बहुरिया। बी० में 'कातल' पाठ है, किन्तु बी० की एक अन्य प्रति में 'कातति' पाठ मिलने से दा० नि० बी० के समुच्चय के अनुसार 'काति' पाठ ही स्वीकृत किया गया, 'कातल' नहीं।

पश्चिमी प्रभाव को यथासम्भव कम करने पर भी साखियों में यत्र-तत्र कुछ पश्चिमी रूप मिल जाते हैं, किन्तु उन्हें स्वीकृत समुच्चयों के साक्ष्य पर स्वीकार करना पड़ा है। इतना होते हुए भी, जैसा अन्यत्र निर्देश किया गया है, उनके सम्भावित पूर्वी रूप आगे कोष्ठक में दे दिये गये हैं।

१०. **व्याकरण की दृष्टि से**—यदि समान रूप से मान्य प्रतियों द्वारा विभिन्न पाठ प्रस्तुत किये गये हों और उनमें से कोई एक व्याकरण की दृष्टि से भी शुद्ध हो और शेष व्याकरण के नियमों के विरुद्ध पड़ते हैं तो व्याकरण-सम्मत पाठ को ग्रहण करने से ही हम रचना के मूल रूप तक पहुँच सकते हैं। यद्यपि कबीर की वाणी में व्याकरण अथवा वाक्य-रचना-सम्बन्धी नियमों के यथातथ्य पालन की ओर विशेष झुकाव नहीं मिलता, फिर भी समान रूप से मान्य विभिन्न पाठांन्तरों में यदि कोई पाठ व्याकरण-संगत भी है तो कोई कारण नहीं कि अन्य पाठ-भेदों की तुलना में उसे मान्यता न दी जाय। निम्नलिखित उदाहरण ऐसे हैं जिनके पाठान्तर व्याकरण-विरुद्ध होने के कारण अस्वीकृत हुए हैं। इनमें से कुछ में लिंग, वचन आदि संबंधी अशुद्धियाँ हैं और कुछ की वाक्य-रचना दूषित है।

पदों के उदाहरण—

(क) २-५ का निर्धारित पाठ है : डांइन एक सकल जग खायौ सो भी देखि डरी। शबे० प्रति में इसका पाठ है : या कारे ने सब जग खायौ सतगुर देखि डरी। स्त्रीलिंग क्रिया 'डरी' के साथ पुं० कर्त्ता 'कारे' असं-

गत, इसके अतिरिक्त कबीर की रचना में 'ने' का प्रयोग भी चिन्त्य है।

(ख) ८-४ : कहै कबीर जाकै मस्तकि भाग । सब परिहरि ताकौं मिलै सुहाग ॥ दा० नि० स० में द्वितीय चरण का पाठ है : **नां जांनूं काकूं देइ सुहाग** । इस पाठ से प्रथम चरण के 'जाकै' शब्द की कोई संगति नहीं रह जाती । इसके विपरीत निर्धारित पाठ में 'जाकै' के उत्तर में 'ताकौं' मिल जाने से वाक्य-रचना स्वाभाविक हो गयी है ।

(ग) १३-८ : अबतौ बेहाल कबीर भए हैं, बिनु देखे जिउ जाइ रे। दा० नि० का पाठ है : **ऐसे हाल** कबीर भए हैं । 'हाल' तथा 'कबीर' में व्याकरण की दृष्टि से परस्पर क्या सम्बन्ध है, इस प्रश्न के लिए उक्त पाठ में कोई उत्तर नहीं।

(घ) १४-५ : प्रेम मगन ह्वै नाचि सभा मैं रीझै सिरजनहारा। शबे० का पाठ है : सहस कला कर मन मेरो **नाचै**। किन्तु ऊपर की पंक्तियों में 'नाचु', 'बजाइ', 'ह्वै रहु' आदि आज्ञासूचक क्रियाओं के क्रम में वर्त्तमानकालिक क्रिया 'नाचै' व्याकरण की दृष्टि से अनुपयुक्त है ।

(ङ) १४-६ : जौ तूं कूदि जाउ भवसागर कला बदौं मैं तेरी । शबे० तथा शक० में 'तेरी' के स्थान पर क्रमशः **तेरो** अथवा **तेरा** पाठ मिलते हैं, किन्तु स्त्री० संज्ञा 'कला' के साथ पुलिंगवाची विशेषण 'तेरो' अथवा 'तेरा' व्याकरण-विरुद्ध हैं।

(च) २४-७, ८ : कहै कबीर कोइ संग न साथ । जल थल मैं राखै रघुनाथ ॥ गु० में द्वितीय पंक्ति का पाठ है : जल थल **राखन** है रघुनाथ । इसमें 'राखन है' पाठ की स्थिति भ्रामक है ।

(छ) ५४-२ : सो बैकुंठ कहौ धौं कैसा करि पसाव मोहिं दइहौ । गु० का पाठ है : सो धौं मुकति कहा देउ कैसी करि प्रसाद **मोहिं पाई है**। 'मोहिं' (=मुझे, मुझको) शब्द कर्म के रूप में आ जाने से 'पाई है' क्रिया की सार्थकता चिन्त्य हो गयी है ।

(ज) १५३-२ : रैंनि दिवस मोकूं उठि उठि लागैं पंच ढोटा इक नारी। बी० में 'मोकूं' शब्द के स्थान पर **मिलि** आता है, किन्तु एक पूर्वकालिक क्रिया 'उठि उठि' वर्तमान रहने पर पुनः 'मिलि' अनावश्यक हो जाती है । इसके अतिरिक्त 'मिलि' पाठ स्वीकार कर लेने से 'लागैं' क्रिया के कर्म का अभाव भी खटकता है ।

(झ) १७२-४ : अंम्रित लै लै नीम सिंचाई । कहै कबीर वाकी बांनि न जाई ॥

गु० में द्वितीय चरण का पाठ है : कहत कबीर **उआ का सहज न जाई ॥** किन्तु कर्त्ता के अभाव से यह वाक्य अपूर्ण रह जाता है।

११. प्रयोग-वैषम्य की दृष्टि से—यदि कोई शब्द किसी विशेष प्रसंग में एक से अधिक स्थलों पर एक ही प्रकार से प्रयुक्त हुआ हो और इसी प्रकार के प्रसंग में अन्यत्र कहीं उसका भिन्न रूप मिल जाता हो तो सिद्धांततः उसे अस्वीकृत कर वहाँ उसका वही सामान्य रूप स्वीकृत किया जाना चाहिए जो अधिकांश स्थलों पर मिलता है। प्रस्तुत संकलन में इस सिद्धांत का भी यथास्थान उपयोग किया किया गया है, जो निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होगा—

(क) पद १११-३ का निर्धारित पाठ है : सात सूत दे गंड बहत्तर पाट लागु अधिकाई। गु० में 'सात' के स्थान पर **साठ** मिलता है किन्तु 'सूत' के साथ अन्य स्थलों पर प्रायः 'सात' संख्या का ही प्रयोग मिलता है, जैसे—गु० बिलावल ४० : सात सूत इनि मुडिए खोए। तथा गु० बसंत ६ : सात सूत मिलि बनजु कीन्ह। अतः यहाँ भी 'सात सूत' पाठ ही स्वीकार किया गया है जो दा० नि० स० बी० द्वारा प्रस्तुत हुआ है। आध्यात्मिक पक्ष में 'सात सूत' का अर्थ है सप्त धातु।

(ख) साखी २-५-१ का निर्धारित पाठ है : झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटमफूट। 'झल' के स्थान पर सा० साबे० सासी० में **झाल** पाठ मिलता है। 'झल' शब्द यहाँ आग की लपटों का द्योतक है। इस अर्थ में सर्वत्र 'झल' का ही प्रयोग हुआ है, 'झाल' का नहीं। उदाहरणतया तुल० २-३७-२ : गोबिंद मिलै न झल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ। अथवा झल बांएं झल दाहिनैं, झलहिं मांहिं ब्यौहार। यहाँ यह शब्द दा० नि० सा० साबे० सासी० आदि सभी प्रतियों में मिलता है।

१२. प्रतिपादित सिद्धान्त अथवा कवि-समय की दृष्टि से—अन्यथा समान रूप से मान्य दो पाठों में से यदि कोई एक अन्यत्र उसी रचना में प्रतिपादित सिद्धांत अथवा विचारधारा का अथवा परम्परागत कवि-समय का विरोध उपस्थित करता हो और दूसरे के द्वारा इस प्रकार का कोई विरोध न प्रकट होता हो तो ऐसे स्थलों पर प्रायः वही पाठ मूल रूप में स्वीकृत किया जाना चाहिए जिससे किसी प्रकार का विरोध अथवा वैषम्य परिलक्षित न होता हो। प्रस्तुत सम्पादन में इस प्रकार के पाठ-भेदों पर भी विचार किया गया है। उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(क) पद ६९-२ : नऊं दुवार नरक धरि मूंदे तु दुर्गंधि कौ बेढ़ौ। बी० प्रति

में 'नऊं दुवार' के स्थान पर **दसहुं द्वार** पाठ मिलता है। दस द्वार मानने पर उसमें ब्रह्मरंध्र भी सम्मिलित करना पड़ेगा जो संत-साधना में परम पवित्र माना गया है—दे० बी० चौंतीसा की पंक्ति ४० जिसमें कहा है: दसएं द्वारे तारी लावै। सो दयाल का दरसन पावै ॥

(ख) ८५-९-१० : रांम नांम बिनु सभै बिगूते देखहु निरखि सरीरा। हरि के नांम बिनु किन गति पाई कह उपदेस कबीरा ॥ दा० नि० में इन पंक्तियों का पाठ है : **जे नर जोग जुगति करि जांनैं खोजैं आप सरीरा। तिनकूं मुकति का संसा नांहीं कहै जुलाह कबीरा** ॥ सम्पूर्ण पद में वस्तुतः राम नाम का माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है और नाम की तुलना में मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, हज-यात्रा, वेदाध्ययन आदि के साथ-साथ योग-साधन को भी निस्सार बताया गया है, जो पद की चौथी पंक्ति से स्पष्ट है। इसमें कहा गया है: जटा धारि धारि जोगी मूएं तेरी गति तिनहूं न पाई। इस प्रकार एक बार योग का खंडन कर पुनः उसी पद में 'जोग जुगति' पर आश्रित होने का उपदेश युक्तिसंगत नहीं लगता, अतः दा० नि० का पाठ अस्वीकृत किया गया है।

(ग) १७०-४ : पारस कौं जे लोह छिवैला। बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला॥ गु० प्रति में इसका पाठ है : पारस के संगि तांबा बिगरिओ। **सो तांबा कंचन ह्वै निबरिओ**। कवि-समय के अनुसार पारस के स्पर्श से लोहा का सोना बनना प्रसिद्ध है, न कि ताँबे का।

(घ) साखी ४-८-१ : कबीर भया है केतकी, भंवर भए सब दास। गु० में 'केतकी' के स्थान पर **कसतूरी** पाठ मिलता है, किन्तु कवि-परम्परा के द्वारा कस्तूरी के प्रति भ्रमर का आकर्षित होना प्रमाणित नहीं होता।

१३ **सांप्रदायिक संशोधनों की दृष्टि से**—प्रतियों के विस्तृत विवरण में ऐसे पाठ-परिवर्तनों की ओर निर्देश किया गया है जो सांप्रदायिक प्रवृत्ति के कारण आ गये हैं। यह परिवर्त्तन प्रायः ईश्वरपरक नामों के संबंध में हुए हैं। जहाँ इस तथ्य के पर्याप्त प्रमाण हों कि अमुक संशोधन सांप्रदायिक दृष्टि से हुआ है, और साथ ही उसके स्थान पर अन्य पाठांतर भी ऐसा मिलता है जो इस प्रकार के प्रभाव से मुक्त हो तो प्रायः दूसरी कोटि के पाठों को स्वीकार करने से ही मूल के अधिक निकट पहुँचने की सम्भावना रहती है। प्रस्तुत सम्पादन में इस प्रवृत्ति का बराबर ध्यान रक्खा गया है और यथासम्भव साम्प्रदायिक प्रभाव से मुक्त मूल

स्वाभाविक पाठ को ही ग्रहण करने का प्रयत्न किया गया है। कुछ ऐसे स्थलों पर जहाँ कोई दूसरा विकल्प नहीं था, उनके सम्भावित मूल रूप कोष्ठक में दे दिये गये हैं। नीचे उद्धृत उदाहरणों से साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के कारण किये हुए पाठ-परिवर्तनों की भी बानगी मिल जायगी और साथ ही ऐसे स्थलों पर जिन सिद्धांतों का अनुसरण किया गया है उनका भी यथेष्ट आभास मिल जायगा—

पदों के उदाहरण—

(क) ५-२ का निर्धारित पाठ है : हंम घरि आए राजा रांम भरतार। उक्त पंक्ति में 'राजा रांम' पाठ दा० नि० गु० प्रतियों के समान साक्ष्य के कारण स्वीकृत हुआ है। शबे० में इसके स्थान पर **परम पुरुष** पाठ मिलता है। इस बात की ओर पहले ही संकेत किया गया है कि राधा-स्वामी-संप्रदाय के सिद्धांतों से प्रभावित होने के कारण शबे० में सर्वत्र ईश्वरपरक नामों के संबंध में यही प्रवृत्ति मिलती है।

(ख) १४-६, ७ : जौ तूं कूदि जाउ भवसागर कला बदौं मैं तेरी। कहै कबीर राजा रांम भजन सौं नव निधि होइगी चेरी ॥ उक्त पाठ नि० प्रति से लिया गया है। शबे० तथा शक० प्रतियों में दूसरी पंक्ति का पाठ भिन्न मिलता है। शबे० का पाठ है : कहैं कबीर सुनो भाई साधो हो रहु **सतगुर चेरो**। और शक० में है : कहहिं कबीर सत्य **ब्रत साधो** नव निधि होइ रहे **चेरा**। इसी तुक के अनुसार प्रथम पंक्ति में 'तेरी' के स्थान पर शबे० तथा शक० प्रतियों में क्रमशः 'तेरो' तथा 'तेरा' परिवर्तन किये गये हैं। किन्तु स्त्री० 'कला' तथा 'नवनिधि' के साथ 'तेरो' तथा 'चेरो' अथवा 'तेरा' तथा 'चेरा' शब्द व्याकरण की दृष्टि से असंगत हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि शबे० तथा शक० में यह अशुद्धियाँ जान बूझ कर, कदाचित् 'राम' शब्द से बचने के लिए, की गयी हैं।

(ग) १६-१, ५ : हरि रंग लागा हरि रंग लागा। मेरे मन का संसय भागा ॥ हरि जन हरि सौं अैसे मिलिया जस सोनैं संग सुहागा ॥ शबे० में उक्त पंक्तियों का पाठ है : **गुरु रंग** लागा **सतरंग** लागा। मेरे मन का संसय भागा। **भक्त जनन अस साहिब मिलनो** जस कंचन संग सुहागा॥ द्वितीय पंक्ति में वाक्य-रचना का लचरपन भी द्रष्टव्य है।

(घ) ७३-७—१० :

हरि के संत सदा थिर पूजौ जो हरि नाम जपात।
जिन पर कृपा करत है गोबिंद ते सतसंगि मिलात ॥

मातु पिता बनिता सुत संपति अंत न चलै संगात ।।
कहत कबीर रांम भजु बौरे जनम अकारथ जात ।।

तुल० साबे० 'जो **सत नाम** जपात', 'जिन पर कृपा करत है **सतगुर'** तथा 'कहै कबीर संग करि **सतगुर'** ।

(ङ) पद १८३ की अंतिम पंक्ति का पाठ बी० प्रति में है : कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु बांधे जमपुर जासी । किन्तु शबे० में 'कहै कबीर **गुरू के बेमुख'** पाठ मिलता है ।

साखियों में ऐसे पाठ-परिवर्त्तन प्रायः साबे० तथा सासी० प्रतियों में मिलते हैं, जो क्रमशः राधास्वामी तथा कबीरपंथी प्रभावों के परिणाम-स्वरूप हुए हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं—

(क) साखी २-४-२ : जे नर बिछुरे रांम सौं ते दिन मिले न राति ।
तुल० सासी० : जे नर बिछुरे **नाम** सौं तथा साबे० : **सतगुर** से जो बीछुरे।

(ख) २-२०-२ : मति वै रांम दया करैं, बरसि बुझावै अग्गि ।
तुल० साबे० : कबहुंक **गुरु** दाया करैं ।

(ग) २-२१-१ : यहु तनु जारौं मसि करौं, लिखौं रांम का नांम ।
तुल० साबे० : लिखौं **गुरु** का नाम ।

(घ) ३-२-१ : कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि ।
साबे० प्रति में 'मुरारि' के स्थान पर **दयार** पाठ मिलता है । दूसरी पंक्ति के अंत में 'पसारि' रहने के कारण तुकार्थ 'दयालु' शब्द की यह विकृति भी की गयी है ।

(ङ) ६-१-१ : कबीर कूता रांम का, मुतिया मेरा नांम । साबे० प्रति में **सेवक कुत्ता गुरू का** और सासी० में **सेवक कुत्ता राम का** पाठ मिलते हैं । कबीर के लिए कुत्ते का रूपक स्वीकार करना साम्प्रदायिक मर्यादा के प्रतिकूल है, संभवतः इसीलिए साबे० तथा सासी० प्रतियों में उक्त पाठ-परिवर्त्तन करने पड़े ।

(च) ८-१-२ : जो कछु किया सो हरि किया, भया कबीर कबीर । साबे० तथा सासी० प्रतियों में 'हरि' के स्थान पर **साहिब** पाठ मिलता है, यद्यपि इस संशोधन के कारण मात्रा तथा यति में पर्याप्त व्यतिक्रम आ जाता है ।

(छ) १९-६ : रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमांन । असा जे जन होइ रहै, ताहि मिलै भगवांन ।। साबे० प्रति में 'भगवांन' के स्थान

पर **निज नाम** पाठ मिलता है जिसका 'अभिमांन' से तुक भी नहीं मिलता।

(ज) ३३-१-२ : बावन अक्खिर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ ॥
तुल० सावे० : **सत्यनाम** लव लाय। उक्त साखी में 'ररै ममैं' का तात्पर्य 'राम' शब्द में आने वाले 'र' और 'म' दो अक्षरों से है। सांम्प्रदायिक प्रेरणा के कारण सावे० में 'ररै ममैं' (अर्थात् 'राम') के स्थान पर **सत्यनाम** कर दिया गया है, यद्यपि पंक्ति के पूर्वार्द्ध में आये हुए 'बावन अक्खिर सोध करि' की पृष्ठभूमि में यह संशोधन निरर्थक और अप्रासंगिक हो गया।

(झ) ऊपर केवल थोड़े से स्थल उद्धृत किये गये। इनके अतिरिक्त इस प्रकार के उदाहरण अनेक मिलते हैं। तुलनार्थ निम्नलिखित स्थल देखे जा सकते हैं : साखी ३-३, ३-२२, ३-२६, ३-३०, ५-६, १४-१८ में 'रांम नांम' के स्थान पर सावे० अथवा सासी० में **सत्यनाम** ; ३-१९, ५-९, ८-२, १०-१६, १२-१ में 'हरि' के स्थान पर **गुरु** , २१-९ में 'हरि मिलन' के स्थान पर **सत्यलोक** पाठ मिलते हैं।

जहाँ केवल शबे०, सावे० अथवा सासी० का ही पाठ लिया गया है वहाँ ऐसे स्थलों पर कोष्ठक में ईश्वरपरक नाम भी रख दिया गया है। उदाहरण के लिए पद ६४-१, ४ में 'नाम' तथा 'गुरु' के लिए क्रमशः 'रांम' तथा 'हरि', ६६-१ में 'नांम' के लिए 'रांम' अथवा ७६-६ में 'गुरु' के लिए 'हरि' इत्यादि।

१४. **तुक की दृष्टि से**—थोड़ी सी अशुद्धियाँ ऐसी हैं जिनका परिमार्जन तुक की दृष्टि से विचार करने पर हो जाता है। यदि समान तुक वाला कोई सार्थक पाठ मिल रहा हो तो तुकहीन पाठ स्वीकार करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता। किन्तु यदि कहीं तुक बैठाने के लिए निरर्थक पाठ की भरती की गयी हो तो उसके स्थान पर सार्थक पाठ ही स्वीकार किया गया है चाहे वह तुकहीन ही क्यों न हो। उदाहरणार्थ—

(क) पद ५८-७, ८ का निर्धारित पाठ है : यहु संसार सकल है मैला रांम कहिंह ते सूचा। कहै कबीर नांव नहि छांड़उं गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥
गु० में प्रथम पंक्ति का पाठ है : कांम क्रोध माइआ के लीने इआ बिधि जगत **बिगूता**। किन्तु अगली पंक्ति में 'ऊंचा' शब्द रहने के कारण यह पाठ तुकहीन हो गया है। तुकहीनता के अतिरिक्त स्वीकृत पंक्ति की तुलना में गु० प्रति के पाठ की सार्थकता भी चिन्त्य है।

(ख) ६५-७, ८ : कहै कबीर छांड़ि मैं मेरा। उठि गया हाकिम लुटि गया डेरा ।। शबे० में 'कहै कबीर नाव बिनु बेड़ा' पाठ मिलता है, किन्तु आगे 'डेरा' शब्द से तुक नहीं सिद्ध होता । इसके अतिरिक्त शबे० द्वारा प्रस्तुत की हुई पंक्ति का न तो कोई संगत अर्थ ही निकलता है और न उसकी वाक्य-रचना ही पूर्ण है ।

(ग) १३८-७, ८ : सोई पंडित सो तत ग्याता जो इहि पर्दाहि बिचारै । कहै कबीर सोई गुर मेरा आप तिरै मोंहि तारै ।। बी० प्रति में प्रथम पंक्ति का पाठ है : कहहिं कबीर सुनहु हो संतो जो यह पद अर्थावै । कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखलायी पड़ती जिसके कारण बी० का यह तुकहीन पाठ स्वीकार किया जाय ।

(च) १६५-५, ६ : बेद पढ़ंता बाभन मारे सेवा करंता स्वामीं । अरथ करंता मिसिर पछाड़ा गल महि घालि लगांमीं।। दा० में दूसरी पंक्ति के अंत में 'तू रे फिरै मैंमंती पाठ मिलता है; किन्तु 'स्वांमीं' को तुलना में यह पाठ तुकहीन हो जाता है । इसके अतिरिक्त स्वीकृत पाठ यहाँ नितान्त प्रासंगिक भी है ।

(ङ) १६५-७, ८ : साकत के तू हरता करता हरि भगतन कै चेरी । दास कबीर रांम कै सरनैं ज्यों आई त्यौं फेरी।। तुल० दा० : ज्यौं लागी त्यौं **तोरी** ।

(च) १६६-२ : काजर टीकि चसम मटकावै कसि कसि बांधै गाढ़ी । तुल० शबे० : हंसि हंसि पारै **गारी** । किन्तु आगे की पंक्ति में 'खात कजेरा काढ़ी' रहने के कारण यह पाठ तुकहीन हो गया।

(छ) १७१-५ : आप गए औरन हू खोवहि । आगि लगाइ मंदिर महि सोवहि ।। दा० नि० स० में 'आपण बुड़ै औरकौं **बोरैं**' पाठ मिलता है, किन्तु आगे 'सोवैं' से असंगत ।

साखियों में निम्नलिखित स्थल ऐसे हैं जहाँ कुछ प्रतियों में केवल तुकार्थ अशुद्ध पाठ मिलते हैं, अतः अस्वीकृत किये गये हैं—

(क) ७-६ : भारी कहूं तो बहु डरू, हरुवा कहूं तो भूठ । मैं क्या जानूं रांम कों नैंनां कबहुं न दीठ ।। सासी० प्रति में 'दीठ' की समानता में 'भूठ' के स्थान पर **भीठ** पाठ दिया गया है । किन्तु यह पाठ अशुद्ध और निरर्थक है, केवल तुक बैठाने के लिए दिया हुआ ज्ञात होता है ।

(ख) १०-१० : कबीर मारग कठिन है, मुनि जन बैठे थाकि । तहां कबीरा

चलि गया, गहि सतिगुरु की साखि ।। सा० सावे० सासी० में 'साखि' के स्थान पर साक पाठ मिलता है ।

(ग) १४-१० : कबीर सोई सूरिवां, मन सौं माड़ै जूझ । पंच पियादै पार कै, दूरि करै सब दूज ।। तुल० सा० सावे० सासी० दूझ ।

१५. **प्रतियों की पाठ-स्थिति की दृष्टि से**—उपर्युक्त सिद्धांतों की सहायता से पाठ-विकृतियों की छान-बीन कर लेने पर भी अनेक स्थल ऐसे बच रहते हैं जिनके संबंध में कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं हो पाता, क्योंकि विभिन्न वर्गों द्वारा जितने भी पाठ प्रस्तुत किये गये हों, यदि सभी शुद्ध हों और ऊपर से देखने में कोई भी किसी से घट कर न दीख पड़ता हो तो पाठ-समस्या कठिन हो जाती है । ऐसे स्थलों पर प्रतियों की आपेक्षिक पाठ-स्थिति ही सहायक होती है । विभिन्न प्रतियों द्वारा प्रस्तुत किये हुए समस्त साक्ष्यों पर तुलनात्मक दृष्टि से मनन करने पर प्रत्येक प्रति की प्रामाणिकता के सन्बन्ध में एक निश्चित धारणा बन जाती है जिसके अनुसार प्रतियों का क्रम लगा लेने पर पाठ-निर्धारण में बड़ी सहायता मिलती है। प्रस्तुत संपादन में प्रतियों की सामान्य पाठ स्थिति के सम्बन्ध में हम जिस निर्णय पर पहुँचते हैं वह संक्षेप में निम्नलिखित है—

(क) स० प्रति सब से अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती है, अतः उसके पाठों को अपेक्षाकृत अधिक मान्यता दी गयी है । जहाँ कहीं अतिरिक्त रूप से पंक्तियाँ लेनी पड़ी हैं, उसी से ली गयी हैं । उदाहरण के लिए प्रस्तुत संकलन के पद ११९ तथा १२३ लिये जा सकते है । ११९वें पद की दस पंक्तियों में केवल दो पंक्तियाँ ऐसी हैं जो स० तथा बी० प्रतियों में समान रूप से मिलती हैं, शेष आठ पंक्तियों के पाठ दोनों में भिन्न-भिन्न हैं । अतः यह समस्या खड़ी होती है कि यहाँ स० तथा बी० में से किसका पाठ ग्रहण किया जाय । किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हम इस निर्णय पर पहुँच चुके हैं कि बी० की अपेक्षा स० प्रति उत्कृष्टतर पाठ देती है। अतः यहाँ शेष पंक्तियों का पाठ स० के अनुसार ही रक्खा गया है । इसी प्रकार की समस्या १२३वें पद में भी है। उसकी दस पंक्तियों में केवल दो पंक्तियाँ बी० में 'ज्ञान-चौंतीसा' प्रकरण में मिलती हैं, किन्तु वहाँ अप्रासंगिक होने के कारण उक्त पद में ही स० प्रति के अनुसार स्वीकृत हैं ।

(ख) दा० नि० गु० के समुच्चय में गु० के पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक सिद्ध होते हैं, किन्तु यत्र-तत्र दा० नि० के पाठ भी उत्कृष्ट ठहरते हैं ।

उदाहरण के लिए दे० पद ३२, ५७, १३०, १३१ तथा १९२।

(ग) दा० नि० गु० बी० में गु० अधिक प्रामाणिक है। इसके अतिरिक्त दा० नि० गु० की अपेक्षा गु० बी० का समुच्चय अधिक मान्य सिद्ध होता है, क्योंकि दा० नि० गु० तीनों पश्चिमी परम्परा की प्रतियाँ हैं और बी० पूर्वी परम्परा की।

(घ) दा० नि० बी० में बी० प्रति के पाठ महत्वपूर्ण अवश्य हैं, किन्तु दा० और बी० के साक्ष्य लगभग समान रूप से प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। रमैनियों में बी० की अपेक्षा दा० के साक्ष्य ही अधिक मान्य हैं, अतः अतिरिक्त पंक्तियाँ भी अधिकांश दा० प्रति से ही ली गयी हैं। बी० की अपेक्षा बीभ० का पाठ प्राचीनतर सिद्ध होता है।

(ङ) दा० नि० शबे० में शबे० का पाठ मूल के अधिक निकट का सिद्ध होता है, किन्तु कुछ अपवाद भी मिलते हैं; उदाहरण के लिए दे० पद १४२ तथा १७६।

(च) दा० नि० शक० में दा० अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती है।

(छ) दा० नि० गु० शबे० में शबे०, प्रक्षेपों की संख्या अधिक हुए भी पाठ की दृष्टि से अधिक प्रामाणिक है, किन्तु गु० भी कम महत्वपूर्ण नहीं।

(ज) दा० नि० गु० शक० में गु० अधिक प्रामाणिक लगती है।

(झ) दा० नि० शबे० शक० में शबे० अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक और नि० बी० शबे० में शबे० अधिक प्रामाणिक।

(ञ) दा० नि० गु० शबे० शक० में शबे० अधिक प्रामाणिक है, किन्तु गु० के पाठ भी विचारणीय हैं।

(ट) दा० नि० गु० बी० शक० में गु० अधिक प्रामाणिक।

(ठ) दा० तथा बी० प्रायः समान रूप से प्रमाणिक हैं। प्रसंग आदि के अनुसार जो पाठ अधिक प्रामाणिक समझ पड़ा है वही रक्खा गया है। रमैनियों में दा० प्रति के पाठ ही प्रमुख रूप से स्वीकार किये गये हैं।

(ड) नि० बी० में बी० अधिक प्रामाणिक है, किन्तु स्थलों पर नि० के पाठ भी समान रूप से विचारणीय तथा महत्वपूर्ण हैं।

(ढ) नि० शबे० में शबे० अधिक प्रामाणिक। किन्तु कुछ स्थलों पर नि० के पाठ अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होते हैं।

(ण) गु० बी० में गु० अधिक प्रामाणिक।

(त) गु० शबे० में शबे० अधिक प्रामाणिक। किन्तु उभयनिष्ट रूप में मिलने वाली रचनाओं का परिमाण अत्यल्प है।

साखियों में प्रामाणिकता का क्रम इस प्रकार माना जा सकता है:—

स—गु०—दा० (अथवा बी० समान रूप से)—नि०—गुण०—सा०—साबे०—सासी०।

पाठ-निर्धारण का एक उदाहरण

यहाँ प्रस्तुत संकलन का एक पद उद्धृत कर उसके पाठ-निर्धारण की विस्तृत विवेचना दी जा रही है जिससे यह भलीभाँति स्पष्ट हो जायगा कि ऊपर उल्लिखित सिद्धांतों का सम्पादन में किस प्रकार प्रयोग किया गया है।

१. प्रस्तुत संकलन के पद ५८ का निर्धारित पाठ है—

डगमग छांड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें मरें बनि आवै लीन्हों हाथि सिधौरा ॥ टेक ॥
होइ निसंक मगन होइ नाचै लोभ मोह भ्रम छांड़ै।
सूरा कहा मरन तैं डरपै सती न संचै भांड़ै ॥
लोक बेद कुल की मर्जादा इहै गले मैं फांसी।
आधा चलि करि पीछैं फिरिहौ होइ जगत मैं हांसी ॥
यहु संसार सकल है मैला रांम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नांउं नहिं छांड़उ गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥

उक्त पद दा० नि० गु० स० शबे० शक० में मिलता है। भिन्न-भिन्न प्रतियों में पाठ की स्थिति निम्नलिखित है—

शबे० में प्रथम पंक्ति का पाठ है : छांड़ि दे मन बौरा डगमग। किन्तु शबे० के अतिरिक्त शेष समस्त प्रतियों में 'डगमग' शब्द पंक्ति के आरम्भ में ही आता है, और दा० नि० गु० स० शक० का समुच्चय मान्य होने के कारण वही पाठ स्वीकृत किया गया है। अगली पंक्ति के अंत में 'सिधौरा' शब्द आने से तुक की दृष्टि से भी यही पाठ संगत लगता है, शबे० का नहीं। इसके अतिरिक्त गु० प्रति में 'छांड़ि दे' के स्थान 'छांड़ि रे' पाठ मिलता है, किन्तु दा० नि० स० शबे० में 'दे' रहने के कारण सिद्धान्ततः वही स्वीकार किया गया।

उक्त पद की प्रथम पंक्ति के पश्चात् शक० में जो पंक्ति मिलती है, उसका पाठ है : गृह तैं निकरी सती होन को देखन को जग दौरा। किन्तु यह पंक्ति किसी अन्य प्रति में नहीं मिलती, अतः मूल रूप में इसे स्वीकार नहीं किया गया है, प्रत्युत अतिरिक्त पंक्ति के रूप में नीचे पाठान्तरों में इसका निर्देश कर दिया गया है।

पद की द्वितीय पंक्ति में 'जरें मरें' के स्थान पर दा० नि० स० में 'जरें बरें', दा३ में 'जारचां बरचां' पाठ मिलते हैं। किन्तु गु० तथा शबे० में 'जरें मरें' पाठ मिलता है, और गु० शबे० का समुच्चय मान्य सिद्ध हुआ है, अतः दा० नि० स० का पाठ यहाँ अस्वीकृत कर दिया गया। आगे 'बनि आवै' के स्थान पर गु० प्रति में 'सिधि पाईऐ' पाठ है, किन्तु अन्य किसी भी प्रति में न मिलने के कारण यह पाठ विचारणीय नहीं हो सका है। 'सिंधौरा' शब्द के कई पाठान्तर मिलते हैं : गु० प्रति में इसके स्थान पर 'संदउरा', दा३ में 'संदौरा' और दा० की अन्य प्रतियों में 'स्यंधौरा' पाठ मिलते हैं। मूल शब्द वस्तुतः 'सिंधौरा' (=सिन्दूरपात्र) है, अतः वही स्वीकृत हुआ है। शेष तीनों शब्द इसी के विकृत रूप हैं। दा३ तथा गु० की विकृतियाँ फ़ारसी लिपि के कारण अथवा पंजाबी उच्चारण के प्रभाव से हुई ज्ञात होती हैं, और 'स्यंधौरा' राजस्थानी के प्रभाव से आ गया है।

इसके पश्चात् शबे० में एक पंक्ति मिलती है, जिसका पाठ है—

प्रीति प्रतीति करौ दृढ़ गुर की सुनो शब्द घनघोरा।

यह पंक्ति अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलती, अतः प्रक्षिप्त ज्ञात होती है।

तृतीय पंक्ति का पाठ गु० में है : मन रे छांड़हु भरम प्रगटु होइ नाचहु इआ माइआ के डांडे। किन्तु दा० नि० शबे० शक० में अन्य पाठ मिलने के कारण वही मूल रूप से स्वीकार किया गया है। 'छांड़ै' शब्द के स्थान पर दा० नि० स० में 'छांड़ौ' पाठ आता है, किन्तु अगली पंक्ति में गु० तथा शबे० के समान साक्ष्य के कारण 'भांड़ै' पाठ स्वीकृत हुआ है, अतः तुक की दृष्टि से 'छांड़ै' ही अधिक समीचीन सिद्ध होता है, 'छांड़ौ' नहीं। इसके अतिरिक्त 'छांड़ि दे', 'नाचै' आदि क्रियाओं के क्रम में आज्ञासूचक 'छांड़ै' सुसंगत और आवश्यक है।

चतुर्थ पंक्ति में प्रथम चरण का पाठ गु० प्रतियों में है : सूर कि सुनमुख रन ते डरपै। किन्तु केवल गु० प्रति में मिलने के कारण ही इसे प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, इसके विपरीत स्वीकृत पाठ दा० नि० शबे० शक० के साक्ष्य के आधार पर लिया गया है। 'संचै' शब्द के भी कई पाठ-भेद मिलते हैं। दा२ तथा स० में इसके स्थान पर 'सतै', शक० में 'संशय' और गु० में 'सांचै' पाठ मिलते हैं। किन्तु दा१ दा३ नि० शबे० में 'संचै' पाठ मिलने से वही स्वीकृत हुआ है, क्योंकि दा० नि० शबे० का समुच्चय मान्य सिद्ध हो चुका है। इसके अतिरिक्त गु० के 'सांचै' पाठ से भी इसकी पुष्टि होती है। 'सैंतै' तथा 'संशय' दोनों विकृतियाँ फ़ारसी लिपि के कारण आयी हुई ज्ञात होती हैं।

पद की पाँचवीं तथा छठी पंक्तियाँ दा३ और गु० में नहीं हैं, किन्तु दा० की

शेष प्रतियों में और नि० स० शबे० तथा शक० प्रतियों में मिलने के कारण उन्हें अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इन दोनों पंक्तियों के पाठ का निर्णय इस प्रकार हुआ है :

पाँचवीं पंक्ति में 'लोक बेद' के स्थान पर शबे० तथा शक० में 'लोक लाज' पाठ आता है। यहाँ पर शबे० शक० का साक्ष्य एक ओर और दा० नि० स० का साक्ष्य दूसरी ओर आता है। दोनों में किसी एक को ही स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि मूल प्रति में किसी पंक्ति के दो पाठों की कल्पना नहीं की जा सकती। ऊपर यह संकेत किया जा चुका है कि ऐसे स्थलों पर स० प्रति का पाठ ही प्रमुख रूप से स्वीकार किया गया है, क्योंकि पाठ की दृष्टि से वही प्रति सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होती है। यहाँ भी स० का पाठ श्रेष्ठतर सिद्ध होता है, केवल 'पासी' शब्द इस लिए अस्वीकृत कर दिया गया कि अगली पंक्ति 'हांसी' पाठ आने के कारण इसमें तुक का अभाव कुछ खटकता है ; अतः उसका समानार्थी 'फांसी' रक्खा गया है, जो कि शबे० तथा शक० में मिलता है। इसी सिद्धांत के आधार पर छठी पंक्ति में भी शबे० शक० का पाठ न लेकर स० प्रति का पाठ ही स्वीकार किया गया है।

इसके पश्चात् शबे० तथा शक० प्रतियों में आने वाली पंक्तियों का पाठ है—

अगिन जरे नां सती कहावै रन जूझे नहिं सूरा।
बिरह अगिन अंतर में जारै तब पावै पद पूरा ।।

किन्तु शबे० तथा शक० प्रतियों में ऊपर संकीर्ण-संबंध सिद्ध किया जा चुका है, अतः उनके द्वारा उपस्थित की हुई पंक्तियाँ तब तक नहीं प्रामाणिक मानी जा सकतीं जब तक कि किसी ऐसी प्रति का साक्ष्य नहीं मिल जाता जो शबे० तथा शक० से स्वतंत्र हो।

सातवीं पंक्ति के पाठ-भेदों की स्थिति इस प्रकार है—गु० का पाठ है : काम क्रोध माइआ के लीने इआ बिधि जगग बिगूता । शबे० शक० का पाठ है : यहु संसार सकल जग मैला नाम गहे सो सूचा । दा० नि० स० का पाठ है : यहु संसार सकल है मैला रांम कहैं ते सूचा । दा० नि० स० शबे० शक० के पाठों में स्थूल साम्य मिल जाता है, अतः वही यहाँ स्वीकृत होना चाहिए । गु० प्रति का पाठ तुक तथा अर्थ की दृष्टि से भी भ्रामक है । अंतिम पंक्ति में 'ऊंचा' शब्द आने के कारण 'बिगूता' से तुक की सिद्धि नहीं होती और वाक्य के दोनों अंशों में पूर्वा-पर सम्बन्ध स्पष्ट न होने के कारण अर्थ भी स्पष्ट नहीं निकलता । अतः गु० का पाठ अस्वीकृत किया गया है । शबे० तथा शक० के पाठ में एक बार 'संसार'

शब्द आ जाने पर पुनः 'जग' आने के कारण पुनरुक्ति-दोष है, अतः उसे भी अस्वीकृत कर दा० नि० स० का पाठ ग्रहण किया गया है। आगे 'रांम' शब्द के स्थान पर शबे० तथा शक० में 'नाम' पाठ साम्प्रदायिकता के प्रभाव से आया हुआ ज्ञात होता है, अतः अस्वीकृत हुआ है।

अंतिम पंक्ति के पाठों की स्थिति इस प्रकार है : गु० कहि कबीर राजा राम न छोड़उं सगल ऊंच ते ऊंचा। शबे० कहै कबीर भक्ति मत छांड़ौ गिरत परत चढ़ि ऊंचा। शक० कहै कबीर नर भक्ति न छाड़उं गिरत परत चढ़ि ऊंचा। दा० नि० स० कहै कबीर नांव नहि छांड़ौ गिरत परत चढ़ि ऊंचा। पंक्ति के उत्तरार्द्ध का पाठ दा० नि० स० शबे० तथा शक० में समान रूप से मिलने के कारण स्वीकार किया गया है और पूर्वार्द्ध का पाठ स० प्रति के अनुसार; क्योंकि सभी प्रतियों में भिन्न-भिन्न पाठ रहने पर किसी ऐसी प्रति का पाठ सिद्धांततः स्वीकार किया जाना चाहिए जो अनेक साक्ष्यों के आधार पर उत्कृष्टतम प्रमाणित होती हो।

§६ : बानियों का क्रम

रमते साधुओं की रचनाओं में किसी प्रकार का सुव्यवस्थित क्रम ढूँढ़ना बड़ा कठिन हो जाता है, क्योंकि उनमें साधना की सहज अनुभूतियों के उद्गार रहते हैं, किसी वैज्ञानिक प्रक्रिया का नपा-तुला हिसाब-किताब नहीं। प्रबन्ध-काव्यों के रचयिताओं के समान उन्हें किसी कथासूत्र के पालन की भी चिन्ता नहीं रहती। सहज उमंग में जो कह दिया सो कह दिया। कबीर जैसे फक्कड़ संत के विषय में यह कठिनाई और भी उग्र रूप धारण कर लेती है। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में इस समस्या पर विचार किया जाना नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टि से यह और भी विचारणीय हो जाती है कि जिस मूल प्रति में कबीर की रचनाएँ पहली बार लिपिबद्ध हुई होंगी उसमें कोई क्रम अवश्य रहा होगा। मूल प्रति के अभाव में यद्यपि हम यह ठीक-ठीक नहीं बता सकते कि उसका क्रम क्या था, किन्तु प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से इस बात का पर्याप्त संकेत मिल सकता है कि इस संबंध में मूल प्रति की क्या प्रवृत्ति थी। कबीर की प्रामाणिक रचनाएँ स्थूल रूप से तीन प्रकार के छंदों में मिलती हैं : पद, रमैनी और साखी। अतः तीनों पर पृथक्-पृथक् विचार करना विशेष सुविधाजनक होगा।

अतः इन प्रतियों के सारे पद विभिन्न रागों में विभाजित मिलते हैं। दा० प्रतियों में रागों की संख्या पन्द्रह के लगभग है, नि० में यह बढ़ कर पच्चीस के लगभग पहुँच गयी है। किन्तु रागों का निर्देश होते हुए विषय-विभाजन की ओर भी इनका झुकाव ज्ञात होता है। उदाहरणतया जहाँ उल्टवासियों के पद आने लगे हैं, वहाँ कुछ दूर तक उल्टवासियाँ ही मिलती हैं। इसी प्रकार प्रेम अथवा उपदेश, चेतावनी आदि के प्रसंग में उन्हीं विषयों से संबद्ध पद मिला करते हैं। इस सिद्धांत के कुछ अपवाद भी मिलते हैं, किन्तु स्थूल रूप से प्रवृत्ति कुछ इसी प्रकार की ज्ञात होती है। दा० नि० के समान गु० के पद भी रागों के अन्तर्गत मिलते हैं। उसमें कबीर की रचनाएँ सत्रह रागों में विभक्त मिलती हैं जिनमें से बारह रागों के नाम ऐसे हैं जो दा० तथा नि० में भी मिलते हैं, किन्तु गु० में विषय-विभाजन का ध्यान कम रखा गया है। 'सर्बंगी' में स्पष्ट रूप से सारी रचनाएँ विषय-क्रम के अनुसार रक्खी गयी हैं, चाहे वे पद हों अथवा रमैनी या साखी। 'सर्बंगी' में कुल मिलाकर १४२ अंग हैं जिन्हें विभिन्न विषयों के शीर्षक ही समझना चाहिए। किन्तु अंगों में विभाजित रहते हुए भी पदों के पूर्व रागों का निर्देश कर दिया गया है। बीफ०, बीभ० में रागों का कोई निर्देश नहीं मिलता और न विभाजन के अन्य कोई शीर्षक मिलते हैं, किन्तु, जैसा कि बीजक-प्रतियों के विस्तृत विवरण में निर्देश किया गया है, बी० और बीफ० में कुछ अपवादों को छोड़ कर विशेषतया अक्षर-क्रम की ओर अधिक झुकाव ज्ञात होता है, यद्यपि उनमें अकारादि क्रम का पालन नहीं किया गया है। इसके विपरीत बीभ० में अक्षरक्रम का नहीं प्रत्युत विषयक्रम का ही ध्यान रक्खा गया है। शक० में सारे पद रागों के अनुसार दिये गये हैं, विषयक्रम का किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं है। इसके विपरीत शबे० में केवल चौथे भाग को छोड़ कर शेष किसी भी स्थल पर राग का निर्देश नहीं। 'सर्बंगी' के समान शबे० में भी सतगुरु महिमा, विरह प्रेम, चितावनी-उपदेश, भेद बानी आदि शीर्षकों के अन्तर्गत सारे पद अलगाये हुए मिलते हैं। चौथे भाग में, जो केवल ३० पृष्ठों का है और बहुत बाद का छपा है, एक भी पद ऐसा नहीं है जो कबीर की प्रामाणिक रचनाओं में मिलता हो, अतः शबे० की सामान्य प्रवृत्ति के निर्णय में उसके कारण कोई कठिनाई नहीं पड़नी चाहिए।

इस प्रकार क्रम के संबंध में तीन विकल्प हमारे सामने आते हैं : एक ढंग यह हो सकता है कि कबीर के जितने पद प्रामाणिक सिद्ध हों उन्हें अक्षरक्रम या अकारादि क्रम से व्यवस्थित कर दिया जाय, जिसका किंचित् संकेत बी० में

मिलता है। दूसरा क्रम यह हो सकता है कि सारे पदों को विभिन्न रागों के अन्तर्गत विभाजित कर दिया जाय, जैसा कि दा० नि० गु० तथा शक० में मिलता है। तीसरा क्रम यह हो सकता है कि उन्हे विभिन्न विषयों का शीर्षक देकर उन्हींके अन्तर्गत रक्खा जाय, जैसा कि स० और शबे० में प्रकट रूप से और बीभ० में अप्रकट रूप से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर एक विशेष क्रम यह भी हो सकता है कि उन्हें भिन्न-भिन्न प्रतियों के अनुसार रक्खा जाय। उदाहरण के लिए जो पद सभी प्रतियों में मिलते हों उन्हें सब से पहले रक्खा जाय, उसके पश्चात् ऐसे पद आवें जो किसी एक प्रति में न मिलते हों, शेष सब में समान रूप से मिलते हों। इस प्रकार क्रमशः सभी समुच्चयों के पद देते हुए अन्त में ऐसे पद दिये जायँ जो केवल दो प्रतियों में मिलते हों। ऐसा करने से एक बड़ा लाभ यह होता कि जिस वैज्ञानिक शैली के आधार पर प्रस्तुत सम्पादन किया गया है उसे समझने में बड़ी सुविधा होती, किन्तु साथ ही एक बड़ी असुविधा यह है कि अत्यधिक वैज्ञानिकता के लोभ में पड़ कर साहित्यिकता तथा सहज रसबोध की हत्या भी हो सकती है। इसीलिए इस क्रम का विचार छोड़ दिया गया है, किन्तु गौरा रूप से इसका निर्देश अवश्य किया गया है। अकारादि क्रम का अवलम्बन करने से भी यही दुष्परिणाम होता कि सारा संपादन कोष की एक लम्बी तालिका के रूप में परिवर्तित हो जाता और कृत्रिमता का इतना अधिक प्रभाव परिव्याप्त हो जाता कि सामान्य पाठक को उसमें स्वाभाविकता का लेशमात्र भी आनन्द न मिलता। इसी भय से अक्षरक्रम का विचार पूर्णतः छोड़ दिया गया है— यहाँ तक कि उसे गौरा स्थान भी नहीं दिया गया। इस प्रकार केवल दो ही क्रम और शेष रह जाते हैं जिनके सम्बन्ध में यह विचार करना है कि इनमें से किस को प्राधान्य दिया जाय। उनमें से एक है रागों का क्रम और दूसरा है विषय का क्रम।

हमें इस प्रश्न को संकीर्ण-सम्बन्ध की उस तुला पर भी तौलना है जिसके आधार पर समग्र रूप से पाठ का निर्णय किया गया है। राग-क्रम के पक्ष में दा० नि० गु० और दा० नि० शक० के समुच्चय पड़ते हैं। पाठ-निर्धारण के प्रसंग में हमने देखा है कि दा० नि० गु० और दा० नि० शक० के साक्ष्य मान्य सिद्ध हुए हैं, क्योंकि उक्त समुच्चयों में किसी भी प्रकार का विकृति-साम्य नहीं मिलता। अतः यदि इन दोनों समुच्चयों का साम्य मान्य समझा जाय तो कबीर की वाणी को उसी रूप में संपादित करना चाहिए जिससे वह पृथक्-पृथक् रागों में विभक्त हो जाय। किन्तु विषय-क्रम का पलड़ा इससे भी भारी पड़ता है। उसके

पक्ष में एक ओर स० शबे० के तथा दूसरी ओर स० बीभ० के साक्ष्य पड़ते हैं। संकीर्ण-सम्बन्ध में निर्देश किया गया है कि दा० गु०, नि० गु० तथा नि० शक० में विकृति-साम्य मिलता है। इसके अतिरिक्त दा०, नि० तथा गु० तीनों का संकलन पश्चिमी प्रदेशों में हुआ है, और पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण यह नितान्त स्वाभाविक है कि उनमें क्रम का एक ऐसा रूप अपना लिया गया हो जो उधर प्रचलित हो गया था। किन्तु स० और शबे० में अथवा स० और बीभ० में कहीं से कोई भी ऐसा विकृति-साम्य नहीं मिलता जिससे उनमें किसी प्रकार के संकीर्ण-सम्बन्ध या पारस्परिक आदान-प्रदान की कल्पना को पुष्टि मिले, क्योंकि स० पश्चिमी संकलन है, बीभ० पूर्वी और शबे० मध्यवर्ती। अतः कबीर की वाणी का जो पाठ अथवा क्रम का जो रूपांतर स० और शबे० में अथवा स० और बीभ० में मिलता है उसे निरापद रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए। पहले इस बात का संकेत कर दिया गया है कि स० और शबे० दोनों में विषय-क्रम का ही अवलम्बन मिलता है। विषय के अनुसार वाणियों का क्रम रखने से एक लाभ यह होता है कि पाठकों के सामने कवि की विचारधारा का स्पष्ट चित्र संश्लेषणात्मक रूप में उपस्थित हो जाता है और खोज करने वाले विद्वान् भी बहुत से अनावश्यक परि से बच जाते हैं। इन्हीं तर्कों के आधार पर विषय-क्रम को प्रमुखता दी गयी है। किन्तु नीचे संकेताक्षरों द्वारा इस बात का भी निर्देश कर दिया गया है कि वे पद किन-किन प्रतियों में कहाँ-कहाँ किन-किन रागों के अन्तर्गत मिलते हैं। साथ ही इस बात का भी यथासाध्य प्रयत्न किया गया है कि एक शीर्षक के अन्तर्गत विशिष्ट प्रतियों में समान रूप से मिलने वाले सभी पद एकही स्थान पर आ जायँ। उदाहरण के लिए 'उपदेस चितावनी' शीर्षक के अन्तर्गत मिलने वाले ऐसे पद जो दा० नि० शबे० में मिलते हैं, एक स्थान पर कर दिये गये हैं, जो नि० शबे० में मिलते हैं वे एक पृथक् स्थान पर और जो दा० नि० गु० में मिलते हैं वे पृथक् स्थान पर। इसी प्रकार अन्य समुच्चयों के भी पृथक्-पृथक् समूह बना दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रक्खा गया है कि अधिक से अधिक प्रतियों में मिलने वाले पद पहले दिये जायँ, तत्पश्चात् उनसे कम प्रतियों वाले पद और केवल दो प्रतियों में मिलने वाले पद क्रमशः सब के अंत में मिलेंगे। इस प्रकार मध्यम मार्ग का अवलंबन कर लेने पर क्रम संबंधी प्रायः सभी प्रमुख समस्याएँ सुलझ जाती हैं। एक विषय अथवा प्रकरण से संबद्ध सारे पद एक स्थान पर आ जाते हैं जिससे कवि की विचार-शृंखला समझने में सरलता होती है; प्रतियों के किसी एक समुच्चय में मिलने वाले पद एकत्र रहने से पाठ-संपादन

के सिद्धांत और विभिन्न प्रतियों की प्रवृतियाँ समझने में सुविधा रहती है; प्रत्येक के राग का निर्देश रहने से संगीत-सम्बन्धी समस्या का भी सुलझाव हो जाता है, क्योंकि संतों के पदों का वास्तविक आनन्द प्राय: संगीत के सामंजस्य से ही मिलता है। विभिन्न विषयों का अथवा एक विषय के विभिन्न पदों का क्रम भी मनमाना नहीं लगाया गया है, प्रत्युत वह भी प्रतियों के साक्ष्य पर ही आधारित है।

प्रस्तुत सम्पादन में विषय-विभाजन का सिद्धांत मुख्य रूप से स० और शबे० पर आधारित है, अतः शीर्षक रूप में वही विषय रक्खे गये हैं जो दोनों में समान रूप से वर्त्तमान हैं। उदाहरण के लिए 'सबंगी' में सर्वप्रथय 'गुरुदेवकौ अंग' है है और शबे० (१) में 'सतगुरु और शब्द महिमा' तथा शबे० (२) में 'सतगुरु महिमा' है। अतः प्रस्तुत संस्करण में दोनों के सामंजस्य से शीर्षक का नाम 'सत-गुर-महिमा' रख लिया गया है और रचनाओं में उसे सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। सामान्यतः अपेक्षाकृत अधिक व्यापक शीर्षक रखना चाहिए, किन्तु लेखक अथवा संकलनकर्त्ता ने मुख्य विषय को ही शीर्षक के रूप रक्खा होगा। मिश्र शीर्षक कदाचित् शबे० के सम्पादक की विशेषता होगी, यह समझ कर दोनों शीर्षकों का समान अंश ही स्वीकृत किया गया है। दूसरा प्रकरण प्रेम-विरह का है जो स० में सातवीं संख्या पर 'विरह कौ अंग' शीर्षक से मिलता है और शबे० में द्वितीय अध्याय के रूप में 'विरह और प्रेम' शीर्षक से। यहाँ भी शबे० का शीर्षक सम्पादक-प्रदत्त लगता है। 'नांउं महिमा' और 'साधु महिमा', जो 'सबंगी' के क्रमशः १८वें तथा २३वें अंग हैं, शबे० के तृतीय भाग में क्रमशः दूसरे तथा चौथे अध्याय के रूप में आते हैं। 'करुनां-बीनती' सबंगी का ३७वाँ अंग है और शबे० के तृतीय भाग में अध्याय ७ तथा ८ में 'विनती और दीनता' के नाम से मिलता है। 'परचा' का शीर्षक शबे० में नहीं मिलता, केवल 'सबंगी' के आधार पर ग्रहण किया गया है। 'परचा' के अतिरिक्त 'काल', 'सजेवनि', 'निरंजन रांम', 'निंदक साकत', 'भेख आडंबर' तथा 'भरम विधूषन' नामक छः शीर्षक और हैं जिनका नामकरण केवल 'सबंगी' के साक्ष्य पर हुआ है। पदों के अतिरिक्त आगे चल कर साखियों के प्रकरण में यह नाम 'सबंगी' के अतिरिक्त अन्य कई प्रतियों में भी मिलते हैं। 'उपदेस चितावनी' शीर्षक पद स० तथा शबे० दोनों में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

उल्टवासियों के पद 'सबंगी' में जहाँ आये हैं उस अंग का 'अनभई' (सं∠ अनुभव) नाम दिया गया है, शबे० में उसे 'भेद बानी' कहा गया है। प्रस्तुत पुस्तक में उक्त शीर्षक का नाम 'अनभई' ही रक्खा गया है। शीर्षकों के नाम

अथवा क्रम के संबंध में जहाँ स० तथा शबे० में साम्य मिलता है, वहाँ उसे ज्यों का त्यों अपना लेने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती; किन्तु जहाँ दोनों में पारस्परिक भिन्नता मिलती है वहाँ अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन होने के कारण प्रायः 'सबंगी' के ही साक्ष्य का आधार लिया गया है।

इस प्रकार प्रामाणिक रूप से स्वीकृत २०० पदों को जिन सोलह अंगों या शीर्षकों में विभक्त किया गया है उनके नाम क्रमशः निम्नलिखित हैं—

(१) सतगुर महिमा—४ पद; (२) प्रेम—१५ पद; (३) नांउं महिमां—७ पद; (४) साधु महिमां—६ पद; (५) करुनां बीनती—१२ पद; (६) परचा—१० पद; (७) सूरातन—२ पद; (८) उपदेस चितावनीं—३६ पद; (९) काल—७ पद; (१०) (भगति) सजेवनि—२ पद; (११) अनभई—४५ पद; (१२) निरंजन रांम—६ पद; (१३) माया—७ पद; (१४) निंदक साकत—४ पद; (१५) भेख आडंबर—७ पद; (१६) भरम बिधूसन—२४ पद=कुल २०० पद।

रमैनियों का क्रम—कबीर की रमैनियों के सम्पादन तथा क्रम की समस्या बड़ी जटिल हो गयी है। रमैनियाँ दा० नि० तथा बी० प्रतियों में मिलती हैं। दा० नि० के पाठ स्थूल रूप से समान हैं, अतः रमैनियों के संबंध में मुख्य रूप से पाठ की दो धाराएँ हो जाती हैं, एक दा० नि० की और दूसरी बी० की। दोनों धाराओं की मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों का संक्षेप में निरीक्षण कर लेने से वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान हो जायगा।

दा० तथा नि० में रमैनी का प्रकरण छंद की संख्याओं के आधार पर पृथक् पृथक् शीर्षकों में विभक्त कर दिया गया है, जिनके नाम हैं : (१) सकल गहगरा (भूमिका स्वरूप), (२) सतपदी, (३) बड़ी अष्टपदी, (४) दुपदी (५) लहुरी अष्टपदी, (६) बारहपदी, और (७) चौपदी। दा३ तथा दा४ में बड़ी अष्टपदी सब से पहले आ जाती है, तत्पश्चात् दुपदी, सतपदी, बारहपदी, लहुरी अष्टपदी और चौपदी आती हैं। 'सकल गहगरा' की रमैनी सब के अंत में, कदाचित् उपसंहार रूप में, आती है। इनमें सात, आठ, बारह आदि की संख्याएँ रमैनियों में मिलने वाली साखियों की संख्या सूचित करती हैं। नि० में दा० के अतिरिक्त एक दुपदी रमैनी और मिलती है; इसके पश्चात् उसमें 'अगाध बोध' 'श्री पाजोग' तथा 'शब्द भोग' नामक छोटे-छोटे ग्रन्थ और भी मिलते हैं जिनकी रचना रमैनी छंद में ही हुई है।

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' में अथवा जायसीकृत 'पदमावत' में कुछ चौपाइयों के पश्चात् एक या एक से अधिक दोहे मिलते

हैं और पूरे समुच्चय को मिला कर 'दोहा' कहा जाता है, उसी प्रकार संतों की रचनाओं में भी कुछ अर्द्धालियों के अन्त में दोहे के समान एक साखी आ जाती है, और इस प्रकार के एक समुच्चय को एक 'रमैनी' कहा जाता है।

दा० नि० की रमैनियों में दो साखियों के बीच मिलने वाली पंक्तियों की कोई निश्चित संख्या नहीं ज्ञात होती जैसी कि जायसी की (और कहीं-कहीं तुलसी की भी) रचनाओं में मिलती है। व्यतिक्रम की मात्रा इतनी अधिक है कि किसी रमैनी में यदि साखी को छोड़ कर केवल तीन पंक्तियाँ मिलती हैं तो किसी-किसी में बाईस और चौबीस, यहाँ तक कि दुपदी रमैनी के एक पद में बयासी पंक्तियाँ तक मिल जाती हैं।

बी० में कुल ८४ रमैनियाँ मिलती हैं जिनमें से २८, ३२, ४२, ५६, ६२, ७०, ८० तथा ८१ संख्यक रमैनियाँ (=कुल ८ रमैनियाँ) ऐसी हैं जिनके अन्त में साखियाँ नहीं मिलतीं। इनमें भी २८, ६२ तथा ७० संख्यक रमैनियाँ ऐसी हैं जो दा० नि० स० तथा गु० में पदों के रूप में मिलती हैं। बी० में दा० नि० के समान सतपदी, अष्टपदी आदि के समुच्चय नहीं हैं, प्रत्युत सभी, एक के पश्चात् एक, क्रमशः धारावाहिक रूप में मिलती हैं। बी० में पंक्तियों की संख्या में भी विशेष व्यतिक्रम नहीं मिलता। उसमें कम से कम तीन और अधिक से अधिक बारह पंक्तियाँ ही मिलती हैं। बी० की अधिकांश रमैनियों में पंक्तियों की संख्या दस से कम ही है—केवल तीन ऐसी हैं जिनमें यह संख्या दस से अधिक हो गयी है।

यह हुई दोनों रूपान्तरों के आकार-प्रकार की संक्षिप्त रूपरेखा। किन्तु इससे कठिनाई का ठीक अनुमान नहीं होता। कठिनाई का सच्चा स्वरूप तब सामने आता है जब दोनों का पाठ-मिलान किया जाता है। दा० की रमैनियों में साखियों को भी लेकर कुल ४८६ पंक्तियाँ है, नि० में उससे ६५ अधिक अर्थात् कुल ५५१ पंक्तियाँ हैं और बी० की रमैनियों में साखियों को भी लेकर कुल ६१२ पंक्तियाँ हैं। इनमें से केवल १४२ पंक्तियाँ ऐसी हैं जो दा० नि० तथा बी० तीनों में मिलती हैं। यह कठिनाई की पहली सीढ़ी है। सिद्धान्ततः केवल उन्हीं पंक्तियों को निश्चित रूप से प्रामाणिक स्वीकार किया जाना चाहिए जो दा० बी० या नि० बी० में समान रूप से मिलती हों। कठिनाई का अनुमान इस बात से और भी लगाया जा सकता है कि बीजक की चौरासी रमैनियों में ६० ऐसी निकल जाती हैं जिनकी एक भी पंक्ति किसी अन्य प्रति में नहीं मिलती, चार रमैनियाँ (अर्थात् ४, ४२, ७६ तथा ७७) ऐसी हैं जिनकी केवल एक-एक पंक्तियाँ दा० नि० में मिल जाती हैं, तीन रमैनियाँ (अर्थात् १, ११ तथा ६५) ऐसी हैं जो केवल

आंशिक रूप से दा० नि० में मिलती हैं। सम्पूर्ण रूप से मिलने वाली रमैनियों की संख्या केवल सोलह है। उनमें सात ही रमैनियाँ ऐसी हैं जिनकी साखियाँ भी दा० नि० में मिलती हैं, शेष की साखियाँ नहीं मिलतीं। कठिनाई का अंत केवल यहीं नहीं हो जाता। जितना अंश सभी प्रतियों में मिलता है उनमें कोई तारतम्य भी नहीं दीख पड़ता। दा० नि० अष्टपदी की पहली रमैनी बी० की सातवीं रमैनी से मिलती है और उसी अष्टपदी की दूसरी रमैनी बी० की चालीसवीं रमैनी के रूप में मिलती है; उसी की छठी रमैनी बी० की ८३वीं रमैनी से मिलती है और सातवीं बी० की ३०वीं से ही मिल जाती है, आठवीं और भी पहले आकर बी० की २६वीं रमैनी से ही मिल जाती है। प्रश्न यह उठता है कि रमैनियों में कोई निश्चित क्रम माना जाय अथवा नहीं, और यदि माना जाय तो उसमें किस प्रति को प्राधान्य दिया जाय।

संश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इन रमैनियों में आदि से अंत तक एक सुव्यवस्थित विचारधारा की पुष्टि की गयी है। इसी विचारधारा के आधार पर रमैनियों का क्रम लगाने में सहायता मिलती है। पहली रमैनी, जो दा० नि० चौपदी रमैनी की पहली और बी० की भी पहली रमैनी को मिला कर सम्पादित की गयी है, यह भाव प्रकट करती है कि राजा-प्रजा सब एक ही मूल से उत्पन्न होते हैं। सब में एक ही रुधिर और एक ही प्राण व्याप्त है। सभी मनुष्य माता के गर्भ में एक ही प्रकार से दस मास तक निवास करते हैं, किन्तु उत्पन्न होने पर अपने कर्त्ता को भूल जाते हैं और भाव-भक्ति से उसकी आराधना न करने के कारण नाना योनियों में भ्रमण करते हैं।

दूसरी और तीसरी रमैनियों में उस परम तत्व की विलक्षणता का प्रतिपादन किया गया है जिसका आदि-अन्त कोई नहीं जान सकता। उसकी कोई रूपरेखा नहीं। वह न हलका है, न भारी। भूख-प्यास, धूप-छाँह, सुख-दुःख आदि सभी द्वन्द्वों से रहित वह तत्व सर्वत्र परिव्याप्त हो रहा है। उससे बढ़ कर संसार में और कोई नहीं, अतः जीव को सदैव उसी का स्मरण करना चाहिए। पुराणों में जिन अवतारों की कथाएँ मिलती हैं, परमात्मा उनके परे है। उसने न तो दशरथ के घर अवतार लिया और न देवकी के घर। ग्वालों के संग बन-बन फिरने वाला और गोवर्धन पर्वत उठाने वाला कोई और है। उसने न तो वामन का अवतार लेकर राजा बलि को छला और न शूकरावतार धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया। गंडकी शालग्राम, मच्छ-कच्छ आदि के रूप में जो भगवान के अवतारों की कल्पना की जाती है वह भी मिथ्या है। कबीर का विचार है कि यह सारे

प्रपंच सांसारिक व्यक्तियों के बनाये हुए हैं। इन सब के परे परमात्मा का जो अगम रूप है वही सच्चा है और वही सारे संसार में व्याप्त हो रहा है। यह दोनों रमैनियाँ दा० नि० बारहपदी में क्रमशः पहली और नवीं रमैनी के रूप में तथा बी० में ७०वीं और ७५वीं रमैनी के रूप में मिलती है।

चौथी रमैनी दा० नि अष्टपदी की पहली और बी० की सातवीं रमैनी के सम्मिश्रण से बनी है। उसमें यह बताया गया है कि जब सृष्टि में कुछ नहीं रहता तब भी परमात्मा वर्त्तमान रहता है। जब पवन-पानी, पिंड-वास, धरती-आकाश, गर्भ-मूल, कली-फूल, शब्द-स्वाद, विद्या-वेद, गुरू-चेला आदि कुछ नहीं थे तब भी वह था। वह अजेय है, उसका कोई नाम-ग्राम नहीं।

आगे की छः रमैनियों में यह बताया गया है कि इस रहस्य को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण जो नाना प्रकार के मत-मतान्तर चल पड़े हैं, उनके मूल में भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आदम-हौवा, बिस्मिल्लाह और दोज़ख़-बिहिश्त आदि की कल्पना सर्वथा निराधार है, क्योंकि सृष्टि के प्रारंभ में, जब हिन्दू-मुसलमान का कोई विभाजन नहीं था और न कुल-जाति का कोई प्रश्न था, तब नर्क-स्वर्ग किसने बनाया ? जब गाय और कसाई दोनों नहीं थे, तब 'बिस मिल्लाह' कौन बोलता था ? जन्म-ग्रहण, नाम-करण, सुन्नत-जनेऊ आदि लोकाचार सब कृत्रिम हैं, इनके मूल में कोई परमार्थ नहीं है। अतः इन बातों के पीछे पागल होना ठीक नहीं। ब्राह्मण लोग वेदादि का अध्ययन कर और सन्ध्या-तर्पण आदि षट् कर्मों का आचरण कर अपने को उच्च समझने लगते हैं। यदि किसी अन्य व्यक्ति से स्पर्श हो जाता हैं तो पवित्र होने के लिए शरीर तथा वस्त्रादि का प्रक्षालन करते हैं, किन्तु यह भूल जाते हैं कि अधिक गर्व करने से मुक्ति नहीं मिलती। परमात्मा किसी का अहंकार सहन नहीं कर सकता। यदि निर्वाण प्राप्त करना हो तो जाति-कुल का अभिमान छोड़ कर भगवान का भजन करना चाहिए। क्षत्रिय भी अहंकारवश क्षात्र धर्म का पालन करते-करते अपने लिए कर्मों का जाल खड़ा कर लेते हैं। सच्चा क्षत्रिय वस्तुतः वह है जो मन से संग्राम करे और पाँचों इन्द्रियों को वश में कर एक परमात्मा का स्मरण करे। जैन लोग भी षडदर्शन के आवर्त्तन में पड़ कर सच्चा मार्ग भूल जाते हैं। अहिंसा का सिद्धांत मानते हुए भी नाना वृक्षों के फल-फूल तोड़ कर देवालय में चढ़ाते हैं। क्या उन वृक्षों को छिन्न-भिन्न करने से हिंसा नहीं होती ? बिना सच्चे ज्ञान के निकट की वस्तु भी दूर की ज्ञात होती है। जो तत्व समझ लेते हैं उनके लिए वह सर्वत्र दिखाई देता है। सृष्टिकर्त्ता नाना प्रकार के जीवों की सृष्टि करता है, जैसे कुम्हार नाना

प्रकार के बर्तन गढ़ता है। सभी का बनाने वाला एक है जो गर्भ में सबकी समान रूप से रक्षा करता है, किन्तु बाहर आने पर सब लोग अपने को विलग-विलग मानने लगते हैं। कितनी बड़ी मूर्खता है? हिन्दू-मुसलमान अथवा ब्राह्मण-शूद्र आदि के विभाजन सब मिथ्या हैं। जैसे गायें भिन्न-भिन्न रंगों की होती हैं, किन्तु दूध एक ही प्रकार का होता है, वैसे ही सब प्राणियों को समझना चाहिए। वास्तव में जो इस विलक्षण सृष्टि की रचना करता है वही सूत्रधार सच्चा है। जो बुद्धिमान हैं, वे उसी का चिन्तन करते हैं। यह रमैनियाँ दा० नि० अष्टपदी में में क्रमशः दूसरी, तीसरी, पाँचवीं, छठी, सातवीं तथा आठवीं रमैनी के रूप में मिलती हैं।

आगे की ग्यारहवीं रमैनी दा० नि० सतपदी में दूसरी संख्या पर मिलती है और बी० में ८२वीं रमैनी के रूप में मिलती है। सृष्टिकर्त्ता ने जगद्रूप वृक्ष की रचना की है जिसमें तीनों लोक तीन शाखाओं के समान हैं, पत्ते चार युगों के समान हैं और उसमें पाप पुण्य के दो फल लगे हैं। इस प्रकार की विलक्षण सृष्टि बना कर बनाने वाला स्वयं इसी में लुप्त हो जाता है, यही इस रमैनी का भाव है। इसके पश्चात् की छः रमैनियों में क्रमशः निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

सारे संसार के ऊपर काल का पहरा सदैव चला करता है। मोह से अंधी दुनिया इस रहस्य को न समझ विषय-वासना में लिपटी रहती है और झूठे सुख को सुख समझ कर उसी की प्राप्ति के लिए पागल बनी रहती है। परिणाम यह होता है कि लोग दुःख से कभी भी छुटकारा नहीं पाते। सच्चा सुख राम नाम में है, उसी का निरंतर चिंतन करना चाहिए, क्योंकि पता नहीं किस समय काल झपट्टा मारकर जीव की इह लीला समाप्त कर दे।

माया का जाल इतना प्रबल होता है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी उससे छुटकारा नहीं पा सकते।

माया-मोह के भयानक अंधकार में पड़ कर जीव तड़फड़ाता है और उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता।

वह अपनी मुक्ति के लिए षड्दर्शन, षडाश्रम, वेद चतुष्टय, षड् शास्त्र और अगणित विद्याओं की सृष्टि करता है; तप-तीर्थ, व्रत-आचार, धर्म-नियम, दान-पुण्य आदि की कल्पना करता है, किन्तु यही सब उसके लिए बंधन हो जाते हैं। वह मिथ्या प्रपंचों में पड़कर सच्ची वस्तु को खो बैठता है।

हरि के वियोग में जीव को बड़ा संताप सहना पड़ता है। जीवन भर उसे

दुःख ही दुःख झेलना पड़ता है, सुख-सुविधा का लेश-मात्र भी अनुभव नहीं होने पाता। यों ही सारा जीवन व्यतीत हो जाता है और काल का डंका सुनाई पड़ने लगता है।

इसी प्रकार नाना योनियों में यह जीव भ्रमण करता है और बड़ा क्लेश भोगता है, किन्तु ऐसा कोई नहीं मिलता जो उसे संताप की ज्वाला में जलने से उबार ले। वह जिसमें अपना हित समझ कर बड़ी ममता करता है वही अन्त में उसका अनहित कर बैठता है। झूठी मृगतृष्णा के पीछे वह सदैव उन्मत्त फिरा करता है, और ममता की ज्वाला में जला करता है।

ऊपर की छः रमैनियाँ दा० नि० की बड़ी अष्टपदी से ली गयी हैं और बीजक में क्रमशः ११, १६, २२, ६८, ८३, तथा ८४ संख्याओं पर मिलती हैं। शेष रमैनियों में से प्रथम दो दा० नि० की दुपदी से और अंतिम सतपदी से ली गयी हैं। अठारहवीं रमैनी में यह बताया गया है कि गुरु की ही कृपा होने पर इस ज्वाला से शान्ति मिलती है और सांसारिक विपत्तियों से छुटकारा मिलता है। उन्नीसवीं रमैनी में यह भाव निहित है कि संसार में सार वस्तु केवल राम का नाम है, शेष सब व्यर्थ का भ्रमजाल है। बीसवीं रमैनी में उसी अविनासी राम-नाम की छाया में चिरंतन विश्राम प्राप्त करने का उपदेश किया गया है। विषय-वासनाओं के उपभोग से निकृष्ट योनियों में जन्म मिलता है। भवसागर बड़ा अथाह है। उसे पार करने के लिए राम-नाम रूपी नौका का ही आधार ग्रहण करना चाहिए। हरि की शरण में जाने से वही दुर्लंघ्य समुद्र गोखुर के समान अत्यल्प परिमाण का हो जाता है।

उक्त क्रम का निर्णय प्रयोगात्मक शैली के आधार पर किया गया है। पहले दा० नि० और बी० के क्रमों का पृथक्-पृथक् अनुसरण कर यह देखने का प्रयत्न किया गया कि दोनों में कौन सा रूपांतर अधिक सन्तोषप्रद सिद्ध होता है। इस दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात हुआ कि बी० प्रति के क्रम का अनुसरण करने से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध-सूत्र नहीं मिलता, किन्तु दा० नि० के क्रम का थोड़े हेर-फेर से अनुसरण कर लेने पर वह मिल जाता है। इसका स्पष्ट संकेत दा० नि० की अष्टपदी रमैनी से मिलता है। उसके केवल चौथे पद को छोड़ कर शेष सब बीजक में भी प्रायः ज्यों के त्यों मिल जाते हैं, किन्तु क्रम दोनों में भिन्न हैं। उसी की पहली रमैनी में परम तत्व की त्रिलक्षणता और चिरंतनता का वर्णन है। दूसरी तथा तीसरी में मुसलमानी मत का खंडन है, इसी प्रकार पाँचवीं में ब्राह्मणों के बाह्याचार का, छठी में क्षत्रियों के आचार का और सातवीं में जैन मत का खंडन

मिलता है। अंतिम अर्थात् आठवीं में सब का सामूहिक रूप से समाधान है। यह क्रम प्रत्येक दृष्टि से स्वाभाविक लगता है। बीजक में यही रमैनियाँ क्रमशः ७, ४०, ३६, ३५, ८३, ३०, और २६ संख्याओं पर मिलती हैं। यदि बीजक के उक्त क्रम का अनुसरण किया जाय तो विचारों की स्वाभाविक शृंखला टूट जाती है और सारा तारतम्य नष्ट हो जाता है। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर दा० नि० के क्रम को प्रमुखता दी गयी है और उसकी पाठ-सम्बन्धी त्रुटियाँ बी० की सहायता से सुधारी गयी हैं। क्रम-व्यवस्था में इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि दा० नि० के एक समुच्चय में मिलने वाली ऐसी रमैनियाँ, जिन्हें प्रामाणिक समझा गया है, प्रायः एक ही स्थान पर आ जायँ। इस प्रकार पहली रमैनी दा० नि० की चौपदी से, दूसरी तथा तीसरी रमैनियाँ बारहपदी से, चौथी से लेकर दसवीं तक सात रमैनियाँ अष्टपदी से, ग्यारहवीं रमैनी सतपदी से, बारहवीं से सत्रहवीं तक छः रमैनियाँ बड़ी अष्टपदी से, अठारहवीं तथा उन्नीसवीं रमैनियाँ दुपदी से और अंतिम अर्थात् बीसवीं रमैनी सतपदी से लेकर संकलित की गयी हैं। इस क्रम से दा० नि० के प्रायः सभी समुच्चय पृथक् पृथक् समूहों में एक साथ मिल जाते हैं, केवल सतपदी के ही दो पदों को दो विभिन्न स्थलों पर रखना पड़ा है। रमैनियों के पंक्ति-स्थापन में जहाँ कहीं व्यवधान समझ पड़ा वहाँ दा० नि० अथवा बी० से अतिरिक्त पंक्तियाँ लेकर उसे पूर्ण किया गया है, किन्तु इस बात का निरंतर प्रयत्न किया गया है कि ऐसी पंक्तियों की संख्या कम से कम हो, क्योंकि सिद्धांततः केवल एक शाखा में मिलने वाली पंक्तियों की प्रामाणिकता संदिग्ध ही रहती है। इन्हें केवल प्रसंग के अनुरोध से स्वीकार करना पड़ा है। इस प्रकार की अतिरिक्त पंक्तियों की संख्या कुल पन्द्रह है जिनमें से नौ पंक्तियाँ दा० नि० से और शेष छः बी० से ली गयी हैं।

रमैनियों की पाठ-समस्या पर विचार करने से इस बात का अनुभव हुआ है कि उसके पाठ में दोनों ही शाखाओं में मनमाने पाठ-परिवर्तन हुए हैं। साथ ही इस बात को भी स्वीकार करना पड़ता है कि जहाँ तक रमैनियों के पाठ का संबंध है, दा० तथा बी० दोनों ही शाखाएँ मूल से बहुत दूर की ज्ञात होती हैं। इतर सामग्री के अभाव से इसके सम्पादन में कोई बाह्य सहायता भी नहीं मिलती। इसलिए संपादन की कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं। किन्तु दोनों शाखाओं की सहायता से सम्पादन के सिद्धांतों की रक्षा करते हुए, जहाँ तक बन पड़ा है, उसे अधिक से अधिक प्रामाणिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी अनेक संदिग्ध स्थल ऐसे रह गये हैं जिनका समाधान अभी पूर्णरूपेण नहीं किया जा सका है। किन्तु

प्राप्त सामग्री के अनुसार उसकी पूर्ति के लिए कोई आलम्ब भी शेष नहीं रह गया है।

दा० नि० में मिलने वाली 'बावनी रमैनी', जो गु० में 'बावन अखरी' के नाम से और बी० में 'ज्ञान चौंतीसा' के नाम से मिलती है, रमैनी छंद में ही रहने के कारण प्रस्तुत ग्रंथ में 'चौंतीसी रमैनी' शीर्षक सहित अंत में जोड़ दी गयी है।

साखियों का क्रम—कबीर की साखियाँ शक० और शबे० को छोड़ कर शेष समस्त प्रतियों में मिलती हैं। उनमें से भी केवल गु० और बी० प्रतियों को छोड़ कर शेष सभी में विभिन्न अंगों के अनुसार विभाजित रहने के कारण साखियों के क्रम की समस्या अपेक्षाकृत सरल हो गयी है। विशेषतया जिन समुच्चयों का पाठ निरापद रूप से स्वीकार किया गया है उन सभी में समान रूप से अंग-विभाजन का ही क्रम मिलने के कारण उसे स्वीकार कर लेने में कोई बाधा नहीं जान पड़ती। उदाहरण के लिए दा० नि० सा० साबे० सासी० स० गुण० में तथा दा० नि० सा० साबे० सासी० स० में अथवा दा० नि० सा० साबे० सासी० में जो साखियाँ अथवा साखियों के जो पाठ समान रूप से मिलते हैं उन्हें प्रामाणिक माना गया है, क्योंकि उनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पाठों में कोई ऐसी विकृति नहीं मिलती जो सब में पायी जाय। अत: एक बार जब कि उनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पाठ प्रामाणिक मान लिये जाते हैं तो उनमें मिलने वाले क्रम का वह सामान्य ढाँचा भी प्रामाणिक मान लिया जाना चाहिए जिसके अनुसार उक्त प्रतियों की साखियाँ प्रस्तुत हुई हैं। इस दृष्टि से पहले ऐसे अंगों के नाम पृथक् कर लिये गये हैं जो ज्यों के त्यों अथवा कुछ हेर-फेर के साथ सभी प्रतियों में मिलते हैं। इस बात का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है कि अंगों की संख्या यथासंभव कम हो है। यदि किसी विशिष्ट साखी के संबंध में सभी प्रतियों का मतैक्य नहीं मिलता तो उसके अंग का निर्णय प्रसंग अथवा औचित्य के आधार पर किया गया है। कौन सा अंग प.ले होना चाहिए और कौन बाद को, इस प्रश्न का निर्णय भी प्रतियों के साक्ष्य के आधार पर ही किया गया है। किन्तु जहाँ कहीं उनमें वैषम्य मिलता है वहाँ 'सबंगी' के साक्ष्य को ही सब से अधिक प्रामाणिक माना गया है। पर्याप्त रूप से प्राचीन होने के साथ ही साथ इसकी क्रम-व्यवस्था एक प्रबुद्ध संत द्वारा की गयी है अतः संत-साहित्य की अन्य विशेषताएँ उसमें स्वतः समाहित हैं। उसके क्रम को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं दीख पड़ता। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रति के क्रम का अनुसरण कदापि श्रेयस्कर नहीं

कहा जा सकता। जैसा कि प्रतियों के विस्तृत विवरण से स्पष्ट है, एक ही परिवार की भिन्न-भिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न क्रम मिलते हैं; एकरूपता कहीं नहीं दिखाई पड़ती। उदाहरण के लिए दा० परिवार की पाँच प्रतियों में, जो प्रस्तुत सम्पादन के लिए चुनी गयी हैं, तीन प्रकार के क्रम मिलते हैं—प्रथम दो प्रतियों का क्रम एक प्रकार का है, तृतीय और चतुर्थ का क्रम दूसरे प्रकार का है और पंचम प्रति का क्रम इन दोनों से भिन्न है। बी० और बीभ० के क्रम में भी पर्याप्त अन्तर हैं, जिनकी चर्चा उनके विस्तृत विवरण में हो चुकी है। इस प्रकार की अनेकरूपता के बीच सर्वाङ्गी का अनुसरण ही श्रेष्ठतर समझा गया।

उक्त सिद्धान्तों के अनुसार निश्चित रूप से प्रामाणिक कोटि में आने वाली कबीर की ७४४ साखियों को जिन अंगों में विभाजित किया गया है उनके नाम तथा क्रम निम्नलिखित हैं—

(१) सतग्रुरु महिमा—३४ साखियाँ, (२) प्रेम बिरह—५५ साखियाँ, (३) सुमिरन भजन महिमा—२६ साखियाँ, (४) साधु महिमा—४३ साखियाँ, (५) गुरु शिष्य हेरा—१३ साखियाँ, (६) दीनता बीनती—१२ साखियाँ, (७) पिव-पहिचानबौ—१२ साखियाँ, (८) संम्रथाई—१७ साखियाँ, (९) परचा—४१ साखियाँ, (१०) सूखिम मारग—१६ साखियाँ, (११) पतिब्रता—१६ साखियाँ, (१२) रस—१० साखियाँ, (१३) बेलि—३ साखियाँ, (१४) सूरातन—४१ साखियाँ, (१५) उपदेस चितावनी—८९ साखियाँ, (१६) काल—४० साखियाँ, (१७) सजेवनि—८ साखियाँ, (१८) पारिख अपारिख—१२ साखियाँ, (१९) जीवत मृत—१७ साखियाँ, (२०) निरपख मधि—११ साखियाँ, (२१) सांच चांणक—३४ साखियाँ, (२२) निगुणां नर—१६ साखियाँ, (२३) निंदा—८ साखियाँ, (२४) संगति—१८ साखियाँ, (२५) भेख आडंबर—२४ साखियाँ, (२६) भरम बिधूसन—११ साखियाँ, (२७) सारग्राही—५ साखियाँ, (२८) बिचार—८ साखियाँ, (२९) मन—२३ साखियाँ, (३०) बिखै बिकार—२५ साखियाँ, (३१) माया—२८ साखियाँ, (३२) बेसास—१६ साखियाँ (३३) करनीं कथनीं—९ साखियाँ, (३४) सहज—८३ साखियाँ=कुल ३४ अंग, ७४४ साखियाँ।

क्रम के संबंध में केवल एक बात और विचारणीय रह गयी है, वह यह कि साखी, पद और रमैनी तीन मुख्य रचनाओं में से कौन पहले रक्खी जाय और कौन बाद को। इस पर विचार करने के पूर्व यदि सभी प्रतियों के साक्ष्यों का

संक्षिप्त मानचित्र मस्तिष्क में रख लिया जाय तो निर्णय में विशेष सुविधा होगी।

दा१ दा२ तथा दा३ में पहले साखियाँ आती हैं तत्पश्चात् पद और रमैनियाँ। दा४ में पहले पद आते हैं तत्पश्चात् रमैनियाँ और अन्त में साखियाँ। नि० में साखियों के पश्चात् पहले रमैनियाँ आती हैं तत्पश्चात् पद आते हैं। गु० में पहले पद आते हैं तत्पश्चात् साखियाँ। 'बावन अखरी' की रमैनियाँ पदों के बीच में ही गौड़ी राग के अन्तर्गत आ जाती हैं। बीजक में पहले रमैनियाँ आती हैं तत्पश्चात् पद और अन्त में साखियाँ मिलती हैं। इनके अतिरिक्त और कोई ऐसी प्रति नहीं जिनमें तीनों रचनाएँ समग्र रूप से मिलती हों।

पद सब से पहले आयें और साखियाँ सब के अन्त में, यह कई साक्ष्यों से सिद्ध है। गु० तथा बी० में संकीर्ण-सम्बन्ध न होने से दोनों के समान साक्ष्य प्रामाणिक माने गये हैं। यह ऊपर ही बताया जा चुका है कि गु० और बी० दोनों में पद पहले आते हैं और रमैनियाँ बाद को। दा० ४ तथा बी० के साक्ष्य से भी इसी क्रम को पुष्टि मिलती है। अतः प्रस्तुत पुस्तक में पदों को ही सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। रमैनियों का प्रश्न शेष है, किन्तु उनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रतियों के साक्ष्य भिन्न-भिन्न दिखलाई पड़ते हैं। यदि दा० की प्रथम तीन प्रतियों का साक्ष्य ठीक माना जाय तो रमैनियों को अंत में रखना चाहिए और यदि बी० का साक्ष्य उपयुक्त स्वीकार किया जाय तो उन्हें सब के आरम्भ में आना चाहिए; किन्तु दा० और बी० के साक्ष्यों की पुष्टि किसी अन्य प्रति से नहीं होती। गु० में 'बावन अखरी' की रमैनियाँ बीच में आती हैं और बी० में भी 'ज्ञान चौंतीसा' के नाम से बीच में साखियों के पूर्व ही आ जाती हैं। इनके अतिरिक्त दा४ में भी रमैनियों का प्रकरण साखियों के पूर्व और पदों के पश्चात् आता है। इसी प्रवृत्ति की ओर कई प्रतियों का झुकाव देखकर प्रस्तुत पुस्तक में भी रमैनियाँ पदों के पश्चात् रक्खी गयी हैं और उन्हीं के साथ चौंतीसी रमैनी देते हुए अंत में साखियाँ दी गयी हैं।

§ ७ : असाधारण संशोधन

ऊपर जिन सिद्धान्तों की विवेचना की गयी है उनके आधार पर पाठ का सम्पादन कर लेने पर भी कुछ स्थल ऐसे बच जाते हैं जिनके सम्बन्ध में यह

प्रायः स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे मूल प्रति के अथवा कवि के अभीष्ट पाठ नहीं हो सकते। ऐसे स्थलों पर ही संशोधन का आश्रय लेना पड़ा है। किंतु ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं।

संशोधन करते समय दो बातों का ध्यान बराबर रक्खा गया है। पहली बात तो यह कि ऐसे पाठों को भलीभाँति ठोंक-बजा कर यह देख लिया गया है कि वे निश्चित रूप से विकृत हैं। दूसरी बात यह कि विकृति मान लेने पर फिर उसमें मनमाना संशोधन नहीं किया गया है। ऐसा करते समय प्रतियों के साक्ष्य के साथ-साथ विकृत पाठ की लिपि, भाषा, प्रासंगिकता आदि से संबद्ध विभिन्न सम्भावनाओं पर विचार करते हुए जो पाठ अधिक से अधिक सम्भव समझ पड़ा है उसी को मूल रूप में ग्रहण किया गया है। आगे उद्धृत उदाहरणों से यह बातें स्पष्ट हो जावेंगी।

१—पद ५-७ का प्रस्तावित पाठ है : सुर तैंतीसौं **कोटिक** आए मुनिवर सहस अठासो। 'कोटिक' के स्थान पर दा० नि० में 'कौतिग' और गु० में 'कउतक' पाठ मिलते हैं। दा० नि० गु० का समान साक्ष्य सिद्धांततः स्वीकृत होना चाहिए, किन्तु 'कौतिग' पाठ मान लेने पर उक्त पंक्ति का अर्थ होगा : तैंतीसों देवता कौतुक देखने के लिए आये और अठासी सहस्र मुनिवर भी पधारे। किन्तु परम्परागत प्रसिद्धि के अनुसार देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ मानी गयी है; अतः 'कोटिक' पाठ की आवश्यकता प्रतीत हुई। पहले उर्दू 'ते' के ऊपर छोटी सी पड़ी लकीर देकर 'टे' की आवश्यकता पूरी करते थे जिससे 'त' और 'ट' में स्वाभाविक रूप से भ्रम हो जाया करता था। दा० नि० गु० प्रतियों में फ़ारसी लिपिजनित विकृतियों के अनेक उदाहरण मिले हैं। सम्भवतः यह विकृति भी इसी कारण उक्त प्रतियों में पृथक्-पृथक् रूप में आ गयी।

२—पद १०-१६ : कहै कबीर संसा नहीं **भुगुति** मुकुति गति पाइ रे। भागवत धर्म की सबसे बड़ी विशेषता उसका 'भुक्ति-मुक्ति प्रद' होना है। बौद्धों का निर्वाण पथ केवल मुक्ति-धर्म था। भागवत धर्म में परलोक और जीवन का, भुक्ति और मुक्ति का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया। कबीर का आशय भुक्ति-मुक्ति लाभ का ही समझ पड़ता है, भक्ति-मुक्ति का नहीं। फ़ारसी लिपि में 'भुगुति' का सरलता से 'भगति' हो सकता है।

३—पद ५३-४ : पठएं न जांउं **अनवा** नहिं आऊं सहजि रहूं दुनिआई हो। जिस पद में यह पंक्ति आती है वह दा० नि० स० बी० में मिलता है।

बी० में उक्त पंक्ति के 'अनवा' पाठ के स्थान पर 'आने' मिलता है और दा० नि० स० में 'अरवा' मिलता है; दा३ में केवल 'रवा' मिल जाता है। पद में भक्त की सहज द्वंद्वातीत अवस्था का वर्णन है—उस अवस्था का जबकि उसे आत्मा-परमात्मा और जगत् के अस्तित्व का पूरा-पूरा बोध हो जाता है। प्रसंग से प्रस्तुत पंक्ति का सरल अर्थ यही होना चाहिए कि न तो मैं किसी के पठाने से कहीं जाता हूँ और न किसी के 'आनने' से कहीं आता हूँ, बल्कि सहज रूप से संसार में निवास करता हूँ। इस दृष्टि से बी० का 'आने' पाठ अधिक प्रासंगिक लगता है; किन्तु दा३ में 'रवा' और दा० नि० स० में 'अरवा' पाठ मिलने का क्या समाधान हो सकता है, इस समस्या पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। 'अरवा' अथवा 'रवा' का न तो कोई लौकिक अर्थ समझ पड़ता है और न आध्यात्मिक। अतः वह निश्चय ही विकृत है। राजस्थान में कबीर के पदों की जो प्राचीन टीका मिली है उसमें उक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार दिया गया है : "पठयां न जाऊं करमां का। भेज्या न जाऊँ। अउठा आऊं नहीं संसार मैं देह धरि। सहज द्वंद रहित हरि की गति आई।" 'अउठा (=वापस) आऊं नहीं' यह अर्थ 'अरवा' पाठ से नहीं सिद्ध होता, अतः निश्चय ही मूल प्रति में इसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द था। अनुमान यह है कि वह कदाचित् 'अनवा' था जिससे 'न' तथा 'र' की आकृति-साम्य के कारण स० प्रति में 'अरवा' हो गया। प्राचीन नागरी लिपि में 'न' तथा 'र' प्रायः एक ही प्रकार से लिखे जाते थे। प्रश्न उठ सकता है कि बी० का पाठ ही यहाँ क्यों नहीं मान लिया गया? किन्तु पाठ-सम्पादन का यह एक मान्य सिद्धान्त है कि एक शब्द के कई पाठान्तरों में प्रायः गूढ़ और अनगढ़ (किन्तु सार्थक) पाठ ही मूल के अधिक निकट के सिद्ध होते हैं और सरलतर रूपान्तर प्रायः बाद के होते हैं। यही कारण है कि बी० का 'आने' पाठ अस्वीकृत कर दा० नि० स० द्वारा प्रस्तुत 'अरवा' के सम्भावित मूल रूप 'अनवा' को ही प्रामाणिक रूप से स्वीकृत किया गया है। एक बात यह भी विचारणीय है कि 'अरवा' की विकृति 'आने' पाठ से किसी भी लिपि में संभव नहीं हो सकती, केवल 'अनवा' से ही हो सकती है, और वह भी बदलती हुई भाषा के प्रभाव से हुई है।

४—पद ६ -१ : मन आहर कहं बाद न कीजै।

उक्त पंक्ति में 'आहर कहं' के स्थान पर सभी प्रतियों में 'अहरखि' पाठ मिलता है, किन्तु इस शब्द की न तो व्युत्पत्ति ही स्पष्ट है और न कोई उपयुक्त अर्थ ही समझ पड़ता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'अहिरख' का अर्थ 'भोजन

के लिए' दिया है [१], किन्तु यह अर्थ किस व्युत्पत्ति के आधार पर किया गया है, इसका वहाँ कोई संकेत नहीं। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने अपने एक पत्र में 'अहिरख' का अर्थ 'दूसरों की देखादेखी', 'हिर्स में पड़ कर' दिया है। उनके अनुसार 'अहिरष' का 'अ' उसी प्रकार का व्यर्थ आगम है जैसे 'अबिरथा' आदि में मिलता है, और 'ष' का उच्चारण 'स' होना चाहिए। श्री नरोत्तमदास स्वामी के पत्र से भी ज्ञात होता है कि वे इसके अर्थ के संबंध में पूर्णतया निश्चित नहीं हैं। प्रसंग आदि के अनुसार उन्होंने इसका संभावित अर्थ 'अहंभाव के साथ अथवा गर्वपूर्वक'—कदाचित् 'अहं' (अहंकार) + 'रखि' (रख कर) के आधार पर किया है। किन्तु इन अर्थों में से कोई भी संतोषजनक नहीं सिद्ध होता। साथ ही दा० नि० गु० स० में समान रूप से यही शब्द मिल जाने से इस बात का पूर्ण संकेत मिलता है कि मूल प्रति में यह अथवा इससे मिलता-जुलता कोई अन्य शब्द अवश्य था। लिपि-विकृति की संभावनाओं पर विचार करने से यह अनुमान लगता है कि मूल प्रति में कदाचित् 'आहर कहं' (आहर=उद्यम;[२] कर्त्तव्य, तदबीर—भाग्य अथवा 'तक़दीर' के विरोध में) पाठ था जो आगे चल कर उर्दू में लिखे रहने के कारण 'अहरषि', 'अहिरख, या 'अहरखि' पढ़ लिया गया और यही पाठ आगे की प्रतियों में भी चलने लगा। उर्दू में 'आहर कहं' का 'अहरखि' सरलता से हो सकता है। 'आहर' शब्द का प्रयोग गुरु अर्जुनदेव के एक सलोक में भी प्रायः इसी अर्थ में मिलता है। सलोक इस प्रकार है : **आहर** सभि करदा फिरै, **आहरु** इकु न होइ। नानक जितु **आहरि** जगु ऊधरै, बिरला बूझै कोइ ॥[३] अर्थात् मनुष्य सभी (सांसारिक) उद्यम करता फिरता है, परन्तु (इससे वह) एक उद्यम नहीं होता। हे नानक, जिस उद्यम (के वसीले) से जगत् उद्धार पाता है उसे कोई बिरला ही समझता है। जायसीकृत 'पदमावत' तथा मंझनकृत 'मधुमालती' में भी उक्त शब्द का प्रयोग मिलता है, जहाँ यह 'निष्फल' (आहर> अहल>अफल=निष्फल) अर्थ प्रकट करता हुआ ज्ञात होता है; तुल० कत तप कीन्ह छांड़ि कै राजू। **आहर** गएउ न भा सिधि काजू॥ जेइं जग जनमि न तोहिं पहिचांनां। **आहर** जनम मुएं पछितांनां॥[४] इस अर्थ से भी संशोधित पाठ में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती।

४—पद ६५ की अन्तिम पंक्ति का निर्धारित पाठ है : **चिरकुट फारि चुहाड़ा लै गयौ तनी तागरी छूटी**। दा० नि० स० में इस पंक्ति का पाठ है : चड़ा चीथड़ा

१. संत कबीर, परि० पृ० १३२। २. तुल० वी० एस० आप्टे, संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी—आहर—(संज्ञा) अकॉम्प्लिशिंग, पर्फार्मिंग, पृ० ९१। ३. श्रीगुरुग्रन्थसाहब, मिशन-संस्करण, पृ० ९६५। ४. दे० डॉ० माता प्रसाद गुप्त संपादित पदमावत,छंद २०५-६ तथा मधुमालती छंद ५-१।

चूहड़ा लै गया तणीं तणगती टूटी। गु० का पाठ है : चिरगट फारि चटारा लै गइग्रौ तरी तागरी छूटी। गु० का 'चिरगट' शब्द वास्तव में अवधी के 'चिरकुट' का विकृत रूप है। 'चिरकुट' शब्द का प्रयोग यहाँ पूर्णतः फटे वस्त्र के लिए किया जाता है, और उसका यहाँ प्रसंग भी है। 'तरी' पाठ में भी विकृति ज्ञात होती है क्योंकि 'तरी तागरी' का कोई उपयुक्त अर्थ नहीं निकलता। वस्तुतः यह 'तनी' शब्द का विकृत रूप ज्ञात होता है जो प्राचीन नागरीलिपि-जनित भ्रम से हुआ जान पड़ता है। दा० और स० का 'तणीं' तथा नि० का 'तड़ी' पाठ भी उसी रूप की ओर संकेत करते हैं। 'चुहाड़ा' अवधी प्रदेश में अभी तक बोला जाता है जो 'चूहा' से व्युत्पन्न है। पश्चिमी हिन्दी में वही 'चूहड़ा' है जो डोम अथवा मेहतर का द्योतक होता है। शव के फटे-चिथड़े प्रायः मेहतर या डोम ले जाते हैं। 'चुहाड़ा' से ही कदाचित् फ़ारसी लिपि के कारण गु० में 'चटारा' पाठ हो गया। 'तागड़ी' करधन या कटिसूत्र को कहते हैं, और 'तनी' का अर्थ है 'चोली बंद'[४]। मिर्जा ख़ाँ कृत 'तुहफ़तुल् हिंद' (हिंदी-फ़ारसी कोश जिसकी एक ह० लि० प्रति इंडिया ऑफ़िस लायब्रेरी, लंदन में सुरक्षित है; रचनाकाल १६७६ ई० से कुछ पूर्व) के पृ० २२८ ए पर 'तनी' शब्द के लिए "बंदजामा व अम्साले आँ बुवद" टिप्पणी दी हुई है जिससे ज्ञात होता है कि यह बंदजामा की तरह कोई वस्त्र था जिसे पुरुष भी धारण करते थे। प्राचीन काल में प्रायः लोग कटिसूत्र पहना करते थे। तागड़ी पुरुष भी पहना करते थे। हर्ष ने प्राग-ज्योतिषेश्वर के दूत हंसवेग को "मोतियों से बना हुआ परिवेश नामक कटिसूत्र और माणिक्य खचित तरंगण नामक कर्णाभरण एवं बहुत सा भोजन का सामान भेजा था। (२१६)"[६] शव को जलाते समय उसे समस्त बंधनों से मुक्त कर देते हैं अतः अंतिम समय में चोली बंद तथा कटिसूत्र तोड़कर निकाल लिये जाते थे—कवि का यही भाव है।

५—८३-५ : आयौ चोर तुरंगहि लै गयौ **मोहड़ी** राखत मुगध फिरै।

उक्त पंक्ति में 'मोहड़ी' शब्द के स्थान पर दा० नि० स० में 'मोरी' और गु० में 'मेरी' पाठ मिलते हैं, किन्तु इन दोनों पाठों से उपर्युक्त अर्थ की सिद्धि

---

४. तुल० सोहत चोली चारु तनी। (परमानंददास, ३७६) तथा : अंजन नैन तिलक सेंदुर छबि चोली चारु तनी। (कुंभनदास, ३१७)। दोनों उद्धरण 'अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' में पृ० १४० पर डॉ० मायारानी टंडन द्वारा उद्धृत।

६. दे० हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९५३ ई०, पृ० १७१।

नहीं होती अतः दोनों अशुद्ध ज्ञात होते हैं। यहाँ पर तुरंग का प्रसंग है जिससे यह अनुमान होता है कि मूल में कदाचित् 'मोहड़ी' (=घोड़े के मुँह पर लगने वाला एक साज, मुहेड़ा) पाठ रहा होगा जो उर्दू में रहने के कारण भूल से 'मोरी' पढ़ लिया गया होगा। उर्दू में 'मोहड़ी' लिखने के लिए मीम, वाव, हे, ड़े, ये का प्रयोग होता है। यदि शीघ्रता में 'हे' का शोशा लगना भूल जाय तो इसे सरलता से 'मोड़ी' या 'मोरी' पढ़ा जा सकता है, क्योंकि उर्दू 'ड़े' और 'रे' में अधिक अन्तर नहीं होता। ग्रु० में या उसके किसी पूर्वज में 'मोरी' के स्थान पर कदाचित् उसका समानार्थी पश्चिमी रूप लाने के लिए 'मेरी' कर दिया गया, किन्तु यहाँ 'मोरी' अथवा 'मेरी' दोनों अप्रासंगिक हैं। 'मोरी' का प्रयोग प्राय: छोटी पुलिया के अर्थ में किया जाता है और 'मेरी' को यदि 'मेरा' का स्त्रीलिंग रूप माना जाय तो वह यहाँ नितान्त निष्प्रयोजन होगा, और यदि उसे 'मैड़ी' (=महल) का रूपान्तर माना जाय तब भी उसे पूर्णतया प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि घुड़साल को महल नहीं कहा जाता। इसके विपरीत 'मोहड़ी' पाठ से रचनाकार का वास्तविक तात्पर्य स्पष्ट रूप से व्यक्त हो जाता है। घोड़े के न रहने पर उसकी मोहड़ी का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। घोड़े को चोर चुरा ले गया, किन्तु मूर्ख अभी उसकी मोहड़ी का पहरा देता फिरत है—यही उक्त पंक्ति का उपयुक्त अर्थ होगा।

६—१०८-२ : तरवर एक **पींड** बिनु ठाढ़ा बिनु फूलां फल लागा।

'पींड' के स्थान पर दा० नि० स० में 'पेड़' और बी० में 'मूल' पाठ मिलते हैं। बी० की तुलना में स० का पाठ अधिक प्रामाणिक माना गया; अतः उसके पाठ पर भलीभाँति विचार किये बिना उसे अस्वीकृत नहीं करना चाहिए। इसी पंक्ति मे पहले 'तरवर' शब्द आ जाने से पुनः 'पेड़' मिलने पर पुनरुक्ति मानी जायगी, अतः उसे इस रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु अनुमान है कि मूल प्रति में वस्तुतः 'पींड' (=जड़ के जालों में बँधी हुई मिट्टी आदि से युक्त पिंड। तुल० जायसी, पदमावत २८-२-१ : कटहर डार **पींड** सों पाके।) पाठ था जिसे फ़ारसी लिपि के भ्रम के कारण प्रतिलिकारों ने 'पेड़' पढ़ लिया होगा, क्योंकि उर्दू में 'पींड' और 'पेड़' एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं। दा० नि० स० प्रतियों की पुनरुक्ति इसी प्रकार से आई हुई ज्ञात होती है। बी० में कदाचित् पुनरुक्ति से बचने के लिए 'मूल' पाठ ग्रहण कर लिया गया।

७—११०-१ : मैं कातौं **हजारी** क सूत चरखुला जिनि जरै।

उक्त पंक्ति में 'हजारी' पाठ किसी भी प्रति में नहीं मिलता। दा० नि०

स० में 'हजरी' और बी० में 'हजार' पाठ मिलते हैं, किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इनका कोई उपयुक्त अर्थ नहीं निकलता। सूत के प्रसंग में वस्तुतः 'हजारी' पाठ आना अधिक प्रसंगोचित जान पड़ता है। अत्यन्त बारीक सूत या वस्त्र के लिए मध्यकाल में 'हजारी' या 'हजारिया' विशेषण दिया जाता था। कबीर की रचनाओं में अन्यत्र भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है; तुल० दा० साखी २८-१३-१ : भगति **हजारी** कापड़ा, तामैं मल न समाइ। तथा नि० आसावरी ७७-१ : रहटौ म्हारौ अजब फिरै राजा रांम तणां कतवारी। तू काते काते सूत **हजारी है**॥ ऐसा ज्ञात होता है कि मात्राभंग के भय से एक शाखा में 'हजारी' को 'हजरी' और दूसरी में 'हजार' कर दिया गया है।

८—११४०-१ : हरि के खारे बरे पकाए जिन **जाने** तिन खाए।

उपर्युक्त पंक्ति के द्वितीय चरण का पाठ गु० में 'किनै बूझनहारे खाए' है जो स्पष्ट ही पंजाबी प्रभाव से युक्त है और परवर्ती संशोधन सा ज्ञात होता है। दा० नि० स० में 'जाने' के स्थान पर 'जारे' पाठ मिलता है, जो उक्त प्रसंग में निरर्थक है अतः यहाँ पर उसके पूर्ववर्ती पाठ की खोज की आवश्यकता जान पड़ी। प्राचीन नागरी या कैथी में 'न' और 'र' में अत्यधिक भ्रम मिला करता है। प्रस्तुत विकृति के मूल में भी यही भ्रम ज्ञात होता है। मूल प्रति में वस्तुतः 'जाने' पाठ रहा होगा जिसे भ्रम से किसी प्रतिलिपिकार ने 'जारे' लिख लिया और वही पाठ चलने लगा। ज्ञात होता है कि गु० या गु० के किसी पूर्वज में 'जारे' पाठ से असंतुष्ट होकर 'किनै बूझनहारे' पाठ के रूप में उसका संशोधन कर लिया गया।

९—११६-६ : तलि करि **पत्ता** ऊपरि करि मूल। बहुत भाँति जड़ लागे फूल॥ दा० और स० में 'पत्ता' के स्थान पर 'साखा' और नि० में 'डार' पाठ आते हैं, किन्तु गु० में इसके स्थान पर 'बैसा' पाठ मिलता है। 'साखा' अथवा 'डार' से पंक्ति के मूल भाव में कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु गु० के पाठ से मूल पाठ के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न होता है। गु० में 'बैसा' पाठ किस प्रकार आया, इसकी संभावनाओं पर विचार कर लेना आवश्यक है। लिपि-संबंधी विभिन्न संभावनाओं पर विचार करने से यह अनुमान होता है कि मूल पाठ कदाचित् 'पत्ता' था जिसे उर्दू में रहने के कारण गु० में 'बैसा' कर लिया गया। 'पत्ता' लिखने के लिए उर्दू में पे, ते, और अलिफ़ मिलाये जाते हैं। यदि 'ते' के दोनों नुक़्ते बारीक होकर ज़बर के सदृश्य हो जायँ और उस के नीचे वाले नुक़्ते कुछ बिखर जायँ तो उसे 'बैना', 'बैता' अथवा 'बैसा' भी पढ़ा जा सकता

है। अनुमानतः पाठ की उपर्युक्त विकृति के अनन्तर अर्थ में कठिनाई उपस्थित होने पर दा० तथा स० में 'साखा' और नि० में 'डार' संशोधन कर लिये गये होंगे।

१०—एक प्रकार का संशोधन और है जो साखियों में सामान्य रूप से सर्वत्र किया गया है। ऐसे समुच्चयों में जहाँ सभी प्रतियाँ पश्चिमी आ गयी हैं, कुछ क्रिया-पद, विशेषतया सामान्य भविष्यत् काल के रूप, राजस्थानी के आ गये हैं। कबीर की भाषा में राजस्थानी क्रियाओं की स्थिति खटकती है। यह रूप केवल इसलिए आये हुए ज्ञात होते हैं कि जहाँ-तहाँ स्वीकृत समुच्चयों में भी सारी प्रतियाँ राजस्थानी से प्रभावित हैं। यह समुच्चय प्रायः दा० नि० सा० सासी० स० गुण०, दा० नि० सा० सासी० गुण०, दा० नि० सा० सासी० स० अथवा दा० नि० सा० सासी० के हैं। इनमें भविष्यत् काल के रूपों में प्रायः-सी प्रत्ययांत क्रियाएँ आयी हैं, जो राजस्थानी की एक स्थूल विशेषता है। प्रतियों का साक्ष्य न रहने पर भी इन सभी क्रियाओं को कबीर की भाषा की प्रकृति के अनुसार प्रायः '-ई' अथवा '-है' प्रत्ययांत रूप दिये गये हैं। उदाहरणतया—

(क) ४-१६-२ : **होसी** चंदन बावना, नींब न **कहसी** कोय। यह साखी दा० नि० सा० साबे० सासी० स० गुण० में मिलती है और सब में 'होसी' तथा 'कहसी' पाठ ही मिलते हैं। इनके स्थान पर क्रमशः 'होइ जु' तथा 'कहिहै' संशोधन किये गये हैं।

(ख) ४-२२०-२ : दुर्मति दूरि **बहावसी**, देसी सुमति बताइ। 'बहावसी' तथा 'देसी' के स्थान पर क्रमशः 'बहावई' और 'देई' का प्रस्ताव किया गया है।

(ग) १४-६-२ : कबीर या बिनु सूरिवां, भला न **कहसी** कोय।

'कहसी' के स्थान पर 'कहिहै' संशोधन।

किन्तु सम्पादित पाठ में राजस्थानी रूप देने के अन्तर उनके सम्भावित पूर्वी रूप कोष्ठकों में ही दिये हुए हैं क्योंकि बहुत कुछ संभावना इस बात की भी है कि कबीर के समय में जिस भाषा का स्वरूपविकास हो रहा था उस पर पश्चिमी प्रभाव पर्याप्त मात्रा में था; क्योंकि उसी समय के लगभग कुछ सूफ़ियों की दक्खिनी रचनाओं में भी इस प्रकार के रूप यदाकदा मिल जाते हैं।

द्वितीय खण्ड : कबीर-वाणी का निर्धारित पाठ

कबीर-ग्रंथावली

कबीर-ग्रंथावली

पद

(१) सतगुर महिमा

[१]

[१]हमारै[२] गुर बड़े[३] भ्रिंगी ॥
आंनि कीटक करत भ्रिंग सो आपतैं रंगी[४] ॥ टेक ॥
पाइं[५] औरै पंख औरै और रंग रंगी ।
जाति पांति[६] न लखै कोई भगत भौ भंगी[७] ॥ १ ॥
नदी नांला मिले[८] गंगा[९] कहावैं गंगी ।
समांनीं दरियाव दरिया पार नां लंघी[१०] ॥ २ ॥
चलत मनसा अचल कीन्हीं[११] मांहि मन पंगी[१२] ।
तत्त मैं निहतत्त दरसा[१३] संग मैं संगी ॥ ३ ॥
बंध तैं निर्बंध कीया[१४] तोरि[१५] सब तंगी ।
कहै कबीर अगम किया गम[१६] रांम[१७] रंग रंगी ॥ ४ ॥[१८]

---

[१]

नि० सोरठि ५९, शबे० (१) बिरह-प्रेम ३१—

१. शबे० में इसके पूर्व 'गुरु बड़े भृंगी' और जुड़ा है। २. नि० मेरा। ३. नि० बड़ा। ४. शबे० कीट सों ले भृंग कीन्हों आप सों रंगी। ५. शबे० पांव। ६. शबे० कुल। ७. शबे० सब भये भृंगी। ८. नि० मिली (उर्दू मूल)। ९. शबे० गंगे। १०. शबे० दरियाव दरिया जा समाने संग में संगी (पुन० तुल० पंक्ति ८)। ११. नि० राखी। १२. शबे० मन हुआ पंगी। १३. नि० मिलिया। १४. शबे० कीन्हां। १५. शबे० तोड़। १६. नि० कहै कबीर कोई साध निज जन। १७. शबे० नाम। १८. नि० में ऊपर की ५वीं तथा ६ठीं पंक्तियाँ ८वीं के बाद मिलती हैं।

[२]

हमारै गुर[१] दीन्हीं अजब[२] जरी ।[३]
कहा कहौं कछु कहत न आवै[४] अंम्रित[५] रसन[६] भरी ।। टेक ।।[७]
याही तैं मोहिं प्यारी लागी[८] लैकै[९] गुपुत धरी ।[१०]
पांचौं नांग पचीसौं नांगिनि[११] सूंघत तुरत मरी ।। १ ।।
डांइनि एक सकल जग खायौ सो भी देखि डरी[१२] ।[१३]
कहै कबीर भया घट निरमल सकल बियाधि टरी[१४] ।। २ ।।

[३]

गुर बिन दाता कोइ नहीं[१] जग मांगनहारा ।
तीनि लोक[२] ब्रहमंड मैं सब के भरतारा ।। टेक ।।
अपराधी तीरथि चले तीरथ कहा[३] तारै ।
कांम क्रोध मल[४] भरि रहे[५] कहा देह पखारै ।। १ ।।
कागद की नौका बनीं[६] बिचि लोहा भारा[७] ।
सबद भेद बूझे बिनां बूड़ै मंझधारा[८] ।। २ ।।[९]

---

[२]

नि० धनाश्री १०, शबे० (१) विरह-प्रेम १४—
१. शबे० गुरू ने (?) मोहिं । २. नि० एक । ३ नि० में इसके बाद अतिरिक्त : सो हम घसि के रुचि सूं पीसी बेदनि सकल भगी (पुन० तुल० पंक्ति ६ में-'सकल बियाधि टरी')। ४. शबे० सो जरी मोहिं प्यारी लगतु है (पुन० तुल० उपर्युक्त पद की अगली पंक्ति)। ५. नि० इंम्रित (उर्दू मूल)। ६. नि० रस सूं। ७. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जाकी मरम साध भल जानै परम अमोल खरी। ८. शबे० काया नगर अजब इक बंगला [भारतीय भाषाओं में 'बंगला' शब्द का प्रयोग फिरंगियों के आगमन के पश्चात् ही माना जा सकता है। अतः शबे० में इसका प्रयोग चिंत्य है।]। ९. शबे० तामैं। १०. नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : त्रिबिध बिकार ताप तन भाजै दुरमति सकल टरी (तुल० पद की अंतिम पंक्ति)। ११. नि० मन रे भवंग अरु पांच नागिनी। १२. शबे० या कारे ने सब जग खायौ सतगुर देखि डरी (स्त्री० क्रिया 'डरी' के साथ पु० कर्त्ता 'कारे' व्याकरण-विरुद्ध और 'जरी' के प्रसंग में 'सतगुरु देखि' प्रसंग-विरुद्ध।)। १३. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जाके सुने तैं मृत परांनी और कहा बपरी। १४. शबे० कहत कबीर सुनो भाई साधो ले परिवार तरी।

[३]

नि० बिलावल २१, शबे० (१) विरह-प्रेम २—
१. नि० सतगुर समि दाता नहीं। २. नि० अखंड खंड। ३. शबे० का। ४ शबे० मद (उर्दू मूल)। ५. शबे० ना मिटा। ६. नि० कागद की ऐसी नाव री। ७. शबे० भारे। ८. शबे० सबद भेद जानै नहीं मूरख पचि हारे (नौका के प्रसंग में 'बूड़े मंझधारा' अधिक प्रासंगिक लगता है)। ९. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त—
बांछ मनोरथ पिय मिले घट भया उजारा। सतगुर पार उतारिहै सब संत पुकारा ।।
पाहन को का पूजिए यामें का पावै। अठसठ के फल घर मिलै जो साध जिमावै ।।

कहै कबीर - भूलौ कहा कहं ढूंढ़त डोलै ।[१०]
बिन सतगुर नहिं पाइए घट ही मैं बोलै ॥ ५ ॥[११]

[४]

सतगुर साह संत[१] सौदागर तहं मैं चलि कै जाऊं जी[२] ।
मन की मुहर[३] धरौं गुरु आगैं ग्यांन कै घोड़ा लाऊं जी ॥ टेक ॥
सहज पलांन चित कै चाबुक[४] लौ की लगांम[५] लगाऊं जी ।
बिबेक[६] बिचार भरौं तन[७] तरगस सुरति कमांन[८] चढ़ाऊं जी ॥ १ ॥
धीर गंभीर खड़ग लिए मुदगर[९] माया कै कोट ढहाऊं जी ।[१०]
मोह मस्त मैंवासी राजा ताकौं पकड़ि मंगाऊं जी ॥ २ ॥
रिपु कै दल मैं सहजहिं रौंदौं[११] अनहद तबल घुराऊं जी[१२] ।
कहै कबीर मेरै सिर परि साहेब मैं ताकौं सीस नवाऊं जी ॥ ३ ॥

(२) प्रेम

[५]

दुलहिनीं गावहु मंगलचार ।[१]
हंम घरि[२] आए राजा रांम भरतार[३] ॥ टेक ॥
तन रत करि मैं मन रति करिहौं[४] पांचउ तत्त बराती[५] ।
रांम देव[६] मोरै पाहुनैं आए[७] मैं जोबन मैंमाती[८] ॥ १ ॥
सरीर सरोबर बेदी करिहौं ब्रह्मा बेद उचारा[९] ।
रांम देव संगि भांवरि लेहहौं धंनि धंनि भाग हमारा[१०] ॥ २ ॥

१०–११. शबे० कहै कबीर बिचारि के अंधा खल डोलै। अंधे को सूझै नहीं घट ही में बोलै ॥ ('अंधा' तथा 'अंधे' में पुन०)।

[४]

नि० गौड़ी १३५, शबे० (२) सतगुरु ९—
१. नि० वड़े। २. नि० जाऊँगा (नि० में प्रत्येक 'जी' के स्थान पर 'गा' मिलता है।) ३. नि० महौर। ४. नि० पवन का घोड़ा (पुन० दे० ऊपर की पंक्ति में भी 'ग्यांन कै घोड़ा')। ५. शबे० अलख लगाम। ६. नि० ग्यांन (पुन० तुल० पंक्ति २ में : ग्यांन कै घोड़ा)। ७. शबे० तिर। ८. नि० कवांग। ९. शबे० दलमल। १०. शबे० में यह पंक्ति नहीं है। ११. नि० गम्रा गंध्रप मैं सहजै पाया। १२ शबे० आनंद तलब (विपर्यय ?) बजाऊं जी।

[५]

दा० नि० गौड़ी १, गु० आसा २४, शबे० (१) विरह-प्रेम ७—
१. गु० गाउ गाउ री दुलहिनी मंगलचारा। २. गु० मेरे ग्रिह। ३. गु० राजा राम भतारा, शबे० परम पुरुष भरतार (कदाचित् राधास्वामी मत से प्रभावित होने के कारण शबे० में 'राजा रांम' के स्थान पर 'परम पुरुष' पाठ मिलता है)। ४. गु० तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ (उर्दू मूल)। ५. दा० पंच तत्त बरियाती, नि० पंचू तत बराती, शबे० पंच तत्व तब राती (नागरी मूल)। ६. गु० राम राइ, शबे० गुरूदेव (सांप्रदायिक प्रभाव)। ७. गु० राम राइ सिउ भावरि लेहउ (तुल० बाद की छठी पंक्ति का प्रथम चरण)। ८. गु० आतम तिहि रंग राती। ९. गु० नाभि कमल महि बेदी रचिले ब्रह्म गिआन उचारा। १०. गु० राम राइ सो दूलह पाइओ अस

सुर तैंतीसौं[११] कौतिग[१२] [कोटिक ?] आए मुनिवर[१३] सहस अठासी[१४] ।
कहै[१५] कबीर हंम[१६] ब्याहि चले हैं पुरिख एक अबिनांसी[१७] ॥३॥[१८]

[६]

बहुत दिनन मैं प्रीतम आए[१] ।
भाग बड़े घरि बैठें पाए[२] ॥ टेक ॥[३]
मंगलचार मांहिं[४] मन राखौं । रांम[५] रसांइन रसनां चाखौं ॥ १ ॥
मंदिर मांहिं[४] भया उजियारा । लै सूती अपना पिय प्यारा ॥ २ ॥
मैं निरास जौ नौ निधि पाई[६] । हमहिं कहा यहु तुमहिं बड़ाई[७] ॥ ३ ॥
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हां । सहज[८] सुहाग रांम[९] मोंहि दीन्हां ॥ ४ ॥

[७]

अब तोहि जांन न देहूं रांम पियारे ।[१]
ज्यौं भावै त्यौं होहु[२] हमारे ॥ टेक ॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि[३] पाए । भाग बड़े घर बैठें आए ॥ १ ॥[४]
चरनन लागि करौं सेवकाई[५] । प्रेम प्रीति राखौं उरझाई ॥ २ ॥
आज बसौ मन मंदिर चोखै[६] । कहै कबीर परहु[७] मति धोखै ॥ ३ ॥

बड़ भाग हमारा । ११ गु० सुरनर मुनि जन । १२. गु० कउतक (उर्दू मूल) । १३. दा० नि० मुनिवर । १४. गु० कोटि तेतीसउ जाना । १५. गु० कहि । १६. गु० मोहि । १७. गु० पुरख एक भगवाना । १८. गु० में पद की प्रथम दोनों पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[६]

दा० नि० गौड़ी २, स० ३०-१, शबे० (२) प्रेम ९—

१. दा० नि० स० बहुत दिनन ते मैं प्रीतम पाए । २. दा० नि० स० आए । ३. दा० नि० स० तथा शबे० में इन पंक्तियों की पुनरावृत्ति—तुल० दा० गौड़ी ३-२ तथा स० ३०-२-२: बहुत दिनन के बिछुरे पाए । भाग बड़े घर बैठें आए ॥ शबे० यथाः बहुत दिनन के बिछुड़े पाए । भाग बड़े घर बैठें आए ॥ [किन्तु किसी भी कवि की रचना में प्रसंगानुकूल इस प्रकार की साधारण पुनरावृत्ति हो सकती है; अतः यह पंक्ति दोनों स्थलों पर मूल रूप में स्वीकृत की गयी है—दे० भूमिका ।] ४. शबे० महा । ५. शबे० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ६. दा० नि० स० मैं र निरासी जे निधि पाई । ७. शबे० कहा करौं पिय तुमरी बड़ाई । ८. दा० नि० स० सखी । ९. शबे० पिया (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[७]

दा० नि० गौड़ी ३, स० ३०-२, शबे० (२) प्रेम १९—

१. शबे० जान न दयौं पिउ प्यारे । २. शबे० रहो । ३. शबे० में 'हरि' शब्द नहीं है । ४. दा० नि० स० तथा शबे० में इस पंक्ति की पुनरावृत्ति—तुल० दा० नि० गौड़ी २-१, स० ३०-१-१ यथा : बहुत दिनन ते मैं प्रीतम पाए । भाग बड़े घर बैठे आए ॥ तथा शबे० (२) प्रेम ९-१,२— यथा : बहुत दिनन में प्रीतम आए । भाग भले घर बैठे पाए ॥ (किन्तु दे० भूमिका ।) ५. दा० नि० स० बरिआई । ६. दा० नि० स० इत मन मंदिर रहौ नित चोखै । ७. स० परौह ।

[८]

रांम भगति[१] अनियाले तीर ।
जेहि लागै सो जानैं पीर[२] ॥ टेक ॥[३]

तन मंहि[४] खोजौं चोट न पावौं[५] । ओषद मूरि कहां घंसि लावौं[६] ॥ १ ॥[७]
एक भाइ[८] दीसैं[९] सब नारी । नां जांनौं को पियहिं पियारी[१०] ॥ २ ॥
कहै[११] कबीर जाकै मस्तकि भाग । सभ परिहरि ताकौं मिलै सुहाग[१२] ॥ ३ ॥

[९]

रांम बिनु तन की तपनि न जाइ[१] ।
जल मंहि[२] अगिनि उठी अधिकाइ ॥ टेक ॥

तूं[३] जलनिधि हउं[४] जल का[५] मींनु[६] । जल मंहि[२] रहउं जलहिं बिनु खींनु[६] ॥ १ ॥
तूं[३] पिंजरु हउं[४] सुअटा तोर[७] । जनु मंजार कहा करै मोर[८] ॥ २ ॥[९]
तूं[३] सतिगुरु हउं[४] नौतनु[१०] चेला । कहै[११] कबीर मिलु अंत की बेला[१२] ॥ ३ ॥

[१०]

गोकुल नाइक बीठुला[१] मेरा मनु लागा तोहिं रे ।[२]
बहुतक दिन बिछुरें भए तेरी औसेरि आवै[३] मोहिं रे ॥ टेक ॥

करम कोटि कौ ग्रेह रच्यौ रे नेह गए की आस रे ।
आपहिं आप बंधाइया दोइ लोचन मरहिं पियास रे ॥ १ ॥

---

[८]

दा० गौड़ी ११८, नि० गौड़ी १२१, गु० गउड़ी २१, स० ७-१—

१. दा० नि० स० बांन (पुन० आगे 'तीर' में)। २. गु० लागी होइ सु जानहि पीर। ३. गु० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित और दूसरी पंक्ति के बाद। ४. दा० नि० स० मन। ५. गु० खोजत तन महि ठउर न पावउ। ६. गु० कत नही ठउर मूल कत लावउ। ७. गु० में दोनों चरण स्थानांतरित। ८. दा० नि० स० एक रूप। ९. गु० देखउ। १० गु० किआ जानउ सह कउन पिआरी। ११. गु० कहु। १२. दा० नि० स० नां जानूं काकूं देइ सुहाग।

[९]

दा० गौड़ी १२०, नि० गौड़ी १२३, गु० गउड़ी २—

१. गु० माधउ जल कीं पिआस (?) न जाइ। २. दा० नि० मैं। ३ दा० नि० तुम्ह। ४. दा० नि० मैं। ५. गु० का। ६. दा० नि० मींना—खीना। ७. दा० नि० सुवना तोरा। ८. दा० नि० दरसन देहु भाग बड़ मोरा। ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : तू तरवर हउं पंखी आहि। मंद भागी तेरो दरसन नाहि ॥ १०. दा० नि० नौतम (हिन्दी मूल)। ११. गु० कहि। १२. दा०, नि० राम रमूं अकेला।

[१०]

दा० नि० गउड़ी ५, गु० गउड़ी ५५—

१. गु० सांवल सुंदर रामइआ। २. गु० में इसके आगे की आठ पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु बिना इन पंक्तियों के भाव पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होता, अतः मूल रूप से स्वीकार करने में कठिनाई नहीं प्रतीत होती। ३. नि० लागी।

आपा पर संमि[४] चीन्हिए तब दीसै सरब समांन ।[५]
इहिं पद नरहरि भेंटिए तू छांड़ि कपट अभिमांन रे ॥ २ ॥[६]
नां कतहूं चलि जाइए नां लीजै सिरि भार ।
रसनां रसहिं बिचारिए सारंग श्री रंग धार रे ॥ ३ ॥
साधन तैं सिधि पाइए[७] किंबा होइम होइ[८] ।
जे दिढ़ ग्यांन न ऊपजै तौ अहटि (आथि ?) मरै जनि कोइ रे[९] ॥ ४ ॥
एक जुगुति एकै मिलै[१०] किंबा जोग कि भोग[११] ।
इन दोनिउं फल पाइए रांम नांम सिधि जोग रे[१२] ॥ ५ ॥
[१३]तुम्ह जिनि जांनौं गीत है[१४] यह निज[१५] ब्रह्म बिचार ।
केवल कहि समझाइया आतम साधन सार रे[१६] ॥ ६ ॥
चरन कंवल चित लाइए रांम नांम गुन गाइ[१७] ।
कहै[१८] कबीर संसा नहीं भगति (भुगुति ?) मुकुति गति पाइ रे[१९] ॥ ७ ॥

[११]

[१]हरि मोरा पिउ[२] मैं हरि की बहुरिया ।[४]
रांम बड़े मैं तनक[३] लहुरिया ॥[५]
किएउं सिंगारु मिलन कै तांई । हरि न मिले जग जीवन गुसांई[६] ॥१॥[७]
धनि पिउ एकै संगि बसेरा । सेज एक पै मिलन दुहेरा ॥ २ ॥[८]

---

४. दा२ सब, दा३ जब । ५-६. नि० में यह दोनों पंक्तियाँ अगली दोनों पंक्तियों के बाद आती हैं । ७. गु० साधु मिले सिधि पाइए, दा१ सावै सिधि ऐसी पाइए । ८. गु० की एहु जोग की भोग (तुल० आगे—किंबा जोग कि भोग) । ९. गु० जितु घटि नामु न ऊपजै फूटि (उर्दू मूल) मरै जन (उर्दू मूल) सोइ । १०. गु० एक जोति (उर्दू मूल) एका मिली (उर्दू मूल) । ११. गु० किंबा होइम होइ (तुल० ऊपर की पंक्ति ५ का दूसरा चरण; गु० में दोनों परस्पर स्थानांतरित ।) । १२. गु० दुहु मिलि कारज ऊपजै राम नाम संजोगु । १३. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : प्रेम भगति ऐसी कीजिए मुखि अंम्रित बरसै चंद । आपहिं आप विचारिए तब केता होइ अनंद रे ॥ १४. गु० लोगु जानै इहु गीत है । १५. गु० तउ । १६. गु० जिउ कासी उपदेस होइ मानस मरती बार । १७. गु० कोई गावै को सुणै हरि नामा चितु लाइ । १८. गु० कहु । १९. गु० अंति परम गति पाइ रे ।

[११]

दा० गौड़ी ११७, नि० गौड़ी १२०, गु० आसा ३०—
१. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : हरि मोरा पीव माई हरि मोरा पीव । हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥ (पुन० तुल० पद की प्रथम पंक्ति) । २. गु० मेरो पिरु (उर्दू मूल) । ३. दा० नि० छुटक । ४-५. बी० ३५-१: हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया । राम बड़े मैं तनकी लहुरिया ॥ ६. दा० नि० काहे न मिलौ राजा रांम गोसांइं । ७. गु० में यह पंक्ति पद के आरंभ में आती है । ८. दा० नि० में यह पंक्ति नहीं है ।

धन्नि सुहागिनि जो पिय भावै[९]। कह[१०] कबीर फिरि जनमि न आवै ॥ ३ ॥[११]

[१२]

तननां बुननां तज्यौ कबीर[१]।
रांम नांम[२] लिखि लियौ सरीर ॥टेक ॥

[३]मुसि मुसि रोवै[४] कबीर की माई। ए बारिक[५] कैसे जीवहिं खुदाई[६]॥१॥
जब लगि तागा बाहौं बेही। तब लगि[७] बिसरै रांम सनेही[८] ॥२॥[९]
कहत कबीर सुनहु मेरी[१०] माई। पूरनहारा त्रिभुवनराई[११] ॥३॥

[१३]

बालम[१] आउ हमारे ग्रेह रे।
तुम्ह बिन दुखिया देह रे ॥ टेक ॥

सब कोइ[२] कहै तुम्हारी नारी मोकौं यह[३] अन्देह[४] रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लगि कैसा नेह रे[५] ॥१॥
अन्न[६] न भावै नींद न आवै ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यौं[७] कांमीं कौ कांमिनि प्यारी[८] ज्यौं प्यासे कौ नीर रे ॥२॥
है कोई ऐसा पर उपगारी[९] हरि[१०] सौं कहै सुनाइ रे।
अब तौ बेहाल कबीर भए हैं[११] बिनु देखें जिउ[१२] जाइ रे ॥३॥

---

९. दा० नि० अब कौ बेर मिलन जो पाऊं। १०. गु० कहि (उर्दू मूल)। ११. दा० नि० कहै कबीर भौजलि नहिं आऊं।

[१२]

दा० गौड़ी २१, नि० गौड़ी २४, गु० गूजरी ३—
१. गु० सभु तजिओ है कबीर। २. गु० हरि का नामु। ३. दा० नि० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद है और गु० में सब से पहले। ४. दा० नि० ठाढ़ी रोवै। ५. दा० नि० लरिका। ६. गु० रघुराई (जुलाहे की माता के पक्ष में 'रघुराई' अस्वाभाविक)। ७. गु० लगु। ८. दा० नि० जब लगि भरौं नली का बेह। तब लगि टूटै रांम सनेह ॥ ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : ओछी मति मेरी जाति जुलाहा। हरि का नामु लहिओ मैं लाहा ॥ १०. दा० नि० री। ११. गु० हमरा इनका दाता एकु रघुराई।

[१३]

दा० नि० केदारी ८, शबे० (१) बिरह-प्रेम ४—
१. दा० नि० बाल्हा। २. दा० नि० को। ३. दा२ एह, दा३ नि० इहै। ४. शबे० संदेह। ५. शबे० स्नेह रे। ६. दा० नि० अांन (उर्दू मूल)। ७. दा० नि० ज्यूं। ८. दा० नि० कांम पियारा। ९. शबे० उपकारी। १०. शबे० पिय। ११. दा० नि० ऐसे हाल कबीर भए हैं। १२. दा० नि० जीव।

[१४]

नाचु रे मन मेरो नट होइ[१] ॥ टेक ॥[२]

ग्यांन कै ढोल बजाइ रैनि दिन सबद सुनैं सब कोई ।
राहु केतु अरु[३] नवग्रह[४] नाचैं[५] जमपुर आनंद होई[६] ॥ १ ॥
छापा[७] तिलक लगाइ बांस चढ़ि होइ रहु जग तैं न्यारा ।
प्रेम मगन होइ नाचु सभा मैं[८] रीझै सिरजनहारा[९] ॥ २ ॥
जौ[१०] तूं[११] कूदि जाउ[१२] भवसागर कला बदौं मैं तेरी[१३] ।
कहै कबीर राजा रांम भजन सौं नव निधि होइगी चेरी[१४] ॥ ३ ॥

[१५]

अबिनासी दुलहा[१] कब मिलिहौ सभ संतन के[२] प्रतिपाल[३] ॥ टेक ॥

जल उपजी जल ही सौं नेहा[४] रटत पियास पियास ।
मैं बिरहिनि ठाढ़ी मग जोऊं[५] रांम[६] तुम्हारी आस ॥ १ ॥
छांड़्यौ गेह नेह लगि[७] तुमसे भई चरन लौलींन ।
तालाबेलि होत घट भीतर[८] जैसैं जल बिनु मींन ॥ २ ॥
दिवस न भूख रैंनि नहिं निद्रा घर[९] अंगना न सुहाइ ।
सेजरिया[१०] बैरिनि भई मोकौं[११] जागत रैंनि बिहाइ ॥ ३ ॥
मैं[१२] तो तुम्हारी दासी हो सजनां[१३] तुम हमरै भरतार ।
दीन दयाल दया करि आवौ समरथ[१४] सिरजन हार ॥ ४ ॥

---

[१४]

नि० बिहंगड़ी १८, शबे० (१) विरह-प्रेम २८, शक० गौरी ८—

१. नि० नट होइ नाच रे मन मेरा। २. नि० में अतिरिक्त : गुन रीझैगा साहिब तेरा (पुन० तुल० पंक्ति ५-२)। ३. नि० राह अर केत। ४. नि० नऊं ग्रह। ५. नि० शक० कांपै। ६. नि० जग कै हाथ न होई, शक० यम घर बंधन होई। ७. नि० शक० द्वादस। ८. शबे० सहस कला कर मन मेरो नाचै (ऊपर की पंक्तियों में 'नाचु', 'बजाइ', 'होइ रहु' आदि आज्ञा-सूचक क्रियाओं के क्रम में वर्तमानकालिक क्रिया 'नाचै' अनुपयुक्त है।), शक० सहस कला होय नाचु मन मेरा। ९. नि० शक० (नि० गुन) रीझैगा साहिब तेरा। १०. नि० जे। ११. शबे० तुम। १२. नि० डांकि गयो। १३. शबे० तेरो, शक० तेरा (दोनों व्याकरण-विरुद्ध)। १४. शबे० कहैं कबीर सुनो भाई साधौ हो रहु सतगुरु चेरो। (राधास्वामी-प्रभाव के कारण 'राजा राम भजन सों' का परिवर्तित पाठ), शक० कहहिं कबीर सत्य ब्रत साधो नौ निधि होय रहे चेरा (कबीरपंथी प्रभाव)।

[१५]

नि० काफी २, शबे० (२) प्रेम २०—

१. नि० दुल्है। २ नि० अहो सब संतन के। ३. शबे० रछपाल। ४. नि० जल सों नहिं नेहा। ५. नि० ऐसे ही बिरहन मघ जोवै। ६. शबे० प्रीतम (राधा० प्रभाव)। ७. नि० लग्यो। ८. नि० तुम बिन मेरे परांन पियारे। ९. नि० ग्रिह। १०. नि० सेझड़ियां (राज० मूल)। ११. शबे० हमको। १२. शबे० हम। १३. नि० प्रभु जी। १४. नि० साहिब।

कै[१५] हंम प्रांन तजत हैं प्यारे कै अपनी करि लेहु[१६] ॥
दास कबीर बिरह अति बाढ़्यौ अब तौ दरसन देहु[१७] ॥ ५ ॥

[१६]

हरि[१] रंग लागा हरि[२] रंग लागा ।
मेरै[३] मन का संसै[४] भागा ॥ टेक ॥
जब हंम रहलीं हठिल दिवांनीं[५] तब[६] पिय मुखां[७] न बोला[८] ।
जब दासी भई[९] खाक बराबरि साहिब अंतर खोला[१०] ॥ १ ॥[११]
सांचै मन तैं साहिब नेरै झूठै मन तैं भागा[१२] ।
हरिजन हरि सौं अैसें मिलिया[१३] जस सोनैं[१४] संग सुहागा ॥ २ ॥
लोक लाज कुल की मरजादा तोरि दियौ[१५] जस[१६] धागा ।
कहै कबीर गुर पूरा पाया[१७] भाग हमारा जागा ॥ ३ ॥

[१७]

पिया मोरा मिलिया सत्त गियांनीं[१] ।
सब मैं ब्यापक सब की जांनैं[२] अैसा अंतरजांमीं ।
सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आंनीं[३] ॥ १ ॥
सील संतोख पहिरि दोइ कंगन[४] होइ रही मगन दिवांनीं ।
कुमति[५] जराइ करौं[६] मैं काजर[७] पढ़ी[८] प्रेम रस बांनीं ॥ २ ॥
अैसा पिय[९] हंम कबहुं न देखा सूरति देखि लुभांनीं[१०] ।
कहै कबीर मिला गुर पूरा[११] तन की तपनि बुझांनीं ॥ ३ ॥

---

१५. नि० अब । १६. शबे० लेव । १७. नि० हम हीं कूं दरसन देहु ।

[१६]

नि० सोरठि ५३, शबे० (२) सतगुरु० १५—
१. शबे० गुरु (राधा० प्रभाव)। २. शबे० सत। ३. नि० तातें मेरा। ४. नि० धोखा। ५. नि० पहली थी बंदी मान गुमांनणि। ६. नि० जब। ७. शबे० मुखहु। ८. नि० बोल्या वै [प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'वै' (पंजाबी मूल)]। ९. नि० अब भई बंदी। १०. नि० खोल्या वै। ११. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : साहिब बोल्या अंतर खोल्या सेझड़ियां सुख दीया वै। अपणां पिया के मैं रंगि राती प्रेम पियाला पीया वै ॥ १२. नि० सांचा दिल सूं साहिब सांचा झूठा सूं मन भागा वै। १३. शबे० भक्त जनन अस साहिब मिलनो (राधा० प्रभाव)। १४ शबे० कंचन। १५. नि० तोड़ि डाला। १६. नि० जैसे। १७. शबे० कहै कबीर सुनो भाई साधो।

[१७]

नि० बिहंगड़ा २६, शबे० (२) सतगुरु० १९—
१. नि० मैड़ा पीव मिल्या बहुत ग्यांनीं। २. शबे० सब से न्यारा ['अंतरयामी' होने के कारण 'सब की जानै' पाठ अधिक समीचीन ज्ञात होता है।]। ३. नि० सहज सुभाइ सनेह की खोलौ मन ही मन लुभियांनीं। ४. शबे० दोउ सतगुन। ५. नि० क्रोध। ६. नि० किया। ७. शबे० कोइला (शृङ्गार में कोयले के लिए कोई स्थान नहीं।)। ८. नि. चढ़त। ९. नि० रूप। १०. नि० देखत नैन लुभानीं। ११. नि० कहै कबीर दया सतगुरु की।

[१४]

नाचु रे मन मेरो नट होइ[१] ॥ टेक ॥[२]

ग्यांन कै ढोल बजाइ रैनि दिन सबद सुनैं सब कोई ।
राहु केतु अरु[३] नवग्रह[४] नाचैं[५] जमपुर आनंद होई[६] ॥ १ ॥
छापा[७] तिलक लगाइ बांस चढ़ि होइ रहु जग तैं न्यारा ।
प्रेम मगन होइ नाचु सभा मैं[८] रीझै सिरजनहारा[९] ॥ २ ॥
जौ[१०] तूं[११] कूदि जाउ[१२] भवसागर कला बदौं मैं तेरी[१३] ।
कहै कबीर राजा रांम भजन सौं नव निधि होइगी चेरी[१४] ॥ ३ ॥

[१५]

अबिनासी दुलहा[१] कब मिलिहौ सभ संतन के[२] प्रतिपाल[३] ॥ टेक ॥

जल उपजी जल ही सौं नेहा[४] रटत पियास पियास ।
मैं बिरहिनि ठाढ़ी मग जोऊं[५] रांम[६] तुम्हारी आस ॥ १ ॥
छांड़्यौ गेह नेह लगि[७] तुमसे भई चरन लौलींन ।
तालाबेलि होत घट भीतर[८] जैसैं जल बिनु मींन ॥ २ ॥
दिवस न भूख रैंनि नहिं निद्रा घर[९] अंगना न सुहाइ ।
सेजरिया[१०] बैरिनि भई मोकौं[११] जागत रैंनि बिहाइ ॥ ३ ॥
मैं[१२] तो तुम्हारी दासी हो सजनां[१३] तुम हमरै भरतार ।
दीन दयाल दया करि आवौ समरथ[१४] सिरजन हार ॥ ४ ॥

---

[१४]

नि० बिहंगड़ी १८, शबे० (१) बिरह-प्रेम २८, शक० गौरी ८—

१. नि० नट होइ नाच रे मन मेरा। २. नि० में अतिरिक्त : गुन रीझैगा साहिब तेरा (पुन० तुल० पंक्ति ५-२)। ३. नि० राह अर केत। ४. नि० नऊं ग्रह। ५. नि० शक० कांपै। ६. नि० जग कै हाथ न होई, शक० यम घर बंधन होई। ७. नि० शक० द्वादस। ८. शबे० सहस कला कर मन मेरो नाचै (ऊपर की पंक्तियों में 'नाचु', 'बजाइ', 'होइ रहु' आदि आज्ञा-सूचक क्रियाओं के क्रम में वर्तमानकालिक क्रिया 'नाचै' अनुपयुक्त है।), शक० सहस कला होय नाचु मन मेरा। ९. नि० शक० (नि० गुन) रीझैगा साहिब तेरा। १०. नि० जे। ११. शबे० तुम। १२. नि० डांकि गयो। १३. शबे० तेरो, शक० तेरा (दोनों व्याकरण-विरुद्ध)। १४. शबे० कहैं कबीर सुनो भाई साधौ हो रहु सतगुरु चेरो। (राधास्वामी-प्रभाव के कारण 'राजा राम भजन सों' का परिवर्तित पाठ), शक० कहहिं कबीर सत्य व्रत साधो नौ निधि होय रहे चेरा (कबीरपंथी प्रभाव)।

[१५]

नि० काफी २, शबे० (२) प्रेम २०—

१. नि० दुल्है। २ नि० अहो सब संतन के। ३. शबे० रछपाल। ४. नि० जल सों नहिं नेहा। ५. नि० ऐसे ही बिरहन मघ जोवै। ६. शबे० प्रीतम (राधा० प्रभाव)। ७. नि० लग्यो। ८. नि० तुम बिन मेरे परांन पियारे। ९. नि० ग्रिह। १०. नि० सेझड़ियां (राज० मूल)। ११. शबे० हमको। १२. शबे० हम। १३. नि० प्रभु जी। १४. नि० साहिब।

कै[१५] हंम प्रांन तजत हैं प्यारे कै अपनी करि लेहु[१६] ॥
दास कबीर बिरह अति बाढ़्यौ अब तौ दरसन देहु[१७] ॥ ५ ॥

[१६]

हरि[१] रंग लागा हरि[२] रंग लागा ।
मेरै[३] मन का संसै[४] भागा ॥ टेक ॥
जब हंम रहलीं हठिल दिवांनीं[५] तब[६] पिय मुखां[७] न बोला[८] ।
जब दासी भई[९] खाक बराबरि साहिब अंतर खोला[१०] ॥ १ ॥[११]
सांचै मन तैं साहिब नेरै झूठै मन तैं भागा[१२] ।
हरिजन हरि सौं अैसें मिलिया[१३] जस सोनैं[१४] संग सुहागा ॥ २ ॥
लोक लाज कुल की मरजादा तोरि दियौ[१५] जस[१६] धागा ।
कहै कबीर गुर पूरा पाया[१७] भाग हमारा जागा ॥ ३ ॥

[१७]

पिया मोरा मिलिया सत्त गियांनीं[१] ।
सब में ब्यापक सब की जांनैं[२] अैसा अंतरजांमीं ।
सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आंनीं[३] ॥ १ ॥
सील संतोख पहिरि दोइ कंगन[४] होइ रही मगन दिवांनीं ।
कुमति[५] जराइ करौं[६] मैं काजर[७] पढ़ी[८] प्रेम रस बांनीं ॥ २ ॥
अैसा पिय[९] हंम कबहुं न देखा सूरति देखि लुभांनीं[१०] ।
कहै कबीर मिला गुर पूरा[११] तन की तपनि बुझांनीं ॥ ३ ॥

---

१५. नि० अब । १६. शबे० लेव । १७. नि० हम हीं कूं दरसन देहु ।

[१६]

नि० सोरठि ५३, शबे० (२) सतगुरु० १५—
१. शबे० गुरु (राधा० प्रभाव)। २. शबे० सत। ३. नि० तातें मेरा। ४. नि० धोखा। ५. नि० पहली थी बंदी मान गुमांनणि। ६. नि० जब। ७. शबे० मुखहु। ८. नि० बोल्या वै [प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'वै' (पंजाबी मूल)]। ९. नि० अब भई बंदी। १०. नि० खोल्या वै। ११. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : साहिब बोल्या अंतर खोल्या सेझड़ियां सुख दीया वै। अपणां पिया के मैं रंगि राती प्रेम पियाला पीया वै ॥ १२. नि० सांचा दिल सूं साहिब सांचा झूठा सूं मन भागा वै। १३. शबे० भक्त जनन अस साहिब मिलनो (राधा० प्रभाव)। १४ शबे० कंचन। १५. नि० तोड़ि डाला। १६. नि० जैसे। १७. शबे० कहै कबीर सुनो भाई साधो।

[१७]

नि० बिहंगड़ा २६, शबे० (२) सतगुरु० १९—
१. नि० मैड़ा पीव मिल्या बहुत ग्यांनी। २. शबे० सब से न्यारा ['अंतरयामी' होने के कारण 'सब की जानै' पाठ अधिक समीचीन ज्ञात होता है।]। ३. नि० सहज सुभाइ सनेह कौ खोलौ मन ही मन लुभियांनीं। ४. शबे० दोउ सतगुन। ५. नि० क्रोध। ६. नि० किया। ७. शबे० कोइला (शृङ्गार में कोयले के लिए कोई स्थान नहीं।)। ८. नि. चढ़त। ९. नि० रूप। १०. नि० देखत नैन लुभानीं। ११. नि० कहै कबीर दया सतगुरु की ।

[१८]

मोहिं तोहिं लागी कैसै छूटै ।
जैसै हीरा फोरे[1] न फूटै ॥ टेक ॥

[2]मोहिं तोहिं आदि अंति बनि आई । अब कैसे दुरत दुराई[3] ॥ १ ॥
जैसै कंवल पत्र जल बासा[4] । अैसै तुम साहेब हंम दासा[5] ॥ २ ॥[6]
मोहिं तोहिं कीट भ्रिग की नांई[7] । जैसै सलिता सिंधु समांई[8] ॥ ३ ॥[9]
कहै कबीर मन[10] लागा । जैसै सोनैं मिला सुहागा ॥ ४ ॥

[१९]

हौं[1] वारी मुख फेरि पियारे ।
करवट दै मोहिं[2] काहे कौं मारे ॥ टेक ॥[3]

करवत भला न करवट तोरी । लागु गलै सुनु बिनती मोरी ॥ १ ॥
हंम तुम बीच भयौ नहिं कोई । तुमहिं सो कंत नारि हंम सोई[4] ॥ २ ॥
कहत कबीर सुनौं रे[5] लोई । अब तुम्हरी परतीति न होई ॥ ३ ॥

(३) नांउं महिमा

[२०]

[1]रांम सुमिरि[2] रांम सुमिरि रांम सुमिरि[2] भाई ।
रांम नांम सुमिरन बिनु बूड़त[3] अधिकाई ॥ टेक ॥
बनिता [4]सुत देह ग्रेह[5] संपति सुखदाई[6] ।[12]
इन्ह मैं[7] कछु नांहिं तेरौ काल अवधि[8] आई ॥ १ ॥[13]

---

[१८]

नि० केदारी २१, शबे० (१) विरह-प्रेम ३४—

१. नि० फोरयौ । २. नि० में पाँचवीं पंक्ति के स्थान पर । ३. नि० जैसे सलिता सिंधु समाई (पुन० तुल० पंक्ति ५-२) । ४. नि० मोहि तोहि जीव सीव का बासा । ५. नि० अहो प्रभु तुम ठाकुर मैं दासा । ६. शबे० में इसके बाद अतिरिक्तः जैसे चकोर तकत निसि चंदा । ऐसे तुम साहेब हम बंदा ॥ (तुल० ऊपर ४-२) । ७. शबे० मोहि तोहि कीट भृंग लौ लाई । ८. नि० जैसे सिंधहि बूंद समाई । ९. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : मैं अनंत कहुं नहिं लागा । जैसे टूटै कांचा धागा ॥ शबे० में अतिरिक्त : हम तो खोजा सकल जहाना । सतगुर तुम सम कोउ न आना ॥ १०. शबे० मोरा मन ।

[१९]

शबे० प्रेम १०, गु० आसा ३५—

१. शबे० हं । २. गु० मोकउ । ३. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : जउ तनु चीरहि अंगि न मोरउ । पिंडु परै तउ प्रीति न तोरउ ॥ ४. शबे० होई । ५. शबे० नर ।

[२०]

दा० मारू १, नि० मारू २, गु० बनासरी ५—

१. दा० नि० मन रे (पहले अतिरिक्त रूप में) । २. गु० सिमरि (उर्दू मूल) । ३. गु० बूड़ते ४ दा० नि० दारा । ५ दा नि० ग्रेह नेह । ६. दा० नि० अधिकाई (पुन० तुल० ऊपर की पंक्ति में भी 'अधिकाई') । ७. दा० नि० यामैं । ८. गु० अवध (उर्दू मूल) ।

अजामेल गज गनिका पतित करम कीन्हें ।
तेऊ उतरि पारि गए रांम नांम लीन्हें ॥ २ ॥
सूकर कूकर जोनि भ्रमे[९] तऊ नां लाज आई ।
रांम नांम छांड़ि अंम्रित[१०] काहे बिखु खाई ॥ ३ ॥
तजि भरम करम बिधि निखेध[११] रांम नांमु लेही ।
गुर प्रसादि जन कबीर रांमु करि सनेही ॥ ४ ॥

[२१]

रांम जपत तनु जरि किन जाइ ।
रांम नांम चितु रह्यौ समाइ[१] ॥ टेक ॥
आपहिं[२] पावक आपहिं पवनां । जारै खसम त राखै कवनां[३] ॥ १ ॥[४]
काको जरै काहि होइ हांनि[५] । नटबिधि[६] खेलै सारंगपांनि[७] ॥ २ ॥
कहै कबीर अक्खर दुइ भाखि[८] । होइगा रांम[९] त लेइगा[१०] राखि ॥ ३ ॥

---

९. दा० नि० स्वांन सूकर काग कीन्हौं । १०. दा० नि० अंम्रित छांड़ि । ११. दा० नि० नषेद । १२-१३. यह पंक्तियाँ अन्यत्र सूरदास के नाम से भी मिलती हैं : तुल० सूरसागर (ना० प्र० स०) पद ३३० पंक्ति ५-६ (नीचे उद्धृत पद में पंक्ति ३) पृष्ठ १०९; यथा—

(मन) राम नाम सुमिरन बिनु बादि जनम खोयौ । रंचक सुख कारन तैं अंत क्यों बिगोयौ ॥
साधु संग भक्ति बिना तन अकार्थ जाई । ज्वारी ज्यों हाथ झारि चालै छुटकाई ॥
दारा सुत देह गेह संपति सुखदाई । इनमैं कछु नाहिं तेरो काल अवधि आई ॥
काम क्रोध लोभ मोह तृष्ना मन मोयौ । गोबिंद गुन चित बिसारि कौन नींद सोयौ ॥
सूर कहै चित बिचारि भूल्यौ भ्रम अंधा । राम नाम भजि लै तजि और सकल धंधा ॥

[प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह दोनों पंक्तियाँ कबीर-कृत सिद्ध हुई हैं । जब तक सूर की प्रामाणिक रचनाओं का पाठ निर्धारित नहीं हो जाता तब तक यह कहना कठिन है कि यह दोनों पंक्तियाँ सूर की भी हैं । यदि यह सूर की भी सिद्ध होती हैं तो समस्या विचारणीय हो जायगी । उस दशा में इसका समाधान इस प्रकार करना पड़ेगा कि कदाचित् इन पंक्तियों के मूल रचयिता कबीर थे, किंतु कालांतर में अत्यधिक प्रचलित होने के कारण, सम्भव है, किसी प्रतिलिपिकार ने सूर के पदों में इन्हें सम्मिलित कर लिया हो । किंतु मेरा अनुमान है कि वैज्ञानिक शैली के के आधार पर सूर की रचनाओं का पाठ-निर्धारण होने पर यह पद (अथवा कम से कम उक्त दोनों पंक्तियाँ) उनकी रचनाओं में आएगा ही नहीं ।]

[२१]

दा५ गौड़ी ४२, नि० बिहंगड़ी २५, गु० गउड़ी ३३—

१. नि० रांम कहैत सब जरि क्यूं न जाई । काको जरै कौंण पछिताई ॥ दा० में यह पंक्ति नहीं है । २. गु० आपे । ३. दा० नि० जारैगा रांम तौ राखैगा कवना । ४. दा० नि० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद है । ५. द० नि० कौन कै हांनि । ६. गु० नटवट (बत ?) । ७. गु० सारिंगपानि, नि० सारंगप्रांन । ८. दा० नि० द्वै अखिर भाखि । ९. गु० खसम । १०. दा० नि० लेगा ।

[२२]

इहु[१] (यहु ?) धन मेरै हरि कै[२] नांउं ।
गांठि न बांधउं बेंचि न खांउं ॥ टेक ॥

नांउं मेरै खेती नांउं मेरै बारी । भगति करउं जन[३] सरनि तुम्हारी ॥ १ ॥[४]
नांउं मेरै माया नांउं मेरै पूंजी । तुमहिं छांड़ि जानउं नहिं दूजी ॥ २ ॥[५]
नांउं मेरै बंधिप[६] नांउं मेरै भाई । अंत की बेरियां नांउं सहाई[७] ॥ ३ ॥
नांउं मेरै निरधन ज्यूं निधि पाई । कहै कबीर जैसैं रंक मिठाई[८] ॥ ४ ॥

[२३]

आहि[१] मेरे ठाकुर[२] तुम्हरा[३] जोर ।
काजी बकिबो हस्ती तोर ॥ टेक ॥[४]

भुजा बांधि भिला[५] (भेला ?) करि डारयौ । हस्ती कोपि[६] मूंड़ महिं[७] मारयौ ॥१॥
भाग्यौ हस्ती चीसा मारी[८] । या[९] मूरति की हौं[१०] बलिहारी[११] ॥ २ ॥
रे महावत तुझ डारउं काटि[१२] । इसहिं तुरावहु[१३] घालहु सांटि[१४] ॥ ३ ॥
हस्ती[१५] न तोरै धरै धियांन । वाकै ह्रिदै[१६] बसै भगवांन ॥ ४ ॥
क्या[१७] अपराध संत है[१८] कीन्हां । बांधि पोटि कुंजर कौं[१९] दीन्हां ॥ ५ ॥
कुंजर पोट[२०] बहु बंदन करै[२१] । अजहूं न सूझै काजी अंधरै[२२] ॥ ६ ॥

---

[२२]

दा० नि० भैरू ९, गु० भैरउ १—
१. दा० नि० सो। २. दा० नि० का। ३. दा० मैं। ४. नि० में यह पंक्ति नहीं मिलती। ५. दा० नि० नांउं मेरै सेवा नांउं मेरै पूजा। तुम्ह बिन और न जानौं दूजा ॥ ६. दा० नि० बंधव। ७. गु० नांउ मेरे संगि अंति होइ सखाई। ८. गु० माइआ महिं जिसु रखै उदासु। कहि कबीर हउ ताको दासु ॥ किंतु यहाँ अप्रासंगिक-तुल० दा० नि० गौड़ी १०१-५ यथा—
कहै कबीर हूं ताका दास। माया मांहै रहै उदास ॥—जहाँ यह प्रासंगिक भी है।

[२३]

दा० बिलावल ४, नि० बिलावल ३, गु० गौंड ४—
१. दा० नि० अहो। २. दा० नि० गोबिंद। ३. दा० नि० तुम्हारा। ४. गु० में यह पंक्तियाँ चौथी के बाद हैं। ५. दा० नि० भलैं। ६. गु० क्रोपि। ७. दा० नि० मैं। ८. गु० हसति भागि क चीसा मारै। ९. दा० नि० वा। १०. दा० नि० मैं। ११. गु० बलिहारै (उर्दू मूल)। १२. दा० नि० महावत तोकौं मारौं सांटि (तुल० गु० द्वितीय चरण : घालहु सांटि)। १३. दा० नि० मराऊं। १४. दा० नि० काटी (तुल० प्रथम चरण)। १५. गु० हसति १६. गु० रिदै (राज० पंजाबी मूल)। १७. दा० नि० कहा। १८. दा० नि० हौं। १९. गु० कंचर कउ (उर्दू मूल)। २०. नि० मोट। २१ गु० पोट लै लै नमसकारै। २२. गु० बूझी

तीनि बेर[२३] पतियारा लीन्हां[२४] । मन कठोर अजहूं न पतीनां ॥ ७ ॥
कहै[२५] कबीर हमरा[२६] गोबिंद । चौथे पद महिं जन की[२७] जिंद ॥ ८ ॥

[२४]

†मन न डिगै तनु काहे कौ डेराई[१] ।
†चरन कमल चितु रह्यौ समाई[२] ॥ टेक ॥
गंग गुसाइंनि गहिर गंभीर[३] । जंजीर बांधि[४] करि[५] खरे कबीर[६] ॥ १ ॥
गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर[७] । म्रिगछाला पर बैठे कबीर[८] ॥ २ ॥
कहै[९] कबीर कोऊ[१०] संग न साथ । जल थल मैं राखै रघुनाथ[११] ॥ ३ ॥[१२]

[२५]

क्यौं लीजै गढ़ बंका भाई ।
दोवर कोट अरु तेवर[१] खाई ॥ टेक ॥[२]

नहीं काजी अधिआरै । २३. गु० बार । २४. गु० पतीआ भरि लीना । २५. गु० कहि । २६. दा० नि० हमारै । २७. दा० नि० जन का ।

[२४]

दा० भैरूं १७, नि० भैरूं १६, गु० भैरउ १८—
† गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं।
१. दा० नि० ताथैं तन न डराइ, दा३ तातैं तन न डिगाइ। २. दा० नि० केवल रांम रहे ल्यौ लाइ। ३. दा० नि० अति अथाह जल गहर गंभीर। ४. दा० नि० बांधि जंजीर। ५ दा० नि० जल। ६. दा० नि० बोरे है कबीर। ७. दा० नि० जल की तरंग उठि कटि हैं (दा३ कटे हैं जंजीर)। ८. दा० नि० हरि सुमिरत तट बैठे हैं कबीर। ९. गु० कहि। १० दा० नि० मेरे। ११. गु० जल थल राखत है रघुनाथ। १२. दा३ में अन्तिम पंक्ति नहीं है। ['आज' (बनारस का एक समाचार-पत्र) के सहायक सम्पादक श्री विश्वनाथ सिंह ने 'कबीर का अद्‌भुत व्यक्तित्व' शीर्षक निबन्ध में इसी से मिलता-जुलता एक पद दिया है, जिसका पाठ निम्नलिखित है —

गंगे की लहरिया में टुट गइयां जंजीर । मृगछाला पर बैठे कबीर ॥
गंगा गोसाइनि बहे अगम गंभीर । तहां राखनहारा श्री रघुबीर ॥
साह सिकंदर कहै देखो हे पीर । कैसो जादू किया है कबीर फकीर ॥
मुबारक है इसकी तदबीर । साही कब्जे में न आया कबीर ॥

इस पर उक्त महोदय ने टिप्पणी दी है कि "श्री गुरु नानक देव जी ने इस मार्मिक घटना का (सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को गंगा में फिकवाये जाने का) वर्णन अपने ग्रंथ में किया है।" मुझे 'श्री गुरुग्रंथ साहेब' में यह पद कहीं नहीं मिला। 'अपने ग्रंथ' का तात्पर्य सम्पादक ने, पता नहीं, किस ग्रंथ से लिया है। संभव है, किसी परवर्ती सिक्ख गुरु ने कबीर के उक्त पद के अनुकरण पर उनकी महिमा के लिए यह पद रच डाला हो। जब तक ठीक-ठीक नहीं ज्ञात हो जाता, कि यह पद कहाँ मिलता है, इसके सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।]

[२५]

दा० भैरूं ३५, नि० भैरूं ३४, गु० भैरउ १७—
१. नि० तीवर (उर्दू मूल)। २. नि० तथा गु० में इसके बाद अतिरिक्त—
पांच पचीस मोह मद मतसर (नि० मंछर) आड़ी अपरबल (गु० आड़ी परबल) माया।
जन (नि० मो) गरीब को जोरु न पहुंचै कहा करउं रघुराया (नि० रांम राया)॥

कांमु किवार[३] दुख सुख दरबांनीं पाप पुन्नि[४] दरवाजा ।
क्रोध प्रधांन लोभ बड़[५] दुंदर मनु मैंवासी[६] राजा ।। १ ।।
स्वाद सनांह टोप ममिता कौ कुबुधि कमांन[७] चढ़ाई ।
तिसनां तीर रहै[८] घट[९] भीतरि यहु गढ़ लिश्रौ न जाई[१०] ।। २ ।।
प्रेम पलीता सुरति नालि करि[११] गोला ग्यांन चलाया ।
ब्रह्म अगिनि सहजैं परजाली[१२] एकहिं चोट ढहाया[१३] ।। ३ ।।
सतु संतोखु लै लरनैं लागा[१४] तोरे दुइ[१५] दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की क्रिपा तैं पकरचौ गढ़ कौ राजा ।। ४ ।।
भगवंत भीरि सकति सुमिरन[१६] की काटि काल की फांसी ।[१७]
दास कबीर[१८] चढ़चौ गढ़ ऊपरि राज लियौ[१९] अबिनांसी ।। ५ ।।

[२६]

नहीं छांड़उं रे बाबा रांम नांम ।
मोहिं[१] अउर पढ़न सौं नहीं कांम ।। टेक ।।

प्रहलाद पढ़ाए[२] पढ़नसाल[३] । संगि सखा बहु लिएं बाल[४] ।। १ ।।
मोकउं कहा पढ़ावसि[५] आल जाल[६] । मेरी पटिया[७] लिखि देहु स्री गोपाल ।।२।।[८]
संडे मरकै[९] कह्यौ जाइ । प्रहलाद बुलाए[१०] बेगि धाइ[११] ।। ३ ।।
तू रांम कहन की छांड़ि[१२] बांनि । तुझ[१३] तुरत[१४] छड़ाऊं[१५] मेरो कह्यौ मांनि ।।४।।
मोकउं कहा सतावहु[१६] बार बार । प्रभु जल थल गिरि कीए पहार[१७] ।। ५ ।।
रांम छांडौं तौ मेरे गुरहिं गारि[१८] । मोकउं घालि जारि भावै मारि डारि[१९] ।। ६ ।।

---

३. गु० किवारी । ४. गु० पूंनु । ५. गु० महा बड़ (पुन०) । ६. गु० मावासी । ७. नि० कबांण । ८. नि० बहै । ९. दा० नि० तन । १०. दा० नि० सुबधि हाथ नहिं आई । ११. गु० सुरति तवाई । १२. दा० नि० ब्रह्म अगिनि ले दिया पलीता (पुन० ऊपर की पंक्ति में 'प्रेम पलीता') । १३. गु० सिझाइआ । १४. दा० नि० लागो । १५. दा० नि० दस (दरवाजे केवल दो हैं, दे० पंक्ति २-३. : पाप पुन्नि दरवाजा) । १६. गु० सिमरन (उर्दू मूल) १७. गु० कटी काल भै फासी । १८. गु० कमीर (?) । १९. दा० नि० दियौ ।

[२६]

दा० बसंत ३ (दा२ में यह पद नहीं है), नि० बसंत १२, गु० बसंत ४, शक० बसंत ६—
१. गु० मेरो । २. दा० नि० पघारं । ३. गु० पड़नसाल । ४. दा० नि० संगि सखा लिए बहुत बाल । ५. दा० नि० पढ़ावै । ६. नि० कहा रे पढ़ावै पांडे आल जाल । ७. दा० नि० पाटी मैं । ८. शक० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : कहै पंडित तुम सुनहु राव । तेरो पुत्र चलतु है अपनी दाव ॥ मैं मांडो वह दे बिड़ार। नेको न मानै कहा हमार ॥ ९. दा१ तब सनां मुरकां, दा३ तब सडां मुरकां, नि० सैन मरक जब, शक० शंडामर्क से । १०. दा० नि० बंघायो । ११. दा० नि० आइ । १२. गु० छोड़ । १३. दा० नि० में 'तुझ' नहीं है । १४. दा० नि० बेगि । १५. शक० निवाजों । १६. दा० नि० डरावै . १७. दा० नि० जिनि जल गिरि कौ कीए प्रहार, शक० जिन जल थल परबत लियो उबारि । १८. गु० इकु राम न छोड़उं गुरहिं गारि ।

तब[२०] काढ़ि खड़ग कोप्यौ रिसाइ । तोहिं[२१] राखनहारौ मोहिं बताइ ॥ ७ ॥
खंभा तैं प्रगट्यौ गिलारि[२२] ।[२३] हिरनांकस मार्‌यौ[२४] नख बिदारि ॥ ८ ॥
परम पुरख[२५] देवाधिदेव । भगति हेत नरसिंघ भेव[२६] ॥ ९ ॥
कहै[२७] कबीर कोई[२८] लहै न पार[२९] । प्रहलाद उधारै[३०] अनिक बार ॥ १० ॥

(४) साधु महिमा

[२७]

झगरा एक निबेरहु[१] रांम[२] ।
जे[३] (जउ ?) तुम्ह अपनैं जन सौं कांम[४] ॥ टेक ॥
ब्रह्मा बड़ा कि जिन रे उपाया[५] । बेद बड़ा कि जहां तैं[६] आया[७] ॥ १ ॥
यहु मन बड़ा कि जेहिं[८] मन मांनैं । रांम बड़ा कि[९] रांमहिं जांनैं[१०] ॥ २ ॥
कहै[११] कबीर हौं भया[१२] उदास[१३] । तीरथ बड़ा[१४] कि हरि का दास[१५] ॥ ३ ॥

[२८]

हरिजन हंस दसा[१] लिएं डोलै ।
निरमल नांव चुनै (?) जस बोलै[२] ॥ टेक ॥
मांन सरोबर तट के बासी । रांम चरन चित आंन उदासी ॥ १ ॥[४]

---

१९. दा० बांधि मारि भावै देह जारि, नि० शक० मारि डारि भावै देह जारि । २०. गु० 'तब' नहीं है। २१. गु० तुझ । २२. शक० सू[illegible] २३. गु० प्रभु थंम तें निकसे करि बिसथार । २४. गु० छेदिओ । २५. दा० नि० [illegible]पुरुष, शक० आदिब्रह्म । २६. दा० नि० नरसिंघ प्रगट कियौ भगति भेव । २७. गु० कहि । २८. गु० को लखै भेव । २९. शक० लीला अपार । ३०. शक० बचायौ ।

[२७]

दा० गौड़ी २७, नि० गौड़ी ३०, गु० गौड़ी ४२, बी० ११२, स० ९५-४—
१. बी० बढ़ो । २. बी० राजा राम । ३. गु० जउ । ४. बी० जो निरवारै सो निरबान, नि० जो तुम्हरे जन सूं है काम । ५. गु० कि जासु उपाइआ, बी० की जहां से आया (तुल० द्वितीय चरण)। ६. दा० नि० स० थैं । ७. बी० की जिन्ह उपजाया (तुल० प्रथम चरण)। ८. गु० जासउ, दा० नि० स० जहां । ९. गु० कै । १०. नि० जन रांम पिछांनां । ११. गु० कहु । १२. दा० नि० स० खरा (राज०)। १३. बी० भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास । १४. दा० नि० स० बड़े । १५. बी० कि तीरथ के दास ।

[२८]

दा० भैरूं २०, नि० भैरूं १८, बी० ३४, स० २१-२—
१. दा२ स० दिसा (उर्दू मूल)। २. दा० नि० स० चवै जस बोलै, बी० चुनी चुन बोलै । ३. बी० अंत । ४. बी० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद आती है ।

मुकताहल बिनु[५] चंचु न लावै[६] । मौंनि गहै[७] कै[८] हरि गुन[९] गावै ॥ २ ॥
कउवा[१०] कुबुधि निकटि नहिं आवै । सो हंसा निज दरसन पावै[११] ॥ ३ ॥
कहै कबीर सोई जन तेरा[१२] । खीर नीर[१३] का करै निबेरा ॥ ४ ॥[१४]

[२९]

चलन चलन सब कोइ कहत है ।
नां जांनौं[१] बैकुंठ कहां है ॥ टेक ॥[२]

जोजन एक परमिति नहिं जांनैं[३] । बातनि ही बैकुंठ बखांनैं[४] ॥ १ ॥
जब लग मनि[५] बैकुंठ का आसा । तब लग नहिं हरि चरन निवासा[६] ॥ २ ॥
कहें सुनें कैसे पतिअइअै[७] । जब लग तहां आप नहीं जइअै[८] ॥ ३ ॥[९]
कहै कबीर[१०] यहु[११] कहिअै काहि । साध संगति बैकुंठहि आहि ॥ १० ॥

[३०]

निरमल[१] निरमल हरि[२] गुन गावै ।
सो भाई मेरे[३] मनि भावै[४] ॥ टेक ॥

जो जन लेहिं खसम का[५] नांउं । तिनकै[६] मैं[७] बलिहारै जांउं ॥ १ ॥

---

५. बी० लिए । ६. बी० चोंच लभावै (हिन्दी मूल ?) । [बीजक की टीकाओं में 'लभाना' का अर्थ प्रायः लंबा करना या फैलाना किया गया है, किन्तु लंबा करने के अर्थ में अवधी 'लमाउब' (=लमाना) क्रिया है न कि 'लभाउब' (= लभाना)] । ७. बी० रहै । ८. बी० की । ९. बी० जस । १० बी० कागा । ११. बी० प्रतिदिन हंसा दरसन पावै । १२. बी० मेरा । १३. बी० नीर छीर । १४. बी० में इसके दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[२९]

दा० गौड़ी २४, नि० गौड़ी ३२, गु० गउड़ी १० तथा भैरउ १६, स० २४-४—
गु० में यह पद दो स्थलों पर मिलता है; पाठांतर में निर्देश दोनों का है । १. दा३ जानूं । २. दा५ नां तौ जांनि बौरे बैकंठ कहांवा । सब कोउ जान कहत है तहांवा ॥
गु० (गउड़ी) ना जाना बैकंठ कहा ही (उर्दू मूल ?) । जानु जानु सभि कहहिं तहाही ॥
गु० (भैरउ) सभु कोई चलन कहत है उहां । ना जानउं बैकुंठ है कहां ॥
३. गु० (गउड़ी) जो जन परमिति परमनु जाना, गु० (भैरउ) आप आप का मरमु न जाना । ४. गु० (गउड़ी) बैकुंठ समाना, गु० (भैरउ) बैकुंठ बखाना । ५. दा० नि० स० है । ६. गु० (गउड़ी) तब लगु होइ नहीं चरन निवासु, गु० (भैरउ) तब लगु नाहीं चरनि निवास । ७. गु० (गउड़ी) कहन कहावन नह पतिअईहै । ८. गु० (भैरउ) तउ मनु मानै जाते हउमैं जईहै । ९. गु० (भैरउ) में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर है : खाई कोटु न परल पगारा । ना जानउ बैकंठ दुआरा ॥ १०. गु० (गउड़ी) कहु कबीर, गु० (भैरउ) कहि कमीर । ११. गु० (भैरउ) अब ।

[३०]

दा० गौड़ी १२४, नि० गौड़ी १२७, गु० गौड़ी २६—
१. गु० सो निरमल । २. दा० नि० रांम । ३. दा० नि० सो भगता । ४. गु० में यह पंक्ति दूसरी पंक्ति के बाद है । ५. दा० नि० रांम की । ६. दा० नि० ताकी । ७. गु० सद ।

जिहिं[८] घटि रांम रहा भरपूरि। तिनकी पद पंकज हंम धूरि[९] ॥ २ ॥
जाति जुलाहा मति का धीर। सहजि सहजि[१०] गुन रमैं कबीर ॥ ३ ॥

[३१]

रांम चरन[१] जाकै ह्रिदै[२] बसत है[३] ताकौ मन क्यौं डोलै[४] (देव)[५] ॥
मानौं अठ सिधि[६] नउ निधि ताकै सहजि सहजि[७] जसु बोलै (देव) ॥ टेक ॥
अैसी जे उपजै या जिअ कै कुटिल गांठि सब खोलै (देव)[८]।
बारंबार बरजि बिखया तैं[९] लै नर जौं[१०] मन तोलै (देव) ॥ १ ॥
जहं जहं[११] जाइ तहीं सचु[१२] पावै माया तासु न[१३] झोलै (देव) ॥
कहै[१४] कबीर मेरौ मन मांन्यौ[१५] रांम प्रीति कै ओलै (देव)[१६] ॥ २ ॥[१७]

[३२]

तेरा[१] जनु एक आध है कोई।
कांम कोध लोभ मोह बिबरजित[२] हरि पद चीन्है सोई ॥ टेक ॥
असतुति[३] निंदा दोउ बिबरजित[४] तजहिं[५] मानु अभिमांनां।
लोहा कंचन सम करि जानहिं[६] ते मूरति भगवांनां ॥ १ ॥[७]
रज गुन तम गुन सत गुन कहिअै[८] यह सभ तेरी माया[९]।
चउथै पद कौं जो जन[१०] चीन्हैं तिनहीं परम पदु पाया ॥ २ ॥
चिंतै तौ माधव चिंतामनि हरि पद रमैं उदासा।[११]
चिंता अरु अभिमांन रहित है कहै कबीर सो दासा ॥[१२]

---

८. दा० जिस। ९. दा० नि० ताको मैं चरनन की धूरि। १० दा० नि० हरषि हरषि।

[३१]

दा० बिलावल ११, (दा१, दा२ में नहीं है।), नि० बिलावल २२, गु० बिलावल १२—
१. गु० चरन कमल। २. दा० नि० गु० रिदै (पश्चिमी प्रभाव)। ३. दा० नि० बसहि। ४. गु० सो जनु किउ डोलै। ५. दा० नि० में पंक्तियों के अन्त में 'देव' शब्द नहीं आता ६. गु० मानउ सभु सुखु। ७. दा० नि० हरखि हरखि। ८. गु० तब इह मति जउ सभ महिं पैखै कुटिल गांठि जब खोलै देव। ९. गु० बारंबार माइआ ते अटकै। १०. गु० नरजा (हिन्दी मूल)। ११. गु० उह। १२. गु० सुख। १३. दा० नि० ताहि। १४. गु० कहि। १५. दा० नि० जब मन परचौ। १६. दा० नि० रहै रांम कै वोलै। १७. दा० नि० में उक्त पद की तीसरी तथा पाँचवीं पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित।

[३२]

[३३]

भाग[१] जाकै संत पाहुनां आवैं ।
द्वारै रचिहैं कथा कीरतन हिलिमिलि मंगल गावैं[२] ॥ टेक ॥
भयौ लाभ चरनां अंम्रित कौ[३] महाप्रसाद की आसा ।
जाकौं जोग जगि तप कीजै[४] सो संतन[५] के पासा ॥ १ ॥[६]
जा प्रसाद[७] देवन कौ दुरलभ संत सदा ही पाहीं[८] ।[९]
कहै कबीर हरि भगत बछल है सो संतन के मांहीं[१०] ॥ २ ॥

[३४]

है[१] साधू संसार मैं कंवला जल मांहीं ।
सदा सरबदा संगि रहै जल परसत नांहीं ॥ टेक ॥
जल केरी ज्यौं कूकुही[२] जल मांहि रहाई[३] ।
पांनीं पंख[४] लिपै नहीं कुछु असर न जाई[५] ॥१ ॥

तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ।
त्रिसना अरु माइआ भ्रमु चूका चितवत आतमरामा ॥
जिह मंदिर दीपकु परगासिआ अंधकार तह नासा ।
निरभउ पूरि रहे भ्रमु भागा कहि कबीर जन दासा ॥
[पुन० तुल० 'निहकामा' तथा मूल पद की द्वितीय पंक्ति में 'काम बिबरजित'; इसी प्रकार तुल० 'भ्रमु चूका' तथा 'भ्रमु भागा']।

[३३]

नि० विहंगड़ी २, शबे० (३) साध० २, शक० धुन शब्द १—
१. शबे० धन्य भाग। २. शबे० में इसके स्थान पर दो पंक्तियाँ हैं—
कथा गरंथ होय द्वारे पर भाव भक्ति समझावें। काम क्रोध, मद लोभ निवारें हिलमिलि मंगल गावैं ॥
३. शबे० चरन अंकित लै, शक० श्वेत चरणामृत। ४. शबे० जौन मता हम जुग जुग ढूंढ़ौं, शक० जा कारण योगी जप तप करिहीं। ५. शबे० साधुन के। ६. शक० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : खीर खांड घृत अंमृत भोजन सतगुरु भोग लगाए। जो सेवक सांचे मन होवै तो साधु में साहिब पाए ॥ (तुल० ऊपर की अन्तिम पंक्ति)। ७. शक० महाप्रसाद।
[illegible]बे० साध से नित उठि पावैं। ९. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : दगाबाज कारन जनम जनम डहकाए। सील संतोष विवेक छमा धरि मोह के सहर लुटावैं ॥
[illegible]र सुनौ भाई साधो अमर लोक पहुंचावैं, शक० दुष्ट सदा दुरमति के घेरे [illegible]० ऊपर शबे० की अतिरिक्त पंक्ति)। इसके पश्चात् शक० में अतिरिक्त : [illegible]तगुरु सांई लखाए। कहहि कबीर संतन की महिमा हरि अपने [illegible]था शबे० (१) ३३ की अन्तिम पंक्ति, यथा : कहै कबीर

मींन तलै[६] जल ऊपरै कछु[७] लगै न भारा ।
आड़ अटक मांनैं नहीं पौड़ै जलधारा[८] ॥ २ ॥[९]
जैसै सीप समंद[१०] मैं चित देइ [११]अकासा ।
कुंभ कला ह्वै खेलही तस साहेब दासा[१२] ॥ ३ ॥
जुगति जंबूरै[१३] पाइया[१४] बिसहर लपटाई[१५] ।
वाकौ बिख ब्यापै[१६] नहीं गुरगंमि सो पाई[१७] ॥ ४ ॥
षड रस भोजन बिंजना[१८] बहु पाक मिठाई ।[१९]
जिभ्या लेस लगै नहीं उनकै चिकनाई[२०] ॥ ५ ॥
बांबी मैं[२१] बिसहर[२२] बसै कोई पकरि[२३] न पावै ।
कहै कबीर कोई गारड़ू तापैं सहजैं आवै[२४] ॥ ६ ॥[२५]

[३५]

नारद साध[१] सौं अंतर नांहीं ।
जो मेरे[२] साध[१] सौं अंतर राखैं सो नर नरकै जाहीं[३] ॥ टेक ॥
जागै साध[१] तौ मैं भी जागूं सोवै साध[१] तौ सोऊं[४] ।
जो कोई मेरे साध दुखावै[५] जरा मूल सौं खोऊं[६] ॥ १ ॥
जहां साध[१] मेरौ जस गावै[७] तहां करौं मैं[८] बासा ।
साध[१] चलै[९] आगैं उठि धाऊं[१०] मोहि साध[१] की आसा ॥ २ ॥
लछिमी[११] मेरी[१२] अरध सरीरी सो[१३] भगतन की[१४] दासी ॥[१५]
अठसठ तीरथि साध[१] के चरननि कोटि गया[१६] अरु कासी ॥ ३ ॥

---

६. शबे० तिरै । ७. शबे० जल (पुन० पहले 'जल' के कारण) । ८. नि० बिहरै जल सारा ।
९. नि० में इसके बाद अतिरिक्त—
भगत विद्या नट खेलिया तन न्यारा न्यारा । खंड बिहंडा ह्वै पड़्या ज्यूं का त्यूं सारा ॥
१०. शबे० समुद्र । ११. नि० धरै । १२. नि० कूरम किला (उर्दू मूल) पछांणि कै बिहरै निज दासा । १३. शबे० जमूरा । १४. शबे० पाइ कै । १५. शबे० सरपै लपटाना । १६. शबे० बेधै । १७. शबे० गुरु गम्म समाना । १८. शबे० दूध भात घृत भोजना । १९. नि० बहु थाल भराई । २०. शबे० रसनाई । २१. नि० ज्यूं बंबई । २२. शबे० विषधर । २३. नि० भेद । २४. शबे० कहैं कबीर गुरुमंत्र से सहजै चलि आवै । २५. नि० में उक्त पद की पंक्तियों का क्रम यथा १-२-३-४-५-११-१२-७-८-५-६-९-१०-१३-१४ है ।

[३५]

नि० सोरठि ५८, शबे० (१) बिरह-प्रेम ३३—
१. नि० संत । २. शबे० कोइ । ३. नि० सोई नरक मैं । ४. नि० जहां मेरो संत जीवै तहां जीऊं जहां सोवै तहां सोऊं । ५. नि० जो मेरे संत को दुख दिखलावै । ६. नि० ताहि अनेक दोख धरि खोऊं । ७. नि० जहां मेरो कथा होइ कीरतन । ८. नि० तहां हमारा । ९. नि० चल्यां । १० नि० होइ चालूं । ११. शबे० माया । १२. नि० मेरे (उर्दू मूल) । १३. शबे० औ । १४. नि० संतन की । १५ नि० में अगली पंक्ति के बाद है । १६. नि० गंगा ।

निसि बासुर जो रांम ल्यौ लावै सोई परम पद पावै ।।[१७]
कहै कबीर साध[१] की महिमा हरि अपनैं मुखि गावै[१८] ।। ४ ।।

(५) करुनां बीनती

[३६]

माधौ[१] कब करिहौ दाया ।
कांम क्रोध हंकार[२] बिआपै नां[३] छूटै माया ।। टेक ।।
उतपति बिंदु[४] भयौ जा दिन तैं[५] कबहूं सचु नहिं पायौ ।।[६]
पंच चोर संगि लाइ दिए हैं इन संगि जनम गंवायौ ।। १ ।।
तन मन डस्यौ भुजंग भांमिनीं[७] लहरइं[८] वार न पारा ।
गुर[९] गारड़ू[१०] मिल्यौ नहिं कबहूं पसरयौ बिख बिकरारा[११] ।।२।।
कहै कबीर दुख[१२] कासौं कहिए कोई दरद न जांनैं[१३] ।
देहु दीदार बिकार दूर करि[१४] तब मेरा मन मांनैं।। ३ ।।

[३७]

हरि[१] जननी मैं बालक तेरा[२] ।
काहे न अवगुन बकसहु[३] मेरा ।। टेक ।।
सुत अपराध करत है केते[४] । जननी कै चित रहैं न तेते[५] ।। १ ।।
कर गहि केस करै जौ घाता । तऊ न हेत उतारै[६] माता[७] ।। २ ।।[८]
कहै कबीर इक बुद्धि बिचारी । बालक दुखी दुखी महतारी[९] ।। ३ ।।

---

[१७]. शबे० अंतरध्यान नाम निज केरा जिन भजिया तिन पाई (साम्प्र० प्रभाव)। १८. शबे० गाई ।।

[३६]

दा० नि० केदारौ ९, शबे० (१) विरह-प्रेम ३, स० ३७-२—
[१]. शबे० गुरु दयाल (राधास्वामी प्रभाव)। २. दा० नि० स० अहंकार। ३. शबे० नाहीं। [४]. दा० ब्यंद। ५. शबे० जौ लगि उतपति बिंदु रचो है। ६. शबे० सांच कभूं नहिं पाया। [७]. शबे० भुवंगम भारी। ८. दा० नि० स० लहरी (उर्दू मूल), शबे० लहरै। ९. दा० स० सो। [१०]. शबे० गारुड़ी। ११. नि० बिस्तारा। १२. दा० नि० स० यहु। १३. दा० नि० स० [य]हु दुख (पुन०) कोई न जानै। १४. शबे० देहु दीदार दूरि करि परदा।

[३७]

दा० गौड़ी १११, नि० गौड़ी ११४, गु० आसा १२, स० ३७-३, शक० प्रभाती ४—
१. शक० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव)। २. गु० रामईआ हउ बारिक तेरा। ३. गु० खंडसि। ४. दा० नि० स० करौ दिन केते, शक० करै जो केता। ५. गु० जननी चीति न राखसि तेते, शक० जननी कै उर आव न एता। ६. शक० बिसारै। ७. गु० जे अति क्रोप करै करि धाइआ। ता भी चिति न राखसि माइआ ।। [पुन० तुल० ऊपर की पंक्ति का दूसरा चरण।]
८. शक० में इसके बाद अतिरिक्त : जो सुत को विष दे महतारी। ताको रक्षा करै हमारी ।।
९. गु० में इसके स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

[३८]

अब मोहिं[1] रांम भरोसा तोरा ।
तब काहू का कवन निहोरा[2] ।। टेक ।।[3]

जाकै हरि सा ठाकुर भाई[4] । सो कत[5] अनत पुकारन जाई ।। १ ।।
तीनि लोक जाकै हहि भारा[6] । सो काहे[7] न करै प्रतिपारा[8] ।। २ ।।
कहै कबीर सेवौ बनवारी[9] । सींचौ पेड़ पिवैं सब डारी[10] ।। ३ ।।

[३९]

कहा करउं[1] कैसे तरउं[2] भव जलनिधि भारी[3] ।
राखि राखि मेरै बीठुला जनु सरनि तुम्हारी[4] ।

ग्रिह[5] तजि बनखंडि जाइग्रै चुनि खाइग्रै[6] कंदा ।
ग्रजहुं[7] बिकार न छोड़ई[8] पापी मनु मंदा[9] ।। १ ।।
बिख बिखिया की बासनां[10] तजौं तजी न जाई ।[11]
ग्रनिक[12] जतन करि राखिग्रै[13] फिरि फिरि लपटाई[14] ।। २ ।।
जीव ग्रछित[15] जोबन गया किछु किया न नीका ।
यहु जियरा[16] निरमोलिका कौड़ी लगि[17] बीका[18] ।। ३ ।।
कहै कबीर मेरै माधवा[19] तू सरब[20] बिग्रापी ।।
तुम्ह समसरि नांहीं दयालु मोहिं समसरि पापी[21] ।। ४ ।।[22]

चित भवनि मनु परिग्रो हमारा । नाम बिना कैसे उतरसि पारा ॥
देहि बिमल मति सदा सरीरा । सहजि सहजि गुन रवै कबीरा ॥

[३८]

दा० गौड़ी ११४, नि० गौड़ी ११७, गु० गउड़ी २२—
१. गु० कहु । २. दा० नि० ग्रौर कौन का करौं निहोरा । ३. गु० में यह पंक्ति ग्रगली पंक्ति के बाद ग्राती है । ४. दा० नि० जाकै रांम सरीखा साहिब भाई । ५. गु० मुकति (उर्दू मूल) । ६. दा० नि० जा सिरि तीनि लोक कौ भारा । ७. दा० नि० सूं । ८. दा० नि० जन की प्रतिपारा । ९. गु० कहु कबीर इक बुधि बीचारी (पुन० तुल० गु० गउड़ी १२-५-१ यथा : कहु कबीर इक बुधि बीचारी । ना ग्रोहु कूग्रटा ना पनिहारी ॥) । १०. गु० किग्रा बस जउ बिख दे महतारी ।

[३९]

दा० रांमकली २६, नि० रांमकली २७, गु० बिलावल ३—
१. गु० किउ छूटउं । २. दा० नि० तिरौं । ३. दा० नि० भौजलि ग्रति भारी । ४. दा० नि० तुम्ह सरनागति केसवा राखि राखि मुरारी । ५. दा० नि० घर । ६. दा० नि० खनि खाइए । ७. दा० नि० बिखै (तुल० ग्रगली पंक्ति) । ८. दा० नि० छूटई । ९. दा० नि० ग्रैसा मन गंदा । १०. गु० बिखै बिखै की बासना (?) । ११. गु० तजीग्र नह जाई । १२. दा० नि० ग्रनेक । १३. दा० नि० करि सुरझिहौ । १४. दा० नि० पुनि पुनि उरझाई । १५. गु० जरा जीवन । [1]६. दा० नि० हीरा । १७. दा० नि० पर । १८. गु० मांका (उर्दू मूल) । १९. दा० नि० सुनि केसवा । २०. दा० नि० सकल । २१. दा० नि० तुम्ह समांनि दाता नहीं हमसे नहिं पापी । २२. गु० में पद की प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी के बाद ग्राती हैं ।

[४०]

गोबिंद हम अैसें अपराधी[१] ।

जिन प्रभु जीउ पिंडु था दीया[२] तिसकी[३] भाव भगति नहिं साधी[४] ।।टेक।।

कवन काज सिरजे जग भीतरि[५] जनमि कवन फल[६] पाया ।

भवनिधि[७] तरन तारन[८] चिंतामनि इक निमिख न यहु मनु लाया[९] ।। १ ।।

पर निंदा पर धन पर दारा पर अपबादहिं सूरा[१०] ।

आवागवन होत है फुनि फुनि यहु परसंग न चूरा[११] ।। २ ।।[१२]

कांम क्रोध माया मद मंछर[१३] ए संतति[१४] मों मांहीं[१५] ।

दाया धरम ग्यांन गुर सेवा[१६] ए सुपनंतरि नांहीं[१७] ।। ३ ।।

दीन दयाल क्रिपाल दमोदर[१८] भगत बछल[१९] भै हारी ।

कहत कबीर भीर जन राखहु (हरि) सेवा करउं तुम्हारी[२०] ।। ४ ।।

[४१]

बाबा अब न बसउं यहि गांउं[१] ।

घरी घरी का लेखा मांगै काइथ चेतू नांउं ।। टेक ।।[२]

देही गांवां जिउधर महतौ[३] बसहिं पंच किरसांनां[४] ।।

नैनूं[५] नकटू[६] स्रवनूं रसनूं[७] इंद्री कहा न मांनां[८] ।। १ ।।[९]

---

[४०]

दा० रांमकली ३९, नि रांमकली ३८, गु० रांमकली ८—

१. दा० नि० माधौ मैं अैसा अपराधी। २. दा० नि० में इस पंक्ति का पूर्वार्ध नहीं है। ३. दा. नि० तेरो १। ४. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद हैं। ५. दा० नि० कारनि कवन आइ जग जनमैं। ६. दा० नि० सचु। ७. दा० नि० भौजल। ८. दा० नि० तिरण चरण। ९. दा० नि० ता चित घड़ी न लाया। १०. गु० परधन पर तन पर ती निंदा पर अपवाद न छूटै [धन और स्त्री की 'निंदा' नहीं की जाती, प्रायः उनसे 'ईर्ष्या' की जाती है।]। ११. गु० तूटै। १२. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मैं फेरा। लंपट चोर धूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥ १३. गु० मतसर। १४. गु० संपै (उर्दू मूल)। १५. दा० नि० हम मांहीं। १६. गु० दया धरम अरु गुर की सेवा। १७. दा० नि० स० ए प्रभु सुपिनैं नांहीं। १८. दा० नि० तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर। १९. गु० भगति बछल (उर्दू मूल)। २०. दा० नि० कहै कबीर धीर मति राखहु सांसति करौ हमारी।

[४१]

दा० आसावरी २१, नि० आसावरी २०, गु० मारू ७—

१. दा० नि० अब न बसूं इह गाइं गुसांइं। तेरे नेवगी खरे सयाने हो रांम ॥ २. दा० नि० में यह पंक्ति नहीं है। ३. दा० नि० नगर एक तहां जीव धरम हता (उर्दू मूल)। ४. दा० नि० जु पंच किसांनां। ५. दा२ नैनूं नूर, नि० नैनौ। ६. दा१, दा२ निकट (उर्दू मूल), दा२ नि० नकटु। ७. गु० रसपति। ८. दा० नि० मानै हो रांम। ९. दा नि० में इसके बाद अतिरिक्तः गांव कु ठाकुर खेत कुनेपै काइथ खरच न पारै।

जोरि जेवरी खेत पसारै सब मिलि मोकौं मारैं हो रांम ॥

धरमराइ जब लेखा मांगै[१०] बाकी निकसी भारी ।
पंच क्रिसनवां[११] भागि[१२] गए लै[१३] बांध्यौ जिउ दरबारी[१४] ।। २ ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेतहि करहु निबेरा[१५] ।
अब की बेर[१६] बखसि[१७] बंदे कौं बहुरि न भौजलि फेरा[१८] ।। ३ ।।

[४२]

तहां मों[१] गरीब की को गुदरावै[२] ।
मजलिसि दूरि महल को पावै ।। टेक ।।
सत्तरि सहस[३] सलार[४] हैं जाकै । सवा लाख[५] पैगंबर[६] ताकै ।। १ ।।
सेख जु कहिअहि[७] कोटि अठासी[८] । छप्पन कोटि[९] जाकै खेलखासी[१०] ।। २ ।।
तेतीस करोड़ी है खेलखांनां[११] । चौरासी लख फिरैं दिवांनां ।। ३ ।।
बाबा आदम पै नजरि दिलाई[१२] । उन भी[१३] भिस्ति घनेरी पाई ।। ४ ।।[१४]
तुम दाते[१५] हंम सदा[१६] भिखारी । देउं[१७] जबाब होइ बजगारी ।। ५ ।।
दासु[१८] कबीर तेरी पनह समांनां । भिस्ति[१९] नजीकि राखि रहिमांनां ।। ६ ।।

[४३]

माधौ दारुन दुख सह्यौ न जाइ ।
मेरौ चपल बुद्धि सौं[१] कहा बसाइ[२] ।।टेक।।

खोटौ महतौ विकट बलाही सिर कसदम का पारै (पुन०) ।
बुरौ दिवांन दादि नहिं लागै इक बांधै इक मारै हो रांम ॥

१०. दा० नि० भाग्या । ११. दा० नि० पांच किसनवां । १२. दा० नि० भाजि । १३. दा० नि० गए हैं । १४. दा० नि० बांध्यो जीव धरि पारी हो रांम (नि० धरि मारी हो रांम) । १५. दा० नि० हरि भजि बंधौ भेरा ।। १६. गु० बार । १७. दा० नि० बकसि । १८. दा० नि० सब खत करौं नबेरा (तुल० ऊपर का पंक्ति का दूसरा चरण) ।

[४२]

दा० गु० भैरूं १५, नि० भैरूं १४—
१. दा० नि० मुझ । २. गु० गुजरावै । ३. गु० सैइ । ४. दा३ सिलारा । ५. दा० नि० असी लाख । ६. गु० पैकाबर (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० कहिए । ८. दा० नि० सहस अठ्यासी । ९. दा० नि० कोड़ि । १०. दा० नि० खेलिबे खासी । ११. दा० नि० कोड़ि तेतीसूं अरु खिलखांनां (नि० लिखखांनां) । १२. गु० बाबा आदम पै किछु नदरि दिखाई । १३. दा० नि० नबी (उर्दू मूल) । १४. गु० में इसके बाद अतिरिक्त: दिल खलहल जाकै जरदरू बानी । छोड़ि कितेब करै सैतानी । दुनीआ दोसु रोसु है लोई । अपना कीआ पावै सोई ॥ १५. दा० नि० साहिब । १६. दा० नि० कहा । १७. दा० नि० देत । १८. दा० नि० जन । १९. गु० भिसति (गुरुमुखी मूल) ।

[४३]

दा० बसंत ८, नि० बसंत ७, गु० बसंत ५—
१. गु० सिउ । २. गु० में यह पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद है ।

इसु तन मन मद्धे[३] मदन चोर । जिनि ग्यांन रतनु हरि लीन मोर ॥ १ ॥
मैं अनाथ प्रभु कहउं काहि । को को न बिगूचे[४] मैं को आहि ॥ २ ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि । नांभि कंवल जांने (जनमे ?) ब्रह्मादि[५] ॥ ३ ॥
कवि जन जोगी जटा धारि[६] । सभ आपन औसर चले हारि[७] ॥ ४ ॥
तूं अथाहु मोंहि थाह नांहि । प्रभु दीनांनाथ दुखु कहउं काहि ॥ ५ ॥[८]
मेरौ जनम मरन दुखु आथि धीर । सुख सागर गुन रउ कबीर ॥ ६ ॥[९]

[४४]

राखि लेहु हम तैं बिगरी ॥
सील धरम जप भगति न कीन्हीं हौं अभिमांन टेढ़ पगरी ॥ टेक ॥
अमर जांनि संची यह काया सो मिथ्या कांची गगरी ॥
जिन्हिं निवाज साज सब कीन्हें तिन्हिं[१] बिसारि और लगरी ॥ १ ॥
संधिक साध कबहुं नहिं भेटचौ[२] सरनि परे जिनकी[३] पग री ॥
कहै कबीर इक बिनती सुनिए मत घालौ जम की खबरी ॥ २ ॥

[४५]

दरमांदा[१] ठाढ़ौ दरबारि[२] ।
तुम बिनु सुरति करै को मेरी दरसन दीजै खोलि किंवार ॥ टेक ॥
तुम सम धनीं उदार न कोऊ[३] स्रवनन सुनियत सुजस तुम्हार ॥
मांगौं काहि[४] रंक सभ देखौं तुम ही तैं मेरौ निस्तार ॥ १ ॥
जैदेउ नांमां बिप सुदांमां तिनकौं क्रिपा भई है अपार[५] ।
कहै कबीर तुम समरथ दाता चारि पदारथ[६] देत न बार ॥ २ ॥

---

३. दा० नि० तन मन भीतरि बसै । ४. दा० नि० अनेक बिगूचे, गु० को को न बिगूतो । ५. दा० नि० आपन कंवलापति भए ब्रह्मादि । ६. दा० नि० जोगी जंगम जती जटाधार (गु० सारि) । ७. दा० नि० अपने अवसर सब गए हैं हारि । ८-९. दा० नि० कहै कबीर रहु संग साथ । अभिअंतर सूं कहौ बात ॥ मन ग्यांन जांनि कै करि बिचार । रांम रमत भौ तिरिबौ पार ॥

[४४]

गु० बिलावल ६, शबे० (२) प्रेम १५—
१. गु० तिसहि । २. गु० सधिक ओहि साध नहीं कहीअउ । ३. गु० तुमही ।

[४५]

गु० बिलावल ७, शबे० (२) प्रेम १७—
१. गु० दरमादा ठाढ़े । २. शबे० तुम बार बार । ३. गु० तुम घन धनी उदार तिआगी
४. शबे० कौन । ५. शबे० में यह पंक्ति नहीं है । ६. शबे० पूरन पद को (राधा० प्रभाव) ।

[४६]

अब कहु रांम कवन गति मोरी ।
तजिले बनारस मति भई थोरी ।। टेक ।।
ज्यौं जल छोड़ि बाहरि भयौ मींनां । पुरुब जनम हौं तप का हींनां ।। १ ।।
सगल जनम सिव पुरी गंवाया । मरती बार मगहर उठि आया ।। २ ।।
बहुत बरिस तपु कीया कासी । मरनु भया मगहर की बासी ।। ३ ।।
कासी मगहर सम बीचारी । ओछी भगति कैसै उतरसि पारी ।। ४ ।।
कहु (कह ?) गुर गजि सिव (सो ?) सभ को (-इ) जांनैं ।
मुआ कबीर रमत स्रीरांमैं ।। ५ ।।

[४७]

अजहूं मिलै कैसै दरसन तोरा ।
बिन दरसन मन मांनैं क्यौं मोरा ।। टेक ।।
हमहिं कुसेवग कि तुमहिं अयांनां[१] । दुह मैं दोस काहि भगवांनां[२] ।
तुम्ह कहियतु त्रिभुवन पति राजा । मन बंछित सब पुरवन काजा ।।
कहै कबीर हरि दरस दिखावौ । हमहिं बुलावौ कै तुम चलि आवौ ।। ३ ।।

---

[४६]

गु० गौड़ी १५, बी० १०८, बीभ० ४८ (अंशतः)—
बी० में इस पद का पाठ निम्नलिखित है—
अब हम भइली बहुरि (बीभ० बाहर) जल मीना । पुरब जनम तप का मद कीन्हां ।। (तुल० पं०३)
तहिया मैं अछलौं मन वैरागी । तेजलौं मैं लोग कुटुम रांम लागी ।।
तेजलौं कासी मति भई (बीभ० भैली) भोरी । प्राननाथ कहु का गति मोरी ।। (तुल० पंक्ति १, २)
हमहिं कुसेवक कि तुमहिं अयाना । दुइ महिं दोष काहि भगवाना ।। (तुल० पद ४७ की पंक्ति ३)
हम चलि अइली तोहरी सरना । कतहुं न देखहुं हरि जी के चरना ।।
हम चलि अइली तोहरे पासा (पुन० दे० ऊपर की पंक्ति) । दास कबीर भल कैल निरासा ।।

[बी० की तुलना में गु० का पाठ अपेक्षाकृत मूल के अधिक निकट का सिद्ध हुआ है, अतः गु० का ही पाठ यहाँ स्वीकृत किया गया है। बी० के पाठ में अन्य कठिनाइयाँ भी हैं (दे० अंतिम दो पंक्तियों में पुनरावृत्ति) । गु० के पाठ में कोई विशेष आपत्ति-जनक बात नहीं, केवल उसकी अंतिम पंक्ति के प्रथम चरण का पाठ कुछ विकृत ज्ञात होता है। कोई अन्य पाठांतर प्रस्तुत न रहने से इसका सुधार अभी नहीं हो सका । मेरा अनुमान है कि गु० का यह विकृत पाठ उर्दू मूल के कारण आया है।]

[४७]

दा० भैरूं ३४, नि० भैरूं ३३, बी० १०८ (अंशतः)—
१. दा० नि० अजांनां । २. दा० नि० कहौ किन रांमां (तुकहीन) ।
[बी० में उक्त पद की केवल तृतीय पंक्ति मिलती है किन्तु यहाँ इस पंक्ति के प्रसङ्गानुकूल बैठ जाने के कारण दा० नि० का पूरा पद मूल रूप में स्वीकृत कर लिया गया है।]

(५) परचा

[४८]

[1]ता[2] मन कौं[3] खोजहु[4] रे भाई।
तन छूटे मन कहां समाई ॥ टेक ॥
सनक सनंदन[5] जैदेउ नांमां। भगति करी मन उनहुं न जांनां[6] ॥ १ ॥
सिव बिरंचि नारद मुनि ग्यांनीं। मन की गति उनहूं नहिं जांनीं[7] ॥ २ ॥
ध्रू प्रहलाद बिभीखन सेखा[8]। तन भीतर मन उनहूं न पेखा[9] ॥ ३ ॥
ता[10] मन का कोई जांनैं न भेउ।[11] ता मनि[12] लीन[13] भया सुखदेउ ॥ ४ ॥
गोरख भरथरी गोपीचंदा। ता मन सौं मिलि करैं अनंदा[14] ॥ ५ ॥[15]
अकल[16] निरंजन सकल सरीरा[17]। ता मन सौं मिलि रह्यौ कबीरा[18] ॥ ६ ॥

[४९]

हरि ठग जगत[1] ठगौरी लाई।
हरि के बियोग कैसे जियौं मेरी माई[2] ॥ टेक ॥

---

[४८]

दा० गौड़ी ३३, नि० गौड़ी ३७, गु० गउड़ी ३६, बी० ९२, स० ४७-१—
१. गु० में पद के आरंभ की अतिरिक्त पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—
सुख मांगत दुख आगे आवै। सो सुख हमहि न मांगिआ भावै ॥
बिखिआ अजहुं सुरति सुख आसा। कैसे होइहै राजा राम निवासा ॥
इस सुख तें सिव ब्रह्म डराना। सो सुख हमहु साच करि जाना ॥
[यहाँ इन पंक्तियों का कोई प्रसङ्ग नहीं। जान पड़ता है 'गुरु ग्रंथ साहब' के संकलनकर्त्ता ने भूल से दूसरे पद की कुछ पंक्तियों को यहाँ सम्मिलित कर लिया है।]।
२. गु० इस। ३. दा० कूं, बीभ० के। ४. बी० चीन्हहु, बीभ० ढूंढ़हु। ५. गु० गुर प्रसादी। ६. गु० भगति कै प्रेमि इनही है जाना, बी० भक्ति हेतु मन उनहूं न जाना। ७. बी० अंबुरीख प्रहलाद (तुल० ऊपर पंक्ति ४-१) सुदामा। भक्ति सही मन उनहूं न जाना ॥ (पुन० तुल० बी० में ऊपर की पंक्ति का द्वितीय चरण)। गु० में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर निम्नलिखित अतिरिक्त पंक्तियाँ हैं—
इस मन कउ नहीं आवन जाना। जिसका भरमु गइआ तिनि साचु पछाना ॥
इस मन कउ रूप न रेखिआ काई। हुकमे होइआ हुकमु बूझि समाई ॥
८. गु० सनकादिक नारद मुनि सेखा, बी० सिव सनकादिक (पुनरुक्ति-तुल० पंक्ति २-१) नारद सेखा। ९. गु० तिन (उर्दू मूल) भी तन (हिन्दी मूल) महि मनु नहीं पेखा, बी० तन के भितर मन उनहूं न पेखा। १०. बी० जा, गु० इस। ११. गु० जानै भेव। १२. दा० नि० स० रंचक, गु० इह मनि। १३. बी० मगन। १४. बी० ता मन मिलि भिलि कियौ अनंदा। १५. गु० में यह पंक्ति नहीं है। १६. बी० एकल। १७. गु० जीव एकु अरु सगल सरीरा। १८. गु० इस मन कउ रवि रहे कबीरा, बी० तामहं भ्रमि भ्रमि रहल कबीरा।

[४९]

दा० गौड़ी ८२, नि० गौड़ी ९२, गु० गौड़ी ३९, बी० ३६, शब्द० (२) मिश्रित १४—
१ दा० ग० जग कौ ठगत। २. बी० कैसे जियहु रे भाई (हिंदी मूल), शब्द० कस जीवैं भाई

कौंन पुरिख को काकी नारी[३] । अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी[४] ॥ १ ॥
कौंन पूत को काकौ बाप ।[५] कौंन मरै को सहै[६] संताप ॥ २ ॥[७]
कहै कबीर ठग सौं मन मांनां । गई ठगौरी ठग पहिचांनां ॥ ३ ॥

[५०]

अब[१] मोंहि नाचिबौ[२] न आवै ।
मेरौ मन मंदरिया[३] न बजावै ॥ टेक ॥
ऊभर था सो सूभर भरिया[४] त्रिसनां गागरि फूटी ।[५]
कांम चोलनां भया पुरांनां गया भरम सभ छूटी[६] ॥ १ ॥
जे बहु रूप किए ते कीए[७] अब बहु[८] रूप न होई ।
थाकी सौंज संग के बिछुरे[९] रांम नांम बसि होई[१०] ॥ २ ॥
जे थे सचल अचल ह्वै थाके[११] चूके[१२] बाद बिबादा[१३] ।
कहै[१४] कबीर मैं पूरा पाया भया रांम परसादा[१३] ॥ ३ ॥[१५]

[५१]

है कोई[१] संत सहज सुख अंतरि[२] जाकौं जप तप देउं दलाली ।[३]
एक बूंद भरि देइ रांम रस[४] ज्यूं मदु[५] देइ कलाली ॥ टेक ॥

(हिन्दी मूल)। ३. बी० शबे० को काको पुरुष कवन काकी नारी, गु० कउन को पुरख कउन की नारी। ४. बी० शबे० अकथ कथा जम दृष्टि (शबे० दुष्ट) पसारी, गु० इआ तत लेहु सरीर बिचारी। ५. गु० कउन को पूतु पिता को काको, बी० शबे० को काको पुत्र कौन काको बाप। ६. गु० देइ, दा० नि० करै। ७. बी० शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : ठगि ठगि मूल सबन को लीन्हा। राम ठगौरी काहु न चीन्हा ॥

[५०]

दा० नि० सोरठि २०, गु० आसा २८, स० ५३-१—
१. दा० नि० ताथें। २. गु० नाचनों। ३. दा० नि० स० मंदला। ४. गु० कामु (पुन० आगे : कांम चोलना) क्रोध मइआ लै जारी। ५. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त--
हरि चिंतत मेरौ मंदला भीनौं भरम भोइन गयौ छूटी (तुल० गयो भरम सब छूटी) ।
ब्रह्म अगिनि मैं जरी जु ममिता पाखंड अरु अभिमांनां।
६. दा० नि० स० मों पै होइ न आंनां। ७. गु० जउ मैं रूप किए बहुतेरे। ८. गु० अब पुनि। ९. गु० तागा तंतु साजु सभ थाका। १०. दा० नि० स० मसि धोई (उद्० मूल)। ११. गु० सरब भूत एकै करि जानिआ। १२. दा० नि० स० करतै। १३. दा० नि० बिबादं-परसादं। १४. गु० कहि। १५. गु० में ऊपर की पाँचवीं तथा छठी पंक्तियाँ पद के आरंभ में हैं आती हैं।

[५१]

दा० रांमकली ३., नि० रांमकली ४, गु० रामकली १, स० ५८-३—
१. गु० कोई है रे। २. दा० नि० स० उपजै। ३. गु० में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'रे' लगा है। ४. गु० एक बंद भरि तनु मनु देवउ। ५. दा० नि० स० भरि

काया कलाली[६] लाहनि मेलेउं[७] गुरु का सबद गुड़ कीन्हां[८] ।
त्रिसनां कांम क्रोध मद मतसर[९] काटि काटि कसि दीन्हां[१०] ।। १ ।।
भवन चतुरदस भाठी पुरई[११] ब्रह्म अगिनि परजारी[१२] ।
मुद्रा मदक[१३] सहज धुनि लागी[१४] सुखमन पोतनहारी[१५] ।। २ ।।
नीझर झरै अमीरस निकसै[१६] इहिं मदि रावल छाका[१७] ।
कहै कबीर यहु बास बिकट अति ग्यांन गुरू लै बांका[१८] ।। ३ ।।

[५२]

संतौ भाई[१] आई ग्यांन की आंधी रे ।[२]
भ्रम की टाटी सबै उड़ांनीं[३] माया रहै न[४] बांधी रे ।। टेक ।।
दुचिते की[५] दोइ[६] थूंनि गिरांनीं [७]मोह बलेंडा[८] टूटा[९] ।
त्रिसनां छांनि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा[१०] फूटा ।। १ ।।
आंधी पाछैं जो[११] जल बरसै[१२] तिहिं तेरा जन भींनां[१३] ।
कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीनां[१४] (—न्हां ?) ।। २ ।।

[५३]

मैं[१] सबहिन्ह[२] मांहि औरनि (न ?) मैं हूं सब[३]
मेरी[४] बिलगि बिलगि बिलगाई हो ।
कोई कहौ कबीर कोई कहौ रांम राई हो[५] ।। टेक ।।
नां हम बार बूढ़ नांहीं हम[६] नां हमरै[७] चिलकाई हो ।
पठएं न जाउं अनवा[८] (?) नहिं आऊं सहजि रहूं हुनियाई[९] हो ।। १ ।।

---

६. गु० कलालनि । ७. दा० नि० स० करिहूं । ८. गु० कीनु रे । ९. दा० नि० स० कांम क्रोध मोह मद मंछर १०. गु० दीनु रे । ११. गु० तन जारी । १३. दा० नि० स० मूंदे मदन । १४. दा० नि० स० उपजी । १५. गु० पोचनहारी रे । १६. गु० निझर धार चुअै अति निरमल । १७. गु० इह रस मनुआ रातो रे । १८. गु० कहि कबीर सगले मद छूछे इहै महारसु साचो रे (तुकहीन-तुल० 'रातो रे'] ।

[५२]

दा० गौड़ी १६, नि० गौड़ी १९, गु० गउड़ी ४३, स० ७१-१—
१. गु० देखौ भाई । २. गु० गिआन की आई आंधी । ३. गु० सभै उड़ानी भ्रम की टाटी । ४. गु० रहै न माया । ५. दा० नि० स० हित चित की । ६. दा० नि० स० द्वै । ७. गु० डिगानों । ८. दा० स० बलींडा (उर्दू मूल) । ९. दा० नि० स० टूटा । १०. दा० नि० स० कुबधि का भांडा । ११. नि० हरि । १२. दा० नि० स० बूठा (राज० मूल) । १३. दा० नि० स० प्रेम हरीजन भींनां । १४. दा० नि० स० कहै कबीर भांन के प्रगटें उदित भया तम खीना (?) ।

[५३]

दा० गौड़ी ५०, नि० गौड़ी ५४, स० ४७-२, बी० कहरा १०—
१. बी० हौं । २. दा० सबनि मैं, बी० सभनी मैं । ३. बी० हौं ना हौ । ४. बी० मोहिं । ५. बी० में यह पंक्ति नहीं है । ६. बी० नां मैं बालक बूढ़ौ नांहीं । ७. बी० मोरे । ८. दा० नि० स० अरवा (कैथी मूल), दा२ रवा, बी० आने [स० का 'अरवा' तथा दा० का 'रवा' पाठ निरर्थक ज्ञात होते हैं । ऐसा ज्ञात होता है कि मूल पाठ 'अनवा' था जो कैथी लिपि की विकृति के कारण स० में आने के पूर्व 'अरवा' हो गया ।] । ९. दा० नि० स० हरिआई हो ।

ओढ़न हमरै[७] एक पछेवरा लोक बोलैं इकताई[१०] हो ।[११]
जोलहै तनि बुनि पांन[१२] न पावल[१३] फारि[१४] बिनैं[१५] दस ठांई हो ।। २ ।।[१६]
त्रिगुण रहित फल रंमि हम राखल तब हमरौ नांउं रांम राई हो[१७] ।
जग मैं देखौं जग न देखै मोंहि इहि कबीर किछु पाई हो[१८] ।। ३ ।।

[५४]

रांम मोंहि[१] तारि कहां लै जइहौ ।[२]
सो बैकुंठ कहौ धौं कैसा करि पसाउ मोंहि दइहौ[३] ।। टेक ।।
जउ तुम मोकौं दूरि करत हौ[४] तौ मोंहि[५] मुकुति बतावहु ।
एकमेक रमि रह्यौ सभनि मैं[६] तौ काहे[७] भरमावहु ।। १ ।।
तारन तरनु[८] तबै[९] लगि[१०] कहिए जब लगि[१०] तत्त न जांनां[११] ।
एक रांम देखा सबहिन मैं[१२] कहै[१३] कबीर मन मांनां[१४] ।। २ ।।

[५५]

रांम रसु पीआ रे ।[१]
तातैं[२] बिसरि गए रस और ।। टेक ।।
रे मन तेरौ कोइ नहीं खैंचि लेइ[३] जिनि भारु ।
बिरखि बसेरौ पंखि कौ तैसौ यहु संसारु[४] ।। १ ।।

---

१०. दा२ अकुताई । ११. बीं० में इसके बाद अतिरिक्त—
एक निरंतर अंतर नाहीं जौं ससि घट जल झांई हो ।
एक समान कोइ समुझत नाहीं जरा मरन भ्रम जाई हो ।।
रैनि दिवस मैं तहंवां नाहीं नारि पुरुष समताई हो ।
१२. दा२ बान (उर्दू मूल) । १३. बी० जोलहा तान बान नहिं जानै । १४. बी० फाटि (हिन्दी मूल) । १५. दा० नि० स० बुनी । १६ बी० इसके बाद अतिरिक्तः गुरु परताप जिन्हैं जस भाखौं जन बिरले सुधि पाई हो । अनंत कोटि मन हीरा बींधौ फिटकी मोल न पाई हो ।। १७. बी० तिरविधि रहौं सभनि मां बरतौं नाम मोर राम राई हो । १८. बी० सुरनर मुनि जाके खोज परे हैं किछु किछु कबीरन्ह पाई हो । [बी० का क्रम यथापंक्ति १,२–५–३–७–४–६–८ है ।]

[५४]

दा० गौड़ी ५२, नि० गौड़ी ५६, गु० मारू ५—
१. गु० मोकउ । २. गु० जइहै । ३. गु० सोघउ मुकति कहा देउ कैसी करि प्रसादु मोहि पाई- है । ४. दा० नि० जे मेरे जिव दोइ जानत है । ५. गु० तउ तुम (पुन०) । ६. गु० एक अनेक होइ रहिओ सगल महि । ७. गु० अब कैसे । ८. दा० नि० तारण तिरण ९. दा० नि० जबै । १०. गु० लगु । ११. गु० जानिआ । १२. गु० अब तउ बिमल भए घट ही महि । १३. गु० कहि । १४. गु० मानिआ । [गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।]

[५५]

दा० गौड़ी ७५, नि० गौड़ी ७८, गु० गउड़ी ६४—
१. दा० नि० पाइया रे । २. गु० जिहि रस । ३. गु० खिंचि लेइ, नि० खैंचि लेइ । ४. दा०

औरु मुएं[५] क्या रोइग्रै जउ आपा थिरु न रहाइ ।
जो उपजा[६] सो बिनसिहै दुख करि रोवै बलाइ[७] ॥ २ ॥
जहं की उपजी तहं रची[८] पीवत मरदन लाग ।
कहै[९] कबीर चित चेतिआ रांम सुमिरि[१०] बैराग ॥ ३ ॥

[५६]

अवधू मेरा मनु मतिवारा ।
उनमनि चढ़ा मगन रस पीवै[१] त्रिभुवन भया उजिआरा ।
गुड़ करि ग्यांन ध्यांन करि महुआ भौ भाठी मन धारा[२] ।
सुखमनि नारी सहज समांनीं पीवै[३] पीवनहारा ॥ १ ॥
दोइ पुर[४] जोरि रसाई[५] भाठी चुआ[६] महा रसु भारी ।
कांमु क्रोध दोइ किए बलीता[७] छूटि गई संसारी ॥ २ ॥[८]
सहज सुन्नि मैं जिन रस चाखा[९] सतिगुर तैं सुधि पाई ।
दासु कबीर तासु मद माता[१०] उछकि न कबहूं जाई ॥ ३ ॥

[५७]

बहुरि हम काहे कौ आवहिंगे ।
बिछुरै पंच तत्त की रचनां तब हम रांमहिं पावहिंगे ॥ टेक ॥
पिरथी का गुन पांनीं सोखा पांनीं तेज मिलावहिंगे ।[१]
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि सहज समाधि लगावहिंगे ॥ १ ॥[२]

नि० ऐसा माया जाल । ५. दा० नि० मरत । ६. दा० नि० उपज्या । ७. दा० ताथैं दुख करि मरै बलाइ । ८. दा० नि० जहां उपज्या तहां फिरि रच्या रे । ९. गु० कहि । १०. गु० सिमरि । ११. गु० में उक्त पद की पहली पंक्ति तीसरी के बाद आती है ।

[५६]

दा० गौड़ी ७२, नि० गौड़ी ७५, गु० रामकली २—
१. गु० उनमद चढ़ा मदन रसु (?) चाखिआ । २. दा० नि० भव भाठी करि भारा (पुन०) । ३. दा३ पीवैगा । ४. दा० नि० दोइ पुड़ । ५. दा० नि० चिगाई । ६. गु० पीउ ७. गु० जलेता (?) । ८. दा० नि० में इसके बाद की दोनों पंक्तियों के स्थान पर है—

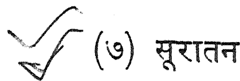
सुंनि मंडल मैं मंदला बाजै तहां मेरा मन नाचै ।
गुरु प्रसादि अमृत फल चाख्या सहजि सुखमनां काछै (पुन० पंक्ति ४.१) ।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यौ तनकी तपति बुझानीं ।
कहै कबीर भव बंधन छूटै जोतिहिं जोति समांनीं ।

[किंतु स्वीकृत पाठ की अंतिम दोनों पंक्तियाँ दा० गौड़ी ७४ तथा नि० गौड़ी ७७ में अंतिम दो पंक्तियों के रूप में मिल जाती हैं ।] । ९. गु० प्रगट प्रगास ग्यांन गुर गंमित [किंतु आगे 'सतगुरु' शब्द स्वीकृत होने से यहाँ गु० के पाठ में पुनरुक्ति दोष आ जाता है ।] । १०. दा० नि० दास कबीर इहीं रस माता ।

[५७]

दा० गौड़ी १५०, नि० गौड़ी १५६, गु० मारू ४—
१-२ दा० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं ।

जैसैं बहु कंचन के भूखन एकहिं घालि[3] तवावहिंगे[4] ।
अैसैं हम लोक बेद के बिछुरें[5] सुन्निहिं मांहि समावहिंगे ॥ २ ॥
जैसैं जलहिं तरंग तरंगिनीं अैसैं हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर स्वांमीं सुखसागर[6] हंसहिं हंस मिलावहिंगे ॥ ३ ॥



(७) सूरातन

[५८]

डगमग छांड़ि दे[1] मन बौरा[2] ।
अब[3] तौ जरें मरें[4] बनि आवै[5] लीन्हौं हाथि सिंधौरा[6] ॥ टेक ॥[7]
होइ निसंक मगन होइ नाचै लोभ मोह भ्रम[8] छांड़ै[9] ।

---

३. दा३ गालि, दा३ धाइ । ४. दा२ तिवावहिंगे (उर्दू मूल) । ५. दा३ बेद तें न्यारे । ६. दा२ सुख संगम । गु० में इस पद का पाठ है—

उदक समुंद सलल (पुन० दे० 'उदक') की साखिआ नदी तरंग समावहिंगे । [तुल० पंक्ति ५]
सुंनहि सुंनु मिलिआ समदरसी पवन रूप होइ जावहिंगे ।
बहुरि हम काहे आवहिंगे [तुल० मूल पद की पंक्ति १] ।
आवन जाना हुकुम तिसै का हुकमै बूझि समावहिंगे ॥१॥
जब चूकै पंच धातु की रचना अैसे भरमु चुकावहिंगे [तुल० मूल की पंक्ति २] ।
दरसनु छोड़ि भए समदरसी [पुन० तुल० पंक्ति २] एको नामु धिआवहिंगे ॥
जित हम लाए तित ही लागे तैसे करम कमावहिंगे ।
हरि जी क्रिपा करै जउ अपनी तौ गुर कै सबदि समावहिंगे ॥
जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जनमु न होई ।
कहु कबीर जो नामि समाने सुंन रहिआ लिव सोई [तुल० मूल पद पंक्ति ६] ।

सिद्धान्ततः दा० नि० की तुलना में गु० का पाठ ही प्रधान रूप से स्वीकृत करना चाहिए, किन्तु यहाँ गु० के पाठ में—

१–पुनरावृत्तियाँ मिलती हैं (जिनका उल्लेख ऊपर यथास्थान किया गया है);
२–अर्थ संबंधी उलझनें हैं (विशेषतया प्रथम पंक्ति में);
३–अंतिम दोनों पंक्तियों का तुक अचानक परिवर्तित हो गया है ।

इसके विपरीत दा० नि० के पाठ में इस प्रकार की उलझनें नहीं हैं, अतः यहाँ वही पाठ स्वीकृत किया गया है ।

[५८]

दा० गौड़ी १२१, नि० गौड़ी १३२, स० ६१-१, गु० गउड़ी ६८, शबे० (१) चिता० उप० २२ शक० गौरी ८—

१. गु० रे । २. शबे० छांड़ि दे मन बौरा डगमग । ३. शक० में इसके पूर्व अतिरिक्त : गृह तें निकरी सती होन को देखन को जग दौरा । ४. दा० नि० स० बरं, दा३ बरयां । ५. गु० सिधि पाइऔ । ६. गु० संधउरा (उर्दू मूल), दा३ संदौरा (उर्दू मूल) । ७. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : प्रीति प्रतीति करौ दृढ़ गुर की सुनो शब्द घनघोरा । ८. दा० नि० स० छांड़ौ । ९. गु० मन रे छांड़हु भरमु प्रगट होइ नाचहु इआ माइआ के डांडे ।

सूरा कहा मरन तैं डरपै[१०] सती न संचै[११] भांड़े ॥ १॥
लोक बेद[१२] कुल की मरजादा इहै गले मैं फांसी[१३] ।[१५]
आधा चलि करि पाछैं फिरिहौ[१४] होइ जगत मैं हांसी ॥ २ ॥[१६]
यहु[१७] संसार सकल[१८] है मैला रांम कहैं[१९] ते सूचा[२०] ।
कहै कबीर नांउं नहिं छांड़ौ[२१] गिरत परत चढ़ि ऊंचा[२२] ॥ ३ ॥

[५६]

भाई रे अनीं लड़ै[१] सोई सूरा ।
दोइ दल बिचि खेलै पूरा[२] ॥ टेक ॥

जब बजै जुझाउर बाजा[३] । तब कायर उठि उठि भाजा[४] ॥ १ ॥
कोई सूर लड़ै मैदांनां[५] । जिन मारि किया घमसांनां[६] ॥ २ ॥[७]
जहं बांधि सकल हथियारा[८] । गुर ग्यांन कौ खड्ग सम्हारा[९] ॥ ३ ॥
जब बस कियौ[१०] पांचौ थांनां । तब रांम भया मिहरबांनां[११] ॥ ४ ॥
मन मारि अगमपुर लीया[१२] । चित्रगुप्त परे[१३] डेरा कीया ॥ ५ ॥[१४]
गढ़ फिरि गई रांम दोहाई । कबीरा अबिगति की सरनाई[१५] ॥ ६ ॥[१६]

---

१० गु० सूर कि सनमुख रन तें डरपै । ११. गु० सांचै, दा२ स० सैंतै (उर्दू मूल), शक० संशय (उर्दू मूल)। १२. शबे० शक० लोक लाज । १३. दा० नि० स० पासी । १४. शबे० शक० आगे ह्वै पग पाछे धरिहौ । १५-१६. दा३ तथा गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं । १७. शबे० तथा शक० में इसके पूर्व अतिरिक्त : अगिन जरे ना सती कहावै रन जूझे नहिं सूरा । बिरह अगिन अंतर में जारै तब पावै पद पूरा ॥ १८. शबे० शक० जग (पुन० तुल० पहले का 'संसार')। १९. शक० शबे० नाम गहै । २०. गु० काम क्रोध माइआ के लीने इआ बिधि जगत बिगूता (तुकहीन-तुल० आगे 'ऊँचा')। २१. गु० राजा राम न छोड़उ, शबे० भक्ति मत छांड़ो, शक० नर भक्ति न छांड़ौ २२. गु० सगल ऊच ते ऊचा ।

[५६]

नि० सोरठि ६२, शबे० (३) सूरमा ३, शक० सायरी ११—
१. नि० अर्णीं मंड्या, शबे० ऐन (उर्दू मूल ?) लड़ै । २. शबे० शक० में यह पंक्ति नहीं है । ३. नि० बाजा जुझाऊ बागा । ४. नि० सुंगि सुंगि भागा । ५. नि० मंड्या चौगांनां, शक० लड़े मैदाना । ६. नि० मन मारि करै घमसांनां (पुन तुल० पंक्ति ६.-१)। ७. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : जहां तीर तुपक नहिं छूटे । तहां शब्दन सो गढ़ टूटे ॥ शक० में यह पंक्ति भी है और इसके अतिरिक्त एक पंक्ति और है : गढ़ भीतर कोई हाकिम होई । गढ़ जीति सकै नहीं कोई ॥ ८. नि० मनवा ने बाग उठाई, शक० जिन बांधे पांचों हथियारा । ९. नि० संबाली (तुकहीन) १०. नि० शक० जब मार्या (शक० मारे)। ११. शबे० शक० जहं साहिब है मिहरबाना । १२. नि० जब गढ़ लीया, शक० अगम गढ़ लीन्हां । १३. नि० जत सत मैं (उर्दू मूल), शक० चित मित पर । १४. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त—
जहं नाहिं जनम अरु मरना । जम आगे न लेखा भरना ॥ जमदूत है तेरा बैरी । का सोवै नींद घनेरी॥
शक० में भी यह पंक्तियाँ किंचित् पाठांतर के साथ ऊपर की प्रथम पंक्ति के बाद मिलती हैं । १५. शक० शबे० जहं बजै कबीर को डंका । तहं लूटि लियौ गढ़ बंका ॥ १६. शबे० का क्रम यथापंक्ति १-६-४-५-२-३-७ है ।

(८) उपदेस चितावनीं

[६०]

प्रांनीं[१] काहे कै[२] लोभ लागे[३] रतन जनम खोयौ[४] ।
पुरुब जनमि करम भूमि बीज नांहीं बोयौ[५] ॥ टेक ॥
बूंद तैं[६] जिनि पिंडु कीया[७] अगिनि कुंड रहाया ।
दस मास माता उदरि राखा[८] बहुरि लागी[९] माया ॥ १ ॥[१०]
बारिक तैं[११] बिरिध भया[१२] होनीं सो हूआ[१३] ।
जब जमु आइ झोंट पकरै तबहिं काहे रोआ[१४] ॥ २ ॥
जीवनैं की आस नांहीं[१५] जम निहारै सांसा[१६] ।
बाजीगरी[१७] संसार कबीरा चेति[१८] ढारि पासा ॥ ३ ॥[१९]

[६१]

बोलनां का कहिए रे भाई[१] ।
बोलत बोलत[२] तत्त नसाई[३] ॥ टेक ॥
बोलत बोलत बढ़ै[४] बिकारा । बिनु बोलें क्या करहि बिचारा[५] ॥ १ ॥
संत मिलहिं[६] कछु सुनिऐ कहिऐ[७] । मिलहिं असंत मस्टि[८] करि रहिऐ[९] ॥ २ ॥
ग्यांनीं सौं[१०] बोलें उपकारी[११] । मूरिख सौं बोलें[१२] झखमारी ॥ ३ ॥

---

[६०]

दा० आसावरी ३९, नि० आसावरी ३३, गु० आसा ३३, बी० ८९, स० ६७-४—
१. बी० सुभागे । २. गु० काहे कउ, बी० केहि कारन । ३. दा० नि० स० लागि । ४० बी० खोए, गु० खोइआ । ५. दा० नि० स० बहुरि हीरा हाथि न आवै रांम बिना रोयौ, बी० पूरब जनमि भूमि कारन बीज काहे को बोए । ६. दा० नि० जल बूंद थैं । ७. दा० नि० बांध्या, दा२ स० उपाया, बी० संजोयो, बीभ० साजो । ८. बी० माता के गरभे । ९. बी० लागलि । १०. दा० नि० स० में इसके बाद की दो पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु गु० बी० में हैं । ११. बी० बालक हूते । १२. बी० बृद्ध हुआ है (बीभ० हूआ) । १३. बी० होनहार सो हूआ, बीभ० होनी रहा से हुआ । १४. बी० जब जमु आइहैं बांधि चलइहैं नैन भरि भरि रोया । १५. दा० नि० स० एक पल जीवन की आस नांहीं, बी० जीवन की जनि राखहु आसा । १६. बी० काल घेरे हैं (बीभ० घेरे है) स्वासा । १७. बी० बाजी है, दा० नि० स० बाजीगर । १८. दा नि० स० जांनि, बी० चित चेति । १९. गु० में उक्त पद की प्रथम दो पंक्तियाँ उसकी चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[६१]

दा० गौड़ी ६७, नि० गौड़ी ७०, गु० गौंड १, बी० र० ७०, स० ९३-२—
१. गु० बाबा बोलना किआ कहीऐ, बी० बोलना कासों बोलिए रे भाई । २. दा० ३ बहु बोल्यां थैं, बी० बोलत ही सभ । ३. गु० जैसे राम नाम रवि रहीऐ । ४. गु० बढ़हि, बी० बाढ़ै । ५. दा० नि० स० बिन बोल्यां क्यूं होइ बिचारा, बी० सो बोलिए जौ परै बिचारा । ६. बी० मिलहीं संत । ७. दा० नि० स० किछु कहिए कहिए, बी० बचन दुइ कहिए । ८. दा० नि० स० मुष्टि (उर्दू मूल), बी० मौन । ९. बी० होय रहिए । १०. गु० संतन सिउ, बी० पंडित सों । ११. दा० नि० स० बोल्यां हितकारी, बी० बोलना उपकारी । १२. दा० नि० स० बोल्यां, नि० रहिए ।

कहै कबीर आधा घट बोलै[१३]। भरा[१४] होइ तौ कबहुं न[१५] बोलै[१६] ॥ ४ ॥[१७]

[६२]

झूठे तन कौं क्या गरबावै[१] ।
मरै तौ पल भरि रहन न पावै[२] ॥ टेक ॥
खीर खांड घृत पिंड संवारा । प्रांन गएं लै बाहरि जारा[३] ॥ १ ॥[४]
जिहिं सिरि रचि रचि बांधत[५] पागा । सो सिरु चंचु संवारहिं कागा[६] ॥ २ ॥[७]
हाड़ जरै जैसै लकड़ी झूरी[८] । केस जरै जैसै त्रिन कै कूरी ॥ ३ ॥[९]
[१०]कहै कबीर नर अजहुं न जागै । जम का डंड मूंड़ महिं लागै[११] ॥ ४ ॥

[६३]

भजि गोबिंद[१] भूलि[२] जनि जाहु ।
मनिखा[३] जनम कौ एही लाहु ॥ टेक ॥
गुर सेवा करि[४] भगति कमाई । जौ तैं[५] मनिखा देहीं पाई ॥ १ ॥
या देही कौं लोचैं[६] देवा । सो देहीं करि[७] हरि की सेवा ॥ २ ॥

---

१३. बी० अर्ध घट डोलै (?), गु० छूछा घट बोलै । १४. बी० पूरा । १५. दा० नि० स० मुखां न, बी० विचार लै । १६. गु० डोलै । १७. गु० में पंक्तियों का क्रम यथापंक्ति ३-१-४-२-५ है ।

[६२]

दा० गौड़ी ९३, नि० गौड़ी ९७, गु० गउड़ी ३५ तथा गौंड २, बी० ९९, शबे० (२) चिता० १३—
१-२. गु० इसु तन धन को किआ गरबईआ । राम नाम काहे न द्रिड़ीआ ॥ ; बी० तथा शबे० में इन पंक्तियों का पाठ है : अब कहां चलेउ अकेले मीता । उठहु न करहु घरहु की चिंता ॥ ३. बी० शबे० सो तन लै बाहर करि डारा । ४. गु० में यह पंक्ति नहीं मिलती । ५. शबे० बंधिसु । ६. बी० शबे० सो सिर रतन बिगारैं (शबे० विडारैं) कागा । ७. दा० नि० में यह पंक्ति यहाँ नहीं मिलती, प्रत्युत सोरठि ३४ में अतिरिक्त रूप से मिलती है । तुल० दा० सोरठि ३४-४ यथाः जा सिरि रचि रचि बांधत पागा । ता सिरि चंच संवारत कागा ॥ ८. शबे० सूखी लकरी । ९. दा० नि० में इसके स्थान पर अतिरिक्त : चोवा चंदन चरचत अंगा । सो तन जरै काठ के संगा ॥
किन्तु तुल० दा० नि० सोरठि ३४-३ तथा गु० गउड़ी ११-१ यथा—
चोवा चंदन चरचत (गु० मरदन) अंगा । सो तन जरै काठ के संगा ॥
गु० के समानान्तर साक्ष्य के कारण यह पंक्ति वहीं के लिए प्रमाणित मानी जायगी । यहाँ दा० नि० में वह अनावश्यक रूप से दुबारा आ गई है । १०. बी० तथा शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—
आवत संग न जात संगातं । काह भए दल बांधल हाथी ॥
माया के रस लेन न पाया । अंतर जम बिलार होय धाया ॥
शबे० में प्रथम पंक्ति की पुनरावृत्ति [तुल० दा० नि० गौड़ी ९८-५, गु० भैरउ २-३, तथा शबे० (१) चिता० उप० ४४-६ : पाठ शब्दशः यही ।]। ११. बी० जम का मुगदर मंझ सिर लागा, शबे० जम का मुगरा बरसन लागा ।

[६३]

दा० भैरूं २४, नि० भैरूं २२, गु० भैरउ ९, स० ६७-५—
१. दा१ भजि गोब्यंद (राज० मूल), गु० भजहु गोबिंद । २. गु० मत । ३. गु० मानस, दा१ मनिसा । ४. गु० ते । ५. गु० तब इह । ६. गु० सिमरहि । ७. गु० भजु ।

जब लगि जुरा[८] रोग नहिं आया । जब लगि काल ग्रसै[९] नहिं काया ॥ ३ ॥
जब लगि हींन पड़ै[१०] नहिं बांनीं । तब लगि भजि मन सारंगपांनीं[११] ॥ ४ ॥
अब नहिं[१२] भजसि भजसि कब भाई । आवै[१३] अंत भज्यौ नहिं जाई[१४] ॥ ५ ॥
जे किछु करहि सोई तत सार[१५] । फिरि पछिताहु न पावहु पार[१६] ॥ ६ ॥
सेवग सो जो लागै[१७] सेव । तिनहीं पाया निरंजन देव ॥ ७ ॥
गुर मिलि जिनिके[१८] खुले कपाट । बहुरि न आवै जोनीं बाट ॥ ८ ॥
यहु[१९] तेरा औसर यहु[१९] तेरी बार । घट ही भीतरि देखु बिचारि[२०] ॥ ९ ॥
कहै[२१] कबीर जीति भावै[२२] हारि । बहु बिधि कह्यौं पुकारि पुकारि ॥ १० ॥[२३]

[६४]

जिहि नर[१] रांम भगति नहिं साधी ।
सो[२] जनमत कस न मुओ अपराधी ॥ टेक ॥

जिहि कुल पूत न ग्यांन बिचारी । वाकी[३] बिधवा कस न[४] भई महतारी ॥ १ ॥[५]
मुचि मुचि गरभ[६] भई किन बांझ[७] । बुड़भुज[८] रूप फिरै कलि मांझ[९] ॥ २ ॥
कहै[१०] कबीर नर[११] सुंदर सरूप । रांम भगति बिनु कुचिल कुरूप[१२] ॥ ३ ॥

[६५]

मन रे अहरखि [मन आहर कहं ?] बाद न कीजै[१] ।
अपनां सुक्रितु भरि भरि लीजै[२] ॥ टेक ॥

---

८. गु० जरा । ९. गु० ग्रसी (उर्दू मूल) । १०. गु० बिकल भई । ११. गु० भजि लेहि रे मन सारिगपानी । १२. गु० न । १३. दा० नि० स० आवैगा । १४. गु० न भजिआ जाई । १५. गु० अब सारु । १६. दा० नि० स० फिर पछितावोगे वार न पार । १७. गु० लाइआ । १८. गु० ताके । १९. गु० इही । २०. दा० नि० स० सोचि बिचारि । २१. गु० कहत । २२. गु० के । २३. गु० में पद की प्रथम दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[६४]

दा० गौड़ी १२५, नि० गौड़ी १२८, गु० गउड़ी २५, स० ६७-७—
१. दा० नि० स० जा नरि । २. गु० में 'सो' शब्द नहीं है । ३. दा३ ताकी, गु० में यह शब्द नहीं है । ४. दा० नि० स० काहे न । ५. दा० नि० स० में यह पंक्ति अगली के बाद है । ६. दा० नि० स० गरभ मुचेमुचि । ७. गु० गए कीन बचिआ । ८. दा० नि० स० सूकर (सरलीकरण) । ९. गु० जीवै जग मझिआ । १०. गु० कहु । ११. गु. जैसे । १२. गु० नाम बिना जैसे कुबज कुरूप ।

[६५]

दा० गौड़ी १०५ (दा१, दा२ में यह पद नहीं है), नि० बिहंगड़ौ १४, गु० आसा १६, स० ८८-१—
१. गु० अहिरख बादु न कीजै रे मन [दा० स० में 'अहरखि' और गु० में 'अहिरख' मिलने से यह मूल पाठ का शब्द प्रतीत होता है, किन्तु व्युत्पत्ति स्पष्ट न होने के कारण यह पाठ संदिग्ध

कुंभरा एक कमाई माटी[३] बहु बिधि बांनीं लाई[४] ।
काहू[५] मंहि मोती मुकताहल[६] काहू ब्याधि लगाई ॥ १ ॥
काहू[५] दीन्हां पाट पटंबर काहू[५] पलंघ[७] निवारा[८] ।
काहू[५] गरी[९] गोंदरी[१०] नांहीं काहू[५] सेज पयारा[११] ।
सूमंहि धन राखन कौं दीया[१२] मुगध कहै यहु[१३] मेरा ।
जम का डंडु मूंड़ मंहि लागै[१४] खिन मंहि करै निबेरा[१५] ॥ ३ ॥[१६]
कहै कबीर सुनौं रे संतौ मेरी मेरी झूठी[१७] ।
चिरकुट फारि चुहाड़ा लै गयौ[१८] तनीं[१९] तागरी छूटी[२०] ॥ ४ ॥[२१]

लगता है। ज्ञात होता है कि यह उर्दू मूल 'आहर कहं' (=उद्यम के लिए, जीविका के लिए) का विकृत रूप है। 'आहर' शब्द के लिए द्रष्टव्य—श्री गुरु ग्रंथ साहब, मि० संस्क०, पृ० ९६५, यथा : आहर सभि करदा फिरै आहरु इकु न होइ। नानक जितु आहरि जगु ऊधरै विरला बूझै कोइ ॥ तथा जायसी, पदमावत, छंद २०४-६; यथा : कत तप कीन्ह छांड़ि कै राजू। आहर गएउ न भा सिधि काजू ॥]। २. गु० सुक्रितु करि करि लीजै रे मन (यथा तीसरी चौथी पंक्ति)। ३. गु० कुम्हारै एक जु माटी गूधी। ४. दा० नि० स० बहु विधि जुगति बनाई। ५. दा० नि० एकनि, स० एकहु। ६. दा२ माहैं मोती मुकता। ७. दा० नि० स० सेज [अगली पंक्ति में 'सेज' शब्द रहने के कारण पुन०]। ८. दा२ निवाला। ९. दा० गरै (उर्दू मूल), नि० स० गलै (उर्दू मूल)। १०. दा० नि० स० गूदरी [किंतु जायसी में भी 'गोंदरी' शब्द ही मिलता है; दे० पदमावत]। ११. नि० सेज पखारा (हिन्दी मूल), गु० खान परारा [कवि का अभिप्राय परस्पर विरोधी सामग्रियाँ उपस्थित करना ज्ञात होता है। यहाँ विलोमता पूरी-पूरी पंक्ति में है—'पाट पटंबर' का विलोम है 'गरी गोंदरी' (=सड़ी गली गुदरी या कंथा) और 'पलंघ निवारा' (नेवाड़ की शय्या) का विलोम है 'सेज पयारा' (पयारा=पुआल, धान का सूखा डंठल)। 'खान परारा' से यह विलोमता सिद्ध नहीं होती, अतः गु० का पाठ यहाँ भ्रामक ज्ञात होता है। डा० रामकुमार वर्मा ने ('संत कबीर' पृ० ३६ तथा १४० पर) 'परारा' का अर्थ 'करेला' दिया है, किन्तु यह अर्थ संतोषजनक नहीं लगता।]। १२. दा० नि० सांची रही सूम की संपति। १३. दा० नि० मेरी। १४. दा० नि० अंतकाल जम आइ पहूंता। १५. दा० छिन महं कीन्ह नबेरी (उर्दू मूल), नि० थाह नहीं किस केरी। १६. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : हरिजन ऊतमु भगतु सदा वै आगिआ मंनि सुखु पाई। जो तिसु भावै सति करि मानै भांणा मंनि वसाई ॥ १७. दा० नि० सब झूठा। १८. दा० नि० चड़ा चीथड़ा चुहड़ा ले गया, गु० चिरगट (उर्दू मूल) फारि चटारा (उर्दू मूल ?) लै गइओ [अवधी-भोजपुरी में 'चिरकुट' (=जीर्ण शीर्ण वस्त्र) शब्द है, जिससे गु० में संभवतः उर्दू मूल के कारण 'चिरगट' पाठ हो गया है, अतः मूल के लिए 'चिरकुट' पाठ ही स्वीकृत किया गया है। 'चटारा' भी निरर्थक है और 'चुहाड़ा' (=डोम या मेहतर) का विकृत रूप ज्ञात होता है। यह विकृति भी संभवतः उर्दू लिपि से हुई है।]। १९. गु० तगी (कैथी मूल), दा० तणी, नि० तड़ी। २०. दा० तणगती टूटी, नि० तामड़ी (नागरी मूल) टूटी। [मूल पाठ 'तनीं तागरी' ज्ञात होता है। 'तागरी' करधनी या कटिसूत्र का द्योतक है, और 'तनीं' का अर्थ है 'तन पर की'। शव को जलाते समय कटिसूत्र भी तोड़ कर शरीर से विलग कर दिया जाता है।]। २१. स० में पद की अंतिम चार पंक्तियों का पाठ है—

एक दई दातार उपाए एक भिखारी भूखे।
एकहु को सांई सुख दीन्हां एक करम गति दूखे ॥
कहै कबीर सुनौ मन मेरे पावै प्रभु कौ दीया।
तामैं फेर सार कछु नांहीं जा जीव को जो कीया ॥

[६६]

भाई रे बिरलै दोस्त कबीर के यहु तत बार बार कासौं[1] कहिए ।[2]
भांनन[3] गढ़न[4] सवांरन[5] संम्रथ[6] ज्यौं[7] राखै त्यौं रहिए ।। टेक ।।
आलम दुनीं सबै फिरि खोजी[8] हरि बिन सकल अयांनां[9] ।
छह दरसन पाखंड छ्यांनवै[10] आकुल किनहुं[11] न जांनां ।। १ ।।
जप तप संजम पूजा अरचा जोतिग जग बौरांनां[12] ।
कागद लिखि लिखि जगत भुलांनां[13] मन हीं[14] मन न समांनां ।। २ ।।
कहै कबीर जोगी अरु जंगम ए [की ?] सभ झूठी आसा[15] ।
रांमहिं नांम[16] रटौ चात्रिग ज्यौं निहचै भगति निवासा ।। ३ ।।[17]

[६७]

बाबा[1] माया मोह मो हितु कीन्ह[2] ।
तातैं ग्यांन रतनु[3] हरि लीन्ह ।। टेक ।।
जगि जीवनु[4] असा सुपिनैं[5] जैसा जीवन[6] सुपिन समांन ।
सांचु कहि हम[7] गांठि[8] दीन्हीं[9] छोडि[10] परम निधांन ।। १ ।।
नैंन देखि[11] पतंग उरझै[12] पसु न पेखै आगि ।
काल फांस न मुगध चेतै[13] कनक[14] कांमिनि लागि ।। २ ।।[15]

---

[६६]

दा० गौड़ी ३४, नि० गौड़ी ३८, बी० २६, स० ३२-१—
१. नि० का । २. बी० भाई रे वहुत वहुत का कहिए बिरले दोस्त हमारे । ३. दा१ दा२ भांनन, बी० भंजै, बीभ० भंजन । ४. बी० गढ़ै, बीभ० गढ़न । ५. बी० संवारै, (बीभ० संवारन)। ६. बी० आपै । ७. बी० राम । ८. बी० आयो । ९. बी० एकल उहै न आना, बीभ० ए कल जे उहै निआना । १०. दा० नि० स० छ्यानवै पाखंड । ११. बी० एकल काहु । १२. बी० आसन पौन जोग स्रुति (बीभ० सुचि) सुंम्रित जोतिख पढ़ि बैलाना । ('आसन' 'पौन,' 'जोग' आदि कर्मों के साथ 'पढ़ि' क्रिया भ्रमात्मक है।) १३. बी० तजि कारगह (बीभ० ताजी कर गहि) जगत उचायौ (बीभ० उपायौ)। १४. मन महिं । १५. बी० फीकी उनकी आसा । १६. दा० नि० स० गुर परसादि । १७. बी० में ऊपर की तीसरो तथा पाँचवीं पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित ।

[६७]

दा० आसावरी ४४, नि० आसावरी ३१, गु० आसा २७, बी० ६०, बीभ० ३—
१. दा० नि० बी० में 'बाबा' शब्द नहीं है । २. दा० नि० माया मोहि मोहि हित कीन्हां । ३. दा० नि० तार्थें मेरौ ग्यांन ध्यांन, बी० गु० जिनि ग्यान रतनु । ४. दा१, दा२ नि० संसार, दा४ जग जीवन, बी० जीवन । ५. बी० सपना । ६. दा४ सुपिनु । ७. दा० नि० नर । ८. दा० नि० बंध्यौ । ९. बी० शब्द गुरू उपदेश दियौ तैं । १०. बी० छांड्यौ । ११. बी० जोति देखि, दा० नि० नैन नेह । १२. दा० नि० बी० हुलसै । १३. दा० नि० काल फांस जु मुगध बंध्या, बी० काल फांस नल मुगध न चेतै । १४. दा० कलक । १५. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : सेख सैयद कितेब निरखै सुंम्रित सास्त्र बिचारै । सतगुर के उपदेस बिना तैं जानिकै जीवहि मारै ॥

करि बिचार बिकार परिहरि तरन[१६] तारन सोइ ।
कहै कबीर भगवंत भजि नर[१७] दुतिय नांहीं कोइ ॥ ३ ॥

[६८]

फिरहु का फूले फूले फूले[१] ।
जब दस मास उरध मुखि[२] होते सो[३] दिन काहे भूले[४] ॥ टेक ॥
जब जरिअै तब होइ भसम तन[५] रहै किरिम दल खाई[६] ।
कांचैं कुंभ उदिक ज्यौं भरिया[७] या तनकी[८] इहै[९] बड़ाई ॥ १ ॥
ज्यौं मांखी सहतैं नहिं बिहुरै[१०] जोरि जोरि[११] धन कीन्हां[१२] ।
मूएं पीछैं[१३] लेहु लेहु करै[१४] भूत[१५] रहन क्यूं[१६] दीन्हां[१२] ।
देहरि लौं बरी[१७] नारि संग है आगैं सजन सुहेला[१८] ।
मरहट लौं सभ लोग कुटुंब भयौ आगैं हंसु अकेला[१९] ॥ ३ ॥
रांम न रमसि[२०] मोह[२१] कहा माते[२२] परहु काल बस कूवा[२३] ।
कहै कबीर नर[२४] आपु बंधायौ ज्यौं ललनीं भ्रमि सूवा[२५] ॥ ४ ॥[२६]

[६९]

चलत कत[१] टेढ़े टेढ़े टेढ़े[२] ।

---

१६. दा० नि० तिरण । १७. दा० नि० कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, गु० कहै कबीर जगु जीवन ऐसा (पुन० तुल० पंक्ति ३-१)। गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं।

[६८]

दा० आसावरी ४०, नि० आसावरी ३५, गु० सोरठि २, बी० ७३, बीभ० १०७—
१. गु० काहे भईआ फिरतौ फूलिआ फूलिआ, दा० नि० फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ फूल्यौ। २. बी० अउंध मुख। ३. गु० रहता। ४. गु० कैसे भूलिआ। ५. दा० नि० काहे भूल्यौ। ५. दा० नि० जो जारै तौ होइ भसम तन, बी० जारे देह भसम होइ जाई। ६. दा० नि० रहत कृम ह्वै जाई, बी० गाड़े माटी खाई। ७. दा० नि० कांचे कंभ उदिक भरि राख्यौ, गु० कांची गागरि नीर परतु है। ८. दा२ याकी, दा१ दा३ तिनकी (उर्द मूल)। ९. दा० नि० कौन। १०. गु० जिउ मधु माखी तिउ सठोरि रस, दा० नि० ज्यूं माखी मधु संचि करि। ११. बी० सोंचि सोंचि। १२. गु० कीआ-दीआ। १३ गु० मरती बार। १४. दा० नि० करि। १५. दा० नि० बी० प्रेत (बीभ० भूत)। १६. बी० कस। १७. बी० वर। १८. दा० नि० ज्यूं घट नारी संग देखि करि तब लग संग सुहेलौ। १९. दा० नि० मरघट घाट खैंचि करि राखे वह देखहु हंस अकेलौ, बी० म्रितक थान लौं संग खटोला फिरि पुनि हंस अकेला। २०. दा० नि० रमहु। २१. दा० नि० मदन। २२. गु० कहत कबीर सुनहु रे प्रानी। २३. गु० परे काल ग्रस कूवा, दा० नि० परत अंधेरै कूवा। २४. दा० नि० सोइ। २५. गु० झूठी माइआ आपु बंधाइआ जिउ नलनी भ्रमि सूआ। २६. गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं।

[६९]

दा० नि० केदारौ १२, गु० केदारा ४, बी० ७२, बीभ० १०६—
१. दा३ नि० चलत कित, बी० चलहु का। २. दा० नि० टेढ़ौ टेढ़ौ रे। ३. बी० दसहु

नऊं दुवार नरक धरि मूंदे[3] दुरगंधि ही के बेड़े[4] ।। टेक ।।
ज जारै तौ[5] होइ भसम तन[6] गाड़े क्रिमि कीट खाई[7] ।
सूकर स्वांन काग कौ भक्खिन[8] तामैं कहा भलाई[9] ।। १ ।।
फूटे नैन हिरदै नहिं सूझै[10] मति[11] एकौ नहिं जांनीं ।
कांम क्रोध तिसनां के[12] मारे[13] बूड़ि मुएहु बिनु पांनीं[14] ।। २ ।।
रांम न जपहु कवन भ्रम भूले[15] तुम तैं काल न दूरी[16] ।[20]
कोटि[17] जतन करि यहु तन राखहु[18] अंत अवस्था धूरी[19] ।। ३ ।।[21]
[22]बालू[23] के घरवा[24] माहिं बैसे[25] चेतत नांहिं अयांनां[26] ।
कहै कबीर एक रांम भजे बिनु[27] बूड़े बहुत सियांनां[28] ।। ४ ।।

[७०]

रैंनि गई मत दिनु भी जाइ[1] ।
भंवर उड़े[2] बग बैठे आइ ।। टेक ।।
थरहर[3] कंपै बाला जीउ[4] । नां जांनौं क्या करिहै[5] पीउ ।। १ ।।[14]
कांचै करवै[6] रहै[7] न पांनीं । हंस उड़ा[8] काया कुम्हिलांनीं[9] ।। २ ।।[10]
कउवा उड़ावत भुजा पिरांनीं[11] । कहै[12] कबीर यहु[13] कथा सिरांनीं ।। ३ ।।

द्वार नरक भरि बूड़े [दस द्वार मानने पर उसमें ब्रह्मरंध्र भी सम्मिलित करना पड़ेगा जो परम पवित्र माना गया है; तुल० बी० चौंतीसी, पंक्ति ४०, यथा : दसएं द्वारे तारी लावै । तब दयालु के दरसन पावै ।], गु० असति (=अस्थि ?) चरम बिसटा के मूंदे । ४. बी० तूं गंधी को बेढ़ो, दा० नि० तू दुरगंधि कौ बेढ़ौ । ५. बी० तन । ६. दा० नि० रहित किरम जल खाई । ८. बी० भोजन । ९. बी० तन की इहै बड़ाई [पुन० तुल० बी० ७३; यथा : कांचे कुंभ उदक ज्यौं भरिया तन की इहै बड़ाई । गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु दा० नि० तथा बी० में हैं; अतः स्वीकृत । विशेष के लिए दे० भूमिका ।] ११, गु० फूटी आंख कछू न सूझै (अगली पंक्ति के प्रथम चरण से स्थानांतरित) । १२. बी० माते, बीभ० मारे, गु० लीने (?) । १३. दा० नि० माया मोह ममिता सूं बांध्यौ । १४. नि० अभिमांनीं । १५. बी० चेति न देखु मुगध नल बौरे । १६. गु० दूरे (उर्दू मूल) । १७. गु० अनिक । १८. बी० कोटिक जतन करत बहुतेरे । १९. गु० रहै अवस्था पूरे । २०-२१. दा० नि० में यह पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु गु० तथा बी० में हैं । २२. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : आपन कीआ कछू न होवै किआ को करै परानी । जा तिसु भावै सतिगुरु भेटै एको नामु बखानी ॥ २३. गु० बलुआ, दा० नि० बारू । २४. गु० घरुआ । २५. गु० बसते, बी० बैठे । २६. गु० फुलवत देह अइआने । २७. गु० कहु कबीर जिह रामु न चेतिओ (तुल० ऊपर की पंक्ति) । २८. गु० सिआने ।

[७०]

दा० भैरूं ३६, नि० भैरूं ३७, गु० सूही २, बी० १०६, बीभ० ६६—
१. बी० रैनि गई दिवसौ चलि जाइ । २. गु० गए । ३. बी० हलहल । ४. दा० नि० थरहर थरहर कंपै जीव । ५. गु० करसी (राज० मूल) । ६. बी० कांचै बासन । ७. बी० टिकै । ८. बी० उड़ि गए हंस, गु० हंसु चलिआ । ९. गु० कुमलानी । १०. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : कुआर कंनिआ जैसे करत सीगारा । किउ रलीआ मानै बाझु भतारा ॥ ११. गु० काग उड़ावत भुजा पिरानी, दा० नि० कऊवा उड़ावत मेरी बहियां पिरांनीं । १२. गु० कहि । १३. दा० नि० मेरी, गु० इह । १४. दा० नि० में यह ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद है और गु० में सबसे पहले ।

[७१]

ऐसा ग्यांन बिचारु मनां[१]।

हरि किन सुमिरै[२] दुख भंजनां[३] ॥ टेक ॥

[४]जब लगि[५] मेरी मेरी करै[६]। तब लगि[५] काजु एक नहिं सरै ॥ १ ॥

जब मेरी मेरी मिटि जाइ[७], तब प्रभु[८] काज संवारै आइ ॥ २ ॥

जब लगि[५] सिंघ रहै बन मांहि। तब लगि[५] यहु बन फूलै नांहि[९] ॥ ३ ॥

उलटि सियार[१०] सिंघ[११] कौं खाइ[१२]। तब यहु फूलै सभ बनराइ[१३] ॥ ४ ॥[१४]

जीतौ बूड़ै हारौ तिरै[१५]। गुर परसादि जीवत ही मरै[१६] ॥ ५ ॥

दास कबीर कहै समझाइ। केवल रांम रहहु लिव[१७] लाइ ॥ ६ ॥

[७२]

हरि नांव[१] न जपसि[२] गंवारा।[३]

क्या सोचहि[४] बारंबारा ॥ टेक ॥

पंच चोर गढ़ मंझा। गढ़ लूटहिं दिवसउ संझा ॥[५]

जउ गढ़पति मुहकम होई। तौ लूटि सकै नां कोई ॥ १ ॥[५]

---

[७१]

दा० भैरूं २५, नि० भैरूं २४, गु० भैरउ १४, शबे० (१) चिता० उप० ३१—

१. दा० नि० बिचारि रे मनां। २. गु० सिमरहु। ३ शबे० में यह पंक्ति नहीं है, गु० में तीसरी पंक्ति के बाद है। ४. शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

चंदा झलकै यहि घट माहीं। अंधी आंखन सूझै नाहीं॥
यहि घट चंदा यहि घट सूर। यहि घट गाजै अनहद तूर॥
यहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा शब्द सुनै नहिं कान॥

५. गु० लगु। ६. दा० नि० मैं मैं मेरी करै। ७. दा० नि० जब यहु मैं मेरी मिटि जाय, शबे० जब मेरी ममता मरि जाइ। ८. दा० नि० हरि। ९. गु० तब लगु बन फूलै ही नाहि। १०. दा० नि० स्याल। ११. दा० नि० स्यंघ। १२. गु० जब ही सिआर सिंघ कउ खाइ। १३. शबे० उकिठा बन फूलै हरियाइ, गु० फूलि रही सगली बनराइ। १४. शबे० में इसके बाद की दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं। इनके स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

ज्ञान के कारन करम कमाय। होय ज्ञान तब करम नसाय॥
फल कारन फूलै बनराय (पुन० ऊपर पंक्ति ६-२)। फल लागै तब फूल सुखाय॥
मिरग पास कसतूरी बास। आपु न खोजै खोजै घास॥
पारै पिंड मीन लै खाई। कहै कबीर लोग बौराई॥

१५. दा० नि० जीत्या डूबै हास्या तिरै। १६. गु० गुर परसादी पारि ऊतरै (दे० प्रथम चरण में 'तिरै')। १७. दा० नि० ल्यौ।

[७२]

दा० नि० सोरठि १, गु० सोरठि ७, शबे० (२) उप० २७ (अंशतः)—

१. गु० नामु। २. दा० नि० लेहु। ३. शबे० गुरु से (सांप्रदायिक मूल) कर मेल गंवारा। ४. दा० नि० का सोचै, शबे० का सोचत। ५. शबे० में इन पंक्तियों के स्थान पर—

जब पार उतरना चहिए। तब केवट से मिलि रहिए॥
जब उतरि जाहु भव पारा। तब छूटै यह संसारा॥

अंधियारै दीपक चहिअै । तब बस्तु अगोचर लहिअै ।।[८]
जब[६] बस्तु अगोचर पाई । तब[७] दीपक रह्यौ समाई ।। २ ।।[८]
जौ दरसन देखा चहिअै । तौ दरपन मांजत रहिअै ।।[११]
जब दरपन लागै[९] काई । तब दरसन किया न जाई[१०] ।। ३ ।।[११]
[१२]का पढ़िएं[१३] का गुनिएं । का[१४] बेद पुरांनां सुनिएं ।।[१८]
पढ़ें गुनें[१५] क्या[१६] होई । जउ सहज न मिलिऔ सोई[१७] ।। ४ ।।[१८]
कहै कबीर मैं जांनां[१९] । मैं जांनां मन पतियांनां[२०] ।।
पतियांनां जौ न पतीजै । तौ अंधे कौं का कीजै[२१] ।। ४ ।।

[७३]

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाज टका दस गांठी[१] ऐंड़ौ[२] टेढ़ौ जात ।। टेक ।।
बहुत प्रताप[३] गांउं सौ[४] पाए दुइ लख टका बरात[५] ।
दिवस चारि की करहु साहिबी[६] जैसै[७] बन हर[८] पात ।। १ ।।
नां[९] कोऊ लै आयौ यहु धन[१०] नां[९] कोऊ[११] लै जात ।
रावन हूं तैं अधिक छत्रपति[१२] खिन[१३] मांहि गए बिलात[१४] ।। २ ।।

[किंतु आगे गढ़ का प्रसंग शबे० में भी आता है जिससे ज्ञात होता है कि मूल प्रति में स्वीकृत पंक्तियाँ अवश्य थीं ।]। ६. गु० इक। ७. गु० घटि। ८. शबे० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं। ९. शबे० लागत। १०. शबे० तब दरसन कहां ते पाई। ११. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, किन्तु दा० नि० और शबे० में हैं। १२. शबे० में यह और इसके आगे की तीनों पंक्तियाँ नहीं हैं; इनके स्थान पर—

जब गढ़ पर बजी बधाई। तब देख तमासे आई ॥
जब गढ़ बिच होत सकेला। तब हंसा चलत अकेला ॥
कह कबीर देख मन करनी। वाके अंतर बीच कतरनी ॥
कतरनि कै गांठि न छूटै। तब पकरि पकरि जम लूटै ॥

१३. गु० किआ पढ़ीअै (पंजाबी प्रभाव)। १४. गु० सुने। १६. दा० नि० मति। १७. दा० नि० मैं सहजैं पाया सोई। १८. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ पद के आरम्भ में ही आती हैं। १९. गु० अब जानिआ। २०. गु० अब जानिआ तउ मन मानिआ। २१. गु० का पाठ है—
मन माने लोगु न पतीजै। न पतीजै तउ किआ कीजै ॥

[७३]

दा० धनाश्री ३, नि० सारंग ३, गु० सारंग १, शबे० (२) चिता० ६—
१. दा० दस गंठिया, गु० चारि गांठी। २ दा० नि० टेढ़ौ। ३. दा० नि० राजा भयौ। ४. नि० दस, शबे० से। ५. दा० नि० टका लाख दस ब्रात (नि० ब्रात रे), शबे० दुइए टका बरात। ६. दा० नि० की है पातिसाही। ७. दा० नि० ज्यूं। ८. दा० नि० हरियल। ९. दा० कहा। १० नि० जामत ही रे कहा लै आयौ। ११. नि० मरत कहा। १२. दा० नि० रावन होत लंक को छत्रपति। १३. दा० नि० पल। १४. दा० गई बिहात, नि० कियौ बिख्यात।

हरि के संत सदा थिर पूजौ जो हरिनांम[१५] जपात ॥[१७]
जिन पर क्रिपा करत है गोबिंद[१६] ते सतसंगि मिलात ॥ ३ ॥[१८]
मात पिता बनिता सुत संपति[१९] अंति न चले संगात ।
कहत कबीर रांम भजु बउरे[२०] जनम अकारथ [२१] जात ॥ ४ ॥[२२]

[७४]

[१]रांम[२] सुमिरि पछिताइगा ।
पापी जियरा लोभ करत है आजु कालि उठि जाइगा ॥ टेक ॥[३]
लालच लागै[५] जनम गंवाया माया भरमि भुलाइगा ।[४]
धन जौबन का गरब न कीजै[६] कागद ज्यौं गरि जाइगा[७] ॥ १ ॥
जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न बसाइगा[८] ।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं तौ मुखि चोटा खाइगा ॥ २ ॥[९]
धरमराइ जब लेखा मांगै क्या मुख लै कै जाइगा[१०] ॥[११]
कहत कबीर सुनहु रे संतौ[१२] साध संगति तरि जाइगा ॥

[७५]

चलि चलि रे भंवरा कंवल पास[१] ।
तेरी भंवरी बोलै अति उदास ॥ टेक ॥
मैं तोहिं बरजेउं बार बार[२] । तैं बन बन सोध्यौ डार डार[३] ॥ १ ॥[४]

---

१५. शबे० सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव)। १६. शबे० सतगुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) १७-१८. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं। १९. दा० नि० लोक सुत बनिता। २०. शबे० संग कर सतगुरु (राधा० प्रभाव)। २१. नि० अमोलिक [दा० तथा नि० में ऊपर की तीसरी तथा पाँचवीं पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित]।

[७४]

नि० सोरठि ७२, गु० मारू ११, शबे० (१) चिता० उप० ७४—
१. नि० में इसके पूर्व 'प्रांणीं' और गु० में 'मन' अतिरिक्त रूप से जुड़े हैं। २. शबे० नाम (राधा० प्रभाव)। ३-४. नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं। ५. शबे० लागी। ६. नि० या देही का गरब न करना। ७ नि० गरि जावैगौ। ८. नि० जब जंम आवै बांधि चलावै तब तौ कौंन छुड़ावैगौ। ९. नि० में इनके स्थान पर : भाई मात पिता सुत बंधू निकट कोई नहिं आवैगौ। १०. नि० तब कियौ आपणौं पावैगौ। ११. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : लख चौरासी जोनि भुगतिसी फिरि फिरि गोता खावैगौ। खेवट गुरु सूं मिलि करि रहिए सो लै पार लगावैगौ ॥ १२. नि० कहै कबीर एक रांम भजन सूं।

[७५]

दा० बसंत १२ (दा२ में नहीं है), नि० बसंत १३, शबे० (२) चिता० ३१, शक० बसंत २—
१. शक० तज तज रे भौंरा कमल बास। २. दा० नि० हौं ज कहत तोसूं बार बार, शबे० चौज (उर्दू मूल) करत (नागरी मूल) तहं बार बार। ३. शबे० तन बन फूले डारि डारि, शक० तै बन सोधेउ डाढ़ डाढ़। ४. दा० नि० में यह पंक्ति अगली के बाद है।

तैं अनेक पुहुप का लियौ है भोग[५]। सुख न भयौ तन[६] बढ़्यौ रोग ॥ २ ॥
दिनां[७] चारि के सुरंग फूल। तेहि लखि भंवरा रह्यौ भूल[८] ॥ ३ ॥
बनसपती जब लागै आगि[९]। तब भंवरा[१०] कहां जैहौ भागि ॥ ४ ॥
पुहुप पुरानें गए सूख[११]। तब भवंरहिं[१२] लागी अधिक भूख ॥ ५ ॥
उड़ि न सकत[१३] बल गयौ छूटि। तब भंवरी[१४] रोवै[१५] सीस कूटि ॥ ६ ॥
दह दिसि जोवै मधुपराइ[१६]। तब भंवरी लै चली[१७] सिर चढ़ाइ ॥ ७ ॥
कहै कबीर मन कौ सुभाव[१८]। इक नांम बिना सब जम कौ दाव[१९] ॥ ८ ॥

[७६]

हंम तौ[१] एक एक करि जांनां[२]।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग[३] जिन नाहिंन पहिचांनां[४] ॥ टेक ॥
एकै पवन एक ही पांनीं[५] एकै जोति समांनां[६]।
एकै खाक गढ़े सब भांड़े[७] एकै कोंहरा सांनां[८] ॥ १ ॥
माया देखि कै जगत लुभांनां[१०] काहे रे नर गरबांनां[११]।
कहै कबीर सुनौ भाई साधौ गुरु (हरि ?) के हाथि काहे न बिकांनां[१२] ॥ २ ॥

[७७]

चतुराई न चतुरभुज पइग्रै।
जब लगि मन माधौ न लगइग्रै[१] ॥ टेक ॥

---

५. शबे० बनस्पती का लियौ है भोग। ६. दा० नि० तव (नागरी मूल)। ७. शबे० दिवस। ८. दा० नि० तिनहिं देखि कहा रह्यो है भूल। ९. दा० नि० या बनस्पती में लागैगी आग, शक० जब यह बन में लागी आग। १०. दा० नि० भूंरा (उर्दू मूल), शक० भौंरी। ११. दा० नि० भए (हिन्दी मूल) सूक (राज० पंजाबी मूल)। १२. शक० भौंरा। १३. दा० नि० उड़्यौ न जाइ। १४. शबे० भंवरा। १५. दा० नि० रूनीं। १६. शबे० चहुं दिसि चितवै मुंह पड़ाइ। १७. शबे० अब ले चल भंवरी। १८. शबे० ये मन के भाव। १९. दा० नि० रांम भगति बिन जम को दाव, शक० एक नांम भजे बिन जन्म बाद।

[७६]

दा० नि० गौड़ी ५५, नि० गौड़ी १८, शबे० (२) प्रेम २१—

१. दा० नि० अब हम। २. दा० नि० एक एक करि जांनां। ३. शबे० दोइ कहै तेहि को दुविधा है। ४. शबे० जिन सतनाम न जाना। ५. नि० एक पवन पावक अरु पांनीं ६. दा० नि० एक जोति संसारा। ७. शबे० इक मिट्टी के घड़ा गढ़ैला। ८. दा० नि० एकै सिरजनहारा। ९. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—

जैसे बाढ़ी काष्ट हीं काटै अगिनि न काटै सोई। सब घटि अंतरि तू ही व्यापक धरै सरूपै सोई ॥

१०. दा० नि० माया मोहे अर्थ देखि करि। ११. दा० नि० काहे कूं गरबांनां। १२. दा० नि० निरभै भया कछू नहिं व्यापै कहै कबीर दिवांनां।

[७७]

दा० गौड़ी ५१, नि० कनड़ौ ३, गु० गउड़ी ६—

१. गु० रे जन मनु माधव सिउ लाईग्रै। चतुराई न चतुरभुज पाईग्रै ॥ २-३. दा० नि० में इन

क्या जपु क्या तपु क्या ब्रत पूजा। जाकै रिदै (ह्रिदै ?) भाव है दूजा ॥१॥[२]
परिहरु लोभु अरु लोकाचारु। परिहरु कांमु क्रोधु हंकारु ॥२॥[३]
करम करत बंधे अहंमेउ। मिलि पाथर की करहीं सेउ ॥ ३ ॥[४]
कहै कबीर जौ रहै सुभाइ[५]। भोरै[६] भाइ मिलै रघुराइ[७] ॥ ४ ॥

[७८]

जौ पै[१] रसनां रांमु न कहिबौ। तौ उपजत बिनसत भरमत[२] रहिबौ।
[३]कंधिकाल[४] सुखि कोइ[५] न सोवै[६]। राजा रंकु दोऊ मिलि रोवै[७] ॥ १ ॥
जस देखिअै[८] तरवर की छाया। प्रांन गएं कहु काको माया ॥ २ ॥
जीवत कछू न किया प्रवांनां[९]। मुएं[१०] मरम को काकर जांनां[११] ॥ ३ ॥
हंसा सरवर[१२] कंवल[१३] सरीर। रांम रसांइन पिउ रे[१४] कबीर ॥ ४ ॥

[७९]

लाज न मरहु कहहु घरु मेरा।[१]
अंत की बार नहीं कछु तेरा ॥ टेक ॥[२]

उपजै निपजै निपजि समाई। नैंनन देखत यह जगु जाई ॥ १ ॥[३]
बहुत जतन करि काया पाली।[४] मरती बार अगिनि संग जाली[५] ॥ २ ॥[६]
चोआ चंदन मरदन[७] अंगा। सो तनु जलै[८] काठ कै संगा ॥ ३ ॥[९]
कहै[११] कबीर सुनहु रे गुनियां। बिनसैगौ रूपु देखै सभ दुनियां ॥ ४ ॥[१०]

दोनों पंक्तियों के स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—
भीतरि कांम क्रोध मद माया। कहा बाहरि के धोए (नि० ध्याए) काया ॥
का सिधि साधि सखा (नि० साखा) सिरि बांधै। का जल पैसि हुतासन साधै ॥
४. दा० नि० में यह पंक्ति भी नहीं है और गु० में भी प्रक्षिप्त ही ज्ञात होती है। ५. गु० कहु कबीर भगति करि पाइआ। ६. गु० भोले। ७. गु० रघुराइआ।

[७८]

दा० नि० गौड़ी १३१, नि० गौड़ी १३८, गु० गउड़ी ८—
१. दा१, दा२ तैं। २. गु० रोवत (पुन० तुल० आगे 'मिलि रोवै')। ३. दा० नि० में यह चौथी पंक्ति के बाद और गु० में पहली के पूर्व आती है। ४. अंधकार (उर्दू मूल)। ५. गु. कबहिं। ६. गु० सोईहै। ७. गु० रोईहै। ८. दा० नि० जैसी। ९. गु० जस जंती महि जीउ समाना। १०. दा० नि० मुवा। ११. नि० मरम काहि का जांनां। १२. दा० नि० हंस सरोबर। १३. गु० काल। १४. दा० नि० पिवैं।

[७९]

दा० सोरठि ३४, नि० सोरठि ३३, गु० गउड़ी १९—
१,२. दा० नि० कारनि कौन संवारै देहा। यह तन जरि बरि ह्वैहै खेहा ॥ ३. दा० नि० में यह पंक्ति नहीं है। ४. दा० नि० बहुत जतन करि देहि मुट्याई। ५. दा० नि० अगनि देह मैं जंबुक खाई। ६. दा० नि० चरचत। ८. दा०. नि० जरत। ९. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जा सिरि रचि रचि बांधत पागा। ता सिरि चंच संवारत कागा ॥ (तुल० गु० गउड़ी ३५-१ तथा बी० ९९-३ जिहि सिरि रचि रचि बांधत पागा। सो सिरु चुंच संवारहि कागा ॥)। १०. दा० नि० कहि कबीर तन झूठा भाई। केवल रांम रह्यौ ल्यौ लाई। ११. गु० कहु (कह ?)।

[८०]

अब मन जागत रहु रे भाई ।[१]
गाफिल[२] होइ कै जनमु गंवायौ[३] चोर मुसै घरु जाई ।। टेक ।।
षट चक्र की कीन्ह[४] कोठरी[५] बस्तु अनूपु बिच पाई [६]।।
कुंजी कुलफु प्रांन करि राखे करते बार न लाई[७] ।। १ ।।
पंच[८] पहरुआ दर महिं रहते तिनका नहीं पतिआरा ।
चेत सुचेत चित्त होइ रहु तौ लै परगासु उजारा ।। २ ।।
नउ घर देखि जु कांमिनि भूली बस्तु अनूपु न पाई ।।
कहत कबीर नवै घर मूसे दसवैं तत्त समाई ।। ३ ।।

[८१]

अपनैं बिचारि असवारी कीजै ।[३]
सहज कै पांवड़ै[१] पगु धरि लीजै [२] ।। टेक ।।[३]
दै मुहरा[४] लगाम पहिरावउं । सिकली[५] जीन गगन दौरावउं ।।
चलु रे बैकुंठ[६] तुझहिं[७] लै तारउं । हिचहि[८] त प्रेम ताजनैं मारउं[९]।। २ ।।
कहत कबीर भले असवारा[१०] । बेद कतेब तैं रहहिं[११] नियारा[१२] ।। ३ ।।

---

[८०]

दा० गौड़ी २३, नि० गौड़ी २६, गु० गउड़ी ७३—
१. दा० नि० मन रे जागत रहिए भाई । २. गु० गाफलु (उर्दू मूल) । ३. दा० नि० बसत मति खोवै । ४ दा१ दा२ कनक । ५. गु० षट नेम करि कोठड़ी बांधी । ६. दा० नि० बस्तु भाव है सोई । ७. दा० नि० ताला कूंची कुलफ (पुन०) के लागै उघड़त बार न होई । ८. दा० नि० में यहाँ से आगे की पंक्तियों का पाठ है—

पंच पहरुआ सोइ गए हैं बसतैं जागन (नि० बसत जागवा) लागीं ।
जुरा मरन ब्यापै कछु नांहीं गगन मंडल लै लागी ॥
करत बिचार मन हीं मन उपजी नां कहीं गया न आया ।
कहै कबीर संसा सब छूटा रांम रतन धन पाया ॥

[विशेष—यहाँ दा० तथा गु० दोनों के ही पाठों में कुछ भ्रांतियाँ ज्ञात होती हैं । दा० नि० के पाठ से विपरीत अर्थ प्रकट होता है और गु० में भी कुछ संदिग्ध स्थल हैं (दे० ऊपर की पंक्ति ३ तथा ७ में 'बस्तु अनूपु बिचि पाई' और 'बस्तु अनूपु न पाई' में पुनरावृत्ति और पंक्ति ६ में 'परगासु' और 'उजारा' में पुनरावृत्ति ; अतः इस पद का पाठ पूर्णतया संतोषप्रद नहीं बन पाया है ।]

[८१]

दा० नि० गौड़ी २५, नि० गौड़ी २९, गु० गउड़ी ३१—
१. दा० नि० पाइड़ै । २. दा० नि० पांव जब दीजै । ३. गु० में यह पंक्तियाँ अगली के बाद हैं । ४. गु० देइ मुहार । ५. गु० सगलत (उर्दू मूल) । ६. दा० नि० चलि बैकुंठ । ७. दा० नि० तोहि । ८. दा० नि० थकहि त । ९. गु० प्रेम कै चाबुक मारउं (समानार्थीकरण) । १०. दा० नि० जन कबीर ऐसा असवारा । ११. दा० नि० दुहू थैं । १२. गु० निरारा (समान रूप से ग्रहणीय) ।

[८२]

रमइया[1] गुन गाइऐ रे जातैं[2] पाइऐ परम निधांनु ।। टेक ।।[3]
सुरगबासु[4] न बांछिऐ डरिऐ न नरकि निवासु ।
होनां है सो होइहै[5] मनहिं[6] न कीजै आसु[7] ।। १ ।।
क्या जप क्या तप संजमो[8] क्या ब्रत क्या असनांन[9] ।।[10]
जब लगि[11] जुगति न जानिऐ भाउ भगति भगवांन ।।२।।[12]
संपै[13] देखि न हरखिऐ बिपति देखि नां रोइ ।
ज्यौं संपै[13] त्यौं बिपति है करता करै सो होइ[14] ।। ३ ।।[15]
कहै[16] कबीर अब जांनियां[17] संतन ह्रिदै[18] मंझारि ।
जो सेवग सेवा करै ता संगि रमैं मुरारि[19] ।। ४ ।।[20]

[८३]

मेरी मेरी करतां[1] जनम गयौ ।
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ[2] ।। टेक ।।
बारह बरस बालपन खोयौ[3] बीस बरस कछु तप न कियौ ।
तीस बरस तैं रांम न सुमिरयौ[4] फिरि पछितांनां[5] बिरिध भयौ ।। १ ।।

---

[८२]

दा० गौड़ी १२१, नि० गौड़ी १२४, गु० गौड़ी ६३—.
१. दा० नि० गोबिंदा। २. दा० नि० तार्थे। ३. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—

उंकारे (नि० आकारे) जग ऊपजै बीकारे जग जाइ।
अनहद बेन बजाइ करि रह्यौ गगन मठ छाइ ॥
झूठै जग डहकाइया रे क्या जीवण की आस।
रांम रसाइंण जिण पिया तिनकौं बहुरि न लागी रे पियास ॥
अरध खिन जीवन भला भगवंत भगति सहेत।
कोटि कलप जीवन ब्रिथा नांहिं न हरि सूं हेत ॥

४. दा० नि० सरग लोक। ५. दा० नि० हूंणा (राज०) था सो होइ रहा। ६. दा० नि० मनहु। ७. दा० नि० झूठी आस। ८. दा० नि० संजमां। ९. गु० इसनानु (उर्दू मूल)। १०. दा० नि० क्या तीरथ ब्रत असनांन। ११. दा० नि० जो पै। १२. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : सुंनि मंडल मैं सोधि लै परम जोति परकास। तहंवां रूप न रेख है बिन फूलनि फल्यौ रे अकास ॥ १३. दा० नि० संपति। १४. गु० बिधने रचिआ सो होइ। १५. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ दूसरी पंक्ति के पूर्व आती हैं। १६. गु. कहि। १७. दा० नि० हरि गुण गाइले। १८. दा० नि० सत संगति रिदा मझारि। १९. गु० सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि। २०. गु० में पहली पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद आती है।

[८३]

दा० आसावरी ४२, नि० आसावरी ३७, गु० आसा १५—
१. गु० करते। २. गु० साइर सोखि भुजं बलइओ (कदाचित् उर्दू मूल 'भुजंग लइओ' का विकृत रूप)। ३. गु० बीते। ४. गु० तीस बरस कछु देव न पूजा। ५. गु० पछुताना।

सूखे सरवरि[६] पालि बंधावै लूनें खेति[७] हठि बारि[८] करै।
आयौ चोर तुरंगहिं[९] लै गयौ मोहड़ी[१०] (?) राखत मुगध फिरै ॥ २ ॥
सीस चरन कर कंपन लागे नैंन नीरु असराल बहै[११]।
जिभ्या[१२] बचन सुध[१३] नहिं निकसै तब सुक्रित की बात कहै[१४] ॥ ३ ॥[१५]
कहै[१६] कबीर सुनहु रे संतौ धन संच्यौ कछु संगि न गयौ[१७]।
आई तलब गोपालराइ की माया मंदिर[१८] छांड़ि चल्यौ ॥ ४ ॥[१९]

[८४]

पूजहु रांम एक ही देवा[१]।
सांचा नांवणु (न्हांवन ?) गुर की सेवा[२] ॥ टेक ॥
अंतरि मैल जे[३] तीरथ न्हावै[४] तिन[५] बैकुंठ न जांनां।[७]
लोक पतीनैं कछू न होवै[६] नांहीं रांम अयांनां ॥ १ ॥[८]
जल कै मज्जनि[९] जे गति होवै[१०] नित नित मेंडुक न्हावै[११] ॥
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर[१२] फिरि फिर जोनीं आवै ॥ २ ॥
हिरदै[१३] कठोर मरै[१४] बानारसि नरकु न बांच्या जाई।
हरि का दास मरै जौ मगहरि[१५] तौ सगली सैंन तराई[१६] ॥ ३ ॥
दिवस न रैंनि[१७] बेदु नहिं सासत[१८] तहां बसै निरंकारा।
कहै[१९] कबीर नर तिसहिं धियावहु[२०] बावरिआ[२१] संसारा ॥ ४ ॥[२२]

---

६. दा१ नि० तरवरि (उर्दू मूल)। ७. गु० लूणे खेति। ८. गु० हथ वारि (उर्दू मूल)। ९. दा१ तुरंग मुसि लै गयौ, गु० तुरंतह लै गइओ। १०. दा० नि० स० मोरी, गु० मेरी [उर्दू मूल 'मोहड़ी' से दा० नि० स० में 'मोरी' और फिर पश्चिमी प्रभाव के कारण गु० में 'मोरी' का समानार्थी 'मेरी' किया हुआ प्रतीत होता है।]। ११. गु० नैनी (उर्दू मूल) नीरु असार बहै। १२. गु० जिहवा। १३. दा२ सुधि, नि० सुध, गु० सुधु। १४. गु० तब रे धरम की आस करै। १५. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : हरि जीउ क्रिपा करै लिव लावै लाहा हरि हरि नामु लीओ। गुर परसादी हरि धनु पाइओ अंते चल दिया नालि चलिओ ॥ १६. गु० कहत। १७. गु० अनु धनु कछूऐ लै न गइओ। १८. दा० नि० स० मैंड़ा मंदिर। १९. गु० में इस पद की पहली पंक्ति तीसरी के बाद आती है।

[८४]

दा० भैरूं २१, नि० भैरूं २०, गु० आसा ३७—
१. दा० नि० पूजहु रांम निरंजन देवा। २. दा० नि० सति रांम सतिगुर की सेवा। ३. दा० नि० मन मैं मैला। ४. गु० नावै। ५. गु० तिसु। ६. दा० नि० पाखंड करि करि जगत भुलांनां। ७-८. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की पाँचवीं पंक्ति के बाद हैं। ९. दा० नि० मंजनि। १०. दा० नि० होई। ११. दा० नि० मींनां नित ही न्हावै। १२. दा० नि० जैसा मींनां तैसा नरा। १३. दा० नि० हिरदै। १४. नि० बसै। १५. गु० हरि का संतु मरै हाड़ंबै (?)। १६. दा० नि० तौ सैन्या सकल तिराई। १७. दा० नि० पाठ पुरांन। १८. दा० नि० सुंम्रित। १९. गु० कहि। २०. दा० नि० एक ही ध्यावौ। २१. दा० नि० बावलिया। २२. गु० में पद की प्रथम पंक्ति तीसरी के बाद है।

[८५]

मन रे संसार अंध कुहेरा[१]।
सिरि प्रगटा जम का पेरा[२] ॥ टेक ॥[३]

बुत[४] पूजि पूजि हिंदू मूए तुरुक मुए हज जाई[५] ॥
जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति किनहुं न पाई[६] ॥ १ ॥
कबित पढ़े पढ़ि कबिता मूए[७] कापड़ी[८] कैदारै[९] जाई।
केस लूंचि लूंचि मुए बरतिया इनमैं किनहुं न पाई[१०] ॥ २ ॥
धन संचंते राजा मूए[११] गड़िले[१२] कंचन भारी।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूए रूप देखि देखि नारी[१३] ॥ ३ ॥
रांम नांम बिनु सभै बिगूते देखहु निरखि सरीरा।[१४]
हरि के नांम बिनु किनि गति पाई कहै जुलाह[१६] कबीरा ॥ ४ ॥[१५]

[८६]

मन रे सरचौ न एकौ काजा।
(तैं) भज्यौ[१] न रघुपति[२] राजा ॥ टेक ॥

बेद पुरांन सभै मत सुनिकै करी करम की आसा[३]।
काल ग्रसत सभ लोग सयानैं उठि पंडित पैं चले निरासा[४] ॥ १ ॥
बन खंड जाइ जोगु[५] तपु कीन्हां कंद मूल चुनि[६] खाया।
नादी बेदी सबदी मोनीं[७] जंम कै पटैं लिखाया ॥ २ ॥
भगति नारदी रिदै (ह्रिदै) न आई काछि कूछि तनु दीनां।[८]
राग रागिनीं डिंभ होइ बैठा उनि हरि पंहि क्या लीनां[९] ॥ ३ ॥

---

[८५]

दा० कैदारौ १८, नि० कैदारौ १९, गु० सोरठि १—

१. गु० मन रे संसारु अंध गहेरा (उर्दू मूल), दा० नि० रांम बिनां संसार धंध कुहेरा। २. गु० चहु दिस पसरिओ है जम जेवरा (तुकहीन)। ३. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद हैं। ४. दा० नि० देव। ५. गु० सिरु नाई [हिन्दू भी सिर नवाते हैं, अतः भ्रामक]। ६. गु० ओइ ले जारे ओइ ले गाड़े तेरी गति दुहूं न पाई। ७. दा० नि० कवी कवीनैं कबिता मूए। ८. गु० कपड़। ९. दा० नि० केदारौ। १०. गु० जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति इनहिं न पाई [तुल० ऊपर की चौथी पंक्ति]। ११. गु० दरबु संचि संचि राजे मूए। १२. दा० नि० अरुले (उर्दू मूल)। १३. दा० नि० रूप भूले मुई नारी। १४-१५. दा० नि० जे नर जोग जुगति करि जांनैं खोजै आप सरीरा। तिनकूं मुकति का संसा नांहीं कहै जुलाह कबीरा ॥ [विचार-वैषम्य तुल० ऊपर की पंक्ति ४]। १६. गु० उपदेसु।

[८६]

दा० नि० गु० सोरठि ३—

१. दा० नि० ताथैं भज्यौ। २. दा१ जगपति। ३-४. दा० नि० बेद पुरांन सुंम्रित गुन पढ़ि पढ़ि पढ़ि गुनि (पुन०) मरम न पावा। संध्या गाइत्री अरु खट करमां तिनथैं दूरि बतावा ॥ ५. दा० नि० बहुत। ६. दा० नि० खनि। ७. दा० नि० ब्रह्म गियांनीं अधिक धियांनीं।

पहरचौ[10] काल सभै[11] जग ऊपरि मांहि लिखे भ्रम[12] ग्यांनीं ।
कहै कबीर ते भए खालसै[13] रांम[14] भगति जिन्ह[15] जांनीं ॥ ४ ॥[16]

[८७]

बंदे खोजु दिल हर रोज[1] नां फिरु[2] परेसानीं मांहि ।
यहु जु दुनिया सिहरु मेला[3] कोई[4] दस्तगीरी नांहि ॥ टेक ॥[5]
बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ[6] ।
टुक दम करारी जउ करहु हाजिर हजूर[7] खुदाइ ॥ १ ॥
दरोगु पढ़ि पढ़ि खुसी होइ[8] बेखबरु बादु बकाहि[9] ।
हक सांच[10] खालिक[11] खलक म्यांनैं स्याम मूरति नांहि[12] ॥ २ ॥
असमांन म्यांनैं लहंग दरिया गुसल करदन बूद ।[13]
करि फिकिर[15] दाइम लाइ चसमैं जहां तहां मौजूद ॥ ३ ॥[14]
अल्लाह पाकंपाक है[16] सक करउ जे दूसर होइ[17] ।
कबीर करम करीम का यहु[18] करै जांनैं सोइ ॥ ४ ॥[19]

[८८]

बावरे तैं[1] ग्यांन बिचारु न पाया ।
बिरथा जनमु गंवाया[2] ॥ टेक ॥[3]

८-९. दा० नि० में इन पंक्तियों का पाठ है : रोजा किया निमाज गुजारी बंग दे लोग सुनावा । हिरदै कपट मिलै क्यूं सांई क्या हज काबै जावा ॥ [किंतु अप्रासंगिक]। १० गु० परिओ । ११. दा० नि० सकल । १२. दा० सभ (दा४ भ्रम) । १३. गु० कहु कबीर जन भए खालसे । १४. गु० प्रेम । १५. गु० जिह (उर्दू मूल) । १६. गु० में इस पद की पहली पंक्ति तीसरी के बाद आती है ।

[८७]

दा० आसावरी ५६, नि० आसावरी ५०, गु० तिलंग १—
१. दा० नि० रे दिल खोजि दिलहर खोजि । २. दा० नि० परि । ३. दा१, दा२ महल माल अजीज औरति, दा३ नि० सहज अमल (नि० माल) अजीज है । ४. गु० में 'कोई' शब्द नहीं है । ५. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : पीरां मुरादां काजियां मुलां अरु दरबेस । कहां थैं तुम किनि कीया अकलि है सब नेस ॥ ६. दा० नि० कुरांनां कतेबां अस (नि० असव) पढ़ि पढ़ि फिकरियां नहिं जाइ । ७. दा२ हाजरां सूर (उर्दू मूल), दा३ हाजिर हजूर । ८. दा० नि० दरोग बकि बकि हूहि खुसियां । ९. दा० नि० बे अकलि बकहि पवाहि । १०. गु० सचु । ११. गु० खालकु । १२. दा१, दा२ कछू सच सूरति मांहि, दा३ सैल सूरति (पंजाबी मूल) मांहि । १३-१४. तुल० दा० नि० आसावरी २५८-७, ८ यथा : असमांन म्यांनैं लहंग दरिया तहां गुसल करदन बूद । करि फिकर रह (दा२ दद) सालक जसम (उर्दू मूल) जहां स तहां मौजूद । १५. गु० फकर (उर्दू मूल), दा० नि० फिकर । [illegible] दा० नि० अलाह पाक तूं नापाक क्यूं । १७. दा० नि० अब दूसरा नहिं कोइ । १८. दा० नि० करनीं । १९. गु० में इस पद की प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[८८]

दा० आसावरी ३४, नि० आसावरी ३३, गु० सूही ४—
१. दा० नि० जो मैं । २. दा० नि० तो मैं यौं ही जनम गंवाया । ३. दा० नि० में इसके

थाके नैंन स्रवन सुनि थाके[४] थाकी सुंदरि काया ।
जांमन मरनां ए दोइ थाके[५] एक न थाकी[६] माया ।। १ ।।
तव लगि प्रांनीं तिसै सरेवहु[७] जब लगि घट मांहि सांसा ।
भगति जाउ[८] पर भाव न जइयौ[९] हरि के चरन निवासा ।। २ ।।[१०]
जो जन जांनि भजहिं अविगत कौं[११] तिनका कछू[१२] न नासा ।
कहै कबीर ते कबहुं न हारहिं[१३] ढालि जु जांनहिं पासा[१४] ।। ३ ।।[१५]

[८९]

झूठा[१] लोग कहैं घर मेरा ।
जा घर मांहीं[२] भूला डोलै[३] सो घर[४] नांहीं तेरा ।। टेक ।।
हाथी[५] घोड़ा बैल[६] बाहनौं[७] संग्रह किया घनेरा ।[८]
बस्ती मांहि तैं दियौ खदेरा[९] जंगल किएहु बसेरा ।। १ ।।
घर कौं खरच खबर नहिं पठयौ[१०] बहुरि न कीन्हौं फेरा[११] ।
बीबी बाहर[१२] हरम महल मैं बीच[१३] मियां का डेरा ।। २ ।।[१४]
नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझै जनमि जनमि उरझेरा ।
कहै कबीर एक रांम भजहु[१५] ज्यौं सहज होइ सुरझेरा[१६] ।। ३ ।।

[९०]

तन धरि सुखिया कोइ[१] न देखा[२] जो देखा[३] सो दुखिया हो[४] ।

बाद अतिरिक्त : यहु संसार हाट करि जानूं सब को बिणजण आया । चेति सकौ तौ चेतौ रे भाई मूरिख मूल गंवाया ॥ ४. दा० नि० बैन भी थाके । ५. गु० जरा हाक दी सभ मति थाकी (?) ६. गु० थाकसि । ७. दा० नि० चेति चेति मेरे मन चंचल । ८. गु० लै घटु जाइ (?) । ९. गु० जासी (राज० मूल) । १०. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : जिस कउ सबद बसावै अंतरि चूकै तिसहि पिआसा । हुकमै बूझै चउपड़ि खेलै मनु जिणि ढालै पासा ॥ [तुल० ऊपर की अंतिम पंक्ति]। ११. दा० नि० जे जन जांनि जपैं जगजीवन । १२. दा० नि० ग्यांन । १३. गु० कहु कबीर ते जन कबहुं न हारहिं । १४. दा० नि० जांनि रे ढारहिं पासा । १५. गु० में उक्त पद की प्रथम दोनों पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं ।

[८९]

दा० आसावरी ३७, नि० गौड़ी १६१, बी० ८५, बीभ० २६—
१. बी० भूला । २. बी० जा घरवा महं । ३. दा० नि० बोलै डोलै । ४. दा० नि० तन । ५. दा० नि० हस्ती । ६. नि० बहल । ७. दा० नि० बाहनीं । ८. दा० नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : बहुत बंध्या परिवार कुटंब मैं कोई नहीं किस केरा । जीवत आंखि मूंदि किन देखौ संसार अंध अंधेरा ॥ ९. दा० मारि चलाया, नि० मारि उठायौ । १०. बी० गांठी बांधि खरच नहिं पठयौ । ११. दा० नि० आप न कीया फेरा । १२. दा० नि० भीतरि बीबी । १३. दा० साल, नि० माल । १४. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : बाजी की बाजीगर जांनैं की बाजीगर का चेरा । चेरा कबहुं उझकि नां देखै चेरा अधिक चितेरा ॥ । १५. बी० कहहिं कबीर सुनहु हो संतो । १६. बी० एह पद का करहु निबेरा, दा० बहुरि न होइगा फेरा । [पुन० तुल० पंक्ति ५ में 'बहुरि न कीन्हौं फेरा'] ।

[९०]

नि० गौड़ी १३६, बी० ९१, शबे० चिता० उप० ३८—
१. बी० काहु । २. नि० देख्या । ३. नि० मिलिया । ४. नि० वै (पंजाबी मूल), बी० में

उदै अस्त की बात कहतु हौं सब का किया बिबेका हो[५] ॥ टेक ॥
घाटै बाटै[६] सब जग दुखिया क्या[७] गिरही बैरागी हो[४] ।
सुकदेव अचारज[८] दुख के कारनि गरभ सौं[९] माया त्यागी हो[४] ॥ १ ॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया[१०] तपसी कौं दुख दूनां हो[४] ।
आसा त्रिसनां सब कौं ब्यापै[११] कोई महल न सूनां हो[४] ॥ २ ॥
सांच कहौं तौ कोई न मांनैं[१२] झूठ कहा नहिं जाई[१३] हो[४] ।
ब्रह्मां बिस्नु महेसुर दुखिया[१४] जिन यहु राह चलाई[१५] हो[४] ॥ ३ ॥
अवधू दुखिया भूपति दुखिया रंक दुखी बिपरीती[१६] हो[४] ।[१७]
कहै कबीर सकल जग दुखिया संत सुखी मन जीती हो[४] ॥ ४ ॥[१८]

[६१]

[१]जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे ।[२]
टारे टरत नहीं निस बासुरि[३] बिडरत नांहिं बिडारे ॥ टेक ॥
अपनैं अपनैं रस के लोभी करतब[४] न्यारे न्यारे[५] ।
अति अभिमांन बदत नहिं काहू[६] बहुत लोग[७] पचि हारे[८] ॥ १ ॥
बुधि मेरी किरखी गुर मेरौ बिझुका अक्खिर दोइ रखवारे ।[९]
कहै कबीर अब चरन देइहौं[१०] बेरियां भली[११] संभारे ॥ २ ॥[१२]

नहीं है । ५. बी० ताकर करहु बिवेका, नि० सबै बमेका कीया वै । ६. नि० हाटै बाटै, बी० बाटै बाटै । ७. बी० का । ८. बी० सुक्राचारज । ९. बी० गरभहिं । १०. बी० जोगी जंगम तें अति दुखिया । ११. बी० सब घट ब्यापै । १२. बी० तौ सब जग खीझै । १३. नि० त्रिस्नां मैं (पुन० ऊपर की पंक्ति में) सब लोई दुखिया तपति तपै सब कोई वै । १४. बी० कहहिं कबीर तेई भौ दुखिया । १५. बी० जिन या चाल चलाई । १६. नि० ब्यतरीता (उर्दू मूल) । १७-१८. बी० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं ।

[६१]

दा० नि० मलार १, शबे० (१) चिता० उप० ८८ तथा (२) चिता० ३, शक० प्रभाती १३—
१. शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त : अरे मन मूरख खेतीवान । २. शबे० में इसके बाद अतिरिक्तः पांच मिरग पच्चीस मिरगनी तामैं एक सिंगारे । शक० में भी यह अतिरिक्त पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के पूर्व मिलती है । ३. शबे० मारे मरैं टरैं नहिं टारे, शक० निस दिन चरत टरैं नहिं टारे । ४. शबे० शक० चरत फिरैं । ५. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : काम क्रोध दुइ मुख्य मिरग हैं नित उठि चरत सबारे । ६. शबे० अति परचंड महा दुख दारुन, शक० मन अभिमान दबत नहीं काहू कै । ७. शबे० वेद शास्त्र । ८. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : धनुष बान लै चढ़ेउ पारधी भाव भगति करि मारा । ९. शबे० सत की बेड़ धर्म की खाईं गुर का सबद रखवारा, शक० बुधि करु बेढ़ि सुरति करु टाटी गुरु के शब्द रखवारे । १०. दा० नि० अब खान न देहूं । ११. शबे० अब की बेर । १२. शबे० में इससे मिलता-जुलता एक पद अन्यत्र [दे० शबे० (२) चिता० ३] भी मिलता है; किन्तु उसका पाठ अपेक्षाकृत अधिक दूर का है, अतः अलग से उद्धृत किया जा रहा है—

[६२]

जियरा[१] जाहुगे[२] हंम[३] जांनीं[४] ।
आवैगी कोई लहरि लोभ की[५] बूड़ैगा[६] बिनु पांनीं ॥ टेक ॥
राज करंता राजा जाइगा रूप दिपंती रांनीं ।[७]
जोग करंता जोगी जाइगा कथा सुनंता ग्यांनीं[८] ॥ १ ॥[९]
चंद जाइगा सूर जाइगा जाइगा पवन औ पांनीं ।[१०]
कहै कबीर तेरा संत न जाइगा रांम भगति ठहरांनीं[११] ॥ २ ॥

[६३]

मन[१] बानियां[२] बांनि न छोड़ै ।
जाकै घर मैं कुबुधि बिरयांणीं[३] (बनांनीं?) पल पल मैं[४] चित चोरै[५] ॥टेक॥
जनम जनम कौ मारा बनियां[६] अजहूं पूर न तोलै ।
कूर कपट की पासंग डारै[७] फूला फूला[८] डोलै ॥ १ ॥[९]

जतन बिन मिरगन खेत उजाड़े ।
पांच मिरग पच्चीस मिरगनी तिनमें तीन चितारे ।
अपने अपने रस के भोगी चुगते न्यारे न्यारे ॥
पांच डार सुवटन की आई उतरे खेत मझारे ।
हा हा करत बाल लै भागे हारि रहे रखवारे ॥
सुनियो रे हम कहत सबन को ऊँचे हांक हंकारे ।
यह नर देह बहुरि नहिं पैहौ काहे न करत संभारे ॥
तन कर खेती मन कर बाड़ी मूल सुरत रखवारे ।
ज्ञान दान औ ध्यान धनुष करि क्यों नहिं लेत संभारे ॥
सार सबद बंदूक सुरति धरि मारे तीन चितारे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो उबरे खेत तिहारे ॥
शबे० में दोनों पद दो विभिन्न आदर्शों से आये हुए ज्ञात होते हैं ।

[६२]

नि० गौड़ी १६८, शबे० (१) चिता० उप० ६८—
१. नि० जीवड़ा । २. नि० जाहिगौ । ३. नि० मैं । ४. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : पांच तत्त की बनो है पिंजरा जामैं बस्तु बिरानी । ५. शबे० आवत जावत कोइ न देखै । ६. शबे० डूबि गयौ । ७. शबे० राजा जैहैं रानी जैहैं और जैहैं अभिमानी । ८. नि० जाइगा बड़ा बड़ा ग्यांनीं । ९. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : पाप पुन्न की हाट लगी है धरम दंड दरबानी । पांच सखी मिलि देखन आईं एक से एक सियानी । १०. नि० गंगा जाइगी जमुनां जाइगी जाका निरमल पांनीं । ११. शबे० कहैं कबीर हरि भक्त न जैहैं जिनकी मति ठहरानी ।

[६३]

नि० आसावरी १८७, शबे० (१) चिता० उप० २४—
१. नि० रे मन । २. नि० बांणियां । ३. शबे० घर में दुबिधा कुमति बनी है । ४. नि० छिन छिन मैं । ५. शबे० में यह पाँचवीं पंक्ति के बाद है । ६. नि० मारयौ कूट्यौ । ७. शबे० पासंग के अधिकारी लै लै । ८. शबे० भूला भूला (उर्दू मूल) । ९. नि० में यह पंक्ति ऊपर

पांच कुटुंबी महा हरांमीं[१०] अंम्रित मैं[११] बिख घोलै ॥[१२]
कहै कबीर सुनौं भाई साधौ[१३] कुटिल[१४] गांठि नां खोलै ॥ २ ॥

[६४]

नांम (रांम ?) भजा सोइ जीता जग मैं।
नांम (रांम ?) भजा सोइ जीता रे[१] ॥ टेक ॥
हाथ सुमिरनीं पेट[२] कतरनीं पढ़ै भागवत गीता रे[३] ।
हिरदै[४] सुद्ध किया[५] नहिं बौरे[६] कहत सुनत दिन बीता[७] रे ॥ १ ॥
आंन देव की पूजा कीन्हीं गुर (हरि ?) से रहा अमीता रे ।[८]
धन जोबन तेरा यहीं रहैगा अंत समय चलि रीता रे ॥ २ ॥[९]
बांवरिया बन मैं फंद रोपै संग मैं फिरै निचीता[१०] रे ।
कहै कबीर काल यौं मारै[११] जैसै म्रिग कौं चीता[१२] रे ॥ ३ ॥

[६५]

ऐसी नगरिया मैं[१] केहि[२] बिधि रहनां ।
नित उठि कलंक[३] लगावै सहनां ॥ टेक ॥
एकै कुवां[४] पांच पनिहारी ।[६]
एकै लजु[५] भरैं नौ नारी ॥ १ ॥[७]
फटि गया कुवां बिनसि गई बारी ।[८]
बिलग भईं[९] पांचौं पनिहारी ॥ २ ॥

की पाँचवीं पंक्ति के बाद है। १०. शबे० कुनबा वाके सकल हरामी। ११. नि० इंम्रित में। १२. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : तुमहीं जल में तुमहीं थल में तुमहीं घट घट बोले। १३. शबे० कहै कबीर वा सिख को (?) डरिए। १४. शबे० हिरदै।

[६४]

नि० सोरठि ८०, शबे० (१) चिता० उप० ७२—
१. नि० साधौ रांम भज्या जे जीता। ते नर बिमुख फिरै गोबिंद सूं आठ गांठि गया रीता ॥
२. हिरदै। ३. नि० में पंक्तियों के अंत में 'रे' नहीं है। ४. नि० हिरदौ। ५. नि० होत। ६. नि० कबहूं। ७. नि० सुंणत किता दिन बीता। ८-९. नि० में इन पंक्तियों के स्थान पर है : साहूकार सदा हरि सुमिरै बिराज भंडारै कीता। जासूं साहिब सदा सनमुखा बैकुंठा तणां बदीता ॥ १०. शबे० बावरिया ने (?) बावर डारी फंद जाल सब कीता रे (पंजाबी मूल)। ११. शबे० काल आइ खैहै। १२. नि० ज्यूं म्रिघा कूं चीता।

[६५]

नि० भैरू ४२, शबे० (२) चिता० ३८—
१. नि० इस नगरी में। २. नि० किस। ३. तलब। ४. नि० एक कूवो। ५. नि० नेज (उर्दू मूल)। ६-७. तुल० गु० गउड़ी १२-४ यथा: कूअटा एकु पंच पनिहारी। टूटी लाजु भरै मतिहारी ॥ ८. नि० टूटि गई नेज सूक गई बारी। ९. नि० चली निरास।

कहै कबीर छांड़ि मैं मेरा[१०] ।
उठि गया हाकिम[११] लुटि गया डेरा ॥ ३ ॥[१२]

[९६]

नांम (रांम ?) सुमिरि नर बावरे[१] ।
तोरी सदा न देहियां[२] रे[३] ॥ टेक ॥[४]

यह माया कहौ कौंन की काकै संग लागी रे[५] ।
गुदरी सी उठि जाइगी चित चेति अभागी रे[६] ॥ १ ॥
सोनैं की[७] लंका बनीं[८] भइ धूर की धानीं रे[९] ॥
सोइ रावन की साहिबी[१०] छिन मांहि बिलानीं रे ॥ २ ॥
बारह जोजन कै बिषै[११] चले[१२] छत्र की छहियां[१३] रे ॥
सोइ जरिजोधन कहं गए मिलि माटी महियां रे[१४] ॥ ३ ॥[१५]
कहै कबीर पुकारि कै इहां कोइ न अपनां रे ।[१६]
यहु जियरा चलि जाइगा जस रैंनि का सपनां रे[१७] ॥ ४ ॥[१८]

---

१०. शबे० कहै कबीर नाम बिन बेड़ा (तुकहीन)। ११. नि० साहिब। १२. इस पद की तीसरी, चौथी, पाँचवीं तथा छठी पंक्तियाँ दा३, दा४, दा५ में राग आसावरी के अन्तर्गत पद २ में मिलती हैं ; किन्तु शेष पंक्तियाँ नि० तथा शबे० से नितांत भिन्न हैं और तुक तथा प्रसंग की दृष्टि से भी उपयुक्त नहीं ज्ञात होतीं। वहाँ पूरे पद का पाठ इस प्रकार है—

चलि गयौ जुगिया बस्ती नगरियां। बहुरि न आया दूजी बरियां ॥
माटी की भीति पवन की झुपरिया। झूपरी जरि गई जोगी न जरिया ॥
एकै कुवां पंच पनिहारी। एकै लेज भरैं नव नारी ॥ (इस स्थल से तुक-भिन्नता द्रष्टव्य)
निघट्या नीर सूखि गई बारी। बिगसि चली पंचू पनिहारी ॥
कहै कबीर मैं सरनि मुररिया। सोई सेऊं जिनि यहु जग धरिया ॥ (तुक पुनः परिवर्तित)

[९६]

नि० बिलावल १८, शबे० (२) उप० २१—

१. नि० रे मन मूरिख बावरे। २. नि० देही। ३. नि० में पंक्तियों के अंत का 'रे' नहीं है। ४. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : काइं न सुमिरै आपनैं राजा रांम सनेही। ५. नि० या माया काकी सगी ताकूं देखि ग्रबांनां। ६. नि० अंध चेति अयांनां। ७. नि० कंचन की। ८. नि० हुती। ९. नि० ह्वै गई धूल धांनीं। १०. नि० वो रावन वा साहिबी। ११. शबे० सोरह जोजन के मध्य में। १२. नि० चलते। १३. शबे० छांहीं। १४. शबे० सोइ दुर्जोधन मिलि गए माटी के मांहीं। १५. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त—

भवसागर में आइके कछु कियौ न नेका रे। यह जियरा अनमोल है कौड़ी को फेंका रे ॥
[तुल० दा० नि० रांमकली २७-७, ८ तथा गु० बिलावल ३-७, ८ यथा : जीवन अछित (गु० जरा जीवन) जोबन गया कछु किया न नीका। इहु हीरा (गु० जिअरा) निरमोल को कौड़ी लगि बीका ॥]

१६-१७. नि० या संसार कुसार है हरि बिन कोइ न अपनां। कहै कबीर यूं जाइया ज्यूं रैनि का सुपनां ॥ १८. नि० में उपर की दूसरी तथा तीसरी पंक्तियाँ सातवीं पंक्ति के बाद हैं।

[६७]

बिखै बांचु हरि रांचु समझु मन बउरा रे ॥ टेक ॥[१]

निरभै होइ न हरि भजै[२] मन बउरा रे गह्यौ न[३] रांम[४] जहाज ।[५]

तन धन सौं का गर्बसी मन बउरा रे भसम किरिम जाकौ साजु[६] ॥ १ ॥

[७]कालबूत की हस्तिनी मन बउरा रे चित्र[८] रच्यौ जगदीस ।

कांम अंध[९] गज बसि परै मन बउरा रे अंकुस सहियौ सीस ॥ २ ॥

मरकट मूंठी[१०] अनाज की[११] मन बउरा रे लीन्हीं हाथ[१२] पसारि ।

छूटन की संसै परी[१३] मन बउरा रे नाचेउ घर घर बारि[१४] ॥ ३ ॥[१५]

ज्यौं ललनीं[१६] सुअटा[१७] गह्यौ मन बउरा रे माया यहु ब्यौहार[१८] ।

जैसा रंग कुसुंभ का मन बउरा रे त्यौं पसरचौ पासारु ॥ ४ ॥[१९]

नावनु[२०] (न्हांवन ?) कौं तीरथ घने मन बउरा रे पूजन कौं बहु देव ।

कहै कबीर छूटन नहीं[२१] मन बउरा रे छूटनु[२२] हरि की सेव ॥ ५ ॥

[६८]

जाइ रे[१] दिन ही दिन देहा ।

करि लै बौरी[२] रांम[३] सनेहा ॥ टेक ॥

बालापन गयौ जोबन[४] जासी । जरा मरन भौ संकट आसी[५] ॥ १ ॥

पलटे केस नैंन जल छाया । मूरिख चेत बुढ़ापा आया ॥ २ ॥

रांम कहत लज्जा क्यूं[६] कीजै । पल पल आउ घटै तन छीजै ॥ ३ ॥

---

[६७]

गु० गउड़ी ५७, बी० चांचर २—

१. बी० में इसके स्थान पर है : जारो जग का नेहरा मन बौरा हो जामें सोग संतापु समुझु मन बौरा हो। २. बी० बिनु पानी नल बूड़िहौ। ३. बी० टेकहु। ४. बी० नाम। ५. बी० में यह १३वीं पंक्ति है। ६. गु० में यह पंक्ति नहीं है। ७. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त : बिना नेव का देवघरा मन बौरा हो बिन कहगिल की ईंट ॥ ८. गु० चलत (उर्दू मूल)। ९. गु० काम सु आइ। १०. गु० मुसटी। ११. बी० स्वाद की। १२. बी० घर घर नाचेउ द्वार। १५. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : ऊंच नीच जानेउ नहीं मन बौरा हो घर घर खाएउ डांग समुझु मन बौरा हो। १६. बी० ललनी। १७. बी० सुवना। १८. बी० ऐसे भरम बिचार। १९. बी० में यह पंक्ति नहीं है, इसके बाद अतिरिक्त : पढ़ें गुनें का कीजिए मन बैरा हो अंत बिलैया खाय समुझु०। सूने घर का पाहुना मन बौरा हो ज्यौं आवै त्यौं जाय समुझु० ॥ २०. बी० नहाने। २२. बी० छांड़िहु।

[६८]

दा० आसावरी ४१, नि० आसावरी ३६, स० ६७-२, शक० सायरी २०—

१. शक० जारौ मैं या। २. शक० बंदे। ३. शक० नाम। ४. शक० युवापन। ५. दा४ संकुट आइसी। ६. शक० नहिं। ७. दा१ एकै। ८. शक० में इसके पश्चात् अतिरिक्त :

लज्जा कहै मैं जन की दासी । एक[७] हाथि मुदिगर दूजै हाथि पासी ॥ ४ ॥[८]
कहै कबीर तिन[९] सरबस हारचौ[१०] । रांम नांम जिन मनहुं[११] बिसारचौ ॥ ५ ॥

(९) काल

[९९]

क्या[१] मागौं किछु थिर न रहाई ।
देखत नैंन चला[२] जग जाई ॥ टेक ॥
इक लख पूत सवा लख नाती । तिहि[३] रावन घर दिश्रा न बाती ॥ १ ॥
लंका सा कोट समुंद[४] सी खाई । तिहि[३] रावन की[५] खबरि न पाई ॥ २ ॥[६]
[७]आवत संग न जात संगाती । कहा भयौ दरि[९] बांधे हाथी ॥ ३ ॥[१०]
[८]कहै कबीर अंत की बारी । हाथ झारि जैसैं चला जुवारी ॥

[१००]

चारि दिन अपनीं नौबति चले बजाइ[१] ।
उतानैं खटिया गड़िले मटिया[२] संगि न कछु लै जाइ[३] ॥ टेक ॥

माया कहै मैं अबला बलिया । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर छलिया ॥ ९. शक० जिन । १०. दा० नि० तिनहूं सब हारचौ । ११. शक० मन से ।

[९९]

दा० गौड़ी ९८, नि० गौड़ी ११२, शबे० (१) चिता० उप० ६४, गु० आसा २१-१, २,३ तथा भैरउ २-३, ५, शक० सायरी १९—
१. दा० नि० का । २. दा० नि० चल्या । ३. शबे० शक० जा, दा० नि० ता । ४. शक० शबे० समुद्र । ५. गु० घर । ६. शक० तथा शबे० में इसके बाद की अतिरिक्त पंक्तियाँ—

सोने के महल रूपे के छाजा । छोड़ि चले नगरी के राजा ॥
कोइ करै मैहल कोई करै टाटी । उड़ि जाय हंस पड़ी रहै माटी ॥

७-८ गु० आसा २१ में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, प्रत्युत भैरउ राग के अंतर्गत दूसरे पद में मिलती हैं । आसा २१ में अतिरिक्त पंक्तियों का पाठ है—

चंद सूरज जाकै तपत रसोई । बैसंतरु जाकै कपरे धोई ॥१॥
गुरमति रामै नामि बसाई । असथिरु रहै न कतहूं जाई ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई । राम नाम बिनु मुकति न होई ॥

प्रथम पंक्ति के लिए तुलनीय : जायसी, पदमावत २६६–३ : सूरज जेहि के तपै रसोई । बैसंतरु निति धोती धोई ॥ ९. शबे० दल । १०. तुल० गु० भैरउ २-३ यथा : आवत संग न जात संगाती । कहा भइओ दरि बांधे हाथी ॥ तथा बी० ९९-५ यथा : आवत संग न जात संघाती । काह भए दल बांधल हाथी ॥ ११. तुल० गु० भैरउ २-५ यथा : कहि कबीर किछु गुन बीचारि । चलै जुआरी दुइ हथ झारि ॥

[१००]

दा० केदारौ १६, नि० केदारा १७, स० ६८, १ गु० केदारा ६, शबे० (२) चिता० ५—
१. दा० नि० स० प्रांणीं लाल औसर चल्यौ रे बजाइ । २. दा० नि० स० मुठी एक मटिया मुठी एक कठिया, गु० इतनकु खटीआ गठीआ मटीआ । ३. दा० नि० स० संगि काहू कै

देहरी बैठी मेहरी रोवै[४] द्वारै[५] लगि सगी माइ ।
मरहट[६] लौं सब लोग कुटुंब मिलि[७] हंस अकेला[८] जाइ ।। १ ।।
वहि सुत वहि बित वहि पुर पाटन[९] बहुरि न देखै[१०] आइ ।
कहत कबीर भजन बिन बंदे[११] जनम अकारथ जाइ ।। २ ।।

[१०१]

तातैं सेइए नाराइनां ।[१]
रसनां रांम नांम हितु जाकै कहा करै जमनां[२] ।। टेक ।।
जौ तुम्ह पंडित आगम जानौं बिद्या ब्याकरनां ।[३]
तंत मंत[४] सब औखधि जानौं अंति तऊ मरनां ।। १ ।।
राज पाट[५] अरु छत्र सिंघासन[६] बहु सुंदरि रमनां ।
पांन कपूर सुबासिक चंदन[७] अंति तऊ मरनां ।। २ ।।
जोगी जती तपी संन्यासी बहु तीरथि भ्रमनां ।[९]
लुंचित मुंडित[८] मोनि जटाधर अंति तऊ मरनां ।। ३ ।।[१०]
सोचि बिचारि सबै जग देखा[११] कहूं न ऊबरनां ।
कहै कबीर सरनाई आयौ[१२] मेटि जनम[१३] मरनां ।। ४ ।।

[१०२]

कुसल खेम[१] अरु[२] सही सलामति ए दोइ काकौं दीन्हां रे[३] ।
आवत जात दुहूंधां[४] लूटे सरब तत्त[५] हरि लीन्हां रे ।। टेक ।।[६]

न जाइ । ४. दा१ दा२ देहरी लगि तेरी मेहरी सगी रे, दा३ नि० देहली लग तेरी सगी रे सहेली । ५. दा० नि० स० फलसा । ६. शबे० मरघट । ७. दा१ दा२ सब लोग कुटुंबी, दा३ दा४ सब लोग सगौ है, नि० सगो लोग कुटुंबी । ८. दा० अकेलौ, नि० एकलौ, गु० इकेला (उर्दू मूल) । ९. दा० नि० स० कहां वै लोग कहां पुर पटण । १० दा० नि० स० मिलिबौ । ११. दा१ कहै कबीर जगनाथ भजन बिनु, दा३, दा४ नि० स० कहै कबीर राजा रांम भजन बिनु, गु० कहतु कबीरु राम की न सिमरहु ।

[१०१]

दा० आसावरी ४७, नि० आसावरी ४२, गु० आसा ५, स० ६८-४—
१, गु० ताते सेवीअले रामना । २. दा० नि० स० प्रभू मेरी दीन दयाल दया करणां । ३. गु० आगम निरगम जोतिक जानहि बहु बहु बिआकरना । ४. गु० तंत्र मंत्र । ५. गु० राज भोग । ६. दा० नि० स० सिंघासन आसन (पुन०) । ७. दा० नि० स० चंदन चोर कपूर बिराजत (दा२ बिराजित) । ८. गु० लुंजित मुंजित (उर्दू मूल) । ९-१०. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ पद के आरम्भ में ही आती हैं । ११. गु० बेद पुरान सिम्रित सभ खोजे । १२. गु० कहु कबीर इउ रामहि जंपउ । १३. दा१ जांमन ।

[१०२]

दा० नि० बिलावल ४, बी० क० ८, स० ६८-५—
१. बी० क्षेम (बीभ० खेम) कुसल । २. बी० औ । ३. बी० कहहु कवन कौ दीन्हां हो । ४. बी० दोऊ बिधि । ५. बी० तंग । ६. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : माया

सुर नर मुनि जति[७] पीर अवलिया मीरां पैदा कीन्हां रे ।
कोटिक भए कहां लगि बरनौं[८] सभनि[९] पयांनां दीन्हां रे[१०] ॥ १ ॥
धरती[११] पवन अकास जाहिंगे[१२] चंद जाहिंगे[१२] सूरा रे ।
हंम नांहीं तुम्ह नांहीं रे भाई रहै रांम भरपूरा रे[१३] ॥ २ ॥
कुसलहिं कुसल करत[१४] जग खीनां[१५] पड़ै काल भै पासी रे[१६] ।
कहै कबीर सबै जग बिनसै[१७] रहै रांम अबिनासी रे ॥ ३ ॥

[१०३]

को न[१] मुवा[२] कहु पंडित जनां ।
सो समुझाइ कहहु मोहिं सनां[३] ॥ टेक ॥
[४]मूए ब्रह्मा बिस्नु महेसा । पारबती सुत मुए गनेसा ॥
मूए चंद मुए रबि सेसा । मुए हनुमत[५] जिन्हि बांधल सेता[६] ॥ १ ॥
मूए कृस्न मुए करतारा । एक न मुवा जो सिरजनहारा ॥
कहै कबीर मुवा नहिं सोई । जाकै आवागवन न होई ॥ २ ॥

[१०४]

काया बौरी चलत प्रांन काहे रोई[१] ।[२]
कहत हंस[३] सुन काया बौरी मोर तोर[४] संग न होई[५] ॥ टेक ॥

मोह मद मैं पीया मुगध कहै यहु मेरी रे । दिवस चारि भलैं मन रंजै यहु नांहीं किस केरी रे ॥
७. दा० नि० स० जन । ८. बां० कहं लौं (बांभ० कहां लगि) गनौं अनंत कोटि लौं । ९. बी० सकल । १०. बां० कीन्हां हो (बां० में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो') । ११. बी० पानी । १२. दा० नि० स० जाइगा । १३. बां० ए भी जाहिंगे वो भी जाहिंगे परत न काहु को पूरा हो । १४. बी० कहत । १५. बी० बिनसै (पुन० दे० अगली पंक्ति का प्रथम चरण) । १६. बी० कुसल काल की फांसी हो । १७. बी० सारी दुनिया बिनसै । १८. बी० रहल ।

[१०३]

दा० गौड़ी ४५, नि० गौड़ी ४९, बी० ४५, बीभ० ६३—
१. दा० नि० कौंन (उर्दू मूल), बांभ० कौना । २. दा० नि० मरै । ३. दा० नि० हंम सनां, बांभ० मोहि स्याना । ४. दा० नि० में इसके आगे की पंक्तियाँ नहीं मिलतीं, इनके स्थान पर अन्य दो पंक्तियाँ हैं—

माटी माटी रही समाइ । पवनैं पवन लिया संगि लाइ ॥
कहै कबीर सुनि पंडित गुनीं । रूप मुवा सब देखै दुनीं ॥

५. बीभ० हलिवत । ६. बीभ० सरसेता ।

[१०४]

नि० बिहंगड़ौ १३, शबे० (२) चिता० १४, शक० हंसावली ५—
१. दा० नि० चलत प्रांन क्यं रोई रे काया । २. नि० तथा शक० में इसके बाद अतिरिक्त : तुम तो हंस गवन किया घर कूं हम कूं चल्या बिगोई । (नि० में अतिरिक्त : परम हंस चलत प्रांन यं रोई ।) । ३. शबे० प्रान (पुन० तुल० प्रथम पंक्ति) । ४. नि० हम तुम । ५. शबे०

काया पाइ बहुत सुख कीन्हां[6] नित उठि[7] मलि मलि धोई।[11]
सो[8] तन छिया छार होइ जैहै[9] नांउं न लेइहै[10] कोई ॥ १ ॥[12]
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक[13] सेस सहस मुख जोई[14]।
जिन जिन देह धरी त्रिभुवन मैं[15] थिर न रहा है[16] कोई ॥ २ ॥
पाप पुन्नि दोइ जनम संघाती[17] समुझि देखु नर लोई।
कहै कबीर प्रभु पूरन की गति[18] बूझै[19] बिरला कोई ॥ ३ ॥

[१०५]

संतौ ई[1] मुरदन के[2] गांउं।
तन धरि कोई रहन न पावै काकौ लीजै नांउं[3] ॥ टेक ॥

पीर मुवा[4] पैगंबर मूवा[5] मूवा[5] जिंदा जोगी[6]।
राजा मूवा[5] परजा मूवा[5] मूवा[6] बैद औ रोगी ॥ १ ॥
चंदौ मरिहै सुरजौ मरिहै मरिहै धरनि अकासा।[7]
चौदह भुवन चौधरी मरिहै[8] काकी धरिऔ आसा[9] ॥ २ ॥
नौ हू मूवा[5] दस हू मूवा[5] मूवा[5] सहस अठासी।
तैंतिस[5] कोटि देवता मूए[5] परे[10] काल की पासी ॥ ३ ॥
एकहिं जोति सकल घट ब्यापक[11] दूजा तत्त न होई।[12]
कहै कबीर सुनौ रे संतौ[13] भटकि मरै[14] जनि कोई। ४ ॥[15]

में यह यथा चौथी पंक्ति, इसके बाद अतिरिक्त : तोहिं अस मित्र बहुत हम त्यागा संग न लीन्हां कोई। ऊसर खेत के कुसा मंगाए चांचर चंवर कै पानी। जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा कै मेहमानी ॥ ६. नि० हे काया तुम्हरे संग में बहुत सुख कीन्हा, शक० तोहरे संग बहुत सुख कैली। ७. नि० नित प्रति। ८. नि० यौ। ९. नि० जाइगा। १०. नि० लेगा। ११-१२. शबे० में यह दोनों पंक्तियाँ पहली के बाद आती हैं। १२. शक० में इसके पश्चात् : हंस कहै सुन काया बौरी मोहिं तोहिं संग न होई। तोहि अस कोटि सोहबती छांड़ल संग न चलिहै कोई ॥ (तुल० शबे० की अतिरिक्त पंक्ति)। १३. नि० ब्रह्मा बिश्न महेश आदि दे। १४. शबे० होई। १५. शबे० जो जो जनम लियो बसुधा में। १६. नि० रहीमां। १७. नि० पाप पुन्नि मेरै चलै संघाती। १८. शबे० अभिअंतर की गति। १९. शबे० जानत।

[१०५]

नि० आसावरी ६४, शबे० (२) चिता० १२—
१. नि० यौ। २. नि० मुरदौं का। ३. शबे० में यह पंक्ति नहीं है। ४. शबे० मरे। ५. शबे० मरिगे। ६. नि० भोगी। ७. नि० चंद भी जाहिंगे सूर जाहिंगे जाहिंगे धरनि अकासा। ८. नि० चौदह लोक जल भीतर जाहिंगे। ९. शबे० इनहू कै का आसा। १०. शबे० परिगे। ११. शबे० नाम अनाम रहे जो सदहीं। १२. नि० और न दुतिया लोई। १३. नि० सुनौ रे संतौ। १४. नि० भरमि पड़ौ। १५. नि० में ऊपर की ७वीं तथा ८वीं पंक्तियाँ तीसरी चौथी के स्थान पर आती हैं।

(१०) भगति सजेवनि

[१०६]

हंम न मरैं मरिहै संसारा ।
हंमकौं मिला जिआवनहारा[१] ॥ टेक ॥
[२]साकत मरहिं संत जन जीवहिं । भरि भरि रांम रसांइन पीवहिं ॥ १ ॥[३]
[४]हरि मरिहै तौ हंमहूं मरिहैं । हरि न मरै हंम काहे कौ मरिहैं ॥ २ ॥[५]
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा । अमर भए सुखसागर पावा ॥ ३ ॥[६]

[१०७]

अब हंम[१] सकल[२] कुसल करि मांनां ।
सांति[३] भई जब[४] गोबिंद जांनां ॥ टेक ॥
तन महिं[५] होती कोटि उपाधि । उलटि भई सुख सहज समाधि ॥ १ ॥
जम तैं[६] उलटि भया[७] है रांम । दुख बिनसे[८] सुख किया बिसरांम ॥ २ ॥[११]
[९]बैरी उलटि भए हैं मीता । साकत उलटि सजन[१०] भए चीता ॥ ३ ॥[१२]
आपा जांनि उलटिलै आप[१३] । तौ नहिं ब्यापै तीन्यूं ताप[१४] ॥ ४ ॥
अब मन उलटि सनातन हूवा । तब जांनां जब[१५] जीवत मूवा ॥ ५ ॥
कहै कबीर सुख सहजि समावउं[१६] । आप न डरउं न और डरावउं[१६] ॥

---

[१०६]

दा० गौड़ी ४३, नि० गौड़ी ४७, स० ६९-२, गु० गउड़ी १२-२ तथा १३-४—
१. तुल० गु० १२-२ यथा : मैं न मरउं मरिबो संसारा । अब मोहिं मिलिओ है जीआवनहारा । [किन्तु वहाँ शेष पंक्तियों से असंबद्ध]। २. दा० नि० स० में इसके पूर्व अतिरिक्त : अब न मरौं मरनैं मन मांनां । तेई मूए जिनि रांम न जांनां ॥ दा५ गौड़ी ३१-१ में इस पंक्ति की पुनरावृति, यथा : अब कैसे मरूं मरन मन मानत । मरि जाते तो राम न जानत ॥ दा५ का यह पद गु० में भी गउड़ी २० में मिलता है जहाँ इस पंक्ति का पाठ है : अब कैसे मरउं मरनि मनु मानिआ । मरि मरि जाते जिन राम न जानिआ । ३. तुल० गु० १३-४ यथा : साकत मरहिं संत सभि जीवहि । राम रसाइनु रसना पीवहिं । ४. तुल० सासी० १७-१८३ (पाठ वही); किंतु सासी० में यह प्रक्षिप्त प्रांतस्थ शोध या मार्जिनैलिया ज्ञात होती है, क्योंकि साखी में दोहे के समान दो पंक्तियाँ होती हैं और यहाँ केवल एक पंक्ति मिलती है। ५-६. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं मिलतीं।

[१०७]

दा० गौड़ी १५, नि० गु० गौड़ी १७, स० ६९-१—
१. गु० मोहि । २. गु० सरब । ३. दा० नि० स० स्वांति । ४. दा० तब । ५. दा० नि० स० मैं । ६. दा१ थैं । ७. गु० भए । ८. दा० नि० स० बिसरया । ९. दा३ तथा नि० में यह पंक्ति ऊपर की पंक्ति से पूर्व आती है । १०. गु० सुजन । ११-१२. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की पहली पंक्ति के पूर्व आती हैं । १३. गु० आपु पछानै आपै आप । १४ गु० रोगु न बिआपै तीनौ ताप । १५. दा० नि० स० तब हम जानां । १६. दा० नि० समाऊं—डराऊं ।

(11) अनभई भेद बांनीं

[१०८]

अवधू सो जोगी गुर मेरा ।
जो या[1] पद का करै निबेरा ॥ टेक ॥
तरवर एक पेड़[2] [पींड ?] बिन ठाढ़ा बिन फूलां फल लागा ।
साखा पत्र कछू[3] नहिं वाकै अष्ट गगन मुख[4] बागा[5] ॥ १ ॥[6]
पग बिनु निरति करां बिनु बाजा[7] जिभ्या हींनां गावै[8] ।
गावनहार कै रूप न रेखा सतगुर होइ लखावै[9] ॥ २ ॥[10]
पंखी[11] का खोज मींन का मारग कहै कबीर बिचारी[12] ।
अपरंपार पार परसोतम वा[13] मूरति[14] की बलिहारी ॥ ३ ॥

[१०९]

मैं सासुरे[1] पिय गौंहनि[2] आई ।[3]
सांई संगि साध नहिं पूजी[4] गयौ जोबन सुपिनैं[5] की नांईं ॥ टेक॥

---

[१०८]

दा० रामकली १३ नि० रामकली १४, स० ७०-२५, बी० २४, शबे० (१) भेद २६—
१. बी० यह । २. बी० मूल । ३. बी० किछौ, बाम० किछुवौ । ४. शबे० अष्ट कमल दल । ५. बी० गाजा, शबे० गाजै । ६. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : चढ़ तरवर दो पक्षी बैठे एक गुरू एक चेला । चेला रहा सो चुनि चुनि खाया गुरू निरंतर खेला ॥ ७. बी० पा बिन पत्र करह बिन तुंबा [पूर्व की पंक्ति के अनुसार वृक्ष में पत्र हैं ही नहीं, अतः बी० का पाठ असंगत; दूसरे उसी पंक्ति में 'पत्र' शब्द आ जाने से पुनः उसे इस पंक्ति में स्वीकार करने से पुनरुक्तिदोष भी आ जायगा ।] । ८. बी० शबे० बिनु जिभ्या (शबे० रसना) गुन गावै । ९. शबे० सतगुर मिलै बतावै । १०. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त—

गगन मंडल में उर्ध मुख कुइयां जहां अमी को बासा ।
सगुरा होइ सो भर भर पावै निगुरा जाइ निरासा ॥
सुन्न सिखर पर गइया बियानी धरती छीर जमाया ।
माखन रहा सो संतन खाया छाछ जगत भरमाया ॥

तुल० गोरख-बानी, सबदी २३ यथा : गगन मंडल मैं ऊंधा कूवां तहां अंमृत का बासा । सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा ॥ तथा सबदी १९३ : गिगन मंडल मैं गाइ बियाई कागद दही जमाया । छाछि छाणि पिंडता पीवी सिधां माषण खाया ॥ ११. बी० शबे० पंछी । १२. बी० शबे० कहहिं कबीर दोउ भारी । १३. बी० वीहि । १४. नि० सूरति (हिन्दी मूल) । यह पद यत्किंचित् पाठांतर के साथ आनंदघन नामक एक जैन कवि के नाम से भी मिलता है । पाठ के लिए दे० 'संतवाणी' (जयपुर से प्रकाशित एक मासिक पत्र) वर्ष २ अंक २ में श्री अगरचंद नाहटा द्वारा उद्धृत अंश (पृ० २४-२५) । नाहटा जी का कथन है कि यह पद आनंदघन के नाम से 'पुरानी प्रतियों' में नहीं मिलता, अतः 'पीछे से ही' किसी ने उसे आनंदघन के नाम से प्रचारित किया है ।

[१०९]

दा० आसावरी २५, नि० आसावरी २४, स० ७०-२६, बी० ५४, शबे० (१) चिता० १२—
१. दा० सासने (हिन्दी मूल) । २. दा२ गौहरि, दा४ गौहंम (दोनों हिन्दी मूल) । ३. बी०

पांच जनां मिलि मंडप छायौ तीनि जनां मिलि लगन लिखाई[६] ।
सखी सहेली[७] मंगल गावैं सुख दुख माथैं हलदि[८] चढ़ाई[९] ॥ १ ॥
नांनां रंगैं भांवरि[१०] फेरी गांठि जोरि बाबै पतियाई[११] ।
पूरि सुहाग भयौ बिनु दूलह[१२] चौकै रांड भई संग सांई[१३] ॥ २ ॥
अपनैं पुरिख मुख कबहूं न देख्यौ[१४] सती होत समझी समझाई[१५] ।
कहै कबीर हौं सर[१६] रचि मरिहौं[१७] तरौं[१८] कंत लै तूर बजाई[१९] ॥ ३ ॥

[११०]

मैं[१] कातौं हजारी (?) क सूत[२] ।
चरखुला[३] जिनि जरै[४] ॥ टेक ॥
जल जाई थल ऊपनीं[५] आई नगर मैं आप[६] ।
एक अचंभौ देखिया बिटिया ब्याही[७] बाप ॥ १ ॥[८]
बाबुल मेरा[९] ब्याह करि[१०] बर ऊतिम[११] लै आइ[१२] ।
जब लग बर पावै[१३] नहीं[१४] तब लग तूंही ब्याहि[१५] ॥ २ ॥[१६]

शबे० सांई के संग सासुर आई। ४. बी० शबे० संग न सूती स्वाद नहिं मानी (शबे० जान्यौ)। ५. बी० सपने। ६. बी० शबे० जना चारि मिल लगन सोधायो जना पांच मिलि मंडप छायौ। ७. बी० सहलेरी। ८. शबे० हरदी। ९. बीभ० चढ़ावहिं। १०. बी० शबे० नाना रूप परी मन भांवरि। ११. दा० नि० बाबै पतिताई (उर्दू मूल), बी० भाई पतियाई, शबे० भइ पति की आई। १२. बी० शबे० अर्वा दै ले चलो सुवासिन (बीभ० सोआसीनी) १३. दा० नि० स० चौक के रंगि धरयो सगौ भाई। १४. बी० शबे० भयो बिबाह चली विन दूलह (तुल० ऊपर : पूरि सुहाग भयौ बिन दूलह)। १५. बी० शबे० बाट जात समधी समुझाई। १६. दा२ दा३ नि० सत १७. बी० शबे० कहै कबीर हम गवने जइबै १८. दा० नि० स० तिरूं, बी० शबे० तरब। १९. बीभ० बजैबै।

[११०]

दा० गौड़ी १२, नि० गौड़ी १४, बी० ६८, शबे० (१) मिश्रित ४—

१. दा० नि० स० में इसके पूर्व की अतिरिक्त पंक्ति : चरखा जिनि जरै, बी० में अतिरिक्त : जो चरखा जरि जाय बढ़ैया ना मरै [पुनरुक्ति-तुल० बी० पंक्ति ९ में : एक न मरै बढ़ाय]। २. दा० नि० स० हजरी का सूत, बी० सूत हजार ['हजारी' शब्द किसी प्रति में नहीं मिलता, किन्तु 'हजरी' अथवा 'हजार' उक्त प्रसंग में निरर्थक हैं और 'हजारी' के ही विकृत रूप ज्ञात होते हैं। अत्यंत बारीक वस्त्र या सूत के लिए 'हजारी' विशेषण का प्रयोग मिलता है—तुल० दा० साखी २८-१३-१ : भगति हजारी कापड़ा तामैं मल न समाइ ॥ तथा नि० आसावरी ७७-१ : रैहटौ म्हारौ अजब फिरै राजा रांम तणां कतवारी तूं काते काते सूत हजारी है। अथवा बखना पद ७६-१ : काति बहुड़िया सूत हजारी। तकुला को बल काढ्यौ गुरु सतधारी—बखना-वाणी पृ० ९९ ।]। ३. दा० नि० स० चरखा। ४. शबे० चरखे का सिरजनहार बढ़ैया इक ना मरै (शबे० की पंक्ति ७ में पुनरावृत्ति)। ५. दा१ दा२ ऊपजी। ६. बी० प्रथमहिं नगर पहूंचते परिगौ सोक संताप। ७. बी० ब्याहल) बीभ० ब्याही), दा० नि० स० जायौ। ८. शबे० में यह और इसके ऊपर की एक पंक्ति नहीं है। ९. बी० बाबा मोर। १०. बी० कराव, शबे० करा दो। ११. दा२ स० बर उत्यम, दा३ नि० बर ऊंचेरौ, बी० अच्छा बरहिं, शबे० अनजाना बर। १२. दा० नि० स० लै चाहि, बी० तकाय। १३. दा२ नि० पाऊं। १४. बी० जौलौं अच्छा बर ना मिलै, शबे० अनजाया बर ना मिले। १५. शबे० तोहि से मेरा ब्याह। १६. शबे० में

समधी[१७] कै घरि लमधी[१८] आए आए[१९] बहू कै भाइ ।
चूल्है अगिनि बुताइ करि[२०] चरखा दियौ दिढ़ाइ[२१] ॥ ३ ॥
सब जगही मरि जाइयौ[२२] एक बढ़इया जिनि मरै[२३] ॥
सब रांडनि कौ साथ चरखा (चरखुला ?) को धरै[२४] ॥ ४ ॥
कहै कबीर सो पंडित ग्यांनीं[२५] जो या पदहिं बिचारै[२६] ॥
पहिलै परचै गुर मिलै तौ पाछैं सतगुर तारै[२७] ॥ ५ ॥

[१११]

रामुराय[१] चली[२] बिनांवन माहो ।
घर छोड़ै जाइ जुलाहो[३] ॥ टेक ॥[४]
गज नव गज दस गज उनइस की[५] पुरिया एक तनाई ।
सात[६] सूत दै[७] गंड[८] बहत्तरि[९] पाट लागु[१०] अधिकाई ॥ १ ॥
गजें न मिनिऐ तोलि न तुलिऐ[११] पहजन सेर अढ़ाई[१२] ॥
अढ़ाई मैं जे पाव घटै तौ[१३] करकच करै घरहाई[१४] ॥ २ ॥

यह और इसके आगे की एक पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर अन्य दो पंक्तियाँ हैं : हरे हरे बांस कटा मोरे बाबुल पानन मड़वा छाय । सुरति निरति की भांवरि डारी ग्यान की गांठि लगाय ॥ १७. दा० नि० सुबधी (उर्दू मूल), दा२ स० मुलधी । १८. दा० नि० स० लुवधी (उर्दू मूल)। १९. दा० नि० आंन (उर्दू मूल)। २०. बी० गोड़ै चूल्हा दै दै। २१. दा० नि० स० फलसौ दियौ टठाइ। २३. शबे० सासु मरै ननदी मरै रे, नि० सबै दुनी मरि जाओ, बी० देव लोक मरि जाहिंगे। २२. शबे० लहुरा देवर मरि जाइ, बी० एक न मरै बढ़ाय (तुल० बी० पंक्ति १ यथा: जौ चरखा जरि जाइ बढ़ैया ना मरै। २४. शबे० एक बढ़ैया ना मरै चरखे का सिरजनहार (तुकहीन), बी० यह मन रंजन कारने चरखा दियौ दिढ़ाय। [पुनरुक्ति—तुल० बी० पंक्ति ८ यथा : गोड़ै चूल्हा दै दै चरखा दियौ दिढ़ाय।] । २५. दा० सो पंडित ग्याता, बी० सुनहु हो संतो, शबे० सुनो भाइ साधो । २६. बी० चरखा लखै जो कोय (बी० पंक्ति १२ में पुनरुक्ति), शबे० चरखा लखो न जाय । २७. बी० जो यह चरखा लखि परै आवागमन न होय, शबे० या चरखे को जो लखै रे आवागवन छुटि जाय ।

[१११]

दा० रांमकली ४१, नि० रांमकली ४०, गु० गउड़ी ५४, बी० १५, स० ७०-१७—
१. दा० नि० स० माधौ (स्त्री० क्रिया 'चली' के साथ पु० कर्ता 'माधौ' व्याकरण-विरुद्ध), गु० में इसके स्थान पर कोई शब्द नहीं। २. गु० गई, दा० नि० स० चले (उर्दू मूल) । ३. दा० नि० स० जग जीते जाइ जुलाहा । ४. गु० में यह पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद है। ५. दा० नि० स० नव गज दस गज गज उगनीसा। ६. गु० साठ [किन्तु तुल० बिलावल ४ : सात सूत इनि मुंडिए खोए, तथा बसंत ६ : सात सूत मिलि बनजु कीन ।]। ७. गु० बी० नव (पुन० दे० ऊपर की पंक्ति में 'गज नव')। ८. गु० खंड (उर्दू मूल)। ९. नि० बहोतर। १०. दा० नि० स० लगी। ११. दा० नि० स० तुलह न तोली गजह न मापी (समानार्थीकरण), बी० तुला तुलै नहि गज न अमाई, बीभ० ता पट तुला न तुलै गज ना अमाई। १२. गु० पाचैनु सेर अढ़ाई, बी० पैसन सेर अढ़ाई। [बाराबंकी से प्रकाशित बीजक में इस पंक्ति का पाठ है : "ता पट तुलना तुलै कौन बिधि ब्यौंतत गज न अमाई ।" ज्ञात होता है कि बाराबंकी संस्करण के संपादकों ने अर्थ ठीक न बैठते देख कर यह संशोधन अपनी ओर से कर लिया है।]। १३. गु० जौ करि पाचनु बेगि न पावै, बी० तामहं घटै बढ़ै रतियौ नहिं। १४. दा१ नि० करकस करै बज-

दिन की बेठ[१५] खसम सौं बरकस[१६] तापर लगी तिहाई[१७] ।
भींगी पुरिया घर ही छांड़ी[१८] चला जुलाह रिसाई[१९] ॥ ३ ॥
छोछी नली कांम नहिं आवै लपटि रही उरझाई ॥[२०]
छांड़ि पसार रांम भजु बउरे[२१] कहै कबीर समझाई[२२] ॥ ४ ॥

[११२]

जांनीं जांनीं रे[१] राजा रांम की[२] कहांनीं ।
अंतरि[३] जोति रांम परकासै गुरमुखि बिरलै जांनीं[४] ॥ टेक ॥
तरवर एक अनंत डार साखा पुहुप पत्र रस भरिया[५] ।
यहु अंम्रित की बाड़ी है रे तिनि हरि पूरी करिया[६] ॥ १ ॥
पुहुप बास भंवरा[७] इक राता बारह[८] लै उरधरिया ।
सोरह मंझे[९] पवन झकोरै[१०] आकासैं फरु फरिया[११] ॥ २ ॥
सहज समाधि बिरिख यहु सींचा[१२] धरती जलहरु सोखा ।
कहै कबीर तासु मैं चेला[१३] जिनि यहु बिरवा[१४] पेखा ॥ ३ ॥[१५]

[११३]

संतौ[१] धागा[२] टूटा गगन बिनसि गया सबद जु कहां समाई[३] ।[७]
एहि संसा मोहिं[४] निस दिन[५] ब्यापै कोइ न कहै[६] समझाई ॥ टेक ॥[८]

हाई, दा३ करकच करै बतहाई, स० करकच करै बजहाई, गु० झगरु करै घरहाई, बी० करकच करै घहराई (बीभ० घरहाई)। १५. बी० नित उठि बैठि। १६. बी० बरबस (उर्दू मूल), दा० नि० स० कीजै । १७. दा० नि० स० अरु जु लगी तहां ही (उर्दू मूल), गु० इह बेला कत आई। १८. गु० छूटे कूंडे भींगै पुरीआ, बी० भींगी पुरिया काम न आवै। १९. गु० चलिओ जुलाहो रीसाई, बी० जोलहा चला रिसाई। २०. गु० छोछी नली तंतु नहीं निकसै नतर रही उरझाई, बी० कहत कबीर सुनहु हो संतो जिन्हि एह सृष्टि उपाई । २१. गु० छोड़ि पसार ईहा रहु बपुरी । २२. गु० कहु कबीर समझाई, बी० भवसागर कठिनाई।

[११२]

दा० रांमकली १४, नि० रांमकली १५, गु० रांमकली ६, स० ७०-१६—
१. दा० नि० स० अब मैं जांणिबौ रे। २. दा० नि० स० केवल राइ की। ३. दा० नि० स० मंझा। ४. दा० नि० स० गुर गंमि बांणीं। ५-६. दा० नि० स० तरवर एक अनंत मूरति सुरता लेहु पछांणीं। साखा पेड़ (?) फूल फल नांहीं ताकी (?) अंम्रित बांणीं (बाड़ी ?)। ७. दा३ भूंरा। ८. गु० भंवरु एकु पुहुप रस बीधा। ८. दा० नि० स० बारा। ९. गु० मधे १०. गु० झकोरिआ। ११. दा० नि० फल फलिया। १२. गु० सहज सुंनि इक बिरवा उपजिआ। १३. गु० कहि कबीर हउ ताका सेवकु। १४. गु० बिरवा देखिआ। १५. गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी पंक्ति के बाद आती हैं।

[११३]

दा० गौड़ी ३२, नि० गौड़ी ३६, गु० गउड़ी ५२, स० ६५-१—
१. गु० में 'संतौ' शब्द नहीं है। २. गु० तागा। ३. गु० तेरा बोलतु कहा समाई। ४. गु० मोकउ। ५. गु० अनदिनु। ६. गु० मोकउ को न कहै। ७-८. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ

नहीं ब्रह्मंड पिंड पुनि नांहीं[९] पंच तत्त भी[१०] नांहीं ।
इला पिंगला[११] सुखमनि नांहीं [१२] ए गुण कहां समांहीं[१३] ।। १ ।।
नहीं ग्रिह द्वार कछू नहिं तहियां[१४] रचनहार पुनि[१५] नांहीं ।
जोड़नहारो सदा अतीता इह कहिग्रै किसु मांहीं[१६] ।। २ ।।
टूटै (टूटी ?) बंधै बंधै (बंधी ?) पुनि टूटै जब तब होइ बिनासा ।[१७]
तब को[१८] ठाकुर अब को[१८] सेवग को काकै बिसवासा[१९] ।। ३ ।।
कहै कबीर यहु गगन न बिनसै जौ धागा उनमांनां ।[२०]
सीखें सुनें पढ़ें का होई जौ नहिं पदहिं समांनां ।। ४ ।।[२१]

[११४]

हरि के खारे बरे पकाए[१] ।
जिन जांनें[२] (?) तिन खाए[३] ।। टेक ।।[४]

धौल मंदलिया बैल रबाबी[५] कउवा ताल बजावै ।
पहिरि चोलनां गादह नाचै भैंसा निरति[६] करावै ।। १ ।।
सिंघ ज बैठा पांन कातरै[७] घूंस[८] गिलौरा लावै ।
उंदरी बपुरी[९] मंगल गावै कछुआ संख बजावै[१०] ।। २ ।।[११]
कहै कबीर सुनहु रे संतौ गड़री[१२] परबत खावा ।
चकवा बैसि अंगारै निगलै समद अकासां धावा[१३] ।। ३ ।।

ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं। ९. गु० जह कछु अहा तहा किछु नाही। १०. गु० तह। ११. गु० इड़ा पिंगला। १२. गु० बंदे। १३. गु० ए अवगन कत जाही। १४. गु० जह बरमंडु पिंडु तह नाही (तुल० ऊपर पंक्ति ३)। १५. गु० तह। १६. दा० नि० स० जोवनहार अतीत सदा संगि ए गुण तहां समांहीं। [पद में आरंभ से ही प्रश्नों की शृंखला चल रही है जो आगे की द्विपदी में समाप्त होती है। दा० नि० स० की यह पंक्ति, जो चौथी पंक्ति का उत्तर ज्ञात होती है, प्रश्नों की इस स्वाभाविक शृंखला को तोड़ देती है; अतः अस्वीकृत।]। १७. गु० जोड़ी जुड़ै न तोड़ी तूटै जब लगु होइ बिनासी। १८. गु० काको। १९. गु० को काहू कै जासी (राज० मूल)। २०-२१. गु० कहु कबीर लिव लागि रही है जहा बसै दिन राती। उआ का मरमु ओहा परु जाने ओहु तउ सदा अबिनासी ॥ (तुकहीनता)।

[११४]

दा० गौड़ी १२, नि० गौड़ी १३, गु० आसा ६, स० ७०-८—
१. गु० राजा राम ककरीआ बरे (?) पकाए। २. दा० नि० स० जारे (नागरी मूल)। ३. गु० किनै बूझनहारै खाए। ४. दा० स० में इसके बाद अतिरिक्त : ग्यांन अचेत फिरैं नर लोई ताथैं जनमि जनमि डहकाए । नि० में इसका पाठ है : ग्यांन अचेत फिरैं ते भूले जनमि जनमि पछिताए। ५. गु० फाल रबाबी बलदु पखावज। ६. गु० भगति। ७. गु० बैठि सिंह घर पान लगावै। ८. गु० घास। ९. गु० घर घर मुसरी (समानार्थी करण)। १०. दा१ दा२ नि० स० कछुअक अनंद सुनावै, दा३ दा४ कछु अनहद सबद सुनावै। ११. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : बंस को पूतु बिआहन चलिआ सुइने मंडप छाए। रूप कंनिआ सुंदरि बेधी ससै सिंघ गुन गाए ॥ १२. गु० काटी। १३. गु० कछूआ (पुन० दे० ऊपर पंक्ति ५) कहै अंगार भिलोरउ लूकी सबदु सुनाइआ।

[११५]

पवन पति उनमनि रहनु[1] खरा ।[4]
तहां[2] जनम न मरन जुरा[3] ॥ टेक ॥[4]
मन बिंदत[5] बिंदहिं[6] पावा[7] । गुरमुख तैं अगम बतावा[8] ॥ १ ॥
जब नख सिख यहु मन चीन्हां[9] । तब अंतरि मज्जनु कीन्हां[10] ॥ २ ॥
उलटीले सकति सहारं । पैसीले[11] गगन[12] मझारं ॥ ३ ॥
बेधीले[13] चक्र भुअंगा । भेटीले राइ निसंगा[14] ॥ ४ ॥
चूकीले मोह पियासं[15] । तहां[16] ससिहर सूर गरासं[17] ॥ ५ ॥
जब कुंभक भरिपुरि लीनां[18] । तब बाजै अनहद बीनां ॥ ६ ॥
मैं बकतै बकि सुनावा[19] । सुरतैं तहां कछू न पावा[20] ॥ ७ ॥
कहै कबीर बिचारं[21] । करता लै[22] उतरसि पारं ॥ ८ ॥[23]

[११६]

एक अचंभौ देखा रे भाई[1] ।
ठाढ़ा[2] सिंघ चरावै[3] गाई ॥ टेक ॥
पहिलै[4] पूत पिछै भई माई[5] । चेला कै गुर लागै पाई[6] ॥ १ ॥
जल की मछरी[7] तरवरि ब्याई । कूता कौं[8] लै गई बिलाई ॥ २ ॥[9]
बैलहिं डारि[11] गोंनि[12] घरि आई । घोरै चढ़ि भैंस चरावन जाई[13] ॥[10]

---

[११५]

दा३ दा४ रांमकली ३२, नि० आसावरी ५५, गु० रांमकली १०, स० ७०-१३—

१. नि० रहत, दा३ दा४ रहनि। २. दा० नि० जहां, गु० नहीं। ३. गु० मिरतु न जनम जरा। ४. गु० में यह पंक्तियाँ तीसरी के बाद हैं। ५. दा० ब्यंदत। ६. दा० ब्यंदहि। ७. गु० बंधिचि बंधनु पाइआ, नि० मन बंधि त्रिबेणीं पाई। ८. गु० मुकतै गुरि अनलु बुझाइआ, नि० गुरगम तैं अगम लखाई। ९. दा० जब मन नख सिख भरि लीनां, नि० जब तैं नख सख थौ मन लीनां, स० जब नख सख भरि भरि लीनां। १०. दा० नि० में यह और पंक्ति ८ के उत्तरार्ध परस्पर स्थानांतरित और स० में यह पंक्ति ७वीं से स्थानांतरित। ११. दा० नि० स० बैठिलै। १२. नि० गिगन। १३. दा० नि० बेधीले, स० देखीले। १४. दा० स० भेटीले रांम सुसंगा, नि० भेटिलै नराइन संगा। १५. गु० मइआसा (उर्दू मूल)। १६. दा० नि० जब। १७. गु० ससि कीनो सूर गिरासा। १८. गु० भरि करि लीना। १९. दा० मैं बकतैं बकैं सुनावा, नि० बकि बकि तैं बकि सुणांवा, गु० बकतै बकि सबदु सुनाइआ। २०. दा० तैं सुनतैं कछू न पाया, नि० सुंणि सुंणि तैं कछू न पाया, गु० सुनतै सुनि मंनि बसाइआ। २१. गु० कहै कबीरा सारं। २२. नि० करि करणीं, गु० करि करता। २३. गु० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित।

[११६]

दा० गौड़ी ११, नि० गौड़ी १२, स० ७०-७, गु० आसा २२—

१. गु० सुनहु तुम भाई। २. गु० देखत। ३. गु० चरावत। ४. गु० पहिला। ५. गु० पिछैरो भाई। ६. गु० गुरु लागो चेले की पाई। ७. गु० मछुली, नि० मंछी। ८. गु० देखत कुतरा। ९-१० दा० में दोनों पंक्तियों के उत्तरार्ध परस्पर स्थानांतरित। ११. गु० बाहरि बैलु। १२. दा० नि० स० गूंनि (उर्दू मूल)। १३. दा० स० पकड़ि बिलाई मुरगै खाई,

तलि करि पत्ता[१४] (?) उपरि करि मूल[१५]। बहुत भांति जड़ लागे फूल[१६] ॥ ४ ॥[१७]
कहै[१८] कबीर या पद कौं बूझै[१९]। ताकौं तीनिउं त्रिभुवन सूझै[२०] ॥ ५ ॥

[११७]

ऐसा ग्यांन बिचारि लै लै लाइ लै ध्यांनां[१]
सुन्नि मंडल मैं घर किया जैसैं रहै सिचांनां[२] ॥ टेक ॥
उलटि पवन कहां राखिए कोई मरम बिचारै ॥
सांधै तीर पताल कौं फिरि गगनहिं[३] मारै ॥ १ ॥
कंसा नाद बजाइले[४] धुनि निमसिले[५] कंसा ॥
कंसा फूटा पंडिता धुनि कहां निवासा ॥ २ ॥
पिंड परे जिउ कहां रहै कोई मरम लखावै।
जीवत तिस घरि जाइऐ ऊंधै मुखि नहिं आवै ॥ ३ ॥
सतगुर मिलै त पाइऐ ऐसी अकथ कहांनीं।
कहै कबीर संसा गया मिला सारंगपांनीं ॥ ४ ॥[६]

[११८]

अब[१] क्या कीजै[२] ग्यांन बिचारा।
निज निरखत गत ब्यौहारा ॥ टेक ॥
जाचिग दाता इक पाया[३]। धन दिया[४] जाइ नां खाया[५] ॥ १ ॥

नि० मूसै पकड़ि बिलाई खाई (ऊपर की पंक्ति में 'बिलाई' आने के कारण पुनरावृत्ति)। १४. दा० स० तलि करि साखा, नि० तर भई डार, गु० तले रे बैसा [मूल पाठ कदाचित् 'पत्ता' है जिससे उर्दू लिपि के कारण गु० में 'बैसा' हो गया और दा० स० में उसका समानार्थी 'साखा' कर दिया गया, अतः मूल पाठ के रूप में 'पत्ता' ही स्वीकृत किया गया है।]। १५. गु० ऊपरि सूला (पंजाबी मूल)। १६. गु० तिसकै पेड़ि लगे फल फूला, नि० उलटि देखि जड़ लागे फूल। १७. गु० में यह पंक्ति ऊपर वाली पंक्ति से पहले आती है। १८. गु० कहत। १९. गु० जु इस पद बूझै। २०. गु० रांम रमत तिसु सभु किछु सूझै [दा० नि० स० के 'तानिउं त्रिभुवन' में 'तीन' का भाव दो बार आने के कारण पुनरुक्ति अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु अवधी, भोजपुरी में 'तीनिउं त्रिभुवन' या 'तीनिउं तिरलोक' अब भी मुहावरे के रूप में प्रचलित हैं।]।

[११७]

दा० नि० रांमकली २, गु० बिलावलु ११ (अंशतः), स० ७०-२०—

१. दा३ ध्यांनं। २. दा३ सिचांनं। ३. दा३ गगन कूं। ४. दा० बजावले। ५. दा० निमसिले। ६. तुल० गु० बिलावल ११ यथा—

जनम मरन का भ्रमु गइआ गोबिद लिव लागी। जीवत सुंनि समानिआ गुर साखी जागी ॥
कासी ते धुनि ऊपजै धुनि कासी जाई। कासी फूटी पंडिता धुनि कहा समाई॥ [तुल० पंक्ति ५-६]
त्रुकुटी संधि मैं पेखिआ घटहू घट जागी। ऐसी बुद्धि समाचरी घर माहि तिआगी ॥
आप आप ते जानिआ तेज तेजु समाना। कहु कबीर अब जानिआ गोबिद मनु माना ॥

[११८]

दा० नि० सोरठि २१. गु० सोरठि ६, स० ७०-२८—

१. दा१ इब। २. गु० कथीऐ। ३. गु० जाचक जन दाता पाइआ। ४. दा४ दीन्हां। ५. गु०

कोई ले भरि सकै न मूका[६] । औरन पहिं[७] जांनां चूका ॥ २ ॥
तिस[८] बाझ न जीया[९] जाई । वो मिलै त[१०] घालै खाई[११] ॥ ३ ॥
सो[१२] जीवन भला कहाही[१३] । बिनु मूएं[१४] जीवन नांहीं ॥ ४ ॥
घसि चंदन बनखंडि बारा[१५] । बिनु नैंननि रूप निहारा[१६] ॥ ५ ॥
तिहिं पूति बाप[१७] इक जाया । बिनु ठाहर नगर बसाया ॥ ६ ॥
जो जीवत ही मरि जांनैं[१८] । तौ पंच सैल[१९] सुख मांनैं ॥ ७ ॥
कबीरैं सो धनु पाया[२०] । हरि[२१] भेटत आपु गंवाया[२२] ॥ ८ ॥

[११६]

जाइ पूछौ गोबिंद पढ़िया पंडिता[१] तेरा कौंन गुरू कौंन चेला ।
अपनैं रूप कौं आपहिं जांनैं[२] आपै रहै अकेला ॥ टेक ॥
बांझ का पूत बाप बिनु जाया बिनां पांउं तरवर चढ़िया ।
अस बिनु पाखर गज बिनु गुड़िया बिनु षंडै संग्रामहिं जुड़िया[३] ॥ १ ॥
बीज बिनु अंकुर पेड़ बिनु तरवर बिनु साखा तरवर फलिया ।
रूप बिनु नारि पुहुप बिनु परिमल[४] बिनु नीरैं सरवर भरिया ॥ २ ॥
देव बिन देहुरा पत्र बिनु पूजा बिनु पंखा भंवरा[५] बिलंबिया ।
सूरा होइ सु परम पद पावै कीट पतंग होइ सब जरिया ॥ ३ ॥
दीपक बिनु जोति जोति बिनु दीपक हद बिन अनाहद सबद बागा ।
चेतनां होइ सु चेत लीजौ कबीर हरि कै अंगि लागा ॥ ४ ॥

सो दीआ न जाई खाईआ। ६. गु० छोडिआ जाइ न मूका। ७. दा० नि० स० पै। ८. गु० जिन्ह। ९. दा१ दा२ जीव्या, दा४ जीयनां। १०. गु० जउ मिलत। ११. गु० घाल अघाई १२. गु० सद। १४. दा० नि० कहाई। १४. दा० नि० स० मूवा। १५. गु० घसि कुंकम चंदनु गारिआ। १६. गु० बिनु नैनहु जगत निहारिआ। १७. गु० पूति पिता। १८. गु० जो जीवत मरना जानै। २०. दा० नि० स० कहै कबीर सो पावा। २१. दा१ दा२ प्रभु। २२. गु० मिटाइआ। गु० में क्रम यथापंक्ति ४-५-१-६-७-२-३-८-९ है।

[११६]

दा० रांमकली ६, नि० रांमकली ७, स० ४१-१, बी० १६ (अशतः)—
१. दा३ पंडित। २. दा३ अपनां रूप नैं आपै जांनैं। ३. दा२ सु जुड़िया। ४. दा१ दा२ परमल (उर्दू मूल)। ५. दा३ पांखा भंवरा। [बीजक के पद सं० १६ की केवल दो पंक्तियाँ ऐसी हैं जो उक्त पद की पाँचवीं और तीसरी पंक्तियों से मिलती हैं। पूरा पद इस प्रकार है—

रासुरा झींझी जंतर बाजै। कर चरन बिहूना नाचै ॥
कर (पुन०) बिनु बाजै सुनै स्रवन बिनु स्रवन सरोता सोई।
पाटन सुबस सभा बिनु अवसर बूझहु मुनि जन लोई ॥
इंद्री बिनु भोग स्वाद जिभ्या बिनु अच्छय पिंड बिहूना।
जागत चोर मंदिल तहं मूसे खसम अछत घर सूना ॥

[१२०]

कैसैं नगर[१] करौं कुटवारी[२] ।
मांसु पसारि गीध रखवारी[३] ।। टेक ।।
बैल बियाइ गाइ भई बांझ[४] । बछरहिं[५] दूहै तीनिउं सांझ[६] ।। १ ।।[७]
मूसा खेवट नाव बिलइया[८] । सोवै दादुर[९] सर्प पहरिया[१०] ।। २ ।।
नित उठि स्यार सिंघ सौं जूझै[११] । कहै कबीर कोई बिरला बूझै[१२] ।। ३ ।।[१३]

[१२१]

गोबिंदै तुम्हारै बनि कंदलि (कदली ?) मेरौ मन अहेरा खेलै[१] ।
बपु बारी[२] अनंगु मिरगा[३] रुचि रुचि सर मेलै[४] ।। टेक ।।
चित्त तरउवा[५] पवन[६] खेदा[७] सहज मूल बांधा[८] ।
ध्यांन धनुख[९] जोग करम[१०] ग्यांन बांन सांधा[११] ।। १ ।।[१२]
खट चक्र (चक्र खट ?) कंवल बेधा[१३] जारि[१४] उजारा कीन्हां ।
कांम क्रोध लोभ मोह हांकि सावज[१५] दीन्हां ।। २ ।।

बीज बिनु अंकुल पेड़ बिनु तरुवर बिनु फूलें फल लागा ।
बांझ की कोख पुत्र अवतरिया बिनु पग तरवर चढ़िया ॥
मसि बिनु द्वात कलम बिनु कागद बिनु अच्छर सुधि होई ।
सुधि बिनु सहज ग्यांन बिनु ग्याता कहहिं कबीर जन सोई ॥]

[१२०]

दा० गौड़ी ८०, नि० गौड़ी ८३, बी० ९५, स० ७०-९—
१. नि० नग्र । २. बी० को अस करै नगर कोतवलिया । ३. दा० नि० स० चंचल पुरिख बिचखन नारी । ४. बी० बंझा । ५. बी० बछवहिं । ६. बी० तिनि तिनि संझा । ७. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : मकड़ी घरि माखी छछिहारी । मासु पसारि चील्ह रखवारी ॥ (तुल० पंक्ति २) । ८. बी० मूस भौ नाव मंजार कड़िहरिया । ९. दा० नि० स० मींडक । १०. दा० नि० स० सांप पहरइया । ११. बी० सिंघ स्यार सों जूझै । १२. बी० कबीर का पद जन बिरला बूझै । १३. बी० में ऊपर की दूसरी पंक्ति के बाद आती है । उक्त पद की द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्तियाँ सिद्ध ढेरढणपा (९वीं शताब्दी) की एक चर्या से तुलनीय हैं, जिसका पाठ है :

बलद बिआअल गविआ बांझे । पिटा दुहिए ए तिना सांझे ।
निति निति षिआला सिहे सम जूझअ । ढेरढणपाएर गीत बिरले बूझअ ॥
—चर्यापद, कलकत्ता, पद ३३, पृ० १६० ।

[१२१]

दा० आसावरी ९. नि० आसावरी ८, बी० ८७, स० ६२-१--
१. बी० कबीरा तेरो बन कंदला में मानु अहेरा खेलै । २. बीभ० बपु आरि (कदाचित् उर्दू मूल) । ३. बी० आनंद (उर्दू मूल) मीरगा । ४. दा० नि० स० रचि हीं रचि (उर्दू०) मेलै । ५ दा३ चितु तरवा, बी० चेतत रावल । ६. बी० खेडा (हिन्दी मूल) । ८. बी० सहजै मूलहि बांधै । ९. दा० नि० स० धनक । १०. बी० ग्यान बान । ११. बी० जोग सर सांधै । १२. बी० (बाराबंकी) में इस पंक्ति का पाठ है : ध्यान धनुष धरि ग्यान बान बन जोग सार सर साधै । (कदाचित् संपादकों ने यह संशोधन अपनी ओर से कर लिया है ।) । १३. बी० षटु चक्र कमल बेधि । १४. बी० जाय । १५. दा० नि० स्यावज (राज० मूल) ।

गगन मंडल रोकि बारा[१६] तहां दिवस न राती ।
कहै कबीर छांड़ि चले[१७] बिछुरे सब साथी[१८] ॥ ३ ॥

[१२२]

अवधू[१] जागत नींद न कीजै ।
काल न खाइ कलप नहिं[२] ब्यापै देही जुरा[३] न छीजै ॥ टेक ॥
उलटी गंग समुद्रहिं सोखै ससिहर सूर[४] गरासै ।
नव ग्रह[५] मारि रोगिया बैठे जल महिं[६] बिंब[७] प्रकासै ॥ १ ॥[८]
बैठि[९] गुफा महिं[६] सब जग देखै[१०] बाहरि किछू न सूझै ।
उलटै धनुख पारधी मार्‍यौ[११] यहु अचिरज कोई बूझै[१२] ॥ २ ॥
औंधा[१३] घड़ा न जल महिं[६] डूबै सूधा सूभर भरिया[१४] ॥
जाकौं यहु जग घिन कर चालै[१५] ता प्रसादि निस्तरिया[१६] ॥ ३ ॥[१७]
गावनहारा[१८] कबहु[१९] न गावै अनबोला नित गावै ।
नटवर पेखि पेखनां पेखै[२०] अनहद बेन बजावै[२१] ॥ ४ ॥
कहनीं रहनीं निज तत जांनैं[२२] यहु[२३] सब अकथ कहांनीं ॥
धरती उलटि अकासहिं ग्रासै[२४] यह पुरिखां कै बांनीं ॥ ५ ॥
बाझ[२५] पियालै अंम्रित अंचवै[२६] नदी नीर भरि राखै ।
कहै कबीर सो बिरला जोगी धरनि महारस चाखै[२७] ॥ ६ ॥[२८]

---

१६. बी० गगन मद्धे रोकिन्हि द्वारा । १७. बी० दास कबीरा जाइ पहुंचे । १८. दा२ सब संघाती, बी० संग संघाती, बीभ० संग रु साथी ।

[१२२]

दा० रांमकली १०, नि० रांमकली ११, बी० २, स० ७०, १८—
१. बी० संतौ । २. नि० कलप नां । ३. बी० जरा । ४. बी० ससिअै सूर । ५. दा० नि० स० ग्रिह (उर्दू मूल) । ६. दा० नि० स० मैं । ७. बीभ० बेंमु, दा० नि० ब्यंब (राज०), । ८. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : डाल गह्यां थैं मूल न सूझै मूल गह्यां फल पावा । बंबई उलटि सरप कूं लागी धरणि महा रस खावा ॥ (पुन० तुल० अंतिम पंक्ति) । बी० में अतिरिक्त : बिनु चरनन्ह को दहुं दिसि धावै बिनु लोचन जग सूझै । ससै उलटि सिंघ कौ ग्रासै ई अचरज को बूझै ॥ ९. बीभ० पैठि, दा२ बैसि । १० दा० नि० स० देख्या (राज०) । ११. बी० उलिटा बान पारथहिं (हिन्दी मूल) लागै । १२. बी० सूरा होइ सो बूझै । १३. बी० औंधे, बीभ० औन्हें । १४. बी० सूधे सों घट (बीभ० घड़ा) भरिया । १५. बी० जेहि कारन नल भिन भिन करे । १६. बी० सो गुरु परसादै तरिया । १७. दा० नि० स० में इसमें बाद अतिरिक्त : अंबर बरसै धरती भीजै यहु जानै सब कोई । धरती बरसै अंबर भीजै बूझै बिरला कोई ॥ १८. बी० गायन कहै । १९. दा० नि० स० कदे । २०. बी० नटवट बाजा पेखनी पेखै । २१. बी० हेतु बढ़ावै । २२. बी० कथनी बदनी निजु कै जो है । २३. बी० ई २४. बी० बेधै । २५. बी० बिना । २६. दा० नि० स० सोख्या २७. बी० कहै कबीर सो जुग जुग जीवै जो राम सुधा रस चाखै । २८. बी० में ऊपर की ७वीं तथा ८वीं पंक्तियाँ दसवीं पंक्ति के बाद आती हैं ।

[१२३]

एहि बिधि सेइए स्री नरहरी ॥
मन की दुबिधा मन परिहरी ॥ टेक ॥[१]

जहां नहीं तहां कछु जांनि । जहां नहीं तहां लेहु[२] पिछांनि[३] ॥ १ ॥
नांहीं देखि न जइए भागि । जहां नहीं तहं रहिए लागि ॥ २ ॥[४]
मन मंजन[५] करि दसवैं द्वारि । गंगा जमुनां संधि[६] बिचारि ॥ ३ ॥[७]
बिंदहिं नाद कि नादहिं बिंद । नादहिं बिंद मिलै गोबिंद ॥ ४ ॥[८]
देबी न देवा पूजा नहिं जाप । भाई न बंध माय नहीं बाप ॥ ५ ॥
गुन अतीत जस निरगुन आप । भरम जेवरी जग कियौ सांप ॥ ६ ॥[९]
तन नांहीं कब जब मन नांहिं । मन परतीति ब्रह्म मन[१०] मांहिं ॥ ७ ॥
परिहरि बकला[११] ग्रहि गुन डारि[१२] । निरखि देखि[१३] निधि वार न पार ॥ ८ ॥
कहै कबीर गुर परम गियांन । सुन्नि मंडल मैं धरौ धियांन ॥ ९ ॥
पिंड परे जिउ जैहै जहां । जीवत ही लै राखौ तहां ॥ १० ॥[१४]

[१२४]

जिअत न मारि[१] मुवा मति लावै[२] ।
मांस बिहूंनां घरि मति आवै हो कंता[३] ॥ टेक ॥

उर बिनु खुर बिनु चंचु बिनु[४] बपु बिहूंनां सोई रे[५] ।
सो सावज किन[६] मारै कंता जाकै रगत मास नां होई रे[७] ॥ १ ॥

---

[१२३]

दा० नि० भैरूं २, बी० ग्यान चौंतीसा (अंशतः), स० ४०-२—

१. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : मन करि पूजा मन करि धूप । मन करि सेवो सहज सरूप ॥
मन आवै मन दह दिस जाइ । उनमन रहै तौ काल न खाइ ॥

२. नि० प्रवाणि, ३-४. तुल० बी० चौंतीसा २३, २४ यथा—
नहीं देखि नहिं आपु भजाऊ । जहां नहीं तहां तन मन लाऊ ॥
जहां नहीं तहां सब कछु जानी । जहां नहीं तहां लै पहिचानी ॥

['चौंतीसा' में यह पंक्तियाँ अतिरिक्त रूप में हैं]। ५. बी० मज्जन । ६. स० सिंधि (उर्दू मूल)। ७-८. नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की दोनों पंक्तियों के पूर्व ही आती हैं। ९. नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : दूध मैं घृत पुहुप मैं बास । काष्टहि भीतरि अगिनि प्रकास ॥ जो रे कहूं तो कोइ न पत्याई । कूंन कामैं ब्रह्मंड समाई ॥ १०. नि० तन । ११. दा० स० बकुला (उर्दू मूल), नि० बिकुला (उर्दू मूल)। १२. नि० निज सार । १३. नि० निरखि निरखि । १४. बी० में ऊपर की तीसरी चौथी पंक्तियों के अतिरिक्त शेष नहीं मिलतीं।

[१२४]

दा० आसावरी ११, नि० आसावरी १०, शबे० (२) भेद० १५, स० ६२-२—

१. दा० नि० स० जिनि मारै । २. शबे० सैयां । ३. शबे० मांस बिना मत ऐयो रे । ४. शबे० चरम चोंच बिन । ५. शबे० उड़न पंख नहिं जाके रे । ६. दा१ जिनि । ७. शबे० जो कोई

पैली पार के पारधी[८] ताकी धनुहीं[९] पनच[१०] नहीं रे ।।[११]
होत पात चुगि जात मिरगवा[१२] ता म्रिग[१३] के सीस नहीं रे ।। २ ।।
मारा म्रिगा जीवता राखा यहु गुर ग्यांन सही रे ।[१४]
कहै कबीर स्वांमीं तुम्हरे मिलन कौं बेली है पर पात नहीं रे[१५] ।। ३ ।।[१६]

[१२५]

कहौ भइया[१] अंबर कासौं[२] लागा ।
कोई बूझै बूझनहार सभागा ।। टेक ।।[३]
अंबर मद्धे दीसै तारा[४] । कौन चतुर असा चितरनहारा[५] ।। १ ।।
जो खोजहु सो उहवां नांहीं । सो तौ आहि अमर पद मांहीं[६] ।। २ ।।
[७]कहै कबीर जांनैंगा सोइ[८] । ह्रिदै रांम मुखि रांमैं होइ[९] ।। ३ ।।

[१२६]

मोहि[१] असें बनिज सौं[२] कवन[३] काजु ।
जिहि घटै मूल नित बढ़ै ब्याजु[४] ।। टेक ।।
नाइकु एकु बनिजारे पांच[५] । बरध पचीस क संगु कांच[६] ।। १ ।।
नउ बहियां दस गोंनि आहि । कसनि बहत्तरि लागि[७] ताहि ।। २ ।।

हंसा मारि लियावे रक्त मांस नहिं जाकै रे । ८. शबे० धनुष बांन ले चढ़े पारथी । ९. दा० धुनहीं (उर्दू मूल), शबे० धनुआ । १०. दा० पिनच, शबे० परच (हिन्दी मूल) । ११. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : सर सर बान तकातक मारै मिरगा के घाव नहीं रे । १२. दा० नि० स० ता बेली कौ ढूक्यौ म्रिगलौ । १३. नि० मृघा । १४. शबे० में यह पंक्ति नहीं है । १५. शबे० परली पार (तुल० ऊपर की पंक्ति ४) एक बेल का बिरवा वाके पात नहीं (दूसरी पंक्ति के रूप में) । १६. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : कहै कबीर सुनो भाई साधो यह पद अतिहिं दुहेला रे । जो या पद को अर्थ बतावै सोई गुरू हम चेला रे ॥ शबे० का क्रम यथापंक्ति १–२–५–६–३–४–७–८ है ।

[१२५]

दा० गौड़ी १११, नि० गौड़ी १४८, गु० गउड़ी २९, बी० ७९ —
१. बी० कहहु हो, गु० कहु रे पंडित । २. गु० कासि । ३. दा१, दा२ नि० कोई जांनैगा जांननहार सभागा, बी० चेतनिहारे चेत सुभागा । ४. दा० नि० अंबरि दीसैं केता तारा, गु० ओइ जु दीसहि अंबरि तारे । ५. बी० एक चेतै दूजे चेतवनिहारा (उर्दू मूल), गु० किनि ओइ चीते चीतनहारे । ६. दा० नि० जे तुम्ह देखौ सो यह नांहीं । यह पद अगम अगोचर मांहीं, गु० सूरज चंदु करहि उजीआरा । सभ महि पसरिआ ब्रह्म पसारा ॥ ७. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : तीनि हाथ एक अरधाई । असा अंबर चीन्हौं रे भाई ॥ ८. दा० नि० कहै कबीर जे अंबर जांनैं, बी० कहहि कबीर पद बूझै सोई । ९. दा० नि० ताही सूं मेरा मन मांनैं, बी० मुख हिरदय जाके एकै होई ॥

[१२६]

दा० बसंत ७, नि० गु० बसंत ६, शक० बसंत १०—
१. दा० नि० मेरौ, शक० मोरे । २. गु० सिउ । ३. गु० नही न । ४, दा० नि० मूल घटै सिरि बधै ब्याज । ५. गु० में यह पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद है । ६. दा० नि० शक० बैल पचीस कौ संग साथ (तुकहीन) । ७. दा० नि० लागै । ८. गु० बनजु ।

सात सूत मिलि बनिज[८] कीन । करम भांवनीं[९] (री ?) संगि लीन ॥ ३ ॥
तीनि जगाती करत रारि । चलौ बनिजारा हाथ झारि[१०] ॥ ४ ॥
बनिज खुटानौं पूंजी टूटि[११] । दह दिसि टांडौ[१२] गयौ फूटि[१३] ॥ ५ ॥
कहै कबीर यहु जनम बादि । सहजि समांनौं रही लादि ॥ ६ ॥[१४]

[१२७]

[१]हरि[२] का बिलोवनां बिलोइ मेरी माई[३] ।
अैसें बिलोइ[४] जामैं तत्त न जाई ॥ टेक ॥
तनु करि मटुकी मनहिं बिलोइ[५] । ता मटुकी महिं सबद संजोइ[६] ॥
इला पिंगुला सुखमन नारी । बेगि बिलोइ ठाढ़ी छछिहारी ॥
[७]कहै कबीर गुजरी बौरांनीं[८] । मटुकी फूटी जोति समांनीं ॥[९]

[१२८]

है हजूरि कत[१] दूरि बतावहु[२] ।
दुंदर बांधहु[३] सुंदर पावहु[४] ॥ टेक ॥[५]
सो मुल्ला[६] जो मन सौं[७] लरै । अहनिसि काल चक्र सौं भिरै[८] ॥१॥
काल पुरख[९] का मरदै मांनु । तिसु मुल्ला कौं[१०] सदा सलांम ॥२॥
काजी सो जो काया बिचारै । काया की अगिनि ब्रह्म परजारै[११] ॥३॥
सुपिनैं बिंदु न देई झरनां । तिसु[१२] काजी कउ जरा[१३] न मरनां ॥४॥

---

९. दा० नि० शक० करम पियादौ । १०. दा० नि० चल्यौ है बनिजवा बनिज हारि । ११. गु० पूंजी हिरानीं बनजु टूट । १२. दा० नि० खाडू । १३, शक० लूट । १४. गु० कहि कबीर मन सरसी काज । सहज समानो त भरम भाज ॥, शक० कहै कबीर मन मेटो बाद । सहज समानो लहेउ स्वाद ॥

[१२७]

दा० भैरूं ३०, नि० भैरूं २९, गु० आसा १०, शबे० प्रभाती ६—
१. गु० में इसके पूव अतिरिक्त : सनक सनंद अंतु नहीं पाइआ । बेद पड़े पड़ि ब्रह्मे जनमु गवाइआ ॥ २. शबे० सत । ३. गु० बिलोवहु मेरे भाई (नागरी मूल) । ४. गु० सहजि बिलोवहु । ५. गु० मन मांहि बिलोइ, शक० मन करि नेता । ६. दा० नि० पवन समोइ, शक० माखन केता । ७. शक० में इसके पूर्व अतिरिक्त : ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा । या मटुकी का लह्यौ न भेवा । ८. शक० बहुरानी (नागरी मूल) । ९. गु० में इस पद की अंतिम दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं; इनके स्थान पर निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—
हरि का बिलोवना मन का बीचारा । गुर प्रसादि पावै अंम्रित धारा ॥
कहु कबीर नदरि करे जे मीरा । राम नाम लगि उतरै तीरा ॥

[१२८]

दा० नि० भैरूं ६, गु० भैरउ ११—
१. दा० नि० क्या । २. दा० नि० बतावै । ३. दा० नि० बांधैं । ४. दा० नि० पावै । ५. गु० में यह पंक्ति तीसरी के बाद आती है । ६. दा० नि० मुलनां । ७. गु० सिउ । ८. गु० गुर उपदेसि काल सिउ जुरै । ९. दा० नि० काल चक्र । १०. दा० नि० ता मुलनां कूं । ११. दा० नि० अहनिस (पुन० तुल० पंक्ति ३-२) ब्रह्म अगिनि परजारै । १२. दा० नि० ता ।

सो सुरतान जु दुइ सर[14] तांनैं । बाहरि जाता भीतरि आंनैं ।।५।।
गगन मंडल मांहि[15] लसकरु करै । सो सुरतानु[16] छत्र सिरि धरै ।।६।।
जोगी गोरख गोरख करै । हिंदू[17] रांम नांम ऊचरै ।।७।।
मुसलमांन कहै[18] एकु खुदाइ । कबीर का स्वांमीं रहा समाइ[19] ।।८।।

[१२९]

कहु रे मुल्ला[1] बांग निवाजा[2] ।
एक मसीति दसौं[3] दरवाजा[4] ।। टेक ।।
मनु करि मका किबला[5] करि देही । बोलनहारु परम गुर[6] एही ।।१।।[7]
बिसिमिलि[8] तांमसु भरमु कंदूरी । भखि लै पंचैं[9] होइ सबूरी ।।२।।[10]
कहै[11] कबीर मैं[12] भया दिवांनां । मुसि मुसि मनुवां[13] सहजि समांनां ।।३।।[14]

[१३०]

इह जिउ[1] रांम नांम लिव[2] लागै ।
तौ[3] जरा[4] मरन छूटै भ्रम भागै ।। टेक ।।
अगम द्रुगम[5] गढ़ि[6] रचिओ बास[7] । जामहिं[8] जोति करै परगास ।। १ ।।
बिजुली चमकै होइ अनंद[9] । तहं पउढ़े प्रभु बालगोबिंद[10] ।। २ ।।
अबरन बरन स्यांम नहिं पीत । हाहू जाइ न गावै गीत ।। ३ ।।[11]

---

१३. दा० नि० जुरा। १४. दा० नि० सुर (उर्दू मूल)। १५. दा० नि० मैं। १६. दा० नि० सुलितांन। १७. दा३ हींदू। १८. गु० का। १९. दा० नि० कबीर का स्वांमीं घटि घटि रह्यौ समाइ।

[१२९]

दा० गौड़ी ६१, नि० गौड़ी ६४, गु० भैरउ ४—
१. दा० नि० पढ़ि लै काजी। २. गु० निवाज। ३. गु० दसै। ४. गु० दरवाज। ५. दा० नि० कबिला। ६. दा० नि० जगत गुर। ७. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : उहां न दोजग भिस्त मुकांमां। इहां हीं रांम इहां रहिमांनां॥ चारि पहर कुरांन वखांनैं। सांझ पड़्यां मुरगी गहि आंनैं॥ उन मुरगी का होइगा खोजा। तौ बिनसि जाइगा तीसूं रोजा॥ ८. गु० मिसिमिलि (उर्दू मूल)। ९. दा० नि० पंचै भखि ज्यूं। १० गु० में इसके बाद अतिरिक्त : हिंदू तुरक का साहिबु एकु। कह करै मुलां कह करै सेख॥ ११. गु० कहि। १२. गु० हउ। १३. दा० नि० मनुआ मुसि मुसि। १४. गु० में इस पद की पहली पंक्ति दूसरी के बाद आती है।

[१३०]

दा० नि० भैरूं ४, गु० भैरउ १९—
१. दा० नि० तहां जौ। २०. दा० नि० ल्यौ। ३. गु० में 'तौ' नहीं है। ४. दा० नि० जुरा। ५. दा० नि० निगम। ६. गु० गढ़ि। ७. दा० नि० रचिले अबास। ८. दा० नि० तहुंवां। ९. दा० नि० चमकै बिजुरी तार अनंत। १०. दा० नि० तहां प्रभू बैठे कंवला कंत। (तुल० आगे पंक्ति १०)। ११. गु० अबरन बरन सिउ मन ही प्रीति। हउमैं गावनि

अनहद सबद होत झनकार[१२] । तहं पउढ़े प्रभु स्री गोपाल[१३] ॥ ४ ॥
अखंड मंडल मंडित मंड । त्री असनांन करै त्री खंड[१४] ॥ ५ ॥
अगम अगोचर अभिअंतरा[१५] । ताकौ पार न पावै धरनींधरा[१६] ॥ ६ ॥
कदली पुहुप दीप[१७] परकास । रिदा (ह्रिदा) पंकज[१८] मंहि लिया निवास ॥७॥
द्वादस दल अभिअंतर मंत[१९] । जहां पउड़े स्री कंवलाकंत[२०] ॥८॥
अरध उरध बिच लाइलै अकास[२१] । सुंनि मंडल मंहि करि परगासु ॥[२२]॥
ऊहां सूरज नांहीं चंद[२३] । आदि निरंजन करै अनंद ॥१०॥
जो ब्रह्मंडि पिंडि सो जांनु[२४] । मांनसरोबरि करि असनांनु[२५] ॥११॥
सोहं हंसा ताकौ जाप[२६] । ताहि न लिपै पुंनि अरु पाप[२७] ॥ १२॥
अमिलन मिलन[२८] घांम नहिं छांहां[२९] । दिवस न राति कछू है तहां[३०] ॥१३॥
टारचौ टरै न आवै जाइ । सहज सुंनि मंहि[३१] रह्यौ समाइ ॥१४॥
मन मद्धे जांनैं जे कोइ[३२] । जो बोलै सो आपै होइ ॥१५॥
जोति मांहि[३३] मन असथिरु करै[३४] । कहै कबीर सो प्रांनीं तरै ॥१६॥[३५]

[१३१]

रांम चरन मनि भाए रे ।
अस ढुरि जाहु रांड[१] के करहा प्रेम प्रीति लचौ लाए रे ॥टेक॥
आंब चढ़ी अंबली रे अंबली[२] बूबर चढ़ी नग बेली रे ।
द्वै थर[३] चढ़ि गयौ रांड कौ करहा मनहूं पाट की सैली रे ॥ १ ॥

गावहि गीत ॥ १२. गु० झुनकार (उर्दू मूल) । १३. दा० नि० तहां प्रभु बैठे समरथ सार (दा३ दा४ श्री गोपाल) । १४. गु० खंडल मंडल मंडल मंडा । तिअ असथान तीनि तिअ खंडा ॥ १५. गु० अगम अगोचरु रहिआ अभ अंत । १६. गु० पारु न पावै को धरनीधर मंत (पुन० तुलनीय पंक्ति १०-१)। १७. गु० धूप । १८. गु० रज पंकज (?)। १९. दा० नि० म्यंत । २०. दा० नि० तहां प्रभु पाइसि करिलै च्यंत । २१. गु० अरध उरध मुखि लागो कासु । २२. दा० नि० तहंवां जोति करै परकास (पुन० तुलनीय पंक्ति ३-२)। २३. दा० नि० तहां न ऊगै सूरज चंद । २४. दा० नि० ब्रह्मंडे सो पिंडे जांनि । २५. गु० इसनानु (उर्दू मूल) । २६. गु० सोहंसो जाकउ है जाप । २७. गु० जाकउ लिपत न होइ पुंन अरु पाप । २८. गु० अबरन बरन (पुन० तुल० पंक्ति ४-१) । २९. गु० छाम । ३०. गु० अवर न पाईऐ गुर की साम । ३१. गु० सुंन सहज मंहि । ३२. दा० नि० काया मांहैं जांनैं सोई । ३३. गु० मंत्रि (पुन० तुल० १०-१) । ३४. दा० नि० जे मन थिर करै । ३५. दा० नि० में उक्त पद का क्रम यथापंक्ति १-२-३-८-९-४-५-१०-११-६-७-१४-१५-१२-१३-१६-१७ है ।

[१३१]

दा० गौड़ी ७६, नि० गौड़ी ६९, गु० गउड़ी ६६—
१. दा१ राय (नागरी मूल) । २. दा० में यह शब्द नहीं है । ३. दा२ दा५ थुर (उर्दू

कंकर कुईं पताल पांनियां सोनैं[४] बूंद बिकाई रे ।
बजर परौ इहिं मथुरा नगरी कांन्ह पियासा जाई रे ॥२॥
एक दहेंड़ियां दही जमायौ दुसरी परि गई साढ़ी[५] रे ।
न्यौति जिमांऊं अपनौं करहा छार मुनिस की[६] दाढ़ी रे ॥३॥
इहिं बनि बाजे मदन भेरि रे वहि बनि बाजै तूरा रे ।
इहिं बनि खेलै राही रुकमिनि वहि बनि कांन्ह अहीरा रे ॥४॥
आसि पासि घन[७] तुरसी का बिरवा मांझि बनारस[८] गांऊं रे ।
जाकौ ठाकुर तुहीं सारिंगधर[९] भगत[१०] कबीरा नांऊं रे ॥५॥

[१३२]

देव[१] करहु दया[२] मोहिं[३] मारगि लावहु जितु[४] भव बंधन टूटै[५] ।
जरन[६] मरन दुख फेरि[७] करम[८] सुख जीअ जनम तैं छूटै ॥ टेक ॥
सतगुर चरन लागि यौं बिनवौं[९] जीवनि कहां तैं पाई[१०] ।
कवन काजि जगु उपजै बिनसै कहहु मोहिं समझाई[११] ॥ १ ॥
आसा पास खंड नहिं पाड़ै[१२] यहु[१३] मन सुन्नि न लूटै[१४] ।
आपा पद निरबांनु न चीन्हां[१५] बिनु अनभै क्यूं छूटै[१६] ॥ २ ॥
कही[१७] न उपजै उपजी[१८] नहिं[१९] जांनैं भाव अभाव बिहूंनां ।
उदै अस्त की मति[२०] बुधि नासी तउ सदा सहजि लिव लीनां[२१] ॥३॥

मूल) । ४. दा१ दा२ सूनैं (उर्दू मूल) । ५. दा१ साई, दा२ नि० सारी । ६. दा०१ डारी (उर्दू मूल), दा२ दारही (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० में 'घन' शब्द नहीं है। ८. दा० नि० द्वारिका । ९. दा० नि० तहां मेरौ ठाकुर रांम राइ है । १०. गु० मोहिं ।
गु० में उक्त पद से मिलता-जुलता जो पद है उसमें केवल निम्नलिखित पाँच पंक्तियाँ हैं—
आस पास घन तुरसी का बिरवा माझ बनारस गाऊ रे । [तुल० ऊपर की पंक्ति ११]
उआ का (?) सरूप देखि मोही गुआरिनि मोकउ छोड़ि न आउ न जाहू रे ।
तोहि चरन मन लागो सारिंगधर [पुन० तुल० आगे ५वीं पंक्ति] सो मिलै जो बड़ भागो रे।
ब्रिदाबन मनहरन मनोहर क्रिसन चरावत गाऊ रे ।
जाका ठाकुरु तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊ रे॥ [तुल० ऊपर की पंक्ति १२]
अधिक संतोषप्रद होने के कारण मूल रूप में यहाँ दा० नि० का पाठ ही स्वीकृत किया गया है ।

[१३२]

दा० रांमकली २७, नि० रांमकली २८, गु० आसा १—
१. दा० नि० बाबा । २. दा० नि० कृपा । ३, दा० नि० जन । ४. दा० नि० ज्यौं । ५. दा१ दा२ खूटै, दा३ नि० टूटैं, गु० तूटै । ६. गु० जनम [पुन० आगे : जीअ जनम तें छूटै] । ७. गु० फेड़ । ८. दा० नि० करन (हिंदी मूल) । ९. गु० गुरु चरन लागि हम बिनवता पूछत । १०. गु० कह जीउ पाइआ । ११. दा० नि० जा कारिन हंम उपजैं बिनसैं क्यौं न कहौ समझाई । १२. गु० माइआ फांस बंध (पुन०) नहीं फारै । १३. गु० अरु । १४. गु० लूके (?) । १५. दा० नि० आपा पर आनंद न बूझै । १६. गु० इन विधि अभिउ न चूके (?) १७. दा० नि० कह्यां । १८. दा० नि० उपजा । १९. गु० में 'नहिं' शब्द नहीं है । २०. गु०

ज्यौं बिबंहि प्रतिबिंब समांनां[२२] उदकि कुंभ बिगरांनां ।
कहै कबीर जांनि भ्रम भागा[२३] तउ मन सुन्नि समांनां[२४] ।। ४ ।।

[१३३]

राजा रांम[१] अनहद किंगरी बाजै ।
जाकी दिस्टि[२] नाद लिव[३] लागै ।। टेक ।।[४]
अचरज एकु सुनहु रे पंडिआ अब किछु कहन न जाई ।
सुर नर गण गंध्रब जिनि मोहे त्रिभुवन मेखुली लाई ।। १ ।।[५]
भाठी गगन[६] सींगी करि चोंगी[७] कनक कलस इक पावा[८] ।
तिसु महिं धार चुअै अति निरमल[९] रस महिं रसन[१०] चुआवा[११] ।। २ ।।
एक जु बात अनूप बनी है[१२] पवन पिआला साजा ।
तीनि भवन[१३] महिं एको[१४] जोगी कहहु कवन है[१५] राजा ।। ३ ।।
अैसें गिआंन प्रगटा पुरखोतम[१६] कहु[१७] कबीर रंगि राता ।
अउर दुनीं[१८] सभ[१९] भरमि भुलांनीं मैं[२०] रांम रसांइन माता ।। ४ ।।

[१३४]

मन रे मनहीं उलटि समांनां ।
गुर परसादि अकिलि भई अवरै[१] नातरु[२] था बेगांनां ।। टेक ।।

मन (उर्दू मूल)। २१. दा० नि० सहजि रांम लौ लीनां। २२. गु० जिउ प्रतिबिंब बिंब कउ मिली है। २३. गु० कहु कबीर अैसा गुण भ्रम भागा। २४. गु० में पद की प्रथम दोनों पंक्तियाँ चौथी के बाद आती हैं।

[१३३]

दा० नि० रांमकली १, गु० सिरी २—

१. दा० नि० जगत गुर। २ दा० नि० जहां दीरघ। ३. दा० नि० ल्यौ, दा३ लै। ४. गु० में यह पंक्ति तीसरी के बाद आती है। ५. दा० नि० में इन पंक्तियों का पाठ है : त्री अस्थांन अंतर त्रिगछाला [दा३. नि० रिखिछाला] गगन मंडल सींगी बाजै। तहुंवां एक दुकान रच्यौ है निराकार ब्रत साजै ॥ ६. दा० नि० गगनहिं भाठी। ७. गु० सिङिआ अरु चुंङआ, दा० नि० सींगी करि चूंगी (दा३ चूंघी)। [मूल वस्तुतः 'चोंगी' (= नली) ज्ञात होता है जिससे दा० नि० में उर्दू मूल के कारण 'चूंगी' और गु० में संभवतः पंजाबी उच्चारण के अनुसार 'चुंङआ' हो गया है ।]। ८. गु० पाइआ। ९. दा० नि० तहुंवां चुवै अंमृत रस नीझर। १०. दा० नि० रसही मैं रस। ११. गु० चुआइआ। १२. दा० नि० अब तौ एक अनूप बात भई। १३. दा३ जुवन (हिंदी मूल)। १४. दा० नि० एकै। १५. दा० नि० कहौ कहां बसै। १६. दा० नि० बिन रे जांनि परणाऊं परसोतम। १७. दा० नि० कहि। १८. दा० नि० यहु दुनियां। १९. दा० नि० कांइ (राज०)। २०. गु० मन।

[१३४]

दा० नि० गौड़ी ८, गु० गउड़ी ४७—

१. दा० नि० तोकौं। २. गु० नतरु, नि० नहिं तौ। ३. गु० उलटत। ४. दा० नि० बेधा।

उलटै[३] पवन चक्र खटु भेदे[४] सुरति सुंनि अनुरागी[५] ।
आवै न जाइ मरै नहिं जीवै[६] ताहि खोजि[७] बैरागी ॥ १ ॥
नियरै दूरि दूरि फुनि नियरै[८] जिनि जैसा करि मांनां[९] ।
औलौती[१०] का चढ़ा बरेंडै[११] जिनि पीया तिनि जांनां[१२] ॥ २ ॥
तेरी निरगुन कथा[१३] कवन सौं[१४] कहिऔ है कोई चतुर बिबेकी[१५] ।
कहै कबीर गुर दिया पलीता सो झल बिरलै देखी[१६] ॥ ३ ॥

[१३५]

मेरी मति बउरी मैं रांम बिसारयौं केहि बिधि[१] रहनि रहउं रे[२] ।
सेजें[३] रमत[४] नैंन नहिं पेखउं[५] यहु दुख कासौं कहउं रे[६] ॥ टेक ॥
सासु की दुखी ससुर की पिआरी जेठ कै तरसि[७] डरउं रे ।
ननद[८] सुहेली गरब गहेली[९] देवर कै बिरहि जरउं[१०] रे ॥ १ ॥
बापु सावका[११] करै लराई माया सद मतवारी ।
सगौ भईआ लै सलि चढ़िहूं[१२] तब हौं नाह[१३] पिआरी ॥ २ ॥
सोचि बिचारि देखौ मन मांहीं औसर आइ बन्यौं रे ।[१४]
कहै कबीर सुनहुं मतिसुंदर राजा रांम रमौं रे ॥३॥[१५]

[१३६]

[१]मन[२] मोर रहटा रसनां[३] पिउरिया[४] ।

---

५. दा० सुंनि सुरति लै लागी, नि० सहज सुंनि अनुरागी । ६. दा० अमर न मरै मरै नहिं जीवै (पुन०) । ७. गु० तासु खोजु । ८. दा० नि० नेड़ै थैं दूरि दूरि थैं नियरा । ९. गु० मानिआ, नि० उनमांनां । १०. गु० अलउती [नागरी मूल—कदाचित् 'अ' और 'ल' के बीच का 'उ' छूट गया है]। ११. गु० जैसे भइआ बरेडा, दा० नि० बलींडै (उर्दू मूल) नि० चढ़या ब्रंडै । १२. गु० जानिआ । १३. दा० नि० अनभै कथा । १४. गु० काइ (राज० मूल) सिउ । १५. गु० ऐसा कोइ बिबेकी । १६. गु० कहु कबीर जिनि दीआ पलीता तिनि तैसी झल देखी । १०. दा० नि० में तीसरी, चौथी पंक्तियाँ छठी के बाद आती हैं, और गु० में प्रथम दोनों पंक्तियाँ तीसरी के बाद आती हैं ।

[१३५]

दा० आसावरी २९, नि० आसावरी २८, गु० आसा २५—
१. गु० किन बिधि । २. दा० नि० रहौं हो दयाल । ३. दा३ दा४ जैसे, नि० सेझै । ४. दा० नि० रहूं । ५. दा० नि० देखौं । ६. दा० नि० कहौं हो दयाल । ७. गु० नाभि । ८. गु० सखी । ९. गु० ननद गहेली । १०. दा० नि० जरौं हो दयाल । ११. दा० नि० सावकौ । १२. गु० बड़े भाई के जब संगि होती । १३. दा० नि० पियहिं । १४-१५. गु० में इन पंक्तियों का पाठ है : कहत कबीर पंच को झगरा झगरत जनमु गवाइआ । झूठी माइआ सभु जगु बाधिआ मै राम रमत सुखु पाइआ ॥

[१३६]

दा० आसावरी २७, नि० आसावरी २६, बी० ३५—
१. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त : हरि मोरा पीव मैं रांम की बहुरिया । रांम बड़े मैं तनकी

हरि कौ नांउं लै[५] काति[६] बहुरिया ॥ टेक ॥
चारि खूंटी दोइ चमरख लाई । सहजि रहटवा दियौ चलाई ॥ १ ॥[७]
छौ मास तागा बरिस दिन कुकुरी । लोग बोलैं भल कातल बपुरी ॥ २ ॥[८]
कहै कबीर सूत भल काता । रहटा नहीं परम पद दाता[९] ॥ ३ ॥

[१३७]

है कोई गुरु ग्यांनीं जगत मांहि[१] उलटि बेद बूझै ।
पनिआं मांहि पावक जरै[२] अंधे आंखिन सूझै[३] ॥टेक॥
गाइ नाहर खाइयौ[४] हरिनि खायौ[५] चीता ।
काग लंगर फांदिया[६] बटेरै बाज जीता ॥ १ ॥
मूस तौ[७] मंजार खायौ[५] स्यारि[८] खायौ[४] स्वांनां ।
आदि कौ उदेस जांनैं तासु बीस[९] बांनां[१०] ॥ २ ॥
एक ही[११] दादुल[१२] खायौ[५] पांच हूं भुवंगा[१३] ।[१४]
कहै कबीर पुकारि कै हैं दोऊ एक संगा ॥ ३ ॥[१५]

[१३८]

इहि ततु[१] रांम जपहु रे प्रांनीं तुम[२] बूझहु अकथ कहांनीं ।
जाकौ भाव होत हरि उपरि[३] जागत रैंनि बिहांनीं ॥ टेक ॥

लहुरिया ॥ [तुल० दा० गौड़ी ११७-३, नि० गौड़ी १२०-३ यथा : हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया । रांम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥ तथा गु० आसा ३०-२ यथा : हरि मेरो पिरु हउ हरि की बहुरीआ । राम बड़े मैं तनक लहुरीआ ॥—दे० प्रस्तुत पुस्तक में पद ११ की प्रथम दो पंक्तियाँ ।] २. बी० हरि (पुन० आगे की पंक्ति में पुनः 'हरि कौ नांउं लै') ३. दा२ रसन, बी० रतन (उर्दू मूल)। ४. दा० नि० पुरइया, दा२ पुवरिया (दोनों उर्दू मूल से)। ५. बी० सूत, बीभ० लेत । ६. बी० कातल (पाठांतर–'कातति')। ७. बी० में यह पंक्ति नहीं है, किन्तु प्रसंगानुकूल होने के कारण स्वीकृत । ८. दा० नि० में इसके स्थान पर : सासू कहै काति बहू ऐसैं । बिनु कातें निसतरिबौ कैसैं ॥ ९. बी० मुक्ति कौ दाता ।

[१३७]

दा० रांमकली ८, नि० रांमकली ९, बी० तथा बीभ० १११—
१. दा० नि० है कोई जगत गुर ग्यांनीं, बीभ० है कोई गुरु ग्यांन जगतर । २. दा० नि० पांनीं मैं अगिनि जरै । ३. दा० नि० अंधरे कौं सूझै । ४. दा० नि० बकरी बिचार खायौ । ५. बीभ० खैलो । ६. बी० फांदि कै । ७. दा० नि० मूसै । ८. बी० स्यारै, बीभ० स्यार । ९. बी० बेस (बीभ० बीस)। १० दा० नि० (यथा अंतिम पंक्ति) आदि कौ आदेस करत कहै कबीर ग्यांनां । ११. दा० नि० एकनि । १२. दा० नि० दादुरि । १३. दा० नि० पांच भवंगा । १४. दा० नि० में इसके पश्चात् : गाइ नाहर खायौ काटि काटि अंगा । (तुल० पंक्ति २)। १५. दा० नि० में यह पंक्ति नहीं है ।

[१३८]

दा० नि० गौड़ी ९, बी० १९, बीभ० १८—
१. दा१ इहि तति, बी० ए ततु । २. दा० नि० में 'तुम' शब्द नहीं है । ३. दा० हरि का भाव होइ जा ऊपरि, नि० हरि की कृपा भई जा ऊपरि । ४. नि० डारै डाइन । ५. दा० स्यंघ (रा[illegible]

डांइन डारै[४] सुनहां डोरै सिंघ[५] रहै बन घेरै ।
पांच कुटुंब मिलि जूझन लागे बाजन बाजु घनेरै[६] ॥ १ ॥
रोहै मिरिग[७] ससा[८] बन हांकै[९] पारधी बांन न[१०] मेलै ।
सायर जरै सकल बन दाझै[११] मंछ अहेरा खेलै ॥ २ ॥
सोई पंडित सो तत ग्याता जो इहि पदहिं बिचारै[१२] ।
कहै कबीर सोई गुर मेरा[१३] आप तिरै मोहिं तारै ॥ ३ ॥

[१३६]

यहु[१] ठग ठगत सकल जग डोलै ।
गवन करत मोसें मुखहुं न बोलै[२] ॥ टेक ॥
बालपनां[३] के मीत हमारे । हर्महिं छांड़ि कत चले हो निनारे[४] ॥ १ ॥
तूं मेरौ पुरिखा हौं तेरी नारी ।[५] तोहरि चाल पाहनहुं तैं भारी ॥[६] २ ॥
[७]माटी कै देह[८] पवन कै सरीरा । तेहि ठग सौं जन डरै कबीरा[९] ॥ ३ ॥

[१४०]

अब मेरी रांम कहइ रे बलइया ।[१]
जांमन मरन दोऊ डर गइया ॥ टेक ॥[२]
ज्यौं उघरी कौं दे सरवांनां । रांम भगति मेरे[४] मनहुं न मांनां ॥ १ ॥[३]
हंम[५] बहनोई[६] रांम मोर सारा । हर्महिं बाप[७] रांम[८] पूत[९] हमारा ॥ २ ॥
कहै कबीर ए हरि के बूता । रांम रमे ते कुकुरि के पूता ॥ ३ ॥[१०]

प्रभाव)। ६. दा० नि० बाजत सबद संघेरै। ७. बी० रोहू मृगा, नि० रौहै मृघ। ८. बी० संसै, नि० सुसा। ९. दा० नि० घेरै। १०. बी० पारथ बाना। ११. बी० डाहै। १२. बी० कहहिं कबीर सुनहु हो संतो जो यह पद अरथावै (तुकहीन तुल० आगे 'तारै' ।)। १३. बी० जो यह पद को गाय बिचारै।

[१३६]

दा० नि० सारंग १, बी० ३७—
१. बी० हरि । २. दा० नि० गवन करै तब मुखह न बोलै। ३. बी० बालापन। ४. बी० हमहीं तजि कहं चले सकारे। [ऊपर की पंक्ति में मित्रता का प्रसंग है, अतः 'सकारे' (=शीघ्र) की अपेक्षा 'निनारे' (=न्यारे, त्याग कर) मूल भाव के अधिक निकट ज्ञात होता है।]। ५. बी० तुमहिं पुरुष (पाठांतर : तुअ अस पुरुष) मैं (पाठांतर : हूं) नारि तुम्हारी। ६. दा० नि० तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी। दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की दोनों पंकियों के पूर्व ही आ जाती हैं। ७. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : हमसूं प्रीति न करि री बौरी । तुम्ह से केते लागे ढौरी ॥ हंम काहू संगि गए न आए । तुम्ह से गढ़ हंम बहुत बसाए ॥ ८. दा० नि० देही। ९. बी० हरि ठग ठग से डरहि कबीरा।

[१४०]

दा० गौड़ी १६, नि० आसावरी १०३, बी० १००—
१-३ बी० देखहु लोगा हरि केर सगाई। माई धरै पुत्र धिया संग जाई ॥ सासु ननद मिलि अदल चलाई। मादरिया ग्रिह बेटी जाई ॥ ४. नि० मनहिं समांनां। ५. दा० नि० मैं। ६. दा० नि० बहनेऊ। ७. दा० नि० मैं बपुवा। ८. बी० हरि। ९. बी० पुत्र। १०. दा० नि० कहै कबीर सकल जग मूठा (?)। रांम कहै सोई जन झूठा ॥

[१४१]

बनमाली जांनैं बन कै आदि ।
रांम नांम बिन[१] जनम बादि ॥ टेक ॥

फूल जु फूले[२] रुत बसंत । जामैं मोहि रहे सब जीव जंत ॥ १ ॥
फूलनि मैं जैसे रहत[३] बास[४] । यूं घटि घटि गोबिंद[५] है[६] निवास[७] ॥ २ ॥
कहै कबीर मनि भयौ अनंद । जग जीवन मिलियौ परमानंद[८] ॥ ३ ॥

[१४२]

अवधू जांनि राखि मन ठाहरि[१] ।
जो कछु खोजौ सो तुमहीं मांहि[२] काहे कौ भरमैं बाहरि[३] ॥टेक॥

घट ही भीतरि बनखंड गिरिवर[४] घटि हीं[५] सात समुंदा[६] ।[७]
घट ही भीतरि तारा मंडल घट भीतरि रबि चंदा ॥ १ ॥[८]
ममता मेटि सांच करि मुद्रा[९] आसन सील दिढ़ कीजे ।
अनहद सबद कींगरी बाजे ता जोगी चित दीजै[१०] ॥ २ ॥
सत करि खपर[११] खिमा करि झोरी ग्यांन बिभूति चढ़ाई ।[१२]
उलटा पवन जटा धरि[१३] जोगी सींगी सुन्नि[१४] बजाई[१५] ॥ ३ ॥
नाटक चेटक भैरौं कलुवा इनमैं जोग न होई ।[१६]
कहै कबीर रमता सौं रमनां देही बादि न खोई ॥ ४ ॥[१७]

---

[१४१]

दा० वसंत ६, नि० बसंत ५, शक० बसंत १—
१. शक० एक नाम भजे विना । २. शक० एक फूल फूले । ३. नि० पुहुप । ४. शक० इन फूलन में अधिक वास । ५. शक साहेब । ६. नि० हरि । ७. शक० में इसके बाद अतिरिक्त—

उड़ि उड़ि भंवरा गए विदेस । मोरे हरि मीतम से कहे संदेस ॥
चोलि पुरानी यौवन भार । मोहिं विरह सतावै बार बार ॥
ऊंचा पर्वत विषम घाट । अगम पंथ कोई लहै न बाट ॥
पार वेलि राच्यौ है कंत । मैं का संग खेलौं ऋतु बसंत ॥
ऋतु बसंत की परी हूल । आम मौर कचनार फूल ॥

८. शक० मोहिं हर्षि मिले गुरु रामानंद ।

[१४२]

दा५ गौड़ी ६४, नि० आसावरी ७६, शबे० (३) भेद १५—
१. शबे० ठौरा । २. शबे० में यह चरण नहीं है । ३. शबे० काहे को बाहर दौरा । ४. शबे० तो मैं गिरिवर तो मैं तरवर । ५. शबे० तो मैं । ६. शबे० तारा मंडल तोहिं घट भीतर तामें रवि औ चंदा । ७-८. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ अंतिम दो पंक्तियों के पूर्व आती हैं । ९. शबे० पहिरि मन मूद्रा । १०. शबे० अनहद सबद होत धुनि अंतर तहां अवर चित दीजै । ११. शबे० सील के पत्र । १२. शबे० ब्रह्म विभूति चढ़ावो । १३. शबे० करि । १४. नि० सींगी सुरति, शबे० अनहद नाद (पुन० तुल० पंक्ति ६ : अनहद सबद) । १५. शबे० बजावो ।

[१४३]

[1]नाथ जी[2] हम तब के[3] बैरागी।
हमरी सुरति नांम (रांम ?) सौं लागी[4] ॥ टेक ॥
ब्रह्मां नहिं जब टोपी दीन्हां बिस्नु नहीं जब टीका[5]।
सिव सकती के जनमहुं नांहीं[6] जबै जोग हंम सीखा[7] ॥ १ ॥[8]
सतजुग मैं हंम पहिरि पांवरी[9] त्रेता झोरी डंडा[10]।
द्वापर मैं हंम अड़बंद पहिरा[11] कलउ फिरचौं[12] नौ खंडा ॥ २ ॥[13]
गुर परताप साध की संगति जीति अमरगढ़ आया[14] ।[17]
कहै कबीर सुनौं हो अवधू[15] मैं अभै निरतंरि पाया[16] ॥ ३ ॥[18]

[१४४]

सतगुरु संग होरी खेलिए[1]।
जातैं[2] जरा मरन भ्रम[3] जाइ ॥ टेक ॥

१६-१७. शबे० सुकदेव ध्यान धरयौ घट भीतरि तहां हतीं कहं माला। कहै कबीर भेख सोइ भूला मूल छोड़ि गहि डाला ॥ [किंतु यहाँ यह पंक्तियाँ प्रसंग से असंबद्ध। दा० तथा नि० में यह पंक्तियाँ अन्यत्र आती हैं और वहीं प्रसंग के अनुकूल भी जान पड़ती हैं—तुल० दा५ गौड़ी ७६-७,८ तथा नि० आसावरी १३१-७, ८ : गरभ बास मैं सुमिरन कीन्हां सुखदेव कौन सु माला। कहै कबीर सब भेख भुलांनां (दा० बिलंब्या) मूल छांड़ि गहि डाला।]।

[१४३]

नि० सोरठि ६१, शबे० (२) भेद १, शक० कबीर-गोरख-संवाद १—

१. शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

प्रश्न गोरखनाथ : कबिरा कब से भये बैरागी।
तुम्हरी सुरति कहां को लगी ॥
उत्तर : धुंधमई का मेला नाहीं नहीं गुरू नहिं चेला।
सकल पसारा जेहि दिन नाहीं जेहि दिन पुरुष अकेला ॥

शक० का पाठ है—कबीर जी कब से भये बैरागी।
धुंधूकार आदि के मेला नहीं गुरू नहीं चेला। जब से हम यह योग उपाया तब से फिरौं अकेला ॥

२. शबे० गोरख। ३. नि० मैं तब का। ४. नि० तातैं रांम नांम लौ लागी। ५. नि० धरणि नहीं जब लिया मेखला ब्रह्मंड नहीं जब टीका, शक० धरती नहीं जब टोपी लीन्हां ब्रह्मां नहीं तब टीका। ६. नि० महादेव का जनम न होता, शक० शिव संकर सों भोगी नाहीं। ७. नि० जब लीया झोली संखा, शक० तब से झोली सीका। ८. नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की पाँचवीं पंक्ति के बाद हैं। ९. नि० सतजुग पकड़ि फाहड़ी कीन्हीं, शक० द्वापर की हम करी फाहुरी। १०. शबे० झंडा (राज० मूल)। ११. नि० द्वापर जुग में फिरी दोहाई, शक० सतजुग मेरी फिरी दोहाई। १२. नि० शक० कलिजुग में। १३. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त: कासी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चिताए। समरथ कौ परवाना लाए हंस उबारन आए ॥ १४. शक० अजर अमर घर पाया। १५. शक० गोरख। १६. शक० जब से तत्व लखाया। १७-१८. शबे० : सहजै सहजै मेला होइगा जाकी भगति उतंगा। कहै कबीर सुनौ हो गोरख चलौ सबद के संगा ॥

[१४४]

नि० काफी ५, शबे० (१) होली १—

१ नि० इन औसरि रांम रमाइय हो। २. नि० अहो तातैं। ३. नि० मैं। ४. नि० जोग

ध्यांन जुगति[४] की करि पिचकारी खिमा[५] चलावनहार[६] ।
आतम ब्रह्म जो[७] खेलन लागे काया नग्र मझार[८] ।। १ ।।
ग्यांन गली मैं[९] होरी खेलै[१०] मची[११] प्रेम की कीच ।
लोभ मोह दोऊ कटि (कढ़ि ?) भागे[१२] सुनि सुनि सबद अतीत[१३] ।।२।।
त्रिकुटी महल मैं[१४] बाजा बाजै होत छतीसौं[१५] राग ।
सुरति सखी जहं देखि तमासा[१६] सतगुर खेलै फाग[१७] ।।३।।[१८]
सतगुर मिलिया फगुवा दीया[१९] पैंड़ा दिया बताइ[२०] ।
कहै कबीर सोई ततबेता जीवन मुक्ति समाइ ।।४।।[२१]

[१४५]

रस गगन गुफा मैं अजर झरै ।[१]
अजपा सुमिरन जाप करै[२] ।। टेक ।।
बिनु बाजा झनकार उठै जहं समुझि परै जब ध्यांन धरै[३]।।[४]
बिनु चंदा उजियारी दरसै[५] जहं तहं हंसा नजरि परै[६] ।। १ ।।[७]
दसवैं द्वारै ताड़ी लागी अलख पुरुख जाकौ ध्यांन धरै ।
काल कराल निकटि नहिं आवै कांम क्रोध मद लोभ जरै ।। २ ।।
जुगन-जुगन की त्रिखा बुझांनीं करम भरम अघ ब्याधि टरै ।
कहै कबीर सुनौं भाई साधौ अमर होइ कबहूं न मरै ।। ३ ।।

जुगति । ५. शबे० छिमा । ६. नि० खेलावनहार । ७. नि० दोऊ । ८. शबे० पांच पचीस मझार । ९. नि० काया नगर में (पुन०) । १०. नि० मातै । ११. नि० मच्यौ । १२. नि० कांम क्रोध दोऊ छुटि भागे । १३. नि० अजीत । १४. नि० त्रिकुटी कोट मैं । १५. नि० छतीसूं (उर्दू मूल) । १६. नि० ग्यांन ध्यांन दोऊ देखन लागे । १७. नि० गुर गमि खेलौ फाग । १८. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : इंगला पिंगला सुखमना हो सुरति निरत दोउ नारि । अपने पिया संग होरी खेलैं लज्जा कानि निवारि ॥ सुन्न सहर में होत कुतूहल करैं राग अनुराग । अपने पुरुष के दरसन पावैं पूरन प्रेम सुहाग ॥ १९. शबे० सतगुर मिले फगुवा निज पायौ । २०. शबे० मारग दियौ लखाय । २१. शबे० कहै कबीर जो यह गति पावै सो शिव लोक (?) सिधाय ।

[१४५]

नि० भैरूं ५१, शबे० (१) भेद १९—
१. नि० अजर जरै कोई अजर जरै । २. शबे० में यह पंक्ति नहीं है; किंतु इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है । ३. नि० सुंनि मंडल मैं बाजा बाजै सुखमनि तांती घोर परै । ४. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : बिना तलाब जहां कंवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केल करै (पुन० तुल० अगली पंक्ति का द्वितीय चरण)। ५. नि० बिन दीपक दह दिसि उजियारा । ६. नि० साधू जाकौ ध्यांन धरै । (तुल० ऊपर पंक्ति ४)। ७. नि० में इसके आगे की पंक्तियों का पाठ है : गंगा जमुनां मधि सुरसती नाद बिंद कौ गांठि परै । सुंनि मंडल मैं आसण साधै दसवैं द्वार की खबरि परै ॥ [तुल० पंक्ति ५ : दसवैं द्वारै ताड़ी लागी] । सोई पंडित सो तत ग्याता बिन खंडै संग्राम करै । कहै कबीर सोई गुर मेरा आदि अंत लौं कबहुं न मरै ॥ [तुल० ऊपर की अंतिम पंक्ति]।

[१४६]

[1]फल मीठा पै[2] तरवर ऊंचा कौंन जतन करि लीजै[3] ।
नेक निचोइ[4] सुधा रस वाकौ कौंन जुगति सौं पीजै[5] ।।टेक।।
पेड़ बिकट है[6] महा सिलहला[7] अगह गहा नहिं जावै[8] ।
तन मन मेल्हि[9] चढ़ै सरधा सौं तब वा फल कौं खावै[10] ।। १ ।।
बहुतक लोग चढ़े अनभेदू[11] देखा देखी गहि बांहीं[12] ।
रपटि पांव गिरि परे अधर तैं[13] आइ परे[14] भुइं[15] मांहीं ।। २ ।।
सील सांच कै[16] खूंटै धरि पग[17] ग्यांन गुरू गहि डोरा[18] ।
कहै कबीर सुनौं भाई साधौ तब वा[19] फल कौं तोरा ।। ३ ।।

[१४७]

वा घर की सुधि कोइ[1] न बतावै जा घर तैं जिउ आया हो ।
काया छांड़ि चला जब हंसा कहौ न कहां समाया हो ।। टेक ।।[2]
धरती अकास पवन नहिं पांनीं नहिं तब आदी माया हो ।[3]
ब्रह्मां बिस्नु महेस नहीं तब जीव कहां तैं आया हो ।। १ ।।[4]
[5]मैं मेरी ममता कै कारनि[6] बार बार पछिताया हो ।[7]
लखि नहिं परै नांम साहेब का[8] फिर फिर भटका खाया हो ।। २ ।।[9]
मेरी प्रीति पीव सौं लागी उलटि निरंजन ध्याया हो ।[10]
कहै कबीर सुनौं भाई साधौ वा घर बिरलै पाया हो[11] ।। ३ ।।

---

[१४६]

नि० सोरठि ७२, शबे० (१) भेद १६—
१. नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : भाई रे । २ नि० पणि । ३. नि० कहौ किसी बिधि लीजै । ४. नि० नेक न वाइ । ५ नि० कैसे ही करि पीजै । ६. नि० वाकौ । ७. नि० अधिक सलसलौ । ८. नि० जाई । ९. शबे० डारि । १०. नि० खाई । ११. शबे० बिन भेदे । १२. शबे० देखी देखा गहि मांहीं । १३. नि० रपट्यौ पांव गिरे अधफर सौं । १४. नि० पड़्या (राज०) । १५. नि० भैं । १६. शबे० सत्त सबद के । १७. नि० पेड़ौ पग दे । १८. शबे० गहि गुर ग्यानहिं डोरा । १९. नि० एहि बिधि ।

[१४७]

नि० मारू ७, शबे० (१) भेद १३—
१. नि० क्यूं । २-४. नि० में यह तीनों पंक्तियाँ नहीं हैं । ५. शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त—
पानी पवन के दहिया जमायो अगिनि के जामन दीन्हां हो ।
चांद सुरुज दोउ बने अहीरा मथि दहिया घिउ काढ़ा हो ॥ (तुक-हीन) ।
६. शबे० ये मनसा माया के लोभी । ७. नि० बारंबार ठगाया । ८. नि० समझि न परै ग्यांन गुरुगमि की (?) । ९. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जहां चंद न सूर दिवस नहि रजनीं तहां जाइ मठ छाया । सुरति सुहागिनि पांव पलोटै खसम आपनां पाया । १०. शबे० में यह पंक्ति नहीं है, (किन्तु बिना इसके अंतिम द्विपदी अधूरी ही रह जाती है) । ११. नि० परा के पार बताया ।

[१४८]

मानुख[1] तन पायौ बड़ें भाग ।
अब[2] बिचारि कै[3] खेलौ फाग ॥ टेक ॥

बिनु जिभ्या[4] गावै गुन[5] रसाल । बिनु चरनन[6] चालै अधर चाल ॥१॥[7]
बिनु कर बाजा बजै बेन । निरखि देखि[8] जहं[9] बिनां नैंन ॥२॥
बिन ही मारें मृतक होइ[10] । बिनु जारें होइ खाक सोइ[11] ॥३॥
बिनु मांगैं ही बस्तु देइ[12] । सो[13] सालिम बाजी जीति लेइ ॥४॥
बिनु[14] दीपक बरै अखंड जोति । तहां पाप पुन्नि नहिं लगै छोति[15] ॥५॥
जहं चंद सूर नहिं आदि अंत । तहं कबीर[16] गावै बसंत[17] ॥६॥

[१४९]

जहं[1] सतगुर खेलत[2] रितु बसंत ।
परम जोति[3] जहं साध संत ॥ टेक ॥

तीन लोक तैं भिन्न राज । अनहद धुनि जहं बजै बाज[4] ॥ १ ॥[5]
चहुं दिसि जोति की बहै धार[6] । बिरला जन कोइ उतरै पार[7] ॥ २ ॥
कोटि क्रिस्न जहं जोरैं हाथ[8] । कोटि[9] बिस्नु जहं नावैं[10] माथ ॥ ३ ॥
कोटिक ब्रह्मां पढ़ैं पुरांन । कोटि महेस[11] जहं धरैं ध्यांन ॥ ४ ॥
कोटि सरसती[12] धारैं[13] राग । कोटि इंद्र जहं[14] गगन[15] लाग ॥ ५ ॥
सुर गंध्रब मुनि[16] गनें न जाइ । जहां साहेब प्रगटे आप आइ[17] ॥६॥[18]

---

[१४८]

नि० वसंत १९, शबे० (२) होली १९—
१. नि० मनिखा । २. नि० पांच । ३ नि० मिलि । ४. नि० रसनां । ५. नि० पद । ६. नि० चरनां । ७. नि० में दोनों चरगा परस्पर स्थानांतरित । ८. नि० असे निरिख देखि । ९. नि० नर । १०. नि० बिन मार्‌यौ मरि जाइ सोइ । ११. नि० जरि खाक होइ । १२. शबे० बिन मांगे बिन जांचे देइ । १३. नि० या । १४. नि० जहां । १५. नि० तहां पाप पुंनि की नहीं छोति । १६. नि० दास कबीर । १७. शबे० खेलै ।

[१४९]

नि० वसंत १७, शबे० (१) होली ६—
१. नि० असैं । २. नि० खेलै । ३. नि० परम पुरख । ४. शबे० जहं अनहद बाजा बजै बाज (पुन०) । ५. नि० में दोनों चरगा परस्पर स्थानांतरित । ६. नि० जहां कोटि किरण ऊगैं अपार । ७. नि० तहां कोई बिरला पहुंचै पार । ८. नि० जहां कोटि क्रिश्न कर जोड़्या हाथ (पुन०) । ९. नि० कोटिक । १०. नि० नवावैं । ११. नि० महादेव । १२. शबे० सरस्वती । १३. नि० करहिं । १४. नि० तहां । १५. नि० गवन । १६. नि० मुनी मुनेस्वर । १७. नि० तहं प्रभु बैठे सहज भाइ । १८. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : चोवा

जब बसंत गहि राग लीन्ह । सतगुर सबद उचार कीन्ह ।। ७ ।।[१९]
कहै कबीर मन हृदय लाइ[२०] । नरक उधारन नांउं आहि[२१] ।। ८ ।।

[१५०]

कोरी कौ[१] काहू मरमु न जांनां ।
सब[२] जगु आंनि[३] तनायौ[४] तांनां ।। टेक ।।[५]
धरनि[६] अकास की करगह बनाई[७] । चंद सुरुज दुइ नरी[८] चलाई[९] ।।१।।
सहज तार ले पूरिन पूरी । अजहूं बिनैं कठिन है दूरी ।।२।।[१०]
कहत कबीर कारगह तोरी[११] । सूतै सूत मिलाए कोरी[१२] ।।३।।

[१५१]

जोगिया फिरि[१] गयौ गगन[२] मझारी ।
रह्यौ समाइ पंच तजि नारी[३] ।। टेक ।।
गयौ दिसावरि[४] कौंन बतावै । जोगिया बहुरि गुफा नहिं आवै[५] ।।१।।
जरि गौ कंथा धजा गयौ टूटी[६] । भजि गौ डंड[७] खपर गयौ फूटी[८] ।।२।।
कहै कबीर जोगी जुगुति कमाई । गगन गया सो आवै न जाई[९] ।।३।।

[१५२]

सार सबद[१] गहि[२] बांचिहौ[३] मांनौं[४] इतबारा ।[५]

चंदन श्री अबीर । पुहुप बास रस रसो गंभीर । सिरजत हिए निवास लीन्ह । सो यहि लोक से रहित भिन्न ॥ [तुल० पंक्ति ३-१] १९. नि० जन रामानंद प्रभु रमिता भेव । सतगुर सबद बिचारि लेव ॥ २०. नि० ए दया आहि । २१. नि० एक नरक निवारन नांव ताहि ।

[१५०]

बी० र० २८, गु० आसा ३६—
१. बी. अस जोलहा । २. बी० जिन । ३. बी० आइ (उर्दू मूल) । ४. बी० पसारिन्ह । ५. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : जब तुम सुनते बेद पुराना । तब हम इतनकु पसरिओ ताना । ६. बी० महि, बीभ० धरती । ७. बी० दोउ गाड़ खंदाया । ८. गु० साथ । ९. बी० बनाया । १०. गु० में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर : पाई जोरि बात इक कीन्ही तह तांती मनु माना । जोलाहे घरु अपना चीन्हा घट ही रामु पछाना ॥ (भिन्न छंद) । ११. बी० करम सों जोरी । १२. बी० सूत कुसूत बिनै भल कोरी ।

[१५१]

दा२ आसावरी २, बी० ६५—
१. दा० खेलि । २. बी० नगर । ३. बी० जाय समाना पांच जहां नारी । ४. बी० देसंतर । ५. दा० बहुरि न जोगिया गुफा में आवै । ६. दा० रहि गए धागा कंथा गयौ छूटी । ७. दा० भागा डंड । ८. दा० नि० खपरा गयौ फूटि । ९. बी० में इस पंक्ति का पाठ है : कहै कबीर ई कलि है खोटी । जो रहै करवा सो निकरै टोटी ॥ (तुल० गोरख-बानी)

[१५२]

नि० बिलावल ११, बी० ११४, शबे० (१) भेद ६—
१. नि० सति सबद । २. नि० तें, बी० से । ३. नि० छूटिहौ । ४. नि० कीज्यौ । ५. इसके

या संसार सभै बंधा जम जाल पसारा ।। टेक ।।

अजर अमर[6] एक[7] बिरिछ[8] निरंजन डारा[9] ।

तिरदेवा[10] साखा भए पाती संसारा[11] ।। १ ।।

ब्रह्मां बेद सही किया सिव जोग पसारा[12] ।

बिस्नु माया[13] परगट[14] किया उरलै[15] ब्यौहारा ।। २ ।।

कीर भए सब जीयरा[16] लिए[17] बिख कर चारा ।

करम की[18] बंसी[19] डारि कै[20] पकरचौ[21] संसारा ।। ३ ।।

जोति सरूपी हाकिमा जिन अमल पसारा ।

तीनि लोक दसहूं दिसा जम रोकै[22] द्वारा ।। ४ ।।

अमल मिटावौं तासु का[23] पठवौं भव पारा ।

कहै कबीर अमर करौं जो होइ हमारा[24] ।। ५ ।।

(१२) निरंजन रांम

[१५३]

निरगुन[1] रांम जपहु रे भाई ।

अबिगत की गति लखी न जाई[2] ।। टेक ।।

[3]चारि बेद अरु[4] सुम्रित पुरांनां । नौ ब्याकरनां मरम न जांनां[5] ।।१।।

सेस नाग जाकै गरुड़ समांनां[6] । चरन कंवल कंवला नहिं जांनां[7] ।।२।।

कहै कबीर सो भरमैं नांहीं[8] । निज जन बैठे हरि की छांहीं[9] ।।३।।

बाद अगली पंक्ति केवल नि० में मिलती है; और फिर दो अतिरिक्त पंक्तियाँ : गुर गरुता होइ टेरिय। अजहूं अहंकारा ॥ चेतनिहारा चेतियौ बूड़ौ जिन धारा । ६. बी० आदि पुरुष, शबे० सत्त पुरुष । ७. शबे० अच्छै । ८. नि० पुरुष । ९. नि० ताकी डारा । १०. श० तीनि देव । ११. बी० पत्ता संसारा, नि० पत्र जग सारा । १२. नि० उचारा । १३. नि० धरम । १४. नि० उतपन किया । १५. नि० ऊला (उर्दू मूल) । १६. शबे० तिरदेवा ब्याधा भए (पुन० तुल० ऊपर पंक्ति ३), नि० कीर भया तीन्यूं जनां । १७. नि० दे । १८. नि० कर्मां की । १९. नि० पासी । २०. बी० लाय कै । २१. शबे० फांसा । २२. नि० मूंदै । २३. शबे० ताहि को । २४. बी० कहै कबीर निरभै करौं । २५. बी० में ऊपर की ९वीं पंक्ति ६ठी के पूर्व आती है और ७वीं पंक्ति ९वीं के स्थान पर । नि० में ६ठी तथा ७वीं पंक्तियाँ पहली के बाद आती हैं और ८वीं पंक्ति ९वीं के बाद ।

[१५३]

दा० गौड़ी ४९, नि० गौड़ी ५३, गु० धनासरी १, स० ५२-३—
१. दा२ तिरगुण (उर्दू मूल) । २. गु० में इस पंक्ति का पाठ है : सतसंगति रांमु रिदै बसाई । ३. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : सनक सनंद महेस समाना । सेख नाग तेरो मरम न जाना । ४. दा० नि० स० जाकै । ५. गु० कमलापति कवला नहीं जानां (तुल० ऊपर पंक्ति ४) । ६. गु० हनूमान सरि गरुड़ समानां । ७. गु० सुरपति नरपति नहीं गुन जानां । ८. दा० नि० स० कहै कबीर जाकै भेदै नांहीं । ९. गु० पग लगि राम रहै सरनाहीं ।

[१५४]

लोका[१] तुम ज कहत हौ नंद कौ नंदन नंद कहौ धूं काकौ रे[२] ।
धरनि अकास दोऊ नहिं होते[३] तब यहु नंद कहां थौ रे ॥ टेक ॥
लख चौरासी जीअ जोनि महिं[४] भ्रंमत भ्रंमत नंद थाकौ रे[५] ।[६]
भगति हेतु औतार लियौ है भागु बड़ो बपुरा कौ रे ॥ १ ॥[७]
जनमैं[८] मरै न संकटि[९] आवै[१०] नांव निरंजन जाकौ रे ।
दास कबीर कौ ठाकुर असौ[११] जाकौ माई न बापौ रे[१२] ॥ २ ॥[१३]

[१५५]

जौ जांचउं तौ केवल रांम ।
आंन देव सौं[१] नांहीं कांम ॥ टेक ॥
जाकै सूरिज कोटि करहिं परकास[२] । कोटि महादेव अरु[३] कबिलास ॥१॥
दुरगा कोटि जाकै मरदनु करैं । ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरैं[४] ॥२॥
कोटि चंद्रमां[५] करहिं[६] चिराक[७] । सुर तैंतीसउ जेवहिं[८] पाक ॥३॥
नवग्रह कोटि ठाढ़े दरबार । धरमराइ पौली प्रतिहार[९] ॥४॥
पवन कोटि चउबारै फिरहिं । बासिग[१०] कोटि सेज बिसतरहिं[११] ॥५॥[१२]
समुद कोटि जाकै पनिहार[१३] । रोमावलि कोटि[१४] अठारह भार ॥६॥[१५]
कोटि कुबेर[१६] जाकै[१७] भरहिं भंडार । कोटिक लखमीं[१८] करैं सिंगार ॥७॥
कोटिक पाप पुंन्नि ब्यौहरैं[१९] । इंद्र कोटि जाकी[२०] सेवा करैं ॥८॥

---

[१५४]

दा० गौड़ी ४८, नि० गौड़ी ५२, गु० गउड़ी ७०, स० ४३-२—
१. गु० में 'लोका' शब्द नहीं है। २. गु० नंद सु नंदनु काको रे। ३. गु० दसो दिस नाही। ४. दा० नि० स० जीव जंत मैं। ५. गु० भ्रमत नंदु बहु थाको रे। ६. दा० नि० स० में यह और पाँचवीं पंक्ति परस्पर स्थानांतरित। ७. दा० नि० स० में इसके स्थान पर : अबिनासी उपजै नहिं बिनसै संत सुजस कहैं ताकौ रे। [आगे 'जनमैं मरै न संकटि आवै' के कारण पुनरुक्ति-दोष]। ८. दा० जामैं। ९. दा० नि० संकुटि (उर्दू मूल)। १०. गु० संकटि नही परै जोनि नही आवै। ११. गु० कबीर को सुआमी असो ठाकुरु। १२. दा० नि० स० भगति करै हरि ताकौ रे। १३. गु० में इस पद की प्रथम दो पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं।

[१५५]

दा० भैरूं १६, नि० भैरूं १५, गु० भैरउ २०—
१. गु० सिउ। २. गु० कोटि सूर जाकै परगास। ३. दा० नि० गिरि। ४. दा० नि० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित। ५. गु० चंद्रमे। ६. दा० नि० गहैं। ७. गु० चराक। ८. दा० नि० जीमैं। ९. गु० धरम कोटि (?) जाकै प्रतिहार। १०. गु० बासक। ११. गु० बिसथरहि। १२. दा० नि० में दोनों चरण स्थानांतरित। १३. गु० पनीहार। १४. दा० नि० में 'कोटि' नहीं है। १५. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ उपर्युक्त पद की चौदहवीं पंक्ति के बाद हैं। १६. गु० कमेर। १७. गु० में 'जाकै' शब्द नहीं है। १८. दा० नि० लक्ष्मी कोटि। १९. गु०

बावन कोटि जाकै कुटवार[21] । नगरी नगरी खिग्रत अपार[22] ॥९॥
लटछूटी खेलैं[23] बिकराल । अनंत कला नटवर गोपाल[24] ॥१०॥[25]
कोटि जग्गि जाकै दरबार । गंध्रब[26] कोटि करहिं जैकार ॥११॥
बिद्या कोटि सभै गुन कहैं । तऊ पारब्रह्म का अंतु न[27] लहैं ॥१२॥
असंखि कोटि जाकै जमावली[28] । रावन सैनां जिहि तैं छली[29] ॥१३॥
सहस बांह कै हरे परांन[30] । जरजोधन[31] का मथिग्रा मांन[32] ॥१४॥
कंद्रप कोटि जाकै लावन करैं[33] । घट घट भीतरि[34] मनसा हरैं ॥१५॥
कहै[35] कबीर सुनि[36] सारिंगपांनि । देहि अभै पदु मांगउं दांन ॥१६॥

[१५६]

मोहिं बैराग भयौ ।
यहु जिउ आइ रे कहां गयौ[1] ॥ टेक ॥[2]
आकासि गगनु पातालि गगनु है दह दिसि[3] गगनु रहाईले ।
आनंद मूल सदा पुरखोतम[4] घट बिनसै गगनु न जाईले ॥ १ ॥
पंच तत्त मिलि[5] काया कीनीं तत्त कहां तैं कीनु रे[6] ।
करम बद्ध तुम[7] जीउ कहत हौ करमहिं किन जिउ दीनु रे[8] ॥ २ ॥
हरि महिं[9] तनु है तन महिं[9] हरि है सरब निरंतरि सोइ रे[10] ।
कहै[11] कबीर हरि नांउं[12] न छांड़उं सहजैं होइ सु होइ रे[13] ॥ ३ ॥

[१५७]

अवधू[1] कुदरति की[2] गति न्यारी ।
रंक निवाज करै राजेसुर[3] भूपति करै भिखारी[4] ॥ टेक ॥

बहुहिरइ । २०. गु० जाके (उर्दू मूल) । २१. गु० छपन कोटि जाकै प्रतिहार (पुन० तुल० पंक्ति ६-२) । २२. दा० नि० खेत्रपाल । २३. गु० बरतै । २४. गु० कोटि कला खेलै गोपाल । २५. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की पंद्रहवीं के बाद है । २६. दा० नि० गंध्रप । २७. दा० नि० पार । २८. गु० बावन कोटि (पुन० तुल० पंक्ति ११) जाकै रोमावली (पुन० तुल० पंक्ति ८) । २९. दा० नि० जाथैं चली । ३०. गु० सहस कोटि बहु कहत पुरान (कर्ता का अभाव) । ३१. गु० दरजोधन । ३२. दा० नि० में यह पंक्ति ऊपर की सातवीं पंक्ति के बाद है । ३३. गु० लवै न धरहि । ३४. गु० अंतर अंतरि । ३५. दा० नि० दास । ३६. दा० नि० भजि ।

[१५६]

दा० सोरठि ३२, नि० सोरठि ३१, गु० गौंड ३—
१. दा० नि० मन रे आइ र कहां गयौ तातैं मोहिं बैराग भयौ । २. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ तीसरी पंक्ति के बाद हैं । ३. गु० चहूं दिसि । ४. दा० नि० परसोतम । ५. दा० नि० तैं । ६. दा० नि० कीन्हां रे । ७. दा० नि० करमौं के बसि । ८. दा० नि० जीव करम किनि (नि० किस) दीन्हां रे । ९. दा० नि० मैं । १०. दा० नि० है पुनि नांहीं सोई । ११. गु० कहि । १२. गु० राम नामु । १३. दा० नि० होइ ।

[१५७]

नि० बिहंगड़ौ ९, बी० २३, शबे० (२) सतगुरु० २०—
१. नि० साधो । २ नि० अबिगत की । ३. बी० शबे० वह राजा । ४. नि० भिख्यारी ।

यातैं लौंगहिं फर नहिं लागै[५] बांवन चंदन फूलै[६] ।
मच्छ सिकारी रमैं जंगल मैं सिंघ समुंदर झूलै[७] ॥ १ ॥
एरंड रूख[८] करै मलयागिरि[९] चहुं दिसि फूटै[१०] बासा ।
तीनि लोक[११] ब्रह्मंड खंड मैं[१२] अंधरा देखै[१३] तमासा ॥ २ ॥
पंगुला[१४] मेर सुमेर उलंघै[१५] त्रिभुवन मुकुता[१६] डोलै ।
गूंगा ग्यांन बिग्यांन[१७] प्रकासै अनहद[१८] बांनीं बोलै ॥ ३ ॥
बांधि अकास पतालि पठावै[१९] सेस सरग पर राजै[२०] ।
कहै कबीर रांम है राजा[२१] जो कछु करै सो छाजै ॥ ४ ॥

[१५८]

साधौ करता करम तैं[१] न्यारा ।
आवै न जाइ[२] मरै नहिं जनमैं[३] ताका करौ बिचारा ॥ टेक ॥
जाकै धरनि गगन है सहसौं[४] ताकौ सकल पसारा ।[६]
नाद बिंद तैं रहित है[५] सोई खसम हमारा ॥ १ ॥[७]
रांम को पिता जो जसरथ कहिअै[८] जसरथ[९] कौनैं जाया[१०] ।
जसरथ[९] पिता रांम कौ दादा कहौ कहां तैं आया ॥ २ ॥
राधा रुकमिनि क्रिसन की रांनीं[११] क्रिसन दोऊ का मीरां[१२] ।
सोरह सहस गोपी उन भोगी[१३] वह भयौ कांम कौ कीरा[१४] ॥ ३ ॥
बसदेव पिता देवकी माता[१५] नंद महर घरि आया[१६] ।
कहै कबीर करता नहिं होई[१७] जो करमां[१८] हाथि बिकाया ॥ ४ ॥[१९]

---

५. शबे०—याते लौंग गाछ फल लागै, बीभ० ईआ तें लवंग हरफ (हिन्दी मूल) न लागे [बी० अन्य प्रतियाँ : याते लोग (उर्दू मूल) हरफना (हिन्दी मूल) लागे], नि० ईख रसाल जहर फल लागै । ६. बी० शबे० चंदन फूल न फूला । ७. नि० मच्छ सिकार चढ़ै बन मांहीं सिंघ समुंद मैं झूलै । ८. बी० शबे० रेंडा रूख । ९. नि० मलीयागर (उर्दू मूल) । १०. बी० फूटी (उर्दू मूल) । ११. नि० अनंत कोटि । १२. नि० का । १३. नि० बी० देखै अंध । १४. नि० पिंगौ (उर्दू मूल), बी० पंगा । १५. शबे० उड़ावै । १६. शबे० माहीं । १७. नि० प्रग्यांन । १८. नि० अविरल । १९. नि० इंद्र राजा कूं पयाल पठावै, शबे० पतालै बांधि अकासैं पठवै । २०. नि० सेसौ गोपुर राजै । २१. नि० रांम राजेसर, शबे० समरथ है स्वामी (राधास्वामी प्रभाव)।

[१५८]

नि० आसावरी ६२, शबे० (२) उप० ३-६—

१. नि० करमनि सूं । २. शबे० जावै । ३. शबे० जीवै । ४. नि० धरती अंबर आदि देव है । ५. शबे० अनहद नाद सबद धुनि जाके । ६-७. शबे० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की दसवीं पंक्ति के बाद आती हैं । ८. नि० दसरथ रांम का पिता कहावै । ९. नि० दसरथ । १०. नि० कौंन उपाया । ११. नि० वहनां (?) । १२. नि० उन्हीं का बीरा (उर्दू मूल) । १३. नि० गोप्यां संग खेला । १४. नि० सो क्रिस्न बिख (बिखै ?) का कीरा । १५. शबे० बासुदेव (?) पिता मातु देवकी । १६. नि० दूजो नंद गूजर घरि आया । १७. शबे० ताको करता कैसे कहिए । १८. नि० करमां । १९. शबे० में अतिरिक्त : सतगुर सबद हृदय दृढ़ राखो करहु बिबेक बिचारा । कहै कबीर सुनो भाई साधो है सतपुरुष अपारा ॥

(१३) माया

[१५९]

बिखिया अजहूं सुरति सुख आसा।
होन[1] न देई हरि के चरन निवासा[2] ।। टेक ।।
सुख मांगें[3] दुख आगें[4] आवै। तातैं सुख मांग्या नहिं भावै[5] ।। १ ।।[6]
जा[7] सुख तैं सिव बिरंचि[8] डरांनां। सो सुख हमहुं सांच करि जांनां ।। २ ।।[9]
सुख छांड़ा तब सब दुख भागा। गुर के सबदि मेरा मन लागा ।[10]
कहै कबीर चंचल मति त्यागी। तब केवल रांम नांम ल्यौ लागी ।। ४ ।।

[१६०]

अवधू असा ग्यांन बिचारी।
तातैं भई पुरिख तैं नारी ।। टेक ।।[1]
नां हूं परनीं ना हूं क्वांरी[2] पूत जनमांवनहारी[3] ।

---

[१५९]

दा० गौड़ी ८२, नि० गौड़ी ८५, गु० गउड़ी ३६, स० ११२-१—
१. दा१ हूंन, दा३ हूंण (पंजाबी मूल)। २. गु० कैसे होईहै राजा राम निवासा। ३. गु० मागत। ४. दा० नि० स० पहली (उर्दू मूल)। ५. गु० सो सुखु हमहु न मागिआ भावै। ६. दा३ में यह पंक्ति नहीं है। ७. गु० इस। ८. गु० ब्रहम। ९. गु० में इसके बाद की पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर निम्नलिखित सात पंक्तियाँ हैं—

सनकादिक नारद मुनि सेखा। तिन भी तन महि मनु नहीं पेखा ॥
इसु मन कउ कोई खोजहु भाई। तन छूटे मनु कहा समाई ॥
गुर प्रसादी जैदेउ नामां। भगति कै प्रेमि इनहीं है जाना ॥
इसु मन कउ नही आवन जाना। जिसका भरमु गइआ तिनि साचु पछाना ॥
इसु मन कउ रूपु न रेखिआ काई। हुकमे होइआ हुकमु बूझि समाई ॥
इस मन का कोई जानै भेउ। इह मनि लीण भए सुखदेव ॥
जीउ एकु अरु सगल सरीरा। इसु मन कउ रवि रहे कबीरा ॥

गु० की यह पंक्तियाँ दा० नि० स० तथा बी० में अन्यत्र एक स्वतन्त्र पद के रूप में मिलती हैं (तुल० दा० गौड़ी ३३, नि० गौड़ी ३७, बी० ९२, स० ४७-१)। [पद के पूर्वार्ध की पंक्तियाँ विषय-सुख के संबंध में हैं और शेष सातों पंक्तियाँ, जो यहाँ उद्धृत की गयी हैं, स्पष्ट ही मन के संबंध में हैं। दोनों का पृथक् रूप में आना ही अधिक युक्ति-संगत लगता है, जैसा कि दा० नि० स० तथा बी० में हुआ है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' में यह भूल या तो उस प्रति से आयी होगी जिससे कबीर के पद उसमें लिखे गये अथवा यह भी संभव है कि ग्रंथ के संकलकर्ता ने ही भूल से दोनों पदों को एक में मिला दिया हो।]। १०. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : निस बासुर बिषै तनां (राज०) उपगार। बिषई नरकि न जातां (राज०) बार। ['तनां' या 'तणां' राजस्थानी प्रत्यय है और कबीर की रचना में मूल रूप से नहीं स्वीकृत किया जा सकता।]

[१६०]

दा० आसावरी ३०, नि० आसावरी २९, बी० ४४, स० ११६-१; दा३ दा४ में यह पद नहीं है—
१. बी० बूझहु पंडित करहु बिचारा पुरुषा है कि नारी। २. बी० बर नहिं बरै ब्याह नहिं करई (एक ही भाव की पुन०)। ३. बीभ० पुत्र जनम उन्हिहारी, दा० नि० स० पूत जन्यौं बौहारी

कारे[४] मूंड़ कौ एक न छांड़्यौ अजहूं अकन[५] कुंवारी[६] ॥ १ ॥
बांह्मन कै घरि बांह्मनि होती[७] जोगी कै घरि चेली ।
कलमां पढ़ि पढ़ि भई तुरकिनीं[८] कलि मांहि[९] फिरौं[१०] अकेली ॥ २ ॥
पीहर जांउं न रहूं सासुरै[११] पुरखहिं[१२] संग[१३] न लाऊं[१४] ।
कहै कबीर मैं जुग जुग जीऊं[१५] अंगहि अंग न छुवाऊं[१६] ॥ ३ ॥[१७]

[१६१]

यहु[१] माया रघुनाथ की[२] खेलन चढ़ी अहेरै[३] ।
चतुर चिकनियां[४] चुनि चुनि मारे कोई न छांड़ा नेरै[५] ॥ टेक ॥
मौंनीं बीर[६] डिगंबर[७] मारे जतन करंता जोगी ।[८]
जंगल मांहि[९] के जंगम मारे तूं रे फिरै अपरोगी[१०] ॥ १ ॥
बेद पढ़ंता बांह्मन[११] मारा[१२] सेवा करंता स्वांमीं[१३] ॥
अरथ करंता मिसिर पछाड़ा[१४] गल मंहि घालि लगांमीं[१५] ॥ २ ॥[१६]
साकत कै तूं हरता करता[१७] हरि भगतन कै[१८] चेरी ।
दास कबीर रांम कै सरनैं[१९] ज्यौं आई त्यौं फेरी[२०] ॥ ३ ॥

(राज० पंजाबी)। ४. दा० नि० स० काली (उर्दू मूल)। ५. दा२ अनक, बी० आदि। ६. बी० कुमारी। ७. दा० नि० स० बाह्मन कै बह्मनेटी कहियौ । ८. बीभ० तुरकिनि होतिउं। ९. दा० नि० स० अजहूं (पुन० तुल० पंक्ति ४)। १०. बी० रहौ। ११. बी० मैके रहै (बीभ० रहौं) जाहुं (बीभ० जाव) नहिं सुसुरे। १२. बी० साईं। १३. दा० नि० स० अंग (पुन० अगली पंक्ति में)। १४. बी० सोऊं। १५. दा० नि० स० कहै कबीर सुनहु रे संतौ। १६. बी० जाति पांति कुल खोवै (बीभ० खोवौं)। १७. बी० में इस पद की दूसरी तथा तीसरी पंक्तियाँ पाँचवीं पंक्ति के बाद आती हैं। [विशेष—यह पद यत्किंचित् पाठांतर के साथ आनंदघन नामक एक जैन कवि के नाम से भी मिलता है। पाठ के लिए दे० 'संतवाणी' (जयपुर की एक मासिक पत्रिका) वर्ष ३ अंक २ में श्री अगरचंद नाहटा द्वारा उद्धृत अंश (पृ० २५-२६)। नाहटा जी का कथन है कि आनंदघन के नाम से यह पद 'पुरानी प्रतियों में' नहीं मिलता, अतः 'पीछे से ही किसी ने उसे आनंदघन के नाम से प्रचारित किया है'।

[१६१]

दा० रांमकली ३५, नि० रांमकली ३७, बी० कहरा १२, स० ११६-३—
१. नि० तूं, बी० ई। २. बी० रघुनाथ की बौरी। ३. बी० चली अहेरा हो। ४. दा१ चिकारे (कैथी मूल), दा२ दा३ नि० स० छिकारे (छिनारे ?)। ५. दा२ कोई न छोड़्या बोलै, बी० कोई न राखै नेरा। ६. दा० नि० स० मुनिवर पीर (उर्दू मूल)। ७. दा२ बी० दिगंमर (बीभ० डीगंमर)। ८. बी० ध्यान धरंते जोगी। ९. बी० में, बीभ० महं। १०. दा१ दा२ तू रे फिरै बलवंती (तुकहीन), बी० माया किनहुं न भोगी हो। ११. बी० बेदुआ (बीभ० पांडे)। १२. बीभ० मारो। १३. बी० पूजा करते। १४. बी० अरथ बिचारत पंडित मारो। १५. दा० तू रे फिरै मैमंती (तुकहीन, तुल० दा० पंक्ति ४), बी० बांधेउ सकल लगामी हो। १६. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : सींगीरिखि बन भीतरि मारे ब्रह्मा का सिर फोरी हो। नाथ मछंदर चले पीठि दै सिंघल हूं महं बोरी हो ॥ १७. बी० साकत के घर करता धरता। १८. बी० की। १९. बी० कहहिं कबीर सुनहु हो संतो। २०. दा० ज्यौं लागी त्यौं तोरी (तुकहीन)।

[१६२]

एक सुहागिनि जगत पियारी ।[३]
सगले[१] जीअ जंत[२] की नारी ॥ टेक ॥[३]
खसम मरै तौ नारि न रोवै । उस रखवारा[४] अउरो[५] होवै ॥ १ ॥
रखवारे[४] का होइ बिनास । आगैं[६] नरक इहां[७] भोग बिलास ॥ २ ॥
सुहागिनि गलि सोहै हार । संत कौं[८] बिख बिगसै[९] संसार ॥ ३ ॥
करि सिंगार बहै पखिआरी[१०] । संत की ठिठकी फिरै बिचारी ॥ ४ ॥
संत भागै[११] वा पाछैं[१२] परै । गुर कै सबदनि[१३] मारहु[१४] डरै ॥ ५ ॥
साकत कै[१५] यहु[१६] पिंड परांइनि । हमरी[१७] द्रिष्टि परै त्रिखि[१८] डांइनि ॥ ६ ॥
अब हंम इसका पाया भेउ[१९] । हुए क्रिपाल मिले गुर देव ।
कहै[२०] कबीर अब बाहरि टरी[२१] । संसारी[२२] कै अंचलि परी ॥ ८ ॥

[१६३]

माया महा ठगिनि[१] हंम[२] जांनीं ।
तिरगुन फांसि[३] लिए कर डोलै बोलै मधुरी बांनीं ॥ टेक ॥
केसव कै कंवला होइ बैठी सिव कै भवन भवांनीं[४] ।[५]
पंडा कै मूरति होइ बैठी तीरथ हू मैं पांनीं[६] ॥ १ ॥
जोगी कै जोगिनि होइ बैठी राजा कै घरि रांनीं ।
काहू कै हीरा होइ बैठी काहू कै कौड़ी कांनीं ॥ २ ॥
भगतां कै[७] भगतिनि होइ बैठी तुरकां कै तुरकांनीं[८] ।[९]

---

[१६२]

दा० नि० बिलावल ९, गु० गौंड ७—
१. दा० नि० सकल । २. दा० नि० जीव । ३. गु० में यह पंक्तियाँ चौथी के बाद हैं । ४. दा० नि० रखवाला (लै) । ५. दा० नि० औरै । ६. दा० नि० उतहिं । ७. दा० नि० इत । ८. दा० नि० संतनि । ९. दा० नि० बिलसै । १०. दा० नि० पीछैं लागी फिरै [पुन० तुल० द्वि० चरण: फिरै बिचारी] पचि हारी । ११. दा० नि० भाजै । १२. दा० नि० पाछी (उर्दू मूल)। १३. दा० गुर के संबदूं, गु० गुर परसादी । १४. दा० नि० मारयौ । १५. गु० की (उर्दू मूल)। १६. गु० ओह । १७. गु० हम कउ । १८. दा० नि० जस । १९. गु० हम तिसका बहु जनिआ भेउ । २०. गु० कहु । २२. दा० नि० टिरी (उर्दू मूल)। २१. गु० संसारे (उर्दू मूल)।

[१६३]

नि० बिहंगड़ौ ४, बी० ५९, शबे० (१) चिता० उप० ३६—
१. नि० जुग ठगनीं । २. नि० मैं । ३. नि० त्रिगुणीं पास । ४. नि० ब्रह्मां कै ब्रह्मांणीं (तुल० पंक्ति ७)। ५. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : ईश्वर कै गोरां होइ बैठी इंद्रां के इंद्रांणीं । ६. नि० तीरथ जाइ रे पांणीं । ७. बी० भगता के । ८. बी० ब्रह्मा के ब्रह्मानी । ९ नि० में इसके बाद अतिरिक्त : लख चौरासी चुंण चुंणि खाया तोऊ किनहुं न पिछांणीं ।

दास कबीर साहेब का बंदा जाकै हथि बिकांनीं[१०] ॥ ३ ॥[११]

[१६४]

जारौं मैं[१] या जग की चतुराई ।
रांम भजन नहिं करत बावरे[२] जिनि यहु जुगति बनाई[३] ॥ टेक ॥
माया जोरि जोरि करै इकठी[४] हंम खैहैं[५] लरिका ब्यौसाई[६] ।[९]
सो धन चोर मूसि लै जावै[७] रहा सहा[८] लै जाइ जंवाई ॥ १ ॥[१०]
यह माया जैसै कलवारिन[११] मद पियाइ[१२] राखै बौराई ।[१३]
एक तौ पड़े धरनि पर लोटैं[१४] एकन कौं देखत छलि जाई[१५] ॥ २ ॥[१६]
या माया सुर नर मुनि डंहके[१७] पीर पयंबर कौं धरि खाई[१८] ।
जे जन रहैं रांम कै सरनैं[१९] हाथ मलै तिनकौं पछिताई[२०] ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनौं भाई साधौ लै फांसी हमहूं पै आई ।[२१]
गुर परताप[२२] साध की संगति हरि भजि चल्यौं निसांन बजाई[२३] ॥ ४ ॥

[१६५]

साधौ बाघिनि खाइ गई लोई[१] ।
खातां जांन न कोई ॥ टेक ॥[२]
काजल टीकि चसम मटकावै कसि कसि बांधै गाढ़ी[३] ।
लुभुकी लुभुकि चरै अभिअंतर खात करेजा काढ़ी[४] ॥ १ ॥

---

१०. बीं० शबे० कहै कबीर सुनौ भाई साधौ ई सब अकथ कहानी । ११. नि० में इस पद का क्रम यथापंक्ति १-२-४-५-३-७-६-८ है ।

[१६४]

नि० कनड़ौ २, शबे० (१) चिता० उप० ६७, शक० सायरी २८—

१. नि० जालूं । २. शबे० सांई को नाम न कबहूं सुमिरै (राधा० प्रभाव), शक० प्रभु जी को नाम बिसरि जनि जाई । ३. नि० शक० जिन या जल सूं जुगति बनाई । ४. शबे० शक० जोरत दाम काम अपने को (?) । ५. नि० खाई । ६. शबे० बिलसाई, शक० वोसाई । ७, नि० सो धन राजा डंडै चोर लै गयौ, शक० सो धन चोर हाकिमा लीहैं । ८. नि० रह्यौ पह्यौ । ९-१०. नि० में पंक्ति ५-६ के स्थान पर । ११. नि० ऐसी कलवारी, शक० ऐसी कलवारिन । १२. नि० पाइ । १३. नि० में यह तीसरी पंक्ति के स्थान पर है । १४. शबे० शक० धूरि मैं लोटैं । १५. शबे० शक० एक कहैं चोखा दे माई (शक० भाई) । १६. नि० मैं यह आठवीं पंक्ति से स्थानांतरित । १७. नि० इन माया सुर नर मुनि मोहे, शबे० सुर नर मुनि माया छलि मारे । १८. नि० दबी (देवी ?) देवता ठगि अरु खाई, शक० देव देवा सब धरि धरि खाई । १९. शबे० कोइ एक भाग बचै सतसंगति, शक० कोइ कोइ लागि रहे गुर चरणों (पुन० तुल० पद की अंतिम पंक्ति) । २०. नि० तिनकूं देखि रे अधिक लजाई, शक० तिनहूं को माया फिर पछताई । २१. नि० हमहीं कूं पासी ले धाई । २२. शबे० गुर की दया । २३. शबे० बचिगे अभय निसान बजाई, शक० अब हम रहे निसान बजाई ।

[१६५]

नि० बिहगंड़ौ ७. शबे० (३) माया १—

१. नि० खाया लोई । २. शबे० में यह पंक्ति नहीं है । ३. शबे० अंजन नैन दरस चमकावै हंसि हंसि पारै गारी (तुकहीन, तुल० आगे : काढ़ी) । ४. नि० लोक मलोक अंतरगति पैढ़ी

कांन गहि काजी नाक गहि मुल्ला पंडित कै आंखी फोरी ।[५]
सींगी रिखि औ गुर कनफूंका बाघिनि सभै मरोरी ॥ २ ॥[६]
अर[७] (?) इंद्रादिक बर ब्रह्मादिक ते बाघिनि धरि खाया ।[८]
गिरि गोबरधन नख पर राख्यौ ते बाघिनि मुख आया ॥ ३ ॥[९]
उतपति परलै जनीं बघिनियां[१०] सतगुर एह बिचारी ।[११]
कहै कबीर सुनौं भाई साधौ हमसूं बाघिनि न्यारी[१२] ॥ ४ ॥

(१४) निंदक साकत

[१६६]

कबीरा बिगरचौ[१] रांम दुहाई ।
तुम्ह जिनि बिगरौ मेरे भाई[२] ॥ टेक ॥
चंदन कै ढिग बिरिख[३] जु भैला । बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला ॥ १ ॥[४]
पारस कौं जे लोह छिवैला[५] । बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला[६] ॥ २ ॥[७]
गंगा मैं जे नीर मिलैला[८] । बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला ॥ ३ ॥[९]
कहै कबीर जे रांम कहैला[१०] । बिगरि बिगरि सो रांमहिं ह्वैला[१०] ॥४॥[११]

[१६७]

ऐसे लोगनि सौं का कहिए ।
जे नर भए[१] भगति तैं बाहज[२] तिनतैं सदा डरांनैं[३] रहिए ॥ टेक ॥

काढ़ि कलेजौ खासी । ५-६. शबे० नाक धरै मुलना कान धरै काजी औलिया बछरू (?) पछारी । छत्र भूपती राय बिडारा सोखि लीन्ह नर नारी ॥ ७. शबे० में इसके पूर्व अतिरिक्त : दिन बाघिन चकचौंधी लावै राति समुंदर सोखी । ऐसन बाउर नगर के लोगवा घर घर बाघिन पोखी ॥ ८-९. शबे० इन्द्राजित औ ब्रह्मादिक दुनि सिव मुख बाघिन आई । गिरि गोबरधन नख पर राख्यौ बाघिनि उनहुं मरोरी ॥ (तुकहीन)। १०. शबे० उत्पति परलै दोउ दिसि बाघिन। ११. शबे० कहै कबीर बिचारी। १२. शबे० जो जन सत्त कै भजन करत है तासे बाघिन न्यारी (राघा० अभाव)।

[१६६]

दा० नि० सोरठि १३, गु० भैरउ ५, स० ९०-२—
१. गु० बिगरिओ कबीरा। २. गु० साधु भइओ अन कतहि न जाई। ३. दा२ ब्रिख। ४. गु० चंदन कै संगि तरवरु बिगरिओ। सो तरवरु चंदनु होइ निबरिओ ॥ ५. दा१ नि० छिवैगा [नि० में प्रत्येक 'ला' के स्थान पर 'गा']। ६. नि० होइगा। ७. गु० पारस के संगि तांबा (?) बिगरिओ। सो तांबा कंचनु होइ (?) निबरिओ। [कवि-समय के अनुसार पारस के स्पर्श से लोहा सोना बनता है न कि ताँबा]। ८. दा१ नि० मिलैगा। ९. गु० गंगा के संग सलिता बिगरी। सो सलिता गंगा होइ निबरी ॥ [गु० में यह पंक्ति पद के आरम्भ में ही आ जाती है।]। १०. नि० कहैगा, ह्वैगा। ११. गु० संतन संगि कबीरा बिगरिओ। सो कबीरु रामै होइ निबरिओ॥

[१६७]

दा० गौड़ी १४४, नि० गौड़ी १५१, गु० गउड़ी ४४, स० ९३-१—
१. गु० जो प्रभ कीए। २. दा० नि० स० तें न्यारे। ३. दा१ दा२ डराते। ४. दा० नि०

हरि जस सुनहिं न हरि गुन गावहिं । बातन ही असमांनु गिरावहिं ॥ १ ॥[४]
आप न देहीं[५] चुरुआ पांनीं[६] । तिहि[७] निंदहि जिन[८] गंगा आंनीं[९] ॥ २ ॥
आपु गए औरन हू खोवहिं[१०] । आगि[११] लगाइ मंदिर मैं सोवहिं ॥ ३ ॥
औरन हंसत आप हहिं कांनें[१२] । तिनकौं देखि कबीर लजांनें[१३] ॥ ४ ॥

[१६८]

रांम रांम रांम रमि[१] रहिए ।[४]
साकत सेती[२] भूलि न[३] कहिए ॥ टेक ॥[४]
का[५] सुनहां[६] कौं सुंम्रित[७] सुनाएं । का[५] साकत पहिं[८] हरि गुन गाएं ॥ १ ॥
कउवा कहा कपूर चराएं[९] । का[५] बिसहर[१०] कौं दूध पिआएं[११] ॥२॥[१२]
अंम्रित लै लै नींब[१३] सिंचाई । कहै कबीर वाकी बांनि न जाई[१४] ॥३॥

[१६९]

है हरिजन सौं[१] जगत लरत है ।
फुनिगा[२] कतहूं[३] गरुड़ भखत है[४] ॥टेक॥
अचिरज एक देखहु[५] संसारा । सुनहां[६] खेदै कुंजर[७] असवारा ॥१॥[८]
असा एक अचंभौ देखा[९] । जंबुक करै केहरि सौं लेखा[१०] ॥२॥
कहै कबीर रांम भजि भाई । दास अधम गति कबहुं न जाई ॥३॥[११]

स० में यह पंक्ति नहीं है । ५. दा१ आपण (राज०) । ६. गु० चुरू भरि पानी । ७. दा० ताहि । ८. गु० जिहि । ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : बैठत उठत कुटिलता चालहि । आपु गए अउरन हू घालहि (पुन० तुल० ऊपर पंक्ति ५) । छाड़ि कुचरचा आन न जानहि । ब्रह्मा हू को कहिओ न मानहि ॥ १०. दा० नि० स० आपण बुड़ैं और को बोरैं '[आगे 'सोवहिं' से तुक की असंगति] । ११. दा० नि० स० अगिनि । १२. दा० नि० स० आपण अंध और कूं कांनां । १३. दा० नि० स० डरांनां (पुन० तुल० ऊपर पंक्ति २ में : डरांनैं रहिए ।] ।

[१६८]

दा० नि० आसावरी २०, गु० आसा २०, स० ९३-४—
१. गु० रम रमि । २. गु० सिउ । ३. गु० नही । ४. गु० में यह पंक्तियाँ तीसरी पंक्ति के बाद मिलती हैं । ५. गु० कहा । ६. गु० सुआन । ७. गु० सिम्रित । ८. दा० नि० स० पै । ९. दा० नि० स० का कउवा कौ कपूर खवाएं (दा४ खुवाएं) । १०. गु० बिसीअर । ११. दा० नि० स० पिलाएं । १२. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : साखित सुनहां दोऊ भाई । वो निंदै वो भौंकत जाई ॥ गु० की अतिरिक्त पंक्तियाँ—

सति संगति मिलि बिबेक बुधि होई । पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥
साकतु सुआनु सभु करे कहाइआ । जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइआ ॥

१३ गु० नीमु १४. गु० कहत कबीर उआ को सहज न जाई [कर्ता का अभाव, अतः अपूर्ण] ।

[१६९]

दा० गौड़ी १४५, नि० गौड़ी १५२, बी० ३९, स० ९०-३—
१. बी० औसे हरि सों । २. बी० पांडुर । ३. दा० नि० स० कैसैं । बी० घरतु है । ५. बी० देखल । ६. बी० सोनहा । ७. बी० कुंजल । ८. बी० में यह पंक्ति अलग के बाद है । ९. बी० मूस बिलाई कैसन हेतू । १०. बी० खेतू । ११. बी० कहहिं कबीर सुनहु संतो भाई । इहै संधि कोइ बिरलै पाई ॥

(१५) भेख आडंबर

[१७०]

चलहु[१] बिचारी रहहु[२] संभारी[३] कहता हूं ज पुकारी[४] ।[५]
रांम नांम अंतरगति नांहीं तौ जनम जुवा ज्यौं हारी ।।टेक।।[६]
मूंड मुड़ाइ फूलि का[७] बैठे कांननि[८] पहिरि मंजूसा ।
बाहरि देह खेह लपटांनीं[९] भीतरि तौ घर मूसा[१०] ।।१।।
गालिब [गारब (= गर्व ?)] नगरी गांउं बसाया[११] हांम[१२] कांम हंकारी[१३] ।
घालि रसरिया जब जम खेंचै[१४] तब का पति रहै तुम्हारी[१५] ।।२।।
छांड़ि कपूर गांठि बिख बांधा मूल हुवा[१६] नहिं लाहा ।[१७]
मेरे रांम की अभै पद नगरी कहै कबीर जुलाहा ।।३।।[१८]

[१७१]

काया मांजसि[१] कौंन गुनां ।
घट[२] भीतरि है मलनां[३] ।।टेक।।[४]
ह्रिदै कपट मुखि ग्यांनीं[५] । झूठे[६] कहा बिलोवसि[७] पांनीं[७] ।।१।।[८]
तूंबी[९] अठसठि तीरथि न्हाई । कड़ुवापन[१०] तऊ[११] न जाई ।।२।।[१२]
कहै कबीर बिचारी । भवसागर तारि मुरारी ।।३।।

---

[१७०]

दा० गौड़ी १३४, नि० गौड़ी १४१, बी० क० ७, स० ९६-१—

१. दा१ दा२ चलौ । २. दा१ दा२ रहौ । ३. बी० रहहु संभारे (उर्दू मूल) रांम बिचारे (उर्दू मूल) । ४. बी० पुकारे (उर्दू मूल) । ५. बी० में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो' लगा है । ६. बी० में यह पंक्ति नहीं है । ७. बी० कै । ८. बी० मुद्रा । ९. बी० तेहि ऊपर कछु छार लपेटे । १०. बी० भितर भितर घर मूसा हो । ११. बी० गांव बसतु है गरब भारती (बीभ० गर्भ भारथी) । १२. बी० वाम, बीभ० माम (उर्दू मूल) । १३. बी० हंकारा हो (बीभ० हंकारी हो) । १४. बी० मोहन जहां तहां लै जइहैं । १५. बी० नहि पति रहै तोहारा (बीभ० तोहारी) हो । १६. नि० न हुआ । १७-१८. बी० का पाठ है—

माझ भंझरिया बसै जो जानैं जन होइहै सो थीरा हो ।
निरभै ह्वै रहु गुरु की नगरिया सुख सोवैं दास कबीरा हो ॥

[१७१]

दा० नि० सोरठि १६, गु० सोरठि ८, स० ९५-७—

१. दा० नि० स० मंजसि । २. गु० जउ घट, नि० तेरे घट । ३. नि० मैले परां । ४. नि० में इसके बाद अतिरिक्त : बाहरि ला मलि जल सूं धोई । भीतरि ला मलि काहे खोई ॥ जे तूं हिरदै मैला होवै । तौ तूं बाहरि सूं का धोवै ॥ ५. दा० नि० जो तूं हिरदै सुध मन ग्यांनीं, नि० जे तूं अंतरि सुधि बुधि ग्यांनीं । ६. दा० नि० स० तौ । ७. दा० नि० स० झकोलै । ८. नि० में अतिरिक्त : कड़ई तूंबी काटि लई । लै चेला कै हाथि दई ॥ ९. गु० लउकी । १०. गु० कउरापन (उर्दू मूल) । ११. नि० अजहूं । १२. नि० में इसके बाद—

तूंबी का कड़वापन न गया । तौ तूं निर्मल कैसै भया ॥
कहै कबीर मैला सब कोई । रांम भजै सो निर्मल होई ॥

[१७२]

आसन पवन दूरि करि रउरा[१] ।
छांड़ि कपट नित[२] हरि भजि बौरा ।।टेक।।

[४]का[५] सींगी मुद्रा चमकाएं । का[५] बिभूति सब अंग लगाएं ।।१।।
सो हिंदू सो मूसलमांन । जिसका दुरुस रहै ईमांन ।।२।।
सो जोगी जो धरै उनमनीं ध्यांन[६] । सो ब्रह्मां जो कथै ब्रह्म गियांन ।।३।।[७]
कहै कबीर कछु आंन न कीजै । रांम नांम जपि लाहा लीजै ।।४।।

[१७३]

सार सुख पाइश्रै रे[१] ।[४]
रंगि रवहु[२] आतमांरांम[३] ।।टेक।।[४]

बनहिं[५] बसें का कीजिश्रै[६] जौ मन नहीं तजै बिकार[७] ।
घर बन समसरि[८] जिनि किया ते बिरला[९] संसार ।।१।।
का जटा भसम लेपन किएं[१०] कहा गुफा मैं बास ।
मन जीतें[११] जग जीतिश्रै जौ बिखिया तैं रहै उदास[१२] ।।२।।
काजल[१३] देइ सभै कोई चखि[१४] चाहन मांहि बिनांन ।[१६]
जिनि लोइन मन मोहिया[१५] ते लोइन परवांन ।।३।।[१७]

---

[१७२]

दा० भैरूं ३१, नि० भैरूं ३०, गु० बिलावलु ८, स० ९६-२—
१. दा१ दा२ नि० आसन पवन कियँ दिढ़ रहु रे (विपरीत अर्थ), गु० आसनु पवनु दूरि करि बवरे। २. दा३ दा४ स० नट (उर्दू मूल)। ३. दा१ दा२ नि० मन का मैल छोड़ि दे बौरे। ४. गु० में यह और इसके आगे की पंक्तियाँ नहीं हैं, गु० में ऊपर की पहली पंक्ति के अतिरिक्त केवल दो पंक्तियाँ और हैं—डंडा मुद्रा खिंथा आधारी। भ्रम के भाइ भवै भेखधारी ॥
जिह तू जाचहि सो त्रिभवन भोगी। कहि कबीर केसौ जगि जोगी ॥
५. दा१ दा२ नि० क्या। ६. दा१ दा२ नि० काजी सो जांनैं रहिमांन। ७. दा१ दा२ नि० में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित।

[१७३]

दा० नि० केदारौ १, गु० मारू २, स० ९६-३—
१. गु० पाईश्रै रामा। २. दा० नि० रमहु। ३. गु० आतमै राम। ४. गु० में यह पंक्तियाँ चौथी के बाद हैं। ५. दा० नि० बनह (उर्दू मूल)। ६. गु० किउ पाईश्रै। ७. गु० जउ लउ मनहु न तजहि बिकार। ८. दा० नि० स० तत समि-। ९. गु० पूरे। १०. गु० कीश्रा। ११. दा० नि० स० जीत्यां (राज० मूल)। १२. गु० जाते बिषया ते होइ उदासु। १३. गु० अंजनु। १४. गु० टुकु। १५. गु० गिश्रान अंजनु जिहि पाइश्रा। १६-१७. दा० नि० स० में यह दोनों पंक्तियाँ यहाँ नहीं हैं, एक अन्य पद (दे० दा० गौड़ी २८-२, ३) में हैं। यहाँ दा० तथा स० में : सहज भाइ जे ऊपजै ताका किसा मांन अभिमांन। आपा पर सम चीनिश्रै तब मिलै आतमांरांम ॥ नि० में इनके स्थान पर : कुंभां बांध्यां जल रहै जल बिन कुंभ न होइ । ग्यांनां बांध्यां मन रहै

कहै कबीर क्रिपा भई[१८] गुर ग्यांन कहा[१९] समझाइ ।
हिरदै स्री हरि भेटिया[२०] अब मन अनत न जाइ ॥

[१७४]

का नांगें का बांधें चांम ।
जौ[१] नहिं चीन्हसि आतमरांम ॥टेक॥

नांगे फिरें जोग जौ होई । बन का मिरग मुकुति गया कोई[२] ॥१॥[३]
मूंड़ मुड़ाएं जौ सिधि होई[४] । सरगहिं[५] भेंड़ न पहुंची कोई[६] ॥२॥
बिंदु राखि जौ तरिअै भाई[७] । तौ खुसरै क्यूं न[८] परम गति पाई ॥३॥[९]
कहै[१०] कबीर सुनौं रे भाई[११] । रांम नांम बिन किन सिधि[१२] पाई ॥४॥

[१७५]

[१]साधौ भगति भेख तैं न्यारी ।
मन पवनां पांचौं बसि कीया[२] तिन या राह संवारी[३] ॥टेक॥

काया कोट मैं अमर न रहनां[४] कागद का घर कीन्हां ।
माला तिलक तिरचौ नहिं कोई परम तत्त नहिं चीन्हां[५] ॥१॥
गोरखनाथ न मुद्रा पहिरी मस्तक[६] नहीं मुड़ाया ।
ऐसा भगत भया भू[७] ऊपरि गुर पैं राज छुड़ाया ॥२॥
ग्रभबास मैं सुमिरन कीन्हां[८] सुखदेव कौंन सु[९] माला ।[१२]
कहै कबीर सब भेख भुलांनां[१०] मूल[११] छांड़ि गहि डाला ॥३॥[१३]

गुर बिन ग्यांन न होइ ॥ १८. गु० कहि कबीर अब जानिआ । १९. गु० दीआ । २०. गु० अंतरगति हरि भेटिआ ।

[१७४]

दा० गौड़ी १३२, नि० गौड़ी १३९, गु० गउड़ी ४, स० ९६-४—
१. गु० जब । २. गु० नगन फिरत जौं पाईऐ जोगु । ३. गु० में यह पंक्ति सब से पहले है। बन का मिरग मुकति सभु होगु (?)। ४. गु० पाई । ५. दा० अगहिं, दा३ अगैं । ६. गु० मुकती भेड़ न गईआ काई । ७. दा० नि० स० जे खेलैं भाई । ८. दा० नि० स० कौंण । ९. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : पढ़ें गुनें उपजै अहंकारा । अधधर डूबे वार न पारा । १०. गु० कहु । ११. गु० नर भाई । १२. गु० गति ।

[१७५]

दा० ५ गौड़ी ७६, नि० आसावरी १३१, शबे० (३) भेद १५ (अंशतः)—
१. शबे० में आरंभ की छः पंक्तियाँ नहीं हैं । २. दा० पाँचौं करि सींगी । ३. नि० सुधारी । ४. नि० बारू का घरवा मैं बैठा (पुन० तुल० नि० केदारौ १२-९ : बारू के घरवा मैं बैसे चेतत नांहि अयांनां ।) ५. नि० बिनां परम तत चीन्हां । ६. नि० मस्तग । ७. दा० भौ । ८. नि० कीन्हीं । ९. नि० सुखदेव कैसी । १०. नि० कहै कबीर सब भेख भुलांनां । ११. दा० पेड़ । १२-१३. तुल० शबे० (३) भेद १५—

[१७६]

गुणां का भेद न्यारौ न्यारौ ।[1]
कोई जांनैं जांननहारौ ॥टेक॥[2]
सोइ गजराज राजकुल[3] मंडन[4] जाकै मस्तकि मोती ।
और सकल ए[5] भार लदाऊ[6] महिखी[7] सुत[8] के गोती ॥१॥
सोई भुवंग जाकै मस्तकि मनि है[9] जोति उजालै खेलै ।
और सबै सावन के भुनगा[10] जगत पगां तलि पेलै[11] ॥२॥
सोई सुमेर उदात उजागर[12] जामैं धातु निवासा ।[14]
और सकल पाखांन बराबरि टांकी[13] अगिनि प्रकासा ॥३॥[15]
सोइ तिरिया जाकै पातिव्रत[16] आग्यांकार न लोपै ।
और सकल ए कूकरि सूकरि[17] सुंदरि नांउं न ओपै[18] ॥४॥
कहै कबीर सोई जन गरुवा[19] रांम भगति व्रतधारी[20] ।
और सकल ए पेट भरन कौं बहु बिधि बांनां धारी ॥५॥[21]

अवधू जानि राखु मन ठौरा ।
काहे को बाहर दौरा ॥ टेक ॥
तोमें गिरिवर तोमें तरवर तोमें रबि औ चंदा ।
तारा मंडल तोहिं घट भीतर तोमें सात समुंदा ॥
ममता मेटि पहिनि मन मुद्रा ब्रह्म बिभूति चढ़ावो ।
उलटा पवन जटा करि जोगी अनहद नाद बजावो ॥
सील कै पत्र छमा कै झोली आसन दृढ़ करि कीजै ।
अनहद सबद होत धुन अंतर तहां अरध चित दीजै ॥
सुखदेव ध्यान धर्यौ घट भीतर तहां हती कहं माला ।
कहै कबीर भेख सोइ भूला मूल छोड़ि गहि डाला ॥

शबे० की आरंभिक आठ पंक्तियाँ दा० नि० में अन्यत्र मिलती हैं और वहीं मूल रूप में स्वीकृत की गयी हैं। किंतु अंतिम दो पंक्तियाँ वहाँ पर प्रसंग के उतनी अनुकूल नहीं जितनी यहाँ हैं, अतः यहाँ के लिए स्वीकृत की गयी हैं।

[१७६]

नि० आसावरी १०८, स० १४-४, शक० गौरी १८—

१-२ स० संतौ दुनियां भेख भुलांनीं । अपनीं बस्तु न काहू जांनीं ॥ ३. स० सति कुल । ४. शक० नंदन (उर्दू मूल ?) । ५. शक० सब (पुन० 'सकल' के कारण) । ६. शक० लदनियां । ७. नि० स० महकी (उर्दू मूल) । ८. शक० महिषासुर । ९. स० मस्तगि मणि वासा । १०. नि० शक० कीड़ा (सरलीकरण) । ११. शक० मेलै । १२. नि० सोइ गिरि मेर सुमेर (पुन०) बराबरि, शक० सोइ सुमेर जो उदित उजागर । १३. नि० टांची । १४-१५. शक० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की तीसरी पंक्ति के पूर्व ही आ जाती हैं । १६. नि० पतिबरता सोई पिवकूं मांनैं, शक० सोइ पतिव्रता पिया रंग रातै । १७. नि० और सबै ही स्वांन मंजारी, शक० और सकल सब (पुन०) श्वांन सूकरी । १८. शक० होवै । १९. नि० सोई साध सिरोमणि । २०. नि० शक० रांम (शक० नाम) भजन अधिकारी । २१. नि० शक० और सकल साहब को (?) बांनां देखौ हृदय बिचारी ।

(१६) भरम बिधूसन

[१७७]

अल्लह रांम जिऊं[१] तेरै नांईं।
बंदै ऊपरि मिहरि करौ मेरै सांईं[२] ।।टेक।।

क्या[४] लै माटी (मूड़ी ?) भुइं सौं मारें[३] क्या[४] जल देह न्हवाएं[५] ।[८]
खून करै मिसकीन कहावै[६] गुनही[७] रहै छिपाएं ।।१।।[९]
क्या[४] ऊजू[१०] जप मंजन[११] कीएं[१२] क्या[४] मसीति[१३] सिरु नाएं ।
दिल माँहि कपट निवाज गुजारै[१४] क्या[४] हज काबै[१५] जाएं ।।२।।
बांह्मन[१६] ग्यारसि[१७] करै चौबीसौं काजी महं (माह ?) रमजांनां[१८] ।[१९]
ग्यारह मास कहौ क्यूं खाली[२०] एकहि मांहि नियांनां[२१] ।।३।।
जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है[२२] और मुलुक[२३] किस केरा ।
तीरथि मूरति[२४] रांम[२५] निवासी[२६] दुहु माँहि किनहुं[२७] न हेरा ।।४।।
पूरब दिसा[२८] हरी का बासा पच्छिमि अलह मुकांमां ।
दिल माँहि खोजि दिलै दिलि खोजहु[२९] इहंईं रहीमां रांमां[३०] ।।५।।[३१]

---

[१७७]

दा० आसावरी ५८, नि० आसावरी ५२, गु० बिभास० २, बी० ९७, स० ७४-२—
१. बी० जीव, गु० जीवहु । २. दा३ बंदे परि करौ मिहरि मेरै सांईं, गु० तूं करि मिहरामति साई, बी० जन पर (बीभ० के) मेहर होहु तुम सांईं । ३. दा३ क्या लै माटी भैं (उर्दू मूल) सो पटकी, नि० क्या लै माटी भुंय संवारै, बी० का मूड़ी भूमी सिर नाए (पुनरुक्ति)। ४. बी० का (बीभ० क्या)। ५. बी० नहाए। ६. दा० नि० स० जोर करै मिसकीन सतावै । ७. बी० औगुन (बीभ० गुनही)। ८-९. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं। १०. दा१ तूजू (पंजाबी मूल)। ११. दा३ संजम । १२. गु० कहा उड़ीसे मजनु कीआ। १३. बी० महजिद । १४. दा० नि० रोजा करै निमाज गुजारै, बी० हिरदया कपट निमाज गुजारै। १५. बी० मक्का। १६. बी० हिंदू, गु० ब्रहमन। १७. गु० गिआस, बी० एकादसि। १८. नि० काजी मिहरमुदांनां (उर्दू मूल), बी० रोजा मूसलमाना। १९. बी० (बाराबंकी) हिंदू एकादसी चौबीसों रोजा मुसलिम तीस बनाए। २०. दा१ दा२ जुदे क्यूं कीए, गु० पास कै राखे, बी० कहो किन्ह टारा। २१. दा० नि० स० एकहि मांहिं समांनां, गु० एकै माहि निधाना, बी० ये केहि माँहि समाए (बीभ० एकहि माँहि नियाना)। २२. गु० अलहु एकु मसीति बसतु है, बी० जो खोदाय महजीदि बसतु है। २३. दा० नि० मुलिक (उर्दू मूल), गु० मुलखु। २४. बी० मूरति महं, गु० हिंदू मूरति। २५. गु० नाम (हिंदी मूल)। २६. दा१ दा२ निवासा, दा३ निवाजा। २७. बी० काहु, गु० ततु। २८. गु० दखन देस (दक्षिण दिशा कदाचित् पंजाब की दृष्टि से दी गयी है)। २९. दा० नि० स० भीतरि। ३०. दा१ दा२ इहां रांम रहिमांनां (तुकहीन), गु० एही ठउर मुकामा, बी० इहईं करीमा रामा। ३१. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : बेद कितेब कहो किन झूठा झूठा जो न बिचारै । सम घट एक एक कै लेखा भै दूजा कै मारै ॥ [तुल० दा० नि० गौड़ी ६२-५, ६ तथा गु० बिभास० ४-१, २ यथा : बेद कितेब कहौ क्यूं (गु० मत) झूठा झूठा जो न बिचारै। सब घटि एक एक करि जांनैं भौ दूजा करि

जेते औरति मरद उपानें[३२] सो सभ[३३] रूप तुम्हारा ।
कबीर पुंगरा[३४] अलह रांम का[३५] सोइ[३६] गुर पीर हमारा ॥६॥[३७]

[१७८]

काजी तैं कवन[१] कतेब बखांनीं[२] ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते[३] गति[४] एकौ नहिं जांनीं[५] ॥टेक॥
सकति सनेह[६] पकरि करि सूनति[७] मैं न बदउंगा भाई ।[८]
जौ रे खुदाइ तुरुक मोहिं करता[९] तौ आपहिं कटि किन जाई[१०] ॥१॥
सुनति कराइ तुरुक जौ होनां[११] तौ औरति कौं[१२] का कहिए[१३] ।
अरध सरीरी नारि न छूटै[१४] तातैं[१५] हिंदू रहिए[१६] ॥२॥[१७]
हिंदू तुरुक कहां तैं आए किन एह राह चलाई ।[१९]
[१८]दिल मंहि खोजि देखि खोजादे भिस्ति कहां तैं आई ॥३॥[२०]
छांड़ि कतेब रांम भजु बउरे[२१] जुलुम[२२] करत है भारी[२३] ।
कबीरै पकरी टेक रांम की[२४] तुरुक रहे पचि हारी[२५] ॥४॥

मारै ॥ (गु० जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै)]। ३२. गु० एते अउरत मरदा साजे, दा० नि० जेती औरति मरदां कहिए। ३३. दा१ दा२ सब मैं, दा३ यहु सब, गु० ए सभ। ३४. दा१ दा२ पंगुड़ा, बी० पोंगरा। ३५. गु० राम अलह का। ३६. दा० नि० स० हरि, गु० सभ। ३७. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : कहतु कबीरु सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना। केवल नामु जपहु रे प्रानी तबही निहचै तरना ॥

[१७८]

दा० गौड़ी ५९, नि० गौड़ी ६२, गु० आसा ८, बी० ८४, स० ७५-८—
१. दा० नि० स० काजी कौंन। २. दा० नि० स० बखांनैं (उर्दू मूल)। ३. गु० पढ़त गुनत ऐसे सभ मारे, बी० झंखत बकत रहहु निसि बासर। ४. दा३ दा४ नि० मति (हिंदी मूल)। ५. गु० किनहू खबरि न जानी। ६. दा१ दा२ से नेह। ७. गु० सकति सनेहु करि सुनति करिए, बी० सक्ति अनुमाने सुनति करतु है। ८. दा० नि० स० यह न बदूं रे भाई। ९. गु० मोहिं तुरकु करैगा, बी० तेरी सुनति करतु है। १०. गु० आपन ही कटि जाई, बी० तो आपहिं कटि क्यों न आई। ११. गु० होइगा। १२. दा० नि० स० सौं। १३. गु० करीऐ। १४. बी० बखानी। १५. दा० नि० स० आधा। १६. नि० कहिए (पुन०)। १७. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना मेहरि क्या पहिराया। वो तो जनम की सूद्रिन परसै तुम पांडे क्यों खाया ॥ १८. बी० दिल में खोजि दिलही में देखो भिस्ति कहां किन पाया, गु० दिल महि सोचि बिचारि कवादे भिसति दोजक किनि पाई। १९-२० दा० नि० स० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं; गु० में ऊपर की पहली पंक्ति के पूर्व हैं। २१. दा० नि० स० छांड़ि कतेब रांम कहि काजी, बी० कहहिं कबीर सुनो हो संतो, बीभ० छांड़ पसार राम भजु बउरे। २२. दा० नि० स० खूंन, बी० जोर। २३. बी० भाई। २४. दा१ दा२ स० पकरी टेक कबीर भगति की, दा३ साही टेक भगति की कबीरै, बी० कबीरन ओट राम की पकरी। २५. दा० नि० काजी रहे मख मारी, बी० अंत चले पछ हारी।

[१७९]

पंडित[१] बाद बदै सो[२] झूठा ।

रांम कहें[३] दुनियां गति पावै[४] खांड़ कहें[३] मुख मीठा ।।टेक।।

पावक कहें[३] पांव जे दाझै[५] जल कहें[३] त्रिखा बुझाई ।

भोजन कहें भूख जे भाजै तौ सब कोई[६] तिरि जाई ।।१।।

नर कै संगि[७] सुवा हरि[८] बोलै हरि[९] परताप न जांनैं ।

जौ कबहूं उड़ि जाइ जंगल मैं बहुरि सुरति नहिं आंनैं[१०] ।।२।।

बिनु देखें बिनु अरस परस बिनु नांम लिएं[११] का होई ।[१३]

धन के कहें धनिक जौ होई[१२] तौ निरधन रहै न कोई ।।३।।[१४]

सांची प्रीति बिखै माया सौं हरि भगतन सौं हांसी[१५] ।

कहै कबीर प्रेम नहिं उपजै[१६] तौ बांधे जमपुर जासी ।।४।।

[१८०]

जौ पै बीज रूप भगवांन[१] ।

तौ पंडित का कथसि गियांन[२] ।। टेक ।।

नहिं तन नहिं मन नहिं हंकार[३] । नहिं सत रज तम[४] तीनि प्रकार ।।१।।

बिख अंम्रित फर फरे अनेक । बेद अरु बोध कहैं तरु एक[५] ।।२।।

कहै कबीर इहै मन मांनां[६] । कोधौं[७] छूट[८] कवन अरुझांनां[९] ।।३।।

[१८१]

अैसा भेद[१] बिगूचनि[२] भारी ।

बेद कतेब दीन अरु दुनियां[३] कौंन[४] पुरिख[५] कौंन[४] नारी ।।टेक।।

---

[१७९]

दा० गौड़ी ४०, नि० गौड़ी ४४, स० ८६-२, बी० ४०, शबे० (३) मिश्रित २२—

१. दा२ पिंडत (उर्दू मूल)। २. दा१ स० बदंते, शबे० बेद से। ३. दा० नि० स० कह्यां (राज० मूल)। ४. बी० जो जगत गति पावै, श० जगत तरि जाई। ५. बी० डाहै, शबे० जरई। ६. बी० शबे० तौ दुनियां। ७. दा० नि० नर कै साथि। ८. शबे० आइ (राधा० प्रभाव)। ९. शबे० गुरु परताप (राधा० प्रभाव)। १०. बी० तो हरि सुरति न आनै, दा० नि० बहुरि न सुरतैं आनां। ११. नि० रांम कह्यां। १२. नि० माया कह्यां माया सापंजै (?), बीभ० धन के कहे धनिक जो होखे (पूर्वी प्रभाव)। १३-१४ दा० तथा स० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं, किंतु नि० बी० तथा शबे० में हैं। १५. बीभ० फांसी। १६. बी० कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु, शबे० कहै कबीर गुरू के बेमुख (राधा० प्रभाव)।

[१८०]

दा० गौड़ी ३८, नि० गौड़ी ४२, बी० ६७, स० ७५-१—

१. बी० भगवान। २. बी० का पूछहु ग्यान। ३. बी० कहं मन कहं बुधि कहं हंकार (बीभ० ओंकार)। ४. बी० सत रज तम गुन। ५. दा२ बोधं बेद कहैं तर एक, बी० बौधा (बीभ० बउधा) बेद कहैं तरवे का। ६. बी० कहहिं कबीर तैं मैं का जान, दा२ कहहिं कबीर मांन उरझांन। ७. दा० नि० स० कहि धूं। ८. बी० छूटल। ९. बी० को उरझान।

[१८१]

दा० गौड़ी ५७, नि० गौड़ी ६०, बी० ७५, स० ७५-४—

१. बी० भर्म। २. बी० बिगुर्चन। ३. बी० दोजख। ४. बी० को। ५. बी० पुरुखा। ६. दा०

एक रुधिर[६] एकै मल मूतर[७] एक चांम एक गूदा ।
एक बूंद तैं सृष्टि रची है[८] कौंन[४] बांह्मन कौंन[४] सूदा ॥१॥
माटी का पिंड सहज उतपनां[९] नाद [अ] रु बिंद समांनां[१०] ।[१२]
बिनसि गया तैं का नांव धरिहौ पढ़ि गुनि मरम न जांनां[११] ॥२॥[१३]
रज गुन ब्रह्मां तम गुन संकर सत गुन हरि है सोई ।[१४]
कहै कबीर एक रांम जपहु रे[१५] हिंदू तुरुक न कोई ॥३॥

[१८२]

जौ पै[१] करता बरन बिचारै[२] ।
तौ जनतैं[३] तीनि डांड़ि किन सारै[४] ॥ टेक ॥[५]

जे तूं बाभन बभनीं जाया[६] । तौ आंन बाट होइ[७] काहे न आया[८] ॥१॥
जे तूं[९] तुरुक तुरुकिनीं जाया। तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया[१०] ॥२॥[११]
कहै कबीर मद्धिम नहिं कोई। सो मद्धिम जा मुखि रांम न होई ॥३॥[१२]

[१८३]

मुल्ला[१] कहहु निआउ[२] खुदाई ।
इहि बिधि जीव का भरम न जाई[३] ॥ टेक ॥

नि० स० बूंद (पुन० आगे की पंक्ति में भी 'बूंद' के कारण)। ७. बी० हाड़ मल मूत्रा। ८. दा० नि० स० एक जोति तैं सब उतपनां [पुन० आगे की पंक्ति में 'सहज उतपनां' । इसके अतिरिक्त ज्योति अथवा नूर से सृष्टि की उत्पत्ति मुसलमानी धर्म में मानी गयी है। ब्राह्मण-शूद्र के प्रसंग में पौराणिक सृष्टि-प्रक्रिया का आधार ही अधिक उपयुक्त लगता है, अतः बी० का पाठ यहाँ स्वीकृत किया गया है।]। ९. बी० माटी के घट साज बनाया। १०. बी० नादे बिंद समाना। ११. बी० घट बिनसे का नाम धरहुगे अहमक खोज भुलाना। १२-१३. बी० में यह दोनों पंक्तियाँ दूसरी पंक्ति के बाद आती हैं। १४. बी० सत्तगुना हरि सोई। १५. बी० कहहिं कबीर राम रमि रहिए।

[१८२]

दा० गौड़ी ४१, नि० गौड़ी ४५, बी० र० ६२, स० ७५-१०—
१. बी० तोहिं। २ बी० बिचारा। ३. दा१ दा२ जनमत, नि० जन्म तैं। ४. बी० अनुसारा (उर्दू मूल)। ५. दा० नि० स० में इसके बाद अतिरिक्त : उतपति बिंद कहां तैं आया। जोति धरी अरु लागी माया ॥ नहीं को ऊंचा नहीं को नीचा। जाका पिंड ताही का सींचा ॥ (तुल० ऊपर की अंतिम पंक्ति); बी० की अतिरिक्त पंक्ति : जनमत सूद्र मुए पुनि सूद्रा। कृतम जनेउ घालि जग दुंद्रा ॥ ६. बी० जौ तुम ब्राह्मन ब्राह्मनि जाए। ७. बी० अवर राह ते। ८. तुल० गु० गउड़ी ७-५,६ यथा: जौ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ। तउ आन बाट काहे नही आइआ ॥ ९. बी० तुम। १०. बी० पेटहिं काहे न सुनति कराए। ११. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : कारी पियरी दूहहु गाई। ताकर दूध देहु बिलगाई ॥ १२. बी० छांड़ु कपट नल अधिक सयानी। कहहिं कबीर भजु सारंगपानी ॥

[१८३]

दा० गौड़ी ६२, नि० गौड़ी ६५, गु० बिभास० ४, स० ७६-१—
१. दा२ मुलनां। २. दा० नि० स० करि ल्यौ। ३. गु० तेरे मन का भरम न जाई। ४. दा०

सरजीव आंनैं[४] देह बिनासै[५] माटी[६] बिसमिल कीआ[७] ।
जोति सरूपी हाथि न आया[८] कहौ हलाल क्यूं कीआ[७] ॥१॥
बेद कतेब कहहु मत झूठे[९] झूठा जो न बिचारै ।[१३]
सभ घटि एक एक करि लेखे[१०] भै[११] दूजा करि मारै[१२] ॥२॥[१४]
कुकड़ी मारै बकरी मारै हक्क हक्क करि बोलै ।[१५]
सबै जीव सांईं के प्यारे उबरहुगे किस वोलै ॥३॥[१६]
दिल[१७] नापाक[१८] पाक नहिं चीन्हां[१९] तिसका मरम न जांनां[२०] ।
कहै कबीर भिसति छिटकाई[२१] (छुटकाई?) दोजग ही[२२] मन मांनां ॥४॥[२३]

[१८४]

मीयां तुम्ह सौं बोल्यां[१] बनि[२] नहिं आवै ।
हंम मसकीन खुदाई बंदे तुम्ह राजस मनि भावै ॥ टेक ॥
अल्लह अवलि दीन कौ साहिब जोर नहीं फुरमाया[३] ।
मुरसिद पीर तुम्हारै है को कहौ कहां तैं आया ॥१॥[४]
रोजा करैं[५] निवाज गुजारैं[६] कलमैं[७] भिस्ति न होई ।
सत्तरि काबे घट ही भीतरि[८] जे करि जांनैं कोई ॥२॥[९]
खसम पिछांनि[१०] तरस करि जिय मैं माल[११] मनीं[१२] (मनैं?) करि फीकी ।
आपा जांनि[१३] और[१४] कौं जांनैं तब होइ भिस्ति सरीकी ॥३॥

सरजी आंनैं, गु० पकरि जाउ आना। ५. गु० बिनासी (उर्दू मूल)। ६. गु० माटी कउ। ७. दा० नि० स० कीता (पंजाबी मूल)। ८. गु० जोति सरूप अनाहत लागी। ९. दा० नि० स० क्यूं झूठा। १०. दा० नि० स० जांनैं। ११. दा० नि० स० भी (उर्दू मूल)। १२. गु० जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै। १३-१४. तुल० बी० ९७-१२, १३ यथा : बेद कितेब कहो किन झूठा झूठा जो न बिचारै। सभ घट एक एक कै लेखै भै दूजा कै मारै। १५-१६. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर : किआ उजू पाकु कीआ मुहु धोइआ किआ मसीति सिरु लाइआ। जउ दिल महि कपट निवाज गुजारहु किआ हज कावै जाइआ। [पुनरुक्ति-तुल० गु० २२५-९, १० : कहा उडीसे मजनु कीआ किआ मसीति सिरु नाएं। दिल महि कपटु निवाज गुजारै किआ हज कावै जाएं। १७. गु० तूं। १८. दा० नि० स० नहिं पाक। १९. गु० सूझिआ। २०. दा१ उसदा खोज न जांनां, दा२ नि० स० उसता खोज न जांनां (पंजाबी मूल)। २१. गु० कहि कबीर भिसति ते चूका। २२. गु० दोजक सिउ। २३. दा० नि० गु० में इस पंक्ति की पुनरावृत्ति-तुल० दा० आसावरी ५४-१०, नि० आसावरी ४८-१० यथा: कहै कबीर भिसति छिटकाई दोजग ही मन मांनां। तथा गु० आसा१७-११ यथा : कहै कबीर भिसति छोड़ि करि दोजक सिउ मन माना।

[१८४]

दा० आसावरी ५४, नि० आसावरी ४८, गु० आसा १७. स० ७६-२—
१. गु० काजी बोलिआ। २. नि० बिन (उर्दू मूल)। ३. गु० फुरमावै। ४. गु० में यह पंक्ति नहीं है। ५. गु० धरै। ६. नि० गुदारै। ७. गु० कलमा। ८. दा० नि० स० इक दिल भीतरि। ९. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : निवाज सोई जो निआउ बिचारै कलमा अकलहि जानै। पाचहु मुसि मुसला बिछावै तब तउ दीनु पछानै॥ १०. गु० पछानि। ११. गु० मारि। १२. गु० मगी। १३. गु० आपु जनाइ। १४. दा० नि० सांइ। १५. दा१ दा२ सब मैं।

माटी एक भेख धरि नांनां तामैं[१५] ब्रह्म समांनां[१६]।
कहै कबीरा भिस्ति छोड़ि करि[१७] दोजग ही[१८] मन मांनां ॥४॥

[१८५]

लोका जांनि[१] न भूलहु भाई ।
खालिक खलक खलक मंहि[२] खालिक सब घटि रहा समाई[३] ॥टेक॥
अव्वलि अल्लह नूर उपाया कुदरति के सभ बंदे[४] ।
एक[५] नूर तैं सब जग कीआ[६] कौंन भले कौंन मंदे[७] ॥१॥[८]
ता अल्ला की गति नंहि जांनीं[९] गुर गुड़ दीन्हां मीठा ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया सब घटि साहिब दीठा[१०] ॥२॥[११]

[१८६]

जिअ रे[१] जाहिगा मैं जांनां ।[२]
जत जत देखउं बहुरि न पेखउं[३] संगि माया[४] लपटांनां[५] ॥ टेक॥
बलकल बस्तर[६] किता पहिरबा[७] क्या बन मद्धे बासा[८] ।
कहा मुगध रे पाहन पूजें[९] क्या जल डारें गाता[१०] ॥१॥
ग्यांनीं ध्यांनीं बहु उपदेसी इहु जगु सगलो धंधा ।[११]
कह कबीर इक रांम नांम बिनु या जगु माया अंधा[१२] ॥२॥

---

१६. गु० पछाना। १७. दा० नि० स० कहै कबीर भिसति छिटकाई। १८. गु० दोजक सिउ।

[१८५]

दा० गौड़ी ५१, नि० गौड़ी ५५, गु० बिभास० ३, स० ७५-२—
१. गु० भरमि। २. दा० नि० स० मैं। ३. गु० पूरि रह्यौ स्रब ठांई। ४. दा० नि० स० अल्ला एकै नूर उपनाया (दा३ नि० स० निपाया) ताकी कैसी निंदा। ५. दा० नि० स० ता। ६. गु० उपजिआ। ७. दा० नि० स० कौंन भला कौंन मंदा। ८. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै। ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै ॥ सभ महि सचा एको सोई तिसका कीआ सभु कछु होई। हुकुम पछानै सु एको जानै बंदा कहिऐ सोई ॥ ९. गु० अलहु अलखु न जाई लखिआ। १०. गु० कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु दीठा। ११. गु० में इस पद की प्रथम दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद आती हैं।

[१८६]

दा० गौड़ी ८८, नि० गौड़ी ९१, गु० गौड़ी ६७—
१. दा० जियरा, नि० जीवरा। २. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : अबिगतु समझु इआना। ३. दा० नि० जो देख्या सो बहुरि न पेख्या। ४. दा० नि० माटी सूं। ५. दा३ मन मांनां। ६. दा१ दा२ बाकल बसतर, गु० बिपल (नागरी मूल) बसत्र। ७. गु० केते है पहिरे। ८. दा० नि० का तप बनखंडि बासा। ९. गु० कहा भइआ नर देवा धोखे। १०. गु० बोरिओ गिआता। ११-१२. दा० नि० में अंतिम दोनों पंक्तियों का पाठ है : कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा लोका पंथि लगाई। सुनौं संत सुमिरौ भगत जन हरि बिन जनम गंवाई। १३. गु० में प्रथम दो पंक्तियाँ चौथी के बाद आती हैं।

[१८७]

[१]भूली मालिनीं है एउ।
सतिगुरु जागता है देउ ॥ टेक ॥[२]
पाती तोरै मालिनीं[३] पाती पाती जीउ।
जिसु[४] मूरति[५] कौं पाती तोरै सो मूरति[५] निरजीउ ॥१॥
टांचनहारै टांचिया[६] दै छाती ऊपरि[७] पाउ।
जे तूं[८] मूरति सांचि[९] है तौ गढ़नहारै[१०] खाउ ॥२॥
लाडू लावन लापसी[११] पूजा चढ़ै अपार[१२]।
पूजि पुजारा लै गया[१३] दै[१४] मूरति[१५] कै मुहिं छार ॥३॥
पाती ब्रह्मां पुहुप[१६] बिसनूं[१७] मूल फल महादेव[१८]।[२०]
तीनि देव प्रतखि तोरहि[१९] करहि किसकी सेव ॥४॥[२१]
मालिनि भूली जग भुलांनां हम भुलांनें नांहिं।[२२]
कहै कबीर हंम रांम राखे क्रिपा करि हरि राइ ॥५॥[२३]

[१८८]

मेरी[१] जिभ्या[२] बिस्नु नैंन नाराइन हिरदै बसहि[३] गोबिंदा।[६]
जम दुवार जब लेखा मांगै[४] तब का कहसि[५] मुकुंदा ॥ टेक ॥[६]
तूं ब्रांह्मन मैं कासी क जोलहा चीन्हि न मोर गियांनां[७]।
तैं सब मागे भूपति राजा मोरै रांम धियांनां ॥१॥[८]

---

[१८७]

दा० रांमकली ४६, नि० रांमकली ४५, गु० आसा १४—

१. गु० में यह पंक्ति ऊपर की तीसरी पंक्ति के बाद है। २. दा० नि० स० भूली मालनीं है गोबिंद जागतौ जगदेव। तूं करै किसकी सेव ॥ (पुन० तुल० पंक्ति १०)। ३. दा० नि० स० भूली मालिनि पाती तोड़ै (पुन० तुल० पंक्ति १ : भूली मालिनीं है एउ)। ४. दा० नि० स० जा। ५. गु० पाहन। ६. दा३ घड़नहारै घड़ियौ, गु० पाखान गढ़ि कै मूरति कीन्ही। ७. नि० दै छाती परि, गु० दे कै छाती। ८. गु० एह। ९. दा० नि० स० सकल (?)। १०. दा० घड़णहारै (राज० प्रभाव), गु० गड़णहारे (पंजाबी प्रभाव)। ११. गु० भातु पहिति अरु लापसी। १२. गु० करकरा कासरु। १३. गु० भोगनहारे भोगिआ। १४. गु० इस। १५. दा३ पाथर। १६. दा३ कली। १७. गु० ब्रह्मु पाती बिसनु डारी। १८. दा१ फूल फल महादेव (पुन०), दा२ फूल (पुन०) मूल महादेव, दा२ नि० स० मूल फल महादेव, गु० फूल संकर देउ। १९. दा१ दा२ नि० स० तीनि देवौ एक मूरति, दा३ तीनि मूरति एक देवा। २०-२१. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी पंक्ति के पूर्व आती हैं। २२-२३. दा० नि० स० एक न भूला दोइ न भूला भूला सब संसारा। एक न भूला दास कबीरा जाके रांम अधारा ॥ (भिन्न छंद)।

[१८८]

दा० आसावरी ४९, नि० आसावरी ४४, गु० आसा २६—

१. दा३ मेरे (उर्दू मूल)। २. गु० जिहबा। ३. दा० नि० ज्यौं। ४. गु० जब पूछसि बवरे। ५. दा० कहिसि (उर्दू मूल)। ६. गु० में यह दोनो पंक्तियाँ तीसरी तथा चौथी पंक्तियों के रूप में हैं। ७. गु० बूझहु मोर गिआना। ८. गु० तुम्ह तउ जाचे भूपति राजे हरि सिउ मोर धिआना।

पूरब जनम हम बांह्मन होते ओछे करम तप हींनां ।[9]
रांमदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हां ॥२॥[10]
हंम गोरू तुम गुआर गुसांईं जनम जनम रखवारे ।[11]
कबहूं न पार उतारि चराएहु कैसे खसम हमारे ॥३॥[12]
भौ बूड़त कछु उपाइ करीजै[13] ज्यौं तिरि लंघै तीरा ।[15]
रांम नांम जपि[14] भेरा बांधौ कहै उपदेस कबीरा ॥४॥[16]

[१८९]

जउ मैं[1] बउरा तउ रांम तोरा ।
लोगु[2] मरमु का[3] जांनैं मोरा ॥ टेक ॥[4]
माला तिलक पहिरि मन मांनां[5] । लोगन रांमु खिलौनां जांनां ॥१॥
तोरउं न पाती पूजउं न देवा । रांम भगति बिनु निहफल सेवा ॥२॥[6]
सतगुरु पूजउं सदा मनावउं । ऐसी सेव दरगह सुखु पावउं ॥३॥[7]
लोगु[2] कहैं कबीर बौरांनां । कबीर का मरमु रांम भल जांनां[8] ॥४॥

[१९०]

सभ[1] खलक[2] सयांनीं[3] मैं बौरा ।
मैं बिगरचौं[4] बिगरै मति[5] औरा ॥ टेक ॥
बिद्या न पढ़उं[6] बाद नहिं जांनौं । हरि गुन कथत सुनत बउरांनौं ॥१॥

गु० में यह और इसके पूर्व की एक पंक्ति पद के अंत में आती हैं। ९-१०. गु० हम घरि सूतु तनहि नित ताना कंठि जनेउ तुमारे। तुम तउ बेदु पड़हु गाइत्री गोबिंदु रिदै हमारे॥ (पुन० तुल० प्रथम पंक्ति में 'हिरदै बसहि गोबिंदा')। ११-१२. दा० नि० नौमीं नेम दसमीं (दा३ दसैं) करि संजम एकादसी जागरनां। द्वादसी दान पुंनि की बेला (दा३ बरियां) सकल पाप च्यौ करनां॥ १३. दा३ भौ बूड़तां (राज०) उपाइ करीजै। १४. दा१ दा२ लिखि। १५-१६. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं। [विशेष—यहाँ दा० नि० की तुलना में सिद्धांततः गु० का पाठ स्वीकृत होना चाहिए, किंतु ऐसा करने में निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं: (१) गु० का पाठ स्वीकार करने से रचनाकार का नाम ही नहीं आ पाता तथा (२) गु० की द्वितीय पंक्ति के 'गोबिंदु रिदै हमारे' में तृतीय पंक्ति के 'हिरदै बसहि गोबिंदा' की पुनरावृत्ति है।]।

[१८९]

दा० भैरूं १९, नि० भैरूं १८, गु० भैरउ ६—
१. गु० हउ। २. नि० लोक। ३. गु० कह। ४. गु० में यह अगली पंक्ति के बाद है। ५. गु० माथे तिलकु हथि (?) माला बाना। ६-७. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर: थोरी भगति बहुत अहंकारा। ऐसे भगता मिलैं अपारा॥ ८. गु० पहिचानां।

[१९०]

दा० गौड़ी १४७, नि० गौड़ी १५४, गु० बिलावल २—
१. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त: मेरे बाबा मै बउरा। २. दा२ दुनियां, दा३ दुनीं। ३. गु० सैआनी। ४. दा० नि० हंम बिगरे। ५. दा० नि० बिगरौ जिनि। ६. गु० परउ (उर्दू मूल)।

आपि न बौरा[७] रांम कियौ बउरा। सतिगुरु जारि गयौ भ्रमु मोरा ॥२॥[८]
मैं बिगरचौं अपनीं मति खोई। मेरै भरमि भूलउ मति कोई ॥३॥
सो बउरा जो आपु न पछांनैं। आपु पछांनैं त एकै जांनैं ॥४॥
अबहिं न माता सु कबहुं न माता। कह[९] कबीर रांमैं रंगि राता ॥५॥

[१९१]

पंडिआ[१] कवन कुमति तुम लागे[२]।
बूड़हुगे परिवार सकल सिउं[३] रांम न जपहु अभागे[४] ॥ टेक ॥
बेद पुरांन पढ़े का क्या गुनु[५] खर चंदन जस भारा।
रांम नांम की गति नहिं जांनीं कैसै उतरसि पारा[६] ॥१॥[७]
जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु[८] अधरम कहहु कत भाई[९]।
आपस कौं मुनिवर करि थापहु[१०] काकौं[११] कहौं कसाई ॥२॥
मन के अंधे आपि न बूझहु काहि बुझावहु भाई।[१२]
माया कारनि बिद्या बेचहु जनमु अबिरथा जाई ॥३॥[१३]
नारद बचनु बिआस कहत है सुक कौं पूछहु जाई।[१४]
कहि (कहै ?) कबीर रांमैं रमि छूटहु नांहि त बूड़े भाई ॥४॥[१५]

[१९२]

कहु पंडित[१] सूचा[२] कवन ठांउं।
जहां बैसि हउं भोजनु खांउं[३] ॥ टेक ॥

---

७. दा० नि० मैं नहिं बौरा। ८. दा० नि० में इसके बाद की तीनों पंक्तियाँ नहीं हैं; इनके स्थान पर : कांम क्रोध दोउ भए बिकारा। आपहिं आप जरै संसारा। मीठो कहा जाहि जो भावै। दास कबीर रांम गुन गावै॥ (किंतु पूर्व की पंक्तियों के भाव से कोई मेल नहीं)। ९. गु० कहि।

[१९१]

दा० गौड़ी ३९, नि० गौड़ी ४३, गु० मारू १—
१. दा० नि० पांडे। २. दा० नि० तोंहि लागी (उर्दू मूल)। ३. दा० नि० में यह अंश नहीं है। ४. दा० नि० अभागी (उर्दू मूल)। ५. दा० नि० बेद पुरांन पढ़त अस पांडे। ६. दा१ दा२ नि० रांम नांम तत समझत नांहीं अंति पड़ै मुखि छारा। दा३ दा४ रांम नांम का मरम न जांन्यौं लै डूब्यौ परिवारा। ७. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—
बेद पढ्यां का फल यहु पांडे सब घटि देखै रांमां। जनम मरन थैं तौ तूं छूटै सुफल होंहि सब कांमां।
८. दा० नि० औ धरम कहतु हौ। ९. दा० नि० अधरम कहा है (दा४ कहंवां) भाई। १०. दा० नि० आपन तौ मुनि जन ह्वै बैठे। ११, दा० नि० कासनि। १२-१३. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं। १४. दा० नि० नारद कहै ब्यास यौं भाखै सुखदेव पूछौ जाई। १५. दा० नि० कहै कबीर कुमति तब छूटै जे रहौ रांम ल्यौ लाई।

[१९२]

दा० आसावरी ५०, नि० आसावरी ४५, गु० बसंतु ७—
१. दा० नि० पांडे। २. दा० नि० सुचि। ३. दा० नि० जिहि घरि भोजन बैठि खाउं।

माता जूठी पिता भी[४] जूठा जूठे ही फल लागे[५] ।
आवहिं जूठे जाहिं भी जूठे[६] जूठे मरहिं अभागे[७] ॥१॥[८]
अगिनि भी जूठी पांनी जूठा[९] जूठे[१०] बैसि[११] पकाया ।
जूठी करछी[१२] अन्न परोसा[१३] जूठै जूठा खाया[१४] ॥२॥
गोबरु जूठा चउका जूठा जूठै दीनीं[१५] कारा ।
कहै कबीर तेई जन सूचे जे हरि भजि तजहिं बिकारा[१६] ॥३॥[१७]

[१९३]

आऊंगा न जाऊंगा मरूंगा न जिऊंगा ।
गुर कै साथि अमी रस पिऊंगा ॥ टेक ॥
कोई फेरै माला कोई फेरै तसबी । देखौ रे लोगा दोनौं कसबी ॥१॥
कोई जावै मक्के कोई जावै कासी । दोऊ कै गलि परि गई पासी ॥२॥
कहत कबीर सुनौं नर लोई । हंम न किसी के न हमरा कोई ॥३॥

[१९४]

कौंन[१] मरै कौंन[१] जनमैं आई ।
सरग[२] नरक कौंनैं गति पाई ॥ टेक ॥

---

४. दा० नि० पुनि। ५. दा० नि० जूठे फल चित लागे। ६. दा० नि० जूठा आवन जूठा जावन। ७. दा० नि० चेतहु क्यूं न अभागे। ८. गु० में इसके बाद अतिरिक्त—
जिहवा जूठी बोलत जूठा करन नेत्र सभ जूठे। इंद्री की जूठी उतरसि नाही ब्रह्म अगनि के लूठे॥
९. दा० नि० अन जूठा पांनीं पुनि जूठा। १०, गु० जूठा (उर्दू मूल)। ११. दा० नि० बैठा १२. दा० नि० कड़छा। १३. गु० परोसन लागा। १४. गु० जूठे ही बैठि खाया। १५. दा०। नि० काढ़ी। १६. गु० कहि कबीर तेई नर सूचे साची परी बिचारा। १७. गु० में इस पद की प्रथम पंक्ति तीसरी के बाद आती है ।

[१९३]

दा० नि० भैरूं ७, शबे० (२) मिश्रित १९—
दा० तथा नि० का पूरा पद इस प्रकार है—

आऊंगा न जाऊंगा मरूंगा न जीऊंगा ।
गुर के सबद मैं रमि रमि रहूंगा ॥ टेक ॥
आप कटोरा आपैं थारी। आपैं पुरिखा आपैं नारी ॥
आप सदाफल आपैं नीबू। आपैं मुसलमांन आपैं हिंदू ॥
आपैं मछ कछ आपैं जाल। आपैं झींवर आपैं काल ॥
कहै कबीर हंम नांहीं रे नांहीं। नां हंम जीवत न मुवले मांहीं ॥

[पाँचवीं पंक्ति 'गोरखबानी' पद ४१-३, ४ से तुलनीय है जिसका पाठ है : आपण हीं मछ कछ आपण ही जाल। आपण ही धीवर आपण ही काल ॥ नि० में अंतिम पंक्ति के पूर्व एक पंक्ति अतिरिक्त : आपैं नाहर आपैं गाइ। आपैं मारै आपैं खाइ ॥ इस प्रकार पद के आरंभ की दो पंक्तियों को छोड़ कर शेष पंक्तियाँ नितांत भिन्न हैं।] १. शबे० में इसके बाद अतिरिक्त : कोई पूजै मढ़ियां कोई पूजै गोरां। दोऊ की मतियां हरि लई चोरां ॥

[१९४]

दा० गौड़ी ४४, नि० गौड़ी ४८, शबे० (३) भेद ४—
१. दा[३] कूंण। २. दा[१] अग। • तुल० शबे० (३) भेद ४—

पंच तत अबिगत तैं उतपनां एकैं किया निवासा ।
बिछुरें तत फिरि सहजि समांनां रेख रही नंहि आसा ॥१॥
जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है बाहरि भीतरि पांनीं ।
फूटा कुंभ जल जलंहि समांनां यहु तत कथौ गियांनीं ॥२॥
आदै गगनां अंतै गगनां मद्धे गगनां भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै झूठी संक उपाई ॥३॥

[१९५]

साधौ सो जन उतरे[1] पारा ।
जिन मन तैं[2] आपा डारा ॥ टेक ॥
कोई कहै मैं ग्यांनीं रे भाई कोई कहै मैं त्यागी ।
कोई कहै मैं इंद्री जीती अहं सभनि कौं[3] लागी ॥१॥
कोई कहै मैं जोगी रे भाई कोई कहै मैं भोगी ।
मैं तैं आपा दूरि न डारा[4] कैसै जीवै रोगी ॥२॥
कोई कहै मैं दाता रे भाई कोई कहै मैं तपसी ।
निज तत नांउं निहचै[5] नंहि जांनां सब माया मैं खपसी ॥३॥
कोई कहै मैं जुगती जांनौं[6] कोई कहै मैं[7] रहनीं ।
आतम देव सौं परचा[8] नांहीं यहु सब झूठी कहनीं ॥४॥

बिन गुरु ज्ञान नाम ना पइहौ बिरथा जनम गँवाई हो ॥ टेक ॥
जल भरि कुंभ धरे जल भीतर बाहर भीतर पानी हो ।
उलटि कुंभ जल जलहिं समैहै तब का करिहौ ज्ञानी हो ॥
बिनु करताल पखावज बाजै बिनु रसना गुन गाया हो ।
गावनहार के रूप न रेखा सतगुरु अलख लखाया हो ॥

[पुन० तुल० शबे० (१) भेद २६-६, ७ और उसी पद में यह पंक्तियाँ दा० नि० स० तथा बी० में भी आती हैं—दे० क० ग्रं०, पद १६५ ।]

है अथाह थाह सबहिन में दरिया लहर समानी हो ।
जाल डारि का करिहौ धीमर मीन के ह्वै गै पानी हो ॥
पंछी क खोज औ मीन कै मारग ढूँढ़े ना कोइ पाया हो ।
कहै कबीर सतगुरु मिलि पूरा भूले को राह बताया हो ॥

[शबे० का उक्त पद मिश्रित ज्ञात होता है, क्योंकि इसमें अन्य प्रतियों के विभिन्न पदों की विभि[illegible] पंक्तियाँ मिलती हैं—तुल० दा० गौड़ी १६५-४, ५ तथा बी० ४४]।

[१९५]

नि० आसावरी ८३, शबे० (१) मिश्रित ३—

१. नि० उतर्‌या । २. नि० मैं तैं । ३. नि० सबै कौ । ४. नि० डा[illegible] निस्चय । ६. नि० कोई कहै मैं जुगति सब जांणूं । ७. नि० मेरै । ८. बी० गए । [illegible]१० नि० ते बींचि । [illegible]कियाँ ऊपर की चौथी

कोई कहै धरम सब साधे और बरत सब कीन्हां[९] ।
आपा कौ आंटी नहिं निकसी करज बहुत सिरि लीन्हां[१०] ॥५॥
गरब गुमांन सब दूरि निवारै करनीं कौ बल नांहीं ।
कहै कबीर साहेब का बंदा[११] पहुंचा हरि पद[१२] मांहीं ॥६॥

[१९६]

काहे मेरे बांम्हन हरि न कहहि ।[१]
रांम न बोलहि पांडे दोजक भरहि[२] ॥टेक॥
जिहिं[३] मुख बेदु[४] गाइत्री उचरै[५] सो क्यूं बांम्हन बिसरु करै ।[६]
जाकै पाइं जगत सभ लागै[७] सो पंडित जिउघात करै[८] ॥१॥
आपन ऊंच[९] नीच घरि भोजनु घींन करम[१०] करि उदरु भरहि[११] ।
ग्रहन अमावस[१२] रुचि रुचि मांगहि[१३] कर[१४] दीपकु लै कूप[१५] परहि[१६] ॥२॥[१७]
तूं बांम्हन मैं कासी क जुलहा मोहिं तोहिं बराबरी कैसे कै बनहि ।[१८]
कहै कबीर हंम रांम लगि उबरे[१९] बेदु भरोसै पांडे डूबि मरहि[२०] ॥३॥

[१९७]

रांम न रमसि[१] कौंन डंड[२] लागा[३] । मरि जैबे[४] का करिबे[५] अभागा[६] ॥

---

९. नि० कोई कहै मैं सब सिधि साधे कोई कहै सब ब्रत कीया। १०. नि० लीया।
११. नि० सो सांईं का बंदा। १२. शबे० निज पद (राधा० प्रभाव)।

[१९६]

नि० आसावरी ७०, गु० रामकली ५, बी० १७—
१-२ नि० काहे रे पांडे तुम जपौ न हरे। हरि न भजे सो तौ नरक परे ॥, बी० रामहिं गावै औरहिं समुझावै हरि जाने बिनु सकल (बीभ० बिकल) फिरै। गु० में यह दोनों पंक्तियाँ तीसरी, चौथी पंक्तियों के स्थान पर आती हैं। ३. बी० जा। ४. नि० सबद। ५. गु० निकसै। ६. नि० या सबदन संसार तिरै, बी० तासु बचन संसार तरै। ७. बी० जाके पांव जगत उठि लागै, नि० जा पांडे नैं सब जग बूझै। ८. बी० सो ब्रहमन जिव बध करै, गु० सो किउ पंडितु हरि न कहै (तुकहीन)। ९. नि० ऊंच घरि जन्म। १०. नि० गु० हठे करम। ११. नि० बी० भरै। १२. गु० चउदस अमावस, नि० अमास पून्यूं। १३. गु० रचि रचि मांगै, बी० ढुकि ढुकि मांगै। १४. नि० हाथि। १५. नि० कुंवै। १६. नि० बी० परै। १७. बी० में इसके बाद की पंक्तियों का पाठ है : एकादसी बरत नहिं जानै भूत प्रेत हठि हृदय धरै। तजि कपूर गांठी बिख बांधै ग्यांन गंवाए मुगुध फिरै ॥ छीजै साहु चोर प्रतिपालै संत जना की कूट करै। कहहिं कबीर जिभ्या के लंपट यहि बिधि (?) प्रानी नर्क परै ॥ १८. नि० बाड़ि न कीन्हीं मृघ न मार्‌यौ खेत उजार्‌यौ सब अंधरै। १९. गु० हमरे राम नाम कहि उबरे [यह पाठ स्वीकार करने पर रचनाकार का नाम ही नहीं रह जाता अतः यहाँ नि० का पाठ स्वीकृत किया गया है।]। २० नि० तुम बेद भरोसे गरब गरे।

पूजे माड़यां काई

[१९७]

दा० गौड़ी ४४, नि० १ २. गु० मति। गु० लागे। ४. गु० जइबे कउ। ५. गु० करहु अभागे।
१. दा३ कूंण। २. दा१

कोइ तीरथ कोइ मुंडित केसा । पाखंड मंत्र भर्म उपदेसा ॥[7]

बिद्या बेद पढ़ि करै हंकारा । अंत काल मुख फांकै छारा ॥[8]

दुखित सुखित होइ[9] कुटुंब जेंवावै[10] । मरण बेर[11] एकसर दुख पावै[12] ॥

कहै कबीर यह कलि है खोटी । जो रहै करवा सो निकसै टोटी[13] ॥

[१६८]

सभै[1] मदिमाते कोऊ न जाग ।

संग ही[2] चोर घरु मुसन लाग ॥टेक॥

जोगी माते धरि[3] धियांन । पंडित[4] माते पढ़ि पुरांन ॥१॥[5]

[6]तपा जु[7] माते तप कै भेव । संन्यासी माते अहंमेव[8] ॥२॥[9]

जागै[10] सुखदेउ ऊधौ[11] अकूरु । हणवंत जागै[10] लै[12] लंगूरु[13] ॥३॥

संकर जागै[10] चरन सेव[14] । कलि जागै[10] नांमां जैदेव ॥४॥

जागत सोवत बहु प्रकार । गुरमुखि जागै सोई सारु ॥५॥[15]

चंचल मन के अधम कांम[16] । कहै[17] कबीर भजि[18] रांम नांम ॥६॥

[१६९]

हरि बिन भरमि बिगूचे गंदा ।[1]

जापहिं[2] जाउं[3] आपु छुटकावन[4] ते बांधे[5] बहु फंदा[6] ॥टेक॥[7]

---

६. तुल० दा३ केदारा गौड़ी २-१, २ यथा : रांम न जपहु कवन भ्रमि लागे । मरि जाहुगे का करहु अभागे ॥ ७-८. गु० में उक्त दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर : अवतरि आइ कहा, तुम कीना । राम को नामु न कबहू लीना ॥ (प्रथम पंक्ति के रूप में)। ९. गु० दुख सुख करि कै । १०. गु. जीवाइआ । ११. गु० मरती बार । १२. गु० पाइआ १३. गु० कंठ गहन तब करन पुकारा । कहि कबीर आगे ते न संम्हारा ॥

[१६८]

दा० बसंत ११, नि० बसंत १०, गु० बसंतु २, बी० बसंत १०, शक० बसंत १२—

१. बी० शक० सबही (बीभ० सभै)। २. दा० नि० तार्थं संग ही । ३. गु० शक० जोग । ४. गु० पंडित जन । ५-६. दा० तथा गु० में दोनों पंक्तियों के प्रथम तथा द्वितीय चरण परस्पर स्थानांतरित । ७. बी० करि हमेव । ८. गु० बी० शक० तपसी [किंतु 'तपस्वी' के अर्थ में 'तपा' शब्द का प्रयोग प्राचीनतर है; तुल० जायसी, पद्मावत ३०-३: जपा तपा सब आसन मारे ।, १००-७: करवत तपा लेहिं होइ चूरू ।, १६७-१: बैठि सिंघ छाला होइ तपा । ९. बी० तथा शक० में इसके बाद अतिरिक्त : मोलना माते पढ़ि मोसाफ । काजी माते दै निसाफ ॥ संसारी माते माया के धार । राजा माते करि हंकार ॥ १०. बी० शक० माते । ११. गु० अरु । १२. गु धरि । १३. गु० लंकूरु । १४. बी० सिव माते करि चरन सेव । १५. दा० नि० ए अभिमांन सब मन के कांम । ए अभिमांन नहीं कहीं ठांम ॥, बी० शक० सत्त सत्त कहै सुम्रिति बेद । जस रावन मारेउ घर के भेद ॥ १६. दा० नि० आतमांरांम कौ मन बिश्रांम, गु० इसु देही के अधिक काम (?)। १७. गु० कहि । १८. बी० शक० भजु ।

[१६९]

दा० गौड़ी १३३, नि० गौड़ी १४०, गु० गउड़ी ५१, बी० ३८—

१. गु० भुलाने अंधा, दा० नि० बिगूते गंदा । २. बी० जहं जहं, दा० नि० जापै । ३. बी० गए । ४. दा० नि० अपनपौ छुड़ावण, बी० आपनपौ खोए । ५. बी० तेहि फंदे, दा० नि० ते बाँधे । ६. गु० फंधा ('अंधा' से तुक मिलाने के लिए)। ७. गु० में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की चौथी

जोगी कहहिं जोगु भल मीठा[८] और न दूजा[९] भाई ।
लुंचित[१०] मुंडित मोनि जटाधर[११] एहि[१२] कहहिं[१३] सिधि पाई ॥१॥
पंडित[१४] गुनीं सूर कबि दाता[१५] एहि कहहिं बड़ हमहीं ।[१७]
जहं ते उपजे तहंई समांनें[१६] हरि पद बिसरा जबहीं ॥२॥[१८]
तजि बावें दाहिनें बिकारा[१९] हरि पद दिढ़ करि गहिए[२०] ।
कहै[२१] कबीर गूंगै गुड़ खाया पूछें तैं[२२] क्या कहिए ॥३॥

[२००]

लोगा तुम हौ मति के भोरा[१] ।
[२]जउ कासी[३] तनु तजहि[४] कबीरा तौ रांमहिं[५] कौंन[६] निहोरा ॥१॥[७]

जो जन भाउ भगति कछु जांनैं[८] ताकौं अचरजु काहो ।[९]
जैसैं जल जलहीं ढुरि मिलिश्रौ[१०] त्यौं ढुरि[११] मिल्यौ जुलाहो[१२] ॥२॥[१३]

पंक्ति के बाद हैं। ८. दा१ दा२ नि० जोग सिधि नीकी (नि० नीका)। ९. दा१ दूजी, बी० दुतिया। १०. गु० रुंडित, बी० चुंडित, बीभ० नुंचित (उर्दू मूल ?)। ११. गु० एकै (?) सबदी। १२. दा० नि० ए जु, बी० तिनहूं। १३. बी० कहां। १४. बी० ग्यानी। १५. गु० हम दाते। १६. दा० नि० जहां का उपज्या तहां बिलांनां, गु० जह ते उपजी (उर्दू मूल) तही समानी (उर्दू मूल)। १७. गु० इहि बिधि बिसरो तबही, बी० छूटि गयल सभ तबहीं। १८. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : वार पार की खबरि न जानी फिर्‌यौ सकल बन ऐसैं। यहु मन बोहिथ के कउवा ज्यूं रह्यौ ठग्यौ सौं बैसैं ॥ गु० में यहाँ अतिरिक्त : जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझे किउ रहीऐ। सति गुरु मिलै अंधेरा चूकै इन बिधि माणकु लहीऐ ॥, बी० में इस स्थल पर कुछ नहीं है। १९. बी० बांएं दहिने तजे (बीभ० तेजु) बिकारा। २०. बी० निजु कै हरि पद गहिआ। २१. गु० कहु, बी० कहहिं। २२. दा० नि० बूझै तौ। २३. बी० कहिआ, दा० नि० तथा गु० में यह पंक्ति अगली पंक्ति के बाद आती है; किंतु यह क्रम स्वीकार कर लेने पर अर्थ समझने में कुछ कठिनाई पड़ती है अतः यहाँ बी० का क्रम स्वीकार किया गया है।

[२००]

दा० धनाश्री ५, नि० धनाश्री ४, गु० धनासरी ३, बी० १०३—
१. दा१ लोका मति के भोरा रे (दा२ चोरा), बी० लोगा तुमहीं मति के भोरा, गु० हरि के लोगा मैं तउ मति का भोरा (विरोधार्थी)। २. बी० में यह अंतिम पंक्ति के रूप में आती है। ३. गु० तनु कासी। ४. बीभ० तेजहीं। ५. गु० रमईऐ। ६. गु० कहा। ७. दा१ दा२ तथा नि० में इसके बाद अतिरिक्त : तब हम वैसे अब हम ऐसे इहै जनम का लाहा। ८. दा१ दा२ राम भगति पै जाकौ हितचित, दा३ नि० जोपै भगत भगति हरि जांनैं। ९. बी० में यह पंक्ति नहीं है। दा१ दा२ में यह अगली पंक्ति के बाद है। १०. दा१ दा२ ज्यूं जल में जल पैसि न निकसै, गु० जितु जल जल महि पैसि न निकसै; बी० ज्यौं पानी पानी महं मिलि गौ। ११. दा२ हरि, बी० धुरि (उर्दू मूल)। १२. बी० मिलै (बीभ० मिले) कबीरा। १३. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : जौ मैथिल को (बीभ० मैंथी का) सांचा ब्यास। तोर (बीभ० तोहरा) मरन होय मगहर पास। मगहर मरै सो गदहा होय। भल परतीति राम सौं खोय। मगहर मरै (बीभ० मरों) मरन नहिं पावै (बीभ० पावों)। अनतै मरै तो राम लजावै (बी० मरों, लजावों)।

कहै कबीर सुनहु रे लोई[१४] भरमि न भूलहु कोई[१५] ।[१६]
क्या[१७] कासी क्या[१८] मगहर[१९] ऊखर ह्रिदै[२०] रांम जौ होई[२१] ॥३॥[२२]

—o—

रमैनी

[१]

ओं ओंकार आदि है मूला । राजा परजा एकहि सूला ॥[१]
[२]हंम तुम मांहैं एकै[३] लोहू । एकै प्रांन बियापै[४] मोहू ॥
एकहिं बास रहै दस मासा । सूतग पातग एकै बासा[५] ॥
एकहिं जननि[६] जनां संसारा । कौंन ग्यांन तैं भएउ निनारा ॥[७]
बालक ह्वै[८] भग द्वारै आवा । भग भोगन कौं[९] पुरिख[१०] कहावा ॥[११]
भाव भगति सौं हरि न अराधा । जनम मरन की मिटी न साधा[१२] ॥

---

१४. दा१ दा२ कहै कबीर सुनौ रे संतो, दा३ कहै कबीर रांम मैं जांन्यौं । १५. दा१ दा२ भ्रमि परै जनि कोई, दा३ भ्रमि भुलाइ जनि कोई । १६. बी० में यह पंक्ति नहीं है । १७. दा० नि० जस, बी० का । १८. दा० नि० तस, बी० का । १९. दा१ बी० मगहर ऊसर (दा२ ऊपर, दा३ दा४ नि० ऊषर) । २०. गु० रिदै (पंजाबी) । २१. बी० राम बसै मोरा, दा१ दा२ रांम सति होई । २२ गु० में पहली दो पंक्तियाँ चौथी के बाद आती हैं ।

[१]

दा० नि० चौपदी १, बी० १—
१. बी० में यह पंक्ति नहीं है । २. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त—
अतंर जोति सबद एक नारी । हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ॥
ते तिरिए भग लिंग अनंता । तेऊ न जानैं आदिउ अंता ॥
बाखरि एक बिधातें कीन्हां । चौदह ठहर पाट सो लीन्हां ॥
हरि हर ब्रह्मा महंतो नाऊं । तिनि पुनि तीनि बसवाल गाऊं ॥
तिनि पुनि (पुन०) रचल खंड ब्रह्मंडा । छह दरसन छानबे पखंडा ॥
पेटें काहु न बेद पढ़ाया । सुनति कराय तुरुक नहिं आया ॥
नारी मोचित गर्भ प्रसूती । स्वांग धरै बहुतै करतूती ॥
३. बी० तहिया हम तुम । ४. दा० नि० जीवन है । ५. बी० में यह पंक्ति नहीं है । ६. बी० जनी (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—
ग्यांन न पायौ बावरे धरी अबिद्या मैंड । सतगुर मिल्या न मुक्ति फल तातैं खाई बैंड ॥
८. बी० भौ बालक । ९. बी० भग भोगी कै (बीभ० भोग कै) । १०. बी० पुरुष । ११. दा० नि० में आगे अतिरिक्त : ग्यांन न सुमिर्‌यौ निरगुण सारा । बिखतैं बिरचि न किया बिचारा ॥
१२. बी० में यह पंक्ति नहीं है, इसके स्थान पर—
अबिगति की गति काहु न जानी । एक जीभ कित (बीभ० क्या) कहौं बखानी ॥
जौ मुख होय जीभ दस लाखा । तो कोई आइ महंतो भाखा ॥

भाव भगति बिसवास बिनु, कटै न संसै सूल ॥
कहै कबीर हरि भगति बिनु, मुकुति नहीं रे मूल ॥[१३]

[२]

पहिले[१] मन मैं सुमिरौ सोई । ता सम तुलै अवर नहिं कोई[३] ॥
कोई न पूजै वासौं पांनां[२] । आदि अंति वो किनहुं न जांनां ॥[४]
रूप अरूप[५] न आवै बोला[६] । हरू गरू कछु[७] जाइ न तोला[८] ॥
भूख न त्रिखा धूप नहिं छांहीं । दुख सुख रहित रहै सब मांहीं ॥[९]
अबिगत अपरंपार ब्रह्म[१०], ग्यांन रूप सब ठांम[११] ॥
बहु बिचार करि देखिया, कोई न सारिख रांम[१२] ॥

[३]

तेहि[१] साहिब के लागौ[२] साथा । दुख सुख[३] मेटि कै[४] रहहु सनाथा ॥[५]
नां जसरथ[६] घरि औतरि आवा[७] । नां[८] लंका का राव सतावा ॥
देवै कोखि[९] न अवतरि आवा[१०] । नां जसवै लै[११] गोद खिलावा ॥
नां वो ग्वालन कै संगि फिरिया । गोबरधन लै नां कर धरिया ॥[१२]
बावन होइ नहीं बलि छलिया । धरनीं बेद लै न ऊधरिया ॥[१३]

---

१३. बी० कहहिं कबीर पुकारि कै ई लेऊ ब्यवहार । इक राम नाम जाने बिना भव बूड़ि मुवा संसार ॥ यह दा० नि० बारहपदी में ९वीं साखी है और वहीं प्रसंगानुसार उपयुक्त भी है । स० में यह साखी दा० नि० के समान उसी रमैनी के अंत में है, जो बी० की ७५वीं रमैनी है ।

[२]

दा० नि० बारहपदी १, बी० ७७—

१. दा० नि० पहली । २. दा१ मांनां । ३-४. बी० में इन पंक्तियों का पाठ है—
एकै काल (?) सकल संसारा । एक नाम है जगत पियारा ॥
त्रिया पुरुष कछु कथो न जाई । सर्व रूप जग रहा समाई ॥
५. दा० नि० सरूप, बीभ० निरूप । ६. बी० जाय नहिं बोली । ७. बी० हलुका गरुआ, बीभ० हलुक न गरहू । ८. बी० तोली । ९. बी० तेहि माहीं । १०. बी० अपरंपार रूप मगु (बीभ० अपर परम रूप मगु) रंगी । ११. बी० ग्यांन रूप बहु आहि, बी० (पाठांतर) रूप निरूप न भाय, बीभ० में यह तथा तीसरा चरण लिखने से छूट गया है । १२. बी० कहैं कबीर पुकारि कै अदबुद कहिए ताहि, बी० (पाठांतर) बहुत ध्यान कै खोजिया नहिं तेहि संख्या आहि ।

[३]

दा० नि० बारहपदी ९, बी० र० ७५, स० ४३-३—

१. दा० नि० स० ता । २. दा० नि० लागहु । । ३. बी० दुइ दुख । ४. दा० नि० मेटि । ५. दा० नि० स० रह्यौ अनाथा । ६. दा३ दसरथ । ७. बी० दसरथ कुल औतरि नहिं आया । ८. बी० नहिं । ९. दा० नि० स० कूख (उर्दू मूल) । १०. बी० नहीं देवकी के गर्भहिं आया । ११. बी० नहीं जसोदैं, नि० नहीं जसोदा । १२. बी० नहीं गोवरधन कर गहि धरिया । नहिं ग्वालन संग बन बन फिरिया । १३. बी० मिथिमी रवन दवन नहिं करिया । पैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥ इसके आगे अतिरिक्त : नहिं बलिराज से माड़ी रारी । नहिं हरिनाकुस बधल

गंडक[१४] सालिगरांम न कोला[१५]। मच्छ कच्छ होइ जलहिं न[१६] डोला ॥
बद्री बैसि ध्यांन नहिं लावा। परसरांम ह्वै खत्री न सतावा ॥[१७]
द्वारावती सरीर न छांड़ा। जगन्नाथ लै[१८] पिंड न गाड़ा[१९] ॥
कहै कबीर बिचारि करि,[२०] ए ऊले[२१] ब्यौहार।
याही तैं जो अगम है, सो वरति रहा संसार[२२] ॥३॥[२३]

[४]

तब नहिं होते[१] पवन न[२] पांनीं। तब नहिं होती सिस्टि उपांनीं ॥[३]
तब नहिं होते[१] पिंड न बासा[४]। तब नहिं होते धरनि अकासा[५] ॥[६]
तब नहिं होते[१] गरभ न मूला। तब नहिं होते[१] कली न फूला ॥[७]
तब नहिं होते[१] सबद न स्वादा[९]। तब नहिं होते[१] बिद्या न बेदा[१०]॥[८]
तब नहिं होते[१] गुरू न चेला। गंम अगम यहु पंथ अकेला[११]॥
अबिगति की गति क्या कहूं[१२], जिस कर[१३] गांउं न ठांउं[१४]।
गुन बिहूंन का पेखिए,[१५] का कहि धरिए[१६] नांउं ॥४॥

[५]

आदम आदि सुधि नहिं[१] पाई। मामा हौवा कहां तैं आई ॥[२]
तब[३] नहिं होते तुरुक न[४] हिंदू। मां का उदर[५] पिता का[६] बिंदू ॥

पछारी ॥ १४. नि० गिलकी। १५. बी० कूला। १६. बी० जल नहिं। १७. बी० ग्राह रूप धरनी नहिं धरिया (तुल० इसी छंद की पंक्ति ५-२), क्षत्री मारि निछत्र न करिया। १८. बी० लै जगनाथ। १९. बी० नहिं। २०. बी० पुकारि कै। २१. बी० ई लेऊ, बीभ० ई लेवो (पाठांतरः ई बैली)। २२. बी० एक राम नाम जाने विना सव बूड़ि मुवा संसार। २३. बी० में यह साखी पहली रमैनी के अंत में आती है।

[४]

दा० नि० अष्टपदी १, बी० ७—
१. दा०३ दा४ तब नहि हुते, बी० तहिया होत। २. बी० नहिं। ३. बी० तहिया सिस्टि कौन उतपानी। ४. बी० वासू। ५. बी० नहिं घर धरनि (पुन०) न गगन अकासू (पुन०)। ६. बी० में यह पंक्ति ऊपर की चौथी पंक्ति के बाद है। ७-८. बी० में इनके प्रथम तथा द्वितीय चरण परस्पर स्थानांतरित। ९. दा० नि० स्वादं। १०. दा० नि० बादं। ११. दा१ दा२ गंम अगंमै पंथ अकेला, बी० गम अगम नहिं पंथ दुहेला। १२. बी० का कहौं। १३. दा० नि० जस कर (उर्दू मूल), बी० जाके। १४. दा० नि० नांउं (पुन० दे० आगे की पंक्ति में : 'का कहि धरिए नांउं')। १५. बी० गुन विहूना पेखना। १६. बी० लीजै।

[५]

दा० नि० अष्टपदी २, बी० ४०—
१. बी० ना। २. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : जब नहिं होते रांम खुदाई। साखा मूल आदि नहिं भाई ॥ ३. दा० नि० जब। ४. बी० और। ५. बी० रुधिर। ६. बी० के।

जब[७] नहिं होते गाइ कसाई । तब बिसमिल्ला[८] किन फुरमाई ॥
जब नहिं होते कुल औ जाती । दोजग भिस्ति कौंन उतपाती ॥[९]
[१०]संजोगै करि गुन धरा,[११] बिजोगै[१२] गुन जाइ ।
जिभ्या स्वारथि आपनैं,[१३] कीजै[१४] बहुत उपाइ ॥५॥

[६]

जिनि[१] कलमां कलि मांहि पढ़ावा[२] । कुदरति खोजि तिनहुं नहिं पावा[३]॥
करम करीम भए करतूता[४]। बेद कुरांन भए[५] दोउ[६] रीता ॥
किरतिम[७] सो जु गरभ अवतरिया । किरतिम[७] सो जो नांमहिं धरिया[८]॥
किरतिम[७] सुन्नति[९] और जनेऊ । हिंदू तरुक न जांनैं भेऊ ॥
मन मुसले की जुगति न जांनैं[१०] । मति भुलानि[११] दुइ दीन बखांनैं ॥[१२]
पानी पवन संजोइ[१३] करि, कीया है उतपाति[१४]।
सुन्नि मैं सबद समाइगा,[१५] तब[१६] कासनि[१७] कहिए जाति ॥६॥

[७]

पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा । आपु अपनपौ जांन न भेदा[१]॥
संझा तरपन अरु[२] खट करमां । लागि रहे इनकै आसरमां[३]॥
गाइत्री जुग चारि पढ़ाई । पूछहु जाइ मुकुति किन पाई ॥
और के छुएं लेत है सींचा[४] । इनतैं कहहु कवन है नींचा ॥
अति[५] गुन गरब करैं[६] अधिकाई । अधिकै गरबि[७] न होइ भलाई ॥

---

७. बी० तब । ८. बी० तब कहु बिसमिल । ९. दा० नि० भूला फिरै दीन ह्वै धावै । ता साहिब का पंथ न पावै ॥ १०. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त : मन मसले की सुधि नांहि जानै । मति भुलान दुइ दीन बखानै ॥ ११. बी० संजोगे का गुन रवै । १२. बी० बियोगे का । १३. बी० स्वाद के कारने । १४. बी० कीन्हे ।

[६]

दा० नि० अष्टपदी ३, बी० ३१—
१. बी० जिन, बीभ० जिन्हि । २. बी० पढ़ाया, दा० नि० पठावा (हिन्दी मूल)। ३. बी० पाया । ४. बी० कर्म ते कर्म करै करतूता । ५. बी० भया । ६. दा२ हैं; बी० सब । ७. बी० कर्म तो; दा० नि० कृतम । ८. दा१ दा२ नि० जु नांव जस धरिया; दा३ दा४ ज नांव जिनि धरिया । ९. नि० सूनति, दा० सुनित्य (राज० प्रभाव)। १०. बी० मन मसले (उर्दू मूल ?) की सुधि नहिं जानै । ११. दा० नि० भूलै । १२. बी० में यह ४०वीं रमैनी की अंतिम पंक्ति है । १३. दा० नि० संजोग । १४. बी० रचिया यह उतपाति । १५. बी० सुन्निहि सुरति समाइया । १६. बी० में 'तव' नहीं है । १७. बी० कासों ।

[७]

दा० नि० अष्टपदी ५, बी० ३५—
१. दा० नि० आप न पावैं नांनां भेदा । २. बी० औ । ३. बी० ई बहु रूप करहिं अस धर्मा । ४. दा० नि० सब मैं रांम रहै ल्यौ सींचा । ५. बी० ई । ६. बी० करहु । ७. बी० गर्व ।

जासु नांम है[८] गरब प्रहारी । सो कस गरबहिं सकै सहारी[९] ॥
कुल अभिमांन बिचार तजि,[१०] खोजौ[११] पद निरबांन ।
अंकुर बीज नसाइगा,[१२] तब[१३] मिलै[१४] बिदेही थांन ॥७॥

[८]

खत्री[१] करै खत्रिया[२] धरमां । वाके बढ़ै सवाई करमां[४] ॥
जीवहिं मारि जीव प्रतिपारै[५] । देखत जनम आपनौं[६] हारै ॥[७]
खत्री[८] सो जु कुटुम सौं जूझै । पांचौ[९] मेटि एक कौं[१०] बूझै ॥
जो आवध[११] गुर ग्यांन लखावा । गहि करबाल धूप धरि धावा[१२] ॥
हेला[१३] करै निसानैं घाऊ ।[१४] जूझि परै तहां मनमथ राऊ ॥
मनमथ मरै न जीवई, जीवहिं[१५] मरन न होइ ।
सुन्नि सनेही रांम बिनु, गए[१६] अपनपौ खोइ ॥

[९]

अरु[१] भूले खट दरसन भाई । पाखंड भेख रहे[२] लपटाई ॥
जीव सीव का आहि नसौंनां । चारिउ बद्ध चतुरगुन मौंनां[३] ॥
जैनि जीव की सुधि नहिं जांनैं[४] । पाती तोरि देहुरै[५] आंनैं ॥
दौनां[६] मरुआ[७] चंपक[८] फूला । तामैं जीव कोटि सम तूला[९] ॥

---

८. दा० नि० जाकौ ठाकुर । ९. दा० नि० सो क्यूं सकई गरब सहारी । १०, बी० कुल मरजादा खोय कै । ११. बी० खोजिनि । १२. बी० नसाय कै । १३. बी० में 'तब' नहीं है। १४. बी० भए ।

[८]

दा० नि० अष्टपदी ६, बी० ८३—
१. बी० छत्री । २. बी० छत्रिया । ३. दा० नि० धरमो । ४. दा० नि० तिनकूं होइ सवाया करमो । ५. बी० प्रतिपालै । ६. बी० घालै । ७. बी० में यह ऊपर की चौथी पंक्ति के स्थान पर है । ८. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : पंच सुभाव जु मेटै काया । सब तजि करम भजै रांम राया ॥ ९. दा० नि० पंचू । १०. बी० कै । ११. बी० बिन अवधू । १२. बी० ताकर मन तहईं पलटाया (बीभ० तहईं लै धाया) । १३. बी० हालै । १४. दा० नि० झूझि । १५. दा० नि० जीवन । १६. बी० चले ।

[९]

दा० नि० अष्टपदी ७, बी० ३०—
१. बी० और । २. बी० रहा । ३. दा० नि० जैन बोध अरु साकत सैनां । चारबाक चतुरंग बिहूनां ॥ [१. 'सैनां' तथा 'बिहूनां' में तुकहीनता । २. इस छंद में आद्योपांत जैनियों का ही वर्णन है अतः बीच की केवल एक पंक्ति में बौद्ध, शाक्त तथा चार्वाक आदि का उल्लेख असंगत लगता है ।] ४. बी० जैनी धर्म का मर्म न जाने । ५. बी० देवघर । ६. दा० नि० दोना (उर्दू मूल) । ७. दा० नि० मवरा (उर्दू मूल) । ८. बी० चंपा कै । ९. दा० नि०

अरु[९] प्रिथिमीं के रोम उचारैं[१०] । देखत जीव कोटि संघारैं[११] ॥
मननथ करम[१२] करैं असरारा । कलपै बिंद खलै नहिं द्वारा[१३] ॥
ताकर हाल[१४] होइ अदभूता[१५] । खट[१६] दरसन महिं जैन बिगूता[१७] ॥

ग्यांन अमर पद बाहिरा, नियरे तैं है दूरि ।[१८]
जिनि जांनां[१९] तिनि[२०] निकटि है, रहा[२१] सकल घट पूरि[२२] ॥९॥

[१०]

आपुहि[१] करता भए कुलाला । बहु बिधि सिस्टि रची दर हाला[२] ॥
बिधिनां सभै की ह एक ठांऊं । अनेक जतन के बने बनांऊं ॥[३]
[४]जठर अगिनि दीन्हीं परजाली[५] । तामैं आप करै[६] प्रतिपाली ॥
भीतर तैं जब बाहरि आवा[७] । सिव सकती दुइ[८] नांउं धरावा ॥
भूलै भरमि परै मति कोई[९] । हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई ॥[१०]
घर का सुत जौ होइ अयांनां । ताके संगि न जाहि[११] सयांनां ।
सांची बात कहै जे वासौं । सो फिरि कहै दिवांनां तासौं[१२] ॥
गोय भिन्न है[१३] एकै दूधा । काकौं[१४] कहिए बांह्मन सूदा ॥

जिनि यहु चित्र बनाइया, सांचा सो सुतधार[१५] ।
कहै[१६] कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहि[१७] लेहिं बिचारि ॥

[११]

सुख के बिरखि[१] यहु[२] जगत उपाया । समुझि न परै बिखम[३] तेरी[४] माया ।

तामैं जीव बसैं कर तूला । १०. दा० नि० उपारै (उर्दू मूल) । ११. बी० देखत जनम आपनौ हारै (पुन० तुल० पिछली रमैनी की पंक्ति २-२) । १२. बी० बिंद (पुन० तुल० अगले चरण में : कलपै बिंद) । १३. दा० नि० घसै तिहि द्वारा । १४. दा० नि० हत्या । १५. बी० अधकूचा (केवल तुकार्थ), बीभ० अदबूदा । १६. बी० छव । १७. बी० बिगूचा । १८. दा० नि० नेड़ा ही तैं दूरि । १९. बी० जो जानै । २०. बी० तिहि । २१. दा१ रांम रह्या । २२. दा० नि० भरपूरि ।

[१०]

१. दा० नि० आपन । २. बी० बहु बिधि बासन गढ़ै कुम्हारा (पुन० तुल० 'कुलाला') । ३. दा० नि० बिधना कुंभ किए द्वै थांनां । प्रतिबिंब ता मांहि समांनां ॥ ४. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : बहुत जतन करि बानक बांनां (तुल० पंक्ति २-३) । सींज मिलाय जीव तहं ठांनां ॥ ५. बी० जठर अगिनि महं दीन्ह प्रजारी । ६. बी० भया । ७. बी० बहुत जतन से बाहर आया । ८. बी० तब सिव सकती । ९. बी० झूठ भर्म भूलै मति कोई । १०. बी० में यह ८वीं पंक्ति के पश्चात् आती है । ११. दा० नि० क्यूं जाइ । १२. बी० सांची बात कही मैं अपनी । भया दिवाना और का सपनी । १३. दा१ गोप (हिन्दी मूल) भिन्न है, बी० गुप्त प्रगट है । १४. दा० नि० कासूं । १५. बी० सुत्रधार । १६. बी० कहहिं । १७. दा० नि० चित्रवत ।

[११]

१. दा० नि० सूक बिरिख [आगे शाखा तथा पत्रों का उल्लेख होने के कारण वृक्ष का सूखा कहा जाना प्रसंग-विरुद्ध होगा । उल्टवाँसी का भी यहाँ कोई प्रसंग नहीं है ।] । २. बी० एक ।

साखा तीनि[5] पत्र[6] जुग चारी । फल दोइ[7] पाप पुंनि अधिकारी ॥
स्वाद अनेक कथे नहिं जांहीं[8] । किया चरित सो इनमैं नांहीं ॥[9]
नटवत साज साजिया साजी[10] । जो खेलै सो दीसै[11] बाजी ॥
मोहा बपुरा जुक्ति न देखा ।[12] सिव सकती बिरंचि नहिं पेखा[13]॥[14]
जिन[15] चीन्हां ते निरमल अंगा । अनचीन्हें[17] ते भए पतंगा ॥[18]

ते तौ आहि निनार निरंजनां, आदि अनादि न आंन ।
कहन सुनन कौं कीन्ह जग, आपै आप भुलांन ॥[19]

[१२]

काल[1] अहेरी सांझ सकारा । सावज ससा सकल संसारा ॥[2]

---

३. बी० विषय (नागरी मूल)। ४. बी० कछु । ५. बी० छव छत्री । ६. बी० पत्री । ७. बी० दुइ । ८. बी० स्वाद अनंत कछु बरनि न जाई । ९. बी० कै चरित्र सो ताहीं माहीं । १०. दा० नि० जिनि नटवै नटसारी साजी (अगले चरण में 'जो' सर्वनाम होने के कारण 'जिनि' भ्रमात्मक तथा व्याकरण-विरुद्ध) । ११. बी० देखे । १२. दा० नि० मों बपुरा थैं जो गति दीठी । १३. दा० नि० सिव बिरंचि नारद नहिं दीठी । १४. दा० नि० में इसके पश्चात् की अतिरिक्त पंक्तियाँ—

आदि अंति जो लीन भए हैं । सहजै जांनि संतोषि रहे हैं ।
सहजै रांम नांम ल्यौ लाई । रांम नांम कहि भगति दिढ़ाई ॥
रांम नांम जाका मन मांनां । तिनि तौ निज सरूप पहिचांनां ।
निज सरूप निरंजनां निराकार, अपरंपार अपार ।
रांम नांम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार ॥

१५. बी० जो । १६. बी० ताकौ । १७. दा० नि० जे अचीन्ह । १८. यह पंक्ति बीजक की चौथी रमैनी की ५वीं पंक्ति के रूप में आती है और दा० नि० में 'बारहपदी' के पाँचवें छंद की ५वीं पंक्ति के रूप में । दोनों की शेष पंक्तियाँ नितान्त भिन्न होने के कारण छोड़ दी गयी हैं, केवल यही एक पंक्ति जो दोनों में मिलती है, यहाँ प्रसंगानुकूल होने के कारण ग्रहण की गयी है । दा० नि० में यह साखी ऊपर की चौथी पंक्ति के पूर्व आती है । बी० में इस साखी का पाठ है—
परदे परदे चलि गए समुझि परी नहीं बानि । जो जांनहिं सो बांचिहैं होत सकल की हानि ॥
किंतु दा० नि० की साखी का पाठ श्रेष्ठतर तथा प्राचीनतर ज्ञात होता है, अतः मूल रूप में वही स्वीकृत हुआ है ।

[१२]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी ५, बी० ११—
१, दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

जिनि यह सुपिनां फुर करि जांनां । और सबै दुखियादि न आंनां ।
ग्यांन हीन चेतै नहीं सूता । मैं जाग्या बिखहर भै भूता ॥
पारधी बांन रहै सर (पुन०) सांधै । बिखम बांन (पुन०) मारै बिख बांधै ॥

[दा० नि० में प्रथम पंक्ति की पुन०, तुल० बड़ी अष्टपदी ७-४ यथा: सुख करि मूल भगति जो जांनैं । और सबै दुखयादि न आंनैं ॥] २. तुल० बी० रमैनी १९-४ यथा : संसय सावज सब संसारा । काल अहेरी सांझ सकारा ॥ तथा बी० रमैनी ४३. २ यथा : आवत जात न लागै बारा । काल अहेरी सांझ सकारा ॥ ३. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

दावानल अति जरै बिकारा । माया मोह रोकि लै जारा ॥
पवन सहाइ लोग अति भइया । जग चरचा चहुं दिसि फिरि गइया ॥

[3]मृत्यु काल[4] किनहूं नहिं देखा। दुख कौं सुख करि सबही लेखा ॥[5]
सुख कर मूल न चीन्हसि अभागी। चीन्हें बिनां रहै दुख लागी ॥[6]
नीम कीट जस[7] नीम पियारा। यौं बिख कौं अंम्रित कहै गंवारा ॥[8]
बिख के खाएं का गुन होई। जा बेदनि जांनैं परि सोई ॥[9]
बिख अंम्रित एकै करि सांनां।[10] जिनि चीन्हां तिनहीं सुख मांनां ॥[11]
भेख कहा जे बुद्धि बिसूधा[12]। बिनु परचै जग मूढ़ न बूझा[13] ॥[14]

सुमिरन करहू रांम का, काल गहे कर केस।
नां जांनौं कब मारिहै, कै घरि कै परदेस ॥१२॥[15]

[१३]

[1]चलत चलत अति चरन पिरांनां[2]। हारि परे तहां अति रे सयांनां[3] ॥
गन गंध्रप मुनि अंत न पावा। हरि अलोप जग धंधे लावा[4] ॥[5]

जम के चरचहुं दिसि फिरि लागे। हस पखेरुआ अब कहां जाइबे ॥
केस गहे कर निस दिन रहई (तुल० ऊपर की साखी की प्रथम पंक्ति)। जब जरि अैंचैं तब घरि चहई ॥
कठिन पास कछु चलै न उपाई। जम दुवार सीझै सब जाई ॥
सोई आस सुनि रांम न गावै। मृग त्रिस्नां झूठी दिन धावै ॥

४. दा० नि० भिरत काल (उर्दू मूल)। ५-६ बी० में यह दोनो पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर—

आंधरि गुष्टि सिस्टि भई बौरी। तीनि लोक महिं लागि ठगौरी।
ब्रह्मा ठगो नाग कहं जारी। देवतन सहित ठगो त्रिपुरारी ॥
राज ठगौरी बिस्नुहिं परी। चौदह भुवन केर चौधिरी ॥

७. दा० नि० रस। ८. दा० नि० संसारा। ९. बी० बिख के संग कौन गुन होई। किंचित लाभ मूल गौ खोई ॥ पुन० तुल० बी० र० ८४-२ : माया मोह बंधे सब लोई। किंचित लाभ मूल गौ खोई ॥ १०. बी० गौ एकै सानी। ११. बी० जिन जाना तिन बिख कै मानी। १२. बी० कहा भए नर सूध बेसूधा। १३. दा० नि० बिन परचै जग बूड़नि बूड़ा। १४. बी० में इसके बाद अतिरिक्त : मति के हीन कवन गुन कहई। लालच लागै आसा रहई ॥ १५. बी० में इस रमैनी की समापक साखी का पाठ है : मूवा है मरि जाहुगे, मुए कि बाजी ढोल। सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौ बोल ॥ यह दा० नि० में नहीं मिलती, किन्तु ऊपर की साखी, जो बीजक की १९ वीं रमैनी से ली गयी है, प्रसंग के अधिक निकट है और साथ ही दा० नि० में भी मिल जाती है। तुल० दा० साखी ४६-११ तथा १२-१३ : कबीर कहा गरबियौ काल गहे कर केस। नां जांनैं कहां मारिसी कै घर कै परदेस ॥

[१३]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी २, बी० १६—

१. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त : दान पुन्य हम दहूं निरासा। कब लग रहूं नटारंभ काछा ॥ २. दा० नि० फिरत फिरत सब चरन तुराने। ३. दा० नि० हरि चरित अगम कहे को जांनैं, बी० हारि परे तहां अति रिसियाना (उर्दू मूल)। ४. दा० नि० रह्यौ अलख जग धंधै लावा। ५. दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त—

इहि बाजी सिव बिरंचि भुलांनां। औ बपुरा को किंचित जांनां ॥

गहनीं[६] बिंदु[७] कछू[८] नहिं सूझै। आप गोप भयौ आगम बूझै[९] ॥
भूलि परा जिउ अधिक डेराई। रजनीं अंध कूप होइ आई।
माया मोह उनवैं[१०] भरपूरी। दादुर दामिनि पवनां पूरी।
तरपै बरसै अखंड धारा[११]। रैंनि भयावनि कछु न अधारा[१२] ॥[१३]

सबै लोग जहंडाइया, अंधा सबै भुलांन।
कहा कोई मांनैं नहीं, सब एकै मांहिं समांन ॥१३॥[१४]

[१४]

अलख निरंजन लखै न कोई। जेहि बंधे बंधा सब लोई ॥[१]
जेहि झूठे बंधायौ आंनां[२]। झूठी बात सांच कै जांनां[३] ॥
धंध बंध कीन्हें बहुतेरा[४]। करम बिबरजित रहै न नेरा[५] ॥
खट आस्रम खट दरसन कीन्हां। खट रस बांटि करम संगि दीन्हां।[६]
चार बेद छ सास्त्र बखांनैं[७]। बिद्या अनंत कथै को जांनैं ॥[८]
तप तीरथ कीन्हें व्रत पूजा। धरम नेम दांन पुनि दूजा ॥[९]
और अगम कीन्हें बेवहारा[१०]। नहिं गमि सूझै[११] वार न पारा ॥[१२]

माया मोह धन जोबनां, इनि बंधे सब लोइ।
झूठै झूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ ॥१४॥[१३]

त्राहि त्राहि इमि कीन्ह पुकारा। राखि राखि सांई इहि बारा ॥
कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई। फल कर कीट जन्म बहुताई ॥
ईश्वर जोग खरा जब लीन्हां। टरयौ ध्यांन तप खंडन कीन्हां ॥
सिध साधिक उनतें कहहु कोई। मन चित अस्थिर कहु कैसे होई ॥
लीला अगम कथै को पारा। बसहु समीप कि रहहु निनारा।

६. दा० नि० गहन (उर्दू मूल)। ७. बी० बंधन। ८. बी० बान। ९. बी० थाकि परे (पुन० तुल० ऊपर की प्रथम पंक्ति का दूसरा चरण) तब किछुवो न बूझा। १०. बी० उहां। ११. बी० बरसै तपै अखंडित धारा। १२. दा० नि० रैनि भांमिनीं (उर्दू मूल)। १३. दा० नि० में इस रमैनी की अंतिम चार पंक्तियाँ पहले हैं और प्रथम दोनों पंक्तियाँ बाद में। बीच में सात पंक्तियाँ और आती हैं जो प्रस्तुत ग्रंथ में सोलहवीं रमैनी के रूप में स्वीकृत हुई हैं। १४. दा० नि० में यह साखी नहीं मिलती।

[१४]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी २, बी० र० २२—

१. तुल० दा० नि० बड़ी अष्टपदी ३-१ : अलख निरंजन लखै न कोई। निरभै निराकार है सोई ॥ २. दा० नि० झूठनि झूठ सांच करि जांनां, बी० (बाराबंकी) जेहि झूठे सो बधो अयाना (स्वीकृत पाठ बीभ० का है)। ३. दा० नि० झूठनि में सब सांच लुकांनां। ४. बी० धंधा बंधा कीन्ह बेवहारा (पुन०)। ५. बी० बसै निनारा। ६. दा१, दा२ खटरस खाटि कांम रस बीन्हां, बी० षट रस वस्तु खोट सब चीन्हा, बीभ० षटरस बास घटै बस्तू चीन्हा। ७. बी० चारि वृक्ष छव साख (बीभ० सखा) बखानै। ८. बी० विद्या अगनित गनै न जानै। ९. बी० जप तीरथ कीजै व्रत पूजा। दान पुन्नि कीजै बहु दूजा। १०. बी० औरो आगम करै बिचारा। ११. बी० ते [illegible] सूझै। १२. बी० में यह पंक्ति ऊपर की पंक्ति के पूर्व आती है। दा० नि० में इसके बाद अतिरिक्त : लीला करि करि भेख फिरावा। ओट बहुत कछु कहत न आवा ॥ १३. बी० में इस साखी का

[१५]

अलपै सुख दुख आहि अनंता[१] । मन मैंगर भुलांन मैमंता[२] ।।१।।
दीपक[३] जोति रहै[४] इक संगा । नैंन नेह जस[५] जरै पतंगा[६] ।।२।।
सुख बिस्रांम किनहूं नहिं पावा[७] । परिहरि सांच झूठ दिन[८] धावा ।।३।।
[९]लालच लागे जनम सिरावा[१०] । अंति काल दिन आइ तुरावा[११] ।।४।।
भरम का बांधा ई जग, एहि बिधि आवै जाइ ।
मानुख जनम नर पाइ कै, काहे कौ जंहडाइ ।।१५।।[१२]

[१६]

तेहि[१] बियोग तैं[२] भए[३]अनाथा । परे निकुंज न पावैं पंथा[४] ।।१।।
बेदनि आहि कहूं को मांनैं । जांनि बूझि मैं भया अयांनैं[५] ।।२।।
नट बहु रूप खेलै जो जांनैं[६] । कला केर गुन ठाकुर मांनैं[७] ।।३।।
ओ खेलै[८] सबहिन[९] घट मांहीं । दूसर के लेखै[१०] कछु नांहीं[११] ।।४।।
भले रे पोच औसर जब आवा[१२] । करि सनमांन पूरि जन पावा[१३] ।।५।।
जेहि कर सर लागै हिए, सोई जांनैं पीर ।
लागै सो भाजै नहीं, सुखसिंधु निहारि कबीर ।।१६।।[१४]

पाठ है : मंदलि तो है नेह का मति कोई पैठे धाय । जो कोई पैठे धाइ कै बिन सिर सेती जाय ॥ किन्तु यह साखी उक्त प्रसंग में उपयुक्त नहीं जान पड़ती. अतः इसके स्थान पर दा० नि० से एक अन्य साखी ली गयी है, जो उनमें इस रमैनी के आरंभ में ही आती है और प्रसंगानुकूल भी है।

[१५]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी ५, बी० २३—
१. बी० दुख आदि औ अंता। २. बी० मन भुलान मैगर मैमंता। ३. बी० अमल। ४. बी० डाहे। ५. दा१ दा२ मानूं, दा३ मन। ६. बी० में यह अगली पंक्ति के पश्चात् है। ७. बी० सुख बिसराय मुक्ति कहं पावै (?)। ८. बी० निज। ९. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त : करहु विचार जे सब दुख जाई। परिहरि झूठा केरि सगाई (तुल० ऊपर की पंक्ति का दूसरा चरण)। १०. बी० सिराई। ११. बी० जरा मरन नियरायल आई। १२. तुल० दा० नि० सतपदी ३ : करम का बांधा जीयरा अह निसि आवै जाइ। मनसा देही पाइ करि हरि बिसरै तौ फिरि पीछैं पछताइ ॥

[१६]

दा० नि० बड़ी अष्टपदी २, बी० ६८—
१. दा० नि० तिहि। २. दा० नि० तजि। ३. बी० भया। ४. बी० परि निकुंज बन पाव न पंथा। ५. बी० बेदौ नकल कहै जो जानै। जो समुझै सो भलो न मानै ॥ ६. बी० नट वट बंद खेलै जो जानै। ७. बी० तेहि का गुन सो ठाकुर मानै। ८. बी० उहै जो खेलै। ९. बी० सब। १०. बी० लेखा। ११. दा० नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : जाके गुन सोई पै जांनैं। और को जांनैं पार अयांनैं ॥ १२. बी० भलो पोच जो औसर आवै। १३. बी० कैसहु कै जन पूरा पावै। १४. यह साखी दा० नि० में नहीं है।

[१७]

जियरा आपन दुखहिं संभारु[१]। जो[२] दुख व्यापि रहा संसारू[३] ॥१॥
माया मोह बंधे सब लोई। किंचित[५] लाभ मूल[६] दियौ खोई ॥२॥
मैं मेरी करि बहुत बिगूता[७]। जननीं उदर जनम का सूता[८] ॥३॥
बहुतैं रूप भेख बहु कीन्हां[९]। जुरा मरन क्रोध तन खीनां[१०] ॥४॥
उपजि बिनसि फिरि जोइनि आवै। सुख कर लेस न सपनेहु पावै[११] ॥५॥
दुख संताप कष्ट[१२] बहु पावै। सो न मिला जो जरत बुझावै[१३] ॥६॥
जिहि हित जीव राखिहै भाई। सो अनहित होइ जाइ बिलाई[१४] ॥७॥
मोर तोर महं जर जग सारा[१५]। ध्रिग स्वारथ झूठा हंकारा[१६] ॥८॥
झूठे मोह रहा जग लागी[१७]। इनतैं भागि बहुरि पुनि आगी[१८] ॥९॥
[१९]आपु आपु चेतै नहीं, कहौं तो रुसवां होइ।
कहै कबीर जो सपनैं जागै, निरअथि अस्थि न होइ ॥१०॥

---

[१७]

१. दा० नि० रे रे जिय अपना दुख न संभारा। २. दा० नि० जिहि। ३. दा० नि० व्याप्या सब संसारा ४. दा० नि० भूले। ५. बी० अलपै। ६. दा० नि० मानिक। ७. बी० मोर तोर में सबै विगूता। ८. बी० जननी वोद्र गरभ (पुन०) महं सूता। ९. बी० बहुतक खेल खेलै बहु बूता, बीभ० ई बहु खेलि खेलै बहु रूपा। १०. बी० जन भौंरा अस गए बहूता। ११. दा० नि० उपजै बिनसै जोनि फिराई। सुख कर मूल न पावै चाही ॥ १२. दा० नि० कलेस। १३. बी० (बारावंकी) में यह दोनों पंक्तियाँ ऊपर की तीसरी पंक्ति के पूर्व आती हैं। १४. बी० जो हित कै राखै सब सोई। सब समान बंचा नहिं कोई। १५. दा० नि० करि जरे अपारा। १६. दा० नि० मृग त्रिस्नां झूठी संसारा। १७. दा० नि० माया मोह झूठ रह्यौ लागी। १८. दा० नि० का भयौ इहां का ह्वैहै आगी (उर्दू मूल)। १९. दा० नि० में साखी के पूर्व की अतिरिक्त पंक्तियाँ—

कछु कछु चेति देखि जीव अबहीं। मनिखा जनम न पावै कबहीं ॥
सार आहि जे संग पियारा। जब चेतै तबहीं उजियारा ॥
त्रिजुग जोनि जो आहि अचेता। मनिखा जनम भयौ चित चेता ॥
आत्मा मुरुछि मुरुछि जरि जाई (?)। पिछले दुख कहतां न सिराई ॥
सोई मास जे जांनै हंसा। तो अजहूं न जीव करै संतोसा ॥
भौसागर अति वार न पारा। ता तिरिबे का करहु बिचारा ॥
[दा० नि० में इस पंक्ति की पुनरावृत्ति, तुल० सतपदी ७-४ (पाठ वहां)]
जा जल की आदि अंति नहिं जानिए। ताको डर काहे नहिं मानिए ॥
को बोहिथ को खेवट आही। जिहि तिरिए सो लीजै चाही ॥
समझि विचारि जीव जब देखा। यहु संसार सुपन करि लेखा ॥
भई बुद्धि कछू ग्यांन निहारा। आप आप ही किया बिचारा ॥
आपन मैं जे रह्यौ समाई। नेड़ै दूरि चल्यौ नहिं जाई ॥
ताके चीन्हें परचौ पावा। भई समाधि तासूं मन लावा ॥

दा० नि० में इस साखी का पाठ है : भाव भगति हित बोहिथा सतगुर खेवनहार। अलप उदिक तब जानिए जब गोपद खुर बिस्तार ॥ [तुल० दा० नि० सतपदी साखी ७ : भौसागर अथाह जल तामैं बोहिथ रांम अधार। कहै कबीर हम हरि सरन तब गोपद खुर बिस्तार ॥]।

[१८]

ब्रजहुं तैं त्रिन खिन माँहि होई । त्रिन तैं बज्र करै फुनि सोई ॥१॥[१]
नीझरु नीरु[२] जांनि परिहरिया । करम के बांधे[३] लालच करिया ॥२॥[४]
भरम करम दोउ मति परिहरिया[५] । झूठै नांउं[६] सांच लै धरिया ॥३॥
रजनीं गत भए रबि परकासा ।[७] भरम करम[८] दुहुं[९] केर बिनासा ॥४॥
रबि प्रकास तारे गुन खींनां[१०] । चर बीहर दोनौं महं लीनां[११] ॥५॥
बिख के दाधे[१२] बिख नाँहि भावै[१३] । जरत जरत सुख सागर पावै ॥६॥[१४]
जरत जरत जल पाइया, सुखसागर का मूल ।
गुर परसादि कबीर कहि, भागी संसै सूल ॥१८॥[१५]

[१९]

रांम[१] नांम निज पाया सारा[२] । अबिरथा[३] झूठ सकल संसारा ॥१॥
हरि उतंग मैं[४] जाति पतंगा । जंबुक केहरि कै ज्यूं संगा[५] ॥२॥
किंचित है सुपिनैं निधि पाई । हिय न समाइ कहं धरौं लुकाई ॥३॥[६]
हिय न समाइ छोरि[७] नाँहि पारा । लागे लोभ न और हंकारा[८] ॥४॥
सुमिरत हूं अपनैं उनमांनां[९] । किंचित जोग रांम मैं जांनां[१०] ॥५॥

---

[१८]

दा० नि० दुपदी २, बी० २९—
१. तुल० दा० नि० दुपदी २-११ यथा : बज्र तैं तिण खिण भीतर होई ॥ तिण तैं कुलिस करै पुनि सोई ॥ २. बी० (बाराबंकी) नरू, बीभ० नीरु । ३. बी० बांधल । ४. दा० नि० में इसके पश्चात् अतिरिक्त : कहै कबीर कछु आहि न वाही । भरम करम दोऊ मति गंवाई ॥ (पुन० तुल० आगे : भरम करम दोऊ मति परिहरिया ॥)। ५. बी० करम धरम मति बुधि (पुन०) परिहरिया । ६. बी० झूठा नाम । ७. बी० रजगति त्रिविध कीन्ह परगासा । ८. बी० करम धरम । ९. बी० बुधि, दा० नि० धूं (उर्दू मूल)। १०. बी० रबि के उदै तारा भौ छीना। ११. दा० नि० आचार व्यौहार सब भए मलीनां । १२. बी० खाए । १३. बी० जावै । १४. बी० गारुड़ि सो जो मरत जियावै । १५. बी० में इस साखी का पाठ है : अलक जो लागी पलक में पलकहिं में डसि जाय । विखहर मंत्र न मानै तौ गारुड़ि काह कराय ॥ [किन्तु दा० नि० का पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक लगता है ।]।

[१९]

दा० नि० दुपदी २, बी० ६५—
१. बी० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

अपने गुन को अवगुन कहहू । इहै अभाग जो तुम न बिचारहु ॥
तू जियरा बहुतै दुख पावा । जल विनु मीन कौन सचु पावा ॥
चात्रिग जलहल आसै पासा । स्वांग धरे भव सागर आसा ॥
चात्रिग जलहल भरे जु पासा । मेघ न बरसै चलै उदासा ॥

२. बी० अहै निज । ३. बी० औरो । ४. बी० तुम । ५. बी० जमघर (उर्दू मूल) किएहु जीव को संगा । ६. दा० नि० नाँहि सोभा को धरौं लुकाई । ७. दा० नि० जानिए । ८. बी० झूठा लोभ ते कुछ न बिचारा । ९. बी० सुंभ्रित कीन्ह आपु नाँहि माना । १०. बी० तरु तर छल

[11]जिहि[12] दुरमति डोलै संसारा । परे असूझि वार नहिं पारा[13] ॥६॥

अंध भए सब डोलहीं, कोइ न करै बिचार ।
कहा हमार मानैं नहीं, किमि छूटै भ्रमजार ॥१९॥[14]

[२०]

अब गहि[1] रांम नांम अबिनासी । हरि तजि[2] जनि[3] कतहूं कै[4] जासी ॥१॥
जहां जाहि तहां होहि पतंगा[5] । अब जिनि जरसि[6] समुझि बिख संगा॥२॥
चोखा रांम नांम मनि लीन्हां । भ्रिंगी कीट भिन्न नहिं कीन्हां ॥३॥[7]
भौसागर अति वार न पारा । तिहि तिरिबे का करहु बिचारा ॥४॥[8]
मनि भावै अति लहरि बिकारा[9] । नहिं गमि सूझै[10] वार न पारा ॥५॥

भौ सागर अथाह जल[11], तामैं[12] बोहिथ रांम अधार ।
कहै कबीर हरि सरन गहु, तब गोबछ खुर बिस्तार[13] ॥२०॥

चौंतीसी रमैनी[1]

बावन अक्खिर लोक त्रै, सभ कछु इनहीं मांहि ।
ए सभ खिरि खिरि जाहिंगे, सो अक्खिर इन महिं नांहि ॥१॥
तुरुक तरीकत जानिए, हिंदू बेद पुरांन ।
मन समुझावन कारनैं, कछु एक पढ़िए ग्यांन ॥२॥

× × ×

छागर होइ जाना । ११. दा० नि० में इसके पूर्व अतिरिक्त—

मुखां साध का जानिए असाधा । क्यंचित जोग रांम मैं लाधा ॥
कुबिज होइ अंम्रित फल बंछा । पहुंचा तब मन पूगी इंछा ॥
नियर थैं दूरि दूरि थैं नियरा । रांम चरित नां जानिए जियरा ॥
सीत थैं अगिनि सीत पुनि होई । रबि थैं ससि ससि थैं रबि सोई ॥
सीत थैं अगिनि (पुन०) होइ परजरई । थल थैं निधि निधि थैं थल करई ॥
गिरिवर छार छार गिरि होई । अबिगति गति जांनै नहिं कोई ॥

१२. बी० जीव । १३. बी० ते नहिं सूझै वार न पारा । १४. दा० नि० में यह साखी नहीं है ।

[२०]

दा० नि० सतपदी ७, बी० र० २०—

१. बी० कहु (उर्दू मूल) । २. बी० छोड़ि (पाठांतर : तजि) । ३. बी० जियरा । ४. बी० कतहुं न । ५. दा० जहां जाइ तहां तहां पतंगा । ६. बी० जरहु । ७. बी० राम नाम लौ लाय सु लीन्हां । भ्रिंगी कीट समुझि मन दीन्हां ॥ ८. बी० भव अस गरुवा दुख कै भारा । करु जिव जतन जे देखु बिचारी ॥ ९. बी० मन की बात है लहरि बिकारा । १०. बी० ते नहिं सूझै । ११. बी० इच्छा के भवसागर । १२. बी० में 'तामैं' शब्द नहीं है । १३. दा० नि० कहै कबीर हंम हरि सरन, तब गोपद खुर (पुन०) बिस्तार ।

चौंतीसी रमैनी—१. यह रमैनी दा०३ दा४ नि० गु० तथा बी० में मिलती है । दा० नि० में इसका

[2]जहां बोल तहं अक्खिर आवा ।। जहं अबोल तहां मन न रहावा ।।[3]
बोल अबोल मंझि है सोई । जस ओहु है[4] तस लखै न कोई ।।३।।[3]

अल्लह लहौ त क्या कहौ, कहौ त को उपकार ।
बटक बीज मांहि[5] रमि रहा, जाका तीनि लोक बिस्तार ।।४।।[6]

ओं ओंकार आदि मैं जांनां । लिखि अरु[7] मेटै ताहि न मांनां ।।
ओं ओंकार लखै जौ कोई[8] । सोई लखि[9] मेटनां न होई[10] ।।५।।
कक्का कंवल किरन मांहि[5] पावा[11] । ससि बिगास[12] संपुट नहिं आवा ।
अरु जे तहां कुसुम रस पावा[13] । अकह[14] कहा कहि[15] का समुझावा[16] ।।६।।
खख्खा इहै खोरि[17] मन आवा[18] । खसमांहि[19] छांड़ि दहूं दिसि[20] धावा ।
खसमांहि जांनि[21] खिमां करि रहै । तौ होइ न खींन[22] अखै पद लहै ।।७।।
गग्गा गुर के बचन पछांनां[23] । दोसर[24] बात न धरई[25] कांनां ।।
रहै[26] बिहंगम कतहु[27] न जाई । अगह गहै गहि[28] गगन रहाई ।।८।।

शीर्षक 'ग्रन्थ बावनी', गु० में 'बावन अखरी' तथा बी० में 'ज्ञान चौंतीसा' मिलता है। बीभ० में इसका नाम 'चौंतीसी' दिया हुआ है। दा० नि० गु० में 'ग्रन्थ बावनी' या 'बावन अखरी' शीर्षक संस्कृत के बावन वर्णों की परंपरा को ध्यान में रखकर दिये हुए ज्ञात होते हैं, किन्तु प्रस्तुत रचना में हिन्दी वर्णमाला के चौंतीस अक्षरों ('क' से लेकर 'म' तक के पच्चीस अक्षर, 'य' से लेकर 'ह' तक के आठ और एक ओंकार = ३४ अक्षर) का ही उपयोग किया गया है, बावन का नहीं। अतः बी० तथा बीभ० के शीर्षक ही उपयुक्त ज्ञात होते हैं। बीभ० में इसे 'चौंतीसी' कहा गया है और रमैनी के समान छंद मिलने के कारण प्रस्तुत सम्पादन में इसके लिए 'चौंतीसी रमैनी' शीर्षक निश्चित किया गया है। २. बी० में इसके पूर्व की चार पंक्तियाँ नहीं मिलतीं, किन्तु दा० नि० गु० में मिलने के कारण स्वीकृत हुई हैं। कठिनाई केवल 'बावन' शब्द के सम्बन्ध में है। गु० में दूसरी साखी ऊपर की छठी पंक्ति के पश्चात मिलती है। ३. तुल० बी० सा० २०४ : जहाँ बोल तहं अच्छर आया। जहं अच्छर तहं मनहिं दृढ़ाया ॥ बोल अबोल एक है सोई। जिनि यह लखा सो बिरला होई ॥ [बी० में यह पंक्तियाँ साखियों के बीच मिलती हैं, किन्तु छंद में पर्याप्त भिन्नता है। पहले संभवतः यह किसी प्रति के हाशिये में लिखी रही होगी जिसे कालांतर में किसी प्रतिलिपिकार ने भूल से मूल भाग में सम्मिलित कर लिया होगा।]। ४. दा० नि० जे कुछि है। ५. दा० नि० मैं। ६. दा० नि० में यह द्विपदी स्थानांतरित (दे० आगे ३४वीं द्विपदी की पाद-टिप्पणी), गु० में इसके बाद अतिरिक्त : अलह लहंता भेद छै कछु कछु पाइओ भेद। उलट भेद मनु बेधिओ पाइओ अभंग अछेद ॥ ७. दा० नि० लिखि कै। ८. दा० नि० ओं ओंकार करै जस कोई, बी० ओ ओंकार कहै सब कोई। ९. दा० नि० तो ताही लिखि (उर्दू मूल)। १०. बी० जिनि यह लखा सो बिरला होई। ११. गु० किरणि कमल महिं पावा। १२. नि० ससि प्रकास, बी० ससि बिगसित। १३. बी० तहां कुसुंभ रंग जो पावै। १४. दा० नि० तौ अकह। १५. नि० कहै। १६. बी० औगह गहि के गगन रहावै (पुन० दे० आगे ७-२ : अगह गहै गहि गगन रहाई)। १७. गु० खोड़ि। १८. बी० खखा चाहै खोरि मनावै। १९. दा० नि० खोरिहि, गु० खोड़े। २०. दा० नि० चहूं दिसि। २१. बी० छांड़ि। २२. दा० नि० निखेव, गु० निखिअउ (उर्दू मूल)। २३. बी० वचनहिं माना। २४. गु० दूजा। २५. दा० नि० धरिए, बी० करै नहिं। २६. दा० नि० सोई, बी० तहां। २७. दा० कबहूं (उर्दू मूल)। २८. दा० नि० अगम गहै गहि, बी० औगह गहि कै।

घघ्घा घटि घटि निमसै[१] सोई। घट फूटे घट कबहुं[२] न होई।।[३]
ता घट मांहि घाट जौ पावा। तौ सुघट[४] छांड़ि औघट कत धावा[५]।।९।।
नन्ना[६] निग्रह[७] सौं नेह करि, निरुवारे संदेह।[९]
नांहीं देखि न भाजिए, परम[८] सयानप एह ।। १० ।।[१०]
चच्चा रचित[११] चित्र है[१२] भारी। तजि चित्रै[१३] चेतहु चितकारी।
चित्र बिचित्र इहै[१४] औडेरा[१५]। तजि बिचित्र[१६] चित राखि चितेरा[१७] ।।११।।
छछ्छा आहि[१८] छत्रपति पासा। छकि किन रहौ छांड़ि कै[१९] आसा।
रे मन तोंहि[२०] छिन छिन समुझावा[२१]। ताहि[२२] छांड़ि कत आप बंधावा।।१२।।
जज्जा यहु तन जियत जरावै[२३]। जोबन जारि जुगति सो पावै[२४] ।।[२८]
जुगति जांनि जौ जरि बरि[२५] रहै[२६]। तब जाइ जोति उजारा लहै[२७] ।।१३।।[२९]
झझ्झा उरझि पुरझि नहिं[३०] जांनां। रह्यौ झझकि नांहीं परवांनां[३१] ।।
कत झखि झखि औरन समुझावा। झगरु[३२] किएं झगरा ही[३३] पावा[३४] ।।१४।।
नन्ना[३५] निकटि जु घट रहै, दूरि कहां तजि जाइ।[३७]
जा कारण जग ढूंढ़िया, नेरै[३६] पाया ताहि ।।१५।।[३८]
टट्टा बिकट बाट[३९] घट[४०] मांहीं। खोलि कपाट महल जब[४१] जाहीं।
रहै लपटि घट परचौ पावा[४२]। देखि अटल टलि कतहुं न जावा[४३] ।।१६।।

---

१. बी० बिनसै (उर्दू मूल)। २. गु० कबहि। ३. बी० घघा घट बिनसै घट होई। घटही महं घट राखु समोई। ४. गु० सो घट। ५. बी० सो घट घटे घटहिं फिरि आवै। घटही महं फिरि घटहिं समावै। ६. गु० ङङा। ७. दा० नि० निरखि। ८. दा० प्रेम। ९, १०. तुल० बी० (आगे 'ञ' के लिए स्थानांतरित) नन्ना निग्रह से करु नेहू। करु निरवार छांड़ संदेहू ॥ नहीं देखि नहि भाजै केहू। जानहु परम सयानप एहू ॥ ११. दा० नि० चरित, बी० रचो। १२. बी० बड़। १३. दा० नि० तजि बिचित्र, बी० चित्र छोड़ि। १४. नि० गु० अवझेरा (राज० हिन्दी मूल—'ड' तथा 'झ' में समानता के कारण)। १५. बी० जिन यह चित्र बिचित्र उखेला। १६. गु० चित्रै (पुन० ऊपर की पंक्ति में)। १७. बी० तैं चेतु चितेला। १८. दा० नि० इहै। १९. बी० मेटि सभ, गु० छांड़ि किन (उर्दू मूल)। २०. दा० नि० तूं, गु० मैं तउ। २१. बी० मैं तोहीं छिन छिन समुझावा। २२. बी० खसम। २३. बी० जियतहिं जारो। २४. बी० जुक्ति जो पारो। २५. दा० नि० अस जरि परजरि जरि बरि। २६. बी० जौ कछु जानि जानि परिजरै। २७. बी० घटही जोति उजियारी करै। गु० अस जरि परजरि जरि (पुन०) जब रहै। २८-२९ दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ आगे 'य' के लिए स्थानांतरित। ३०. बी० कत। ३१. दा० नि० रहि मुखि झखि झखि परवांनां, बी० हींडत ढूंढ़त जाइ पराना। ३२. दा० नि० झगरा। ३३. दा० नि० झगरिबौ। ३४. बी० कोटि सुमेर ढूंढ़ि फिरि आवै, जो गढ़ गढ़ा गढ़हिं सो पावै ॥ ३५. गु० ञञा। ३६. दा० नि० नेड़ै, गु० नेरउ। ३७-३८. बी० में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं, इनके स्थान पर वह द्विपदी आयी है जो दा० नि० गु० में ऊपर 'ङ' के लिए आ चुकी है। इसके बाद बी० में अतिरिक्त : नहीं देखि नहिं आप भजाऊ। जहां नहीं तहां तन मन लाऊ ॥ जहां नहीं तहां सभ कछु जानी। जहां नहीं तहां ले पहचानी ॥ (तुल० पद १२३-३, ४; पृ० ७३) ३९. गु० नि० घाट। ४०. बी० मन। ४१. बी० मों, बीभ० तें, गु० किन। ४२. बी० रही लटापटि जुटि तेहि माहीं। ४३. गु०

ठठ्ठा दूरि ठौर ठग नियरा[१]। नीठि नीठि मन कीयौ धीरा[२]।
जिहि ठग ठग्यौ[३] सकल जग खावा। सो ठग ठग्यौ ठौर मन आवा ॥१७॥[४]
डड्डा डर उपजै डर जाई[५]। डरही महं डर रहा समाई[६]।
जौ डर डरै तौ फिरि डर लागै[७]। निडर होइ तौ उरि डर भागै[८] ॥१८॥
ढढ्ढा ढिग ढूंढ़हि कत आंनां[९]। ढूंढ़त[१०] ही ढहि गए परांनां[११] ॥
चढ़ि[१२] सुमेर ढूंढ़ि जब[१३] आवा। जिहि गढ़ गढ़ा सु गढ़ महिं पावा[१४] ॥१९॥
णांणां रणि[१५] रूतौ नर नांहीं करै। नां फुनि नवै न सब संचरै ॥[१६]
धन्नि जनम ताही कौ गनैं। मारै[१७] एक तजि जाहि घनैं ॥२०॥[१८]
तत्ता अतिर तिरचौ[१९] नहिं जाई। तन त्रिभुवन[२०] महिं रहा समाई[२१]।
जे त्रिभुवन मन[२२] मांहिं[२३] समावै। तौ[२४] तत्तहिं तत्त मिलै सचु पावै[२५]॥२१॥
थथ्था अथाह[२६] थाह नहिं पावा[२७]। ओहु[२८] अथाह यहु[२९] थिर न रहावा[३०] ॥
थोरै थलि थांनक[३१] आरंभै। तौ बिनहीं थांभह[३२] मंदिर थंभै ॥२२॥[३३]
दद्दा देखि जु[३४] बिनसनहारा। जस अदेख[३५] तस राखि[३६] बिचारा ॥
दसवैं द्वारि जब कूंची दीजै[३७]। तब दयाल कौ दरसन कीजै[३८] ॥२३॥
धध्धा अरधै उरध नबेरा। अरधैं उरधैं मंझि बसेरा ॥[३९]
अरधैं छांड़ि[४०] उरध जौ आवा[४१]। तौ अरधहिं उरध मिला सुख पावा[४२] ॥२४॥

में दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित। १. दा० नि० गु० नीरा। २. बी० निति कै निठुर कीन्ह मन धीरे। ३. दा० ठगि, नि० ठगि जु, बी० ठगे। ४. बी० जे ठग ठगे सब लोग सयाना। सो ठग चीन्हि ठौर पहिचाना। ५. बी० डर होई, नि० डड्डा डरऊं जे डर जाइ। ६. बी० राखु समोई। ७. बी० डरहिं फिरि आवै। ८. गु० निडर हुआ डर उर होइ भागै, बी० डरही महं फिरि डरहि समावै। ९. बी० ढढा ढूंढ़त ही कत जान। १०. बी० हींडत। ११. दा० नि० ढूंढ़त ढूंढ़त गए परांनां। १२. बी० कोटि। १३. दा० नि० जग, बी० फिरि। १४. बी० जेहि ढूंढ़ा सो कतहुं न पावै, बीभ० जे गढ़ गढ़ा गढ़हिं सो पावै, गु० जिहि गड़ गड़िओ सु गड़ महि पावा (पंजाबी प्रभाव) १५. दा० नि० रिण। १६. बी० नाना दुई बसाए गांऊं। रे ना ढूंढ़ै तेरे नाऊं (बीभ० नाना ढूंढ़ै नाना तेरि नाऊं)॥ १७. दा० नि० मरै। १८. बी० मुए एक जाय तजि घना। मरहिं इत्यादिक ते के गिना॥ १९. बी० अति त्रियौ, बीभ० अति तिरिवो, गु० अतर तरिओ। २०. गु० त्रिभवण। २१. बी० राखु छिपाई। २२. बी० तन। २३. बी० जौ तन त्रिभुवन माहिं। २४. बी० में नहीं। २५. बी० तत्तहि मिलै तत्त सो पावै। २६. बी० अति अथाह। २७. बी० जाई। २८. दा० नि० वो। २९. दा० नि० यहि। ३०. बी० ई थिर ऊ थिर नाहिं रहाई। ३१. दा० नि० थांनैं। ३२. दा० नि० थंभै। ३३. बी० थोर थोर थिर होहु रे भाई। बिनु थंभै (बीभ० खंभै) जस मंदिल थंभाई। ३४. बी० देखहु। ३५. दा० नि० जस न देखि, बी० जस देखहु। ३६. बी० करहु। ३७. बी० दसहुं दुवारे तारी लावै। ३८. बी० पावै। ३९. बी० घघा अरध माहिं अंधियारा। अरध छांड़ि उरध मन तारा (पुन०)॥ ४०. दा० नि० त्यागि। ४१. बी० मन लावै। ४२. दा० नि० तौ उरधहि छांड़ि अरध कत धावा, बी० आपा मेटि कै प्रेम बढ़ावै।

नन्ना निस दिन निरखत जाई। निरखत नैंन रहे रतवाई[१] ॥[३]

[२]निरखत निरखत जब जाइ पावा। तब लै निरखैं निरख मिलावा ॥२५॥[४]

पप्पा अपार पार नहिं पावा। परम जोति सौं परचौ लावा[५]।

पांचौं इंद्री निग्रह करई। पाप पुन्नि दोऊ निरवरई[६] ॥२६॥[७]

फप्फा बिनु फूलां[८] फल होई। ता फल फंक लखै[९] जौ कोई ॥

दुनौं न परई फंक बिचारै। ता फल[१०] फंक सभै तन फारै ॥२७॥[११]

बब्बा बंदहिं बंद[१२] मिलावा। बंदहिं बंद न बिछुरन पावा ॥

बंदा होइ बंदगी गहै[१३]। तौ बंदगि[१४] होइ बंद सुधि[१५] लहै ॥२८॥[१६]

भभ्मा भेदहिं भेद मिलावा[१७]। अब भौ[१८] भांनि भरोसा आवा ॥

जो बाहरि सो भीतरि जांनां। गयौ भेद भूपति पहिचांनां ॥२९॥[१९]

मम्मा मन सौं[२०] काज है, मन साधें[२१] सिधि होइ।

मनहीं मन सौं[२०] कहै कबीरा, मन सा[२२] मिला न कोइ ॥३०॥[२३]

मम्मा मूल गहें मन मांनैं। मरमी होइ सो मन कौं[२४] जांनैं ॥

मति कोइ मन[२५] मिलता बिलमावै। मगन भया तैं सो सचु पावै ॥३१॥[२६]

जज्जा जांनौं तौ दुरमति हनि[२७]; करि बसि काया गांउं ॥

रन रूतौ भाजौ नहीं, तौ सूरा थारौ[२८] (तिहारौ?) नांउं ॥३२॥[२९]

---

१. बी० रतनाई। २. बी० निमिख एक जौ निरखै पावै। ताहि निमिख महं नैन छिपावै ॥ ३-४. बी० में यह दोनों पंक्तियाँ 'ङ' के लिए आयी हैं, यहाँ पर 'न' के लिए उसमें केवल एक पंक्ति है : चौथे वो नाना महं जाई। राम के गदहा हो खर खाई ॥ ५. दा० नि० आवा। ६. दा० नि० दोऊ नां संचरै। ७. बी० में 'प' के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—पप्पा पाप करै सब कोई। पापके करे (बी० भ० धरें) धरम नहिं होई ॥ पप्पा कहै सुनहु रे भाई। हमरे से इन (बीभ० सेवे) किछुवो न पाई ॥ ८. गु० फूलह। ९. दा० नि० लहै। १०. दा० नि० ताका। ११. बी० में 'फ' के लिए : फप्फा फल लागे बड़ दूरी। चाखै सतगुर देइ न तूरी ॥ फप्फा कहै सुनहु रे भाई। सरग पताल कि खबरि न पाई ॥ (बीभ० में उत्तरार्द्ध नहीं है)। १२. बिंदहिं बिंद (उर्दू मूल)। १३. दा० नि० जे बंदा बंद गहि रहै। १४ गु० बंदक (उर्दू मूल)। १५. दा० नि० सभै बंद। १६. बी० में 'ब' के लिए : बाबा बरबर कर सभ कोई। बरबर करे काज नहिं होई। बाबा बात कहै अरथाई। फल का मरम न जानहु भाई ॥ १७. दा० नि० भभ्भा भिदे भेद नहिं पावा। १८. दा० नि० अर भै। १९. बी० में 'भ' के लिए : भभा भभरि रहा भरपूरी। भमरे ते है नियरै दूरी। भभा कहै सुनहु रे भाई। भमरै आवै भमरे जाई। २०. गु० सिउ। २१. दा० नि० मांन्यां। २२. दा. नि० सो। २३. गु० में यह साखी अगली दो द्विपदियों के पश्चात् आती है और बी० में यह साखी नहीं मिलती। २४. दा० नि० मरमहि। २५. दा० नि० मनसौं। २६. गु० में इसके बाद अतिरिक्त : इहु मन सकती इहु मन सीउ। इहु मन पंच तत कौ जीउ। इहु मन लै जउ उनमनि रहै। तउ तीन लोक की बातै कहै ॥ (तुल० गोरखबानी, पृ० १८)। बी० में 'म' के लिए : मम्मा सबै मरम ना पाई। हमरे से इन मूल गंवाई। (पुन० तुल० बी० पंक्ति ४५-२)। माया मोह रहा जग पूरी। माया मोहहि लखहु बिसूरी ॥ २७. दा० नि० हारी। २८. दा० नि० गु० थारौ (मूल कदाचित् 'तिहारौ')। २९. दा० नि० में यह दोनों पंक्तियाँ 'ज' के लिए स्थानांतरित। बी० में इनके स्थान पर : जज्जा

ररा सरस[१] निरस करि जांनैं। होइ निरस सो रस पहिचांनैं[२] ॥
यहु रस छांड़े[३] वहु रस आवा[४]। वहु रस पीएं यहु नहिं भावा[५] ॥३३॥[६]
लल्ला अैसें लौ मन लावै[७]। अनत न जाइ परम सुख पावै ॥
अस जौ तहां प्रेम लौ लावै। तौ अलह लहै लहि चरन समावै ॥३४॥[८]

[९]वावा वाही जानिए, वा जांनें यहु होइ।
यहु अरु वहु जबहीं मिलैं, तब मिलत न जांनैं कोइ ॥३५॥[१०]

सस्सा सो नीका करि सोधहु[११]। घट परचा की बात निरोधहु[१२]।
घट परचै जौ उपजै भाउ। पूरि रह्यौ तहं त्रिभुवन राउ[१३] ॥३६॥[१४]
खख्खा[१५] खोजि परै जे कोई। जे खोजै सो बहुरि न होई ॥
खोजि बूझि जे करै बिचारा। तौ भौजल तरत न लावै [१६]बारा ॥३७॥[१७]
सस्सा सो सह[१८] सेज संवारै[१९]। सोई सही[२०] संदेह निवारै ॥
अलप[२१] सुख छांड़ि[२२] परम सुख पावै। तब यहु तीअ[२३] ओहु कंत कहावै[२४] ॥३८॥
हहा होत होइ[२५] नहिं जांनां। जबहीं[२६] होइ तबै मन मांनां।
है तो सही लखै[२७] जौ कोई। तब ओही ओहु एहु न होई[२८] ॥३९॥[२९]

जगत रहा भरपूरी (तुल० बी० पंक्ति ५३-१)। जगतहुं ते है जाना दूरो॥ जज्जा कहै सुनौ रे भाई। हमरे सेवे जै जै पाई॥ १. गु० रस। २. दा० नि० सो रस करि मांनैं। ३. दा० नि० बिसरै। ४. दा० नि० होई। ५. दा० नि० सो रस रसिक लहै जौ कोई। ६. बी० में 'र' के लिए : ररा रारि रहा अरुझाई। राम कहे दुख दालिद जाई। ररा कहै सुनहु रे भाई। सतगुरु पूछि कै सेवहु आई॥ ७. दा० नि० लला लै मन सौं मन लावै। ८. दा० नि० में यह द्विपदी 'ह' के बाद आती है। यहाँ दा० नि० में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं : लला लहौ तौ भेद है, कहूं तौ को उपगार। बटक बीज मैं रमि रहा, ताका तीन लोक बिस्तार। (तुल० पीछे चौथी द्विपदी)। बी० में इस स्थल पर है : लला तुतरे बात जनाई। तुतरे या तुतरे परचाई॥ अपने तूतर और को कहई। एकै खेत दुनौ निरबहई॥ ९. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : ववा बार बार बिसन संभारि। बिसन संभारि न आवै हारि। बलि बलि जे बिसन तना (राज०) जस गावै। बिसन मिले सभ ही सचु पावै। १०. बी० : ववा वह वह कह सब कोई। वह वह करे ज्ञान नहिं होई। वह तो कहै सुनै जो कोई। सुरग पताल न देखै कोई॥ ११. दा० नि० सोधै। १२. दा० नि० निरोधै। १३. दा० नि० मिलै ताहि त्रिभुवन पति राव। १४. बी० 'में' स के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ आती हैं : सस्सा सर नहिं देखै कोई। सर सीतलता एकै होई। सस्सा कहै सुनहु रे भाई। सुन्न समान (बीभ० सून समान) चला जग जाई। १५. नि० क्षक्षा। १६. दा० नि० लागै। १७. बी० में 'ष' के लिए : षष्षा खर खर कर सभ कोई। खर खर करे काज नहिं होई (पु० तुल० बी० पंक्ति ४८)॥ षष्षा कहै सुनहु रे भाई। राम नाम लै जाहु पराई॥ १८. दा० ससा सोई जे; नि० शशा शोई जे। १९. नि० शंवारै। २०. दा० नि० साह। २१. नि० अति। २२. दा० नि० बिसरै। २३. दा० नि० सो अस्त्री। २४. बी० में 'स' के लिए : सस्सा सरा रचौ बरियाई। सर बेधे सभ लोग तवाई॥ सस्सा के घर सुनगुन होई। इतनी बात न जानै कोई॥ २५. दा० नि० होइ होतु। २६. दा० नि० सो। २७. दा० नि० लहै। २८. दा० नि० जब वा होइ तब यहु न होई। २९. बी० में 'ह' के लिए : हा हा करत जीव सभ जाई। छेव परै तब को (बीभ० त कहवै) समझाई॥ छेव परे काहू अंत न पावा। कहहिं कबीर अगुमन गोहरावा॥ शिवव्रत लाल द्वारा सम्पादित बीजक में 'ह' के लिए

[१]षष्षा[२] खिरत खपत गए केते[३]। खिरत खपत अजहूं नांहि चेते[४] ॥
अब जग जांनि जौ मनां रहै[५]। जहं का बिछुरा तहं थिरु लहै[६] ॥४०॥[७]

× × ×

बावन (चौंतिस ?) अक्खिर जोरे आंनि। सका न अक्खिर एक पछांनि[८] ॥
सति का सबद कबीरा कहै। पंडित होइ सु अनभै रहै[९] ॥४१॥
पंडित लोगनि[१०] कौं ब्यौहार। ग्यांनवंत कौं तत्त बिचार ॥[१२]
जाकै जिअ जैसी बुधि होई। कहै कबीर जांनैंगा सोई[११] ॥४२॥[१३]

—०—

साखी

(१) सतगुर महिमा कौ अंग

रांम नांम[१] कै पटंतरै, देबे कौं कछु नांहि।
क्या [२] लै गुर संतोखिए, हौंस रही मन मांहि ॥१॥
सतगुर सवां न को [इ] सगा[१], सोधी सईं न दाति[२]।
हरि जी सवां न[३] को[४] [इ] हितू, हरिजन सईं न जाति[५] ॥२॥

निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं : ह हा होय होत नहिं जानै। जबही होय तबै मन मानै। है तो सही लहै सभ कोई। जब वा होय तब या नहिं होई। [यहाँ बी० का पाठ दा० नि० से अत्यधिक मिलता है। बी० के अन्य संस्करणों में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं।]। १. गु० में इसके पूर्व अतिरिक्त : लिउं लिउं करत फिरै सभु लोगु। ता कारणि बिआपै बहु सोगु ॥ लिखमीबर सिउ जउ लिउ लावै। सोगु मिटै सबही सुख पावै ॥ २. दा० नि० क्षक्षा। ३. दा० नि० नहिं चेतै। ४. दा० नि० बीते दिन केते। ५. दा० नि० जोरि मन रहै। ६. दा० नि० तौ जातैं बिछुरया सो थिर लहै। ७. बी० (शिवव्रतलाल) में 'क्ष' के लिए : छच्छा छिन परलय मिटि जाई। छेव परे तब को समझाई ॥ छेव परे कोउ अंत न पाया। कह कबीर अगमन गोहराया ॥ बी० के अन्य संस्करणों में पहली पंक्ति नहीं है। ८. दा० नि० एकौ अक्खिर सक्या न जांनि। ९. दा० नि० पूछौ जाइ कहां मन रहै। १०. गु० लोगह। ११. नि० जाकै हिरदै जैसी होई। कहै कबीर लहैगा सोई ॥ १२-१३. दा३ दा४ में यह दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं।

साखी

[१] दा० १-४, नि० १-२३, सा० १-३१, साबे० १-१७, सासी० १-४७, स०१-१—
१. साबे० सासी० सत्तनाम (सांप्रदायिक प्रभाव)। २. सासी० कह।

[२] दा० १-१, नि० १-१, सा० १-४०, साबे० १-३, सासी० २-३, स० १-२, गुसा० २-१—
१. सा० सतगुरु समान को सगा, साबे० सासी० सतगुरु सम को है सगा। २. दा२ सोधी सवीं को दाति, सा० सोधि समानी दात, साबे० सासी० साधू सम को दात। ३. साबे० सासी० हरि समान। ४. साबे० सासी० को है। ५. सा० हरिजन समानी जात, साबे० सासी० हरिजन सम को जात।

चौंसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहिं।
तिहिं[1] घरि किसकौ चांदिनौं[2], जिहिं घरि[3] सतगुर[4] नांहिं ॥३॥
निसि अंधियारी कारनैं, चौरासी लख चंद।
गुर बिनु अति ऊदे भए[1], तऊ दिष्टि रहि मंद ॥४॥
सतगुर बपुरा[1] क्या करै, जौ[2] सिखही मांहैं[3] चूक।
भावै त्यौं[4] परमोधिए[5], ज्यौं[6] बांसि[7] बजाइए[8] फूंक ॥५॥
जाका गुरु है[1] आंधरा[2], चेला है जाचंध[3]।
अंधै अंधा ठेलिया[4], दोन्यूं कूप परंत[5] ॥६॥
संसै खाया सकल जग, संसा किनहुं न खद्ध।
जे बेधे गुरु अक्खिरां, ते संसा चुनि चुनि खद्ध ॥७॥[1]
गुर सिकलीगर कीजिए[1], ग्यांन[2] मसकला देइ।[3]
सबद छोलनां छोलि कै[4], चित[5] दरपन करि लेइ ॥८॥

---

[३] दा० १-१७, नि० १-४१, सा० ४-६, साबे० ५-९, सासी० ५-६, स० १-४, गुरा० ६-१—
१. दा२ जिहिं। २. नि० सा० साबे० सासी० चांदनां। ३. गुरा० गुरु। ४. दा० नि० स० गुरा० गोंविद।

[४] दा० १-१८, सा० ४-५, साबे० ५-१०, सासी० ५ ७, गुरा० ६-२—
१. दा० अति आतुर ऊदै किया। २. दा० गुरा० तऊ दिष्टि नहिं (कैथी मूल) मंद, सासी० तऊ सुदिष्टिहिं मंद।

[५] दा० १-२१, नि० २-१२, सा० ३-१, साबे० ४-४, गु० १५८, बी० ३२१, गुरा० १७१-१९—
१. दा० साबे० बी० गुरू विचारा, गु० साचा सतिगुरु। २. दा० नि० गुरा० जे, सा० जो, बी० में यह शब्द नहीं है। ३. गु० सिखा (?) महि, सा० शिष्यै मांहीं। ४. सा० साबे० ज्यों। ५. गु० अंधै एक न लागई, बीभ० शब्द बान बेधै नहीं। ६. बी० सा० साबे० में यह शब्द नहीं है। ७. दा० नि० गुरा० वंसि। ८. बी० बजाए, बीभ० बजाइन्हि, दा० नि० सा० साबे० गुरा० बजाई।

[६] दा० १-१५, नि० २-२, सा० २-२, साबे० २-२, सासी० ३-३, बी० १५४, गुरा० ७-१६—
१. दा० भी। २. दा० नि० गुरा० अंधला। ३. नि० सा० सासी० चेला खरा निरंध, साबे० चेला निपट निरंध, बी० चेला काह कराय। ४. बी० अंधे अंधा पेलिया, सा० सासी० अंधे को अंधा मिला। ५. दा३ नि० दोन्यूं खूहि पड़ंत, बी० दोऊ कूप पराय, सा० सासी० पड़ा काल के फंद।

[७] दा० १-२२, सा० ८७-८६, साबे० २३-९, सासी० ३२-५७, गुरा० ६-२१, बी० ८८—
१. बी० संसा सब जग खंधिया, संसै खंधो न कोय। संसै खंधै सो जना, जो सबद बिबेकी होइ॥ तुल० सरह : साङ्के खाद्धउ सअल जगु सङ्काग केणावि खद्ध। जे सङ्का सङ्किअउ सो परमत्थ बिलद्ध ॥—राहुल सांकृत्यायन संपादित सरहपाद कृत 'दोहाकोष'; दो० १५८-५९। किंतु यह दोहा न बागची के संस्करण में मिलता है और न हरप्रसाद शास्त्री के। भोट अनुवाद में भी नहीं है। तुल० ढोला मारूरा द्रहा २२० : चिंता बंध्यउ सयल जग, चिंता कि णहि न बध्ध। जे नर चिंता वस करइ, ते माणस नहिं सिध्ध ॥ किंतु यह दोहा 'ढोला मारू रा दूहा' की किसी भी वाचना की किसी भी प्रति में नहीं मिलता, पता नहीं किस आधार पर यह उक्त ग्रंथ में सम्मिलित किया गया है।

[८] दा० ४०-३, नि० १-३२, सा० २-२९, साबे० १-२४, तथा १-१०५ (दो बार) बी० १६०—
१. बीभ० करि ले। २. बी० साबे० (२४) मनहिं (पुन० दे० आगे 'चित्त')। ३. दा० सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ। ४. दा० नि० सबद मसकला फेरि करि (तुल० ऊपर : ग्यांन मसकला देइ), नि० सा० साबे० मन का मैल छुड़ाइ के। ५. दा० नि० देह।

सतगुरु सांचा सूरिवां[1], सबद जु बाहा एक ।
लागत ही भुइं मिलि गया[2], परा करेजै छेक[3] ॥६॥
बूड़ा[1] था पै[2] ऊबरा[3], गुर[4] की लहरि चमंकि[5] ।
जब भेरा देखा जरजरा[6], तब[7] उतरि परा[8] फरंकि ॥१०॥
थापनि[1] पाई थिति भई[2], सतगुर दीन्हीं[3] धीर ।
कबीर हीरा बनिजिया, मांनसरोबर तीर ॥११॥
गूंगा हूआ बावरा, बहरा हुआ कांन ।
पांवां तैं[1] पंगुल[2] भया, सतगुरु मारा[3] बांन ॥१२॥
सतगुरु की महिमां अनंत, अनंत किया उपगार[1] ।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार ॥१३॥
पाछैं लागा जाइ था[1], लोक बेद कै साथि ।
पैंडे मैं सतगुर मिला, दीपक दीया हाथि ॥१४॥
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहुनां, बहुरि न आवौं हट्ट ॥१५॥

---

[९] दा० १-७, नि० १-२५, सा० १-५२, साबे० १७५, सासी० २-८, गु० १५७—
१. गु० साचा सतिगुर मैं मिलिआ । २. दा१ भैं मिलि गया, दा३ दा४ सा० साबे० सासी० भै मिटि गया, नि० भरम मिटि गया । ३. दा० तथा गु० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है जिससे दोनों का संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होता है—तुल० दा० ४०-९ : सतगुर सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक । लागत ही भैं मिलि (दा२ दा३ मिटि) गया, पड़्या कलेजै छेक ॥ तथा गु० ११४ : कबीर सतिगुरु सूरमै बाहिआ बानु जु एक । लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥

[१०] दा० १-२५, नि० १-२०, सा० २-२०, साबे० १-१५, सासी० १-५६, गु० ६७—
१. गु० डूबा । २. नि० पंखि (राज०) । ३. गु० उबरिओ । ४. गु० गुन (नागरी मूल)। ५. गु० झबकि । ६. गु० जब पेखिओ बेड़ा जरजरा । ७. सा० साबे० सासी० में 'तब' शब्द नहीं है । ८. गु० उतरि परिओ हउ, सा० साबे० सासी० ऊतरि भया ।

[११] दा० १-२९, नि० १-१२, सा० १-४३, साबे० १-४८, सासी० २-६२, गु० १६१—
१. गु० थूर्नी, सा० तिथि (हिन्दी मूल—तुल० आगे 'थिति' से)। २. साबे० सासी० थिर भया, सा० मन थिर भया । ३. गु० बंधी ।

[१२] दा० १-१०, नि० १-२९, सा० १-६२, सासी० २-७०, गु० १९३—
१. दा१ दा२ पांऊं थैं, दा० ३ पांवां थैं, नि० पांवां सूं (राज० मूल), सासी० पावन ते । २. नि० पिंगुल, गु० पिंगल, सा० पिंगला (तीनों उर्दू मूल से)। ३. गु० मारिआ सतिगुर ।

[१३] दा० १-३, नि० १-४, सा० १-४१, साबे० १-४, सासी० २-५, गुग्रा० ३-१९—
१. सा० साबे० सासी० उपकार ।

[१४] दा० १-११, नि० १-१५, सा० १-१२, साबे० १-६४, सासी० २-५२, गुग्रा० ५-१—
१. नि० कबीर चाल्या जाइथा, साबे० बहे बहाये जात थे । २. दा३ आगा थैं, गुग्रा० आगे तैं ।

[१५] दा० १-१२, नि० १-१६, सा० १-१३, साबे० १-६५, सासी० २-५३, गुग्रा० ५-२—
अन्यत्र यह साखी लालदास के नाम से भी मिलती है : लाल जी दीपक जोरा तेल भरि, बाती करी सुघाट । पूरा किया बिसावनां, बहुरि न आवै बाट ॥ —याज्ञिक-संग्रह ना० प्र० स० की ३४६-५५ संख्यक ह० लि० पोथी में ।

ग्यांन प्रकासी[१] गुर मिला, सो जनि[२] बीसरि[३] जाइ ।
जब गोबिंद क्रिपा करी, तब गुर मिलिया[४] आइ ॥१६॥
नां गुर मिला न सिख मिला[१], लालच खेला डाव[२] ।
दोनौं बूड़े[३] धार मैं[४], चढ़ि पाथर[५] की नाव ॥१७॥[६]
सतगुर मिला त का भया, जे मनि पाड़ी[१] भोल ।
पासि बिनंठा कापड़ा[२], क्या करै बिचारी[३] चोल ॥१८॥
बलिहारी गुर आपकी[१], द्यौहाड़ी सौ बार[२] ।
जिन[३] मानिख तैं[४] देवता किया, करत न लागी[५] बार ॥१९॥
सतगुर कै सदकै किया[१], दिल अपनीं का[२] सांच[३] ।
कलिजुग हमसौं लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बांच[४] ॥२०॥
सतगुर लई कमांन करि[१], बाहन लागा तीर ।
एक ज[२] बाहा प्रीति सौं, भीतरि भिदा सरीर ॥२१॥
हंसै न बोलै उनमुनीं, चंचल मेला[१] मारि ।
कहै कबीर भीतरि भिदा[२], सतगुर कै हथियार ॥२२॥

---

[१६] दा० १-१३, नि० १-१०, सा० १-१६, साबे० १-७, सासी० १-३७, गुग्रा० ५-९—
१. दा० प्रकास्या (नागरी मूल)। २. साबे० जन (उर्दू मूल)। ३. साबे० बिसरि न। ४. दा०३ मिलिहै।

[१७] दा० १-१६, नि० २-१, सा० २-१, साबे० २-१, सासी० ३-२, गुग्रा० ७-११—
१. दा० गुग्रा० भया। २. सा० साबे० सासी० दांव। ३. दा२ डूबे। ४. नि० बापड़ा। ५. दा३ नि० पांहण। ६. सासी० में इस साखी की पुनरावृत्ति मिलती है; तुल० सासी० ३-१ : गुरु लोभी सिख लालची, दोनों खेले दाव। दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाव ॥

[१८] दा० १-२४, नि० २-१३, सा० ३-३, साबे० १-१२१, सासी० ३-३२, गुग्रा० १७२-९—
१. सा० सासी० परिगा। २. सा० सासी० कपास विनाया कापड़ा, साबे० पास बस्त्र ढांकै नहीं (परवर्ती संशोधन ?)। ३. साबे० बपुरी।

[१९] दा० १-२, नि० १-२२, सा० १-१७, साबे० १-११, सासी० १-४३—
१. दा० आपणीं, नि० आपणां, सा० आपनां, साबे० आपनैं (पंजाबी)। २. नि० दीहाड़ी (राज० पंजाबी) सौ बार, साबे० घड़ि घड़ि सौ सौ बार, सा० सासी० घरी घरी सौ बार। ३. साबे० सासी० में 'जिन' शब्द नहीं है। ४. साबे० सासी० मानुख। ५. दा३ लाई। गु० में यह साखी गुरु नानकदेव के नाम से मिलती है जहाँ इसका पाठ है : बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सदवार ॥ जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी बार ॥ [दे० श्री गुरु ग्रन्थ साहब, मिशन संस्करण, पृ० ४६२, सलोकु महला १। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार दा० नि० सा० साबे० सासी० का सम्मिलित साक्ष्य मान्य सिद्ध होने से उक्त साखी कबीर की प्रामाणिक साखियों की कोटि में स्वीकार की गयी है।]।

[२०] दा० १-५, नि० १-२१, सा० १-५०, साबे० १-५२, सासी० २-२८—
१. दा१ दा२ करूं। २. सा० साबे० सासी० अपने को। ३. दा१ साछ। ४. दा१ बाछ।

[२१] दा० १-६, नि० १-२६, सा० १-५१, साबे० १-७०, सासी० २-१९—
१. नि० सा० साबे० सासी० सतगुरु सबद कमान करि (नि० लै)। २. सासी० एकहि।

[२२] दा० १-९, नि० १-२८, सा० १-६१, साबे० १-८८, सासी० २-६९—
१. दा२ मेल्हा। २. सा० सासी० कह कबीर अंतर बिध्या, साबे० कबीर अंतर बेधिया।

सतगुरु मारा[1] बांन भरि, धरि करि सूधी[2] मूठि ।
अंगि उघारै लागिया[3], गई दवा[4] सौं फूटि ॥२३॥
कबीर गुर गरवा मिला[1], मिलि गया[2] आटैं लौंन ।
जाति पांति कुल सब मिटे[3], नांउं धरौगे कौंन ॥२४॥
भली भई जो गुरु मिले, नहिंतर होती हांनि ।
दीपक जोति[1] पतंग ज्यौं, पड़ता पूरी जांनि[2] ॥२५॥
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि मांहिं[1] पड़ंत ।
कहै कबीर गुरु ग्यांन तैं, एक आध उबरंत[2] ॥२६॥
चेतन चौकी बैसि[1] करि, सतगुर दीन्हीं धीर ।
निर्भय होइ निसंक भजि, केवल कहै[2] कबीर ॥२७॥
गुर गोबिंद[1] तौ[2] एक हैं, दूजा सब[3] आकार ।
आपा मेटै हरि भजै[4], तब पावै दीदार[5] ॥२८॥
कबीर[1] सतगुर नां मिला, रही[2] अधूरी सीख ।
स्वांग जती का पहिरि करि, घरि घरि मांगै भीख ॥२९॥
सतगुर मेरा सूरिवां[1], ज्यौं तातैं लोहि लुहार ।
कसनी दै कंचन किया, ताइ लिया ततसार ॥३०॥

---

[२३] दा० १-८, नि० १-२७, सा० १-५५, साबे० १-७८, सासी० २-१२—
१. साबे० बाहा । २. सासी० धीरी । ३. नि० लगि गई । ४. सा० दुवा, साबे० धुवां, दा२ सासी० दुवां (?) ।

[२४] दा० १-१४, नि० १-९, सा० १-६, साबे० १-६, सासी० १-७—
१. सा० सासी० गुरू तौ गरुवा मिला । २. दा० साबे० रलि गया । ३. सा० साबे० सासी० कुल मिटि गया ।

[२५] दा० १-१९, नि० १-५ सा० १-१४, साबे० १-५४, सासी० १-४५—
१. दा० दिष्टि । २. सा० साबे० सासी० पड़ता आय निदान ।

[२६] दा० १-२०, नि० १-६, सा० २७-४६, साबे० ७२-३९, सासी० ३०-२०—
१. नि० दा१ दा२ इवैं, दा३ दिमै । २. नि० सा० साबे० सासी० कोई एक गुरु ज्ञान तें, उबरे साधू संत ।

[२७] दा० १-२३, नि० १-१४, सा० १-४६, साबे० १-६३, सासी० २-६७—
१. सा० साबे० सासी० बैठि कै । २. साबे० नाम ।

[२८] दा० १-२६, नि० १-११, सा० १-५, साबे० १-२९, सासी० १-५—
१. साबे० साहिब (राघा० प्रभाव) । २. सा० सासी० दोउ । ३. दा१ यहु । ४. दा० आपा मेटि जीवत मरै, साबे० आपा मेटै गुरु भजै । ५. दा० साबे० करतार ।

[२९] दा० १-२७, नि० २-६, सा० २-९, साबे० २-५, सासी० ३-१९—
१. सा० साबे० सासी० पूरा । २. सा० साबे० सासी० सुनी ।

[३०] दा० १-२८, नि०, १-४५, सा० २-१०, साबे० १-९८, सासी० २-४८—
१. दा० सतगुर ऐसा सूरिवां, नि० सतगुरु ऐसा चाहिए, सा० साबे० सासी० सतगुरु तो ऐसा मिला ।

निह्चल[१] निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर ।
निपजी मैं साझी घनां, बांटै नहीं[२] कबीर ॥३१॥
चौपड़ मांडी चौहटै, अरध उरध बाजारि ।
सतगुर सेती खेलतां, कबहुं न आवै हारि[१] ॥३२
पांसा पकड़ा प्रेम का[१], सारी किया सरीर ।
सतगुर दांव बताइया, खेलै दास कबीर ॥३३॥
सतगुर हम सौं रीझि करि, कहा एक[१] परसंग ।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥३४॥

(२) प्रेम बिरह कौ अंग

बिरह भुवंगम[१] तन[२] बसै[३], मंत्र[४] न मांनैं[५] कोइ ।
रांम[६] बियोगी नां जिअै[७], जिअै त बउरा[८] होइ ॥१॥
बिरह भुवंगम[१] पैठि कै[२], किया[३] करेजै घाउ ।
साधू[४] अंग न मोरहीं[५], ज्यौं भावै त्यौं खाउ ॥२॥
अंबरि कुंजां कुरलियां[१], गरजि[२] भरे सब ताल[३] ।
जिनतैं साहिब बीछुरा[४], तिनकौं कौंन हवाल ॥३॥

---

[३१] दा० १-३०, १-१७, सा० १-४५, सावे० १-५०, सासी० २-६४—
१. सा० सावे० सासी० निश्चय । २. सा० सावे० सासी० बांटनहार ।

[३२] दा० १-१३१, नि० ५०-४३, सा० ८५-८९, सावे० ८-३४, सासी० २४-७२—
१, दा० कहै कबीरा रांम जन, खेलौ अंत (पुन०) बिचारि, नि० सा० कबीर खेलै रांम सूं, कबहुं न आवै हारि ।

[३३] दा० १-३२, नि० १-१९, सा० ८५-९१, सावे० १-६६, तथा १५-६८ (दो बार), सासी० १५-७०—
१. नि० सावे० (१-६६) चौपड़ि माड़ी चौहटै (पुनरावृत्ति—तुल० पिछली साखी में भी "चौपड़ि माड़ी चौहटै, अरध उरध बाजारि ।") ।

[३४] दा० १-३३, नि० १-१८, सा० १-४०, सावे० १-६९, सासी० २-३४—१. सावे० एक कहा ।

[१] दा० ३-१८, नि० ६-१६, सा० १९-३५, सावे० १४-९, स० ७-१, गु० ७६, बी० ९७, गुग्रा० १८-६६ तथा २६-९ (दो बार)—
१. गु० भुअंगसु, सा० भुवंगहि । २. गु० मन । ३. सा० सावे० डसा, बी० डस्यौ । ४. गु० मंतु । ५. दा० नि० स० सा० सावे० गुग्रा० लागै । ६. गु० सावे० नाम । ७. नि० बिरही जन जीवै नहीं, सा० बिरह बियोगी क्यौं जियै । ८. बी० सावे० बाउर ।

[२] दा० ३-१९, नि० ६-१७, सा० १९-३४, सावे० १४-१०, बी० ९९, गुग्रा० १८-६०—
१. दा० ३ भुयंगम । २. दा० नि० गुग्रा० पैसि करि, सा० परसि करि । ३. बी० कीन्ह । ४. नि० बिरही, सा० सावे० बिरहिन । ५. दा३ नि० अंग मोड़ै नहीं ।

[३] दा० ३-२, नि० ६-१२, सा० १९-२, सावे० १४-३६, सासी० १६-२, गु० १२४, गुग्रा० २०-५२—
१. सावे० अंबर कुज्जा (नागरी मूल) कर लिया (उर्दू मूल), सा० सासी० अमर (उर्दू मूल) कुंज कुरलाइयां (सा० उरलाइया), गु० अंबर घनहरु छाइआ । २. गु० बरखि । ३. गु० सर ताल (पुन०) । ४. दा० नि० गुग्रा० जिनितैं गोबिंद बीछुट्या, गु० चात्रिक जिउ तरसत रहे । तुल० ढोला मारू रा दूहा (रचनाकाल सं० १४५० से पूर्व) छंद ५३ ना० प्र० संस्क०, पृ० १७ : राति

चकई[१] बिछुरी[२] रैंनि की, आइ मिलै[३] परभाति ।
जे नर[४] बिछुरे रांम सौं[५], ते दिन मिले न राति[६] ॥४॥[७]

झल[१] ऊठी झोली जली[२], खपरा फूटमफूट[३] ।
जोगी था सो रमि गया[४], आसनि रही बिभूति[५] ॥५॥[६]

रेनाईर बिछोहिया[१], रहु रे[२] संख म झूरि[३] ।
देवलि देवलि धाहड़ी[४], देसी[५] (देई ?) ऊगे[६] सूरि ॥६॥

हिरदै भीतरि दौं बलै[१], धुवां न परगट होइ ।
जाकै लागी सो लखै[२], कै[३] जिहिं[४] लाई सोइ ॥७॥

बिरह की ओदी लाकड़ी[१], सपचै औ धुंधुवाइ[२] ।
छूटि पड़ै या बिरह तैं[३], जौ सगली[४] जरि जाइ[५] ॥८॥

जु सारस कुरलिया, गुंजि रहे सब ताल । जिणकी जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल ॥ किंतु यह कहना कठिन है कि कबीर की रचनाओं में यह साखी 'ढोला मारू रा दूहा' सेसम्मिलित की गयी है । डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने सार्थकता की दृष्टि से कबीर के नाम से प्रचलित दोहे को 'ढोला मारू' के दोहे से प्राचीनतर सिद्ध किया है (उत्तर भारती, भाग ६, अंक २, पृ० १२१)। अधिक संभव यही लगता है कि यह दोहा अपभ्रंश-काल से ही लोक में अत्यधिक प्रचलित रहा होगा और उसी स्रोत से 'ढोला मारू रा दूहा' और कबीर की रचनाओं में पृथक् पृथक् रूप से सम्मिलित कर लिया गया होगा ।

[४] दा० ३-३, नि० ६-१३, सा० १९-३ साबे० १९-७७ तथा १४-६८, सार्सी० १६-३, गु० १२५—
१. नि० सार्सी० चकवी । २. दा० बिछुरी । ३. सा० साबे० आनि मिली (उर्दू मूल)। ४. साबे० सार्सी० जन । ५. साबे० सार्सी० नाम सों (साम्प्रदायिक प्रभाव)। ६. नि० मिले द्यौस नां राति, सा० साबे० सार्सी० मिले दिवस नहिं राति । ७. साबे० में यह साखी दो स्थलों पर मिलती है; साबे० १४-६८ का पाठ है : चकई बिछुरी रैनि की, आइ मिली परभात । सतगुरु से जो बीछुरे, मिलैं दिवस नहिं रात ॥

[५] दा० ४-४, नि० ७-६, सा० १९ क-६, साबे० १४-४१, सार्सी० २७-७, गु० ४८—
१. सा० साबे० सार्सी० झाल । २. गु० खिंथा जलि कोइला भई । ३. दा० नि० फूटिम फूट । ४. गु० जोगी बपुरा खेलिओ, दा३ नि० हंसा जोगी चलि गया । ५. सा० साबे० सार्सी० भभूत । ६. दा० में दूसरी पंक्ति एक अन्य साखी में भी भ्रम से दुबारा आ गयी है; तुल० दा० ४१-७ : मन मारया ममिता मुई, अहं गई सब छूटि । जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥

[६] दा० ३-४४ (दा० २ में नहीं), नि० २५-१८, सा० १९-५२, सार्सी० १६-६६, गु० १२६—
१. गु० रैनाईर बिछोरिया (नागरी मूल), दा३ रैंणाइयां बिछोहिया, नि० रैंणाईर सूं बीछड़्या, सा० नेड़ै राम बसाइया, सासी० रनयां राम छिपाइया । २. सा० सूखम झूरि । ३. सार्सी० रहु रहु, सा० रहि रहि । ४. सा० देहड़ी । ५. गु० देसहि, सा० दिवसहिं, सार्सी० दिवस न । ६. गु० उगवत ।

[७] दा० ४-३, नि० ७-२, सा० १९ क-५, साबे० १४-४८, बी० ६७, गुग्रा० २५-१८—
१. बी० आगि जो लगी समुद्र में । २. बी० जानै सो जो जरि मुवा । ३. सा० साबे० की (उर्दू मूल), बी० में यह शब्द नहीं है । ४. सा० साबे० गुग्रा० जिन, बी० जाकी ।

[८] दा० ३-३७, नि० ६-३६, सा० १९-२५, साबे० १४-३०, सार्सी० १६-४६, बी० ७२—
१. दा० हूं रे बिरह की लाकड़ी, नि० हौं बिरहिन की लाकड़ी, सा० सार्सी० हूं जो बिरह की लाकड़ी, साबे० बिरहिन ओदी लाकड़ो । २. दा० सा० समझि समझि धूंधाउं (सा० धुंधुवाय), नि० सिलगूं अरु धूंधाउं । ३. बी० दुख से तबहीं बांचिहौ । ३. सा० सार्सी० छूटि परूं जो बिरह सों । ४. बी० जब सकलो, दा० जे सारी हीं, साबे० जो सिगरो, साबे० सार्सी० जे सगरी हीं । ५. दा० नि० जाउं ।

बिरहिन उठि उठि भुइं-परै[१], दरसन कारन[२] रांम ।
मूएं दरसन देहुगे, सो आवै कौनैं कांम[३] ॥६॥

मूएं पीछैं मति मिलौ, कहै कबीरा रांम ।
लोहा माटी मिलि गया[१], तब पारस कौनैं कांम ॥१०॥

भेरा पाया सरप का[१], भौसागर के मांहि ।
जौ छांड़ौं[२] तौ बूड़िहौं[३], गहौं त डसिहै बांहि[४] ॥११॥

मारा है मरि जाइगा[१], बिन सर थोथी भालि ।[२]
परा[३] कराहै[४] बिरिछ तलि, आजु मरै कै[५] काल्हि[६] ॥१२॥

आगि[१] जु लागी नीर मंहि[२], कांदौ[३] जरिया झारि ।
उतर दखिन के[४] पंडिता, मुए[५] बिचारि बिचारि ॥१३॥

जाहु बैद[१] घर आपनैं, तेरा किया न होइ[२] ।
जिन या बेदन निरमई, भला करैगा सोइ[३] ॥१४॥[४]

---

[९] दा० ३-७, नि० ६-६, सा० १९-७, साबे० १४-७०, सासी० १६-१२, बी० २७०—
१. दा० बिरहिन उठै भी (उर्दू मूल) पड़ै, नि० कबीर बिरहिन भी (उर्दू मूल) पड़ै, बी० बिरहिन साजी आरती । २. बी० कीजै । ३ दा० नि० मूवां पाछैं देहुगे, सो दरसन किहि कांम, सा० साबे० सासी० लोहा माटी मिल गया, तब पारस किहि काम । दा० नि० सा० साबे० सासी० स० में यह पंक्ति एक अन्य साखी में समान रूप से मिलती है (दे० अगली साखी की द्वितीय पंक्ति), अतः यह वहीं के लिए स्वीकृत हुई है। यहाँ सा० साबे० सासी० में वह अनावश्यक रूप से दुबारा आ गयी है।

[१०] दा० ३-८, नि० ६-७, सा० १९-८, साबे० १४-७१, सासी० १६-१३, स० ७-६—
१. दा० स० पाथर घाटा लोह सब, नि० लोहा तौ पाथर घस्या । २. सा० साबे० सासी० किहि ।

[११] दा० ३-४३, नि० ७-१७, सा० १९-३३, साबे० २-१३, सासी० २७-६५, बी० ११८—
१. दा० नि० भेरा (दा१ भेला) पाया स्रप सूं, सा० भैरै चढ़िया सरप के, बी० बेड़ा बांधिनि सरप का, साबे० वेड़े चढ़िया झांझरे । २. बी० साबे० छांड़ै । ३. दा० नि० डूबिहौं, साबे० सासी० बूड़िहै, बी० बूड़ई, साबे० बांचिहै (विपरीतार्थी ?)। ४. नि० गहूं तौ खाजै बांहि, साबे० नातर बूड़ै मांहि ।

[१२] दा० ४-२, नि० ७-४, सा० १९ क-१३, साबे० १९-१२९, बी० १९३—
१. दा० नि० मार्‍या है जे मरैगा, बी० साबे० मूवा है (साबे० मूए हौ) मरि जाहुगे । २. नि० बिन सींगणि बिन भालि । ३. दा० नि० सा० पड़्या (नागरी मूल)। ४. दा० नि० सा० पुकारै, साबे० कराइल । ५. बी० साबे० की । ६. बी० काल ।

[१३] दा० ४-५, नि० ७-७, सा० १९ क ७, सासी० २७-८, बीभ० ५५, गुग्रा० २५-२२—
१. दा० नि० गुग्रा० अगिनि । २. बीभ० समुद्र महं । ३. दा१ दा२ नि० कंदू, दा२ कैदू (दोनों उर्दू मूल)। ४. बीभ० पुरुब पछिम के, सा० सासी० उत्तर दिसि के । ५. नि० सा० सासी० गुग्रा० रहे ।

[१४] नि० ४५-१२, सा० ७१-१२, साबे० १४-८८, सासी० १६-३८, बी० ३१०—
१. नि० सा० बैद जाहु । २. बी० यहाँ बात न पूछै कोय । ३. बी० जिन या भार लदाइया निरबाहैगा सोय । ४. साबे० में यह साखी १४-८९ पर भी मिलती है जिसका पाठ है : जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय । जिन यह भार लदाइया, निरबाहैगा सोय ॥ यह पाठ बीजक के प्रभाव से आया हुआ ज्ञात होता है। यह साखी अन्यत्र नानक के नाम से भी मिलती है, तुल० गुग्रा० १८-५० : जाहि बैद घर आपणैं, जांणैं कोइ न कोइ । जिन दुख लाया नानका, भला करैगा सोइ ॥ किंतु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन किससे प्रभावित है।

बासुरि सुख नां रैंनि सुख, नां सुख सुपिनैं[1] मांहि ।
कबीर बिछुड़ें रांम सौं[2], नां सुख[3] धूप न छांहि ॥१५॥
बिरहा बिरहा[1] मति कहौ, बिरहा है सुलतांन ।
जिहिं घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा[2] मसांन ॥१६॥
सब रग तांति रबाब[1] तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुनि सकै[2], कै सांई कै चित्त ॥१७॥
बहुत दिनन की जोवती[1], बाट तुम्हारी रांम[2] ।
जिय तरसै तुझ[3] मिलन कौं, मन नांहीं बिसरांम ॥१८॥
अंदेसौ[1] नहिं भाजिसी[2] (भाजिहै ?), संदेसौ कहियांह[3] ।
कै हरि आयां भाजिसी (भाजिहै ?), कै हरि पासि[4] गयांह[5] ॥१९॥
यहु तनु जारौं मसि करौं[1], ज्यूं धूवां जाइ सरग्गि[2] ।
मति वै रांम दया करैं,[3] बरसि बुझावै अग्गि[4] ॥२०॥

---

[१५] दा० ३-४, नि० ४०-२१, सा० १९-४, सावे० १९-७२ तथा १४-६९, सासी० १६-४, स० ७-३ गुग्रा० २०-५३—
१. सा० सावे० सासी० सपनां, गुग्रा० सुपिनंतरि । २. नि० सा० सासी० जे नर बिछुरे रांम से, सावे० जे नर बिछुरे नाम से । ३. सा० सावे० सासी० तिनकौ । सावे० १४-६९ में द्वितीय पंक्ति का पाठ किंचित् भिन्न है, यथा: सतगुरु से जो बीछुरे, तिनको धूप न छांहि (राधा० प्रभाव) ।

[१६] दा० ३-२१, नि० ६-२०, सा० १९-३८, सावे० १४-३२, सासी० १६-२८, स० ७-४७, गुग्रा० १८-५१—
१. नि० सावे० सासी० विरहा । २. सावे० सासी० जान । ३. सासी० में यह साखी पुनः एक स्थल पर आती है, तुल० सासी० १६-१०३ : विरहा बूरा जनि कहो, विरहा है सुलतान । जा घट हरि विरहा नहीं, सो घट सदा मसान ॥ गु० में इसी से मिलती-जुलती एक साखी शेख फ़रीद के नाम से भी मिलती है, जो इस प्रकार है : बिरहा बिरहा आखीऐ, बिरहा है सुलतानु । फरीदा जितु तनि बिरहु न उपजै, सो तनु जाणु मसाणु ॥ दे० मि० सं०, पृ० १३७९ । किंतु स्वाभाविकता तथा सार्थकता की दृष्टि से कबीर कृत साखी का पाठ प्राचीनतर लगता है ।

[१७] दा० ३-२०, नि० ३-८, सा० १९-३६, सावे० १४-७८, सासी० १६-५३, स० ७-७—
१. सासी० खाव (हिन्दी मूल) । २. नि० दूजा कोई नां सुणैं ।

[१८] दा० ३-६, नि० ६-५, सा० १८-५, सावे० १४-८, सासी० १६-५—
१. सा० सासी० जोहती । २. सावे० रटत तुम्हारो नाम । ३. सा० सावे० सासी० तुव ।

[१९] दा० ३-९, नि० ६-९, सा० १९-११, सावे० १४-२५, सासी० १६-३९, गुग्रा० १९-९६—
१. दा० गुग्रा० अंदेसड़ी । २. सा० सावे० सासी० भागसी । ३. सा० सासी० कहियाय, गयाय । ४. नि० तुम पास । ५. सावे० कै आवै पिय आपही, कै मोहि पास बुलाय ॥

[२०] दा० ३-११, नि० ६-११, सा० १९-१४, सावे० १४-७२, सासी० १६-४१, गुग्रा० १८-९६—
१. सावे० यह तन जारि भसम करौं । २. सावे० होय सुरंग, सा० सासी० जाय सुरंग, गुग्रा० जाइ स्वर्ग । ३. सावे० कबहुंक गुरु (राधा० प्रभाव) दाया करैं । ४. सा० सावे० सासी० अंग, गुग्रा० अङ्ग । तुल० ढोला मारू रा दूहा, छंद १८१ : यहु तन जारी मसि करूं, धूंवा जाइ सरग्गि । मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावइ अग्गि ॥ 'ढोला मारू रा दूहा' की केवल एक प्रति में यह दूहा मिलता है । इसके अतिरिक्त 'मुझ प्रिय बद्दल होइ करि' से अर्थ की असंगति स्पष्ट है ।

यहु तन जारौं मसि करौं, लिखौं रांम का[1] नांउं[2] ।
लेखनि करौं करंक की[3], लिखि लिखि रांम[4] पठांउं ।।२१।।
इस[1] तन का दीवा[2] करौं, बाती मेलौं जीव ।
लोही[3] सींचौं तेल ज्यौं, तब मुख देखौं पीव[4] ।।२२।।
अंखियां[1] प्रेम कसाइयां[2], जग जांनैं[3] दूखड़ियांह[4] ।
रांम सनेही कारनैं[5], रोइ रोइ रातड़ियांह[6] ।।२३।।
परबति परबति[1] मैं फिरा, नैंन गंवाया रोइ ।
सो बूटी पांऊं नहीं, जातैं जीवन होइ ।।२४।।
नैंन हमारे बावरे[1], छिन छिन लोरैं तुज्झ ।
नां तूं मिलै न मैं सुखी[2], ऐसी बेदनि मुज्झ ।।२५।।
कमोदिनीं जलहरि बसै[1], चंदा बसै अकासि ।
जो है जाका भावता[2], सो ताही कै पासि ।।२६।।

इसके विपरीत कबीरकृत दोहे के प्रस्तुत पाठ की निर्दोषता स्वतः सिद्ध है (दे० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, ऊत्तर भारती, भा० ६, अंक २, पृ० १२९ तथा १३१)।

[२१] दा० ३-१२, नि० ६-१४, सा० १९-१५, साबे० १४-७३, सासी० १६-४२, गुरा० १८-९७—
१. साबे० गुरू का (साम्प्रदायिक प्रभाव)। २. गुरा० कागद उर धरि नाव। ३. साबे० करउं लेखनी करम की (नागरी मूल)। ४. साबे० गुरू (साम्प्रदायिक मूल)।

[२२] दा० ३-२३, नि० ६-१९, सा० १९-३७, साबे० १४-१५, सासी० १६-५४, गुरा० १८-९८—
१. साबे० यहि, सा० सासी० या। २. सा० साबे० सासी० दिवला। ३. सा० साबे० सासी० लोहू। ४. नि० मति नैनां देखूं पीव।

[२३] दा० ३-२५, नि० ६-२२, सा० १९-४१, साबे० १४-८, सासी० १६-५५, गुरा० १८-७३—
१. दा२ अंखड़ि, दा१ दा३ दा४ गुरा० अंखडियां (राज० मूल०)। २. साबे० बसाइया (नागरी मूल)। ३. दा० लोग जांणैं, नि० लोक जन जांणैं, साबे० जिनि जाने। ४. दा० दुखड़ियां, सा० साबे० सासी० दुखदाय (समानार्थीकरण) ५. दा० सांईं अपणैं कारणैं, गुरा० प्रीतम प्यारे कारणैं। ६. सा० साबे० सासी० रो रो रात विताय। [दादू-वाणी का प्रभाव : तुल० साखी ३-९ : बिरहिन कुरलै कुंज ज्यूं, निस दिन तलपत जाइ। रांम सनेही करनैं, रोवत रैनि बिहाइ ॥]।

[२४] दा० ३-४० नि०, ६-४०, सा० १९-५५, साबे० १४-३३, सासी० १६-६३, गुरा० ५४-३—
१. सा० सासी० रोवत रोवत।

[२५] दा० ३-४२, नि० ६-३९, सा० १९-५१, साबे० १४-२२, सासी० १६-५५, गुरा० २४-८—
१. दा० १-२ जलि गए, गुरा० बलि गए। २. दा० खुसी।

[२६] दा० ४४-१, नि० ४९-१, सा० ८३-१६, साबे० १५-६५, सासी० १५-६७, गुरा० ५६-२—
१. दा३ सा० साबे० सासी० जल मैं बसै कमोदिनीं (समानार्थीकरण)। २. दा३ नि० जो जाही कै मनि बसै। तुल० 'ढोला मारूरा दूहा' (ना० प्र० स०) छंद २०१ : जल महिं बसै कमोदणी, चंदउ बसइ अगासि। ज्यउ ज्यांही कइ मन बसइ, सउ त्यांही कै पासि ॥ यह दोहा 'ढोला मारू रा दूहा' की प्रथम तथा द्वितीय वाचनाओं की प्रायः समस्त प्रतियों में मिलता है, केवल तृतीय वाचना की प्रतियों में नहीं मिलता और पाठ की दृष्टि से समान रूप से संगत प्रतीत होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि लोक में यह दोहा बहुत पहले से ही प्रचलित रहा

गुर जौ बसै[1] बनारसी[2], सीख समुंदर[3] तीर ।
बीसारे नहिं बीसरै[4], जौ गुन होइ सरीर ॥२७॥
जो है जाका भावता, जदि तदि[1] मिलिहै[2] आइ ।
जाकौं तन मन सौंपिया, सो कबहूं छांड़ि न जाइ[3] ॥२८॥
स्वांमीं सेवक[1] एक मत[2], मत[2] मैं मत[2] मिलि जाइ[3] ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ ॥२९॥[4]
दीपक पावक आंनिया, तेल भी आंनां[1] संग ।
तीनौं मिलिकै जोइया, तब उड़ि उड़ि परैं[2] पतंग ॥३०॥
बिरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ ।
एक सबद कहि पीव का[1], कब रे[2] मिलिहिंगे आइ ॥३१॥
आइ न सक्कौं तुज्झ पै[1], सकूं न तुज्झ[2] बुलाइ ।
जियरा यौंही लेहुगे,[3] बिरह तपाइ तपाइ ॥३२॥
कबीर पीर पिरावनीं[1], पंजर[2] पीर न जाइ ।
एक जु पीर पिरीति की, रही कलेजा छाइ ॥३३॥

है और कबीर तथा 'ढोला मारू रा दूहा' दोनों में ही लोकतत्व का आधार ग्रहण करने के कारण दोनों में अपने अपने ढंग से पृथक् रूप में आ गया है।

[२७] दा० ४४-२, नि० ४९-२, सा० १-२६, साबे० १-१३, सासी० १-१७, गुग्रा० ५६-३—
१. दा० नि० गुग्रा० कबीर गुर बसै। २. दा३ बांगारसी, नि० बिगारसी। ३. दा० नि० गुग्रा० समंदां (राज० मूल)। ४. सा० साबे० सासी० एक पलक बिसरै नहीं।

[२८] दा० ४४-३, नि० ४९-३०, सा० ८३-१५, साबे० १५-६४, सासी० १५-६६, गुग्रा० ५६-११—
१. सा० साबे० सासी० जब तब। २. दा० नि० मिलिसी (राज० मूल)। ३. सा० साबे० सासी० तन मन ताकौं सौंपिए, जो कबहुं न छांड़ी जाय।

[२९] दा० ४४-४, नि० ४९-९, सा० ६-७, साबे० ७-३, सासी० १०-६, गु० ५५-१३—
१. सा० साबे० सासी० सेवक स्वामी। २. साबे० मति। ३. दा० मन (नागरी मूल) ही मैं मिलि जाइ। ४. सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है; तुल० सासी० ४-४४ : स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय। चतुराई रीझै नहीं, रहिए मन के भाय।

[३०] दा० ४-१, नि० ७-१, सा० १९क-४, साबे० १४-४७, सासी० १६-९०—
१. साबे० लाया। २. साबे० मिलै।

[३१] दा० ३-५, नि० ६-४, सा० १९-३, साबे० १४-७, सासी० १६-६—
१. नि० एक संदेसा पीवका। २. सा० सासी० कबहिं।

[३२] दा० ३-१०, नि० ६-१०, सा० १९-१२, साबे० १४-२६, सासी०—
१. सा० साबे० सासी० आइ न सकिहौं तोहि पै। २. सासी० तुझै। ३. साबे० जियरा यौं लय होयगा।

[३३] दा० ३-१३, नि० ६-१५, सा० १९-३१, साबे० १४-६०, सासी० १६-१०९—
१. नि० कबीर पीर पिरानियां, साबे० पीर पुरानी बिरह की, सा० बिरही आंनीं बिरह की।
२. सा० साबे० सासी० पिंजर।

चोट संतानीं[१] बिरह की, सब तन जरजर होइ।
मारनहारा जांनिहै[२], कै जिहिं[३] लागी सोइ ॥३४॥

जबहीं[१] मारा[२] खैंचि करि, तब मैं पाई[३] जांनि।
लागी चोट मरम्म की[४], गई कलेजा छांनि ॥३५॥

अंखियन तौ[१] झांई परी, पंथ निहारि निहारि।
जिभ्या मैं[२] छाला परा[३], रांम[४] पुकारि पुकारि ॥३६॥

जीव बिलंबा जीव[१] सौं, अलख न लखिया[२] जाइ।
गोबिंद[३] मिलै न झल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ ॥३७॥

हंसि हंसि कंत[१] न पाइअै, जिन पाया तिन रोइ।
हांसी खेलां[२] पिउ[३] मिलै, तौ नहीं दुहागिनि कोइ[४] ॥३८॥

कबीर देखत[१] दिन गया, निसि भी निरखत[२] जाइ।
बिरहिनि पिउ पावै नहीं, जियरा तलफत जाइ[३] ॥३९॥

कै बिरहिनि कौं मीच दै, कै आपा दिखलाइ[१]।
आठ पहर का दाझनां, मोपै सहा न जाइ ॥४०॥

बिरहिनि थी तौ क्यौं रही, जरी न पिउ कै नालि[१]।
रहि रहि मुगध गहेलरी[२], प्रेम न लाजौं मारि[३] ॥४१॥

---

[३४] दा० ३-१४, नि० ७-५, सा० १९-३२, सावे० १४-६१, सासी० १६-५०—
वै१. सा० सावे० सासी० सता। २. नि० जांणिसी, सावे० जानहीं। ३. नि० जिनि, सा० सासी० जिस।

[३५] दा० ३-१६, नि० ४२-७, सा० १-६०, सावे० १-८२, सासी० २-६८—
१. नि० तुम। २. नि० मारी। ३. सा० सावे० सासी० मूआ। ४. नि० सा० सावे० सासी० जु सबद की।

[३६] दा० ३-२२, नि० ६-१, सा० ११-७९, सावे० १४-४, सासी० १६-५१—
१. दा० नि० सा० आंखड़ियां (राज०)। २. दा० नि० सा० जीभड़ियां (राज०)। ३. नि० हुआ। ४. सावे० सासी० नाम।

[३७] दा० १७-१, नि० ६-५२, सा० १९-६९, सावे० १४-८२, सासी० १६-८१—
१. सावे० पीव, नि० अलख। २. दा२ लखनां (उर्दू मूल), सा० सावे० सासी० लख्यौ: ३. सा० सावे० सासी० साहिब।

[३८] दा० ३-२९, नि० ६-२८, सा० १९-४७, सावे० १४-१९, सासी० १६-६०—
१. दा२ पीव। २. दा१ जे हांसे ही। ३. दा० हरि। ४. सा० सावे० सासी० कौन दुहागिनि होइ।

[३९] दा० ३-३४, नि० ६-३२, सा० १४-४९, सावे० १४-६३, सासी० १६-६२—
१. सा० सावे० सासी० देखत देखत। २. दा१ सा० सावे० सासी० देखत। ३. सावे० केवल जिय घबराय, दा० नि० जियरा तलफै माइ।

[४०] दा० ३-३५, नि० ६-३४, सा० १९-२३, सावे० १४-१३, सासी० १६-४४—
१. सासी० कै आप आय दिखलाय।

[४१] दा० ३-३६, नि० ६-३५, सा० १९-२४, सावे० १४-७५, सासी० १६-११—
१. दा३ नि० लार, सा० सावे० सासी० साथ (समानार्थीकरण)। २. दा३ गहली मूघ न रोइए, नि० गहली मूंघक बावरी। ३. सा० सावे० सासी० अब क्यौं मीजै हाथ।

कबीर तन मन यौं जला[१], बिरह अगिनि सौं लागि ।
मिरतक पीर न जांनई, जांनैंगी वह[२] आगि ॥४२॥[३]

कबीर सुपिनैं हरि मिला[१], मोहिं सूतां[२] लिया जगाइ ।
आंखि न मीचौं[३] डरपता, मति सुपिनां होइ जाइ ॥४३॥

सांई[१] केरे बहुत गुन, लिखे जु हिरदै मांहि ।
पांनीं पिऊं न डरपता[२], मति वै धोए जांहि ॥४४॥

कबीर सुंदरि यौं कहै, सुनि हो[१] कंत सुजांन ।
बेगि मिलौ तुम आइकै, नहिंतर तजौं परांन[२] ॥४५॥

कबीर[१] प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया साव[२] ।
सूनैं घर का पाहुनां, ज्यौं आवैं त्यौं जाव[३] ॥४६॥

नैंनां अंतरि आव तूं[१], निस दिन निरखूं तोहि ।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥४७॥

नैंनां नीझर लाइया[१], रहट बहै[२] निस[३] घांम[४] ।
पपिहा[५] ज्यौं पिउ पिउ करौं, कब रे[६] मिलहुगे रांम ॥४८॥

---

[४२] दा० ३-३८, नि० ६-३७, सा० १९-२८, साबे० १४-३१, सासी० १६-४९—
१. सा० साबे० सासी० तन मन जोबन यौं जला। २. साबे० क्या। ३. सासी० में यह साखी अन्यत्र १६-८६ पर भी आती है, जिसका पाठ है : तन मन जोबन जरि गया, विरह अगिनि घट लागि। बिरहिनि जानै पीर को, क्या जानैगी आग ॥

[४३] दा० ५०-६, नि० ५८-१०, सा० १०२-१०, साबे० ८४-२, सासी० ५३-२९—
१. सा० साबे० सासी० सोवत। २. साबे० खोलूं। तुल० ढोला मारू रा दूहा (ना० प्र० स०) छंद ५०३ : सुपनइ प्रीतम मुझ मिल्या, हूं गलि लागी धाइ। डरपत पलक न छोड़ही, मति सुपनउ होइ जाइ ॥ किंतु 'ढोला मारू रा दूहा' की तीन वाचनाओं में से यह केवल प्रथम वाचना की प्रतियों में मिलता है।

[४४] दा० ५०-७, नि० ५८-६, सा० १०२-६, साबे० ८४-१, सासी० ३३-४८—
१. दा० नि० गोबिंद। २. दा० डरता पांणीं नां पिऊं।

[४५] दा० ५२-१, नि० ५७-१, सा० १०१, साबे० १४-१२, सासी० १६-३२—
१. सा० साबे० सासी० सुनिए। २. सा० साबे० सासी० नहिं तौ तजिहौं प्रांन।

[४६] दा० २-१८ (दा० ३ में नहीं है), नि० १६-६६, सा० १८-१६, सासी० १५-२७, गुरु० ३०-२६—
१. सा० सासी० पहिले। २. नि० भवाइ, सा० सासी० स्वाद। ३. नि० जाइ, सा० सासी० बाद। तुल० बी० चांचर २ : पढ़े गुने का कीजिए मन बौरा हो, अंत बिलैया खाइ समुझु मन बौरा हो। सूने घर का पाहुना मन बौरा हो, ज्यौं आवै त्यौं जाइ समुझ०। गु० में यह साखी नानक के नाम से है—तुल० मिशन संस्क० पृ० ७९० : जिनी न पाइओ प्रेम रसु कंतु न पाइओ साउ। सुंञे घर का पाहुणा जिउ आइआ तिउ जाउ ॥ किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर दा० नि० सा० सासी० गुरु० का सम्मिलित साक्ष्य मान्य होने के कारण उक्त समुच्चय में मिलने वाली साखी कबीरकृत ही सिद्ध होती है।

[४७] दा० ३-३३, नि० ६-३१, सा० १९-५०, सासी० १६-६४, गुरु २४-७—
१. दा१ आचरूं।

[४८] दा० ३-२४, नि० ७६-२, सा० ११-८०, सासी० १३-४१, गुरु० २४-३—
१. सासी० कबीर नैन झर लाइए। २. नि० अरहट बहै। ३. नि० निज। ४. सासी० सा० जाम

सोई आंसू साजानां[1], सोई लोग बिड़ांहि[2] ।
जौ लोइन[3] लोही चुवै, तौ जांनौं हेतु हियांहि[4] ॥४९॥

गुर[1] दाझा चेला[2] जला, बिरहा लाई[3] आगि ।
तिनका बपुरा ऊबरा, गलि पूरे[4] के लागि ॥५०॥

पांनीं मांहीं परजली, भई[1] अपरबल आगि ।
बहती सलिता रहि गई, मच्छ[2] रहे जल त्यागि ॥५१॥

कबीर दरिया[1] परजला, दाझे जल थल झोल ।
बस नांहीं गोपाल सौं, बिनसै[2] रतन अमोल ॥५२॥

ऊनइ[1] आई बादरी, बरखन लगा अंगार ।
ऊठि कबीरा धाह दै, दाझत है संसार ॥५३॥

समुंदर लागी आगि[1], नदिया जलि कोइला भई ।
देखि[2] कबीरा जागि, मंछी रूखां[3] चढ़ि गई ॥५४॥

जिहिं सरि मारा काल्हि, सो सर मेरे मनि बसा ।
तिहिं सरि अजहूं मारि, सर बिनु सचु पाऊं नहीं ॥५५॥

नि० नाम (नागरी मूल)। ५. दा३ बबीहा (राजस्थानी)। ६. दा० नि० कबीर, गुरा० कब रु, सासी० कबीर। सासी० १६-५२ भी तुलनीय है जिसका पाठ है : नैनन तौ झड़ि लाइया, रहट बहै निसु वास। पपिहा ज्यौं पिव पिव रटै, पिया मिलन की आस।

[४९] दा० ३-२६, नि० ६-२३, सा० १९-४२, सासी० १६-५६, गुरा० १८-७६—
१. दा० सहजड़ां (राज०), साबे० सजन जन। २. दा१ बिड़ा, सा० बड़रीया, साबे० बहाहि, सासी० बिड़ाय। ३. सासी० लोचन। ४. सासी० तौ जानौ हित आय, सा० तो जानौ हेतड़ीयां।

[५०] दा० ४-७, नि० ७-९, सा० ११क-९, सासी० २७-५३, गुरा० २५-९—
१. सा० जल। २. नि० बी० कंवल। ३. दा० गुरा० लाई। ४. सा० परा, सासी० पूरी (उर्दू मूल)। सासी० में यह साखी २७-१० पर भी मिलती है जिसका पाठ है : जल दाझा चीखल जला, बिरहा लागी आग। तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूला कै लाग॥ [यह पाठ सा० से आया हुआ ज्ञात होता है।]।

[५१] दा० ४-९, नि० ७-१८, सा० ९८-११, सासी० २७-१२, गुरा० २५-२३—
१. गुरा० हुई, सासी० रुई (नागरी मूल)। ३. नि० मींन।

[५२] दा० ५१-१, नि० ५६-१, सा० ९७-५, सासी० ७०-८, गुरा० ३७-१—
. दा२ रिदिया (उर्दू मूल)।

[५३] दा० ५१-२, नि० ५६-२, सा० ९७-६, सासी० २७-४०, गुरा० ३७-३—
१. दा० ऊनमि। २. सा० सासी० बरसन।

[५४] दा० ४-१०, नि० ७-१४, सा० ११क-१२, सासी० २७-१३, गुरा० २५-२४—
१. दा३ लाइ। २. सा० सासी० ऊठि। ३. सा० सासी० बिरछा। ४. यह साखी केवल सासी० में दोहे के रूप में मिलती है, शेष सब में सोरठे के रूप में है। यह साखी सासी० २७-५८ से भी तुलनीय है जिसका पाठ है : दव लागी दरियाव में, नदिया कुइला होइ। मच्छी परवत चढ़ि गई, बूझै बिरला कोइ॥

[५५] दा० ३-१७, नि० ६-१७, सासी० १६-११०, म० ७-६—
सासी० में यह साखी दोहे के रूप में मिलती है।

(३) सुमिरन भजन महिमां कौ अंग

कबीर सूता क्या करै[१], उठि किन रोवै दुक्ख[२] ।
जाका बासा गोर मैं[३], सो क्यूं सोवै सुक्ख ॥१॥

कबीर सूता[१] क्या करै, जागि न जपै[२] मुरारि[३] ।
इक दिन सोवन होइगा[४], लांबे गोड़[५] पसारि ॥२॥

लूटि सकै तो[१] लूटि लै[२], रांम नांम[३] की[४] लूटि ।
फिरि पाछैं पछिताहुगे, प्रांन जाहिंगे[६] छूटि ॥३॥

केसौ कहि कहि कूकिअै[१], नां सोइअै असरार[२] ।
राति दिवस के कूकनैं[३], कबहुंक[४] लगै[५] पुकार ॥४॥

कबीर कठिनाई खरी[१], सुमिरंता हरि नांउं[२] ।
सूरी ऊपरि खेलनां[३], गिरै[४] त नांहीं ठांउं[५] ॥५॥

तूं तूं करता तूं भया[१], मुझ मैं[२] रही[३] न हूं ।
वारी तेरे नांउं परि[४], जित देखौं तित तूं[५] ॥६॥

---

[१] दा० २-१३, नि० १६-७५, सा० ११-३९, साबे० ७४-४, सासी० १३-७३, स० ६७-२२, गु० १२७—
१. गु० करहि। २. गु० जागु रोइ भै दुख। ३. नि० सा० घोर मैं (उर्दू मूल)।

[२] दा० २-११, नि० १६-६५, सा० ११-३५, साबे० १९-७४ तथा ७४-१, सासी० १३-६९—
१. साबे० (१) सोता (उर्दू मूल), साबे० (२) सोया (उर्दू मूल)। २. सा० साबे० जागे जपौ, सासी० जागी जपो। ३. साबे० दयार (राधास्वामी प्रभाव)। ४. दा० एक दिनां भी सोवणां, दा३ एक दिन होइगा सोवणां, नि० एक दिहाड़ै सोइबौ (राज० मूल), सा० साबे० सासी० एक दिना है सोवना। ५. दा० सासी० लंबे पांव, नि० लांबा पांव, सा० साबे० लंबे पैर।

[३] दा० २-२५, नि० ५-९, सा० ११-३१, साबे० ३३-४६, सासी० १३-६५, गु० ४१—
१. गु० लूटना है त। २. दा० नि० लूटियौ। ३, साबे० सतनाम (राधा० प्रभाव)। ४. गु० है। ५. दा० नि० यहु तन। ६. दा१ दा२ जैहैं, दा३ जाइंगे, नि० जासी (राजस्थानी मूल)।

[४] दा० २-१६ (दा२ दा३ में यह साखी नहीं है), सा० ११-४५, साबे० ७४-९, सासी० १३-७९, गु० २२३—
१. गु० केसौ केसौ कूकिए, साबे० पिउ पिउ (राधा० प्रभाव) कहि कहि कूकिए। २. गु० असार, साबे० इसरार (उर्दू मूल)। ३. सा० कूकबे, साबे० सासी० कूकते। ४. दा० मत कबहुंक। ५. गु० सुनै।

[५] दा० २-२०, नि० ३-२१, सा० ११-७५, सासी० १३-४२, गु० १०९—
१. सा० कबीर चतुराई पड़ी (उर्दू मूल), गु० कबीर चतुराई अति घनी। २. गु० हरि जपि हिरदै माहि, सा० साबे० सासी० सुमिरत हरि को नाम। ३. दा० नि० सा० सासी० सूली ऊपरि नट बिद्या (सा० सासी० विधा)। ४. नि० गिरूं। ५. गु० ठाहर नाहि।

[६] दा० २-९, नि० ३-११, सा० ११-८३, साबे० ३४-३७, सासी० १३-१३०, गु० २०४, गुग्रा० ४२-५५—
१. गु० हूआ। २. सा० तुझमें। ३. गु० रहा। ४. नि० वारथा हरि का नांव परि। गु० जब आपा पर का मिटि गइआ, दा० बारी फेरी बलि गई, गुग्रा० तूं करते तूं पाइआ। ५. गु० जत देखउ तत तूं, गुग्रा० अब तौ तूं ही तूं।

भगति भजन हरि नांउं है[1], दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा बाचा कर्मनां[2], कबीर सुमिरन सार ।।७।।
चिंता तौ हरि नांउं[1] की, और न चितवै[2] दास ।
जो कछु चितवै रांम[3] बिनु, सोई काल की पास ।।८।।
जिहि[1] घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि[2] रसनां नहिं रांम[3] ।
ते नर आइ[4] संसार मैं, उपजि खए[5] बेकांम ।।९।।
पहिलै[1] बुरा कमाइ करि, बांधी बिख की पोट ।
कोटि करम फिल पलक मैं[2], जब आया हरि[3] की ओट ।।१०।।
कोटि करम फिल[1] फलक मैं, जे रंचक आवै नांउं
जुग अनेक जो पुंनि करै, नहीं[2] नांउं बिनु ठांउं ।।११।।
लंबा मारग दूरि घर, बिकट[1] पंथ बहु मार ।
कहौ संतौ क्यौं पाइअै[2], दुरलभ हरि[3] दीदार ।।१२।।
तत्त तिलक[1] तिहुं लोक मैं, रांम[2] नांम निज सार[3] ।
जन कबीर मस्तकि दिया[4], सोभा अनंत[5] अपार ।।१३।।
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंत सब[1] सोधिया, दूजा देखौं[2] काल[3] ।।१४।।

---

[७] दा० २-४ (दा३ में नहीं है), नि० ३-३०, सा० ११-५, साबे० ३४-४२, सासी० १३-१११ तथा १३-१७४ (दो बार)—
१. नि० कबीर निज सुख नांव है, सा० सासी० (१११) निज सुख आतमराम है, साबे० निज सुख सुमिरन नाम है (पुन० तुल० अगली पंक्ति में 'सुमिरन सार')। २. नि० निहचै।

[८] दा० २-६, नि० ३-१४, सा० ११-५०, साबे० ३४-३२, सासी० १३-१२७, गुरा० १७-६—
१. साबे० सासी० सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव)। २. दा१ गुरा० चिंता। ३. साबे० सासी० नाम।

[९] दा० २-१७, नि० १६-११, सा० ३०-४२, साबे० १९-३३, सासी० १३-४६, गुरा० ३०-२७—
१. सासी० जा। २. सासी० पुनि। ३. साबे० सासी० नाम (राधा० प्रभाव)। ४. साबे० सासी० पसु। ५. सा० साबे० खपे (नागरी मूल)।

[१०] दा० २-१९, नि० ३-१५, सा० ११-५४, साबे० १-११५, सासी० १-६५, गुरा० ९-१४—
१. दा० गुरा० पहली। २. सा० साबे० सासी० कोटि करम पल में कटै (समानार्थीकरण)। ३. साबे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव)।

[११] दा० २-२०, नि० ३-१६, सा० ११-५५, साबे० ३३-२७, सासी० ५७-१३, गुरा० ९-१५—
१. दा० गुरा० पैलै। २. दा० नि० गुरा० रांम।

[१२] दा० २-२७, नि० ३-१९, सा० ११-७७, साबे० ८४-२०, सासी० १३-४३, गुरा० ४४-१—
१. नि० कठिन। २. साबे० कह कबीर कस पाइए। ३. साबे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक मूल)।

[१३] दा० २-३ (दा०२ दा३ में नहीं है), नि० ३-४, सा० ५५-१, साबे० ४८-१, सासी० ७-३—
१. नि० तत नांव। २. साबे० सासी० सत्तनाम (सांप्रदायिक मूल)। ३. नि० ततसार। ४. नि० धरया। ५. सा० साबे० अमित, सासी० अगम, दा० अधिक।

[१४] दा० २-५, नि० ३-३१, सा० ११-४, साबे० ३४-४१, सासी० १३-१११—
१. सा० साबे० सासी० मधि। २. नि० दीसै। ३. साबे० ख्याल।

पांच संगि[1] पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मंन ।
आई सूति[2] कबीर की, पाया रांम[3] रतंन ॥१५॥
कबीर निरभै रांम[1] जपि, जब लगि दीवै बाति ।
तेल घटै बाती बुझै[2], तब सोवैगा दिन राति ॥१६॥
कबीर सूता[1] क्या करै, काहे न[2] देखै जागि ।
जाके संग तैं बीछुरा, ताही कै संगि लागि[3] ॥१७॥
कबीर सूता क्या करै, सूतां[1] होइ अकाज ।
ब्रह्मां का आसन डिगा[2], सुनत काल की गाज ॥१८॥
जिन[1] हरि[2] जैसा जांनियां, तिनकौं तैसा लाभ ।
ओसां[3] प्यास न भाजई[4], जब लगि धंसै न आभ ॥१९॥
रांम पियारा[1] छांड़ि करि, करै आंन[2] का जाप ।
बेस्वा[3] केरा पूत ज्यौं, कहै कौंन सौं[4] बाप ॥२०॥
जैसैं माया मन रमैं, यौं जे[1] रांम[2] रमाइ ।
तौ तारा मंडल बेधि कै[3], सो अमरापुर जाइ[4] ॥२१॥

---

[१५] दा० २-७, नि० ३-१३, सा० ११-८१, साबे० ३४-३६, सासी० १३-१२८—
१. साबे० सखी । २. नि० सा० साबे० सासी० सुरति (उर्दू मूल ?) । ३. साबे० नाम ।

[१६] दा० २-१०, नि० ५-११, सा० ११-३४, साबे० ३४-४१, सासी० १३-६८—
१. साबे० सासी० नाम । २, दा० नि० बुझी (उर्दू मूल) ।

[१७] दा० २-१२, नि० १६-५०, सा० ११-४१, साबे० १९-७३ तथा ७४-६ (दो बार), सासी० १३-७५—
१. साबे० सोता, सोया (उर्दू मूल), । २. साबे० को नहीं । ३. नि० फिरि ताहीं संग ।

[१८] दा० २-१५, नि० ४४-४५, सा० ११-३८, साबे० १९-७५, सासी० १३-७२—
१. साबे० होते (उर्दू मूल) । २. दा० खिस्यौ । साबे० में यह साखी अन्यत्र ७४-३ पर भी मिलती है जहाँ इसका पाठ है : कबीर सोया क्या करै, सोये होय अकाज । ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल को गाज ॥

[१९] दा० २-११, नि० ५-५, सा० ११-१६, साबे० ३७-३६, सासी० १८-६०—
१. दा० नि० जिहिं । २. साबे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. सा० सासी० ओसै । ४. सा० साबे० सासी० भागसी (राज० मूल) । सासी० १४-१२९ भी तुलनीय है जिसका पाठ है : जिन जेता प्रभु पाइया, ताकूं तेता लाभ । ओसै प्यास न भागई, जब लग धसै न आभ ।

[२०] दा० २-२२, नि० १६-२७, सा० २९-२, साबे० ८०-३, सासी० २३-१६—
१. साबे० सासी० सत्तनाम को (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. सा० साबे० और । ३. सा० साबे० सासी० वेस्या । ४. सा० साबे० सासी० को । साबे० सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० साबे० ३३-४३ तथा सासी० १३-११ : नाम पियू का छोड़ि कै, करै आन का जाप । वेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन सों बाप ॥ इस साम्य से दोनों का संकीर्ण संबंध सिद्ध होता है ।

[२१] दा० २-२४, नि० ५-८, ११-४६, साबे० ३३-४२ तथा ३४-५० (दो बार), सासी० १३-४७—
१. सा० साबे० सासी० तैसे । २. साबे० नाम । ३. दा० छांड़ि करि, नि० छेदि कै । ४. दा०

लूटि सकै तौ लूटि लै[१], रांम नांम[२] भंडार ।
काल कंठ कौं[३] गहैगा[४], रूंधै[५] दसहुं दुवार ॥२२॥

कबीर चित्त[१] चमंकिया[२], दहुं दिसि लागी लाइ ।
हरि[३] सुमिरन हाथौं घड़ा[४], बेगे लेहु बुझाइ[५] ॥२३॥

जांनंता[१] बूझा नहीं, समुझि[२] किया नहिं गौंन ।
अंधे कौं अंधा मिला[३], राह[४] बतावै कौंन ॥२४॥

कबीर कहता जात है[१], सुनता है सब कोइ ।
रांम कहें[२] भला होइगा, नातर भला न होइ ॥२५॥

कहै कबीर मैं कथि गया[१], कथि गए ब्रह्म महेस[२] ।
रांम नांम[३] ततसार है, सब काहू उपदेस ॥२६॥

(४) साध महिमां कौ अंग

कबीर चंदन कै बिड़ै[१], बेधे[२] ढाक पलास[३] ।
आपु सरीखे करि लिए, जे होते[४] उन पास[५] ॥१॥

जहं कैसौ तहां जाइ सावे० ३४-५० का पाठ है : जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय। तारा मंडल छांड़ि कै, जहां नाम तहं जाय ॥

[२२] दा० २-२६, नि० ४४-९, सा० ११-३३, सावे० १९-११, सासी० १३-६७—
१. सासी० कहै कबीर तूं लूटि लै। २. सावे० सत्तनाम (राधा० प्रभाव)। ३. दा१ दा२ जब। ४. सावे० पकरिहै। ५. नि० सा० सावे० सासी० रोके।

[२३] दा० २-३२, नि० ३-२४, सा० ११-४९, सावे० ३४-५१, सासी० १३-११३—
२. दा२ दा३ दा४ चिता। २. सा० सावे० सासी० चंचल भया। ३. सावे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव)। ४. हरि सुमिरण हाजर खड़ा (उर्दू मूल)। ५. नि० लेहु बुझाइ बुझाइ।

[२४] नि० २-९, सा० २-३, सावे० २-३, सासी० ३-४, बी० १५३—
१. बी० जाना नहिं, सासी० जानीता। २. नि० सा० सावे० बूझि। ३. नि० भूला कूं भूला। मिल्या। ४. नि० सा० सासी० पंथ।

[२५] दा० २-१, नि० ५-६, सा० ११-९८, सासी० १३-१५७, गुग्ग० ८-१—
१. सा० सासी० कहता हूं कहि जात हूं। २. भा० सासी० सुमिरन सों।

[२६] दा० २-२, नि० ५-४, सा० १०-६५, सासी० १८-६८, गुग्ग० ८-२—
१. सासी० मैं कथि कहि कहि कहि गए। २. नि० सा० सासी० ब्रह्मा बिस्नु महेस। ३. सासी० सत्तनाम (सांप्रदायिक मूल)।

[१] दा० २८-७, नि० २७-८, सा० ५७-२० तथा ५७-२२, सावे० १६-२१, सासी० ९-७, गु० ११, बी० ४१, स० २४-२, गुग्ग० ७०-१६—
१. दा२ कबीर चंदन कौ बिड़ौ, सा० कबिरा चंदन के विषै (नागरी मूल) ['बिडै' से ध्वनि-साम्य के कारण 'बिशै' और पुनः उससे अक्षर-सादृश्य के कारण सा० में 'विषै' बना हुआ ज्ञात होता है।], सावे० कबीर चंदन के ढिगे, सासी० कबीर चंदन संग से, गु० चंदन का बिरवा भला, बी० मलयागिरि के बास में (कदाचित् बी० ४८ के अनुकरण पर जिसकी प्रथम पंक्ति हैं : मलयागिरि की बास में बिच्छ रहे सब गोय।)। २. दा० गुग्ग० बेढ़्या (उर्दू मूल, गु०

संत न छांड़े संतई[१], जौ[२] कोटिक[३] मिलहिं असंत।
मलय[४] भुयंगम[५] बेढ़िश्रौ[६], तऊ[७] सीतलता न तजंत ॥२॥
है गै बाहन[१] सघन घन, छत्र[२] धुजा फहराइ।
ता[३] सुख तैं[४] भिख्या भली, जौ[५] हरि सुमिरत दिन जाइ[६] ॥३॥
पुर पट्टन सूबस बसै,[१] आनंद ठांएं ठांइं[२]।
रांम सनेही[३] बाहिरा, ऊजड़ मेरे भाइं ॥४॥
मेरे संगी दोइ जनां[१], एक[२] बैस्नौं[३] एक[२] रांम।
वो है दाता मुकुति का,[४] वो सुमिरावै नांम[५] ॥५॥
जिहिं[१] घरि साध न पूजिए[२], हरि की सेवा नांहि[३]।
ते घर मरहट[४] सारिखे, भूत बसैं तिन मांहि[५] ॥६॥

बेढ़िश्रो (उर्दू मूल), दा३ नि० सा० साबे० बेढ़ा। ३. दा० नि० गुग्रा० आक पलास, स० ढेक पलास ['ढाक' और 'पलास' यद्यपि समानार्थी हैं किन्तु उनका प्रयोग यहाँ मुहावरे के रूप में हुआ है, अतः पुनरुक्ति नहीं होगी।] ४. सा० सासी० ठहरा। ५. गु० ओइ भी चंदन होइ रहे बसे जु चंदनु पासु, बी० बेना कबहुं न बेधिया, रहै जुगो जुग पास। सा० ५७-२२ का पाठ है : मलया गिरि की बास में, बेधे ढाक पलास। बांस न कबहूं बेधिया, रहै जुगों जुग पास॥ (यह पाठ बीजक से प्रभावित ज्ञात होता है।)

[२] दा० नि० २९-२, सा० ५९-५, साबे० ४७-५७, सासी० ६-१२४, स० ७-१, गु० १७४, गुग्रा० ७२-१७—

१. साबे० सासी० संतता। २. सा० साबे० सासी० में यह शब्द नहीं है। ३. दा० ३ कोटि एक। ४. दा० नि० स० गुग्रा० चंदनु, गु० मलिश्रागरु (उर्दू मूल)। ५. दा० नि० स० भुवंगा, सा० भुवंहि, साबे० सासी० भुवंगम। ६. नि० सा० साबे० सासी० बेधिया (उर्दू मूल)। ७. सा० साबे० सासी० गुग्रा० में यह शब्द नहीं है।

[३] दा० ३०-४, नि० ३२-३, सा० ६१-२३, साबे० ३३-३४, सासी० १३-६०, स० १२३-२, गुग्रा० ११२—

१. दा० नि० स० है गै गैवर (पुन०), सा० सासी० हयवर गयवर, साबे० हय गय औरौ। २. गु० लाख। ३. गु० इश्रा। ४. दा० नि० थैं। ५. नि० जे, दा० सा० साबे० सासी० में 'जौ' या 'जे' नहीं है। ६. साबे० सासी० नाम भजत दिनु जाइ (साम्प्रदायिक प्रभाव)। गु० में इस साखी की पुनरावृत्ति, तुल० गु० १५० : ऊच भवन कनकामनी सिखरि धजा फहराइ। ताते भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥

[४] दा० ३०-२, नि० ३२-१, सा० ६१-२२, सासी० ६-६४, स० ७८-३, गु० १४—

१. दा३ पाटण तौ सूबस बसै, गु० कबीर हज जह तह फिरिश्रो। २. गु० कउतक ठाश्रो ठाइ। ३. गु० इक राम सनेही। गु० में यह साखी १५१ पर पुनः मिलती है, वहाँ इसका पाठ है : पाटन ते ऊजरु भला राम भगति जिह ठाइ। राम सनेही बाहरा जमपुरु मेरे भाइ ॥

[५] दा० २८-४, नि० २७-४, सा० ५७-१३, सासी० ९-२६, ६-१७०, गु० १६४, गुग्रा० ६९-१७—

१. गु० कबीर सेवा कउ दुइ भले। २. दा३ के। ३. गु० संतु। ४. गु० रामु जु दाता मुकति को। ५. गु० संतु जपावै नाम। सासी० में यह साखी अन्यत्र भी आती है, तुल० सासी० ६-१७९ : कबीर सेवा दोउ भली, एक संत इक राम। राम है दाता मुक्ति का, संत जपावै नाम ॥ (यह पाठ गु० से लिया हुआ ज्ञात होता है।)

[६] दा० ३०-३, नि० ३२-२, सा० ६१-२०, सासी० ६-६२, गु० १९२, स० ८५-२—

१. गु० सासी० जा। २. गु० सेवीअहि, सा० सासी० सेवहीं। ३. सासी० पारब्रह्म पति नांहि। ४. गु० सा० सासी० मरघट। ५. नि० ता मांहि, सासी० ता ठांहिं ॥

दावै दाझन होतु है, निरदावै रहै[१] निसंक ।
जे जन[२] निरदावै रहैं, ते गनैं इंद्र कौ[३] रंक ॥७॥
कबीर भया है केतकी,[१] भंवर भए सब दास ।
जहं जहं[२] भगति कबीर की,[३] तहं[४] तहं[५] रांम निवास ॥८॥
कबीर कुल सोई भला[१], जिहिं कुल उपजै दास[२] ।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुलि ढाक पलास[३] ॥९॥
है गै बाहन[१] सघन घन[२], छत्रपती की नारि ।
तासु पटंतर[३] नां तुलै[४], हरिजन की पनिहारि ॥१०॥
क्यौं त्रिपनारी निंदिए, क्यौं पनिहारी[१] कौ मांन ।
वा[२] मांग संवारै पीव की[३], वा नित उठि सुमिरै रांम[४] ॥११॥
जिनहुं किछू जांनां नहीं[१], तिन्ह सुख नींद बिहाइ[२] ।
मैं रे अबूझी बूझिया[३], पूरी परी बलाइ[४] ॥१२॥
सुपनैं हू[१] बरराइ[२] कै, जिहिं मुख निकसै रांम[३] ।
ताके पग की पांनही[४], मेरै तन कौ चांम ॥१३॥

---

[७] दा० ३७-९, नि० ३१-१४, सा० २१-१२, सासी० २८-१८, गु० १६९, गुग्रा० १०६-१६—
१. दा० नि० सासी० में 'रहे' शब्द नहीं है। २. दा० नि० जे नर। ३. गु० सो, नि० सा० सूं।

[८] दा० ३०-११, नि० ३२-१०, सा० ६१-३०, सासी० ११-२०, गु० १४१, गुग्रा० ६८-२८—
१. नि० हरि जी भया है केतकी, गु० कबीर कसतूरी भया (कस्तूरी से भँवरों का संबंध कवि समय से सिद्ध नहीं होता)। २. गु० जिउ जिउ। ३. नि० भगति निरमली। ४. गु० तिउ तिउ। ५. दा५ भगति (पुन०), सा० सासी० मुकति।

[९] दा० ३०-८, नि० ३२-५, सा० ६१-२८, साबे० ४७-७९, सासी० ११-१८, गु० १११—
१. दा० नि० कबीर कुल तौ सो भला। २. गु० जिहि कुल हरि को दासु। ३. सा० साबे० सासी० आक पलास।

[१०] ३०-५, नि० ३२-२३, सा० ६१-२४, साबे० ४७-८१, सासी० ६-६५, गु० १५९—
१. दा० नि० है गै गैवर (पुन०)। २. साबे० सुघर घर (नागरी मूल)। ३. सा० साबे० सासी० पटतरै। ४. गु० पुजै।

[११] दा० ३०-६, नि० ३२-२४, सा० ६१-२५, सासी० ६-६६, गुग्रा० १६०—
१. गु० हरि चेरी। २. गु० ओहु। ३. गु० बिखै कउ। ४. गु० ओहु सिमरै (उर्दू मूल) हरि नाम।

[१२] दा० २९-६, नि० ३१-५, सा० ६०-७, सासी० १६-९५, गु० १८१—
१. दा० जिन्य कुछ जांणया नहीं, सा० सासी० कबीर जिन कछु जानिया। २. सा० सासी० सुख निंदरी बिहाय। ३. दा३ मैं र अबूझी बूझड़ी, नि० मुझै अबूझी बूझड़ी, सा० मेरे (उर्दू मूल) अबूझी बूझिया, सासी० मेगे अब सी (?) बूझिया, गु० हमहुं जु बूझा बूझना। ४. नि० जांणौं भारी पड़ी बलाइ, सा० सासी० पड़ी पड़ी बिलखाय। कबीर की यह साखी अन्यत्र शेख़ फ़रीद के नाम से भी मिलती है, तुल० गुग्रा० ६४-१६ : फरीदा जिनि कछु बूझिया, तिन सुख रैंनि बिहाइ। मैं ज अबूझी बूझिया, चप्परि भई बलाइ॥

[१३] नि० ३२-१२, सा० ११-६०, साबे० ३३-३१, सासी० १३-५८, गु० ६३—
१. सा० सासी० सपने में। २. गु० नि० बरड़ाइ। ३. नि० जे रे कहैंगे रांम, सा० साबे० सासी० धोखे निकरै राम (साबे० सासी० नाम—सांप्रदायिक प्रभाव)। ४. साबे० वाके पग की पैंतरी,

कबीर चला जाइ था[१], आगैं मिला[२] खुदाइ ।
मीरां मुझसौं यौं कहा[३], तुझै कीन्हि[४] फुरमाई गाइ ॥१४॥
रांम नांम जिन चीन्हिया[१], झीनां पंजर तासु[२] ।
नैंन[३] न आवै नींदरी[४], अंग न जांमैं मासु[५] ॥१५॥
रांम[१] बियोगी बिकल[२] तन, इन्ह दुखवौ मति कोइ[३] ।
छूवत ही मरि जाइंगे, तालाबेली होइ[४] ॥१६॥[५]
जांनि[१] बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निरबल होइ ।
कहै कबीर तेहि संत का[२], पला न पकड़ै कोइ[३] ॥१७॥
लालन की[१] ओबरी नहीं,[२] हंसन की नहिं पांति[३] ।
सिंहन के लेंहड़ा नहीं, साधु न चलैं जमाति ॥१८॥[५]
कबीर संगति साधु की, कदे[१] न निरफल होइ[२] ।
चंदन होसी (होई ?) बावनां[३], नींब न कहसी (कहई ?) कोइ[४] ॥१९॥

नि० ताका तन की पाहनौं (उर्दू मूल)।

[१४] दा० २९२१, सा० ९०-३४, सासी० ७३-३७, गु० १९७—
१. गु० हज कावे हउ जाइथा। २. सा० सासी० मिले। ३. गु० साई मुझ सिउ लरि परिआ, सा० सासी० मीरां मुझसों कब कही। ४. सा० सासी० कह।

[१५] दा० २९-४, नि० ८-६८, सा० ६०-४, सावे० १४-४३, बी० ५४ गुग्रा० ७२-२१—
१. दा० नि० सा० गुग्रा० कबीर हरि का भावता (पुन० तुल० दा० २९-३ नि० ८-६९ सा० ६०-५ सावे० ७-२२, सासी० ११-५ तथा गुग्रा० ७२-२० की प्रथम पंक्ति जिस का पाठ है : कबीर हरि (सावे० सासी० गुरु) का भावता दूरहिं ते दीसंत।)। २. नि० झीणे पिंजर सांस। ३. दा० नि० गुग्रा० रैंणि (हिन्दी मूल)। ४. दा० नि० गुण० नींदड़ी (राज० प्रभाव)। ५. दा१ नि० अंग न चढ़ई मास, दा२ दा३ नि० गुग्रा अंग न बाढ़ै मास, सा० देह न तन की मास ।

[१६] दा० २९-९, नि० ३१-३, सा० ६०-१०, सावे० १६-२१, सासी० १६-१६, बी० ९८—
१. सावे० नाम (राधा० प्रभाव)। २. नि० खीन। ३. दा० नि० सा० सासी० ताहि न चीन्हे कोइ। ४. दा० नि० सासी० तंबोली का पांन ज्यूं, दिन दिन पीला होइ। ५. सावे० में यह साखी १६-४४ पर भी आती है जिसका पाठ है : नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्हें कोइ। तंबोली का पान ज्यूं, दिन दिन पीला होइ। यह पाठ दा० नि० सा० सासी० के पाठ से मिलता है।

[१७] नि० १२-३, सा० २५-७ सावे० ४४-७, बी० १६७—
१. सा० सावे० जानि, बी० समझि। २. नि० सा० सावे० ता दास कूं। ३. नि० सा० सावे० गंजि न सकै कोइ।

[१८] बी० १७२, सा० ५९-३, सावे० ७४-१३, सासी० ६-१३८—
१. बी० हीरों की। २. सावे० सासी० नहिं बेरियां। ३. बी० मलयागिर नहिं पांति। ४. बी० सिहों के। ५. सा० सावे० सासी० में इस साखी के प्रथम तथा तृतीय चरण परस्पर स्थानांतरित।

[१९] दा० २८-१, नि० २७-१, सा० ५७-६, सावे० १६-७, सासी० ९-५, स० २४-१, गुग्रा० ७०-१५—
१. सावे० कधी (राज० मूल), सासी० कभी। २. सा० जाय। ३. सावे० सासी० बासना। ४. सा० काय (केवल तुकार्थ)।

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत[१] मिलाहिं[२] ।
अंक भरे भरि भेटिए, पाप सरीरउ[३] जाहिं[४] ॥२०॥

जेता मीठा बोलनां[१], तेता साधु न जांनि ।
पहिले थाह दिखाइ करि, ऊंडै देसी[२] (देई ?) आंनि ॥२१॥

कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाइ[१] ।
दुरमति दूर बहावसी[२] (ई), देसी (देई ?) सुमति बताइ ॥२२॥

मथुरा जाउ भावै द्वारिका, भावै जाउ जगनाथ[१] ।
साधु संगति हरि भगति[२] बिनु, कछू न आवै हाथ ॥२३॥

निरबैरी निहकांमता, सांई सेती नेह ।
बिखया सौं न्यारा रहै, संतनि[१] का अंग[२] एह ॥२४॥

खोद खाद[१] धरती सहै, काट कूट बनराइ[२] ।
कुटिल बचन[३] साधू[४] सहै, दूजै[५] सहा न जाइ[६] ॥२५॥

कबीर हरि का भावता[१], दूरहिं तैं[२] दीसंत ।
तन खीनां[३] मन उनमुनां[४], जगि रूठड़ा[५] फिरंत ॥२६॥

---

[२०] दा२८-३, नि० २७-३, सा० ६१-१२ तथा ५७-१५, साबे० ४७-७४, सासी० ६-३, स० ३०-४' गुग्रा० ६९-३३—
१. सासी० साधु । २. साबे० सासी० मिलाय । ३. दा० सरीरूं, साबे० सासी० गुग्रा० सरीरां । ४. साबे० सासी० जाय । सा० ५७-१५ का पाठ है : कबीर सो दिन निरमला, जा दिन संत मिलाइ । अंक भरे भरि भेटिए, पाप देह का जाइ ।

[२१] दा० २७-३, नि० २८-१, सा० ५९-१, साबे० ५०-२, सासी० ७-१६, स० २-१ तथा ७७-१—
१. सासी० बोलबा । २. सासी० ओड़ै ।

[२२] दा० २८-२, नि० २७-२, सा० ५७-१, साबे० १६-८, सासी० ९-१ गुग्रा०, ७०-१३—
१. दा१ दा२ गुग्रा० बेगि करीजै जाइ, दा३ कीजै नित प्रति जाइ । २. दा० नि० गुग्रा० गंवाइसी ।

[२३] दा० २८-३, नि० २७-३, सा० ५७-१२, साबे० १६-९, सासी० ९-२५, गुग्रा० ७०-२७—
१. सा० सासी० मथुरा कासी द्वारिका, हरिद्वार जगन्नाथ । २. सा० साबे० सासी० हरिभजन ।

[२४] दा० २९-१, नि० २९-१, सा० ५९-१, साबे० ४७-६, सासी० ६-१०७, गुग्रा० ११०-३८—
१. साबे० सासी० साधन । २. नि० गुग्रा० सासी० मत, साबे० मति (उर्दू मूल)।

[२५] दा० ३९-२, नि० ४१-१, साबे० ६२-८, सासी० १९-४३, गुग्र० १५२-३—
१. दा० नि० गुग्रा० खूंदन तौ । २. दा० नि० गुग्रा० बाढ़ सहै बनराइ । ३. दा० नि० गुग्र० कुसबद तौ । ४. दा० गुग्रा० हरिजन । ५. साबे० सासी० और से (समानार्थीकरण)। ६. नि० ज्यूं दरिया बूंद समाइ ।

[२६] दा० २९-३, नि० ८-३९, सा० ६०-५, साबे० ७-२२, सासी० ११-५, गुग्रा० ७२-२०—
१. साबे० सासी० गुरु के भावते । २. नि० दूरां सूं । ३. सा० साबे० सासी० छीनां । ४. साबे० सासी० अनमना । ५. सा० साबे० सासी० जगतें रूठि । सासी० में यह साखी ६-२०१ पर भी मिलती है जिसका पाठ है : सतगुरु केरा भावता, दूरहिं ते दीसंत । तन छीना मन उनमना, झूठा रूठ फिरंत ॥

जांन भगत का नित मरन, अनजांनें का राज ।
सर अपसर[१] समझै नहीं, पेट भरन सौं काज ॥२७॥

जांनि बूझि सांची तजै, करै झूठ सौं नेहु ।
ताकी संगति रांम जी[१], सुपिनैं हू जनि[२] देहु ॥२८॥

कबीर खाई कोट की, पांनीं पिवै न कोइ ।
जाइ परै[१] जब गंग मैं, तौ सब गंगोदिक होइ ॥२९॥

बिखै[१] पियारी प्रीति सौं, तब हरि[२] अंतरि नांहि[३] ।
जब अंतरि हरि जी[४] बसै, तब बिखिया सौं चित[५] नांहि ॥३०॥

ऊजल देखि न धीजिए, बग ज्यौं माड़ै ध्यांन ।
धोरै[१] बैठि चपेटही[२], यौं लै बूड़ै ग्यांन ॥३१॥

कबीर[१] लहरि समंद की, केती आवैं जांहि[२] ।
बलिहारी ता दास की, उलटि समावै मांहि[३] ॥३२॥

पंच बलधिया फिरकिड़ी[१], ऊजड़ि ऊजड़ि जाइ ।
बलिहारी वा दास की, पकड़ि जु राखै ठाइं[२] ॥३३॥

भगत[१] हजारी कापड़ा, तामैं मल न समाइ ।
साकत काली कामरी, भावै तहां बिछाइ ॥३४॥

सब घटि मेरा सांइयां, सूनी सेज न कोइ ।
भाग तिनहुं का हे सखी[१], जिंहि घटि परगट होइ ॥३५॥

---

[२७] दा० २९-७, नि० ३१-६, सा० ६०-८, साबे० १२-२२, सासी० १२-३७, गुग्रा० ६४-१५—
१. सा० साबे० सासी० औसर ।

[२८] दा० २८-९, नि० २६-९, सा० ५६-१३, साबे० १९-१, सासी० ९-४८, गुग्रा० ६७-२—
१. साबे० हे प्रभू । २. नि० सा० साबे० सासी० मति ।

[२९] दा० २८-८, नि० २७-१०, सा० ४७-३४, साबे० १६-२२, सासी० ९-२१, गुग्रा० ७०-१९—
१. दा१ दा२ सा० साबे० सासी० मिलै ।

[३०] दा० २९-१३, नि० २१-३८, सा० ४४-१२, साबे० ६१-५, सासी० ७९-१०, गुग्रा० ११०-३९—
१. दा० जदि बिखै, गुग्रा० जब बिषै । २. साबे० सासी० सतगुरु । ३. साबे० तब लगि गुरुमुख नांहि । ४. साबे० सासी० सतगुरु । ५. सा० साबे० सासी० रुचि ।

[३१] दा० २७-२, नि० २८-२, सा० ५८-२, साबे० ५०-३, सासी० ७-१३—
१. साबे० धूरे, सासी० धीरे (हिन्दी मूल) । २. दा० चपेटसी (राज० मूल), नि० चपेटिले ।

[३२] दा० २८-११, नि० १७-३४, सा० ३१-७८, साबे० ७१-१५, सासी० २९-१२—
१. दा० केती । २. दा० कत ऊपजै कत जाइ । ३. दा० उलटी मांहि समाइ ।

[३३] दा२ दा३ २५-१४, नि० ३१-३, सा० ६०-३, साबे० ७-२१, सासी० ११-७—
१. नि० पांच बलद एक फिरकड़ी, सा० साबे० सासी० कबीर पांचों बलधिया । २. दा२ दा३ बबकि अड़ावै ठांइ, सा० साबे० सासी० पकड़ि जु राखै वाहि ।

[३४] दा० २८-१३, नि० २९-३, सा० ५९-३, साबे० ४७-६१, सासी० ६-८७—
१. दा१ भगति (उर्दू मूल), नि० सा० साबे० सासी० साधु ।

[३५] दा० २९-१८, नि० ३१-११, सा० ६०-१४, साबे० ७-२७, ४०-५ (दो बार), सासी० ३९-२—
१. दा३ भाग । दा (पंजाबी मूल) हे सखी, सा० साबे० सासी० बलिहारी वा घट की ।

कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोइ[1] ।
कै जागै बिखई बिख भरा[2], कै दास बंदगी होइ[3] ॥३६॥
चंदन की कुटकी भली, नां बबूर लखरांव[1] ।
साधुन की[2] छपरी[3] भली, नां साकत कौ बड़गांव[4] ॥३७॥[5]
कबीर धनि सो सुंदरी[1], जिन जाया बैसनौं[2] पूत ।
रांम[3] सुमिरि निरभै भया[4], सब जग[5] गया अऊत ॥३८॥
साकत बांह्मन मति[1] मिलै, बैसनौं मिलै चंडाल[2] ।
अंकमाल दे भेटिए[3], मांनौं मिले गोपाल[4] ॥३९॥
कांम[1] मिलावै रांम[2] कौं, जौ कोइ जांनैं राखि ।
कबीर बिचारा क्या करै[3], सुखदेउ बोलै साखि ॥४०॥
कांमिनि अंग अरत[1] भए, रत भए हरि नांइं ।[2]
साखी गोरखनाथ ज्यौं[3], अमर[4] भए कलि मांहि ॥४१॥

---

[३६] दा० २१-२०, नि० ३१-१२, सा० ६०-१६, साबे० ७-२६, ७४-१३ (दो बार), सासी० ११-३—
१. नि० कबीर सब जग लोटिया, जागत नांहीं कोइ । २. दा३ नि० कै जाग्यो बिखहर बिख भरया, ।० साबे० सासी० कै जागे बिखया भरा । ३. सा० साबे० सासी० जोय ।

[३७] दा० ३०-१, नि० ३२-२१, सा० ६१-२१, साबे० ४७-२०, सासी० ६-३३—
१. दा१ दा२ नां बबूल अंबरांव, नि० नां बबूल बनराइ, सा० सासी० नां बाबुल बनराव । २. दा० बेशनौ की । ३. सा० साबे० सासी० झुपरी । ४. दा३ नि० सा० सासी० नां साकुट कौ गांव । ५. सा० तथा सासी० में दोना पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित । साबे० ६१-३५ पर यह साखी पुनः मिलती है, जहाँ इसका पाठ है : चंदन की चुटकी भली, कहा बबूल बनराव । साधुन की छपरी भली, बुरो असाधु को गांव ॥ तुल० नि० ३२-२२ : साधन की छपरी भली, नां साखित का गांव । ऊंचा मिंदर किस काम का, जहां नहीं हरि नांव । इस संबंध में गु० सलोक १५ भी तुलनीय है, जिसका पाठ है : संतन की झुगिआ भली भठि कुसती गांव । आगि लगौ तिह धउलहर जह नाहीं हरि का नाव ।

[३८] दा० ३०-७, ३२-५; सा० ६१-२७, साबे०, ४७-८५, सासी० ६-८४—
१. नि० सा० साबे० सासी० धनि सो माता सुंदरी । २. साबे० सासी० साधू । ३. साबे० सासी० नाम । ४. नि० वै भगति करै भगवंत की । ५. दा३ सा० साबे० सासी० और सब ।

[३९] दा० ३०-३, नि० ३२-१६, सा० ९६-३, साबे० ४७-३२, सासी० ५-३४ तथा ६-१२५—
१. दा३ जिनि । २. दा३ चिंडाल (उर्दू मूल) । ३. सा० साबे० सासी० अंग (उर्दू मूल) भरे भरि भेटिए । ४. नि० सा० साबे० सासी० दयाल । सासी० ६-१२ का पाठ है : साकट ब्राह्मन मति मिलै, साधु मिलौ चंडाल । जाहि मिले सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥

[४०] दा० २९-११, नि० २१-५२, सा० ४४-४, सासी० ७९-३, सा० ११४-१, गुरा० ११२-४०—
१. सा० सासी० सील । २. सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. सा० सासी० कहै कबीर मैं क्या कहूं ।

[४१] दा० २९-१२, सा० ४४-५, सासी० ७९-४, स० ११४-२, गुरा० १११-३९—
१. दा१ सा० सासी० गुरा० बिरकत । २. सा० सासी० सीलहिं राखि बिरक्त भए, हरि के मारग जाहि । ३. दा५ ते नर गोरखनाथ ज्यौं । ४. दा२ दा३ दा४ दा५ सिद्ध ।

स्वारथ कौ सब कोइ सगा[१], जग सगला ही जांनि ।[२]
बिन स्वारथ[३] आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछांनि[४] ॥४२॥
कबीर बन बन मैं फिरा[१], कारन अपनैं रांम ।
रांम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब कांम ॥४३॥

(५) गुर सिख हेरा कौ अंग

ऐसा कोई नां मिलै,[१] अपनां घर[२] देइ जराइ ।
पांचउ[३] लरिके पटकि कै,[४] रहै रांम[५] लौ[६] लाइ ॥१॥
ऐसा कोई नां मिलै, जासौं रहिए लागि ।
सब जग जरता देखिया[१], अपनीं अपनीं आगि ॥२॥[२]
ऐसा कोई नां मिलै, हंमकौं[१] दे उपदेस ।
भौसागर मैं बूड़ते,[२] कर गहि काढ़ै केस ॥३॥
ऐसा कोई नां मिला, समझै सैंन सुजांन ।
ढोल बजंता[१] नां सुनैं, सुरति बिहूंनां कांन ॥४॥
ऐसा कोई नां मिलै, हंमकौं लेइ पिछांनि[१] ।
अपनां करि किरपा करै,[२] लै उतरै[३] मैदांनि ॥५॥

---

[४२] दा० २९-१५, नि० ३१-८ सा० १६-२, सासी० २५-१, स० ७८-२, गुग्रा० ८८-४—
१. नि० सगै स्वारथी सब मिलै। २. सा० सासी० सारा ही जग जांन। ३. नि० आदर। ४. सा० सासी० सो नर चतुर सुजांन।

[४३] सा० ६१-७८, साबे० १४-३३, सासी० ६-७७, गुग्रा० ५४-१०—
१. सा० साबे० सासी० परबत परबत मैं फिरा (पुन० तुल० प्रस्तुत पुस्तक की साखी २-२४ यथा : परबति परबति मैं फिरा, नैंन गंवायौ रोइ।

[१] दा० ४३-४, नि० ४८-४, सा० ५-७, साबे० ६-३, सासी० ४-२, गु० ८३, स० ३२-३—
१. गु० कबीर ऐसा को नही। २. गु० मंदर। ३. दा० पंचू। ४. गु० मारि के, नि० पकड़ि करि। ५. साबे० सासी० नाम। ६. गु० लिउ। गु० में इससे मिलती-जुलती एक साखी अन्यत्र भी मिलती है जिसका पाठ है : ऐसा कोई न जनमिओ अपने घर लावै आगि। पांचउ लरिका जारिके रहै राम लिव लागि॥

[२] दा० ४३-५, नि० ४८-१, सा० ५-३, साबे० ६-२, सासी० ३-५१, स० ३२-१०, बी० ३२२—
१. बी० ई जग जरते देखिया, दा३ सब जुग (उर्दू मूल) दीसै दाझता। २. बी० में इस साखी की दोनों पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित।

[३] दा० ४३-१, नि० ४८-२, सा० ५-१, साबे० ६-१, सासी० ४-१, स० ३२-४—
१. दा३ जाकूं। २. सासी० डूबते।

[४] दा२ ४३-३, नि० ४८-३, सा० ५-३, साबे० ६-५, सासी० ४-५—
१. साबे० ढोल बाजता, नि० ढोलां बागां

[५] दा० ४३-२, नि० ४८-५ सा० ५-१०, साबे० ६-६, सासी० ४-६, स० ३२-५—
१. सासी० समझै सैन सुजान (पुन० तुल० सासी० ४-५ में भी : ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान)। २. नि० अपनां करि कै पाकरै (उर्दू मूल ?)। ३. दा१ दा२ नि० लै उतारै, दा३ लै उतरौ, साबे० सासी० ले उतार।

अैसा कोई नां मिलै, रांम भगति[१] का मीत ।
तन मन सौंपै मिरिग ज्यौं, सुनैं बधिक[२] का गीत ॥६॥
अैसा कोई नां मिलै, सब बिधि देइ[१] बताइ ।
सुन्नि[२] मंडल मैं पुरिख एक[३], ताहि[४] रहै लौ लाइ ॥७॥
हंम देखत जग जात है, जग देखत हंम जांहि ।
अैसा कोई नां मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांहि ॥८॥
सारा सूरा बहु मिलैं, घाइल मिलै न कोइ ।
घाइल कौं[१] घाइल मिलै, तौ रांम भगति[२] दिढ़ होइ ॥९॥
प्रेमीं ढूंढ़त मैं फिरूं, प्रेमीं मिलै न कोइ ।
प्रेमीं सौं प्रेमीं मिलै, तौ सब बिख अंम्रित होइ[१] ॥१०॥
तीन सनेही बहु मिलैं, चौथै मिलै न कोइ ।
सबहिं पियारे रांम के, बैठे परबसि होइ ॥११॥
सरपहिं दूध पियाइए, दूधैं[१] बिष होइ जाइ ।
अैसा कोई नां मिलै, सौं सरपैं बिख खाइ[२] ॥१२॥
हंम घर जारा आपनां, लिए मुराड़ा हाथि[१] ।
अब घर जालौं तास का[२], जो चलै हमारे साथि ॥१३॥

---

[६] दा० ४२-३, नि० ४८-३, सा० ५-११, साबे० १-६७, सासी० १-५२, स० ३२-८—
१. सा० राम भजन, साबे० सासी० सत्तनाम (सांप्रदायिक प्रभाव)। २. दा२ बिधक (उर्दू मूल)।

[७] दा० ४२-७, नि० ४८-८, सा० ५-१५, साबे० ६-८, सासी० ४-४, स० ३२-७—
१. दा२ देउ। २. साबे० कवन। ३. नि० सा० साबे० सासी० है। ४. नि० तहां. साबे० जाहि। ५. सा० साबे० रटूं। सासी० रहूं।

[८] दा० ४२-८, नि० ४८-१०, सा० ५-१५, साबे० ६-३, सासी० ४-१२, स० ३२-३—

[९] ४२-११, नि० ४८-११, सा० ५-१८, साबे० ६-११, सासी० ४-१६ स० ३२-१२—
१. दा० ही। २. साबे० गुरु भक्ती।

[१०] दा० ४२-१२, नि० ४८-१२, सा० ५-१९, साबे० ६-१२, सासी० ४-१८, स० ३२-१३—
१. साबे० गुरु भक्ती दृढ़ होय, सा० सासी० विख में अमृत होइ। साबे० तथा सासी० में यह साखी दो-दो बार मिलती है जिससे दोनों में संकीर्ण-संबंध ज्ञात होता है—तुल० साबे० १५-३३ तथा सासी० १५-२२ : प्रेमी ढूंढ़त मैं फिरूं, प्रेमी मिलै न कोय। प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥ तुल० साबे० १५-३३ तथा सासी० १५-२२ : प्रेमी ढूंढ़त मैं फिरूं, प्रेमी मिलै न कोय। प्रेमी से प्रेमी मिलै, विष से अमृत होय ॥

[११] दा० ४२-३, नि० ४८-९, सा० ५-१६, सासी० ४-१४, स० ३२-११—

[१२] दा० ५५-३, नि० ४८-१४, सा० ५-२१, साबे० ६-१४, सासी० ४-१३—
१. नि० सो तो, सा० साबे० सासी० सोई। २. सा० साबे० सासी० आपै ही विष खाइ ॥

[१३] दा० ४२-१३, नि० ५-१२, सा० ५-८, साबे० ६-४, सासी० ४-११ तथा ४२-४२—
१. साबे० सासी० लूका लीन्हा हाथ। २. नि० औरां का भी जालिसी (राज०), साबे० सासी०

(६) दीनता बीनती कौ अंग

कबीर कूता रांम का[१], सुतिया मेरा नांउं।
गले रांम की जेवरी[२], जित[३] खैंचै[४] तित[५] जाउं ॥१॥
मेरा मुझ मैं[१] किछु नहीं, जो किछु है सो तेरा[२]।
तेरा तुझकौं सौंपतां,[३] क्या लागै मेरा[४] ॥२॥
निगुसावां बहि जाइगा,[१] जाकै थांघी[२] नांहीं कोइ।
दीन[३] गरीबी बंदगी[४], करतां होइ सु होइ ॥३॥
कबीर सब जग ढूंढ़िया[१], बुरा न मिलिया कोइ।
कबिरा सब काहू बुरा[२], कबीरै[३] बुरा न होइ ॥४॥
करता[१] केरे बहुत गुन, औगुन कोई नांहिं।
जौ दिल खोजौं आपनीं[२], तौ सब औगुन मुझ मांहिं ॥५॥
जद[१] का माई जनमिया, कदे[२] न पाया सुख।
डारी डारी मैं फिरौं, पातैं पातैं[३] दुख ॥६॥
औसर बीता अलप तन, पीव रहा परदेस।
कलंक उतारौ सांइयां[१], भांनौं भरम अंदेस ॥७॥

वाहू का घर फूंक दूं। तुल० सासी० ४२-४२ : मैं मेरा घर जालिया, लिया पलीता हाथ। जो घर जारौ आपना, चलौ हमारै साथ॥

[१] दा० ११-१४, नि० १५-२६, सा० ६-१८, साबे० ७-१२, सासी० १०-७, गु० ७४—
१. साबे० सेवक कुत्ता गुरू का, सा० सासी० सेवक कुत्ता राम का [यह पाठ-परिवर्तन सांप्रदायिक मनोवृत्ति के कारण किया हुआ ज्ञात होता है, क्योंकि कबीर को राम का कुत्ता बनाना सांप्रदायिक मर्यादा के विरुद्ध है।]। २. गु० गले हमारे जेवरी, सा० साबे० सासी० डोरी लागी प्रेम की। ३. गु० जह। ४. गु० खिचै। ५. गु० तह।

[२] दा० ११-३, सा० ६-२०, साबे० ४-५ तथा ३६-२४, सासी० ८४-१५, गुग्र० २०-३—
१. गुग्र० महि। २. सा० साबे० सासी० तोर, साबे० तुज्झ। ३. साबे० सासी० सौंपते। ४. सा० साबे० लागैगा मोर, सासी० लागत है मोर, साबे० (२) लागत है मुज्झ।

[३] दा० ४१-११, नि० ५१-१५, गु० ५१, गुग्र० ३३-३—
१. गु० कबीर निगुसाएं बहि गए। २. दा५ थंभी। ३. नि० दास। ४. गु० आपुनी।

[४] दा३ ३९-१०, नि० ५५-७, सा० ७२-१९, साबे० ६५-११, सासी० ८३-१२, स० १२७-१—
१. दा३ नि० बुरा बुरा सब कोइ कहै, सा० साबे० सासी० बुरा जो देखन मैं चला। २. दा३ कबीर देख्या आपकूं, सा० साबे० सासी० जो दिल खोजौ आपना (पुन० तुल० अगली साखी का तृतीय चरण) ३. नि० सा० साबे० सासी० मुझ सा।

[५] दा० ५६-३, नि० ६१-३, सा० १०५-१४, साबे० ३६-११, सासी० ३२-१४, गुग्र० ३४-३—
१. सा० साबे० सासी० सांई। २. सा० साबे० सासी० आपना।

[६] दा० ३८-११, नि० ४०-२०, सा० १०-२१, साबे० ८४-३१, सासी० ८४-२१, गुग्र० १९-११—
१. सा० साबे० सासी० जब। २. सा० सासी० कितै। ३. दा० पातौं पातौं, सा० साबे० सासी० पात पात में। इस साखी से सासी० ७०-१ तुलनीय है : जा दिन ते जिव जनमिया, कबहुं न पाया सूख। डालै डालै मैं फिरा पातै पातै दूख॥

[७] दा० ५६-४, नि० ६१-७, सा० १०५-२०, साबे० ३६-१३, सासी० ८४-१०, गुग्र० ३५-२१—
१. दा० गुग्र० केसवा, नि० सा० रांम जी।

ज्यौं मेरा मन तुज्झ सौं[1], यौं जौ तेरा[2] होइ ।
तौ अहरनि ताता लोह ज्यौं[3], संधि न लखई कोइ ॥८॥
नां[1] परतीति न प्रेम रस, नां इस[2] तन मैं ढंग ।[3]
क्या जांनौं[4] उस पीव सौं, कैसै[5] रहसी रंग ॥९॥
कबीर भूल बिगड़िया[1], तूं नां करि मैला चित्त[2] ।
साहिब गरवा लोड़िए[3], नफर बिगाड़ै नित्त[4] ॥१०॥
दीन गरीबी दीन कौं, दूंदर कौं अभिमांन ।
दुंदर दिल बिख सौं भरी[1], दीन गरीबी रांम[2] ॥११॥
कबीर बिचारा करै बीनती[1], भौसागर कै तांईं ।
बंदे ऊपरि जोर होत है[2], जम कौ बरजि गुसांईं ॥१२॥

(७) पिउ पहिचानिबे कौ अंग

कस्तूरी[1] कुंडलि[2] बसै, म्रिग[3] ढूंढ़ै बन मांहि ।
अैसै घटि घटि रांम है,[4] दुनिया देखै[5] नांहि ॥१॥

---

[८] दा० ५६-७, नि० ६१-१०, सा० ८३-१०, साबे० १५-२१ तथा ३६-१९ (दोबार), सासी० १५-४६ तथा २३-३८ (दो बार) गुरा० १९-४१ तथा ३५-१७ (दो बार)—
१. नि० कबीर मेरा मन तुझ सूं, साबे० सासी० मेरा मन जो तोहि सों। २. नि० यूं तेरा मुझि सूं। ३. दा० गुरा० ताता लोहा यौं मिलै। यह साखी साबे० सासी० तथा गुरा० में दो-दो बार आती है जिससे तीनों में संकीर्ण-संबंध ज्ञात होता है।

[९] दा० ११-१६, नि० ६१-१५, सा० १०५-२२, साबे० ३६-२२, गुरा० १९-३४—
१. दा० मन। २. दा२ को। ३. गुरा० नां मुझ रूप न रंग है, नां मुझ एकौ ढंग। ४. नि० सा० जानूं। ५. नि० साबे० क्यूं करि, गुरा० क्यूं ही।

[१०] दा० ५६-२, नि० ६१-२, सा० १०५-११, सासी० ३३-३२, गुरा० ३४-१—
१. नि० बंदे बहुत बिगाड़िया। २. नि. सा० सासी० करि करि मैला चित्त। ३. सा० नफरि भी ऐसा चाहिए, सासी० नफर तो दीन अधीन है। ४. सा० सासी० साहिब राखे हित।

[११] दा० ४१-१२, नि० २९-३, सा० ३९-५, सासी० ८३-३, गुरा० ३३-४—
१. नि० दुंदर दोजिग जाइगा, गुण० दुंदर दिल दोजिग महीं, सा० सासी० दुंदर तौ विष सो भरा। २. सा० सासी० जान।

[१२] दा० ५६-५, नि० ६१-४, सा० १०५-३, सासी० ३३-३९, गुरा० ३५-१—
१. नि० कबीर करि न बीनती, सा० सासी० कबीर करत है बीनती। २. सा० सासी० बंदै जोरा होत है।

[१] दा० ५३-१, नि० ५९-२, सा० १०३-१, साबे० ४०-१, सासी० ४१-१२, स० ५०-३, गुरा० १३६-८—
१. दा२ किसतूरी (उर्दू मूल)। २. साखी० नाभी। ३. नि० मृघ। सा० अैसे घट घट ब्रह्म है, साबे० सासी० ऐसे घट में पीव है (सांप्रदायिक प्रभाव)। ५. सा० सासी० जानै।

ज्यौं नैंननि मैं[1] पूतरी, त्यौं खालिक घट मांहिं ।
मूरिख लोग न जांनहीं, बाहरि ढूंढ़न जांहिं ॥२॥
संपुट[1] मांहिं समाइया, सो साहिब नहिं होइ ।
सकल मांड मैं रमि रहा, साहिब कहिए सोइ[2] ॥३॥
कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोइ ।
हिलमिल कै संगि खेलिहूं[1], कदे[2] बिछोह न होइ ॥४॥
भोरै भूली खसम कै, बहुत किया बिभिचार[1] ।
सतगुर आंनि[2] बताइया, पूरबला भरतार ॥५॥
सो सांई[1] तन मैं बसै, मरम[2] न जांनैं तास[3]
कस्तूरी का मिरिग[4] ज्यौं, फिरि फिरि ढूंढ़ै[5] घास ॥६॥
जाकै मुंह माथा नहीं, नांहीं रूप कुरूप[1] ।
पुहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप ॥७॥
ऐसी अदबुद[1] मति कथौ, अदबुद राखि लुकाइ[2] ।
बेद कुरांनौं गमि नहीं[3], कहें न कोइ पतियाइ ॥८॥
भारी कहूं तौ बहु डरूं, हरुवा[1] कहूं तौ झूठ[2] ।
मैं क्या जांनूं रांम कौं[3], नैंनां कबहुं[4] न दीठ[5] ॥९॥

---

[२] दा० ५३-१, नि० ५१-८, सा० १०४-५, साबे० ४०-३, सासी० ४१-४, स० ५०-२, गुग्रा०१ ३६-२७—
१. दा० नैनहुं मैं, नि० नैनूं मैं ।

[३] दा० ३६-१, नि० ३६-१, सा० ६८-२०, साबे० ३१-८, सासी० ५४-८, गुग्रा० ५०-२—
१. दा० नि० गुग्रा० संपटि (उर्दू मूल)। २. सा० साबे० सासी० मेरा साहिब सोय ।

[४] दा० ५१-१, नि० ४-४७, सा० १०७-१, साबे० ८४-४, सासी० ४५-२, गुग्रा० १७१-१—
१. दा० नि० हिलमिल ह्वै करि खेलिस्यूं । २. सासी० कबहुं, साबे० कधी (राज०)।

[५] दा० ३६-३, नि० १५-२३, सा० २७-२६, साबे० १-२१, सासी० २२-४१—
१. सा० साबे० सासी० कबहुं न किया विचार । २. दा१ दा२ गुरू, दा३ सरू (उर्दू मूल), नि० सही ।

[६] दा० ५२-३, नि० ५१-५, सा० १०३-२, साबे० ४०-२, सासी० ४१-१४—
१. सा० सासी० साहिब । २. दा० भ्रम्यो, नि० भरम । ३. साबे० तेरा सांई तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास । ४. दा० मृग, नि० मृघ । ५. दा० सूंघै । सा० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी आती है जहाँ इसका पाठ साबे० से मिलता है, तुल० सा० १०३-४ तथा सासी० ४१-११ : तेरा सांई तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास । कस्तूरी का मिरग ज्यौं, फिरि फिरि ढूंढ़ै घास ॥

[७] दा० ३६-३, नि० ३६-३, सा० ६८-२२, साबे० ३१-१०, सासी० ५४-१०—
१. साबे० सासी० अरूप ।

[८] दा० ८-३, नि० १३-३, सा० २५-३, साबे० ४४-३, सासी० ३८-१२—
१. नि० उदबुद (उर्दू मूल), सासी० अद्भुत । २. साबे० सासी० कथो तो धरो छिपाय ।
३. सा० साबे० सासी० बेद कुराना ना लिखा ।

[९] दा० ८-१, नि० १३-१, सा० २५-१, साबे० ४४-१, सासी० ३८-१०—
१. साबे० सासी० हलका । २. सासी० झीठ (केवल तुकार्थ)। ३. साबे० पीव को (साम्प्रदायिक प्रभाव)। ४. सा० साबे० कछू । ५. नि० मैं तौ जांणौं रांम कूं, नैनां अंतरि दीठ ।

दीठा है तौ कस कहूं,[१] कहें[२] न[३] कोइ पतिआइ ।
हरि[४] जैसा तैसा रहै[५], तूं हरखि हरखि गुन गाइ[६] ॥१०॥
रहै निराला मांड तैं, सकल मांड तिहि मांहि ।
कबीर सेवै तासकौं[१], दूजा सेवै नांहि ॥११॥
तिन कै ओल्है[१] रांम है, परबत मेरै भाइं ।
सतगुर मिलि परचै भया, तब पाया घट मांहि ॥१२॥
नां कछु किया न करहिंगे, नां करनैं जोग सरीर[१] ।
जो कछु किया सु हरि किया[२], भया कबीर कबीर[३] ॥१॥

(८) संम्रथाई कौ अंग

सात समुंद की[१] मसि[२] करौं, लेखनि सब बनराइ[३] ।
धरती सब कागद करौं[४], तऊ[५] हरि गुन[६] लिखा[७] न जाइ ॥२॥
कबीर करनीं क्या करै,[१] जौ रांम न करै सहाइ[२] ।
जिहिं जिहिं[३] डारी पग धरौं, सोई नइ नइ जाइ[४] ॥३॥
कीयां कछू न होत है, अनकीयां सब होइ ।
जौ कीएं ही होत है[१], तौ करता औरै कोइ ॥४॥

---

[१०] दा० ८-२, नि० १२-२, सा० २५-२, साबे० ४४-२, सासी० ३८-११, गु० १२२—
१. गु० कबीर देखि के किह कहउ । २. दा० नि० कह्यां (राज० मूल), सा० सासी० कहूं । ३. सा० सासी० तो । ४. साबे० सांई । ५. गु० उही (उर्दू मूल) । ६. गु० रहउ हरखि गुन गाइ ।

[११] दा० ३६-२, नि० ३६-२, सा० ६८-१९, सासी० ५४-२७, गुरा० ५०-३ —
१. नि० ता रांम कूं ।

[१२] दा० ५२-७, नि० ५९-१४, सा० १०३-१०, सासी० ४१-१८, गुरा० १३६-३४—
१. सा० सासी० तिल कै ओटे ।

[१] दा० ३८-१, नि० ४०-३, सा० ७२-८, साबे० ३८-४, सासी० ३२-५, गुरा० ६२—
१. गु० ना हम किआ न करहिगे न करि सकै सरीर । २. गु. किआ जानउ किछु हरि किया, साबे० सासी० जो कुछ किया साहिब किया (राधास्वामी तथा कबीरपंथी प्रभाव) ३. नि० सा० साबे० सासी० तातें भया कबीर ।

[२] दा० ३८-५, नि० ४०-८, सा० ७२-२१, साबे० १-१४, सासी० १-५५, गु० ८१—
१. गु० समुंदहि । २. गु० मसु (उर्दू मूल) । ३. गु० कलम करउं बनराइ । ४. गु० बसुधा कागद जउ करउं । ५. सा० साबे० सासी० गु० में 'तऊ' शब्द नहीं है, केवल दा० नि० में है । ६. गु० हरि जसु, साबे० सासी० गुरु गुन (राधा० प्रभाव) । ७. गु० लिखनु । सा० साबे० तथा सासी० में इस साखी के प्रथम तथा तृतीय चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[३] दा० ३८-१०, नि० ४०-१९, सा० ४२-८, साबे० २८-१७, सासी० ५२-२, तथा ७०-१०, गु० ९७—
१. नि० सासी० (७०-१०) करनि विचारी क्या करै, गु० कारनु बपुरा किआ करै । २. साबे० सासी० (५२-२) जो गुरु नहीं सहाय, सासी० (७०-१०) हरि नहिं होय सहाय । ३. नि० ज्यां ज्यां । ४. सा० साबे० सासी० (७०-१०) नमि नमि, सासी० (५२-२) निव निव, गु० मुरि मुरि ।

[४] दा० ३८-२, नि० ४०-५, सा० ७२-१९, साबे० ३८-६, सासी० ३२-७—
१. सा० साबे० सासी० कीया जो कछु होत तो ।

अबरन कौं क्या बरनिए, मोपै बरनि[१] न जाइ ।
अबरन बरने बाहिरा[२], करि करि थका उपाइ[३] ॥५॥
हेरत हेरत हे सखी[१], रहा कबीर हिराइ[२] ।
बूंद समांनीं समुंद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥६॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ ।
समुंद समांनां बूंद मैं, सो कत हेरा जाइ ॥७॥
जिसहिं न कोई[१] तिसहिं तूं, जिस तूं तिस सब कोइ[२] ।
दरिगह तेरी सांइयां, मेटि न सक्कै कोइ[३] ॥८॥
भौसागर[१] जल बिख भरा[२], मन नहिं बांधैं धीर ।
सबल[३] सनेही हरि मिला[४], तब उतरा पारि कबीर ॥९॥
सांई मेरा बांनिया, सहजि करै ब्यौपार ।
बिन डांड़ी बिन पालरै, तोलै सब संसार ॥१०॥
सांई[१] सौं सब होत है, बंदे सौं[२] कछु नांहिं ।
राई तैं परबत करै, परबत राई मांहिं[३] ॥११॥

---

[५] दा० ३८-३, नि० ४०-१, सा० ७२-२२, साबे० ३८-१०, सासी० ८४-१९—
१. दा० लख्या । २. सा० बाहरी (उर्दू मूल) । ३. दा० नि० अपनां बांनां बाहिया, कहि कहि थाके माइ ।

[६] दा० ७-३, नि० १२-१, सा० ५-३०, साबे० ६-२५, तथा ८४-२३, सासी० ४-२९—
१. सा० साबे० सासी० हेरिया । २. साबे० (८४-२३) हेरत गया हिराय ।

[७] दा० ७-४, नि० १२-२, सा० ५-३१, साबे० ६-२६ तथा ८४-२३, सासी० ४-३०—

[८] दा० ३८-३, नि० ४०-३, सा० ७२-१२, साबे० ३८-७, सासी० ३३-१८—
१. सा० साबे० सासी० जिस नहिं कोई । २. सा० साबे० सासी० होय । ३. दा० नि० नामहरू मन होइ (?) ।

[९] दा० ५०-१, नि० ५८-१, सा० १०२-८, साबे० १-११७, ८४-५० (दो बार), सासी० ५३-२७—
१. दा० भौ समंद । २. नि० भौसागर सूभर भरया । ३. साबे० (८४-५०) सबद (उर्दू मूल) । ४. साबे० (१-१७) गुर, (८४-५०) पिउ (राधास्वामी प्रभाव) ।

[१०] दा० ३८-८, नि० ४०-१५, सा० ७२-३०, साबे० ३८-१३, सासी० ३३-१३—
याज्ञिक संग्रह (ना० प्र० स०) की ३४६-५५ संख्यक पोथी में यह साखी लालदास के नाम से मिलती है, वहाँ इसका पाठ है : लाल जी साहिब मेरा बानिया, सहज किया बोहार । बिन डंडी बिन पालड़ै, तोले इह संसार ॥२१॥ किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह कबीर की प्रामाणिक साखियों में आती है । ज्ञात होता है कि कबीर से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण लालदास ने उनकी कुछ साखियाँ अपने नाम से ग्रहण कर लीं अथवा संभवतः किसी प्रतिलिपिकार ने भ्रम से इन्हें लालदास की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया हो, क्योंकि उक्त पोथी में लालदास के नाम से ऐसी अनेक साखियाँ मिलती हैं जो वास्तव में कबीर की हैं ।

[११] दा० ३८-१२, नि० ४०-२, सा० ७२-१, साबे० ३८-१, सासी० ३३-१—
१. दा० सा० साबे० सासी० साहिब । २. सा० साबे० सासी० से । ३. साबे० नांइ ।

सांई मैं तुझ[1] बाहिरा[2], कौड़ी हू न लहाउं[3] ।
जौ सिर ऊपरि तुम धनीं[4], तौ लाखौं मोल कराउं[5] ॥१२॥

एक खड़ा ही नां लहै, एक[1] खड़ा[2] बिललाइ ।
समरथ मेरा सांइयां[3], सूतां देइ जगाइ ॥१३॥

कबीर पूछै रांम सौं, सकल भवन पति राइ ।
सबही करि अलगा[1] रहै, सो बिधि देहु बताइ[2] ॥१४॥

कबीर जांचन जाइथा, आगैं मिला अजंच ।
लै चाला घरि आपनैं, भारी पाया संच[2] ॥१५॥

आदि मध्य अरु अंत लौं[1], अबिहड़ सदा अभंग ।
कबीर उस करतार का, सेवग तजै न संग[2] ॥१६॥

कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ ।
गुन औगुन बिहड़ै[1] नहीं, स्वारथ बंधी[2] लोइ ॥१७॥

(६) परचा कौ अंग

जब मैं था तब हरि[1] नहीं, अब हरि[1] है मैं नांहि ।
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देखा मांहि[2] ॥१॥[3]

---

[१२] नि० ४०-२६, सा० ७१-५, साबे० ३८-१२, सासी० ३२-१२, गुग्ग० ५१-६२—
१. साबे० सांई तुझ से । २. गुग्ग० बाहरी (राज० नागरी मूल) । ३. साबे० कौड़ी नाहिं बिकाय, सासी० कौड़ी हू नहिं पाउं । ४. गुग्ग० खड़ा । ५. साबे० महंगे मोल कराय, सासी० महंगे मोल बिकाउं ।

[१३] दा० ३८-४, नि० ४८-७, सा० ७२-१३, सासी० ३२-२४, स० ४६-३—
१. दा० और । २. सा० सासी० ऊभा । ३. दा० सांई मेरा सुलखनां ।

[१४] दा० ५७-१, नि० ४६-१, सा० ८०-१, सासी० ३९-६, स० ४४-१—
१. सा० सासी० न्यारा । २. दा० सो बिधि हमहिं बताइ, सा० सासी० सोई देहु बताय ।

[१५] दा० ५०-१२, नि० ५८-१२, सा० १०२-१२, सासी० ५२-३१, गुग्ग० ११५-२३—
१. नि० सा० सासी० आप सरीखा करि लिया । २. नि० धरि मस्तग परि हाथ ।

[१६] दा० ५९-३, नि०, सा० १०७-२, सासी० ४५-३, गुग्ग० १७९-३०—
१. सा० सासी० आदि अंत अरु मध्य लौं । २. सा० सासी० कभी न छांड़ै संग ।

[१७] दा० ५९-२, सा० ७३-५, सासी० ४५-५, गुग्ग० १७९-८—
१. सा० सासी० बूड़ै (उर्दू मूल), गुग्ग० बिसरै । २. सा० सासी० बंधा (नागरी मूल) ।

[१] दा० ५-३५, नि० ८-२५, सा० २८-३४, साबे० १५-१०, सासी० १४-१०१, स० १२६-२, गुग्ग० ४२-५४—
१. सा० गुग्ग० गुरु । २. सा० कबीर नगरी एक में, दो राजा न समाहिं, साबे० प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाहि । ३. सासी० में यह साखी दो अन्य स्थलों पर भी मिलती है, तुल० सासी० १४-४७ : जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं । कबीर नगरी एक में, दो राजा न समाहिं ॥ तथा सासी० १५-२९ : जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं । प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाहि ॥ पहली साखी सा० से तथा दूसरी साबे० से ली हुई ज्ञात होती है ।

पारब्रह्म के तेज का[१], कैसा है उनमांन[२] ।
कहिबे कौं[३] सोभा नहीं, देखें ही[४] परवांन ।।२।।
भली भई जो [१]भैं परा[२], गई दसा सब भूलि ।
पाला गलि[४] पांनीं भया, ढुरि मिलिया उस कूलि[५] ।।३।।
जा कारनि मैं जाइथा[१], सोई पाया ठौर[२] ।
सोई फिरि आपन भया, जासौं कहता[४] और ।।४।।
अगम अगोचर गमि नहीं, जहां जगमगै[१] जोति ।
तहां[२] कबीरा बंदगी[३], जहां[४] पाप पुन्नि नहिं छोति ।।५।।
पंखि[१] उड़ानीं गगन कौं, पिंड रहा परदेस ।
पांनीं पीया चंचु बिनु[२], भूलि गया यहु[३] देस ।।६।।
पंजरि प्रेम प्रकासिया, जागी[१] जोति[२] अनंत ।
संसै खूटा[३] सुख भया[४], मिला पियारा कंत ।।७।।
मन लागा उनमन्न सौं, गगन पहूंचा[१] जाइ ।
चांद बिहूनां चांदिनां, तहां अलख निरंजन राइ[२] ।।८।।

---

[२] दा० ५-३, नि० ८-२, सा० १९-७४ तथा २८-३, सावे० ४२-२५, सासी० १४-४० तथा १६-८४, गु० १२१, गुग्रा० ४२-३१—
१. गु० चरन कंवल की मउज को । २. गु० कहु कैसा उनमान । ३. सा० कहिबे री (राज०), सावे० सासी० कहिबे की । ४. दा० नि० गुग्रा० देख्या ही, सा० सावे० सासी० देखे ही, सा० १९-७४ तथा सासी० १६-८४ में इस साखी का पाठ है : अबिनासी की सेज का, कैसा है उनमान । कहिबे को सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥ उक्त दोनों प्रतियों में एक ही प्रकार की पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में प्रक्षेप-संबंध सिद्ध होता है ।

[३] दा० ५-१८, नि० ८-१६, सा० २८-२०, सावे० १६-१७, सासी० ६६-२, गु० १७७—
१. गु० भउ । २. नि० सा० मिट्या, सासी० पड़ी । ३. गु० सा० सासी० दिसा उर्दू मूल) । ४. गु० ओरा गरि । ५. गु० जाइ मिलिओ ढलि कूलि, सासी० ढुलि मिलिया उस कूल ।

[४] दा० ५-२७, नि० ८-२६, सा० २०-३५, सावे० ४३-५७, सासी० १४-७७, गु० ८७—
१. गु० कबीर जाकउ खोजते । २. सा० सावे० सासी० सा तो पाया ठौर । ३. गु० सोई फिरि कै तूं भइआ । ४. दा२ कहिता (उर्दू मूल) ।

[५] दा० ५-३, नि० ८-३, सा० २०-४, सावे० ४३-३४, सासी० १४-१९, स० ५०-१—
१. सा० सासी० झिलमिली (उर्दूमूल), सावे० झिलमिलै (उर्दू मूल) । २. दा२ जहां । ३. सासी० रमि रहा ।

[६] दा० ५-२०, नि० ४२-१०, सा० २८-२३, सावे० ४३-५२, सासी० २९-१४, सा० ५८-५—
१. सा० सावे० सासी० पंछी । २. नि० चंच भरि, सा० सावे० सासी० चोंच बिन । ३. सा० सावे० सासी० वह । ४. दा२ तहां ।

[७] दा० ५-१३, नि० ८-८, सा० २८-१२, सावे० ४२-१४, सासी० १४-२३, गुग्रा० ४२-३—
१. दा० नि० गुग्रा० जाग्या । २ दा० नि० गुग्रा० जोग । ३. सावे० सासी० छूटा । ४. सा० सावे० सासी० भय मिटा ।

[८] दा० ५-१५, नि० ८-१२, सा० २०-१७, सावे० ४३-१७, सासी० १४-२६, गुग्रा० ५२-१७—
१. दा३ पहूंता (राज० मूल) । २. तुल० गोरखबानी, सबदी १७१-२ : चंद बिहूंणां चांदिणां

पांनीं ही तैं हिम भया, हिम ही गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया[1], अब कछु कहा न जाइ ॥९॥
सुरति समांनीं निरति मैं, अजपा मांहैं[1] जाप ।
लेख समांनां अलेख मैं, यौं आपा मांहैं[1] आप ॥१०॥
सचु[1] पाया सुख ऊपनां[2], दिल दरिया भरपूरि[3] ।
सकल पाप सहजैं गए, जब सांईं[4] मिला हजूरि ॥११॥
कबीर देखा इक अगम[1], महिमां कही न जाइ ।
तेज पुंज पारस[2] धनीं, नैंननि रहा समाइ ॥१२॥
नींव बिहूंनां देहुरा, देह बिहूंनां देव ।
कबीर तहां बिलंबिया, करै अलख की[1] सेव ॥१३॥
देवल मांहीं देहुरी, तिल जेता[1] बिस्तार ।
मांहैं पांती मांहि[2] जल, मांहैं पूजनहार ॥१४॥
कबीर तेज अनंत का, मांनौं ऊगी[1] सूरिज सेनि ।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेनि[2] ॥१५॥

तहां देख्या श्री गोरखराइ ॥

[९] दा० ५-१७, नि० ८-१४, सा० २०-१९, साबे० ४२-५०, सासी० १५-२८—
१. नि० कबीर जो था सो भया ।

[१०] दा० ५-२३, नि० ? सा० २०-२६, साबे० ४२-१९, सासी० १४-३०, गुग्रा० ४२-२४—
१. सा० साबे० सासी० माहीं ।

[११] दा० ५-२६, नि० ८-२०, सा० २०-२८, साबे० ४२-५३, सासी० २-३५ तथा १६-३३, गुग्रा० ४२-२५—
१. साबे० सुचि । २. सा० साबे० सासी० ऊपजा । ३. दा१ दा२ अरु दिल दरिया पूरि । ४. साबे० साहिब, सासी० सतगुरु । सासी० १४-३३ का पाठ है : सुचि पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूरि । सकल पाप सहजै गया, साहिब मिले हजूर ॥ (यह पाठ साबे० के समान है) ।

[१२] दा० ५-३८, नि० ८-२७, सा० २०-३७, साबे० ४२-३७, ४२-५८, सासी० १४-५१ गुग्रा० ४२-३५—
१. दा० नि० सासी० अंग (नागरी मूल) । २. सा० साबे० परसा ।

[१३] दा० ५-४१, नि० ८-४६, सा० २०-३९, साबे० ४२-३१, सासी० १६-३६, गुग्रा० ४२-११—
१. नि० अलख पुरुष की ।

[१४] दा० ५-४२, नि० ८-४२, सा० ३०-४०, साबे० १४-३७, सासी० ११०-७, गुग्रा० ४३-१२—
१. दा० गुग्रा० जेहै (राज० मूल) । २. गुग्रा० सा० सासी० फूल ।

[१५] दा० ५-१, नि० ८-१, सा० २०-२, साबे० ४२-४३, सासी० १४-५०—
१. नि० ऊगा (राज० नागरी मूल), सा० साबे० सासी० में 'ऊगा' या 'ऊगी' नहीं है । २. सा० साबे० सासी० नैनि ।

कबीर मन मधुकर भया, करै[१] निरंतर[२] बास ।
कंवल ज फूला[३] नीर[४] बिनु, निरखै[५] कोइ निज दास ॥१६॥

अंतरि[१] कंवल[२] प्रकासिया[३], ब्रह्म बास तहां होइ[४] ।
मन भंवरा[५] जहं लुबधिया, जांनैगा जन कोइ ॥१७॥

साइर नांहीं सीप नहिं[१], स्वाति बूंद भी नांहिं ।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिखर[२] गढ़[३] मांहिं ॥१८॥

घट मैं[१] औघट पाइया[२], औघट मांहैं घाट ।
कहै कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट ॥१९॥

सूर[१] समांनां चांद मैं, दुहूं[२] किया घर एक ।
मन का चेता तब भया, कछु पूरबला लेख[३] ॥२०॥

हद्द छांड़ि बेहद गया, सुन्नि किया अस्थांन[१] ।
मुनिजन महल[२] न पावहीं, तहां किया[३] बिसरांम ॥२१॥

देखौ करम कबीर का, कछु पूरबला[१] लेख ।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख[२] ॥२२॥

---

[१६] दा० ५-६, नि० ८-४, सा० २८-५, साबे० ४२-४५, सासी० १४-५२—
१. दा० नि० रह्या । २. साबे० नैंरतरु (उर्दू मूल) । ३. सासी० कमल खिला है । ४. दा१ दा२ जलइ । ५. दा० देखै । तुल० दा० ५-५ : हदे छांड़ि बेहद गया, हुवा निरंतर बास । कंवल ज फूल्या फूल बिनु, को निरखै निज दास ॥

[१७] दा० ५-७, नि० ८-३६, सा० २८-७८, साबे० ४२-६७, सासी० ३८-४०—
१. सा० साबे० कबीर । २. सा कंचन । ३. सा० भासिया । ४. दा२ बास थैं (उर्दू मूल) सोइ । ५. दा२ भुंवरा (उर्दू मूल ?) । सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० सासी० १४-५८ : कबीर कंचन भासिया, ब्रह्म बास जहां होइ । मन भौंरा तहां लुबधिया, जानैगा जन कोइ ॥ (यह पाठ सा० से लिया हुआ ज्ञात होता है) ।

[१८] दा० ५-८, नि० ८-५, सा० २८-३, साबे० ४३-४, सासी० १४-७२—
१. दा० साइर नांहीं सीप बिनु, साबे० सासी० सीप नहीं सायर नहीं । २. सासी० सरवर (नागरी मूल) । ३. सा० साबे० सासी० घट ।

[१९] दा० ५-३, नि० ८-३, सा० २८-३, साबे० ४३-४७, सासी० १४-७५—
१. दा१ मांहैं । २. दा१ लह्या ।

[२०] दा० ५-१०, नि० ८-७, सा० २०-१०, साबे० ४३-२६, सासी० १४-३१—
१. साबे० सासी० सुरज । २. सा० साबे० सासी० दोउ । ३. सा० साबे० सासी० कछु पूरब जनम का लेख ।

[२१] दा० ४-११, नि० ६४-३, सा० ५-११, साबे० ४९-४, सासी० ४४-४—
१. दा१ दा२ किया सुन्न असनांन । २. साबे० जांन । ३. दा० नि० किया ।

[२२] दा० ५-१२, नि० ८-११, सा० २८-११, साबे० ४२-४९, सासी० १४-१०८ तथा १४-४६—
१. दा० पूरब जनम का । २. सा० साबे० सासी० किए सो दोस्त अलेख । यह साखी सासी० में एक स्थल पर और मिलती है; तुल० सासी० १४-४६ : कुछ करनी कुछ करम गति, कुछ पूरबले लेख । देखौ भाग कबीर का, लेख से भया अलेख ॥ नि० में भी इससे मिलती-जुलती एक साखी मिलती है किन्तु उसकी दूसरी पंक्ति कुछ भिन्न है; तुल० नि० ४०-१८ : क्यूं करनीं क्यूं करमगति, क्यूं पूरबला लेख । क्यूं मेरा सांई मैं बलू, क्यूं हमही तणां बिसेख ।

पंजरि[१] प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास ।
मुखि कसतूरी महमही[२], बांनीं फूटी बास ॥२३॥

सुरति समांनीं निरति मैं, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परचा[१] भया, तब खुलि गया सिंभु[२] दुवार ॥२४॥

आया था संसार मैं, देखन कौं[१] बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि[२] अनूप ॥२५॥

अंक भरे भरि भेटिया, मन नहिं बांधै धीर[१] ।
कहै कबीर वह क्यौं मिलै, जब लग दोइ सरीर ॥२६॥

जा दिन किरतिम नां हुता, होता हाट न बाट[१] ।
हुता[२] कबीरा रांम जन[३], जिन देखा औघट घाट ॥२७॥

हरि संगति[१] सीतल भया, मिटा[२] मोह तन[३] ताप ।
निसि बासुर सुख निधि लहा[४], जब अंतरि प्रगटा आप ॥२८॥

जा कारनि मैं जाइथा[१], सनमुख[२] मिलिया आइ ।
धनि मैली पिउ ऊजला, लागि सकै नहिं पाइ[३] ॥२९॥

तन भीतर मन मांनिया, बाहरि कतहुं[१] न जाइ[२] ।
ज्वाला तैं फिरि जल भया[३], बुझी बलंती लाइ[४] ॥३०॥

---

[२३] दा० ५-१४, नि० ८-९, सा० २०-१३, साबे० ४३-२७, सासी० १४-४२—
१. सा० साबे० सासी० पिंज़र (उर्दू मूल)। २. सा० साबे० सासी० सुख करि सूती महल में (उर्दू मूल)।

[२४] दा० ५-२२, नि० ८-३७, सा० २०-२७, साबे० ४३-२०, सासी० १४-३१—
१. दा० सा० साबे० सासी० परिचय। २. दा१ स्यंभ, सा० साबे० सासी० सिंवु (नागरी मूल)।

[२५] दा० ५-२४, नि० ८-२८, सा० २०-२२, साबे० ४३-२८, सासी० १४-४३—
१. दा३ नि० कूं। २. दा२ नि० निजरि।

[२६] दा० ५-२५, नि० ६-५१, सा० १९-६८, साबे० १४-४२, स.सी० १६-८०—
१. साबे० सासी० मन में बंधी धीर।

[२७] दा० ५-२८, नि० ८-३४, सा० २०-५५, साबे० ४३-६०, सासी० १४-७८—
१. दा० होता हट न पट, नि० नहीं होता हाट न बाट, सा० साबे० सासी० नहीं हाट नहीं बाट।
२. दा३ होता, नि० तदि का। ३. सा० साबे० सासी० संत जन।

[२८] दा० ५-३०, नि० ८-२१, सा० २०-२९, साबे० ४३-२१, सासी० १४-३२—
१. सा० हरि पाया, साबे० सासी० गुरू मिले (सांप्रदायिक मूल)। २. सा० दा० मिटी।
३. दा० की, सा० साबे० सासी० लहूं।

[२९] दा० ५-३६, नि० ८-१५, सा० ३४-४ तथा ५ (दो बार), साबे० १८-६ तथा ४३-५१ (दो बार), सासी० १४-१२७, १४-७६ तथा ५६-११ (तीन बार)—
१. दा० ढूंढ़ता। २. नि० सा० (३४-५,) साबे० सासी० (१४-७६) सो तो। ३. सा० ३४-५), साबे० (दोनों में) तथा सासी० १४-७६ और ५६-११ में उक्त साखी की द्वितीय पंक्ति का पाठ है : सांईं तौ सनमुख खड़ा, लाग कबीरा पाय।

[३०] दा० ५-३१, नि० ८-२१. सा० २०-३०, साबे० १४-६७, सासी० १४-१२६—
१. दा० नि० कहा, सा० कबहुं। २. सा० साबे० लाग। ३. सासी० ज्वाला फेरी जल भया।

तत पाया तन बीसरा, जब मनि धरिया ध्यांन[१] ।
तपनि मिटी[२] सीतल भया, जब सुन्नि किया असनांन[३] ॥३१॥

कबीर दिल साबित भया[१], फल पाया[२] समरत्थ ।
सायर मांहि ढंढोरतां[३], हीरै पड़ि[४] गया हत्थ ॥३२॥

मन उलटी दरिया मिला, लागा मलि मलि न्हांन ।
थाहत थाह न आवई[१], तूं[२] पूरा रहिमांन ॥३३॥

मांनसरोवर[१] सुभग[२] जल, हंसा केलि कराहिं ।
मुक्ताहल मुक्ता[३] चुगैं, अब[४] उड़ि अनत न जाहिं ॥३४॥

गगन गरजि अंम्रित चुवै[१], कदली कंवल प्रकास ।
तहां कबीरा बंदगी, कर[२] कोई निज दास ॥३५॥

कबीर कंवल प्रकासिया, ऊगा निरमल[१] सूर ।
रैंनि अंधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर ॥३६॥

कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन बाजै तांति[१] ।
बाहरि भीतरि रमि[२] रहा, तातैं छूटि भरांति[३] ॥३७॥

आकासै मुखि[१] औंधा कूवां[२], पातालै पनिहारि ।
ताका जल कोई हंसा पीवै[३], बिरला आदि बिचारि[४] ॥३८॥

---

४. सा० साबे० बुझी बलंती (साबे० जलती) आग, सासी० बूझी जलती लाय ।

[३१] दा० ५-३२, नि० ८-२२, सा० २०-३१, साबे० ४३-५५, सासी० १४-३४—
१. सा० साबे० सासी० मन धाया धरि ध्यांन । २. दा१ गई । ३. दा२ नि० सा० सासी० अस्थांन ।

[३२] दा० ५-३४, नि० ८-२४, सा० २०-३३, साबे० ४३-५६, सासी० ३८-४२—
१. नि० कबीर दिल सदगति भई, साबे० कबीर दिल दरिया मिला । २. नि० लागा । ३. नि० ढिंढोलिया । ४. साबे० चढ़ि । सासी० में यही साखी १४-५५ पर भी मिलती है; तुल० कबीर दिल दरिया मिला, पाया फल समरत्थ । सायर मांहि ढिंढोरता, हीरा चढ़ि गया हत्थ ॥ (यह पाठ साबे० से लिया हुआ ज्ञात होता है)।

[३३] दा० ७-२, नि० १०-२, सा० २२-२, साबे० १३-४, सासी० ४२-३९ तथा ५३-२०—
१. सा० सासी० पावई । २. सासी० (९) सो ।

[३४] दा० ५-३९, नि० ८-४४, सा० २०-७६, साबे० ४३-३८, सासी० १४ ६८—
१. नि० रांम सरोबर । २. दा१ दा२ सुभर, सा० साबे० सुगम (नागरी मूल)। ३. सा० साबे० सासी० मोती । ४. दा३ इब ।

[३५] दा० ५-४०, नि० ८-२८, सा० २०-५२, साबे० ४३-५९, सासी० १४-६६—
१. सा० साबे० सासी० गरजे गगन अमी चुवै । २. दा० कै ।

[३६] दा० ५-४१, नि० ८-४८, सा० २०-४१, साबे० ४३-३२, सासी० १६-५२—
१. दा३ त्रिमल । २. साबे० सासी० बाजै ।

[३७] दा० ४०-१, नि० ४२-१, सा० ७४-१, साबे० ३५-१, सासी० १९-१—
१. दा० तंति । २. दा० भरि । ३. दा० भरंति ।

[३८] दा० ५-४५, नि० ८-५७, सा० २०-४३, साबे० ४३-४३, सासी० २७-१५—
१. सा० साबे० सासी० आकासै । २. दा१ दा२ दा३ ऊंधै कूवे । ३. साबे० अंचवै । ४. साबे०

अब तौ मैं ऐसा भया[1], निरमोलिक निज नांउं[2] ।
पहिले[3] कांच कथीर था, फिरता ठांवैं ठांउं[4] ॥३९॥

मन लागा उनमन्न सौं[1], उनमुनि मनहिं[2] बिलंगि[4] ।
लौंन[3] बिलंगा पांनिया, पांनीं लौंन[3] बिलंगि[4] ॥४०॥

पारस रूपी नांम[1] (रांम ?) है[2], लौह रूप संसारा ।
पारस तैं पारस भया[3], परखि भया टकसार[4] ॥४१॥[5]

(१०) सूखिम मारग कौ अंग

कबीर मारग कठिन है[1], कोइ न सकई जाइ[2] ।
गए ते बहुरे[3] नहीं, कुसल कहै को आइ ॥१॥

कबीर का घर सिखर पर[1], जहां[2] सिलहली[3] गैल[4] ।
पांव न टिकै पिपीलका, लोगनि[4] लादे बैल ॥२॥

उततैं[1] कोई न आइया[2], जासौं[3] पूछौं[4] धाइ ।
इततैं सब कोई गए[5], भार लदाइ लदाइ ॥३॥

आई सुरति बिचारि।

[३९] दा० ५०-८, नि० ५८-७, सा० १०२-७, सासी० ५३-२६, गुण० १२४-२८—
१. दा० गुण० कबीर अब तौ ऐसा भया। २. दा३ नगनांउं (नागरी मूल)। ३. दा० नि० गुण० पहिली। ४. सा० सासी० ठामहि ठाम।

[४०] दा० ५-१६, नि० ८-१३, सा० २०-१८, सासी० १४-२७, गुण० ४२-१८—
१. सा० सासी० उनमुनि सों मन लागिया (द्वितीय चरण का समानार्थी)। २. सा० सासी० नहीं। ३. दा० लूंण।

[४१] बी० ५१, साबे० ३३-३८, सासी० १३-६२ तथा १४-११२—
१. बी० जीव। २. सासी० (१४) साहेब पारस रूप है। ३. साबे० सासी० (१३) पारस पाया पुरुष का, सासी० (१४) पारस सौं पारस भया। ४. साबे० सासी० (१३) परखि परखि टकसार। ५. तुल० सा० ८०-२, सासी० १३-६१ : पारस रूपी राम (सासी० नाम) है, लोहा रूपी जीव। जब सो पारस भेटिहै, तब जिव ह्वै है (सासी० होसी) सीव॥

[१] दा० १४-६, नि० १८-८, सा० ३४-१८, साबे० १८-१७, बी० २४१, गुण० ४४-२—
१, बी० मारग तौ अति कठिन है। २. बी० वहां कोई मति जाइ, नि० कोई एक सकई जाइ। ३. दा० नि० बहुड़े।

[२] दा० १४-७, नि० १८-९, सा० ३४-१९, साबे० १८-१८, बी० ३३, गुण० ४४-४—
१. दा० गुण० जन कबीर का सिखर घर, दा५ जन कबीर कठिन नगर, नि० कबीर का घर सिखर मैं। २. दा० नि० बाट। ३. नि० सलसली, दा० गुण० सलैली। ४. दा० नि० गुण० सैल। ५. बी० खलकन, साबे० पंडित।

[३] दा० १४-२, नि० १८-२, सा० ३४-१२, साबे० १८-१, सासी० ५६-१७, बी० २६६—
१. दा० नि० उतथैं। २. दा० नि० आवई, सा० साबे० बाहुरा। ३. दा० नि० सा० जाकौं। ४. नि० सा० साबे० सासी० बूझौं। ५. दा० नि० इतथैं सबै पठाइया, सा० साबे० सासी० इततें सब कोय जात है। बी० में इस साखी की दोनों पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित हैं।

जिहिं बन सिंघ न संचरै, पंखी[१] उड़ि नहिं जाइ।
रैंनि दिवस की गमि नहीं, तहां रहा[४] कबीर लौ लाइ[४] ॥४॥
चलन चलन[१] सब कोइ कहैं, मोहिं अंदेसा और।
साहेब सौं परचै नहीं, बैठेंगे[२] किस[३] ठौर ॥५॥
नांव न जांनौं गांव का, बिनु जांनें कहं[१] जांउं।[२]
चलते चलते जुग गया[३], पाव कोस पर गांउं ॥६॥
गंग जमुन के[१] अंतरै[२], सहज सुंनि लौं[३] घाट।
तहां कबीरा मठ रचा[४], मुनिजन जोवैं बाट[५] ॥७॥
जहां न चिउंटी चढ़ि सकै, राई नां ठहराइ।
मन पवनां की गमि नहीं[१], तहां[२] पहूंचा जाइ ॥८॥
कबीर मारग कठिन[१] है, मुनि जन[२] बैठे थाकि।
तहां कबीरा चलि गया[३], गहि सतगुर की साखि[४] ॥९॥
सुर नर थाके मुनि जनां, जहां न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के[१], तहां रहा घर छाइ[२] ॥१०॥

---

[४] दा० १०-१, नि० १४-३, सा० २६-९, साबे० १३-६, सासी० ५३-१७, बी० २७४—
१. साबे० सासी० पच्छी, बी० पंछी। २. दा० नि० उड़े नहिं। ३. सा० साबे० सासी० में 'रहा' शब्द नहीं है। ४. बी० सो बन कबिरन हींड़िया, सुन्न समाधि लगाय। यह साखी सा० साबे० तथा सासी० में अन्यत्र भी मिलती है; तुल० सा० २०-९९, साबे० ४३-४२, तथा सासी० १४-७२: जा बन सिंघ न संचरे, पंछी उड़ि नहिं जाय। रैन दिवस की गम नहीं, (तहां) रहा कबीर समाय। इस पुनरावृत्ति-साम्य से सा० साबे० सासी० में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है (दे० भूमिका)। तुल० सरहपा (९वीं शताब्दी): जहि बरा पवरा रा संचरइ, रबि ससि राह पवेस। तहि बढ़ चित्त बिसाम करु, सरहें कहिअ उएसु ॥—दोहाकोष, कलकत्ता, पृ० २०।

[५] दा० १४-४, नि० १८-६, सा० ३४-१५, साबे० १८-१३. सासी० ५६-२०, बी० १८१—
१. बी० साहेब साहेब। २. दा० जाहिंगे, नि० सा० साबे० सासी० पहुंचेंगे। ३. बी० केहि।

[६] सा० ३४-८, साबे० १८-१२, सासी० २-८९ तथा ५६-१५, बी० ५२—
१. सा० कित। २. बी० मन कहे कब जाइए, चित कहे कब जाव, सासी० (२-८९) चलते चलते जुग गया, कोइ न बतावै धाम। ३. बी० छवों मांस के हींड़ते, सासी० (२-८९) पैंड़े में सतगुर मिले।

[७] दा० १०-३, नि० १४-१, सा० २६-३, साबे० १३-५, सासी० ५३-१६, गु० १५२—
१. दा० नि० उर। २. साबे० सासी० बीच में। ३. गु० के। ४. गु० मटु कीआ। ५. गु० खोजत मुनिजन बाट।

[८] दा० १४-८, नि० १८-१०, सा० ३४-२१, साबे० १८-१९, सासी० ५६-२२, गुरा० ४४-५
१. सा० साबे० सासी० मनुवा तहां ले राखिया। २. साबे० तहंई, सा० सासी० सोई।

[९] दा० १४-९, नि० १८-११, सा० ३४-२२, साबे० १८-२०, सासी० ५६-१, गुरा० ४४-६—
१. गुरा० मारग ऐसा अगम है। २. सा० सब मुनि, सासी० रिखि मुनि। ३. सा० साबे० सासी० चढ़ि। ४. सा० साबे० सासी० साक (केवल तुकार्थ)।

[१०] दा० १४-१०, नि० १८-२२, सा० ३४-२३, साबे० १८-२१, सासी० ५६-२, गुरा० ४४-७—
१. नि० रैंणि दिवस की गमि नहीं। २. नि० सा० सासी० लौ लाइ।

प्रांन पिंड कौं तजि चला, मुआ कहैं सब कोइ ।
जीव अछत[1] जांमैं मरै, सूखिम[2] लखै न कोइ ।।११।।

करता की गति अगम है, तूं चलि अपनैं[1] उनमांन ।
धीरै धीरै पांव दे, पहुंचौगे[2] परवांन[3] ।।१२।।

कौंन देस कहां आइया, जांनैं कोई नांहि[1] ।
ओहु मारग पावै[2] नहीं, भूलि परे एहि[3] मांहि ।।१३।।

हम बासी उस देस के, जहां जाति पांति[1] कुल नांहि ।
सबद[2] मिलावा ह्वै रहा, देह मिलावा नांहि ।।१४।।

सबकौं बूझत[1] मैं फिरूं[2], रहन कहै नहिं कोइ ।
प्रीति न जोड़ी रांम[3] सौं, रहनि कहां तैं होइ ।।१५।।

कबीर सूखिम सुरति का[1], जीव न जांनैं जाल ।
कहै कबीरा दूरि करि[2], आतम अदिस्ट[3] काल ।।१६।।

(११) पतिब्रता कौ अंग

आसा एक जु रांम की[1], दूजी[2] आस निरास ।
जैसै सीप समंद मैं, नहीं स्वाति बिन प्यास[3] ।।१।।

---

[११] दा० १५-२, सा० ३५-२, साबे० १८-३७, सासी० ५६-३१, गुगा० १०४-९—
१. सा० साबे० सासा० छता । २. सा० साबे० मूच्छम ।

[१२] दा० ८-४, नि० १३-४, सा० ३४-४५, साबे० १८-३६, सासी० ५६-२९—
१. साबे० सासी० गुरु के । २. दा२ अमड़ैंगे । ३. दा२ निरदांन, नि० निरबांन ।

[१३] दा० १४-१, नि० १८-१, सा० ३४-७, साबे० १८-८, सासी० ५६-१४—
१. दा० कहु क्यूं जांणया जाइ । २. नि० पाऊं । ३. सा० सासी० जग ।

[१४] दा२ १४-१, नि० ८-२९, सा० २०-६६, साबे० ४२-३५, सासी० १६-१२ तथा १३—
१. नि० सा० साबे० सासी० बरन । २. सासी० (१४-१३) सैन ।

[१५] दा० १४-३, नि० १८-५, सा० ३४-१४, साबे० १८-१५, सासी० ५६-१९—
१. सा० साबे० सासी० पूछत । २. सा० साबे० सासी० फिरा । ३. साबे० गुरू (राधा० प्रभाव) सासी० नाम (कबीरपंथी प्रभाव)।

[१६] दा० १५-१, नि० १८-१५, सा० ३५-१, सासी० ५६-३३, गुगा० १०४-३—
१. सा० सासी० सूक्ष्म सुरति का मर्म है, गुगा० अतिसै सूखिम सुरति का ।
२. नि० हरि दयाल ए दूरि करि । ३. सा० सासी० आदिहि ।

[१] दा० ११-११, नि० १५-१, सा० ३६-१, साबे० ३२-२४ तथा ५९-९ (दो बार), सासी० ६८-१, स० ५६-२, गु० ९५—
१. गु० आसा करीअै राम की, साबे० आसा एक जु नाम की (राधा० प्रभाव)। २. गु० अवरै।
३. दा० नि० पांणीं मांहैं घर करै, ते भी मरै पियास, गु० नरकि परहि ते मानई जो हरि नाम उदास, सा० साबे० सासी० पानी मैं घर मीन का, सो क्यों मरै पियास ।

कबीर सूख न एहि जुग[१] (जग ?), करहिं जु बहुतै मीत[२] ।
जिन दिल बांधी एक सौं[३], ते सुख पावहिं नीत[४] ॥२॥[५]

जौ मन लागे एक सौं[१], तौ निरुवारा[२] जाइ ।
तूरा दुइ मुख बाजनां[३], न्याइ[४] तमाचा[५] खाइ ॥३॥

कबीर पगरा[१] दूरि है[२], आइ पहूंची सांझ[३] ।
जन जन कौ मन राखतां[४], बेस्वा[५] रहि गई बांझ ॥४॥

नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोइ ।
जार मीत हृदया बसै[१], खसम खुसी क्यौं होइ ॥५॥

हौं चितवत हौं तोहि कौं, तू चितवत कछु और[१] ।
कहै कबीर कैसै बनैं[२], एक चित्त दुइ ठौर ॥६॥

---

[२] दा० ११-१३, सा० २८-१, साबे० ११-११, सासी० २३-१ गु० २१—
१. दा० सा० सासी० कबीर कलिजुग आइ कैं, साबे० कबीर या जग आइ के। २. दा० सा० साबे० कीया बहुतक मित, सासी० कीया बहुत ज मीत। ३. गु० जो चितु राखहिं एक सिउ। ४. दा० सा० साबे० सासी० ते सुख सोवैं निचिंत। ५. तुल० गुग्र० ४१ ५६ : कबीर तिनकौं सुख कहां, कीन्हें अनंत जु ईठ। जिनि मन लाया एक सौं, ते अति सुखिया दीठ॥ किन्तु गुग्र० में यह साखी जैमल के नाम से भी मिलती है; तुल० ५२-३ : यमला सुख न इत्त जगु, किए जु बहुतै मित्त। जिनि चित बंध्या एक सों, ते सोवहिं सुख नित्त।

[३] दा० ११-१२, नि० १५-१३, सा० २७-२२, सासी० ३४२०, बी० ८१, बीभ० ७३, गुग्र० ५१-५५—
१. दा० बी० एक एक निरुआरिए। २. दा० नि० निरबाल्या, सा० सासी० गुग्र० निरुवारा। ३. बी० दुइ दुइ मुख का बोलना। ४. बी० घना। ५. बीभ० तमेंचा। सासी० में यह साखी अन्यत्र भी आती है, तुल० २२-३१ : जो मन लागै एक सों, तो निरुवारा जाइ। तूरा दो मुख बाजता, घना तमाचा खाइ॥

[४] नि० २८-८, सा० २८-१०, सासी० ३२-७९ बी० ५१—
१. नि० पंगिड़ा (उर्दू मूल) २. सा० कबीर पंथ निहारता, बी० झालि परे दिन आए। ३. बी० अंतर परि गइ सांझ, नि० आइ पहूंती सांझ। ४. बी० बहुत रसिक के लगते। ५. सा० सासी० बेस्या। नि० सा० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है तुल० नि० ३२-६ : धांमां धूमैं दिन गया, चितवत भई ज सांझ। रांम भजन हरि भगति बिनु, जननीं जनि भई बांझ॥ सा० ३०-२७ : धूम धाम में दिन गया, सोचत हो गई सांझ। एक घरी हरि ना भजा, जननी जनि गई बांझ॥ तथा सासी० २३-९ : कबीर पंथ निहारता, आनि पड़ी है सांझ। जन जन को मन राखता, बेश्या रहि गई बांझ॥ नि० सा० तथा सासी० में इस पुनरावृत्ति-साम्य के कारण संकीर्ण-संबंध ज्ञात होता है। नि० तथा सा० की साखियों का पाठ अपेक्षाकृत अधिक मिलता है अतः दोनों का संबंध निश्चित रूप से सिद्ध है।

[५] बी० २६८, सा० २८-५ साबे० ११-१ सासी० २३-५—
१. सा० साबे० सासी० जार सदा मन में बसे।

[६] सा० ८३-९, साबे० १५-२० तथा ३६-२० (दो बार), सासी० १५४५ तथा ३३-३० (दो बार) बी० १३७—
१. सा० साबे० सासी० मेरा मन तौ तुज्झ सों, तेरा मन कहुं और। २. बी० लानत ऐसे चित्त पर (आगे पुनः 'चित्त' आने के कारण पुनरावृत्ति है)। साबे० तथा सासी० में यह साखी दो बार आती है जिससे दोनों का संकीर्ण-सम्बन्ध सिद्ध होता है।

प्रीति रीति तो तुज्झ सौं,[१] मेरे बहु गुनियाले कंत ।
जौ हंसि बोलूं और सौं, तौ नील रंगाऊं दंत ॥७॥
उस संम्रथ का[१] दास हूं, कबहुं[२] न होइ अकाज ।
पतिबरता नांगी रहै, तौ उसही पुरिख कौं[३] लाज ॥८॥
कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास ।
समंदहिं तिनका बरि गिनैं[१], एक स्वाति बूंद की आस ॥९॥
कबीर एकै जांनिया, तौ जांनां सब जांण ।
जे वो एक न जांनियां[१], तौ सबही जांण अजांण ॥१०॥
कबीर[१] एक न जांनिया, तौ बहु जानें क्या होइ ।
एकैं तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥११॥
नैंनां अंतरि आव तूं, ज्यौं हौं नैंन झंपेउं[१] ।
नां हौं[२] देखौं और कौं, नां तुझ[३] देखन देउं ॥१२॥
कबीर रेख सिंदूर की[१], काजर दिया न जाइ ।
नैंननि प्रीतम[२] रमि रहा, दूजा कहां समाइ ॥१३॥
जे सुंदरि सांइ भजै[१], तजै आंन[२] की आस ।
ताहि न कबहूं परिहरै, पलक न छांड़ै पास ॥१४॥

---

[७] दा० ११-१, नि० १५-१, सा० २७-१३, साबे० १-२४, सासी० २२-२०, स० ५६-१—
१. दा० नि० स० कबीर प्रीतड़ी है तुज्झ सूं, सा० प्रीत रीति तुझसों मेरे, साबे० सासी० प्रीति अड़ी है तुज्झ सौं ।

[८] दा० ११-१७, नि० १५-१८, सा० २७-४०, साबे० ७-७, सासी० २२-३४, स० ५६-४—
१. सा० साबे० सासी० मैं समरत्थ का । २. दा० नि० स० कदे । ३. सा० साबे० सासी० वाही पति कौ लाज ।

[९] दा० ११-५, नि० १५-६, सा० २७-२९, साबे० ९-५, सासी० २३-१३, गुग्रा० ५१-१७—
१. सा० सकल बुंद को ना गिनै, साबे० सासी० और बूंद को ना गहै । सासी० में यह साखी अन्यत्र मिलती है, तुल० २-९२ : सीप समुंदर में बसै, रटत रटत पियास । सकल समुंद तिनखा गिनै, एक स्वाति बूंद की आस ॥

[१०] दा० ११-८, नि० १५-११, सा० २७-१९, साबे० ९-२२, सासी० २२-२८, गुग्रा० १२६—
१. दा० सा० साबे० सासी० जो वह एकै जांनिया । नि० जिनि हरि एकौ जांणिया ।

[११] दा० ११-९, नि० १५-१२, सा० २७-१८, साबे० ९-२१, सासी० २२-२७ तथा ३८-३५—
१. सा० साबे० सासी० जो वह ।

[१२] दा० ११-२, नि० १५-२, सा० २७-१७, साबे० ९-४, सासी० २२-१२—
१. सा० साबे० सासी० नैन झांपि तुहिं लेव । २. सा० साबे० सासी० मैं । ३. साबे० तोहि, सा० सासी० तुहि ।

[१३] दा० ११-४, नि० १५-५, सा० २७-१४, साबे० ९-२५, सासी० २२-२४—
१. साबे० सासी० अरु । २. दा० नि० रमइया ।

[१४] दा० ५२-३, नि० ५७-४, सा० १०१-३, साबे० ९-११, सासी० २२-३७—
१. सा० साबे० सासी० सुंदरि तौ सांई भजै । २. सा० सासी० खलक ।

कबीर जे कोइ सुंदरी, जांनि करै बिभिचारि ।
ताहि न कबहूं आदरै, परम[1] पुरिख भरतार ।।१५।।
दोजग तौ हूंम आंगिया[1], यहु डर[2] नांहीं मुज्झ ।
भिस्ति न मेरै चाहिए, बाझ[3] पियारे तुज्झ ।।१६।।

(१२) रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौं पिया[1], बाकी रही न छाकि[2]।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि[3] न चढ़ई[4] चाकि ।।१।।
सबै रसाइन मैं[1] किया[2], हरि रस सम नहिं कोइ[3] ।
रंचक[4] घट मैं[5] संचरै, तौ सब तन कंचन होइ[6] ।।२।।
काया कमंडल भरि लिया, ऊजल निरमल नीर ।
पीवत तृखा न भाजही, तिरखावंत कबीर[1] ।।३।।
सतगंठी[1] कोपीन दै, साधु न मांनैं संक[2] ।
रांम अमलि माता रहै, गिनैं इंद्र कौं रंक ।।४।।

---

[१५] दा० ५२-२, नि० ५७-३, सा० १०१-२, साबे० ११-९, सासी० २३-११—
१. दा१ दा२ प्रेम (उर्दू मूल)।

[१६] दा० ११-७, नि० १५-८, सा० २७-२९, सासी० २२-५३, गुग्रा० ५१-४—
१. सा० सासी० दोजख हमहिं अंगेजिया। २. सा० सासी० दुख। ३. सासी० बांछि (उर्दू मूल)।

[१] दा० ६-१, नि० ९-२, सा० २१-३, साबे० १५-३५, सासी० १५-३७, गुग्रा० ४८-२१, स० ५८-६—
१. साबे० सासी० कबीर हम गुरु रस पिया (सांप्रदायिक प्रभाव)। २. दा० नि० सा० स० गुग्रा० थाकि (नागरी मूल ?)। ३. दा२ बहुड़ि। ४. सा० चढ़िहै, साबे० सासी० चढ़सी (राज० मूल)।

[२] दा० ६-८, नि० ९-११, सा० २१-१५, साबे० १५-४०, सासी० १५-५२, स० ५८-१०—
१. सा० सासी० हम। २. सा० पिया। ३. साबे० सासी० प्रेम समान न कोइ, दा० हरि सा और न कोइ। ४. दा१ दा२ तिल इक, साबे० रति इक। ५. साबे० सासी० तन में। ६. साबे० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र मिलती है; तुल० साबे० ३३-१० : सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय। रति इक घट में संचरै, सब तन कंचन होइ॥ तथा सासी० १३-२६ : सबहिं रसाइन हम करी, नहीं नाम सम कोय। रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥ (दोनों में संकीर्ण-संबंध)। अन्यत्र यह साखी सम्मन के नाम से भी मिलती है: तुल० गुग्रा० ३१-१५ : सबै रसाइन पिष्ष (बिष्ष ?) मैं, प्रेम न पूजै कोइ। जिहि तन रत्ती संचरै, सब तन सोना होइ ॥

[३] दा० ७-१, नि० १०-१, सा० २२-१, साबे० १३-३, सासी० ५३-१८, स० ५८-९ तथा १३९-१—
१. दा० तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर (पुन०)।

[४] दा० ३७-८, नि० ९-८, सा० २१-११, सासी० २८-१७ तथा ८०-१० (दो बार), स० ११-६ तथा १२२-१ (दो बार), गुग्रा० ११५-११—
१. सा० सासी० (२८-१७) आठ गांठि। २. सा० सासी० मन नहिं मानै संक। ३. सासी० नाम (कबीरपंथी प्रभाव)।

हरि रस पीया जांनिए, जे उतरै नांहि खुमारि ।
मैंमंता[1] घूमत फिरै, नांहीं तन की सारि ।।५।।
सुरति ढींकुली लेज[1] लौ, मन नित ढोलनहार[2] ।
कंवल कुवां[3] मैं प्रेम रस[4], पीवै बारंबार ।।६।।
जिहि सरि घड़ा न बूड़ता, अब मैंगल मलि मलि न्हाइ ।
देवल बूड़ा कलस सौं, पंखि[1] तिसाई[2] जाइ ।।७।।
मैंमंता अबिगत रता, अकलप आसा जीत[1] ।
रांम[2] अमलि माता रहै, जीवत मुकुत अतीत ।।८।।
मैंमंता त्रिन नां चरै[2], सालै चित्त सनेह ।
बारि जु बांधा प्रेम कै[3], डारि रहा सिरि खेह ।।९।।
अंम्रित केरी पूरिया[1], बहुबिधि दीन्हीं छोरि[2] ।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पियावहु[3] घोरि ।।१०।।

(१३) बेलि कौ अंग

आगैं आगैं दौं जरै[1], पाछैं हरियर[2] होइ ।
बलिहारी तेंहि बिरिख[3] की, जरि काटैं फल होइ[4] ।।१।।
जौ काटौं तौ डहडही[1], सींचौं तौ[2] कुम्हिलाइ ।
इस गुनवंती बेलि का[3], कछु[4] गुन बरनि[5] न जाइ ।।२।।[6]

---

[५] दा० ६-४, नि० ९-३, सा० २१-१३, सासी० २८-६, स० ५८-१, गुरा० ४८-११—
१. दा१ गुरा० जे कबहूं न जाइ खुमार। २. सा० सासी० मतवाला।
[६] दा० १०-२, नि० १४-१, सा० २६-१, सासी० ५३-९९, स० ५८-४—
१. सा० सासी० नेज। २. दा० ढालनहार। ३. सासी० कूप। ४. सा० सासी० ब्रह्म जल।
[७] दा० ६-७, नि० ९-१०, सा० २१-१४ तथा ३२-३ (दो बार), सासी० २७-१७, स० ५८-५—
१. सासी० पंछि। २. सा० सासी० पियासा (समानार्थीकरण)।
[८] दा० ६-६, नि० ९.५, सा० २१-९, सासी० २८-१५, गुरा० २९-९—
१. सा० सासी० आसा अकल अजीत। २. सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव)
[९] दा० ६.५, सा० २१-१०, सासी० २८-१६, गुरा० २९-८—
१. स० मोहमता, सासी० महमंता। २. सा० नहिं संचरै। ३. सा० सासी० कलाल के।
[१०] बी० १२१, साबे० १५-४३, सासी० १०-५२—
१. साबे० सासी० मोटरी। २. साबे० सासी० राखी सतगुर छोरि। ३. साबे० सासी० पिलावै।
[१] दा० ५८-२, नि० ६३-२, सा० १०६-७, साबे० १९-५०, बी० ३३-९—
१. दा२ दा३ नि० दौं बलै, सा० घा बर (हिन्दी मूल)। २. दा० नि० सा० हरिया। ३. बी० साबे० ब्रिछ का, नि० बेलि की। ४. सा० सोय, साब० जोय।
[२] दा० ५८-३, नि० ६३-३, सा० १०६-८, सासी० ५०-१२, बी० २१७, स० १२४-१—
१. बी० जड़ काटे तें हरियरी। २. बी० साच ते। ३. बी० ए गुनवंती बेलरी। ४. बी० तव। ५. नि० सा० सासी० कहा। ६ बी० में दोनों पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित।

आंगन बेलि अकास फल, अनब्यावर[1] का दूध।
ससा सींग की धनुहड़ी[2], रमैं बांझ का पूत[3] ॥३॥

(१४) सूरातन कौ अंग

अब तौ असी होइ परी[1], मन का भावतु कीन[2]।
मरनैं तैं क्या डरपनां[3], जब हाथि सिंधौरा[4] लीन ॥१॥
जिसु मरनैं तैं[1] जग डरै, सो मेरै आनंद[2]।
कब मारिहौं कब भेटहौं[3], पूरन परमानंद ॥२॥
सती पुकारै सलि[1] चढ़ी, सुनि रे मीत[2] मसांन।
लोग बटाऊ[3] चलि[4] गए, हंम तुम रहे[6] निदांन ॥३॥
सारा[1] बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और।
लागी चोट जु सबद की[2], रहा कबीरा ठौर ॥४॥
चोट सुहेली सेल की[1], पड़तां[2] लेइ उसांस।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू मैं दास[4] ॥५॥
कोनैं[1] परां न छुटिहै, सुनि रे जीव अबूझ।
कबीर मरि[2] मैदांन मैं, करि इंद्रचां सौं[3] जूझ ॥६॥

---

[३] दा० ५८-४, नि० ६३-४, सा० १०६-९, सासी० ५०-१, स० ६०-१—
१. सासी० अनब्याही। २. सा० सासी० धनुस को। ३. सा० सासी० खैंच बांझ सुत सूध।

[१] दा० ४५-१२, नि० ५०-१३, सा० ८६-१, साबे० १०-१, सासी० २१-१, गु० ७१, गुग्रा० ७६-७—
१. गु० कबीर असी होइ परी। २. दा० गुग्रा० मन का रुचिता कीन्ह, नि० मन का चंचल कीन्ह, सा० साबे० सासी० मन अति निरमल कीन्ह। ३. दा० नि० गुग्रा० मरनैं कहा डराइए, सा० साबे० सासी० मरने का भय छांड़ि कै। ४. दा० नि० स्यंधौरा (राज० मूल)।

[२] दा० ४५-१३, नि० ५१-१३, सा० ८८-२६, साबे० ४६-२१, सासी० ४२-२९, गु० २२, गुग्रा० ७६-३८—
१. सा० साबे० सासी० जा मरना सों। २. सा० साबे० सासी० मेरे मन आनंद। ३. गु० मरने ही ते पाईअै।

[३] दा० ४५-३३, नि० ५० ४६, सा० ८६-७, सासी० २१-७, गु० ८५—
१. सासी० सर, गु० चिह। २. गु० बीर। ३. गु० सबाइआ। ४. सासी० सब। ६. गु० कासु।

[४] दा० ४०-८, नि० ४२-४, सा० ७४ ४, सासी० १९-३०, गु० १८२—
१. गु० मारे (नागरी मूल ?)। ३. गु० भिरंम की।

[५] दा० ३९-१, नि० ४१-२, साबे० ६२-७, सासी० २४-१४६, स० ३-१, गुग्रा० १५२-२, गु० १८३—
१. दा१ दा२ गुग्रा० अनीं सुहेली सेल की, दा३ स० चोट संतार्णी सेल की, सासी० चोट सहै जो सेल की। २. गु० लागत, सासी० ऊठी। ३. सासी० देह अवास। ४. सासी० चोट शब्द की जो सहै, सोइ सुहागी दास।

[६] दा० ४५ २, नि० ५७ १२, सा० ८५-१, साबे० ८-४२, सासी० २४-८३, स० ६१-३, गुग्रा० ७८-६—
१. दा० नि० स० गुग्रा० खूंणैं (राज० मूल)। २. नि० मढ़ि, सा० साबे० सासी० मंह। ३. साबे० सासी० इंद्रिन सों।

कायर हुआं[1] न छूटिहै, कछु[2] सूरातन साहि[3] ।
भरम भलाका दूरि करि[4], सुमिरन सेल[5] संबाहि ॥७॥

कबीर आरनि पैसि करि[1], पीछैं रहै न[3] सूर ।
सांईं सौं सांचा भया[4], जूझै[5] सदा हजूर ॥८॥

सूरा जूझै गिरद सौं, इक दिसि सूर न होइ ।
कबीर या बिन सूरिवां[1], भला न कहसी (ई?) कोई ॥९॥

कबीर सोई सूरिवां, मन सौं माड़ै जूझ ।
पंच पियादैं[1] पारि कै[2], दूरि करै सब दूजि[3] ॥१०॥

मेरै संसै कोइ[1] नहीं, हरि[2] सौं लागा हेत ।
कांम क्रोध सौं जूझनां[3], चौड़ै मांड़ा खेत ॥११॥

सूरा सोइ सराहिए[1], लड़ै धनीं के हेत ।
पुरिजा पुरिजा होइ परै[2], तऊ न छांड़ै खेत ॥१२॥

खेत न छांड़ै सूरिवां[1], जूझै दोउ[2] दल मांहि ।
आसा जीवन मरन की, मन मैं आंनैं[3] नांहि ॥१३॥

---

[७] दा० ४५-१, नि० ५०-३, सा० ८४-१, साबे० ८-४१, सासी० २४-८५, स० ६१-२, गुग्रा० ७८-३—
१. साबे० सासी० भए । २. सा० सासी० कूंचि । ३. सा० सासी० सूरातन माहिं (नागरी मूल), साबे० सूरता समाय । ४. नि० छांड़ि दे । ५. साबे० सील (उर्दू मूल) । ६. साबे० मजाय, सासी० सनाहि । ७. सासी० में पुनरावृत्ति, तुल० सासी० २४-८६ : कायर भया न छूटिहौ, सुरता कछु समाय । भरम भालका दूरि करि, सुमरन सेल मजाय ॥ (सासी० में यह पाठ साबे० से आया हुआ ज्ञात होता है) ।

[८] दा० ४५-५, नि० ५०-६, सा० ८५-६, साबे० ८-५५, सासी० २४-४, स० ६१-४—
१. सा० कबिरा रन में पैठि के, साबे० सासी० कबीर रन में आय के । २. सा० पीछा । ३ दा० नि० स० ज । ४. नि० सा० साबे० सासी० सनमुख भया । ५. दा० नि० सा० स० रहसी (राज० मूल) ।

[९] दा० ४५-४, नि० ५०-५, सा० ८५-५, सासी० २४-१७ स० ६१-४—
१. नि० यूं र बिहूंणां सूरिवां, सा० सासी० यौं जूझे बिन बाहिरा (एक ही भाव की पुनरावृत्ति)।

[१०] दा० ४५-३, नि० ५०-४, सा० ८५-२, साबे० ८-५३, सासी० २४-१, गुग्रा० ७८-१—
१. दा० साबे० सासी० पांचौं इंद्री । २. नि० सा० साबे० सासी० पकड़ि करि, गुग्रा० पारिखै । ३. सा० साबे० सासी० दूझ (केवल तुकार्थ) ।

[११] दा० ४५-७, नि० ५०-११, सा० ८५-१०, साबे० ८-४०, सासी० २४-५२, गुग्रा० ७८-८—
१. साबे० कछु । २. साबे० सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. सा० सासी० जूझता ।

[१२] दा० ४४-९, नि० ५०-१, सा० ८५-१२, साबे० ८-४, सासी० २४-१५, गुग्रा० ७८-२९—
१. नि० सूरा सोई जांणिए । २. साबे० रहै । गु० में यह साखी राग मारू के अंतर्गत नवें पद के अंत में मिलती है जहाँ इसका पाठ है : सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत । पुरजा पुरजा कटि मरै कबहू न छाड़ै खेत ॥

[१३] दा० ४५-१०, नि० ५०-२, सा० ८५-१३, साबे० ८-६, सासी० २४-३५, गुग्रा० ७८-३०—
१. सा० साबे० सासी० सूरमा । २. नि० दहुं, सासी० दो । ३. सा० सासी० राखै, गुग्रा० छांड़ै ।

कायर बहुत पमावहीं, बहकि[1] न बोलै सूर ।
कांम परे ही[2] जांनिए, किसके मुख परि[3] नूर ॥१४॥

कबीर निज घर प्रेम का[1], मारग अगम अगाध ।
सीस काटि[2] पग तर धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ॥१५॥

सीस काटि पासंग किया, जीव सेर भरि[1] लीन्ह ।
जिहि भावै[2] सो आइ ले, प्रेम आघु[3] हंम कीन्ह ॥१६॥

सूरा सीस उतारिया[1], छांड़ी तनकी आस ।
आगां तैं[2] हरि[3] हरखिया[4], आवत देखा दास ॥१७॥

भगति दुहेली रांम[1] की, नंहि कायर का कांम ।
सीस उतारै हाथ सौं[2], सो लेसी (लेई ?) हरि नांम[3] ॥१८॥

भगति दुहेली रांम की[1], जस खांडे की धार ।
जो डोलै सो कटि पड़ै[2], निहचल[3] उतरै[4] पार ॥१९॥

कबीर हीरा बनजिया, महंगे मोलि अपार ।
हाड़ गला[1] माटी मिली[2], सिर सांटै ब्यौहार ॥२०॥

जौ हारौं तौ हरि सवां[1] (–नां ?), जौ जीतौं तौ डाव ।
पारब्रह्म[2] सौं खेलतां[3], जौ सिर जाइ त जाव ॥२१॥

---

[१४] दा० ४५-१४, नि० ५०-१४, सा० ८४-५, साबे० ८-२५, सासी० २४-८९, गुरा० ७८-१५—
१. नि० बड़कि, साबे० बड़क (नागरी मूल), सासी० अधिक । २. नि० सार खलक्यां, सा० सासी० सार खलक के, साबे० सारी खलक यौं । ३. सा० साबे० सासी० मुहड़ै ।

[१५] दा० ४५-२०, नि० ५०-२०, सा० १८-३, साबे० १५-५४, सासी० १५-२, गुरा० ३०-१०—
१. सा० साबे० सासी० यह तो घर है प्रेम का । २. दा० उतारि ।

[१६] दा० ४५-२२, नि० ५०-२४, सा० १८-४, साबे० १५-५६, सासी० १५-४, गुरा० ३०-१६—
१. दा० गुरा० सरभरि (उर्दू मूल), नि० सरोभरि (उर्दू मूल) । २. नि० गुरा० जो चाहै, साबे० जो भावै । ३. साबे० आगे, सा० सासी० आगु ।

[१७] दा० ४५-२३, नि० ५०-२७, सा० ८५-२०, साबे० ८-१०, सासी० २४-१८, गुरा० ७६-२७—
१. नि० सीस उतारया सूरिवां । २. सा० साबे० सासी० से । ३. साबे० सासी० गुरु, नि० हरि जी । ४. दा१ दा२ मुलकिया, नि० मिल्या ।

[१८] दा० ४५-२४, नि० ५०-३२, सा० १५-२६, साबे० १२-४, सासी० १२-१०, गुरा० ७६-२८ ।
१. साबे० गुरु, सासी० गुरुन । २. दा० करि । ३. साबे० सो लेसी सतनाम । सासी० ताहि मिलै सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[१९] दा० ४५-२५, नि० ५०-३३, सा० १५-२७, साबे० १२-५, सासी० १२-१२, गुरा० ७६-२९—
१. साबे० सासी० नाम । २. नि० जे डोलौं तौ कटि पड़ौं । ३. दा० नि० नहितर, गुरा० नहीं त । ४. नि० उतरूं ।

[२०] दा० ४५-२८, नि० ५०-३७, सा० ८५-२५, साबे० ८-५७, सासी० २४-७, गुरा० ३०-१३—
१. सा० सासी० गली । २. दा१ दा२ गुरा० गली ।

[२१] दा० ४५-३०, नि० ५०-४४, सा० ८५-९०, साबे० ८-३५, सासी० २४-७३, गुरा० ३०-१४—
१. सा० हारौं तौ हरि मान है, साबे० सासी० जो हारौं तो सेव गुरु । २. साबे० सासी० सतनाम । ३. साबे० खेलते । ४. सा० साबे० सासी० सिर जावै तो जाव ।

ज्यौं ज्यौं[१] हरि गुन[२] सांभलौं[३], त्यौं त्यौं[४] लागै तीर ।
लागे तें भागै नहीं, साहनहार कबीर[६] ।।२२।।

सती जरन कौं नीकसी, चित धरि एक बिबेक[१] ।
तन मन सौंपा पीव कौं, अंतरि रही न रेख ।।२३।।

सती जरन कौं नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह ।
सबद सुनत जिय नीकसा[१], भूलि गई सुधि देह ।।२४।।

अब तौ जूझां[१] ही बनैं, मुड़ि चालां[२] घर दूरि ।
सिर साहिब कौं सौंपतां[३], सोच न कीजै सूर ।।२५।।

गगन दमांमां बाजिया, परत निसांनैं घाउ ।
खेत बुहारा[१] सूरिवां, अब मरिबे कौं दाउ[२] ।।२६।।

सूरै सार संबाहिया[१], पहिरा सहज संजोग ।
ग्यांन गयंदहिं चढ़ि चला[२], खेत परन का जोग[३] ।।२७।।

जाय पूछौ उस घायलै, दिवस पीर निसि जागि ।
बाहनहारा जांनिहै[१], कै जांनैं जिहिं[२] लागि ।।२८।।

---

[२२] दा० ४०-७, नि० ५०-१५, सा० ८५-३७, साबे० ८-३०, सासी० २४-७१, गुग्र० २१-१६—
१. नि० जिमि जिमि । २. साबे० सासी० गुरु गुन (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. साबे० सासी० सांभलै । ४. नि० तिमि तिमि । ५. नि० मणि, सा० सासी० पन, साबे० से । ६. नि० सोई संत सुधीर, सा० साबे० सासी० सोई साधु सुधीर । ७. तुल० बी० १० सा० ६८-२ : जे कर सर लागे हिए, सो जानेगा पीर । लागै तो भागै नहीं, सुख सिंधु निहार कबीर ॥

[२३] दा० ४५-३७, नि० ५०-४९, सा० ८६-३, साबे० १०-३, सासी० २१-३, गुग्र० ७६-९—
१. दा० नि० बमेक, गुग्र० बबेक ।

[२४] दा० ४५-३६ सा० ८६-४, साबे० १०-४, सासी० २१-४ गुग्र० ७६-४—
१. दा१ दा२ नीकल्या, दा३ नीसर्या । २. दा० सब साबे० निज, गुग्र० यहु ।

[२५] दा० ४५-११, सा० ८५-१४, साबे० ८-७, सासी० २४-३६, गुग्र० ७८-३१—
१. साबे० सासी० जूझे । २. सा० साबे० सासी० चाले । ३. साबे० सासी० सौंपते ।

[२६] दा० ४५-६, नि० ५०-८, सा० ८५-७, साबे० ८-२, सासी० २४-१३—
१. सा० साबे० सासी० पुकारै । २. दा१ मुझ मरणैं का चाव, सा० साबे० सासी० अब लड़ने का दाव । गु० में यह साखी राग मारू के अन्तर्गत नवें पद के अंत में मिलती है जहाँ इसका पाठ है : गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ । खेतु जु माड़िओ सूरमा अब जूझन को दाउ ॥

[२७] दा० ४५-८, नि० ५०-१०, सा० ८५-११, साबे० ८-४१, सासी० २४-३४—
१. नि० साबे० संभालिया । २. दा१ दा२ अब कै ग्यांन गयंद चढ़ि । ३. दा२ इहै लड़न का जोग ।

[२८] दा० ४५-१५, नि० ५०-१७, सा० ८५-१५, साबे० ८-५६, सासी० २४-४०—
१. नि० मारणहारा जांणिसी (राज० मूल) । २. सा० सासी० जिस ।

घाइल घूंमैं गहभरा[१], राखा रहै न ओट ।
जतन कियां जीवै नहीं[२], लगी मरम की चोट ॥२६॥
ऊंचा बिरिख अकासि फल[१], पंखी मूआ झूरि[२] ।
बहुत[३] सयाने पचि मुए, फल निरमल[४] पै[५] दूरि ॥३०॥
कबीर यहु घर प्रेम का[१], खाला का घर नांहि ।
सीस उतारै हाथ सौं[२], तब पैसै[३] घर मांहि ॥३१॥
प्रेम न बारी[१] ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जेहिं रुचै[२], सीस देइ लै जाइ[३] ॥३२॥[४]
रांम[१] रसाइन प्रेम[२] रस, पीवत अधिक[३] रसाल ।
कबीर पीवन दुलंभ[४] है, मांगै सीस कलाल ॥३३॥
कबीर भाठी प्रेम की[१], बहुतक बैठे आइ ।
सिर सौंपै सोई पिअै[२], नातर पिया न जाइ[३] ॥३४॥

---

[२६] दा० ४५-१६, नि० ४२-५, सा० ८५-१६, साबे० ८-८, सासी० २४-४१—
१. नि० घाइल घूमंग है भरा, सा० साबे० सासी० घायल तो घूमत फिरै । २. साबे० जतन किए नहिं बाहुरै । याज्ञिक संग्रह (ना० प्र० स०) की एक पोथी में यह साखी लालदास के नाम से भी मिलती है, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह साखी कबीरकृत सिद्ध है ।

[३०] दा० ४५-१७, नि० ५०-२१, सा० ८५-१८, साबे० ८-३१, सासी० २४-१०६—
१. नि० सा० साबे० सासी० ऊंचा तरवर गगन फल । २. सा० बिसूर । ३. सा० साबे० अनेक । ४. सासी० लागा । ५. साबे० अति । साबे० में द्वितीय तथा चतुर्थ चरण परस्पर स्थानांतरित । सासी० में इस साखी की पुनरावृत्ति, तुल० सासी० १४-१३० : अकास बेली अंम्रित फल, पंखि मुवै सब झूर । सारा जगहि झखि मुवा, फल मीठा पै दूर ॥

[३१] दा० ४५-१९, नि० ५०-१९, सा० १८-१, साबे० १५-१, सासी० १५-१—
१. सा० साबे० सासी० यह तो घर है प्रेम का । २. सा० साबे० सासी० भुइं धरै । ३. सा० साबे० सासी० बैठे । 'गुणगंजनामा' में ३०-११ पर यह साखी सम्मन के नाम से भी मिलती है । वहाँ इसका पाठ है : पहली सीस उतारि करि, तौ पैसी घर मांहि । सम्मन यह घर प्रेम का खाला का घर नांहि ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि अत्यधिक प्रचलित होने के कारण कबीर की यह साखी सम्मन ने अपने नाम से चला दी ।

[३२] दा० ४५-२१, नि० ५०-२३, सा० १८-६ साबे० १५-३, सासी० १५-६—
१. दा० नि० खेतों नीपजै । २. नि० राजा परजा सारिखा । ३. दा० नि० सिर दे सो लै जाइ । ४. यह साखी भी 'गुणगंजनामा' में सम्मन के नाम से मिलती है । तुल० गुण० ३०-१२: सीस पलट्टै प्रेम है, सम्मन हाटि बिकाइ । राजा परजा जेहिं रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥ किन्तु यह साखी भी प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार कबीर की ही सिद्ध होती है । अच्छी उक्ति होने के कारण ही सम्मन तथा अन्य कवियों ने इसे अपने नाम से प्रचलित करना चाहा है ।

[३३] दा० ६-२, नि० ५४-९, सा० २१-४ साबे० ८-७४, ८-३६ (दो बार), सासी० १५-५०—
१. साबे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. साबे० (८-३६) अधिक । ३. साबे० (८-७४) बहुत । ४. साबे० (८-७४) कठिन ।

[३४] दा० ६-३, नि० ९-४, सा० २१-५, साबे० १५-३७, सासी० १५-३६—
१. दा० कलाल की । २. सा० साबे० सासी० सो पीवसी । ३. दा२ गोता खाइ ।

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार ।
ग्यांन खड़ग गहि[१] काल सिरि, भली मचाई[२] मार ॥३५॥

जेते तारे रैंनि के, तेते बैरी मुज्झ[१] ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसरौं तुज्झ[२] ॥३६॥

हौं[१] तोहि पूछौं हे सखी[२], जीवत क्यौं न जराइ[३] ।
मूए पीछैं सत करै, जीवत क्यौं न कराइ ॥३७॥

कबीर हरि[१] सब कौं भजै[२], हरि[१] कौं भजै[२] न कोइ ।
जब लगि आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥३८॥

आप सुवारथि[१] मेदिनीं, भगति सुवारथि[१] दास ।
कबीरा रांम सुवारथी[२], छांड़ी[३] तनकी आस ॥३९॥

सिर दीन्हें जो पाइऐ, तौ देत न कीजै कांनि[१] ।
सिर के सांटै हरि मिलै[२], तऊ हांनि मत जांनि[३] ॥४०॥[४]

सती सूरतन[१] साहि करि[२], तन मन कीया घांन[३] ।
दिया महौला पीव कौं[४], मरहट करै बखांन ॥४१॥

---

[३५] दा० ४५-२७, नि० ५०-३५, सा० ८५-२१, साबे० ८-११, सासी० २४-५—
१. नि० सा० साबे० सासी० ले । २. नि० बजाई (उर्दू मूल)।

[३६] दा० ४५-२९, नि० ५०-४२, साबे० ८-३३, सासी० २४-५६—
१. दा३ दा४ मोंहि । २. दा३ दा४ तोंहि ।

[३७] दा० ४५-३८, नि० ५०-५०, सा० ८६-९, साबे० १०-७, सासी० २१-१०—
१. सासी० में । २. नि० सती । ३. दा० मराय ।

[३८] दा० ४५-४०, नि० ५०-५९ सा० ७-५, साबे० ७-५, सासी० ११-४—
१. साबे० सासी० गुरु । २. साबे० सासी० चहै ।

[३९] दा० ४५-४१, नि० ५०-५२, सा० १६-५, साबे० ८-२९, सासी० २६-६—
१. सा० साबे० सासी० स्वारथी । २. साबे० कबीर नाम स्वारथी, सासी० कबीर जन परमाथी ।
३. सा० सासी० डारी ।

[४०] दा० ४५-३१, नि० ९-६, सा० २१-८, सासी० २८-८, गुरा० ३०-१५—
१. दा० नि० सिर सांटैं हरि पाइए, छांड़ि जीव की बांनि । २. दा० नि० जो सिर दीयां हरि मिलै । ३. सा० सासी० तब लगि सुहंगा जानि । ४. तुल० साबे० १५-३८ तथा सासी० १५-५१ : यह रस महंगा सो पिवै, छांड़ि जीव की बान । माथा सांटै जो मिलै, तौभी सस्ता जान ॥ सासी० में यह साखी २४-१३७ पर भी मिलती है जिसका पाठ है : सिर सांटे का खेल है, छांड़ि देय सब बानि । सिर सांटे साहब मिलै, तौहु हानि मत जानि ।

[४१] दा० ४५-३५, नि० ५०-४८, सा० ८६-५, सासी० २१-२४, गुरा० ७६-१३—
१. दा० नि० सूरातन । २. दा३ नि० साहिया, सा० ताइया । ३. सासी० ध्यान (हिन्दी मूल) ।
४. गुरा० रांम कौं ।

(१५) उपदेस चितावनीं कौ अंग

काल सिरहानैं[१] है[२] खड़ा[३], जागि पियारे[४] मिंत[५] ।
रांम सनेही[६] बाहिरा[७], तूं क्यौं सोवै निंचित[८] ॥१॥[९]

पाव पलक की[१] गमि[२] नहीं, करै काल्हि का साज ।
काल अचानक मारिहै[३], ज्यौं तीतर कौं बाज ॥२॥

कबीर नौबति आपनीं, दिन दस लेहु बजाइ ।
यहु पुर पट्टन[१] यहु गली[२], बहुरि न देखहु आइ ॥३॥

कबीर धूरि सकेलि कै[१], पुड़िया बंधी एह[२] ।
दिवस चारि का पेखनां[३], अंति खेह की खेह ॥४॥

मानुख[१] जनम दुलंभ है[२], होइ[३] न बारंबार[४] ।
पाका फल जो गिरि परा[५], बहुरि न लागै[६] डार ॥५॥

मानुख जनमंहि पाइ कै[१], चूकै अबकी घात ।
जाइ परै भवचक्र मैं[२], सहै घनेरी लात[३] ॥६॥[४]

---

[१] दा० ४६-३, नि० ४४-४, सा० ७८-४३, साबे० १९-१७९, सासी० ३२-३, स० ६७-१६, बी० १०२ गुरा० १७७-११९—
१. दा२ दा३ सिहांणैं, नि० सिरांणैं, सा० सासी० चिचाना, साबे० चिचावत, गुरा० सिचांणां। २. दा० नि० यौं, गुरा० सिरि। ३. बी० काल खड़ा सिर ऊपरै। ४. बी० साबे० बिराने। ५. दा० स० म्यंत (राज०), बी० सासी० मीत। ६. सा० सासी० नाम। ७. बी० जाका घर है गैल में, साबे० नाम सनेही जगि रहा। ८. बी० सासी० निचीत। ९. साबे० में यह साखी अन्यत्र मिलती है, तुल० साबे० १९-१२१ : काल खड़ा सिर ऊपरै, जागु बिराने मीत। जाका घर है गैल में, सो क्यों सोवै निचींत ॥ साबे० का यह पाठ बी० से प्रभावित ज्ञात होता है।

[२] दा० ४६-६, नि० ४४-६, सा० ७८-९, साबे० १९-१६, सासी० १७-५४, स० ६७-६, बीभ० २६८, गुरा० १७७-५५—
१. दा१ दा२ कबीर पल की। २. गुरा० सुधि। ३. दा० नि० गुरा० काल अच्यंता झड़पसी (राज० मूल), बी० बीचहिं चानक मारिहि।

[३] दा० १२-१, नि० १६-१, सा० ३०-१, साबे० १९-१८, सासी० १७-८०, स० ६७-१०, गुरा०, १७६-१, गु० ८०— दा२ पाटरा। २. गु० नदी नाव संजोग जिउ। ३. दा३ देखसि, गु० मिलिहै।

[४] दा० १२-२०, नि० १६-१४, सा० ३०-२४, साबे० १९-३५, सासी० १७-१२, स० ६७-१२, गुरा० १७६-६२, गु० १७८—
१. गुरा० समेटि करि। २. गु० देह। ३. सा० देखता।

[५] दा० १२-३४, नि० १६-४२, सा० ३०-१०८, साबे० १९-१७८, स० ६७-११, गु० ३०, बी० ११५, गुरा० १७६-२६—
१. गु० मानस। २. बी० सा० साबे० दुर्लभ अहै। ३. दा० नि० स० गुरा० देह। ४. गु० बारै बार, नि० बारंबार, बी० दूजी बार। ५. दा० नि० स० गुरा० तरवर तैं फल झड़ि पड़्या, सा० साबे० तरवर तें पत्ता झरै, गु० जिउ बन फल पाके भुंइ गिरहि।

[६] दा० १२-२९, नि० १६-७६, सा० ३०-५२, साबे० १९-१००, सासी० १७-७५, बी० ११३—
१. दा० नि० इहि औसरि चेत्या नहीं, सा० सासी० राम नाम जाना नहीं। २. दा० नि० सा० सासी० माटी मलनि (सा० सासी० मिलन) कुम्हार की। ३. दा० घनीं सहै सिर लात, नि० घणीं सहैलो (राज०) लात, सा० सासी० घनी सहैगा लात। ४. सासी० में यह साखी अन्य स्थल

हाड़ जरै ज्यौं[1] लाकरी, केस जरै ज्यौं[1] घास ।
सब जग[2] जरता देखि करि, भया कबीर उदास[3] ।।७।।

जैसी उपजै पेड़ तैं[1], जौ तैसी निबहै ओरि[2] ।
कौड़ी कौड़ी जोड़तां[3], जोरै लाख करोरि ।।८।।

कबीर सुपिनैं रैंनि कै, ऊवरि आए नैंन ।[1]
जीव परा बहु लूटि मैं[2], जागै तौ लेन न देन[3] ।।९।।[4]

नांव न जांनैं गांउं का, भूला मारगि जाइ[1] ।
काल्हि गड़ै जो कांटवा[2], अगमन[3] कस न खुराइ[4] ।।१०।।

हिरदा भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाइ[1] ।
मुख तौ तबहीं देखिअै[2], जौ दिल की[3] दुबिधा जाइ[4] ।।११।।

नीर[1] पियावत[2] का फिरै[3], सायर घर घर बारि[4] ।
त्रिखावंत जो होइगा[5], पीवैगा झख मारि ।।१२।।

पर भी मिलती है; तुल० सासी० १७-१७० : यह अवसर चेत्यौ नहीं, चूक्यौ मोटी घात । माटी मिलत कुंभार की, बहुत सहौगे लात ॥

[७] दा० १२-१६, नि० १६-२०, सा० ३०-३३, साबे० ११-३, सासी० १७-४४, गु० ३६, बी० १७४—
१. बी० जस । २. दा० नि० सब तन । ३. बी० जरै कबीरा राम रस, कोठी जरै कपास ।

[८] दा० ३४-७, नि० ५-२, साबे० १३-९ सासी० ५३-४, गु० १५३, बी० २०९—
१. बी० जैसी लागी ओर से, साबे० सासी० जैसी लौ पहिले लगी । २. बी० छोर । ३. दा० नि० पैका पैका जोड़तां, गु० हीरा किसका बापुरा, साबे० सासी० अपने देह को को गिनै । ४. दा० नि० जुड़सी लाख करोड़ि, गु० पुजहि न रतन करोड़ि, साबे० सासी० तारै पुरुष करोर ।

[९] दा० १२-२२, नि० १६-१७, सा० ३०-३१, साबे० १९-३८, सासी० १७-१४, बी० २११, गुग्रा० १७६-६५—
१. बी० सपनें सोया मानवा, खोलि जो देखा नैन । २. नि० परिया था बहु लूट मैं । ३. बी साबे० ना कछु लेन न देन । ४. तुल० बी० १२६-२ : राउर के पिछवारे, गावहिं चारिउ सैन । जीव परा बहु लूटि महं, ना किछु लेन न देन ॥

[१०] दा० ५०-१, नि० ५८-१, सा० १०२-१, १९-१३०, सासी० ५३-२१, बी० २०६ ।
१. दा० नि० मारगि लागा जाउं, सा० सासी० पांछैं लागा जाइ । २. दा० नि० सा० सासी० काल्हि जु कांटा भाजिसी (नि० लागिसी, सा० सासी० भागिसं।) । ३. दा० नि० सा० पहिली, सासी० पहिले । ४. दा० नि० क्यूं न खड़ाउं, साबे० कस न कराय ।

[११] दा० १३-८, नि० १७-१०, सा० ७५-३, साबे० २३-२ तथा ७१-४४, सासी० ४६-५ बी० २९,—
१. सासी० तेरे हिरदै राम है, ताहि न देखा जाइ । २. सा० साबे० सासी० ताको तो तब देखिए । ३. दा० नि० मन की । ४. सा० साबे० (२३-२) दुबिधा देइ बहाइ ।

[१२] दा० ३७-७, नि० ३९-५, सा० ७१-७, साबे० ३७-४७, बी० १२—
१. बी० साबे० पानि । २. दा१ दा२ सा० पिलावत । ३. बी० फिरै । ४. बी० साबे० सा० घर घर सायर बारि । ५. दा२ जो रे पियासा होइगा, साबे० जो जन तिरषावंत है ।

बाजन दे बाजंतरी[1], कलि कुकुही मति छेड़ि[2] ।
तुझै बिरांनीं[3] क्या परी, तूं अपनीं आप निबेरि ॥१३॥

एकै साधें सब सधै[1], सब साधें सब[2] जाइ ।
उलटि जो सींचै मूल कौं[3], फूलै फलै अघाइ[4] ॥१४॥

साधु भया तौ क्या भया[1], बोलै नांहिं बिचारि ।
हतै पराई आतमां, जीभ बांधि तरवारि ॥१५॥[2]

सांच बरोबरि[1] तप नहीं, झूठ बरोबरि[1] पाप ।
जाकै हिरदै[2] सांच है, ताकै हिरदै आप[3] ॥१६॥[4]

बोलत ही पहिचानिए, साहु[1] चोर का घाट ।
अंतर घट की करनीं[2], निकसै मुख की बाट ॥१७॥

रांम नांम[1] जांनां नहीं[2], लागी मोटी खोरि ।
काया हांड़ी काठ की, नां ऊ[3] चढ़ै[4] बहोरि ॥१८॥

रांम नांम जांनां नहीं, पाला कटक[1] कुटुंब ।
धंधा ही मैं मरि गया[2], बाहरि[3] भई न बंब[4] ॥१९॥[5]

---

[१३] दा० ३७-८, नि० ३९-३, सा० ७१-३, साबे० ३७-१०, ब.० २४८—
१. सा० बाजन दे बैजंत्री, साबे० बाजन देहू जंतरी, नि० बाजन देहु बजंतरा। २. सा० जग जंत्री ना छेड़, दा० नि० तूं कलि जंतरीं न छेड़ि। ३. नि० सा० पराई।

[१४] सा० २७-२०, साबे० ८०-७, सासी० २३-२०, बी० २७-३, गुग्र० १२-१—
१. बी० एक साधे सब साधिया। २. बी० एक, बीभ० सब। ३. साबे० जो गहि सेवै मूल को, सासी० माली सींचै मूल को, गुग्र० जौ जल सींचै मूल तैं। ४. गुग्र० तौ फल फूल अघाइ।

[१५] सा० ६५-११, साबे० ३७-४१, सासी० १९-१४७, बी० २१९ (बीभ० में नहीं है)—
१. सा० सास.० मुख आवै सोई कहै। २. साबे० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० साबे० ६८-८ तथा सासी० ७६-१२ : ज्यौं आवै त्यौं ही कहै, बोलै नहीं बिचारि। हतै पराई आतमा, जीभ लेइ तरवारि ॥ इससे साबे० तथा सासी० में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है।

[१६] नि० २३-१, सा० ५२-१, साबे० ६७-१, सासी० ८१-२२, बी० ३३४—
१. नि० सा० सासी० बराबरि। २. ब.० (बाराबंकी) भीतर। ३. साबे० ता हिरदै गुरु आप। ४. याज्ञिक-संग्रह (ना० प्र० स०) की एक पोथी में यह साखी लालदास के नाम से मिलती है, किन्तु नि० सा० साबे० सासी० तथा बी० प्रतियों में मिलने से यह साखी निश्चित रूप से कबीर की सिद्ध हो जाती है। अन्य साखियों की भाँति कबीर की यह साखी भी अत्यधिक प्रचलित है; यहाँ तक कि अपनी सुबोधता के कारण यह लोकोक्ति के रूप में प्रयुक्त होने लगी है। लालदास के समय तक यह निश्चित रूप से पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी होगी और लालदास या उनके शिष्य इसे अपने नाम पर चलाने का लोभ संवरण न कर सके होंगे।

[१७] बी० ३३०, साबे० ३७-४३, गुग्र० १४४-१२—
१. गुग्र० साथ। २. साबे० अंतर की करन करै, गुग्र० बासन महि को बस्त सब।

[१८] दा० १२-३१, नि० १६-३५, सा० ३०-५१, साबे० १९-४४, सासी० १३-२३, स० ६७-१२, गु० ७०—
१. साबे० सत्तनाम (राधा० प्रभाव)। २. गु० कबीर नामु न धिआइओ। ३. दा० बी० सा० साबे० सासी० वह, गु० ओहु। ४. गु० चर्है (उर्दू मूल)।

[१९] दा० १२-३३, नि० १३-३०, सा० ३०-४५, सासी० १७-७०, स० ८६-२३, गु० २२६—
१. सा० सासी० सकल। २. नि० पचि गया, सा० सास० पचि मरा। ३. दा० बादर, सा०

कबीर यहु तन जात है[१], सकै तौ ठाहर लाइ[२] ।
कै सेवा[३] करि साध की, कै हरि के गुन गाइ[४] ॥२०॥

कबीर यहु तन जात है[१], सकहु त लेहु[२] बहोरि ।
नांगे हाथौं[३] ते[४] गए, जिन्हके[५] लाख करोरि ॥२१॥

कबीर गरबु न कीजिग्रै[१], देही देखि सुरंग[२] ।
ग्राजु काल्हि तजि जाहुगे[३], ज्यौं कांचुरी भुवंग[४] ॥२२॥

कबीर गरब न कीजिग्रै[१], ऊंचा देखि ग्रवास ।
काल्हि परौं[२] भुइं[३] लोटनां, ऊपरि जांमैं[४] घास ॥२३॥

कबीर गरबु न कीजिग्रै[१], चांम लपेटे[२] हाड़ ।
हैवर[३] ऊपर छत्र तर[४], ते भी[५] देबा गाड़[६] ॥२४॥[७]

सासी० बार । ४. सा० सास ० बुंब । ५. गु० में यह साखी कुछ हेर-फेर के साथ ग्रन्यत्र भी ग्रात है, तुल० गु० १०६ : हरि का सिमरनु छाड़ि के पालिग्रो बहुत कुटुंब । धंधा करता रहि गया भाई रहिग्रा न बंधु ॥

[२०] दा० १२-३६, नि० १६-४७, सा० ३०-६४, साबे० १९-५४, सास० १७-१९, गु० २८ गुरा० १७६-२९—

१. गु० जाइगा । २. सा० सास० सकै तौ ठौर लग व, गु० कवनै मारगि लाइ । ३. गु० संगति । ४. दा० सा० गुरा० कै गुरा गोबिंद के गाइ, साबे० सास० कै गुरु के गुन गाइ ।

[२१] दा० १२-३७, नि० १६-४८, सा० ३०-६५, साबे० १९-६१, सासी० १८-२१, गु० २७ गुरा० १७६-३०—

१. गु० जाइगा । २. सा० साबे० सास० राखु । ३. गु० नागे पावहु, गुरा० नांगे पाऊ. नि० नांगा पावां, साबे० सासी० खाली हाथों । ४. नि० जे, सा० सो, साबे० सासी० वह । ५. नि० तिनकै ।

[२२] दा० १२-९, नि० १६-१०, सा० ३०-१९, साबे० १९-२८, सासी० १७-६, गु० ४०—
१. दा० नि० सा० कबीर कहा गरबियौ, बी० कनक कामिनी देखि के । २. बी० तू मत भूल सुरंग । ३. दा० नि० बीछड़ियां मिलबौ (सा० मिलर्स) नहीं, साबे० सास० बिछुरे पर मेला नहीं, बी० बिछुरन मिलन दुहेलरा । ४. बी० जस केंचुलि तजत भुजंग, दा० नि० कांचलियार भुवंग, सा० साबे० सास० ज्यों केंचुली भुजंग ।

[२३] दा० १२-१०, नि० १६-७९, सा० ३०-१७, साबे० १९-३०, सासी० १७-३, गु० ३८—
१. दा० नि० सा० कबीर कहा गरबियौ । २. गु० ग्राजु कालि । ३. दा० भ्वैं । ४. साबे० सास ० जमसी, सा० जामिहै ।

[२४] दा० १२-११, नि० १६-१२, सा० ३०-२०, साबे०, १९-३१, सासी० १७-४ तथा ५, गु० ३७—
१. दा० नि० सा० कबीर कहा गरबियौ । २. दा० नि० पलेटे (पंजाबी मूल), सासी० (५) लपेटी (उर्दू मूल)। ३. नि० हस्ती । ४. दा० छत्र सिरि (उर्दू मूल), नि० छत्रपति, सास० छत्र तट (हिन्दी मूल)। ५. नि० सा० तेऊ, साबे० सासी० तो भी, गु० ते फुनि । ६. दा० देबा खड, नि० दीए खंड, सा० दीए खाड़, साबे० सासी० देवैं गाड़, गु० धरनी गाड़ । ७. सासी० (५) इक दिन तेरा छत्र सिर, देगा काल उखाड़ ।

जिहिं जेवरी जग बंधिया[1], तूं[2] जनि[3] बंधै कबीर ।
जैहहि[4] आटा लौंन ज्यौं, सोनां[5] सवां सरीर ॥२५॥

ऊजल पहिरहिं[1] कापरे[2], पांन सुपारी खांहिं[3] ।
एकै[4] हरि के नांव बिनु[5], बांधे जमपुर जांहिं[3] ॥२६॥

कबीर बेड़ा जरजरा[1], फूटे छेंक हजार[2] ।
हरुए हरुए तिरि गए, बूड़े जिनि सिर भार ॥२७॥[4]

दुनियां कै धोखैं[1] मुआ, चालत कुल की कांनि[2] ।
तब कुल किसका लाजसी (लाजई ?)[3], जब ले धरहिं मसांनि ॥२८॥

दीन गंवाया दुनीं सौं[1], दुनीं न चाली साथि ।
पांव कुहाड़ी मारिआ[2], गाफिल[3] अपनैं हाथि ॥२९॥

कबीर सभ जग हंढिया[1], मादलु[2] कंध चढ़ाइ ।
कोई काहू को नहीं[3], सब देखी[4] ठोंकि बजाइ ॥३०॥

कबीर यहु चेतावनीं[1], जिनि संसारी संग जाइ[2] ।
जो पहिले सुख भोगिया[3], तिनका गुड़ लै खाइ ॥३१॥

---

[२५] दा० १२-४८, नि० २१-५३, सा० ३०-९३, सावे० ३७-३५, सासी० १८-५९, गु० ११७—
१. गु० जग बांध्यौ जिह जेवरी । २. गु० तिहि । ३. सा० गु० मति । ४. दा० ह्वैसी (राज० मूल), सासी० जासी (राज० मूल), सा० जैसे, सावे० होसी । ५. सा० सूता (उर्दू मूल), गु० सोनि (उर्दू मूल)।

[२६] दा० १२-५४, नि० १६-५८, सा० ३०-७८, सावे० १९-८२, सासी० १७-९३, गु० ३४—
१. सा० सासी० पहिनैं । २. दा० ऊजल कपड़ा पहरि करि । ३. नि० सा० सावे० सासी० खाय—जाय । ४. सावे० सासी० कबीर, गु० एक स । ५. सावे० ास ० गुरु की भक्ति बिनु ।

[२७] दा० १२-६२, नि० १६-७१, सा० ३०-९५, सावे० १९-८६, सासी० १७-२३, गु० ३५—
१. दा० नि० कबीर नांव है जरजरी । २. दा० नि० सा० सासी० कूड़ा खेवनहार, सावे० फूटे छेद हजार । ३. गु० डूबे । ४. सावे० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० सावे० १९-१७३ कबीर नाव है झांझरी, कूड़ा खेवनहार । हलके हलके तिरि गए, बूड़े जिन सिर भार ॥

[२८] दा० १२-४६, नि० १६-५४, सा० ३०-७०, सासी० १७-८६, स० ८७-४, गु० १६६—
१. दा३ दूखैं (उर्दू मूल), गु० दोखे (उर्दू मूल)। २. सा० सासी० चला कुटुंब की कानि । ३. नि० तब कौंण की कुल लाजसी, सा० सासी० तब कुल की क्या लाज है ।

[२९] दा० १२-४३, नि० १६-५१, सावे० १९-७८, सासी० १७-११७, गु० १३—
१. सावे० सासी० दूनि संग, गु० दुनी सिउ । २. दा३ कुहाड़ी बाहिया, गु० कुहाड़ा मारिया । ३. सावे० सासी० मूरख ।

[३०] दा० ३७-१०, नि० ३९-६, सा० ७१-६, सासी० ६-१४५, गु० ११३, गुरा० १०६-१७—
१. गु० सभु जगु हउ फिरिओ (समानार्थीकरण) नि० सब जग देखिया, सा० सासी० सब जग हेरिया । २. दा२ गुरा० मंदल, दा३ मंदिल (उर्दू मूल), सा० सासी० मेल्यौ । ३. दा० सा० सासी० गुरा० हरि बिन अपनां कोइ नहीं, नि० कोई किसही का नहीं । ४. दा० गुरा० सब देखे, सा० सब देखा, सासी० देखा ।

[३१] दा५ १२-५१, नि० २०-३५, सा० ३०-४१, सासी० १७-१५१, गु० ४४, गुरा० ७६-६७—
१. नि० इह चितावणीं, । २. सा० गुरा० जनि संसारी जाय, सासी० मत संसार गंवाय । गु० मत सहसा रहि जाइ (उर्दू मूल—संसारहि ?)। ३. गु० पाछै भोग जु भोगवै ।

कबीर सभ[1] ते हंम बुरे, हंम तजि[2] भल[3] सभ कोइ ।
जिनि ग्रैसा करि बूझिग्रा, मीत हमारा सोइ ।।३२।।
जहां दया[1] तहं[2] धर्म है, जहां लोभ[3] तहं[2] पाप ।
जहां क्रोध[4] तहं[2] काल है, जहां खिमां[5] तहं[2] ग्राप ।।३३।।
जौ ग्रिह करहि[1] त धरम[2] करु, नांहि त[3] करु बैराग ।
बैरागी बंधन करै, ताकौ[4] बड़ो[5] ग्रभाग ।।३४।।
कबीर सोई[1] मारिग्रै, जिहि मूएं सुख होइ ।
भलो भलो[3] सभ कोइ कहै, बुरो न मांनैं[4] कोइ ।।३५।।
बेरियां बीती बल गया[1], बरन[2] पलटि भया ग्रौर[3] ।
बिगरी बात न बाहुरै[4], कर छूटनि की ठौर[5] ।।३६।।
कुल खोएं[1] कुल ऊबरै, कुल राखें[2] कुल जाइ ।
रांम निकुल[3] जब[4] मेटिया, सब कुल रहा समाइ[5] ।।३७।।
कबीर तुरी[1] पलांनियां, चाबुक[2] लीग्रा[3] हाथि ।
द्यौस थकां सांइ मिलै[4], पीछैं परिहै[5] राति ।।३८।।

---

[३२] सा० ७२-२०, साबे० ६५-१२, सासी० ८३-१३, गु० ७—
१. सा० साबे० सासी० सब । २. सा० साबे० सासी० हम तें । ३. गु० भलो ।

[३३] सा० ४८-४, साबे० ६२-४, सासी० ८२-१५ गु० १५५—
१. गु० गिग्रानु । २. सा० सासी० वह । ३. गु० झूठ । ४. गु० लोभु । ५. साबे० छिमा, सा० सासी० क्षमा । ६. तुल० सासी० ८२-१२ : दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप । जहां क्षमा तहं धर्म है, जहां दया तहं ग्राप ।

[३४] सा० १०-३२, साबे० ५०-३, सासी० ७-७९, गु० २४३—
१. सा० साबे० सासी० घर में रहै । २. सा० साबे० सासी० भक्ति । ३. सा० साबे० सासी० नातर । ४. सा० साबे० सासी० ताका ।

[३५] साबे० ८-४७, सासी० २४-११, गु० ९—
१. साबे० सासी० पांचौ । २. साबे० सासी० जौ मारै । ३. साबे० सासी० भला भला । ४. साबे० सासी० कहसी (राज० मूल) ।

[३६] दा० ४६-२५, नि० ४४-३६, सा० ७८-१८, साबे० १९-१८१, सासी० ३२-१५, स० ६७-२४—
१. नि० सा० साबे० सासी० घटा । २. नि० सेत, सा० साबे० सासी० केस । ३. साबे० घौर । ४. नि० सा० साबे० सासी० बिगड़ा काज संभारि लै । ५. नि० कर छूटां कित ठौर, दा० स० कर छिटक्यां कत ठौर, साबे० फिर छूटनि नहिं ठौर ।

[३७] दा० १२-४५, नि० १६-५३, सा० ३०-७१, साबे० १९-७९, सासी० १७-८७, स० ८६-२४—
१. साबे० सासी० खोए । २. दा० नि० गाल्यां (राज०) । ३. साबे० नाम ग्रकुल । ४. नि० जब, साबे० को । ५. सा० साबे० सासी० गया बिलाइ ।

[३८] दा० १३-१३, नि० ५०-३८, सा० ८५-२३, साबे० ८-१५, सासी० २४-६, स० ६७-१३—
१. दा१, दा२ स० तुरा (राज० नागरी मूल) । २. दा० नि० स० चाबक ३. साबे० लीजे, सा० सासी० लीन्हा । ४. दा३ पिवकूं मिलौं, नि० हरि कौं मिलौं । ५. नि. साबे० पड़िसी ।

कबीर हरि सौं[१] हेत करि, कूड़ै[२] चित्त न लाइ ।
बांधा बारि खटीक कै, तां[३] पसु केतिक[४] आइ ॥३९॥

कबीर हरि की[१] भगति बिनु, ध्रिग जीवन संसार ।
धूवां केरा धौलहर[३], जात न लागै बार[४] ॥४०॥[५]

रांम नांम करि बौंहड़ा[१], बाहै बीज अघाइ[२] ।
अंतकालि[३] सूखा परै, तऊ न निरफल जाइ[४] ॥४१॥[५]

जिनके[१] नौबति बाजती, मैंगल[२] बंधते बारि ।
एकहि हरि के नांउं बिनु, गए जनम सब[४] हारि ॥४२॥

कबीर थोड़ा जीवनां, माड़ै बहुत मंडांन ।
सबही ऊभा पंथ सिर[१], राव रंक सुलतांन ॥४३॥

कबीर गरब न कीजिअै[१], काल गहे कर कर केस[२] ।
नां जांनौं कहं मारिहै[३], कै घर[४] कै परदेस ॥४४॥

कबीर गरब न कीजिअै, इस[१] जोबन की आस ।
टेसू[२] फूले दिवस दोइ[३], खंखर भए पलास ॥४५॥

---

[३९] दा० ४६-२७, नि० ४४-३७, सा० ७८-६२, सासी० ३२-३८, स० ६७-८—
१. दा० नि० सूं । २. सा० सासी० कोरै (उर्दू मूल) । ३. नि० तहं । ४. दा० नि० किती एक ।

[४०] दा० १२-२७, नि० १६-३८, सा० १५-३, साबे० १२-२८ तथा १९-५० (दो बार), सासी० १२-२३, स० ६७-१३, गुग्रा० १७६-६४—
१. साबे० सासी० गुरु की (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. साबे० सासी० धिक । ३. साबे० का धौलहर, सा० सासी० का धौराहरा । ४. सासी० बिनसत लगै न बार । ५. साबे० में यह साखी उपर्युक्त दो स्थलों पर मिलती है और दोनों का पाठ शब्दशः मिलता है ।

[४१] दा० ३५-४, नि० ३७-७, सा०१५-८, साबे०१२-३१,सासी० १२-२७,स० ५५-१,गुग्रा० ४७-७—
१. सा० साबे० राम नाम (साबे० सत्तनाम) हल जोतिए, सासी० छिमा खेत भल जोतिए । २. सा० साबे० सासी० सुमिरन बीज जमाइ । ३. नि० सरब लोक, सा० साबे० सासी० खंड ब्रह्मंड । ४. साबे० सासी० भक्ति बीज नहिं जाइ, दा१ दा२ गुग्रा० निरफल कदे (गुग्रा० तऊ) न जाइ । ५. तुल० साबे० ३४-६० : सुमिरन का हल जोतिए, बीजा नाम जमाय । खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तऊ न निस्फल जाय ॥

[४२] दा० १२-२, नि० १६-२, सा० ३०-२, साबे० १९-१९, सासी० १७-३९, गुग्रा० १७६-२—
१. दा२ ज्यांह कै । २. दा० नि० साबे० मंगल (उर्दू मूल ?) । ३. साबे० सतगुरु, सासी० गुरु के । ४. नि० तन ।

[४३] दा० १२-५, नि० १६-४, सा० ३०-५, साबे० १९-२२, सासी० १७-८, गुग्रा० १७६-५—
१. दा० गुग्रा० ऊभा मेल्हि गया, नि० ऊभी मेल्हिगा, साबे० ऊभा में लगि रहा ।

[४४] दा० १२-१२ तथा ४६-१९ (दो बार), नि० ४४-१, सा० ३०-२१, साबे० २९-१, सासी० १७-१, गुग्रा० १७७-१५२—
१. दा० गुग्रा० कबीर कहा गरबियौ । २. नि० काल गह्यां सिर केस । ३. दा० मारिसी (राज० मूल) । ४. सा० साबे० सासी० क्या ।

[४५] दा० १२-८, नि० १६-९, सा० ३०-१८, साबे० १९-२९, सासी० १७-२—
१. साबे० अस (उर्दू मूल) । २. दा० नि० केसू (उर्दू मूल ?) । ३. दा० चारि, साबे० सासी० दस ।

ऐसा[1] यहु संसार है, जैसा सैंबल[2] फूल ।
दिन दस के ब्यौहार हैं[4], झूठै रंगि न भूल ॥४६॥
कबीर सुपिनैं रैंनि के, पड़ा कलेजै छेक[1] ।
जौ सोऊं तौ दोइ जनां, जौ जागूं तौ एक ॥४७॥
कबीर हरि की[1] भक्ति करि, तजि बिखिया रस चौज ।[2]
बार बार नहिं पाइए, मनिखा जनम की मौज ॥४८॥
जब लगि भगति सकांम है[1], तब लगि निरफल सेव ।
कहै कबीर वह क्यौं मिलै, निहकांमीं निज देव ॥४९॥[2]
कबीर तहां न जाइऐ, जहां कपट का हेत ।
जालूं[1] कली कनीर[2] की, तन राता मन सेत ॥५०॥
ढोल दमांमां गड़गड़ी[1], सहनाई संगि[2] भेरि ।
औसर चले बजाइ कै, है कोई लावै[3] फेरि[4] ॥५१॥
इक[1] दिन ऐसा होइगा, सब सौं[2] परै बिछोह ।
राजा रांनां छत्रपति[3], सावधांन किन होइ[4] ॥५२॥
जांमन मरन बिचारि कै[1] कूड़े कांम निवारि[2] ।
जिहिं पंथां तोहि चालनां[3], सोई[4] पंथ संवारि[5] ॥५३॥

---

[४६] दा० १२-१३, नि० १६-१३, सा० ३०-२३, साबे० १९-३४, सासी० १७-१५, गुरा० १७६-७६—
१. सा० सासी० कबीर। २. साबे० सेमर, सासी० सेंमल। ३. सा० साबे० सासी० में।

[४७] दा० १२-३३, नि० ७-१६, सा० ३०-३०, साबे० १४-५१, सासी० १६-३५, गुरा० १७६-६६—
१. दा० पा.स जिय में छेक, गुरा० परा स जिय में छेक।

[४८] दा० १२-३५, नि० ५-१४, सा० १५-२, साबे० १२-१, सासी० १२-१२, गुरा० १७६-२७—
१. साबे० सासी० गुरु की। २. नि० कबीर हरि का नांव लै, तजि माया बिख चौज, गुरा० कबीर हरि की भगति करि, तजि माया बिख चौज। ३. सा० साबे० सासी० मनुख।

[४९] दा० ११-१०, नि० २१-५५, सा० १५-३०, साबे० १२-३४, सासी० १२-३६, गुरा० ५१-९—
१. दा० नि० गुरा० सकांमता। २. यह साखी 'गुराग़ंजनामा' में ही अन्यत्र कमाल के नाम से भी मिलती है, तुल० गुरा० १०९-२८ : जब लग कांम न बीसरै, तब लगि निरफल सेव । कहि कमाल हरि क्यं मिलै, वे निहकांमीं देव ॥ किन्तु गुरा० के अतिरिक्त दा० नि० सा० साबे० सासी० में भी मिलने से यह साखी कबीर की ही सिद्ध होती है, कमाल के नाम से कदाचित् वह भूल से प्रचलित हो गयी है।

[५०] दा० ४२-१, नि० ४७-१, सा० ८१-१, साबे० ५८-१, सासी० ६९-१, गुरा० ६२-५४—
१. सा० साबे० सासी० जानो (उर्दू मूल)। २. सा० साबे० सासी० अनार।

[५१] दा० १२-३, नि० १६-३, सा० ३०-३, साबे० १९-२१, सासी० १७-४०—
१. दा२ नि० गिड़गिड़ी, दा१ दा२ सा० सासी० दुरबरी,। २. साबे० अरु। ३. दा१ दा२ सा० सासी० राखै। ४. सा० अपनी अपनी बेरि।

[५२] दा० १२-६, नि० १६-५, सा० ३०-६, साबे० १९-२३, सासी० १७-४१—
१. सासी० एक। २. दा२ थैं। ३. सा० साबे० सासी० राजा राना राव रंक। ४. साबे० सासी० सावध क्यों नहिं कोइ।

[५३] दा० १२-२४, नि० १८-१६, सा० ३०-३७, साबे० १९-७०, सासी० १६-६८—
१. साबे० जनम मरन दुख याद कर, सा० सासी० जनमैं मरन बिचारि कै, नि० हरि हरि हथियार

राखनहारे बाहिरा[१], चिड़िश्रैं खाया खेत ।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति ।।५४।।
कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लालि ।
दिवस चारि का पेखनां, बिनसि जाइगा काल्हि ।।५५।।
कहा किया हंम आइ करि, कहा करैंगे जाइ ।
इत के भए न ऊत के, चाले मूल गंवाइ[१] ।।५६।।
आया अनआया भया[१], जे बहु राता[२] संसारि ।
पड़ा भुलावा गाफिलां, गए कुबुद्धी हारि ।।५७।।
जिन हरि की[१] चोरी करी, गए रांम[२] गुन भूलि ।
ते बिधिनां बागुल रचे[३], रहे अरध[४] मुखि झूलि ।।५८।।
यहु तन कांचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि ।
ढबका[१] लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि ।।५९।।
कबीर यहु तन बन भया[१], करम जु भए कुहारि[२] ।
आप आपकौं काटिहै, कहै कबीर बिचारि ।।६०।।

करि । २. नि० कूड़ी गल न मारि । ३. साबे० जिन जिन पंथों चालना, नि० ज्यां ज्यां पंथी (नागरी मूल) चालणां । ४. नि० सोइ सोइ । ५. साबे० संभारु । उक्त स्थलों के अतिरिक्त सा० में यह साखी ३४-२५ पर और साबे० में १८-२३ पर भी मिलती है जहाँ इसका पाठ है : कबीर हरि (साबे० गुरु) हथियार करि, कूरा गली निवारि । जो जो पंथा चालना, सोई पंथ संवारि ॥ यह पाठ नि० से प्रभावित ज्ञात होता है । सा० तथा साबे० में एक ही प्रकार की पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[५४] दा० १२-१५, नि० १६-२२, सा० ३०-३९, साबे० १९-४०, सासी० १७-६६—
१. दा० बिन रखवाले बाहिरा ('बिन' तथा 'बाहिरा' में एक ही भाव की पुनरावृत्ति), सा० बिनु रखवारे बाहरी, साबे० सासी० घर रखवाला बाहिरा ।

[५५] दा० १२-१९, नि० १६-१६, सा० ३०-३९, साबे० १९-३७, सासी० १७-१३

[५६] दा० १२-२५, नि० १६-३७, सा० ३०-५५, साबे० १९-४७, सासी० १७-७८—
१. नि० चाले जनम ठगाइ ।

[५७] दा० १२-२६, नि० १६-३६, सा० ३०-५४, साबे० १९-४८, सासी० १७-१८८—
१. सा० कबीर अनहूवा हुआ । २. सा० बहु रोता (राज० मूल) है । सासी० में पुनरावृत्ति; तुल० १७-२१ : कबीर अनहूवा हुआ, बहु रोता संसार । पड़ा भुलावा गाफिला, गया कुबुद्धी हार ॥ यह पाठ सा० से लिया हुआ ज्ञात होता है ।

[५८] दा० १२-२८, नि० १६-२८, सा० ३०-४३, साबे० १९-४३, सासी० १७-६९—
१. साबे० सासी० गुरु की । २. साबे० सासी० नाम । ३. दा२ दा३ किए । ४. दा२ औंध, दा३ उंघ (उर्दू मूल) ।

[५९] दा० १२-३९, नि० १६-४४, सा० ३०-६१, साबे० १९-५२, सासी० १७-८०—
१. सा० साबे० सासी० टपका (नागरी मूल)

[६०] दा० १२-४४, नि० १६-५२, सा० ३०-६६, साबे० १९-१६४, सासी० १७-२६—
१. दा० यहु तन तौ सब बन भया । २. सा० साबे० सासी० कुल्हार ।

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ ।
ऊजर भए न छूटिए[१], सुख नींदरी न सोइ ।।६१।।

तेरा[१] संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोइ[२] ।
मन परतीति न ऊपजै, जिय[३] बेसास न होइ ।।६२।।

डागल[१] ऊपरि दौरनां, सुख नींदरी न सोइ ।
पुन्नैं पाया देह रे[२], ओछी ठौर[३] न खोइ ।।६३।।

ऊजड़ खेड़े ठीकरी[१], गढ़ि गढ़ि[२] गए कुम्हार ।
रांवन सरिखा[३] चलि गया, लंका का सिकदार ।।६४।।

तन मांहीं जो मन धरै, मन धरि ऊजल होइ ।
साहिब सौं सनमुख रहै, तौ अजरावर होइ[१] ।।६५।।

मरैंगे[१] मरि जांहिंगे[२], कोइ[३] न लेगा[४] नांउं[५] ।
ऊजड़ जाइ बसांहिंगे[६], छोड़ि बसंता गांउं[५] ।।६६।।

आजि कि काल्हि कि पचे दिन[१], जंगलि होइगा बास ।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे[२], ढोर चरंते[३] घास ।।६७।।

रांम नांम[१] जांनां नहीं, हूआ बहुत अकाज ।
बूड़ैगा रे बापुरा, बड़े बड़ों[२] की लाज ।।६८।।

---

[६१] दा० १२-५३, नि० १६-५७, सा० ३०-७७, साबे० १९-५५, सासी० १७-९२—
१. नि० सा० साबे० सासी० छूटिसी (राज० मूल)।

[६२] दा० १२-५५, नि० १६-६७, सा० १६-४, साबे० १९-८५, १९-१०८ (दोबार), सासी० १७-९८—
१. नि० सा० सासी० मेरा। २. दा० सब स्वारथ बंधी लोइ। ३. नि० जे (उर्दू मूल)।

[६३] दा० १२-५१, नि० १६-४३, सा० ३०-८८, साबे० १९-८७, १९-१७१, सासी० १७-१०३—
१. सा० साबे० (२) सासी० कोठै। २. साबे० (१) दिवसड़ा, दा० नि० चौंहड़ै। ३. नि० आव

[६४] दा२ दा३ १२-७, नि० १६-७, सा० ३०-७, साबे० १९-२४, सासी० १७-४२—
१. सा० सासी० टेकरी (उर्दू मूल)। २. दा० नि० सासी० घड़ि घड़ि (राज० मूल)। ३. सासी० जैसा। ४. दा० साबे० सा० सरदार।

[६५] दा३ १२-१२, नि० १७-१२, सा० ३१-१५, साबे० ७१-४५, सासी० २९-६२—
१. सा० सासी० तौ अमरापुर जोय, साबे० अजर अमर सो होय। दा३ तौ फिरि बालक होइ।

[६६] दा३ १२-१६, नि० १६-१९, सा० ३०-३४, साबे० १९-३९, सासी० १७-३६—
१. साबे० मरोगे। २. साबे० जाहुगे। ३. दा३ नाम। ४. दा३ लेसी (राज० मूल)।
५. दा२ दा३ कोइ—लोइ। ६. साबे० बसाहुगे।

[६७] दा२ १२-१८, नि० १६-१८, सा० ३०-३२, साबे० १९-२, सासी० १७-४३—
१. सा० साबे० सासी० आज कालि के बीच में। २. साबे० सासी० हल फिरैं। ३. साबे० सासी० चरंगे।

[६८] दा० १२-३६, नि० १६-३१, सा० ३०-४६, साबे० १९-४५, सासी० १७-७१—
१. साबे० सत्तनाम (राधा० प्र०)। २. दा० बड़ा बूढ़ों।

ज्यौं कोरी[1] रेजा[2] बुनैं, नेरा[3] आवै छोरि ।
असा लेखा[4] मीच का, दौरि सकै तौ दौरि ॥६९॥

कबीर पगरा दूरि है, बीच पड़ी है राति[1] ।
नां जांनौं क्या होइगा, ऊगंते[2] परभाति ॥७०॥

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ नीकसि भागि[1] ।
कब लगि राखौं[2] रांम जी[3], रुई लपेटी[4] आगि[5] ॥७१॥

बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त[1] उदार ।
दोऊ चूकि[2] खाली[3] पड़ै, ताकौ वार न पार ॥७२॥

संसारी साकत[1] भला, कुंवरी कन्या भाइ[2] ।
दुराचारी बैसनौं बुरा[3], हरिजन तहां न जाइ ॥७३॥

कबीर हरि के नांव सौं[1], प्रीति रहै इकतार[2] ।
तौ मुख तैं मोती झरै, हीरा अनंत अपार[3] ॥७४॥

असी बांनीं बोलिए, मन का आपा खोइ ।
अपनां तन सीतल करै, औरां कौं सुख होइ[1] ॥७५॥

---

[६९] दा२ दा३ दा५ १२-६७, नि० ४४-४३, सा० ३०-८७, साबे० १९-१७०, सासी० १७-१०२—
१. नि० कोली । २. दा० बेजा (नागरी मूल), नि० कुलहट । ३. दा३ बुगातां । ४. नि० इसा भरोसा ।

[७०] दा२ ४४-७, नि० ४४-४४, सा० ७८-६०, साबे० १९-१५२, सासी० १७-५५ तथा ३२-३६—
१. नि० अजूं बीचि है राति । २. साबे० ऊगे तें ।

[७१] दा० १२-६०, नि० १६-४३, सा० ३०-९०, साबे० १९-६७, सासी० १७-१०५—
१. दा० निकसी भागि, नि० नीसरि भागि, साबे० सासी० निकसो भागि । २. दा० नि० क्यूं करि ऊबरूं । ३. दा० कब लगि राखौं हे सखी, साबे० कहै कबीर कब लगि रहै । ४. दा० नि० पलेटी (पंजाबी मूल) । ५. तुल० दा० १६-३२, नि० १९-४२, सा० ३७-३७, साबे० ७२-५५ : कहु धौं केहि बिधि राखिए, रुई पलेटी आगि ।

[७२] दा० ३४-६, नि० २०-३२, सा० ७१-२०, साबे० ५२-५ सासी० ७-७८—
१. नि० चिता । २. नि० दोइ बातां, साबे० दो बातों, दा० दुहूं चूक । ३. दा० रीता ।

[७३] दा० ४२-२, नि० ४७-३, सा० ८१-१०, साबे० १७-८, सासी० ७-४५—
१, सा० साबे० सासी० साकट । २. दा० कंवारा कै भाइ । ३. नि० बैशनौं अर बिभचारिनौं, सा० साबे० सासी० साधु दुराचारी बुरा ।

[७४] दा० ३४-८, नि० ३-१७, सा० ११-५६, साबे० ३३-२८, सासी० १३-३१—
१. साबे० कबीर सतगुर नाम में । २. सा० सासी० सुरति रहै करतार, साबे० सुरति रहै सरसार । ३. दा० हीरे अंत न पार ।

[७५] दा० ३४-९, नि० ५-१०, सा० १०-२०, साबे० ३७-७, सासी० १८-२६—
१. नि० सा० साबे० सासी० औरन कौं सीतल करै, आपहु सीतल होइ । सासी० में पुनरावृत्ति; तुल० सासी० १९-६९ : सब्द जु ऐसा बोलिए, तन को आपा खोय । औरन को शीतल करै, आपन को सुख होय ।

कबीर नवै सो आपकौं, पर कौं नवै न कोइ ।
घालि तराजू तौलिए, नवै सो भारी[1] होइ ॥७६॥
कबीर हद के जीव सौं[1], हित करि मुखां न बोलि ।
जे राचे बेहद्द सौं[1], तिन सौं अंतर खोलि ॥७७॥
कबीर केवल रांम[1] कहि, सुद्ध गरीबी झालि[2] ।
कूरु बड़ाई बूड़सी (बूड़ई ?), भारी पड़सी (परई ?) कालि[3] ॥७८॥
सील गहै कोइ सावधान[1], चेतन पहरै जागि ।
बस्तु न[2] बासन सौं[3] खिसै, चोर न सकई लागि ॥७९॥
कबीर अपनैं जीवतैं, ए दोइ बातैं[1] धोइ ।
मांन[2] बड़ाई कारनैं, अछता[3] मूल न खोइ ॥८०॥
खंभा एक गयंद दोइ, क्यौं करि बंधसि बारि ।
मांनि करै[2] तौ पिउ नहीं, पीउ तौ मांनि निवारि ॥८१॥
बेरियां बीती बल गया[1], अरु[2] बुरा कमाया[3] ।
हरि जिनि छांड़ै हाथ तैं, दिन नेरा आया[3] ॥८२॥

---

[७६] दा० ३९-९, नि० ५१-६१, साबे० ६५-६, सासी० ८३-८, गुग्रा० ३३-१०—
१. नि० गरवा । तुल० नानक : सभ को निवइ आप कउ, पर कउ निवै न कोइ । घालि तराजू तौलिए, निवै स गउरा होइ ॥ (गु० पृ० ४७० पंक्ति १०, ११ नीचे से)

[७७] दा० १२-५०, नि० ६४-१५, सा० १०८-१४, सासी० ४४-१३, स० ११-४, गुग्रा० १०६-२५—
१. नि० दा१ दा२ स्यूं । याज्ञिक संग्रह (ना० प्र० स०) के ३४६-५५ संख्यक गुटके में यह साखी लालदास के नाम से मिलती है, वहां इसका पाठ है : लालजिया हद के लोग सूं, हित कर मुष नां बोल । जे राचे हर नांव सूं, जासूं अंतर खोल ॥४१॥ अन्य साखियों की भाँति संभवतः इसे भी किसी संत ने भूल से लालदास की रचनाओं में सम्मिलित कर लिया है । इस साखी में लालदास की छाप ठीक बैठती भी नहीं ।

[७८] दा० १२-५२, नि० १६-५६, सा० ३०-७६, सासी० १७-३४, स० १२७-७, गुग्रा० १२०-९—
१. सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । २. सासी० चाल (उर्दू मूल) । ३. सासी० झाल । (कदाचित् स्थानांतरित) ।

[७९] दा० ३४-१०, सा० ४३-३, साबे० ६१-६, सासी० ७९-२, गुग्रा० १५-१०—
१. दा० गुग्रा० कोई एक राखै सावधान (दा२ साध धन) । २. सा० साबे० सासी० बासन (हिन्दी मूल) । ३. सा० साबे० सासी० कै ।

[८०] दा० १२-४१, सा० ३८-१०, साबे० ५७-११, सासी० ६७-११, गुग्रा० १२०-८—
१. सा० सासी० बाता । २. गुग्रा० लाभ ३. साबे० आछत ।

[८१] दा० १२-४२, सा० ३८-९, सासी० ६७-१२, गुग्रा० ४०-१६—
१. सा० सासी० बंधू । २. सा० सासी० करूं ।

[८२] दा० ४६-२६, सा० ७८-१९, सासी० ३२-१६, गुग्रा० ३५-४—
१. सा० सासी० घटा । २. सा० सासी० औरों । ३. सा० सासी० कमाय—आय । ४. सा० सासी० हरिजन (उर्दू मूल) छांड़ी ।

ऊंचा दीसै[१] धौलहर[२], मांड़ी चितरी[३] पोलि[४] ।
एकै हरि कै[५] नांउं बिनु, जम पाड़ैगा[६] रोलि[७] ॥८३॥

कहा[१] चुनावै[२] मैड़िया, चूनां माटी लाइ ।
मीच सुनैगी पापिनीं, ऊदारैगी आइ[३] ॥८४॥

अैसी ठाटनि[१] ठाटिए[२], बहुरि न ठाटनि होइ[३] ।
पहिरि ग्यांन गलि गूदरी[४], काढ़ि[५] न सकई कोइ ॥८५॥

भै बिनु भाव न ऊपजै, भाव बिनां नहिं प्रीति[१] ।
जब हिरदैं सौं भै भया, तब मिटी सकल रस रीति ॥८६॥

बस्तु कहीं खोजै[१] कहीं, क्यौंकरि[२] आवै हाथि ।
कहै कबीर तब पाइए, जब भेदी लीजै साथि[३] ॥८७॥

सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित देहु[१] ।
जा सबदै साहिब मिलै, सोइ सबद गहि लेहु[२] ॥८८॥

बहते को बहि जांन दे[१], मति पकड़ावौ ठौर[२] ।
समुझाए[३] समुझै नहीं, तौ देहु धका दुइ अौर ॥८९॥

---

[८३] दा० ४६-१८, सा० ३०-८, सासी० १७-५६, गुरा० १७७-१४९—
१. दा० गुरा० मंदिर (आगे 'धौलहर' होने के कारण पुन०)। २. सा० धौलहरा, सासी० धौहरा। ३. दा१ माटी चित्री। ४. सा० सासी० पोल। ५. दा० रांम, सासी० गुरु। ६. सा० सासी० मारैंगे। ७. सा० सासी० रोल।

[८४] दा२ दा३ ४४-२३, सा० ३०-१४, सासी० १७-६१, गुरा० १७७-१५०—
१. गुरा० कांय। २. गुरा० चिणावैं (उर्दू मूल)। ३. सा० सासी० दौरि के लेगी आय।

[८५] नि० २३-२७, सा० ५५-३०, सासी० ७-२७, स० ९८-१—
१. नि० सोई थाटणि। २. नि० थाटिए। ३. सा० सासी० बहुरि न यह तन होइ। ४. नि० सासी० ज्ञान गूदरी ओढ़िए (नि० पहिर करि)। ५. नि० स० काटि (नागरी मूल)।

[८६] दा३ ४४-३० नि० ३-२६, साबे० १९-९१, सासी० १७-१२४, स० ६६-२,
१. साबे० सासी० भै बिनु होइ न प्रीति।

[८७] सा० ५-३२, साबे० १-५९, सासी० ३-५८, बी० २४६—
१. सा० साबे० सासी० ढूंढ़ै। २. सा० साबे० सासी० केहि बिधि। ३. बी० ग्यानी सोइ सराहिए, पारख राखै साथ।

[८८] सा० ७४-४९, साबे० ३५-४, सासी० १९-२, बी० ५—
१. बी० मत लीजै। २. बी० कहहिं कबीर जहं सार सबद नहिं, ध्रिग जीवन सो जीजै।

[८९] सा० १०-५७, साबे० ३७-३०, सासी० १८-५०, बी० विप्र० दोहा १—
१. बी० बहा है बहि जात है। २. बी० कर गहि ऐंचहु अौर, बीभ० कर गहै चहुं ओर (उर्दू मूल)। ३. सा० साबे० समझाया। [विशेष : बीजक में यह साखी 'विप्रमतीसी' के अंत में मिलती है, जिसकी रचना रमैनी छंद में हुई है और जिसमें लगभग तीस पंक्तियाँ हैं। अन्यत्र यह पंक्तियाँ परशुराम नामक संत के नाम से भी मिलती हैं। पाठ के लिए दे० ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ४५, अंक ४ में डॉ० बड़थ्वाल का लेख तथा खोज रिपोर्ट सन् १९३५-३७ (अप्रकाशित) में ७४ संख्यक प्रति का विवरण। किन्तु परशुराम कृत 'विप्रमतीसी' में उक्त साखी नहीं मिलती।]

(१६) काल कौ अंग

कबीर जंत्र न बाजई[1], टूटि गए[2] सब तार ।
जंत्र[3] बिचारा क्या करै, चले[4] बजावनहार ।।१।।

धौं की[1] दाधी[2] लाकरी, ठाढ़ी[3] करै पुकार ।
मति बसि परौं लुहार कै[4], जारै[5] दूजी बार ।।२।।

कबीर[1] हरिनीं दूबरी[2], इस[3] हरियारै[4] तालि[5] ।
लाख[6] अहेरी[7] एक जिउ[8], केतिक टारै भालि[9] ।।३।।

बिख के बन मैं[1] घर किया, सरप रहे लपटाइ[2] ।
तातैं जियरै डर गहा[3], जागत रैंनि बिहाइ ।।४।।

चाकी चलती[1] देखि कैं, दिया कबीरा रोइ[2] ।
दोइ पट भीतर आइकै[3], सालिम[4] गया न कोइ ।।५।।

सुर नर मुनि औ देवता, सात दीप नौ खंड ।[1]
कहै कबीर सब भोगिया[2], देह धरे का डंड ।।६।।

मंछ होइ नहिं बांचिहौ[1], झींवर[2] तेरौ[3] काल ।
जिंहि जिंहि डाबर तुम फिरौ[4], तहं तहं मेलै[5] जाल ।।७।।

---

[१] दा० ४६-२०, सा० ७८-५५, साबे० १९-१८८, सासी० १७-३०, गु० १०३, बी० २९७, गुश० १७७-१८५—
१. बी० जंत्र बजावत हौं सुना, गु० जो हम जंतु बजावते। २. गु० गुश० गई (उर्दू मूल)। ३. गु० जंतु। ५. साबे० सासी० चला, बी० गया।

[२] दा० ४६-१०, नि० ४४-५०, सा० ७८-३४, साबे० १९-१५७, बी० ७१, गु० ९०—
१. दा० नि० दौं की, गु० बन की। २. बी० डाही, साबे० दाही। ३. बी० ऊभी (पाठांतर : वो भी)। ४. बी० साबे० अब जो जाय लुहार घर। ५. साबे० बी० डाहे।

[३] दा२ ४४-३३ (दा१, दा२ में यह नहीं है), नि० ४४-३४, सा० ७८-५७, गु० ५३, बी० १८—
१. बी० काहै। २. गु० हरना दूबला। ३. गु० इहु, बी० यही, सा० ये। ४. गु० हरिआरा बी० हरियरे, सा० हरियाली। ५. नि० माल (उर्दू मूल)। ६. बी० लक्ष, दा० नि० लख। ७. दा० नि० अहेड़ी (राज० प्रभाव)। ८. बी० म्रिग। ९. दा० किती चुकाऊं भाल, नि० किती एक टालूं भाल, गु० केता बंचउ कालु।

[४] दा० ४६-२८, नि० ४४-५७, सा० ७८-६६, बी० ११३—
१. बी० बिरवै। २. बी० रहा सर्प लपटाइ। ३, सा० तिनका डर जिव गहि रह्या।

[५] सा० ७८-९६, साबे० १९-१२३, सासी० ३२-६७, बी० १२९ (बीभ० १६५)—
१. सा० साबे० सासी० चलती चाकी। २. बी० मेरे नयनन आया रोय। ३. सा० सासी० दो पाटन बिच आय कै, बीभ० दुइ पटन के अंतरे। ४. सा० साबे० सासी० साबुत, बी० साबित (बीभ० सालिम)।

[६] सा० ७२-२६, साबे० ८४-३३, सासी० ७०-११, बी० २९५—
१. सा० साबे० सासी० सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मंड। २. सा० साबे० सासी० कहै कबीर सब को लगै।

[७] दा२ ४४-२७, नि० ४९-२६, सा० ७८-४६, साबे० १९-१४६, सासी० १७-१४१, बी० २३१—
१. दा० मंछी हुआ न छूटिए, नि० साबे० सासी० मछरी दह छोड़ौ नहीं। २. बी० साबे० सासी० धीमर (सा० मछली) दह छूटै नहीं। ३. सा० मेरा। ४. दा० नि० जिह जिहि डाबर हूं फिरूं, सा० साबे० सासी० जेहि जेहि डाबर घर करो। ५. दा० माड़ै, नि० रोपै।

मंछ बिकंता देखिया[१], झींवर[२] के दरबारि[३] ।
आंखड़ियां रतनालियां[४] क्यौंकरि बंधे जालि[५] ॥८॥
पांनीं मांहैं[१] घर किया, सेजा[२] किया पतालि ।
पांसा परा[३] करीम[४] का, तातैं पहिरा जाल[५] ॥९॥[६]
हे मतिहींनीं माछरी[१], झींवर मेला जाल[२] ।
डाबरियां छूटै नहीं, सकै त समुंद सम्हालि[३] ॥१०॥
कबीर टुक टुक चोघतां[१], पल पल गई बिहाइ ।
जिउ जंजाल न छांड़ई[२], जम[३] दिया दमांमां आइ[४] ॥११॥
कहा[१] चुनावे मैड़ियां, लंबी भीति उसारि[२] ।
घर तौ[३] साढ़े तीनि हथ, घनां[४] त पौनैं चारि ॥१२॥
रांम कहा तिन कहि लिया[१], जरा पहूंची[२] आइ ।
लागी[३] मंदिर[४] द्वार तैं, अब क्या काढ़ा जाइ[५] ॥१३॥

---

[८] दा२ ४४-२९, नि० ४४-३०, सा० ७८-५२, सासी० १७-१४७, बी० २२९—
१. बी० मंछ बिकाने सब चले (?), सा० सासी० आंखड़ियां रतनालियां (तुल० द्वि० पंक्ति)। २. बी० धीमर। ३. सा० सासी० चेजा करै पताल। ४. बी० अंखिया रतनारी तेरी। ५. दा० नि० सा० सासी० तुम क्यों बंधे जाल, नि० क्यूं करि बींधे जाल।

[९] दा० ४४-३०, नि० ४४-३१बी० २३०—
१. बी० भीतर (समानार्थीकरण)। २. दा० नि० चेजा (?)। ३. नि० ढल्या। ४. दा२ नि० करम। ५. बीभ० तामहं पेन्हीं जाल, दा० नि० यूं हंम बींधे जाल। ६. दा१ में यह साखी नहीं है।

[१०] दा२ ४४-२६ नि० ४४-२९, सा० ७८-५०, सासी० १७-१४५, गु० ४९—
१. गु० कबीर थोरै जलि माछुली, दा० नि० इही अभागी माछली। २. दा० छापरि मांड़ी आलि, नि० सा० सासी० छीलरि माड़ी आल। ३. गु० इह टोघनै न छूटसिहि, फिरि करि समुद सम्हालि।

[११] दा० ४६-७, नि० ४४-७, सा० ७८-११, साबे० १९-१३६, सासी० ३२-८, गु० २२७, गुग्र० १७७-६०—
१. नि० कबीर टम टम चोघतां (हिन्दी मूल), दा २ कबीर टग टग चोघतां, साबे० टक्क टक्क गया जोवता, गु० आखी केरे माटुके। २. सा० साबे० सासी० जीव जंजालै पड़ि रहा। ३. सा० में 'जम' शब्द नहीं दिया गया (केवल मात्रा ठीक करने के लिए)। ४. साबे० जमहिं दमाम बजाइ।

[१२] दा२ नि० ४४-२४, सा० ३०-१५, साबे० १९-२६, सासी० १७-६२, गुग्र० १७७-९५१, गु० २१८—
१. दा० नि० गु० कांइ (राज० मूल)। २. गु० कोठे मंडप हेतु करि काहे मरहु सवारि। ३. गु० कारजु। ४. गु० घनी।

[१३] दा० ४६-२४, नि० ४४-३५, सा० ७८-१७, सासी० ३२-१४, गु० १३२, गुग्र० १७७-३१—
१. गु० कबीर राम न चेतिओ। २. दा० नि० गुग्र० पहूंती। ३. दा० नि० लागै, गुग्र० लागा। ४. सासी० सुंदर (उर्दू मूल)। ५. दा० नि० गुग्र० तब कछु काढणां न जाइ, सा० सासी० अब कछु कही न जाइ।

पांच तत्त्व का पूतरा[१], मानुस धरिया[२] नांउं ।
चारि दिवस के पाहुने[३], बड़ बड़ रूंधहि ठांउं[४] ॥१४॥
टालै टूलै[१] दिन गया, ब्याज बढ़ंता[२] जाइ ।
नां हरि[३] भजा न खत फटा, काल पहूंचा आइ ॥१५॥
झूठै सुख कौं सुख कहै, मांनत है मन मोद ।
खलक[१] चबैनां[२] काल का, कछु मुख मैं[३] कछु गोद ॥१६॥
निधड़क बैठा रांम बिनु[१], चेति न करै पुकार ।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नांहीं बार ॥१७॥
बारी बारी आपनीं, चले पियारे मीत ।
तेरी बारी जीयरा[१], तेरी[२] आवै नीत ॥१८॥
जो ऊगै[१] सो आथवै[२], फूलै सो कुम्हिलाइ ।
जो चुनिया[३] सो ढहि पड़ै, जांमैं सो मरि जाइ[४] ॥१९॥
जो दीसै सो बिनसिहै[१], नांम धरा सो जाइ ।
कबीर सोई तत्त गहि[२], जो सतगुर दिया बताइ ॥२०॥
पांनीं केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति[१] ।
देखत ही[२] छिपि[३] जाइंगे, ज्यौं तारे परभाति ॥२१॥

---

[१४] नि० ४४-२५, सा० ३०-१६, साबे० १९-२७, सासी० १७-६३, गु० ६४—
१. गु० माटी के हम पूतरे। २. गु० राखिउ (?)। ३. नि० दिन दहूं चहूं कै कारनैं, सा० साबे० सासी० दिना चारि के कारने। ४. नि० सा० साबे० सासी० फिरि फिरि रोकै ठांम।

[१५] नि० ४४-४२, सा० ७८-६, साबे० १९-१५१, सासी० ३२-७, गु० २०८—
१. सासी० ढालै ढूलै (हिन्दी मूल)। २ नि० बधंतौ। ३. साबे० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव)।

[१६] दा० ४६-१, नि० ४४-२, सा० ७८-१, साबे० १९-४, सासी० ३२-४, स० ६७-१६, गुग्रा० १७७-१४७—
१. साबे० सासी० गुग्रा० जगत। २. दा० नि० गुग्रा० चबीनां। ३. सा० सासी० कछु मूठी।

[१७] दा० ४६-१३, नि० ४४-१९, सा० ७८-३९, साबे० १९-७, १९-१८६, सासी० १७-४८, स० ६७-२०, गुग्रा० १७७-८१—
१. साबे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव)।

[१८] दा० ४६-९, नि० ४४-१४, सा० ७८-२५, साबे० १९-११४३, सासी० १७-१३८, गुग्रा० १७७-१८७—
१. नि० जीवड़ा, दा१ रे जिया।

[१९] दा० ४६-११, नि० ४४-६०, सा० ७८-३७, साबे० १९-१८५, सासी० ३२-३२, गुग्रा० १७७-१६८—
१. गुग्रा० ऊग्या। २. सा० सासी० आथमै। ३. दा१ चिणिया (उर्दू मूल)। ४. दा० गुग्रा० जो आया (दा२ जाया) सो जाइ।

[२०] दा० ४६-१२, नि० १-३६, सा० १-६५, साबे० १-९५, सासी० २-७२, गुग्रा० १७७-१६९—
१. साबे० दीसै है सो बिनसिहै, नि० जो दीसै सो बिनसिसी (राज० मूल), दा० गुग्रा० जो पहरया सो फाटिसी। २. सा० सासी० गह्यौ।

[२१] दा० ४६-१४, नि० १४-२०, सा० ७८-४०, साबे० १९-६, सासी० १७-४५, गुण० १७७-१८२—
१. दा० नि० गुग्रा० इसी हमारी जाति। २. दा० गुग्रा० एक दिनां। ३. दा२ निदि, गुण० नींद।

मंदिर मांहीं झलकती[१], दीवा[२] की सी जोति ।
हंस बटाऊ चलि गया, अब काढ़ौ[३] घर को छोति ॥२२॥

रोवनहारे भी मुए, मुए जलावनहार[१] ।
हा हा करते ते मुए[३], कासौं करौं पुकार ॥२३॥[४]

आजु कहै हरि काल्हि भजौंगा[१], काल्हि कहै फिरि काल्हि ।
आजुंहि काल्हि करंत रे[२], औसर जासी (ई ?) चालि ॥२४॥[३]

कांची काया मन अथिर, थिर थिर कांम[१] करंत ।
ज्यौं ज्यौं[२] नर निधड़क फिरै, त्यौं त्यौं[३] काल हसंत ॥२५॥

मैं अकेल ए[१] दोइ[२] जनां, छेती[३] नांहीं काइ[४] ।
जौ जम आगैं ऊबरौं, तौ जुरा पहूंचै आइ[५] ॥२६॥

आजि कि काल्हि कि निसंहि मैं[१], मारगि माल्हंतांह[२] ।
काल सचांनां नर चिड़ा, औझड़ औचिंतांह[३] ॥२७॥

सब जग सूता नींद भरि[१], मोंहि न आवै नींद ।
काल खड़ा सिर ऊपरै[२], ज्यौं तोरणि आया बींद ॥२८॥

---

[२२] दा० ४६-१७, नि० ४४-२२, सा० ७८-४२, सावे० १९-१४२, सासी० १७-१३७, गुरा० १७७-१९८—
१ दा० नि० गुरा० झबूकती (उर्दू मूल ?)। २, दा३ दीपक। ३. सासी० काढ़ी।

[२३] दा० ४६-३१, नि० ४४-४१, सा० ७८-३६, सावे० १९-१५९, सासी० ३२-३१, गुरा० १७७-१६७—
१. गुरा० चलावणहार (उर्दू मूल)। २. नि० जालणहारे भी मुए मुए ज रोवणहार, सा० सावे० सासी० जारनहारा भी मुआ, मुआ जलावनहार (पुन०)। ३. सा० सावे० सासी० है है करते भी मुए। ४. सा० ३०-३५ तथा सासी १७-६५ तुलनीय हैं, जिनका पाठ है : हाड़ जलै लकड़ी जलै, जलै जलावनहार। कौतिगहारा भी जलै, कासौं करूं पुकार ॥ दूसरी पंक्ति के लिए सा० ७९-१३ भी तुलनीय है जिसका पाठ है : वैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार। हा हा करता सब मुवा, कासन करौं पुकार ॥

[२४] दा० ४६-५, सा० ७८-५, सावे० १९-१३, सासी० १७-५१, गुरा० १७७-५४—
१. सावे० सासी० आज कहै मैं काल भजु। २. दा० गुरा० आज ही काल्हि करंतड़ा, सा० आज काल्हि करता रहै। ३. तुल० नि० ४४-४० यथा : काल्हि करंतां आजि करि, आज करंता अबाल्हि। आज ही काल्हि करंतड़ा, आइ पहूंता काल ॥

[२५] दा० ४६-३०, नि० ४४-३८, सा० ७८-६५, सावे० १९-१५०, सासी० ३२-४३, स० ६७-१८—
१. दा० सावे० काज, सा० सासी० करम। २. नि० जिमि जिमि। ३. नि० तिमि तिमि।

[२६] दा० ४६-८, नि० ४४-१०, सा० ७८-१२, सावे० १९-१३७, सासी० ३२-९—
१. नि० वै, सासी० वह। २. सावे० सासी० दो। ३. सा० सावे० सेरी, सासी० साथी। ४. सा० सासी० कोय। ५. सा० तौ जरा बैरी होय, सासी० तौ जग (हिन्दी मूल) बैरी होय।

[२७] दा० ४६-२, नि० ४४-३, सा० ७८-२, सासी० ३२-५, स० ६७-५, गुरा० १७७-११८—
१. नि० नसह मैं, सा० सासी० छिनक में, दा५ गुरा० पंच दिन। २. दा० माल्हंता, सा० सासी० मेला हित्त। ३. नि० औझड़ औच्यंता, सा० सासी० औझड़ औ अवचित।

[२८] दा० ४६-४, नि० ४४-५, सा० ७८-४, सासी० ३२-६, गुरा० १७७-१२०—
१. दा२ नसह भरि। २. नि० सा० सासी० काल खड़ा है बारणौं।

कबीर मंदिर आपनैं, नित उठि करती[१] आलि ।
मरहट देखें डरपती, चौड़ै दीया जालि[२] ॥२९॥
पंथी ऊभा पंथ सिरि, बगुचा बंधा पूठि ।
मरनां मुंह आगैं खड़ा, जीवन का सब झूठि ॥३०॥
कबीर सब सुख रांम है, और दुखां की[१] रासि ।
सुर नर मुनिअर असुर सब[२], पड़े[३] काल की पासि ॥३१॥
जिनि हंम जाए ते मुए[१], हंम भी चालनहार ।
हमरै[२] पाछैं पूंगरा[३], तिनभी बांधा भार ॥३२॥
सूखन लागे केवड़ा, टूटी अरहट माल[१] ।
पांनीं की कल जांनता, गया[२] सो सींचनहार ॥३३॥
माली आवत देखि कै, कलियां करैं पुकार ।
फूली फूली चुनि गईं,[१] कालि्ह हमारी बार ॥३४॥
मेरा बीर लुहारिया, तूं जिनि[१] जारै मोंहि ।
इक दिन असा होइगा, हौं जारौंगी तोंहि ॥३५॥
पात झरंता यौं कहै, सुनि तरवर बनराइ ।
अब के बिछुड़े नां मिलैं, कहूं दूर पड़ैंगे जाइ ॥३६॥
कबीर पांच पखेरुवा, राखे पोख लगाइ ।
एक जु आयौ पारधी, लै गयौ सभै उड़ाइ ॥३७॥

---

[२९] दा० ४६-१६, नि० ४४-५९, सा० ७८-४४, सासी० ३२-३५, गुरा० १७७-१९७—
१. नि० गुरा० बैठा करता । २. गुरा० बालि । (उर्दू सूल)।

[३०] दा० ४६-२२, नि० ४४-१५, सा० ७८-५८, सासी० ३२-४१, गुरा० १७७-१९५—

[३१] दा० ४६-२९, नि० ४४-३९, सा० ७८-६७, सासी० ३२-३९, गुरा० १७७-१४६—
१. सासी० दुखहिं की । २. नि० सा० सासी० सुर नर मुनि जन (सा० सासी० मुनि अरु) असुर सुर । ३. नि० सबै ।

[३२] दा० ४६-३२, नि० १६-२१, सा० ७८-७९, सासी० २७-६६, गुरा० १७७-११६—
१. नि० हंम जाए थे ते मुए, सा० सासी० हम जाए ते भी मुआ । २. नि० हंम भी । ३. दा० गुरा० जो हमकौं आगैं मिलैं ।

[३३] दा२ ४६-३३, दा३ ४४-३०, नि० ४४-३२, सा० ७८-५४, सासी० १७-१४८, गुरा० १७७-१८३—
१. सा० सासी० टूटन लागैं डार । २. सा० सासी० चला ।

[३४] दा० ४४-९, नि० ४४-१६, सा० ७८-२६, साबे० १९-१४४, सासी० ३२-३२—
१. सा० साबे० सासी० लईं ।

[३५] दा० ४४-३३, नि० ४४-५१, सा० ७८-३५, साबे० १९-१५८, सासी० ३२-३७—
१. सा० सासी० मति । २. तुल० सासी० १७-१७७ : लकड़ी कहै लोहार सों, तू मति जारै मोंहि । एक दिन ऐसा होइगा, मैं जारौंगी तोंहि ॥

[३६] दा२ ४६ १४, नि० १६-४०, सा० ७८-३१, साबे० १९-१८४, सासी० ३२-२७

[३७] दा३ ४४-१८, नि० ४४-२१, सा० ७८-४१, साबे० १९-१४१, सासी० १७-२४—

पांनीं में की माछरी[1], सकै तौ पाकड़ि तीर[2] ।
कड़िया खड़की[3] जाल की, आइ पहूंचा[4] कीर ॥३८॥
कबीर यहु जग कछु नहीं, खिन खारा खिन मीठ ।
काल्हि अलहजा मैड़ियां[2], आजु मसांनां दीठ ॥३९॥
बेटा जाए क्या हुआ, कहा बजावै थाल ।
आवन जावन ह्वै रहा, ज्यौं कीड़ी का नाल ॥४०॥

(१७) सजेवनि कौ अंग

कबीर मन सीतल भया[1], जब पाया ब्रह्म गिआंन ।
जिहिं बैसंदर जग जरै, सो मेरै उदिक समांन ॥१॥
सीतलता तब जांनिए, जौ समता रहै समाइ ।
पख छांड़ै निरपख रहै[1], सबद न[2] दूखा जाइ[3] ॥२॥
तरवर तासु बिलंबिए[1], जो बारह मास फलंत ।
सीतल छाया गहिर[2] फल, पंखी केलि करंत ॥३॥
जहां जुरा मीच[1] ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिए कोइ ।
चलि कबीर तिहिं देस कौं[2], जहं बेद बिधाता होइ[3] ॥४॥

---

[३८] दा३ ४४-२८, नि० ४४-२७, सा० ७८-४७, साबे० ११-१४७, सासी० १७-१४२—
१. नि० पांणीं महली (उर्दू मूल) माछली । २. नि० सा० साबे० सासी० क्यौं तुम । ३. नि० कड़ी खटूकी । ४. दा० नि० पहूंती ।

[३९] दा० ४६-१५, सा० ७८-४३, सासी० ३२-३४, गुग्रा० १७७-१९६—
१. सा० सासी० कबीर जीवन कछु नहीं । २. दा० गुण० काल्हि जु बैठा माड़ियां (समानार्थीकरण) ।

[४०] दा२ दा३ ४४-४३, सा० ७८-७७, सासी० ३२-५१, गुण० १७७-१६५

[१] दा० ३९-४, नि० ४१-५, सा० ७३-५, गु० १७५, बी० ३४९, गुग्रा० १५२-७—
१. दा० नि० सा० गुग्रा० कबीर सीतलता भई, बी० यह मन तो शीतल भया । २. बी० जब उपजा, सा० उपज्यौ । ३. गु० जिनि जुआला जग जारिआ (समानार्थीकरण) । ४. गु० स० जन के, बी० सो पुनि ।

[२] दा० ३९-३, नि० ४१-६, सा० ७३-४, सासी० १९-४२, गुण० १५२-६—
१. सा० सासी० बिख (उर्दू मूल) छांड़ै निरबिख (उर्दू मूल) रहै । २. गुग्रा० शब्दि न, नि० सा० सासी० सब दिन (उर्दू मूल) । ३. नि० सुख में जाइ ।

[३] दा० ४७-६, सा० ७९-२३, साबे० ८४-६, सासी० ४३-१४, गु० २२९—
१. गु० कबीर ऐसा बीजु बोइ । २. दा० गहर । ३. सा० साबे० सासी० पंखी ।

[४] दा० ४७-१, नि० ४५-१, सा० ७९-१, साबे० १-७३ ४५-१, सासी० ४३-१, गुग्रा० १७८-१—
१. दा१ दा२ मरण । २. नि० गुग्रा० देसड़ै (राज० मूल) । ३. साबे० (१-७३) जहं बैदा सतगुरु होय, (७५-१) जहं बैद सांइयां होइ (सांप्रदायिक प्रभाव), नि० सा० सासी० बैद रमैया होइ ।

कबीर जोगी बनि बसा, खनि खाया कंद मूल ।
नां जांनौं किस जड़ी तैं[1], अमर भया अस्थूल ॥५॥
कबीर तौ हरि पै चला[1], अहं गई सब छूटि[2] ।
गगन मंडल आसन किया[3], काल रहा सिर कूटि ॥६॥[4]
यह मन फटकि पछोरि लै, सब आपा मिटि जाइ ।
पंगुला[1] होइ पिउ पिउ करै, पीछैं[2] काल न खाइ ॥७॥
कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसांन[1] ।
चित चरनां सौं चिहुटिया[2], तहां नहीं काल का पांन[3] ॥८॥

(१८) पारिख अपारिख को अंग

हरि हीरा जन जौहरी, लै लै मांड़ी हाटि[1] ।
जब रे मिलैगा पारिखू[2], तब हीरा[3] की सांटि ॥१॥
एक अचंभौ देखिया, हीरा हाटि बिकाइ ।
परखनहारै[1] बाहिरा[2], कौड़ी बदलै जाइ ॥२॥
पैंड़ैं[1] मोती बीखरे[2], अंधा निकसा[3] आइ ।
जोति बिनां जगदीस की, जगत उलंघै[4] जाइ ॥३॥

---

[५] दा० ४७-२, नि० ४५-३, सा० ७८-३, साबे० ४५-३, सासी० ४३-३, गुग्रा० १७८-४—
१. सा० सों, साबे० सासी० से ।

[६] दा० ४७-३, नि० ५४-४, सा० ७९-४, साबे० ४५-४, ४६-१९, सासी० ४२-१६, गुग्रा० १७८-३—
१. दा० नि० गुग्रा० कबीर हरि चरणौं चल्या, साबे० सासी० मन की मनसा मिटि गई,। २. गुग्रा० माया मोह तें टूटि। ३. सा० साबे० सासी० गगन मंडल में घर किया। ४. सासी० में यह साखी अन्यत्र दो स्थलों पर आयी है; तुल० २९-११८ : यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छूट। बेहद मांहीं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥ तथा ४३-४ : कबीर तो पिव पै चला, माया मोह सों तोरि। गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥

[७] दा० ४७-४, नि० १७-२२, सा० ३१-२६, साबे० ७१-५, सासी० २९-४७—
१. दा० नि० पंगुल, साबे० पिंगल, सा० पिंगला, सासी० पिंगुला [उक्त प्रसंग में 'पिंगला' या 'पिंगुला' ('सारंगी' अर्थ में) पाठ भी सार्थक हो सकता है]। २. सा० साबे० सासी० ताको।

[८] दा० ४७-५, नि० ४५-६, सा० ७९-५, साबे० ४५-५, सासी० ४३-५—
१. सा० खुरसान। २. सा० चुभि रहया, सा० चिपटिया, साबे० सासी० चपटिआ। ३. सा० नहीं काल का बान (उर्दू मूल), साबे० सासी० का करै काल का बान (उर्दू मूल)।

[१] दा० ४९-३, नि० ५४-२, सा० ९३-२, साबे० ३१-२, सासी० ४९-६, गु० १६२, बी० १६९, गुग्रा० १४३-३—
१. गु० लै के माढ़ै (उर्दू मूल) हाट, बी० सबन पसारी हाट। २. गु० जबहिं पाइअहि पारखु, बी० जब आवै जन जौहरी। ३. बी० हीरों, सा० साबे० सासी० हीरा।

[२] दा० ४८-२, नि० ५३-३, सा० ९२-८, साबे० ३२-२, सासी० ४९-३७, गु० १५४. गुग्रा० १४२-२४—
१. गु० बनजनहारे। २. सा० साबे० सासी० बाहिरी (राज० हिन्दी मूल)।

[३] दा० ४८-४, नि० ५३-९, सा० ९२-२२, सासी० ४९-४९, स० ८९-५, गु० ११४—
१. गु० मारगि। २. गु० बोथरै (हिन्दी मूल)। ३. सा० निकरा। ४. दा१ दा३ उलंघ्या, दा२ उलांड्या, सा० सासी० उलांडा।

रांम पदारथु[२] पाइ करि, कबिरा गांठि न खोलि[३] ।
नहिं पट्टन नहिं पारिखू[४], नहिं गाहक नहिं मोल ॥४॥
कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ[१] ।
बगुला परख[२] न जानई, हंसा चुनि चुनि खाइ ॥५॥
कबीर यहु[१] जग आंधरा, जैसी अंधी गाइ ।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाइ ॥६॥
जब गुन कौं गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाइ ।
जब गुन कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदलै जाइ ॥७॥
चंदन रूख बिदेस गयौ[१], जन जन[२] कहै पलास ।
ज्यौं ज्यौं चूल्है झोंकिया, त्यौं त्यौं दूनीं बास[३] ॥८॥
पाइं पदारथु पेलि करि[१], कांकर लीन्हां हाथि ।
जोरी बिछुरी हंस की, पड़े[३] बगां[४] के साथि ॥९॥
जहं गाहक तहं मैं[१] नहीं, मैं[१] तहां गाहक नांहिं ।
परचा बिन फूला फिरै[२], पकड़ि सब्द की छांहिं ॥१०॥
बोली हमरी पूरबी[१], ताहि न चीन्हैं कोइ[२] ।
हमरी बोली सो लखै[३], जो पूरब का[४] होइ ॥११॥

---

[४] नि० ५३-१०, सा० ९२-१७, साबे० ३२-५, सासी० १३-१, गु० २३—
१. साबे० सासी० नाम (यह पाठ भी समानरूप से ग्राह्य माना जा सकता है)। २. सा० साबे० सासी० रतन धन। ३. नि० सा० साबे० सासी० गांठी बांधि न खोल। ४. सा० साबे० सासी० पारखी।

[५] दा० ४९-२, नि० ६०-१२, सा० ३१-७९, साबे० १६-१७, सासी० ५-२१, ९-१९, गुग्र० १४३-१४—
१. साबे० निस्फल कभी न जाइ। २. दा० गुग्र० मंझ, नि० सार। सासी० ९-१९ का पाठ है: कबीर लहरि समुद्र की, कभी न निष्फल जाय। बगुला परखि न जानई, हंसा चुगि चुगि जाय॥ (सासी० का यह पाठ साबे० के अधिक निकट है)।

[६] दा० ४८-५, नि० ५३-९, सा० ९२-१३, साबे० .२-८, सासी० ४९-४७—
१. नि० सब।

[७] दा० ४९-१, नि० ५४-१, सा० ९३-१, साबे० ३१ १, सासी० ४९-१४

[८] दा३ ४६-१, नि० ५३-१, सा० ९२-१, साबे० ३२-१, सासी० ४९-३०—
१. सा० साबे० सासी० चंदन गया बिदेसड़ै। २. सा० साबे० सासी० सब कोय।

[९] दा० ४६-१, नि० ५३-२, सा० ९२-५, सासी० ४९-३३, गुग्र० १४२-२१—
१. सा० सासी० पेलिया। २. दा० बिछूरी। ३. गुग्र० घरथा, सासी० चला। ४. सासी० बुगां।

[१०] नि० ५३-१३, बी० २८९, सा० ९२-१९, साबे० ३२-६—
१. बी० हां। २. बी० विना बिबेक भटकत फिरै। तुल० बा० सा० ३२७ : गृह तजि के जोगी भए, जोगी के गृह नाहिं। बिनु बिबेक भटकत फिरै, पकरि शब्द की छांहिं॥ ३. सा० बाहिं।

[११] दा२ ४७-४, नि० ५४-४, सा० ६५-१४, बी० १९४—
१. बी० पुरुब कं। २. बी० हम लखै नहिं कोइ। ३. बी० हमको तो सोई लखै, नि० मेरी बोली चान्हसी। ४. नि० जो उस पूरब का, दा१ दा२ जो धुर पूरब का।

हीरा तहां न खोलिए, जहं कुंजड़न की हाटि[१] ।
सहजै गांठी बांधि कै, लगिए अपनीं बाटि[२] ।।१२।।

(१६) जीवत मृत कौ अंग

मरतां मरतां जग[१] मुवा, मुवै न जांनां कोइ[२] ।
दास कबीरा यौं मुवा[३], ज्यौं बहुरि न मरनां होइ ।।१।।
बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा[१] सकल संसार[५] ।
एक कबीरा नां मुवा[२], जाकै रांम अधार[४] ।।२।।
संत मुएं क्या रोइए[१], जो अपनैं घरि[२] जाइ ।
रोवहु साकत बापुरै[३], जु हाटै हाटि बिकाइ ।।३।।[४]
खरी[१] कसौटी रांम[२] की, खोटा[३] टिकै न कोइ ।
रांम[२] कसौटी सो टिकै[४], जो जीवत मिरतक होइ[५] ।।४।।
मोंहि[१] मरनैं का[२] चाउ है, मरौं त रांम दुआरि[३] ।
मति हरि[४] पूछै कौंन है[५], परा हमारै बारि[६] ।।५।।

---

[१२] सा० ९३-९, साबे० ३१-४, सासी० ४९-४, बी० १७०—
१. सा० साबे० सासी० जहं खोटी है हाट । २. सा० साबे० सासी० कसि करि बांधो गाठरी, उठि करि चालो बाट ।

[१] दा० ४१-५, नि० ५१-३, सा० ८८-२०, साबे० ४६-१६, सासी० ४२-३, स० १२६-५, गु० २९, बी० ३२-४—
१. दा२ जुग (उर्दू मूल) । २. दा० नि० सा० साबे० औसर मुवा न कोइ, गु० मरि भी न जानिआ कोइ । ४. दा० कबीर असै मरि (दा२ करि) मुवा, गु० असे मरने जो मरै, बी० असा होइ के ना मुवा ।

[२] दा० ४१-६, नि० ५१-५, सा० ८८-२१, साबे० ४६-१७, सासी० ४२-४, गु० ६९—
१. गु० सभु । २. नि० कहै कबीर सो नां मुवा । ३. साबे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ४. गु० जिह नाही रोवनहारु । ५. उक्त साखी की प्रथम पंक्ति सा० ७९-१३ से तुलनीय है जिसका पाठ है : बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार । हा हा करता सब मुवा, कासों करूं पुकार ।

[३] दा२ ४९-६, नि० ५१-२७, सा० ८८-२८, साबे० ४६-२२, सासी० ४२-२५, गु० १६—
१. साबे० सासी० भक्त मरे क्या रोइए, दा० नि० सा० मूवा कूं क्या रोइए । २. गु० ग्रिह । ३. दा० नि० सा० रोइए बंदावांन कौं । ४. सासी० में इस साखी की पुनरावृत्ति; तुल० सासी० ४२-२४ : मूए को क्या रोइए, जो अपने घर जाइ । रोइए बंदीवान को, हाटै हाट बिकाइ ॥ (इसका पाठ दा० नि० सा० से मिलता है) ।

[४] दा० ४१-१, नि० ५१-२, सा० ८८-१३, साबे० ४६-१०, सासी० ४२-२२ तथा ५२, गु० ३३—
१. गु० सा० कबीर । २. साबे० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) । ३. गु० झूठा । ४. गु० सहै । ५. गु० जो मरि जीवा होइ ।

[५] नि० ५१-२५, सा० ८८-२४, साबे० ४६-२०, सासी० ४२-१७, गु० ६१—
१. गु० मुहि । २. नि० सासी० की । ३. साबे० मरौं तो गुरू दुवार (राधास्वामी प्रभाव) ४. साबे० गुरु । ५. नि० सा० साबे० सासी० बात री । ६. नि० सा० साबे० सासी० कोई दास मुवा दरबार ।

रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमांन[१] ।
अैसा जे जन होइ रहै[२], ताहि मिलै भगवांन[३] ॥६॥
रोड़ा भया[१] त क्या भया, पंथी कौं दुख देइ ।
हरिजन अैसा चाहिए[२], ज्यौं धरनीं की खेह[३] ॥७॥
खेह भई[१] तौ क्या भया, उड़ि[२] उड़ि लागै अंग ।
हरिजन[३] अैसा चाहिए, ज्यौं पांनीं सरबंग[४] ॥८॥
पांनीं[१] भया[२] तौ क्या भया, ताता सीरा[३] होइ ।
हरिजन[४] अैसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ॥९॥
कबीर मन निरमल[१] भया, जैसा गंगा नीर[२] ।
तब पाछैं लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥१०॥[३]
जीवत मिरतक होइ रहै, तजै जगत[१] की आस ।
तब हरि सेवा आपै करै[२], मति दुख पावै दास ॥११॥
घर जारैं घर ऊबरै, घर राखैं घर जाइ ।
एक अचंभौ देखिया, मुआ[१] काल कौं खाइ ॥१२॥

---

[६] दा० ४१-१४, नि० ५१-१८, सा० ८८-३३, साबे० ४६-३१, सासी० ४२-३२, स० १२६-८, गु० १४६—
१. गु० मन का अभिमान, दा५ मन का अहंकार, सा० साबे० सासी० आपा अभिमान। २. गु० अैसा कोई दास होइ, नि० सा० सा० साबे० सासी० लोभ मोह त्रिसना तजै। ३. दा५ करतार, साबे० निज नाम (तुकहीन), राधास्वामी मत से प्रभावित होने के कारण ही साबे० में 'भगवान' के स्थान पर यह तुकहीन संशोधन किया हुआ ज्ञात होता है।

[७] दा३ ३९-१२, नि० ५१-१९, सा० ८८-३४, साबे० ४६-३२, सासी० ४२-३३, गु० १४७—
१. गु० सा० सासी० हुआ। २. गु० अैसा तेरा दासु है, सा० साबे० सासी० साधू अैसा चाहिए। ३. दा० नि० जिसी जिमीं की खेह, सा० ज्यों राहे की खेह, साबे० सासी० जस पैंड़े की खेह।

[८] दा२ ४१-१६, नि० ५१-२०, सा० ८८-३५, साबे० ४६-३३, सासी० ४२-३४, गु० १४८—
१. गु० हुई। २. गु० जउ। ३. साबे० सासी० साधू। ४. दा० पांनीं जैसा रंग, नि० जैसा जल का रँग, सा० पानी का सा रंग, साबे० सासी० जैसा नीर निपंग।

[९] दा२ ४१-१७, नि० ५१-२१, सा० ८८-३६, साबे० ४६-३४, सासी० ४२-३५, गु० १४९—
१. साबे० सासी० नीर। २. गु० हूआ। ३. दा० ताता सीला, गु० सीरा ताता। ४. साबे० सासी० साधू। ५. नि० हरि भजि निर्मल होइ।

[१०] दा० ४१-२, सा० ८८-१५, साबे० ४६-१३, सासी० ४२-५, गु० ५५—
१. दा० सा० साबे० सासी० मिरतक। २. दा० सा० साबे० सासी० दुरबल भया सरीर। ३. तुल० सासी० २९-१०९ भी : कबीर मन निरमल भया, दुर्लभ भया सरीर। पीछे लागा हरि फिरै, यूं कहि दास कबीर॥

[११] दा० ४१-१, नि० ५१-१, सा० ८८-१४, साबे० ४६-१, सासी० ४२-१, स० १२६-१—
१. सा० साबे० सासी० खलक। २. नि० संगि लियां सांई मिलै, सा० आगे पीछे हरि फिरै, साबे० सासी० रच्छक समरथ सतगुर।

[१२] दा० ४१-४, नि० ७-१३, सा० ८८-४१, साबे० ४६-२९, सासी० २७-५, स० १२६-३—
१. दा० नि० मड़ा।

जीवन तैं[१] मरिबौ[२] भलौ, जौ मरि जांनैं कोइ ।
मरनैं पहिलै[३] जो मरै, तौ कलि अजरावर होइ[४] ॥१३॥
कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास[१] ।
कबीर अैसा होइ रहा, ज्यौं पांवां तलि घास[२] ॥१४॥[३]
कबीर मरि मरहट[१] गया[२], किनहुं न बूझी[३] सार ।
हरि आदर आगैं लिया, ज्यौं गऊ बच्छ की लार ॥१५॥
आपा मेटें[१] हरि मिलै, हरि मेटें[१] सब जाइ ।
अकथ कहांनीं प्रेम की, कहें न कोइ पतियाइ[२] ॥१६॥
अब तौ अैसी ह्वै परी, नां तूंबरी[१] न बेलि ।
जारन आंनीं[२] लाकरी, ऊठी कोंपल मेलि ॥१७॥

(२०) निरपख मधि कौ अंग

सुरग नरक तैं[१] मैं रहा[२], सतगुर के परसादि ।
चरन कंवल[३] की मौज मैं, रहौं[४] अंति अरु आदि ॥१॥
आगे सीढ़ी सांकरी,[१] पाछैं[२] चकनांचूर[३] ।
परदा तर की सुंदरी[४], रही धका तैं दूर ॥२॥

---

[१३] दा० ४१-८, नि० ५१-१०, सा० ८८-२२, साबे० ४६-१८, सासी० ४२-२, स० १२६-६—
१. नि० सासी० जीवत में । २. सा० साबे० सासी० मरना । ३. दा० नि० पहली । ४. साबे० सासी० अजर अमर सो होय ।

[१४] दा० ४१-१३, नि० ५१-१४, सा० ८८-३२, साबे० ४६-३०, सासी० ४२-३१, स० १२६-९—
१. सा० साबे० सासी० दासन हू का दास । २. सा० साबे० सासी० अब तौ अैसा ह्वै रहु, ज्यों पांव तले की घास । ३. तुल० सासी० ११-२१ : दास कहावन है, मैं दासन का दास । अब तौ ऐसा ह्वै रहूं, पांव तले की घास ॥

[१५] दा० ४१-३, नि० ५१-२९, सा० ८८-२९, साबे० ४६-२४, सासी० ४२-२८—
१. सा० साबे० सासी० मरघट । २. नि० मरि मड़हट बासा किया । ३. दा० कोइ न बूझै ।

[१६] दा० ४१-१०, नि० ५१-१२, सा० ८८-४०, साबे० ४६-२८, सासी० २७-४—
१. दा० नि० आपा मेट्यां । २. सासी० कोई ना पतियाइ । साबे० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी आती है; तुल० साबे० ६५-७ तथा सासी० ८३-९ : आपा मेटे पिव मिलै, पिव में रहा समाय । अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय ॥

[१७] दा० ५८-१, नि० ६३-१, सा० १०६-६, सासी० २७-४२, स० १२६-४—
१. नि० तौंबड़ी । २. सास० कानी (हिन्दी मूल) ।

[१] दा० ३१-६, नि० ३३-६, सा० ६३-१३, सासी० ३७-७, गु० १२०, गुग्रा० १२९-४०—
१. दा२ स्रग न्रक थैं, नि० नरक सुरक सूं, सा० सासी० नर्क स्वर्ग तें । २. दा० नि० गुग्रा० रह्या, सा० सासी० रहा । ३. गु० कमल । ४. दा० नि० रहिस्यूं (राज०) गुग्रा० रहिहूं सा० सासी० रहसीं (राज० मूल) ।

[२] बी० ८६, नि० ५१-७, सा० १०१-८—
१. नि० कबीर सेरी सांकड़ी । २. सा० माही, नि० माती (हिन्दी मूल) । ३. नि० सा० चूरमचूर । ४. नि० सा० कारणावंती सुंदरी ।

कबीर हरदी पीयरी[१], चूनां ऊजल भाइ ।[२]
रांम सनेही यूं मिलै[३], दोनउं[४] बरन गंवाइ[५] ॥३॥

जेहिं मारगि पंडित गए[१], तेई गई[२] बहीर ।
औघट घाटी[३] रांम की[४], तिहिं चढ़ि रहा[५] कबीर ॥४॥

सुरग पताल के बीच मैं[१], दोइ तूमरिया[२] बद्ध[३] ।
खट दरसन धोखै[४] पड़े, अरु[५] चौरासी सिद्ध ॥५॥

हद्द चलै सो मानवा[१], बेहद चलै[२] सो साध ।
हद बेहद दोऊ[३] तजै, ताकर[४] मता अगाध ॥६॥

पखा पखी[१] के कारनैं[२], सब जग रहा भुलांन[३] ।
निरपख[४] होइकै हरि भजै, सोई संत सुजांन ॥७॥

अनल अकासां[१] घर किया, मद्धि निरंतर बास ।
बसुधा बास[२] बिगता[३] रहै, बिन ठाहर[४] बिसवास ॥८॥

---

[३] दा० ३१-९, नि० ३३-९, स० ७४-५, गु० ५६, गुग्र० १२९-४३—
१. नि० पीली । २. दा२ में इस पंक्ति के लिए स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है । ३. गु० तउ मिले । ४. नि० स० दोन्यूं, दा० दून्यूं । ५. नि० हरिजन हरि सूं यूं मिल्या दोन्यूं बरन नसाइ । ५. तुल० गु० ५७ : हरदी पीरातनु हरै चून चिहनु न रहाइ । बलिहारी इह प्रीति कउ जाति बरन कुलु जाइ ॥

[४] दा० ३१-५, नि० ३३-५, सा० ३४-२१, साबे० १८-२६, गु० १६५, बी० ३१—
१. दा३ सा० गया, बी० गए पंडिता । २. दा१ दा२ दुनिया परी, दा३, दुनिया दिया, दा५ दुनिया भई, गु० पाछै परी, साबे० नि० सा० तिसही गही । ३. बी० ऊँची घाटी । ४. दा३ दा४ दा५ नीपर्णी सा० साबे० नाम की । ५. बी० तहं चढ़ि रहे, नि० तहि चढ़ि गया ।

[५] दा० ३१-११, नि० ३३-१२, सासी० ३७-१०, गु० ६९-१५, बी० २५५—
१. दा० नि० गुग्र० धरती अरु असमान बिचि । २. दा० नि० गुग्र० सासी० तुंबरी । ३. दा१ १ अबध, दा३ अबिध, दा५ अबंध, बी० बिद्ध । ४. दा० नि० गुग्र० सांसै । ५. बी० लख ।

[६] सा० १०८-१६, साबे० ४९-७, सासी० ४४-१०, बी० १८९—
१. सा० साबे० सासी० हद में रहै सो मानवी । २. सा० साबे० सासी० रहै । ३. सा० सासी० दोनों । ४. सा० साबे० तिनका, सासी० ताका ।

[७] बी० १३८, दा० रांमकली २९-१, २, नि० बिलावल १३-१,२—
१. बी० पछापछी २. दा० नि० पेखणैं । ३. दा० नि० सब जगत भुलांनां । ४. बी० निरपछ । ५. दा० साध । दा० तथा नि० में, जैसा ऊपर संकेत किया गया है, उक्त दोनों पंक्तियाँ एक पद के आरम्भ में आती हैं । शेष पद इस प्रकार है—ज्यूं खर सूं खर बंधिया यूं बंधे सब लोई । जाके आतम द्रिष्टि है सांचा जन सोई ॥ एक एक जिनि जांनिया तिनही सच पाया । प्रेम पीति लौ लीन मन ते बहुरि न आया ॥ पूरे की पूरी द्रिष्टि (नि० दसा) पूरा करि पेखै । कहै कबीर कासौं कहौं या बात अलेखै । [यह पंक्तियाँ अन्य किसी शाखा की प्रतियों में न मिलने के कारण प्रक्षिप्त ज्ञात होती हैं] ।

[८] दा० ३१-३ (दा१ में नहीं), नि० ३३-३, सा० ६३-८, सासी० ३७-३, स० १२२-२—
१. सा० सासी० अकासै । २. दा० नि० स० ब्यौम । ३. सा० सासी० बिरकत । ४. सासी० बिना ठौर ।

हिंदू मूआ रांम कहि, मूसलमांन खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता[१], जो दुहुं के निकटि न जाइ[२] ॥९॥

काबा[१] फिरि कासी[२] भया, रांमहिं[३] भया रहीम ।
मोट[४] चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥१०॥

कबीर मरनां तहं भला, जहं आपनां न कोइ[१] ।
आमिख भखैं जनावरा[२], नांउं न लेवै कोइ[३] ॥११॥

(२१) सांच चांणक कौ अंग

औरां कौं[१] मरमोधतां[२], मुहड़ै[३] पड़िया[४] रेत ।
रासि बिरांनी[५] राखतां[६], खाया[७] घर का खेत ॥१॥[८]

लेखा देनां सोहरा[१], जौ दिल सूची[२] होइ ।
उस सांचै दीवांन मैं[३], पला न पकड़ै कोइ ॥२॥

खूब खान है खीचरी[१], जे टुक बाहै लौंन[२] ।
हेरा रोटी कारनैं[३], गला कटावै कौंन ॥३॥

---

[९] दा० ३१-७, नि० ३३-८, सा० ६३-२८, सासी० ३७-२२, स० ७४-१, गुणा० १२९-१४—
१. नि० कबीर सोई जीवता । २. दा१ गुणा० दुहुं मैं कदे न जाइ, नि० सा० सासी० दुहुं कै संगि न जाइ । तुल० गोरखबानी (हि० सा० स० प्रयाग) सबदी ६९ : हिंदू ध्यावै राम कौं, मूसलमांन खुदाइ । जोगी ध्यावै अलख कौं, तहां रांम अछै न षुदाइ ॥ किंतु गोरखनाथ की रचना में यह प्रक्षिप्त ज्ञात होती है ।

[१०] दा० ३१-१०, नि० ३३-११, सा० ६३-१४, सासी० ३७-८, गुणा० १२९-१३—
१. नि० तांबा (उर्दू मूल) । २. नि० कांसी (हिन्दी मूल ?) । ३. नि० रांम जी । ४. गुणा० मोट । सा० तथा सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० सा० ७६-४ तथा सासी ४०-४ : कासी काबा एक है, एकै राम रहीम । मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥ दोनों में पुनरावृत्ति मिलने से दोनों का संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[११] सा० ८८-२८, साबे० ४६-२३, सासी० ४२-३०, स० ७४-६, गुणा० १३०-२३—
१. सा० साबे० सासी० मरना भला बिदेस का । २. सा० साबे० सासी० जीव जंतु भोजन करैं । ३. गुणा० मुवा न रोवै कोइ, सा० साबे० सासी० सहज महोछा होइ ।

[१] दा० १७-१५, नि० २०-१, सा० १४-३, साबे० २-१७, स० ८६-९, गु० ९८, बी० ३११, गुणा० १५८-११—
१. गु० अवरह कउ, नि० औरां नैं, साबे० औरनि को । २. गु० उपदेसते, बी० सिखलावते । ३. दा१ गु० मुख मैं, नि० मूढ़ै । ४. गु० परिहै, बी० परिगौ, नि० सा० साबे० परि गई । ५. दा० नि० सा० साबे० स० पराई । ६. सा० साबे० राखते । ७. बी० खाइ । ८. दा० नि० सा० साबे० तथा स० में इस साखी के दोनों चरण परस्पर स्थानांतरित ।

[२] दा० २२-२, नि० २३-६, सा० ३०-९९, साबे० ६७-२२, सासी० १७-३७, स० १२७-२—
१. दा२ सा० सोरहा, गु० सुहेला । २. दा० नि० सांचा । ३. दा० स० उस चंगै (पंजाबी मूल) दीवांन मैं, नि० साहिब का दरबार मैं, सा० साबे० सासी० सांई के दरबार में ।

[३] दा० २२-१२, नि० ५२-७, सा० ९०-३७, साबे० ७७-१४, सासी० ७३-४०, स० ७६-१, गु० १८८—
१. नि० खिचड़ी खांनां खूब है, गु० खूबु खाना खीचड़ी, साबे० सासी० खुश खाना है खीचड़ी । २. गु० जामहि अंम्रित लोनु, सा० साबे० सासी० मांहि पड़ा टुक लौन । ३. दा१ पेड़ा (उर्दू मूल) रोटी खाइ करि, दा२ हेरा रोटी खाइ करि ।

बांम्हन[1] गुरु है जगत का, भगतां का गुर नांहिं[2] ।
उरझि पुरझि[3] के मरि गया[4], चारिउ बेदां[5] मांहिं ।।४।।
जीअ जु मारहिं जोर करि[1], कहते हैं जु हलाल[2] ।
जब दफतरि लेखा मांगिहै[3], तब होइगा[4] कौंन हवाल ।।५।।
जोर किया सो[1] जुलुम है, लेइ[2] जवाब खुदाइ ।
दफतरि लेखा नीकसै[3], मारि मुहैंमुहिं[4] खाइ ।।६।।
सेख सबूरी बाहिरा[1], क्या हज काबै जाइ[2] ।
जाकी[3] दिल साबित[4] नहीं, ताकौं[5] कहां खुदाइ ।।७।।
कासी काठैं[1] घर करै, पीवै निरमल नीर ।
मुकुति नहीं हरि नांउं बिनु[2], यौं कहै दास कबीर[3] ।।८।।
सिख साखा बहुतै किए, केसौ[1] किया न मीत[2] ।
चाले थे हरि मिलन कौं[3], बीचहिं अटका चीत[4] ।।९।।

---

[४] दा० १७-१०, नि० २०-२४, सा० ४०-४१, साबे० ८३-१८, सासी० ५८-१५, गु० २३७—
१. गु० बामनु । २. दा१ नि० साधू का गुर नांहि, दा२ भरम करम का खांहि, दा३ दा४ करम भरम का खांहि, सा० साबे० करम धरम का खांहि । ३. गु० अरझि उरझि, सा० साबे० सासी० अरुझि परुझि । ४. गु० पचि मुआ । ५. सा० साबे० सासी० वेदौं ।

[५] दा० २२-८, नि० २३-१६ तथा २३-१९, सा० ९०-२८ तथा ९०-३०, गु० १८७ तथा १९९, सासी० ७३-३१ तथा ३३—
१. दा० नि० (२३-१६) सा० (९०-२८) सासी० (७३-३१) जोरी करि जिबहै करै, गु० (१८७) जोरी कीए जुलमु है (पुन० तुल० गु० २००-१ : जोरु किआ सो जुलुम है) । २. नि० (१६) सा० (२८) सासी० (३१) मुखसौं कहै हलाल, नि० (१९) सा० (३०) सासी० (३३) कीया कहै हलाल, गु० (१८७) कहता नाउ हलाल । ३. दा० जब दफतरि देखैगा दई, नि० सा० सासी० साहिब लेखा मागिसी । ४. नि० सा० सासी० होसी (राज० मूल) । नि० सा० गु० सासी० में इस साखी के दो-दो बार मिलने से चारों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

[६] दा० २२-९, नि० २३-१७, सा० ९०-२७, सासी० ७३-३२, गु० २००—
१. सा० सासी० जोर किए तें, दा० नि० जोरी कीयां (राज०) । २. दा० नि० सा० सासी० मांगै. ३. दा० नि० सा० सासी० खालिक दरि खूंनीं खड़ा । ४. सा० सासी० मुंहीमुंह (उर्दू मूल) ।

[७] दा० २२-११, नि० २०-३६, सा० ९०-३५, सासी० ७३-३८, गुग्रा० ४६-६३, गु० १८५—
१. गु० बाहरा । २. नि० सा० कहा जु मक्कै जाइ, सासी० हांका जम कै जाइ । ३. दा० जिनकी, नि० जिसकी, सा० सासी० जिनका । ४. दा० स्याबति (राज०), गु० साबति । ५. दा० नि० सा० सासी० तिन कौं । सासी० में यह साखी दो स्थलों पर मिलती है; तुल० सासी० ४६-६३, : सिदक सबूरी बाहिरा, कहा हज्ज को जाय । जिनका दिल साबित नहीं, तिनको कहां खुदाइ ॥

[८] दा० १७-१९, नि० २४-१७, सा० ५४-७, सासी० ४६-३०, गु० ५४—
१. नि० सा० सासी० तीरथ काठैं, गु० गंगा तीर जु । २. गु० बिनु हरि भगति न मुकति होइ । ३. सा० सासी० यों कथि कहै कबीर, गु० इउ कहि रमे कबीर ।

[९] सा० ४०-१७, साबे० २-२३, सासी० २-६२, गु० ९६, गुण० १२०-२१—
१. सा० गुग्रा० माधो, साबे० सासी० सतगुर । २. सा० मित्त । ३. साबे० सासी० चाले थे सतलोक को (सांप्रदायिक प्रभाव) । ४. सा० चित्त ।

बैस्नौं की कूकरि भली[१], साकत की बुरी माइ ।
वह बैठी हरि जस सुनैं[२], वह पाप बिसाहन जाइ[३] ॥१०॥
कबीर कोठी काठ की[१], दह दिसि[२] लागी[३] आगि ।
पंडित पंडित जलि मुए[४], मूरख[५] ऊबरे[७] भागि ॥११॥
साकत[१] ते सूकर भला, राखै सूचा[२] गांउं ।
साकत बपुरा मरि गया, कोइ न लेइहै नांउं[३] ॥१२॥
गहगचि परा कुटुंब कै[१], काठैं रहि गया रांम ।
आइ परे धरमराइ के, बीचहिं धूमांधांम ॥१३॥
मैं रोऊं संसार कौं[१], मोकौं रोवै न कोइ[२]।
मोकौं[३] रोवै सो जनां[४], जो सबद बिबेकी[५] होइ ॥१४॥
सांई[१] सेती चोरियां[२], चोरां सेती गुज्झ[३] ।
तब जांनैंगा जीयरा[४], जब मारि परैगी तुज्झ[५] ॥१५॥
तीरथ करि करि[१] जुग मुआ[२], जूड़ै[३] पांनीं न्हाइ ।
रांम नांम जांने बिनां[४], काल गरासा जाइ[५] ॥१६॥

---

[१०] सा० ६१-२६, साबे० ४७-८२, सासी० ६-६७, गु० ५२—
१. सा० साबे० सासी० साधुन की कुतिया भली। २. गु० ओह नि सुनै हरि नाम जसु। ३. सा० साबे० सासी० वह निंदा करने जाइ।

[११] सा० ४७-२, साबे० १९-९५ तथा ५४-१, सासी० ६३-५, गु० १७३, बी० ७६—
१. बी० कोठी तो है काठ की, सा० साबे० सासी० यह जग कोठी काठ की। २. बी० ढिंग ढिग, सा० साबे० सासी० चहूं दिसि। ३. बी० दीन्हीं। ४. बी० पंडित जरि झोली मए, सा० सासी० भीतर रहे सो जलि मुए। ५. बी० साकट, सा० साबे० सासी० साधू। तुल० सासी० २७-५७ : कबीर कोठी काठ की, चहुं दिसि लागी लार। मांहीं पड़ै सो ऊबरै, दाझै देखनहार।

[१२] दा३ १७-१२, सा० ९६-११, सासी० ५-२६, गु० २४३ —
१. दा० साखत, सा० सासा० साकट। २. गु० अच्छा। ३. दा० बूड़ौ साखत बापरा, बैसि संभरणीं नांव, सा० सासी० बूड़ा साकट बापुरा, बाइस भरमी नांव।

[१३] गु० १४२, स० ८७-५—
१. स० कुल की डगर बुहारतां।

[१४] दा३ ४९-५, नि० ५६-५, सा० ९७-१०, साबे० ६६-६, सासी० ७०-७, बी० १८०—
१. बी० मैं रोवौं एहि जगत को। २. सा० साबे० रोय न हमको कोय, सासी० नि० मुझै न रोवै कोइ। ३. दा२ नि० सासी० मुझको, सा० साबे० हमको तो। ४. सा० साबे० सो रोइहैं, दा३ नि० सोई रोइसी (राज० मूल)। ५. सा० साबे० सबद सनेही, दा३ नि० रांम सनेही, सासी० नाम सनेही।

[१५] दा० २२-१०, नि० २३-२७, सा० ३०-१०१, साबे० १९-१२७, बी० १५१—
१. बी० साबे० साहू। २. साबे० से भा चोरवा। ३. बी० चोरन सेती सूध (तुकहीन), सा० चोरां सेती जुज्झ (हिंदी मूल), साबे० चोरन से भयो जुज्झ (हिन्दी मूल)। ४. दा० नि० जानैगा रे जीयरा। ५. बी० तूझ।

[१६] दा० १७-१, नि० २४-१३, सा० ५४-३, साबे० ७२-३, सासी० ४६-२६, बी० २१५—
१. सा० साबे० सासी० तीरथ ब्रत करि। २. बी० तीरथ गए ते बहि मुए। ३. दा१ ढूंचै, दा२ नि० ऊंडै (उर्दू मूल), दा३ बूड़ै (उर्दू मूल)। ४. साबे० सासी० सत्तनाम जाने बिना, दा० रांमहि रांम जपंतड़ा (राज०), नि० करता पुरस न ध्यावही, बी० कहहिं कबीर संतो सुनो। ६. दा० काल घसीट्या जाइ, बी० राच्छस ह्वै पछिताय।

स्वांमीं हूवा सैंत का[१], पैकाकार पचास ।
रांम नांम काठैं रहा[२], करै सिखां की ग्रास ।।१७।।
कलि का स्वांमीं लोभिया, पीतल धरी खटाइ[१] ।
राजदुवारै यौं फिरै, ज्यौं हरहाई[२] गाइ[२] ।।१८।।
कलि का स्वांमीं लोभिया, मनसा धरी[१] बंधाइ[२] ।
देइ पईसा ब्याज कौं,[३] लेखा करता जाइ[४] ।।१९।।
कलि का बांम्हन मसखरा, ताहि न दीजै दांन ।
सौं कुटुंब[१] नरकै चला, साथि लिएं जजमांन ।।२०।।
बांम्हन बूड़ा बापुरा[१], जनेऊ केरै जोरि ।
लख चौरासी मांगि लई, पारब्रह्म सौं तोरि[२] ।।२१।।
कबीर पूंजी साहु की, तू जनि खोवै ख्वार[१] ।
खरी बिगुरचनि[२] होइगी, लेखा देती बार ।।२२।।
काइथ कागद[१] काढ़िया, लेखा वार न पारि ।
जब लग सांस सरीर मैं, तब लग नांव संभारि ।।२३।।
इहीं उदर[१] कै कारनैं, जग जांचा निसि जांम ।
स्वांमींपनां जु सिरि चढ़ा, सरा न एकौ कांम ।।२४।।

---

[१७] दा० १७-४, नि० २०-३, सा० २-२३, साबे० २-१६, सासी० ३४-१४ तथा ३-४६, स० ८६-९—
१. दा० नि० स्वांमीं हूवा सीत का (उर्दू मूल), सा० साबे० सासी० (३-४६) गुरवा तौ सस्ता भया । २. सा० साबे० सासी० पैसा केर । ३. सा० साबे० सासी० राम नाम धन बेचि करि ।

[१८] दा० १७-१६, नि० २०-५, सा० ४०-६, साबे० ८४-५८, सासी० ३४-७, स० ८६-१३—
१. नि० खिटाइ (उर्दू मूल) । २. सा० साबे० सासी० हरियाई (उर्दू मूल) ।

[१९] दा० १७-७, नि० २०-४३, सा० ४०-५, साबे० ८४-५७, सासी० ३४-६, स० ८६-१२—
१. सा० साबे० सासी० रहै । २. नि० अघाइ । ३. साबे० रुपया देवै ब्याज पर, सा० सासी० देवै पैसा ब्याज को । ४. सा० साबे० सासी० लेख करत दिन जाइ ।

[२०] दा३ १७-७, नि० २०-२५, सा० ४०-४७, साबे० ८३-८३, सासी० ५८-१८ स० ८६-१६,—
१. सा० साबे० सासी० कुटुंब सहित ।

[२१] दा२ दा३ २७-८, नि० २०-२६, सा० ४०-३५, साबे० ८३-२२, सासी० ५८-१४, स० ८१-१७ तथा ८५-१५ (दो बार)—
१. दा० नि० बांभण बूड़ा बापुड़ा । २. साबे० सासी० सतगुरु सेती तोर ।

[२२] दा० २२-१, नि० २३-५, सा० ३०-९७, साबे० ९७-२१, सासी० १७-३५ तथा ८१-१६—
१. सा० सासी० करै खुवार । २. दा० नि० बिगूचनि । सासी० ८१-१६ का पाठ है : कबीर पूंजी साहु की, तू मति खोवै ख्वार । खरी बिगुरचनि होइगी, लेखा देती बार ।

[२३] दा० २२-४, नि० २३-९, सा० ३०-१०, साबे० ११-१७५, सासी० १७-३०—
१. सासी० कागज ।

[२४] दा० १७-२, नि० २०-१, सा० ४०-२, साबे० ८४-५५, सासी० ३४-५—
१. सासी० इसी उदर, दा२ इही उद्र, दा३ इहिं वोदर, साबे० याहि उदर ।

कबीर तस्टा टोकनीं[१], लीया फिरै[२] सुभाइ[३] ।
रांम नांम[४] चीन्हैं[५] नहीं, पीतल ही कै चाइ[६] ॥२५॥
कबीर कलियुग आइया[१], मुनियर मिलै न कोइ[२] ।
कांमीं[३] क्रोधी मसखरा, तिनका आदर होइ ॥२६॥
देखन कौं सब कोइ भले, जैसै[१] सीत के कोट ।
रबि के उदै न दीसहीं[२], बंधै न जल की पोट[३] ॥२७॥
कबीर या संसार कौं, समझायौ सौ बार ।
पूंछ जु पकड़ै भेड़ की, उतरा चाहै पार ॥२८॥
कबीर मनि फूला फिरै[१], करता हूं ज धरंम[२] ।
कोटि करम सिर परि चढ़ै[३], चेति न देखै भरंम[४] ॥२९॥
कबीर लज्जा लोक की, बोलै[१] नांहीं सांच ।
जांनि बूझि कंचन तजै, क्यौं तू[२] पकरै कांच ॥३०॥
कबीर जिनि जिनि जांनिया[१], करता केवल सार ।
सो प्रांनीं काहे चलै, झूठे कुल की लार ॥३१॥
मोर तोर की जेवरी, गलि[१] बंधा संसार ।
कांसि कुडुंबा सुत कलित, दाझनि बारंबार[२] ॥३२॥

---

[२५] दा० १७-५, नि० २०-४, सा० ४०-४, साबे० ८४-५६, सासी० ३४-१—
१. सा० सासी० कबीर तृष्ना टोकना, साबे० परतिष्टा का टोकरा। २. सा० साबे० सासी० डोलै। ३. सा० साबे० सासी० सवाद। ४. साबे० सत्तनाम। ५. सा० साबे० सासी० जानै। ६. सा० साबे० सासी० जनम गंवायौ बादि। ७. तुल० सासी० ३४-२१ : कबीर बंटा टोकनी, लीया फिरै सुभाय। राम नाम चीन्है नहीं, पीतल ही के चाइ। यह पाठ दा० से मिलता है।

[२६] दा० १७-८, नि० २०-७, सा० ४०-८, साबे० ८४-६०, सासी० ३४-२—
१. दा१ कबीर कलि खोटी भई, सा० साबे० सासी० कबीर कलियुग कठिन है। २. सा० साबे० सासी० साधु न मानै कोय। ३. दा० नि० लालच।

[२७] दा० १७-१७, नि० २०-११, सा० ४०-११, साबे० ८४-६२, सासी० ३४-११—
१. दा० नि० जिसे। २. साबे० देखत ही मिटि (साबे० ढहि) जाइगा। ३. साबे० बांधि सकै नहिं पोट।

[२८] दा० १७-२०, नि० २०-१२, सा० ४०-४९, साबे० ८१-१७, सासी० ४६-२४—

[२९] दा० १७-२१, नि० २०-३०, सा० ३१-२४ तथा ५४-९ (दो बार), साबे० ८२-८, सासी० २९-३५ तथा ४६-३२ (दो बार)—
१. साबे० मन में तो फूला फिरै, सा० सासी० मनवा तौ फूला फिरै। २. सा० सासी० कहै जो करूं धरम। ३. दा० सिरि लै चल्यौ। ४. सा० साबे० सासी० भरम (हिंदी मूल)।

[३०] दा० २२-१५, नि० २३-२४, सा० ५२-११, साबे० ६७-१५, सासी० ८१-१३—
१. दा० नि० सुमिरै। २. दा० नि० काठौं।

[३१] दा० २२-१६, नि० २३-२५, सा० ५२-१२, साबे० ६७-१४, सासी० ८१-१२—
१. नि० कबीर जिन हरि जांणियां, सा० साबे० सासी० जिन नर सांच पिछानिया।

[३२] दा० १७-२२, नि० १६-३२, सा० ३०-९१, साबे० १९-५३, सासी० १८-१०७—
१. दा० नि० बलि (उर्दू मूल), साबे० बटि (हिन्दी मूल)। २. दा० कांसि कडूंब (दा०२

पंडित[1] सेती कहि रहा[2], भीतरि भेदा नांहि ।
औरां कौं परमोधतां, गया मुहरका मांहि[3] ।।३३।।
कबीर पढ़िबा[1] दूरि करि, आथि[2] पढ़ा संसार ।
पीर न उपजै जीव मैं[3], तौ क्यूं पावै करतार[4] ।।३४।।

(२२) निगुणां नर कौ अंग

जालौं इहै बड़ापनां[1], ज्यूं सरलै पेड़ खजूरि[2] ।
पंथी छांह न बीसवैं[3], फल न लागैं[4] ते दूरि ।।१।।
कबीर मूढ़[1] करमियां[2], नख सिख पाखर आहि[3] ।
बाहनहारा क्या करै, बांन न लागै ताहि[4] ।।२।।
मूरख कौं सिखलावते[1], ग्यांन गांठि का जाइ ।
कोयला होइ न ऊजरा, सौ मन साबुन लाइ ।।३।।
तकत तकावत रहि गया, सका न बेझा[2] मारि ।
सबै तीर खाली परे, चला कमांनहिं डारि ।।४।।

कहा स कुंणबा) सुत कलित दाझणि बारंबार, नि० कहसि कड़ौंबा सुत कलित, दाझणा बारंबार सा० काय कुटुंब सुत सकल है, दाझनि बारंबार, साबे० सासी० दास कबीरा क्यौं बंधै, जाके नाम अधार (पुन० तुल० प्रस्तुत पुस्तक की साखी १९-२ : बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार । एक कबीरा नां मुवा, जाकै रांम अधार ॥)

[३३] दा० १७-१३, नि० २०-२८, सा० १४-४, सासी० ४६-४८, स० ८६-६, गुणा० १५८-१०—
१. दा२ स० ब्यासां । २. दा३ कबीर मिसर कथा करै, नि० कबीर ब्यास कथा कहै । ३. नि० फिरि परमोधै और कूं, आपण समझै नांहि (तुल० दा० १७-१४-२) । सासी० में इस साखी की पुनरावृत्ति तुल० सासी० ३४-२२ : कबीर ब्यास कथा कहै, भीतर भेदै नांहि । औरौं कूं परमोधतां, गए मुहरका मांहि ।

[३४] दा० १९-३, नि० २४-१९, सा० ४०-३६, सासी० ५८-९, स० ८६-३—
१. सा० सासी० पढ़ना । २. दा२ आखिर, सा० सासी० अति । ३. दा० प्रीति सूं । ४. सासी० तौ क्यूं करि करै पुकार ।

[१] दा० ५५-१०, नि० ६०-८, सा० ३८-१२, साबे० ५७-१०, सासी० ६७-१६, स० ८६-१८, बी० ३७—
१. बी० सुरहुर पेड़ अगाध फल, सा० साबे० सासी० बड़ा हुआ तो क्या हुआ । २. नि० लांबे पेड़ खजूर, सा० साबे० सासी० जैसे पेड़ खजूर, बी० पंछी मरिया झूर (तुल० ऊपर पंक्ति २-१) । ३. दा० नि० स० पंषी (हिन्दी मूल) छांह न बीसवैं (स० बैसवें), सा० साबे० सासी० पंथी को छाया नहीं, बी० बहुत जतन कै खोजिया । ४. बी० मीठा । सासी० में इस साखी की पुन०; तुल० सासी० ६७-२६ : ऊंचा देखि न राचिए, ऊंचा पेड़ खजूर । पंखि न बैठे छांयड़े, फल लागा पै दूर ॥

[२] दा० ५५-५, नि० ६०-५, सा० १०४-७, साबे० १६-२७, स० ८९-१, बी० १६२—
१. दा१ मूड़ठ (राज० मूल) । २. बी० मूढ़ करमिया मानवा, सा० साबे० कबीर मूढ़क प्रानिया । ३. दा० नि० स० ज्यांहं (राज० मूल) । ४. दा० नि० स० त्यांहं (राज० मूल) ।

[३] सा० ५६-६, साबे० १७-६ तथा ७०-९ (दो बार), सासी० ९-४३, बी० १६१—
१. सा० साबे० सासी० समुझावते ।

[४] बी० ३-३, सा० ७५-७, साबे० २३-७, सासी० ४६-५४—
१. बी० तकि रहा । २. सा० साबे० सासी० बेझी (हिन्दी मूल) ।

कबीर सौ मन दूध का[1], टिपके किया बिनास ।
दूध फाटि कांजी भया[2], हूवा[3] घृत का नास ।।५।।

सुनत सुनावत दिन गए, उरझि न सुरझा मंन ।
कह कबीर चेतै[2] नहीं, अजहूं पहिला दिन ।।६।।

पसुवा सौं पांनौं[1] परौ[2], रहु रे[3] हिया म[4] खीजि ।
ऊसर बोयौ न नीपजै[5], डारौ[6] केतक[7] बीजि ।।७।।[8]

कबीर चंदन के बिड़ै[1], नींब भी चंदन होइ ।
बूड़ा बांस बड़ाइयां[2], यौं जनि[3] बूड़ै कोइ ।।८।।

झिरमिर झिरमिर बरखिया, पाहन ऊपरि मेह ।
माटी गलि सैंजल[1] भई, पाहन वोही तेह[2] ।।९।।

पारब्रह्म बड़[1] मोतियां, झड़ि[2] बांधी सिखरांह[3] ।
सगुरा सगुरा[4] चुनि लिए, चूक परी निगुरांह[5] ।।१०।।

कबीर हरि रस बरखिया, गिरि डूंगर[1] सिखरांह[2] ।
नीर निवांनैं[3] ठाहरै, नां कछु[4] छापरड़ांह[5] ।।११।।

---

[५] नि० २८-१०, सा० ५८-५, बी० १९७—
१. बी० नौ मन दूध बटोरि के। २. नि० हुआ। ३. नि० भया।

[६] दा० ५५-६, नि० १७-४२, सा० ३१-३७, साबे० ७१-७०, सासी० २९-८२तथा ३४-२४, स० ८९-८, गुरा० १७१-२—
१. दा० गुरा० कह सुनत सब दिन गए। २. नि० समझै। सासी० ३४-२४ का पाठ है : कबीर सुनावत दिन गए, उलझि न सुलझा मन। कहैं कबीर चेता नहीं, अजहूं पहला दिन ॥

[७] दा३ ५३-७, नि० ६०-७, सा० १०४-३, साबे० १६-२८, सासी० ५-१८, स० ८९-४—
१. साबे० पाला। २. नि० कुसंगा सेती संग किया। ३. दा० सा० साबे० सासी० रहु रहु। ४. सा० साबे० सासी० न। ५. सा० दा०३ कालरि बह्यौ न नीपजै, साबे० सासी० ऊसर बीज न ऊगसी। ६. साबे० घालै, सासी० बोवै। ७. नि० तेता, सा० साबे० सासी० दूना, दा३ उमड़ौ। ८. नि० तथा साबे० में यह साखी अन्य स्थलों पर भी मिलती है; तुल० नि० २६-१० : कुसंगा सेती संग किया, रहौ रहौ हिया न खीजि। ऊसर बाह न नोपजै, भावै दूनै बीजि ॥ तथा साबे० ७०-१२ : पसुवा सो पाला पर्यो, रहु रहु हीया में खीझ। ऊसर परा न नीपजै, डारौ केतक बीज ॥ इससे नि० तथा साबे० में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है।

[८] दा० ५५-१२, नि० ६०-१०, सा० ५७-२०, साबे० १६-३१, सासी० ५-२०, तथा ९-३६ स० ८६-२०—
१. दा१ निड़ै, साबे० निकट, सा० सासी० भिरै। २. नि० बड़ाइतौ। ३. नि० मति।

[९] दा० ५५-२, नि० ६०-२, सा० १०४-३, सासी० ५-१५, स० ८९-२, गुरा० ९०-८—
१. सा० सासी० पानी। २. सा० सासी० नेह (हिन्दी मूल)।

[१०] दा० ५५-३, नि० ६०-३, सा० १०४-५, सासी० ५-५६, सा० ८९-६, गुरा० ९०-९—
१. दा० नि० स० गुरा० बूठा। २. दा० नि० स० गुरा० घड़ि (= गढ़कर; यहाँ अप्रासंगिक)। ३. सासी० सिखर। ४. सा० सासी० सुगरां (उर्दू मूल)। ५. सासी० निगुर।

[११] दा० ५५-४, नि० ६०-४, सा० १०४-६, सासी० ५-१७, स० ३४-१ ८९-४, गुरा० ९०-१०—
१. नि० सा० सासी० परबत। २. सा० सासी० सिखराय। ३. दा३ नि० निवाड़ा (हिन्दी मूल), सा० सासी० निवानू। ४. दा३ नि० नां ऊं, सा० सासी० ना वह। ५. सा० सासी० छापरडाय।

संगति भई तौ क्या भया[१], जौ हिरदा[२] भया कठोर[३] ।
नौ नेजा पांनीं चढ़ै, तऊ[४] न भीजै कोर ।।१२।।
ऊंचा कुल कै कारनैं, बांस[१] बढ़ा असरार[२] ।
चंदन बास भेदै नहीं, जारा सब परिवार ।।१३।।
जांनैं[१] हरिअर रूखड़ा, उस[२] पांनीं का नेह ।
सूखा[३] काठ न जांनई, कबहूं बूठा[४] मेह ।।१४।।
कबीर हृदय कठोर कै[१], सब्द न लागै सार ।
सुधि बुधि के हिरदै भिदै, उपज बिबेक बिचार ।।१५।।
सीतलता के कारनैं, नाग बिलंबे आइ[१] ।
रोम रोम बिख भरि रहा[२], अंम्रित कहां समाइ ।।१६।।

(२३) निंदा कौ अंग

लोग बिचारा निंदई, जिनहुं न पाया ग्यांन[१] ।
रांम अमलि माता रहै[२], तिनहुं न भावै आंन ।।१।।
दोख पराए देखि करि, चला हसंत हसंत ।
अपनैं चीति[१] न आवई, जिनकी[२] आदि न अंत ।।२।।

---

[१२] दा५ ५५-१२, नि० ६०-६, सा० १०४-१ साबे० १६-२५, सासी० ३-६५, गुग्रा० १७२-२—
१. गुग्रा० साध संगति का कौंन गुरा, दा५ कबीर संगति क्या करै । २. नि० गुग्रा० मन । ३. दा० बज्र कठोर । ४. सासी० पथर । ५. सासी० भीजी ।

[१३] दा० ५५-११, नि० ६०-९, सा० १०४-११, सासी० ५-१९, स० ८७-२—
१. दा० बंस । २. दा० स० अधिकार, सा० सासी० हंकार । ३. दा२ नि० रांम नांम जांणयां नहीं, सासी० राम भजन हिरदै नहीं ।

[१४] दा० ५५-१, नि० ६०-१, सा० १०६-४, साबे० १६-२६, सासी० ५-१६—
१. नि० दीसै । २. साबे० जो । ३. दा० नि० सूका । ४. सा० साबे० सासी० बूड़ा ।

[१५] दा० ५५-७, सा० १०६-२, सासी० ५-१४, गुग्रा० १७२-४१—
१. दा० गुग्रा० कहै कबीर कठोर कै । २. सा० सासी० बिधै । ३. सा० सासी० उपजै ज्ञान बिचार ।

[१६] दा० ५५-८ (दा२ में नहीं मिलता), सा० ५७-२३, सासी० ९-८, गुग्रा० १७२-१०—
१. सा० सासी० मलयागिरि के पेड़ सौं, सरप रहे लपटाय । २. सा० सासी० भीनिया ।

[१] दा० ५४-१, नि० ५५-१, सा० ९४-१, सासी० ५९-२१, स० ९०-६, गु० ४६—
१. गु० लोगु कि निंदै बापुड़ा जिहि मनि नांही गिआनु । २. दा१, दा२ राम नांव राता रहै, नि० सा० रांम नांम जांनैं नहीं, सासी० सत्तनाम जानै नहीं (कबीरपंथी प्रभाव), गु० राम कबीरा रवि रहे । ३. नि० सा० गु० सेवै आनहिं आन, सासी० बकै आन ही आन ।

[२] दा० ५६-२, नि० ५५-२, सा० ९५-३, साबे० ७५-८, सासी० ५९-१०, स० ९०-७—
१. नि० निजरि । २. सा० साबे० सासी० जाका ।

कबीर घास न निंदिए[१], जौ पावां तलि होइ[२] ।
ऊड़ि पड़ै जब आंखि मैं[३], तौ खरा दुहेला होइ[४] ॥३॥
निंदक नेरै राखिए, आंगनि कुटी बंधाइ[१] ।
बिन साबुन पांनीं बिनां, निरमल करै सुभाइ ॥४॥
निंदक दूरि न कीजिए, दीजै[१] आदर मांन ।
निरमल तन मन सब करै, बकै आंन ही आंन ॥५॥
जो कोई निंदै साधु कौं, संकटि आवै सोइ ।
नरक मांहिं[१] जांमैं[२] मरै, मुकुति न कबहूं होइ ॥६॥
आपनपौ न सराहिए, पर निंदिए न कोइ ।
अजहूं लंबे धौहड़े[१], नां जांनौं क्या होइ ॥७॥
आपनपौ न सराहिए, और न कहिए रंक ।
नां जांनौं किस बिरिख[२] तलि, कूड़ा होइ करंक ॥८॥

(२४) संगति कौ अंग

निरमल[१] बूंद अकास की, परि गई भोमि[२] बिकार ।
मूल बिनंठा मानई[३], बिनु संगति मठछार[४] ॥१॥
मारी मरौं[१] कुसंग की, केरा काठैं बेरि[२] ।
वा[३] हालै[४] वा[३] चीरिअै[५], साकत[६] संग निबेरि[७] ॥२॥

---

[३] दा० ५४-६, नि० ५५-३, सा० ९५-४, साबे० ७५-६, सासी० ५९-११, गुरा० ९५-२२—
१. सा० साबे० सासी० तिनका कबहुं न निंदिए। २. सा० सासी० पांव तलै जो होय।
३. सा० साबे० सासी० कबहूं उड़ि आंखौं पड़ै। ४. सा० साबे० सासी० पीर घनेरी होइ।

[४] दा० ५४-३, सा० ९४-६, साबे० ७५-१, सासी० ५९-५, गुरा० ९५-७—
१. सा० साबे० सासी० छवाइ।

[५] दा० ५४-४, सा० ९४-७, साबे० ७५-२, सासी० ५९-६, गुण० ९५-८—
१. सा० सासी० कीजै। २. दा० गुरा० बकि बकि।

[६] दा० ५४-५, सा० ९४-१०, साबे० ७५-५, सासी० ५९-१४, गुरा० ९५-२१—
१. सा० साबे० सासी० जाय। २. साबे० सासी० जनमै।

[७] दा२ ५४-७, नि० ५५-४, सा० ९५-५, सासी० ५९-१९, स० ९८-३—
१. सा० अजहूं लंबा ब्यौहरा, सासी० चढ़ना लंबा ब्यौहरा।

[८] दा० ५४-७, नि० ५५-५, सा० ९५-६, सासी० ५९-२०, स० ९०-४—
१. सा० सासी० क्या। २. दा३ नि० सा० सासी० रूख।

[१] दा० २५-१, नि० २६-३, सा० ५६-३, साबे० १७-११, सासी० ९-४०, गु० ११५, गुरा० १६४-११—
१. सा० साबे० सासी० ऊजल। २. साबे० सासी० गु० भूमि। ३. सा० मूल बिनटया मानई, साबे० मूल बिना ठामा नहीं, सासी० माटी मिलि भई कींच सों, गु० बिनु संगति इउ मानई।
४. साबे० सासी० बिनु संगति भौछार, गु० होई गई मठछार।

[२] दा० २५-४, नि० २६-५, सा० ५६-८, साबे० १७-१४, गु० ८८, बी० २४२—
१. बी० सा० साबे० मरै। २. बी० केरा साथे बेरि, गु० केलै निकटि (समानार्थीकरण) जु बेरि, सा० साबे० ज्यूं केला ढिग बेरि। ३. गु० उह, सा० वह, बी० वै। ४. गु० झूलै। ५. बी० चींघरै, नि० चीरजै सा० साबे० चीरई,। ६. बी० बिधिनै, नि० कुसंगति। ७. गु० संगु न हेरि (उर्दू मूल), नि० संगति फेरि (उर्दू मूल)।

कबीर मनु[१] पंखी भया, उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ[२] ।
जो जैसी संगति करै[३], सो तैसा फल खाइ[४] ॥३॥
एक घरी आधी घरी, आधी हूं तैं[१] आध[२] ।
कबीर संगति साधु की, कटै कोटि अपराध[३] ॥४॥[४]
कबीर तासौं[१] प्रीति करि[२], जाकौ ठाकुर रांम[३] ।
राजा रांनां छत्रपति[४], आवहिं कौनैं कांम[५] ॥५॥
साधू की संगति रहौ[१], जौ की भूसी खाउ[२] ।
खीर खांड भोजन मिलै[३], साकत[४] संगि न जाउ[५] ॥६॥
काजर केरी ओबरी[१], असा[२] यहु संसार ।
बलिहारी ता दास की[३], पैसि कै निकसनहार ॥७॥
काजर केरी[१] ओबरी[२], काजर ही का कोट ।
बलिहारी वा दास की, रहै रांम की ओट[३] ॥८॥

---

[३] दा० २६-७, सा० ५७-३५, साबे० १६-२०, सासी० ९-२०, गु० ८६, गुग्रा० १९५-५—
१. दा० गुग्रा० तन (उर्दू मूल)। २. दा० गुग्रा० जहां मन तहां उड़ि जाइ, सा० मन मानै तहँ जाइ, साबे० सासी० भावै तहंवां जाइ । ३. गु० मिलै । ४. सासी० पाय (हिन्दी मूल)। ५. सासी० में इस साखी की पुनरावृत्ति, तुल० सासी० २९-१०४ : मनुवा तो पंखी भया, जहां तहां उड़ि जाय । जहं जैसी संगति करै, तहं तैसा फल खाय ॥

[४] नि० २७-१२, सा० ५७-३, साबे० १६-२३, सासी० ९-३, गु० २३२, गुग्रा० ७०-१—
१. साबे० से, सासी० सों । २. नि० भी आधी का आध । ३. गु० भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ, नि० साधां सेती प्रीतड़ी, जो कीने सो लाभ, गुग्रा० साधौं सेती गोठड़ी, को सुक्रित का फल लद्ध । ४. यह साखी तुलसी के नाम से भी प्रचलित है (यद्यपि किसी प्रामाणिक रचना में ढूंढ़ने से नहीं मिलती)। लोक-प्रचलित दोहे में दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार हो जाता है : तुलसी संगति साधु की, कटै कोटि अपराध । यह दोहा प्रायः मानस-कथा के अनंतर विसर्जन के समय गाया जाता है ।

[५] नि० २७-११, सा० ५७-३२, साबे० १६-११, सासी० ९-१८, गु० २४—
१. गु० तासिउ । २. सा० साबे० सासी० संग कर । ३. नि० सा० साबे० सासी० जो रे भजे हैं रांम । ४. गु० पंडित राजे भूपती (पुन०) । ५. नि० सा० साबे० सासी० नाम (नि० रांम) बिनां बेकांम ।

[६] सा० ५७-५, साबे० १६-४, सासी० ९-३, गु० ९९—
१. सा० साबे० सासी० कबीर संगति साधु की । २. सा० साबे० सासी० खाय । ३. गु० होनहारु सो होईहै । ४, सा० साबे० सासी० साकट । ५, सा० साबे० सासी० जाय ।

[७] दा० २६-८, नि० ३१-१, सा० ६०-१, साबे० ७-१९, सासी० ११-८, बी० २२६—
१. बी० सा० कोठरी (किन्तु बी० २२७ में 'ओबरी' का ही प्रयोग हुआ है)। २. बी० बूड़त । ३. बी० पुरुष की । ४. दा० नि० पैसि र । तुल० गु० २६ : जगु काजल की कोठरी अंध परे तिस माहि । हउ बलिहारी तिन्ह कउ पैसि जु नीकसि जाहि ॥

[८] सा० ६०-२, साबे० ७-२०, सासी० ११-९, बी० २२७—
१. बी० ही की (बीभ० की)। २. बी० कोठरी (बीभ० ओबरी)। ३. बी० तोंदी कारी ना भई, रहा सो ओटहिं ओट ।

जौ तोहिं साध पिरेम की[१], तौ पाका सेती[२] खेलि ।
कांची[३] सरसौं पेलि कै[४], नां खलि भई न तेल[५] ॥९॥

संगति कीजै साधु की[१], हरै और की व्याधि ।
ओछी संगति कूर की[२], आठौं पहर उपाधि ॥१०॥

मूरिख संग न कीजिए[१], लोहा जल न तिराइ ।
कदली सीप भुवंग[२] मुख, एक बूंद तिहुं भाइ[३] ॥११॥

देखादेखी पकड़िया[१], जाइ अपरचै छूटि[२] ।
बिरला कोई ठाहरै[३], सतगुर साम्हीं मूठि ॥१२॥

यहु मन दीजै तासुकौं[१], जो सुठि सेवग होइ[२] ।
सिर ऊपरि आरा[३] सहै[४], तऊ न दूजा होइ ॥१३॥

कबीर तासौं प्रीति करि, जो निरबाहै ओरि[१] ।
बनिता[२] बिबिधि न राचिए[३], देखत लागै खोरि ॥१४॥

हरिजन सेती रूसनां[१], संसारी सौं हेत ।
ते नर कदे[२] न नीपजैं, ज्यौं कालर का खेत ॥१५॥

देखादेखी भगति का[१], कदे न चढ़ई रंग ।
बिपति पड़े यौं छांड़िहै, ज्यौं केंचुली भुवंग[२] ॥१६॥

---

[९] सा० ५६-१५, साबे० १७-३, सासी० ९-५०, गु० २४०, बी० २८०, गुरा० ५९-१७—
१. सा० साबे० सासी० तोहि पीर जो प्रेम की, बी० साधू होना चाहिए। २. बी० पाका होय के। ३. बी० कच्चा। ४. गुरा० पीलतां। ५. सा० सासी० खरी भया नहिं तेल।

[१०] बी० २०७, सा० ५७-४, साबे० १६-३, गुरा० १६६-१३—
१. सा० साबे० कबिरा संगति साधु की, गुरा० संगति भली जु साधु की। २. सा० साबे० संगति बुरी कुसाधु की (साबे० असाधु की), गुरा० नीचे कै संगि बैसतां।

[११] दा० २५-२, नि० २६-२, सा० ५६-२, साबे० १७-१०, सासी० ९-३६, गुरा० १६६-१४—
१. नि० कुसंगति नां कीजिए। २. साबे० सासी० भुजंग। ३. सा० सासी० तिरभाय, साबे० त्रिप्ताय।

[१२] दा० २६-१, नि० ३०-६, सा० ६२-३, साबे० १२-१९, सासी० १२-४४, गुरा० १६५-४—
१. साबे० पकड़सी (राज०)। २. सा० साबे० सासी० गई छिनक मैं छूटि। ३. सा० साबे० सासी० कोइ बिरला जन बाहुरै। ४. साबे० सतगुर स्वामी मूठ, सा० सासी० जाकी गहरी मूठि।

[१३] दा० २६-४, नि० ३०-३, सा० ६२-५, साबे० ७-१८, सासी० १०-२२, गुरा० १६५-२—
१. सा० साबे० सासी० यह मन ताको दीजिए। २. दा० गुरा० सुठि सेवग भल सोइ, नि० जो सुध सेवग होइ। ३. नि० वोरा। ४. सा० साबे० सासी० सांचा सेवक होइ। ५. दा२ नि० कदे।

[१४] दा० २६-६, नि० ३०-५, सा० ८३-४, साबे० १५-३२, सासी० १५-३८, गुरा० १६५-३—
१ दा० नि० ओढ़ि। २. सा० साबे० सासी० बनै तो।

[१५] दा० २५-३, नि० २६-४, सा० ५६-४, साबे० १७-१२, सासी० ९-४१—
१. सा० सासी० रूठना। २. सासी० कबहुं, साबे० कधी (राज०)।

[१६] दा० २६-२, नि० ८६-१३, सा० ६२-१, साबे० १२-१७ तथा ५०-११, सासी० १२-४३—
१. दा० भगति है। २. सा० सासी० केंचुलि तजत भुजंग।

करिए तौ करि जानिए, सारीखा सौं[1] संग ।
लीर लीर लोई भई[2], तऊ न छांड़ै रंग ॥१७॥
कबीर कहते[1] क्यौं बनैं, अनमिलता[2] कौं संग ।
दीपक कौं भावै नहीं, जरि जरि मरैं पतंग ॥१८॥

(२५) भेख आडंबर कौ अंग

सांई सेती सांच चलि[1], औरां सौं सुध भाइ[2] ।
भावै लांबे केस करि[3], भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥१॥
साधु[1] भया तौ क्या भया, माला मेली चारि[2] ।
बाहरि ढोला हींगला[3], भीतर भरी भंगारि ॥२॥
मन मैवासी मूड़ि ले[1], केसौं मूड़ै कांइ[2] ।
जो किछु किया सु मन किया, केसौं कीया नांहिं[3] ॥३॥
केसौं[1] कहा बिगारिया, जे मूड़ै सौ बार[2] ।
मन कौं काहे न मूड़िए, जामैं बिखै[4] बिकार ॥४॥

---

[१७] दा० २६-३, नि० ३०-२, सा० ६२-६, सासी० ७-४४ तथा ९-८५, स० ५४-१, गुग्रा० १६५-१—
१. सा० सासी० सरिखा सेती । २. सा० सासी० फिर फिर जिमि लोई भई । सासी० ९-८५ का पाठ है : संगति ऐसी कीजिए, सरसा नर सों संग । लर लर लोई होत है, तऊ न छांड़ै रंग ॥

[१८] नि० २६-६, सा० ५६-१०, साबे० १७-१६, सासी० ९०-३९, गुग्रा० १६४-१५—
१. नि० गुग्रा० कहिनैं (उर्दू मूल) । २. सा० साबे० सासी० अनबनता ।

[१] दा० २४-११, नि० २३-४, सा० ५२-२, साबे० ६७-२, सासी० ८१-१०, स० ९६-८, गु० २५, गुग्रा० १२६-१३—
१. सा० साबे० सासी० साईं सों सांचा रहो, गु० सबीर प्रीति इक सिउ कीए । २. नि० सा० साबे० सासी० सांईं सांच सुहाइ, गु० आन दुबिधा जाइ । ३. सा० साबे० सासी० रखु । ४. गु० घररि सा० साबे० सासी० घोंट ।

[२] दा० २४-७, नि० २५-५, सा० ५५-१५, साबे० १७-९, सासी० ७-३१, स० ९४-१९, गु० १४५—
१. गु० बैसनौ । २. दा० नि० सा० सासी० स० माला फेरे (दा० सा० पहरयां) कछु नहीं, रुल्या (सासी० डारि) मुवा गल भारि । ३. गु० बाहरि कंचनु बारहा, साबे० ऊपर कली लपेटि के । ४. सा० साबे० सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल० साबे० ५०-५ तथा सासी० ७-१५ : साधु भया तौ क्या हुआ, माला पहरी चारि । बाहर भेख बनाइया, भीतर भरी भंगार ॥ और सा० ८१-११ : बैष्णव भया तौ क्या भया, माला पहिरी चारि । ऊपर कली लपेटि के, भीतरि भरी भंगारि ॥ सा० का यह पाठ साबे० से मिलता है ।

[३] दा० २४-१३, नि० २५-१२, सा० ५५-२६, साबे० ५०-१०, सासी० ८-२२, गु० १०१—
१. गु० कबीर मन मूड़िआ नहीं । २. गु० केस मुड़ाए कांइ । ३. सा० साबे० सासी० केस किया कछु नाहिं, गु० मूड़ा मूंडु अजांइं ।

[४] दा० २४-१२, नि० ३०-११, सा० ५५-२५, साबे० ५०-९, सासी० ७-२१, स० ९४-९, गुग्रा० १२६-१५—
१. नि० केसां, सा० साबे० सासी० केस न । २. साबे० जो मूड़ौ सौ बार, सा० सासी० मूड़ा सौ सौ बार । ३. नि० मनकूं क्यूं मूंड़ै नहीं, सा० साबे० सासी० मन को क्यों नहिं मूड़िए । ४. दा३ बसैं (उर्दू मूल) ।

तन कौं जोगी सब करै, मन कौं बिरला कोइ[1] ।
सब सिधि सहजैं पाइए, जे मन जोगी होइ ।।५।।
माला फेरै[1] मनमुखी[2], तातैं कछू न होइ ।
मन माला कौं फेरतां, घट उजियारा होइ[3] ।।६।।
कर पकरैं अंगुरी गिनैं, मन धावै चहुं ओर ।
जाहि फिरायां[2] हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर[4] ।।७।।
मरम न भागा जीव का[1], अनंतहि[2] धरिया भेख ।
सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रहि गई रेख ।।८।।
[1]कबीर साखत की सभा, तूं मति बैठै जाइ ।
एक गुवाड़ै[2] क्यूं बनैं, रोझ गदहरा गाइ ।।९।।
कबीर माला मन की[1], और संसारी भेख ।
माला पहिरे[2] हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देखि[4] ।।१०।।
माला फेरें[1] कछु नहीं[2], गांठि हिरदै की खोइ[3] ।
हरि चरनौं[4] चित राखिए, तौ अमरापुर[5] जोइ[6] ।।११।।

---

[५] दा० २४-१७, नि० २५-१६, सा० ५५-३२, सावे० ४८-५, सासी० ७-३७, स० ९४-९, गुग्रा० १२६-६५—
१. सा० सावे० सासी० मन को करै न कोय । २. नि० सुख ।

[६] दा० २४-३, नि० २५-३, सा० ५५-१३, सावे० ३४-१५, सासी० १३-१४२, स० ९४-१२, गुग्रा० १२६-१०—
१. दा० पहरै । २. दा३ मन सुखी, नि० सा० सावे० मन खुसी (नागरी मूल) । ३. दा० नि० गुग्रा० जग उजियारा सोइ ।

[७] दा० २४-२, नि० २५-२ सा० ५५-१२, सावे० ३४-२१, सासी० १३-१५०, स० ९४-१५, गुग्रा० १२६-९—
१. सा० सावे० सासी० क्रिया करै (उर्दू मूल) । २. नि० जिस फेरयां, सा० सावे० सासी० जेहि फेरे । ३. नि० सा० सावे० सासी० सांई । ४. सा० सावे० सासी० कठोर ।

[८] दा० २४-१९, नि० २५-१७, सा० ५५-३४, सावे० ४८-७, सासी० ७-३६, बी० ४६—
१. बी० कबीर भरम न भाजिया । २. बी० बहु विधि, नि० अनंतक, सावे० सासी० बहुतक । ३. बी० साईं के परिचै बिना (सरलीकरण), सा० सावे० सासी० सतगुर मिलिया बाहरै । ४. दा० नि० सासी० अंतरि (दा० भीतर) रहया अलेख, सा० अंतर रहिगा लेख ।

[९] दा२ १२-५५, नि० १६-५६, सा० ९६-६, सावे० सासी० ५-४२, बी० १५५—
१. बी० में इस साखी का पाठ है : लोगन केर अथाइया, मति कोई पैठो धाइ । एकहि खेत चरत है, बाघ गदहरा गाइ । २. दा२ एकै बाड़ै ।

[१०] दा० २४-६, नि० २५-८, सा० ५५-१८, सावे० ३४-१८, सासी० ७-६६, स० ९४-११—
१. सा० सासी० माला तो मन की भली । २. सा० सावे० सासी० फेरे (उर्दू मूल) । ३. सा० सासी० हरहट । ४. सावे० गले रहट के देख ।

[११] दा० २४-९, नि० २५-९, सा० ५५-२०, सावे० ३४-३२, सासी० ७-३२, स० ९४-१८—
१. दा० पहरया । २. सा० सावे० सासी० क्या भया । ३. सा० सावे० सासी० गांठ न हिए की खोइ । ४. सावे० गुरु चरनन । ५. नि० अजरावर । ६. दा० नि० होइ । सासी० में इस साखी की पुन०; दे० सा० १३-१४८ : माला फेरे कह भयो, हिरदा गांठि न खोइ । गुरु चरनन चित राखिए, तौ अमरापुर जोइ ॥

स्वांग पहिरि सोरहा[१] भया, खाया पीया खूंदि[२] ।
जिहिं सेरी साधू गया[३], सो तौ मेल्ही[४] मूंदि ॥१२॥

नौसत[१] साजे सुंदरी[२], तन मन रही संजोइ ।
पिय के मन भावै[३] नहीं, तौ पटम[४] किएं क्या होइ ॥१३॥

माला फेरें क्या भया[१], जौ भगति न आई हाथि ।
दाढ़ी[२] मूंछ मुड़ाइ कै, चला दुनीं[३] कै साथि ॥१४॥

जगत जहंदम[१] राचिया, झूठे कुल की लाज ।
तन बिनसें कुल बिनसिहै, गहै[४] न रांम[५] जहाज[६] ॥१५॥

पख ले[१] बूड़ी पिरथिमीं[२], झूठे कुल की लार ।
अलख[३] बिसारचौ भेख मैं, बूड़े काली धार[४] ॥१६॥

चतुराई हरि नां मिलै, यह बातां की बात ।
निसप्रेही निरधार का, गाहक दीनांनाथ[२] ॥१७॥

कबीर हरि की भगति का, मन मैं बहुत[१] हुलास ।
मन मनसा माजै नहीं[२], होन चहत है दास[३] ॥१८॥

---

[१२] दा० २४-१५, नि० २५-१४, सा० ५५-२८, साबे० ५०-१७, सासी० ७-२५, गुशा० १२६-४७—
१. सा० साबे० सोहदा, नि० सासी० सोहरा। २. सा० साबे० सासी० दुनिया खाई खूंदि। ३. दा२ गुशा० नीसरचा, सा० साबे० सासी० गुशा० राखी।

[१३] दा० २४-२३, नि० १५-२९, सा० १०१-५, तथा ५५-३८, साबे० ११-४, सासी० २३-१३, गुशा० ५३-१३—
१. नि० नौतन। २. दा० गुशा० कांमिनीं। ३. सा० साबे० सासी० गुशा० मांनैं। ४. नि० कपट, साबे० सासी० बिडम।

[१४] दा० २४-१०, नि० २५-१०, सा० ५५-२१, साबे० ५०-३, सासी० ७-२९—
१. दा० माला पहरचां कुछ नहीं, सा० साबे० सासी० माला तिलक लगाय के। २. दा० माथौ। ३. दा० जगत।

[१५] दा० २४-२०, नि० १६-३९, सा० ३०-५९, साबे० १९-५१, सासी० १७-७९—
१. दा२ जहँ हद मैं राचिया, सा० सासी० जग जहदा में राचिया, साबे० भगतहि में हम राचिया। २. सा० साबे० सासी० छीजै। ३. नि० बिनसिसी (राज० मूल) ४. नि० सा० साबे० सासी० रटै। ५. साबे० सासी० नाम। ६. नि० सा० जिहाज।

[१६] दा० २४-२१, नि० २५-१९, सा० ५५-३६, साबे० ५०-२१, सासी० ७-३९—
१. सा० साबे० सासी० पहिले। २. सा० साबे० सासी० पिरथिवी। ३. दा० अलेख। ४. सासी० बूड़ि काल की धार।

[१७] दा० २४-२२, नि० २५-२०, सा० ५५-३७, साबे० ५०-२२, सासी० ७-४०—
१. सा० साबे० सासी० बातों। २. दा० गोपीनाथ, दा३ नि० त्रिभुवननाथ।

[१८] दा० २४-२५, नि० ३०-२१, सा० १५-३१, साबे० १२-६, सासी० १२-२४,
१. दा१ दा२ खरा, दा३ घणां। २. दा० नि० मैवासा भाजै नहीं। ३. दा० नि० हूंणा मते निज दास।

मूंड़ मुड़ावत दिन गए, अजहुं न मिलिया रांम ।
रांम नांम कहु क्या करै, जे मन के औरै कांम[१] ॥१९॥

माला फेरें[१] कछु नहीं, काती मन कै साथि[२] ।
जब लग हरि प्रगटै[३] नहीं, तब लग पतड़ा हाथि[४] ॥२०॥

कबीर माला काठ की, मेली[१] मुगध झुलाइ[२] ।
सुमिरन की सोधी नहीं[३], ज्यौं डींगरि घाली[४] गाइ ॥२१॥

माला फेरै[१] मनमुखी[२], बहुतक फिरै अचेत ।
गांगीरोलै[३] बहि गया, हरि सौं किया न हेत ॥२२॥

बाहरि क्या दिखलाइए, भीतरि कहिए रांम[१] ।
नहीं[२] महौला जगत[३] सौं, परा धनीं सौं कांम ॥२३॥

कर सेती माला जपै[१], हिरदै बहै डंडूल[२] ।
पग तौ पाला मैं गिला[३], भाजन लागी सूल ॥२४॥

(२६) भरम बिधूसन कौ अंग

पाहन केरा पूतरा[१], करि पूजै करतार[२] ।
इही[३] भरोसै[४] जे रहे[५], ते[६] बूड़े[७] काली धार ॥१॥

---

[१९] दा० २४-१४, नि० २५-१३, सा० ५५-२७, सासी० ७-२३, स० ९४-५—
१. नि० स० जे मन करै और ही कांम ।

[२०] दा० २४-८, नि० २५-२७, सा० ५५-१५, सासी० ७-३३, स० ९४-१५—
१. दा० पहरया । २. सा० सासी० हाथ । ३. नि० सा० सासी० परचै । ४. नि० पोथी हाथ, सा० सासी० थोथी बात ।

[२१] दा२ दा३ २२-६, नि० २५-६, सा० ५५-१७, सासी० १२-१५८, स० ९४-१६—
१. सा० सासी० पहरी । २. सा० सासी० डुलाय (राजस्थानी हिंदी मूल) । ३. सा० सासी० सुमिरन की सुधि है नहीं । ४. ता० सासी० बांधी ।

[२२] दा० २४-४, नि० २५-२४, सा० ५५-१४, सासी० ७-३०, गुग्रा० १२६-११—
१. दा० गुग्रा० पहरै । २. दा३ मन सुखो, नि० मन खुसी ।

[२३] नि० ३-७, सा० ११-६८, साबे० ३४ २३, सासी० १२-८२, स०९४-६—
१. साबे० सासो० जपिए नाम । २. सा० साबे० सासी० कहा । ३. नि०.सा० सासी० खलक ।

[२४] दा० २४-१, नि० २५-१, सासी० १२-१७१, स० ९४-१४—
१. सासी० हाथों में माला फिरे । २. सासी० हिरदै डामाडूल । ३. सासी० पड़ा ।

[१] दा० २३-१, नि० २४-१, सा० ५३-१, साबे० ८१-१, सासी० ४६-१, स० १००-१, गु० १२६—
१. सा० साबे० सासी० पाहन केरी पूतरी, गु० पाहन परमेसुरु कीआ । २. गु० पूजै सभु संसार । ३. सा० साबे० वाहि, सासी० याहि, गु० इस । ४. गु० भरवासे । ५. सा० साबे० सासी० मति रहो । ६. गु० सा० साबे० सासी० में 'ते' नहीं है । ७. सा० साबे० सासी० बूड़ो ।

कागद केरी ओबरी[१], मसि के[२] किए[३] कपाट ।
पाहनि बोरी[४] पिरथिमीं, पंडित पाड़ी बाट ।।२।।
मुला मुनारै क्या चढ़हि[१], अलह[२] न बहिरा होइ ।
जेहिं[३] कारनि तूं बांग दे[४], सो दिल ही भीतरि[५] जोइ ।।३।।
तीरथि चाले दुइ जनां[१], चित चंचल मन चोर[२] ।
एकौ पाप न काटिया[३], लादा मन दस और ।।४।।
तीरथ व्रत[१] बिख[२] बेलड़ी, सब जग मेल्हा[३] छाइ[४] ।
कबीर[५] मूल निकंदिया, कौंन[६] हलाहल खाइ ।।५।।
जप तप दीसैं[१] थोथरा, तीरथ व्रत बेसास[२] ।
सूवै सैंबल सेइया, यौं जग[३] चला निरास ।।६।।
कबीर दुनिया देहुरै, सीस नवावन जाइ ।
हिरदै भीतरि[१] हरि बसै, तूं ताही सौं[२] ल्यौं[३] लाइ ।।७।।
पाहन कौं क्या पूजिए, जो जनमि न देई ज्वाब[१] ।
अंधा नर आसामुखी, यौंही खोवै आब[२] ।।८।।

---

[२] दा० २३-२, नि० २४-२, सा० ५३-२, साबे० ८१-२, सासी० ४६-१४, स० १००-३, गु० १३७—
१. दा० नि० स० काजर केरी ओबरी, सा० साबे० सासी० काजर केरी कोठरी ('काजर' यहाँ अप्रासंगिक), गु० कबीर कागद की ओबरी । २. गु० मसु के । ३. दा० गु० करम । ४. दा० नि० स० बोई (उर्दू मूल), साबे० सासी० भूली ।

[३] नि० २३-२०, सा० ५३-२१, साबे० ८१-१४, सासी० ४६-२१, गु० १८४—
१. नि० मुला चढ़ि न मुलारयौं, सा० साबे० सासी० मुल्ला चढ़ि किलकारिया । २. गु० सांई, नि० साबे० अलख । ३. गु० जा । ४. गु० देहि । ५. नि० सा० साबे० सासी० अंदर ।

[४] नि० २४-१४, सा० ५४-४, साबे० ८२-४, सासी० ४६-२७, बी० १२५—
१. नि० तीरथ चाल्या हांसि कूं, बी० तीरथ गए तीनि (?) जन । २. नि० मन मैला चित चोर । ३. सासी० काढ़िया (हिन्दी मूल), नि० सा० साबे० उतरिया ।

[५] दा० २३-९, नि० २४-१५, सा० ५४-२, साबे० ८२-२, बी० २१६—
१. बी० भई । २. दा० नि० सब । ३. सा० साबे० राखा । ४. बी० रही जुगन जुग छाय । ५. नि० सा० साबे० कबीर, बी० कबिरन । ६. बी० क्यों न ।

[६] दा० २३-८, नि० २४-१६, सा० ५४-१, साबे० ८२-१, सासी० ४६-२५, स० १००-९ गुरा० १३७-१९—
१. सासी० दीखै । २. सा० साबे० सासी० बिस्वास । ३. दा२ यूं जुग (उर्दू मूल), साबे० फिरि उड़ि ।

[७] दा० २३-११, नि० २४-२१, सा० ५३-१८, साबे० ८१-११, सासी० ४६-९, स० १००-७ गुरा० १३७-१२—
१. सा० साबे० सासी० मांहीं । २. साबे० सासी० ताही । ३. दा२ चित, साबे० सासी० लौ ।

[८] दा० २३-३, नि० २४-३, सा० ५३-३, साबे० ८१-३, सासी० ४६-२, स० १००-४—
१. सा० साबे० सासी० जो नहिं देइ जबाब । २. साबे० यौंही होय खराब ।

हंम भी पाहन पूजते, होते बन के[१] रोझ[२] ।
सतगुर की किरपा भई, डारा[३] सिरतैं बोझ[४] ।।९।।
सेवै[१] सालिगरांम कौं, मन की भ्रांति न जाइ ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, दिन दिन अधिकी लाइ ।।१०।।
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांनि ।
दसवां द्वारा देहुरा[१], तामैं जोति पिछांनि ।।११।।

(२७) सारग्राही कौ अंग

खीर[१] रूप हरि नांउं[२] है, नीर आंन[३] ब्यौहार ।
हंस रूप कोइ साधु है, तत का छांननहार[४] ।।१।।
कबीर औगुन नां गहै[१], गुन ही कौं लै बीनि ।
घट घट महुं कै मधुप ज्यौं, परमातम लै चीन्हि ।।२।।
पापी भगति[१] न भावई, हरि पूजा न सुहाइ[२] ।
माखी चंदन[३] परिहरै, जहं बिगंध[४] तहं जाइ ।।३।।
कबीर साकत कोइ नहीं, सबै बैस्नौं जांनि[२] ।
जिहि मुखि रांम न ऊचरै, ताही तन की हांनि[३] ।।४।।[४]

---

[९] दा० २३-४, नि० २४-४, सा० ५३-४, साबे० ८१-४, सासी० ४६-१५, स० १००-५—
१. दा० रन के (हिन्दी मूल)। २. सा० सासी० रोज-रोज। ३. नि० राल्या।

[१०] दा० २३-३, नि० २४-११, सा० ५३-१२, सासी० ४६-१२, स० १००-५, गुग्रा० १३७-२—
१. सासी० पूजै।

[११] दा० २३-१०, नि० २३-२४, सा० ५३-१९, साबे० ८१-१२, सासी० ४६-१९, गुग्रा० १३७-२३—
१. नि० देही मांहीं देहरा, सा० साबे० सासी० दस द्वारे का देहरा (=काया, जो प्रथम पंक्ति में ही आ चुका है, अतः भाव की पुनरावृत्ति)।

[१] दा० २२-१, सा० ६७-७, साबे० २९-६, सासी० ४७-६, गुग्रा० १४५-२१—
१. सा० साबे० सासी० छीर। २. साबे० सासी० सतनाम (सांप्रदायिक प्रभाव)। ३. सा० साबे० सासी० रूप। ४. दा० सा० गुग्रा० जांननहार।

[२] दा० ३२-३ (दा२ में नहीं है) सा० ६७-५, साबे० २९-४, सासी० ४७-४, गुग्रा० १४५-७—
१. सा० साबे० सासी० औगुन को तो ना गहै।

[३] सा० ६६-५, साबे० ४०-३, सासी० ४८-९, गु० ६८—
१. सा० साबे० सासी० पुन्नि। २. सा० साबे० सासी० पापहिं बहुत सुहाय। ३. सा० साबे० सासी० सुगंधी। ४. सा० साबे० सासी० दुरगंध।

[४] दा० ३२-२, नि० ३५-१, सा० ९६-१२, सासी० ६-७६, स० २२-२, गुग्रा० १४५-२८१—
१. सासी० अनबैस्नव कोई नहीं, सा० साकट हमरे कोउ नहीं। २. सा० झारि। ३. सासी० जेता हरि को ना भजै, तेता ताको हानि, सा० संसय ते साकट भया, कहै कबीर बिचारि। ४. सासी० में यह साखी ५-३७ पर भी आती है जहाँ इसका पाठ सा० के समान है।

बसुधा बन बहु भांति है, फूलै फलै अगाध ।
मिष्ट सुबास कबीर गहि[1], बिषम गहै[2] नहिं[3] साध ॥५॥

(२८) बिचार कौ अंग

रांम रांम सब कोइ कहै, कहिबे बहुत बिचार[1] ।
सोई रांम सती कहै[2], सोई कौतिगहार[3] ॥१॥
आगि कह्यां[1] दाझै नहीं, जे नहिं चंपै पाइं[2] ।
जौ पै[3] भेद न जांनिए, रांम[4] कहा तौ काइं[5] ॥२॥
कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नांहि ।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समांनां मांहि ॥३॥
पांनां केरा पूतरा, राखा पवन संचारि[1] ।
नांनां बांनीं बोलिया[2], जोति धरी करतारि ॥४॥
हरि[1] मोतिन[2] की माल है, पोई कांचै धागि[3] ।
जतन करौ झटका घनां[4], टूटैगी कहुं लागि[5] ॥५॥
आधी साखी सिरि खंडै[1], जौ रे बिचारी जाइ[2] ।
मन[3] परतीति न ऊपजै[4], तौ राति दिवस मिलि[5] गाइ ॥६॥

---

[५] दा० ३२-४ (दा२ में नहीं है), सा० ६७-४, सासी० ४७-१०, गुग्र० १४५-२७—
१. सा० सासी० मिष्ट बास कबिरा गहै । २. दा० गुग्र० कहै (उर्दू मूल)। ३. दा० किहिं, सा० सासी० कोइ ।

[१] दा० ३३-१, नि० ३४-२, सा० ६५-१, सासी० ७६-२, स० १५१, गु० १९०—
१. सा० सासी० राम राम सब कोइ कहै, कहने मांहिं बिचार, गु० राम कहन महि भेदु है तामहिं एक बिचारु । २. गु० सोई राम सभै कहहि । ३. गु० कउतकहार (उर्दू मूल)।

[२] दा० ३३-२, नि० ३४-३, सा० ६५-२, साबे० ६८-१, सासी० ७६-१—
१. नि० सा० साबे० सासी० कहें । २. नि० सा० साबे० सासी० जे पांव न दीजै मांहिं । ३. दा० जब लगि । ४. साबे० नाम (राधा० प्रभाव)। ५. नि० सा० साबे० सासी० काहि ।

[३] दा० ३३-३, नि० ३४-४, सा० ६५-३, साबे० ६८-२, सासी० ७६-१—

[४] दा० ३३-४, नि० ३४-५, सा० ६५-४, साबे० ६८-३, सासी० ७६-४,—
१. दा० १ संवारि (नागरी मूल)। २. सा० साबे० सासी० बोलता ।

[५] दा० ३३-८, नि० ५४-१३, सा० ९२-१४, साबे० ३१-६, सासी० ४९-९—
१. साबे० चित । २. दा० मोत्यां (राज० मूल)। ३. दा० तागि । ४. दा० झंटा घणां, नि० झीणीं घणीं । ५. साबे० नहिं टूटै कहूं लागि ।

[६] दा० ३३-६, नि० ३४-६, सा० ६५-५, साबे० ८६-४, सासी० ७६-५, बी० २१—
१. बी० खड़ी (बीभ० खंडै), दा० नि० सा० साबे० सासी० कटै (समानार्थीकरण)। २. बी० जो निरुवारी जाइ । ३. सा० साबे० सासी० मनहिं । ४. बी० का पंडित की पोथियां । ५. सा० साबे० सासी० भरि ।

सोई आखर सोइ बैंन[१], जन जू जू बाचवंत[२] ।
कोई एक मेलै लवनि, अमीं रसाइंन हंत[३] ॥७॥

एक सबद मैं सब कहा[१], सब ही अरथ[२] बिचार ।
भजिए निरगुन ब्रह्म कौं,[३] तजिए बिखै बिकार ॥८॥

(२६) मन कौ अंग

भगति[१] दुवारा सांकरा[२], राई दसएं भाइ ।
मन तौ मैंगल[३] होइ रहा, क्यूंकरि सकै समाइ[४] ॥१॥

काया कजरी बन अहै, मन कुंजर[१] मैंमंत[२] ।
अंकुस[३] ग्यांन रतन है, खेवट बिरला संत[४] ॥२॥[५]

पांनीं हू तैं[१] पातरा, धूंवां हू तैं[२] भींन ।
पवनां बेगि उतावला, सो दोस्त कबीरै[३] कींन ॥३॥

तीन लोक चोरी भई, सब का सरबस लीन्ह[१] ।
बिना मूंड़[२] का चोरवा, परा न काहू चीन्हि ॥४॥

---

[७] दा० ३३-७, नि० ३४-८, सा० ६५-२२, सासी० ७६-२०, स० ६-१ तथा २३-१, गुग्रा० १४७-८—
१. सासी० भनै। २. दा२ जन जू जुवा चुवंत, नि० जग्ग जू जवा चवोत, सा० जन जो बैजोवंत (उर्दू मूल), सासी० सोई जन जीवंत (दा० स० तथा गुग्रा० में 'बाचवंत' पाठ है जो 'बाचंत' (=पढ़ना) का परिवर्तित रूप ज्ञात होता है।)। ३. दा२ दा३ गुग्रा० स० कोई एक मेलै केलवणि, अमीं रसाइन हुंत; नि० कोई एक मेलै केवर्णी, अमीं रसाइंग होत; सा० कोई एक मिलै कवलनी, अमी महारस हंत, सासी० अकिलमंद कोइ कोइ मिलै, अमि महारसहिं पिवंत।

[८] नि० ३४-७, सा० ६५-७, साबे० ६८-५, सासी० ७६-१, गुग्रा० ८-३६—
१. गुग्रा० ताकौं एकै सबद मैं। २. नि० अरघ। ३. गुग्रा० भजिए पूरन ब्रह्म कौं, सासी० भजिए निस दिन नाम को।

[१] दा० १२-२६, नि० १७-३४, सा० १५-२३, साबे० १२-२७, सासी० १२-१६, गु० ५८, गुग्रा० १००-३—
१. गु० मुकति। २. गु० संकुरा, दा० नि० गु० संकड़ा। ३. नि० मन ऐरापति, सा० मन अहरापति, साबे० मन ऐरावत। ४. गु० निकसी किउ कै जाइ, सा० साबे० कैसे होय समाय, सासी० कैसे आवै जाइ।

[२] नि० १७-३३ तथा ५०-१०३, सा० ३१-४२, साबे० ७१-५२, सासी० २९-७३, गु० २२४—
१. गु० कुंचरु। २. सा० साबे० सासी० महमंत। ३. गु० अंकसु (उर्दू मूल), नि० (१७-३३) खेवट। ४. नि० कोई समझै (५०-१०३ में 'देसी') साधू संत, सा० साबे० फेरै बिरला संत, सासी० फेरै साधू संत। ५. याज्ञिक-संग्रह की पोथी में यह साखी लालदास की रचना के रूप में मिलती है, तुल० राग दीपग: लाल जी काया कजली बन है, यामैं मन हसती मैमंत। आंकस गुरु का सबद है, मोड़ग कोई संत। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह कबीर की रचना सिद्ध होती है। अन्य साखियों की भाँति यह साखी भी लालदास के नाम भूल से चल पड़ी है।

[३] दा० १३-१२, नि० १७-१६, सा० ३२-७, साबे० ७१-४६, सासी० २७-४७, बी० २११—
१. बी० पानी ते अति। २. बी० धूंवा ते अति। ३. बी० कबीर न।

[४] बी० १२८, सा० ३१-५१, साबे० ७१-१०, सासी० २९-७७—
१. सा० साबे० सासी० सब का धन हरि लीन्ह। २. सा० साबे० सासी० सीस।

मनां मनोरथ छांड़ि दै, तेरा किया न होइ ।
पांनीं मैं घी नीकसै, तौ खा[1]खाइ न कोइ ॥५॥
मन गोरख मन गोबिंद[1], मन ही औघड़ होइ[2] ।
जौ मन राखै जतन करि, तौ आपैं करता सोइ[3] ॥६॥
काया देवल मन धजा, बिखै लहरि फहराइ ।
मन चाले[1] देवल चलै, ताका सरबस जाइ ॥७॥
मन जांनैं सब बात, जांनि बूझि[1] औगुन करै ।
काहे की कुसलात, कर दीपक[2] कूंवै परै ॥८॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीति[1] ।
कहै कबीर हरि[2] पाइए[3], मन ही की परतीति ॥९॥
कबीर सेरी[1] सांकरी[2], चंचल मनुवां चोर ।
गुन गावै लैलीन होइ, कछु इक मन मैं और ॥१०॥
कबीर मारूं मन कौं[1], टूक टूक होइ जाइ ।
बिख की क्यारी बोइ करि,[2] लुनत कहा पछताइ ॥११॥
मनुवां तौ अंतरि[1] बसा, बहुतक झींनां होइ ।
अमरलोक[2] सचु[3] पाइया, कबहुं न न्यारा होइ ॥१२॥

---

[५] दा० १३-२९, नि० १७-३६, सा० ३१-६२, साबे० ७१-६९, सासी० २९-३९, स० ४६-२—
१. सा० सासी० रूखा, साबे० सूखा ।

[६] दा० १३-१०, नि० १७-१३, सा० ३१-१६, साबे० ७१-२५, सासी० २९-२३, गुग्रा० १००-१७—
१. नि० मन गोरख गोबिंदह । २. नि० जोइ, सा० सासी० सोय । ३. नि० सा० साबे० सासी० होइ ।

[७] दा० १३-२८, नि० १७-३५, सा० ३१-५८, साबे० ७१-५४, सासी० २९-७४, गुग्रा० ११०-३३—
१. दा० १ गुण० चाल्यां, दा२ चलतां ।

[८] दा० १३-७, नि० १७-६, सा० ३१-१०, साबे० ७३-६३, सासी० २९-४२, गु० २१६—
१. गु० जानत ही । २. गु० हाथ दीप ।

[९] सा० ३१-४७, साबे० ७१-६५, सासी० २९-३०, गुग्रा० १००-२२—
१. गुग्रा० मन हारे मन हारिए, मन जीते मन जीति । २. साबे० पिउ, सासी० गुरु । ३. गुग्रा० परम तत्त हू पाइए ।

[१०] दा० १३-४, नि० १७-३, सा० ३१-८, साबे० ७१-२१, सासी० २९-८—
१. साबे० सीढ़ी । २. दा२ संकड़ी ।

[११] दा० १३-५, नि० १७-४, सा० ३१-७, साबे० ७१-३, सासी० २९-२०—
१. सा० साबे० सासी० मन को मारूं पटकि के । २. नि० बाहि करि । ३. सा० साबे० सासी० लुनता क्यों ।

[१२] दा० १३-१४, नि० १७-१७, सा० ३२-१०, साबे० ७१-७४, सासी० २९-४०—
१. दा० अघर । २. दा० नि० आलोकत । ३. सा० साबे० सासी० सुचि (उर्दू मूल) ।

पावक रूपी रांम[१] है, घटि घटि रहा समाइ।
चित चकमक लागै[२] नहीं, धूंवां होइ होइ जाइ ॥१३॥

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नांहि।
घनीं सहैगा[१] सासनां, जम की दरगह मांहि ॥१४॥

कोटि करम पल मैं करै[१], यहु मन बिखिया स्वादि।
सतगुर सबद न मांनही, जनम गंवाया बादि ॥१५॥

[१]मैंमंता मन मारि रे[२], घटही मांहैं घेरि।
जबहीं चालै पीठि दै, आंकुस दै दै फेरि ॥१६॥

मैंमंता मन मारि रे[१], नन्हा करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, पदुम[२] झलक्कै सीसि ॥१७॥

कागद केरी नाव री, पांनीं केरी[१] गंग।
कहै कबीर कैसै तिरूं, पंच कुसंगी संग ॥१८॥

---

[१३] दा० २९-१९, नि० ७-२०, सा० ६०-१५, साबे० १४-५२ तथा ३३-४४, सासी० १६-६३—
१. साबे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव)। २. नि० साबे० सासी० चहुंटै। यह साखी सा० में ८७-७ पर, साबे० में ४०-११ पर और सासी० में ४१-८ पर पुनः मिलती है जिनका पाठ है : पावक रूपी राम है (साबे० सासी० सांइयां), सब घट रहा समाइ। चित चकमक लागै नहीं तातें बुझि बुझि जाइ॥ इस पुनरावृत्ति से उक्त तीनों प्रतियों के संकीर्ण-संबंध पर प्रकाश पड़ता है (दे० भूमिका)।

[१४] दा० १३-१७, नि० १७-२०, सा० ३१-२५, साबे० ७१-३२, सासी० २९-४—
१. नि० सहैलौ (राज० मूल)।

[१५] दा० १३-१८, नि० १७-२१, सा० ३१-२३, साबे० ७१-३१, सासी० २९-६५—
१. नि० सा० साबे० सासी० करै पलक में।

[१६] दा० १३-१९, नि० १७-२३, सा० ३१-२७ तथा १०१-४. साबे० ७१-४९, सासी० २९-४३ तथा ४४—
१. सा० (३१-२७) साबे० सासी० (२९-४३) महमंत। २. सा० (१०१-४) सासी० (२९-४४) मन मनसा को मारि ले। सा० तथा सासी० में एक ही प्रकार की पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है।

[१७] दा० १३-२० तथा ५२-४ (दो बार), नि० ५७-७, सा० १०१-४, साबे० ७१-५०, सासी० २९-४५—
१. दा० (५२-४) नि० इस मन को मैदा करौं, सा० साबे० सासी० मन मनसा को मारि करि। २. दा० ब्रह्म। याज्ञिक-संग्रह की ३४६-५५ संख्यक पोथी में यह साखी लालदास के नाम से मिलती है, वहाँ इसका पाठ है : लाल जी मैंमंता मन मारिए, और नहनां करिके पीस। जब सुख पावै सुंदरी, पदम झलकै सीस॥ किन्तु दा० नि० सा० साबे० सासी० में समान रूप से मिलने के कारण यह साखी कबीर की ही सिद्ध होती है, लालदास के नाम पर यह संभवतः ग़लती से लिख उठी है।

[१८] दा० १३-२१, नि० १७-२४, सा० ३१-२८, साबे० ७१-३३, सासी० २९-६६—
१. नि० ही की।

कबीर मन पंखी भया[१], उड़ि कै चढ़ा अकासि[२] ।
ऊंहां तैं फुनि[३] गिरि पड़ा, मन माया कै पासि ॥१९॥
काया कसौं[१] कमांन ज्यौं, पंच तत्त करि बांन[२] ।
मारौ तौ मन मिरिग कौं[३], नहितर[४] मिथ्या जांन[५] ॥२०॥
मेरे मन मैं परि गई, असी एक दरार ।
फाटा फटिक पखांन ज्यौं, मिला न दूजी बार ॥२१॥
मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक ।
जैसै[१] दूध तिवास का, ऊकटि[२] हूवा आक ॥२२॥
मनकै मतै न चालिए, छांड़ि जीव की बांनि[१] ।
ताकूं केरा तार ज्यौं[२], उलटि अपूठा आंनि ॥२३॥

(३०) बिखै बिकार कौ अंग

परनारी कौ राचनौं[१], जस[२] लहसुन[३] की खांनि ।
कोनैं[४] बैठे खाइए[५], परगट होइ निदांनि[६] ॥१॥

---

[१९] दा० १३-२५, नि० १७-३१, सा० ३१-३९ तथा ६१-७७, साबे० ७१-३५ तथा ४७-३६, सासी० २९-२७ तथा ६-७६—
१. सा० साबे० सासी० मनुवा तो पंछी भया। २. दा० बहुतक चढ़्यो अकास, नि० चारि चढ़्या आकास। ३. नि० सा० साबे० सासी० ऊपर ही ते। तुल० सा० ६१-७७, साबे० ४७-३६ तथा सासी० ६-७६ : मेरा मन पंछी भया, उड़ि के चढ़ा अकास। बैकुंठहि खाली पड़ा, साहिब संतों पास॥ तीनों में एकही साखी की पुनरावृत्ति तथा पाठ-साम्य से तीनों का संकीर्ण-संबंध ज्ञात होता है।

[२०] दा० १३-३०, नि० १७-३७, सा० ३१-५२, साबे० ७१-५५, सासी० २९-७५—
१. दा० नि० कसूं। २. नि० तांणि (उर्दू मूल)। ३. नि० सा० सासी० मिरगला। ४. दा० नहिं तौ, साबे० नातरु।

[२१] दा० ३७-१, नि० ३९-१०, सा० ७१-१६, सासी० २९-१६, स० ११-१, गुग० १०६-२४—

[२२] दा० ३७-२, नि० ३९-१०, सा० ७१-१७, सासी० २९-१७, स० ११-२—
१. दा० नि० जौ परि। २. सा० सासी० उलटि।

[२३] दा० १९-१, नि० १७-१, सा० ३१-१, सासी० २९-१६, गुग० १००-५—
१. नि० छांड़ीजै या बांनि। २. दा३ ताकूं केरा सूत ज्यूं, नि० सा० सासी० कतवारी के तार (सासी० सूत) ज्यौं। तुल० गोरखबानी (सम्मेलन, प्रयाग) सबदी २३४ : अवधू यौ मन जात है, याही तें सब जांणि। मन मकड़ी का ताग ज्यूं, उलटि अपूठै आंणि॥ स्पष्ट है कि कबीर की साखी के पाठ की तुलना में इस सबदी का पाठ परवर्ती है।

[१] दा० २०-६, नि० २१-५०, सा० ४३-१२, साबे० ७३-१०, सासी० ३१-३६, गु० १७, स० ११२-११, गुग० ११०-१८—
१. दा३ नारी केरै राचणौं, नि० परनारी प्रतखि बुरी, गु० कबीर साकतु ऐसा है। २. दा१ दा२ नि० स० गुग० जिसी। ३. गु० लसन, दा० नि० स० गुग० ल्हसण। ४. दा० नि० स० गुग० खूंणैं (राज० प्रभाव)। ५. दा० नि० स० गुग० बैसि र खाइए, सा० साबे० बैठे खाइए, सा० साबे० बैठि के खाइए। ६. दा१ नि० दिवांनि (उर्दू मूल)।

कांमिनि काली नागिनीं[१], तीनिउं लोक मंझारि ।
रांम[२] सनेही ऊबरै, बिखई खाए झारि ॥२॥
परनारी परतखि छुरी,[१] बिरला बांचै कोइ ।
नां ऊ पेट संचारिए, जौ सोने की होइ[२] ॥३॥
नारी केरै राचनैं[१], औगुन है[२] गुन नांहि ।
खार समुंद मैं माछली[३], केती[४] बहि बहि जांहि ॥४॥
नर नारी सब नरक हैं, जब लगि देह सकांम ।
कहै कबीर ते रांम के[१], जे सुमिरैं निहकांम ॥५॥
नारी सेती नेह, बुधि बिबेक[१] सब ही हरै[२] ।
काइं[३] गंवावै देह, कारिज कोई नां सरै ॥६॥
नारि नसावै तीनि गुन[१], जौ नर पासैं होइ ।
भगति मुकुति निज ग्यांन मैं[२], पैसि[३] न सकई कोइ ॥७॥
पासि बिनंठा कापड़ा[१], कदे[२] सुरंग न होइ ।
कबीर त्यागा ग्यांन करि, कनक कांमिनीं दोइ ॥८॥

---

[२] दा० २०-१, नि० २१-५, सा० ५४३-३, साबे० ७३-३, सासी० ३१-२८, स० ११२-१९, गुशा० ११०-८—

१. स० कांमनि मींनीं खांणि की । २. साबे० सासी० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[३] दा० २०-४, नि० २१-५१, सा० ४३-१०, साबे० ७३-९, सासी० ३१-३४, स० ११२-२०, गुशा० ११२-१५—

१. दा० स० गुण० परनारी पर सुंदरी । सा० साबे० सासी० परनारी पैनी छुरी । २. दा० नि० गु० खातां मीठी खांड सी, अंतकालि बिख होइ; साबे० ना वह पेट संचारिए, सर्ब सोन की होय ।

[४] दा० २०-५, नि० २१-१४, सा० ४३-१८, साबे० ७३-११, सासी० ३२-२४, स० ११२-२१, गुशा० ११०-१७—

१. दा१ दा२ साबे० गुशा० परनारी के राचणैं । २. नि० छै (राजस्थानी मूल) । ३. दा० नि० स० गुशा० मंछला । ४. दा० नि० स० गुशा० केता ।

[५] दा० २०-७, नि० २१-१५, सा० ४३-२०, साबे० ३४-३, सासी० १३-१२१, स० ११२-९, गुशा० ११०-३६—

१. साबे० सासी० कहै कबीर सो पीव को (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[६] दा० २०-८, नि० २१-१६, सा० ४३-२३, साबे० ७३-४८, सासी० ३१-२७, स० ११२-१०, गुशा० ११०-१०—

१. दा२ बमेक । ३. दा२ हड़ै (उर्दू मूल) । ३. सा० साबे० सासी० कहा ।

[७] दा० २०-१०, नि० २१-१७, सा० ४३-२४, साबे० ७३-२१, भासी० ३१-१४, स० ११२-१२, गुशा० ११०-१२—

१. दा१ दा२ सुख । २. सा० साबे० सासी० घ्यांन में । ३. सा० साबे० सासी० पैठ ।

[८] दा० ३७-४, नि० ३९-१, सा० ७१-१, साबे० ५२-२, सासी० ३१-५७, स० ११-३,, गुशा० १०६-३—

१. सा० कपास अनूठा कापड़ा, साबे० पास न जाके कापड़ा, सासी० कपास बिनूठा कापड़ा । २. साबे० कबी ।

एक कनक अरु कांमिनीं, बिख फल किया[1] उपाइ।
देखें[2] ही तैं बिख चढ़ै, खाए तैं[3] मरि जाइ ॥९॥

एक कनक अरु कांमिनीं, दोइ अगिन की झाल।
देखें[1] ही तैं[2] परजरै, परसां[3] ह्वै पैमाल ॥१०॥

नारि पराई आपनीं, भुगतें नरकहिं जाइ।
आगि आगि सब एक है[2], तामैं हाथ न बाहि[3] ॥११॥[4]

नारी केरी प्रीति सौं[1], केते गए गडंत।
केते अजहूं[2] जात हैं[3], नरकि हसंत हसंत ॥१२॥

अंधा नर चेतै नहीं[1], कटै[2] न संसै सूल।
और[3] गुनह (=गुनाह ?) हरि[4] बकसिहै[5], कांमीं डाल न मूल ॥१३॥

भगति बिगाड़ी कांमियां, इंद्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ तैं, जनम गंवाया बादि ॥१४॥

कबीर कहता जात हूं[1], चेतै[2] नहीं गंवार।
बैरागी गिरही कहा, कांमीं वार न पार ॥१५॥

नारी कुंड नरक का[1], बिरला थांमैं बागि।
कोइ साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लागि ॥१६॥

---

[९] दा० २०-११, नि० २१-३३, सा० ४३-४६, सावे० ७२-२६, सासी० ३१-४, स० ११२-६, गुरा० १०८-१—
१. सावे० सासी० लिया (उर्दू मूल)। २. दा० नि० देख्यां, सा० सावे० सासी० देखत। ३. सा० सावे० सासी० चाखत ही।

[१०] दा० २०-१२, सा० ४२-४५, सावे० ७२-३५, सासी० ३१-३, गुरा० १०८-२—
१. दा० देख्यां (राज०)। २. दा० तन। ३. (गुरा० परसत,) सा० सावे० सासी० परसि।

[११] दा० २०-२४, नि० २१-३१, सा० ४३-६३, सावे० ७३-१४, सासी० ३१-९, स० ११२-१३, गुरा० ११२-१६—
१. दा० नि० गुरा० भुगत्यां। २. सा० सावे० सासी० एक सी। ३. सा० सावे० सासी० हाथ दिए जरि जाय (समानार्थीकरण)। ४. नि० में उक्त साखी की दोनों पंक्तियाँ परस्पर स्थानांतरित।

[१२] दा० २०-१३ नि० २१-२०, सा० ४३-२६, सावे० ७३-२९, सासी० ३१-४८, स० १२-६—
१. दा० नि० सा० स० कबीर भग की प्रीतड़ी। २. सा० सावे० सासी० औरौं। ३. दा० नि० जाइसी (राज०)।

[१३] दा० २०-१७, नि० २१-४०, सा० ४३-५३, सावे० ५३-७, सासी० ६२-२, स० ११२-१४—
१. सा० सावे० सासी० कामी कबहुं न हरि (सावे० सासी० गुरु) भजै। २. सा० सावे० सासी० मिटै। ३. सा० गुनन। ४. सा० सावे० सासी० सब। ५. दा० नि० स० बकसिसी (राज० मूल), सावे० बकसिहौं।

[१४] दा० २०-१८, नि० २१-४१, सा० ४३-५५, सावे० ५३-५, सासी० ६२-११, स० ११२-१६—

[१५] दा० २०-२५, नि० २१-४५, सा० ४३-५९, सावे० ५३-१५, सासी० ६२-१५, स० ११२-१५—
१. सा० सावे० सासी० कहता हूं कहि जात हूं। २. नि० सावे० समझै, सासी० मानै।

[१६] दा० २०-१५, नि० २१-२३, सा० ४३-३६, सासी० ३१-२३, स० ११२-३—
१. सा० सासी० नारी कुंडी नरक की।

सुंदरि तैं सूली भली, बिरला बांचै कोइ ।
लोह निहाला आगि ज्यूं[1], जरि बरि कोइला होइ ॥१७॥

कांमिनि सुंदर सर्पिनीं[1], जो छेड़ै[2] तिहि[3] खाइ ।
जे हरि[4] चरनां राचिया, तिनकै निकटि न जाइ ॥१८॥

पर नारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता[1] खाहि ।
दिवस चारि सरसा रहै[2], अंति समूला जाहि ॥१९॥

जोरू जूठनि[1] जगत की, भले बुरे का बीच ।
उत्तिम ते अलगा रहैं, मिलि खेलैं[2] ते नीच ॥२०॥

कांमीं अमीं न भावई[1], बिख ही कौं ले सोधि[2] ।
कुबुधि न जाई[3] जीव की, भावै ज्यौं परमोधि[4] ॥२१॥

कांम[1] करम की केंचुली, पहिरि हुआ नर नाग ।
सिर फोरै सूझै नहीं, कोइ आगिला अभाग[2] ॥२२॥

कांमीं लज्जा नां करै, मन मांहीं अहलाद ।
नींद न मांगै सांथरा, भूख न मांगै स्वाद ॥२३॥

ग्यांनीं तौ नीडर[1] भया, मांनैं नांहीं संक ।
इंद्री केरै बसि पड़ा, भूंजै[2] बिखै[3] निसंक ॥२४॥

---

[१७] दा० २०-१६, नि० २१-२४, सा० ४३-३७, सासी० ३१-५०, स० ११२-१९—
१. सा० सासी० लोह लुहालै अगिनि में ।

[१८] दा० २०-२, नि० २१-६, सा० ४३-५, साबे० ७३-४, सासी० ३१-२९, गुरा० ११०-९—
१. दा० नि० कांमणि मींनीं खांणि की, सा० कामिनि मीठी खांड सी, गुरा० कांमनि मींनीं खांन की । २. दा० नि० जे छेड़ौ । ३. दा० नि० तौ । ४. सासी० गुरु (सांप्रदायिक प्रभाव) ।

[१९] दा० २०-३, नि० २१-१०, सा० ४३-९, सासी० ३१-३७, स० ११२-१८, गुरा० ११०-१६—
१. सासी० बैठत (उर्दू मूल) । २. स० संसार है ।

[२०] दा० २०-१४, नि० २१-२२, सा० ४३-३५, सासी० ३१-४९, स० ११२-२, गुरा० ११०-१३—
१. नि० जूंठ । २. दा० गुरा० निकटि रहैं ।

[२१] दा० २०-१९, नि० २१-४६, सा० ४२-५८, साबे० ५३-१४, सासी० ६२-७—
१. नि० कांमी कूं इंम्रत नहीं भावै । २. सा० साबे० सासी० बिख को लेवै सोघ । ३. सा० साबे० सासी० भाजै । ४. दा० भावै स्यंभ रहौ प्रमोधि ।

[२२] दा० २०-२१, नि० २१-४७, सा० ६३-६०, साबे० ५३-१६, सासी० ६२-८—
१. दा० बिषै, सासी० कामी । २. नि० सा० साबे० सासी० पूरबला भाग ।

[२३] दा० २०-२३, नि० २१-४३, सा० ४३-५६, साबे० ५३-६, सासी० ६२-५—

[२४] दा० २०-२६, नि० २८-५, सा० ४३ ५१, साबे० २७-४ तथा ५३-१२, सासी० ३५-२८ तथा २६-६—
१. साबे० सासी० निरभय । २. दा० भंचै (उर्दू मूल), नि० सा० साबे० सासी० भुगतै । ३. सा० साबे० सासी० नरक । साबे० तथा सासी० में पुनरावृत्ति मिलने से दोनों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध होता है ।

ग्यांनीं मूल गंवाइया, आपै भया करता ।
तातैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता[1] ।।२५।।

(३१) माया कौ अंग

कबीर माया पापिनीं, फंध लै बैठी हाटि ।[1]
सब जग फंदै फंदिया[2], गया कबीरा काटि[3] ।।१।।
माया की[1] झलि[2] जग जरै[3], कनक कांमिनीं लागि ।
कहु धौं किहि बिधि राखिए[4], रुई लपेटी[5] आगि ।।२।।
माया तजी त[1] क्या भया, जौ[2] मांन तजा[2] नहिं जाइ ।
मांनि बड़े[3] मुनिवर[4] गिले[5], मांन सभनि कौं[6] खाइ ।।३।।
कबीर माया मोहनीं[1], मोहै जांन सुजांन ।
भागां हूं छांड़ै नहीं[2], भरि भरि मारै बांन ।।४।।
माया दासी संत की[1], ऊभी देइ असीस ।
बिलसी अरु लातां[2] छड़ी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ।।५।।
कबीर माया पापिनीं, लालैं लाया[1] लोग ।
पूरी किनहुं न भोगिया, इनका इहै बिजोग[2] ।।६।।

---

[२५] दा० २०-२७, नि० २८-३, साबे० २७-५, सासी० ३५-२९—
१. साबे० सासी० जो सदा रहै डरता

[१] दा० १६-२, नि० १९-२, सा० ३७-२, साबे० ७२-४, सासी० ३०-२, स० ११६-६, बी० १४२, गुरा० १०५-६७—
१. बी० माया जग सांपिनि भई, बिख लै बैठी पास । २. दा१ दा२ नि० सा० साबे० सासी० गुरा० सब जग तौ फंदे पड़्या । ३. बी० चले कबीर उदास ।

[२] दा० १६-३२, नि० १९-४२, सा० ३७-३७, साबे० ७२-२५, बी० १४१, बीभ० १४०—
१. सा० के । २. सा० साबे० भी झक (बी० में अन्य पाठातंर 'झल', नागरी मूल)। ३. दा० नि० जल्या । ४. सा० कहो संतो किमि राखई । ५. दा० नि० पलेटी (पंजाबी मूल)। तुल० सासी० १७-१०५ : मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकौ तौ नीकसु भागि । कब लग राखौं राम जी, रुई लपेटी आगि ॥

[३] दा० १६-१७, नि० १९-२२, सा० ३८-५, साबे० ५७-२, सासी० ६९-९, गु० १५६, बी० १४०—
१. बी० माया त्याग । २. दा० नि० तजी (उर्दू मूल)। ३. गु० मान मुनी (पुन०), सा० मान बड़ी (उर्दू मूल)। नि० माया तो, बी० जेहि मानै । ४. दा० नि० मुनिवर । ५. नि० गिली (उर्दू मूल), बी० ठगे, गु० गले (उर्दू मूल)। ६. गु० सभै कउ ।

[४] दा० १६-६, नि० १९-७, सा० ३७-९, साबे० ७२-१६, सासी० ३०-६, स० ११६-९, गुरा० १०५-४७—
१. नि० स० पापणीं । २. दा१ सा० साबे० सासी० छूटै नहीं ।

[५] दा० १६-१०, नि० सा० ३७-१५, साबे० ७२-२१, सासी० ३०-२६, स० २८-१, गुरा० १०५-३३—
१. सा० सासी० साधु की । २. साबे० लातों, सासी० लातन ।

[६] दा० १६-३, नि० १९-३, सा० ३७-३, साबे० ७२-५, सासी० ३०-३, स० ११६-७—
१. सासी० ताही लाए, सासी० लोभ भुलाया । २. दा३ नि० संजोग ।

माया मीठी जगत मैं[1], जैसी मीठी खांड ।
सतगुर की किरपा भई, नहितर करती[2] भांड ।।७।।
कबीर माया डाकिनीं, सब काहू[1] कौं खाइ ।
दांत उपारूं पापिनीं, जे संतां नेड़ी[2] जाइ ।।८।।
सांकर[1] हू तैं सबल है, माया इंहि संसार ।
ते क्यूं छूटे बापुरे, जिनि बांधे सिरजनहार[2] ।।९।।
बाड़ चढ़ंती बेलरी[1], उरझी आसा फंध ।
टूटै पर छूटै[2] नहीं, भई जो बाचाबंध ।।१०।।
कबीर माया पापिनीं, हरि सौं करै हरांम ।
मुख कड़ियाली कुमति[1] की, कहन न देई रांम ।।११।।
आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि[1] जांहि ।
धन संचैं तेई मुए[2], सो उबरे जे खांहि[3] ।।१२।।
त्रिस्नां सींचीं नां बुझै[1], दिन दिन बढ़ती जाइ ।
जावासा का रूख ज्यौं, घन मेहां कुम्हिलाइ ।।१३।।
कबीर जग[1] की को कहै[2], भौजलि[3] बूड़ैं दास ।
पारब्रह्म[4] पति छांड़ि करि, करैं मांन[5] की आस ।।१४।।

---

[७] दा० १६-७, नि० १९-९, सा० ३७-१२, साबे० ७२-१६, सासी० ३०-७, स० ११६-१२—
१. दा० सा० साबे० सासी० कबीर माया मोहिनीं (पुनरावृत्ति; तुल० पीछे पाँचवीं साखी का प्रथम चरण जिसका पाठ है : कबीर माया मोहनी, मोहै जांन सुजांन)। २. नि० होते।

[८] दा० १६-२१, नि० १९-१२, सा० ३७-१४, साबे० ७२-२०, सासी० ३०-१० सासी० ११६-१३—
१. दा० किसहीं। २. सा० संतौ नियरे, साबे० संतनि ढिग।

[९] दा० १६-२५, नि० १९-२४, सा० ३७-२८, सासी० ३०-४०, स० ११६-१०—
१. दा१ दा२ संकल, दा३ नि० सांकुल। २. नि० सा० सासी० अपने बल छूटै नहीं, छोड़ै सिरजनहार।

[१०] दा० १६-२६, नि० १९-२८, सा० ३६-१८, सासी० ६८-१७, स० ११६-११—
१. दा० बेलि ज्यूं। २. सा० सासी० जूटै।

[११] दा० १६-४, नि० १९-४, सा० ३७-४, सासी० ३०-४, स० ११६-८—
१. सा० सासी० कुबुधि।

[१२] दा० १६-१२, नि० १९-१४, सा० ३६-३, साबे० ५९-१, सासी० ६८-४, गुग्रा० ८३-५—
१. साबे० मन (कैथी मूल)। २. सा० सासी० धन संचैं ते भी मरैं, दा१ गुग्रा० सोइ मूए धन संचते। ३. सा० सासी० उबरे जो धन (पुन०) खांहि।

[१३] दा० १६-१५, नि० १९-१७, सा० ४५-६, साबे० ५५-३, सासी० ६८-२४, गुग्रा० ८३-६—
१. नि० घटै।

[१४] दा० १६-१६, नि० १९-२०, सा० ३७-२५, साबे० ५९-८, सासी० ६८-१८, गुग्रा० १२०-२०—
१. दा३ जुरा (उर्दू मूल)। २. दा० सा० सासी० कह कहूं। ३. सा० जो भल। ४. साबे० सासी० सतगुरु सम (सांप्रदायिक मूल)। ५. दा३ नि० सिख, सा० साबे० सासी० मनुष।

रज बीरज की कोथली[१], तापर साजा रूप ।
एक नांम[२] बिनु बूड़िहै[३], कनक कांमिनीं कूप ॥१५॥

जांनौं जे हरि कौं भजौं[१], मो मनि मोटी आस ।
हरि बिचि घालै[२] अंतरा, माया बड़ी बिसास[३] ॥१६॥

कबीर माया मोहिनीं, जब जगु घाला घांनि ।
कोई एक[१] जन ऊबरै, जिनि तोड़ी[२] कुल की कांनि ॥१७॥

कबीर माया पापिनीं[१], मांगी मिलै न हाथि ।
मनहिं[२] उतारी झूठ करि[३], तब[४] लागी डोलै साथि ॥१८॥

कबीर माया मोह की[१], भइ अंधियारी[२] लोइ ।
जे सूते[३] ते मुसि लिए[४], रहे बस्तु कौं रोइ ॥१९॥

कबीर सो धन संचिए, जो आगां कौं[१] होइ ।
मूड़[२] चढ़ाए पोटली[३], लै जात न देखा कोइ ॥२०॥

माया[१] तरवर त्रिबिध का, साखा[२] बिखै[३] संताप ।
सीतलता सुपिनैं नहीं[४], फल फीका तन ताप ॥२१॥

रांमहिं[१] थोरा[२] जांनि करि, दुनिया आगैं दीन ।
जीवां[३] कौं राजा कहै, माया[४] के आधीन ॥२२॥

---

[१५] दा० १६-१९, नि० २१-३६, सा० ४१-३८, साबे० ७२-३८, सासी० ३१-५१, गुण० १०८-२२—
१. दा१ दा२ गुण० कली, सा० साबे० सासी० कोठरी। २. गुण० रांम। ३. सा० सासी० बूड़सी (राज० मूल)।

[१६] दा० १६-५, नि० १९-६, सा० ३७-८, साबे० ७२-२६, सासी० ३०-३३—
१. नि० सा० साबे० सासी० मैं जानूं हरि सूं मिलूं। २. नि० पाड़ै, सा० साबे० सासी० डारै। ३. साबे० सासी० पिचास, नि० जपास।

[१७] दा० १६-८, नि० १९-८, सा० ३७-१०, साबे० ७२-१७, सासी० ३०-८—
१. नि० साधू। २. सा० साबे० सासी० में 'जिनि' शब्द नहीं है।

[१८] दा० १६-२, नि० १९-५, सा० ३७-५, साबे० ७२-२, सासी० ३०-१—
१. दा१ सासी० मोहिनी। २. सा० सासी० मना। ३. नि० मनहि उतारै झूट दै। ४. सा० साबे० सासी० में 'तब' शब्द नहीं है।

[१९] दा० १६-२४, नि० १९-११, सा० ३७-११, साबे० ७२-१८, सासी० २०-९—
१. नि० सा० साबे० सासी० मोहनी। २. दा१ दा२ अंधारी। ३. साबे० सासी० सोए। ४. साबे० सासी० मुसि गए।

[२०] दा० १६-१३, नि० १९-१५, सा० ३७-५७, साबे० ६०-१, तथा ७२-१४, सासी० ६८-२१—
१. सा० साबे० सासी० आगे को। २. सा० साबे० सीस। ३. सा० साबे० सासी० गाठरी।

[२१] दा० १६-२०, नि० १९-१९, सा० ३७-२४, साबे० ७२-३७, सासी० ३०-३१—
१. दा२ कबीर। २. साबे० सासी० सोक। ३. दा० नि० सा० सासी० दुख। ४. नि० सीतल छाया गहर फल।

[२२] दा० १६-१८, नि० १९-२५, सा० ३७-२७, साबे० ६०-५, सासी० ३०-३९ तथा ६८-२२—
१. साबे० नामहि (राज० प्रभाव)। २. साबे० सासी० (२) छोटा। ३. साबे० सासी० जीवन। ४. सासी० (२) तृस्ना।

मांन महातम प्रेम रस, गरवातन गुण नेहु[१] ।
ए सबही अहला गए[२], जबहिं कहा कछु देहु ॥२३॥

पूत पियारो पिता कौं[१], गौंहनि[२] लागा धाइ ।
लोभ मिठाई हाथि दै, आपुन गया भुलाइ ॥२४॥

बगुली नीर बिटारिया, सायर[१] चढ़ा कलंक ।
और पंखेरू पी गए[२], हंस न बोरै[३] चंच ॥२५॥

माया हमसौं यौं कहै[१], तू मति[२] देई पूठि[३] ।
और हमारे बसि पड़े[४], गया कबीरा रूठि ॥२६॥

माया मुई न मन मुआ, मरि मरि गया सरीर ।
आसा तृस्नां नां मुई, यौं कहै दास कबीर[१] ॥२७॥

आसा का इंधन करौं, मनसा करौं भभूत ।
जोगी फेरी फिल करौं[१], यौं बिन नांऊं सूत[२] ॥२८॥

(३२) बेसास कौ अंग

कबीर का तूं चिंतवै, का तेरे चिंतें होइ ।[१]
आपन चिंता[२] हरि करै, जो तोहिं चिंति न होइ[३] ॥१॥

---

[२३] दा० ३५-१४, नि० ३७-२८, सा० ४५-३, साबे० ५५-५, सासी० ८-११—
१. सा० साबे० सासी० आव गया आदर गया, नैनन गया सनेह (सा० गया नैन का नेह)। २. नि० कहै कवीर ए सत्र गया, सा० साबे० सासी० यह तीनों अवहीं गए। तुल० लोकप्रचलित दोहा : मान बड़ाई प्रेम रस, गुरुवाई अरु नेह। ए पांचौं तबही गए, जबहिं कहा कछु देहु॥

[२४] दा० ३-३१, नि० १७-३७, सा० ३७-३३, साबे० ५५-९, सासी० ३०-४२—
१. सा० सासी० बाप को। २. साबे० संग रे।

[२५] दा० १६-३०, नि० १९-३९, सा० ३७-२०, सासी० २७-२२, स० ५६-३, गुग्रा० १०५-३५—
१. नि० सरवर। २. सासी० पीबिइया। ३. दा१ दा२ बोवै, दा३ बोलै (उर्दू मूल), गुग्रा० बोवै (नागरी मूल)।

[२६] दा० १६-२९, नि० १९-३०, सा० ३७-२९, सासी० ३०-१५, गुग्रा० १०५-३४—
१. नि० सा० सासी० कबीर माया यूं कहै। २. दा३ जिनि। ३. सा० सासी० पीठि। ४. दा१ दा२ गुग्रा० और हमारै हंम बलू (दा३ नि० हंम बसू)।

[२७] दा० १६-११, नि० १९-१३, सा० ३७-१७, सासी० ३०-२८, गुग्रा० ८३-४—
१. दा० गुग्रा० यौं कहि गया कबीर, सासी० यूं कथि कहै (पुन०) कबीर।

[२८] दा० १३-३, सा० ३६-१०, साबे० ५१-१३, सासी० ६८-११, गुग्रा० ८३-२८—
१. सा० साबे० सासी० जोगी फिरि फेरी करूं। २. सा० साबे० सासी० यौं बनि आवै सूत।

[१] दा० ३५-६, नि० ३७-१६, सा० ६९-८, साबे० २२-१, सासी० २०-९, स० ४६-१, गु० २११, गुग्रा० ८४-३५—
१. दा३ नि० सा० साबे० सासी० कबीर का मैं चितऊं, का मेरै चितए होइ, सासी० कबीर चिंता क्या करूं, चिंता सों क्या होइ, गु० जो मैं चितवउ ना करै (?) किआ मेरे चितवे होइ। २. दा१ दा२, स० गुग्रा० आमन चिंता (नागरी मूल), गु० अपना चितविआ, दा३ जे अनचिंती। ३. गु० जो मेरे चिंति न होइ, दा३ नि० सो मुझै च्यंत न होइ, सा० साबे० सासी० चिंता मोहिं न कोइ।

कबीर भली मधूकरी[१], भांति भांति[२] कौं नाज।
दावा किसही[३] का नहीं, बिन बिल्लाइत बड़ राज[४] ॥२॥
पद गाएं लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास[१]।
सबै पछोड़े थोथरे, एक बिनां बेसास[२] ॥३॥
रचनहार कौं चीन्हि लै, खाबे कौं[२] क्या रोइ।
दिल[३] मंदिर मैं पैठि कै, तांनि पछेवरा[४] सोइ ॥४॥
चिंता छांड़ि[१] अचिंत रहु, सांई है[२] समरत्थ।
पसु पंखेरू जीव जंतु, तिनकी गांठी किसा गरत्थ[३] ॥५॥
संत न बांधै गाठरी[१], पेट समाता[२] लेइ।
आगैं पाछैं हरि खड़ा[३], जब[४] मांगै[५] तब देइ ॥६॥
रांम नांम सौं[१] दिल मिली[२], जम हंम परी बिराइ[३]।[४]
मोहि भरोसा इस्ट का, बंदा नरकि न जाइ ॥७॥

---

[२] दा० ३५-१३, नि० ३७-२७, सा० ६९-२४, साबे० ८४-४९, सासी० २०-२१, स० १२३-१, गु० १६८, गुग्रा० ११५-१२—
१. स० खूब खान है मधुकरी (तुल० २१-३ : खूब खान है खीचरी), दा० गुग्रा० मीठा खांणा मधूकरी, नि० सा० साबे० सासी० सब तें भली मधूकरी। २. गु० नाना बिधि। ३. गु० काहू, नि० सा० साबे० सासी० किसी। ४. गु० बड़ा देसु बड़ राजु, नि० गुग्रा० बिन बिलात बड़ राज, सा० साबे० सासी० बिना बिलाइत राज।

[३] दा० ३५-१९, नि० ३७-३५, सा० ६९-१९, साबे० २२-१२, सासी० २०-१६, स० १२१-१—
१. सा० साबे० सासी० फांस। २. सा० साबे० सासी० बिस्वास।

[४] दा० ३५-३, नि० ३७-४, सा० ६९-२, साबे० ८४-४८, सासी० २०-४, गुग्रा० ८४-२१—
१. दा३ नि० करि। २. सा० साबे० सासी० खाने को। ३. नि० सा० सासी० मन। ४. सा० सासी० पिछौरी, साबे० पिछौरा।

[५] दा० ३५-९, नि० ३७-२२, सा० ६९-१०, साबे० २२-३, सासी० २०-११, गुग्रा० ८४-३६—
१. दा० साबे० गुग्रा० चिंता न करि। २. सा० साबे० सासी० देनहार। ३. दा१ सा० साबे० सासी० तिनकी गांठी किसा ग्रत्थ (नागरी मूल)। सासी० में यह साखी अन्यत्र भी मिलती है, तुल०, सासी० ८०-११ : चिंता मत कर निचिंत रह, पूरनहार समर्थ। जल थल में जो जीव हैं, उनकी गांठि न अर्थ॥

[६] दा० ३५-१०, नि० ३७-२३, सा० ६९-१२, साबे० २२-२, सासी० २०-८, गुग्रा० ८४-३७—
१. साबे० साधू गांठि न बांधई, सा० सासी० हरिजन गांठि न बांधही। २. नि० सा० साबे० सासी० उदर समांनां। ३. दा० सांई सूं सनमुख रहै। ४. दा० गुग्रा० जहां, सासी० जो। ५. दा० गुग्रा० तहां, साबे० सा० सासी० सो।

[७] दा० ३५-११, नि० ३७-२६, सा० २०-७१ तथा ६९-१५, साबे० २२-६ तथा ८४-७० सासी० २०-३, गुग्रा० १४-१५—
१. साबे० सासी० सत्तनाम से (सांप्रदायिक प्रभाव)। २. सा० साबे० सासी० मन मिला। ३. नि० जम बिच परी बिराइ, सा० साबे० सासी० जम से परा दुराव। ४. सा० (१) साबे० (२) जब दिल मिला दयाल सों, फांसी परी बिलाय। सा० तथा साबे० में पाठ की पुनरावृत्ति दोनों में संकीर्ण-संबंध सिद्ध करती है।

भूखा भूखा क्या करै, कहा[1] सुनावै लोग।
भांड़ा गढ़ि जिन मुख दिया[2], सोई पुरवन जोग ॥८॥

चिंतामनि चित[1] मैं बसै, सोई चित मैं आंनि।
बिन चिंता[2] चिंता करै, इहै प्रभू की बांनि[3] ॥९॥

पांडल पंजर[1] मन भंवर, अरथ अनूपम बास।
रांम[2] नांम सींचा अमीं, फल लागा बेसास[3] ॥१०॥

मेरि मिटी मुकता भया, पाया अगम[1] निवास[2]।
अब मेरै दूजा कोइ नहीं, एक तुम्हारी आस ॥११॥

जाके हिरदै[1] हरि बसै, सो जन[2] कलपै काइ।
एकै लहरि समुंद की, दुख दालिद सब जाइ[3] ॥१२॥

गावन ही मैं रोज है[1], रोवन ही मैं राग।
इक बैरागी ग्रिह करै[2], एक ग्रिही बैराग[3] ॥१३॥

गाया तिन[1] पाया नहीं, अनगाया तैं दूरि[2]।
जिन[3] गाया बिसवास गहि[4], तिनसौं रांम हजूरि[5] ॥१४॥

---

[८] दा० ३५-२, नि० ३७-३, सा० ६९-१, सासी० २०-५, गुरा० ८८-२०—
१. नि० क्या रे। २. सा० सासी० भांड़ा घड़िया मुख दिया। 'गुरागंजनामा' में यह साखी नानक की छाप के साथ भी मिलती है, तुल० ८४-३० : नानक चिंता न करि, चिंता उपजै रोग। जिनि ए भाड़े साजिए, सोई पूरण जोग॥

[९] दा० ३५-५, नि० ३७-६, सा० ६९-७, सासी० २०-१०, गुरा० ८४-३४—
१. दा१ दा२ मन। २. सा० बिना प्रेम, सासी० बिना प्रभू। ३. सा० सासी० यह मूरख की बानि॥

[१०] दा० ३५-१० (दा२ में नहीं है), नि० ३७-३७, सा० ६९-१८, साबे० २२-११० सासी० २०-१५—
१. साबे० सासी० पिंजर (उर्दू मूल)। २. साबे० सासी० एक। ३. सा० साबे० सासी, बिस्वास।

[११] दा० ३५-१७, नि० ६४-१३, सा० २०-२५, साबे० ४३-१०, सासी० १४-२९—
१. दा० नि० ब्रह्म। २. दा० नि० बिसास (नागरी मूल)।

[१२] दा० ३५-१८, नि० ३७-३१, सा० ६९-२५, साबे० ८४-१५, सासी २०-२२—
१. दा० दिल में। २. दा० नर। ३. सा० सासी० बहि जाहि।

[१३] दा० ३५-२० नि० ३७-३३, सा० ६९-२१, साबे० २२-१४, सासी० २०-१८—
१. सा० साबे० सासी रोवना। २. सा० साबे० सासी० एक बनही में घर करै। ३. सा० साबे० सासी० एक घर ही बैराग।

[१४] दा० ३५-२१, नि० ३७-३४, सा० ६९-२०, साबे २२-१३, सासी० २०-१७—
१. सा० साबे० सासी० जिन। २. नि० बिन गायां हरि दूरि। ३. नि० ज्यां। ४. दा० सा०
५. दा० तिन रांम रह्या भरपूरि, साबे० सासी० ताके सदा हजूर।

जाकौं जेता निरमया, ताकौं तेता होइ[1]।
राई घटै न तिल बढ़ै, जौ सिर कूटै कोइ ॥१५॥
मांगन मरन समांन है, बिरला बंचै कोइ[1]।
कहै कबीरा रांम सौं[2], मति रे मंगावै मोहिं ॥१६॥

(३३) करनीं कथनीं कौ अंग

कबीर पढ़िबा[1] दूरि करि, पुसतग[2] देहु[3] बहाइ[4]।
बावन अक्खिर[5] सोधि कै, ररै ममैं चित लाइ[6] ॥१॥
मैं जांनौं[1] पढ़िबौ[2] भलो, पढ़िबा तैं[3] भल जोग।
भगति न छांड़ौं रांम की[4], भावै[5] निंदउ लोग ॥२॥
पोथी[1] पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया[2] न कोइ।
एकै आखर प्रेम[3] का, पढ़ै सो पंडित होइ ॥३॥
कथनीं कथी[1] तौ क्या भया[2], जौ करनीं नां ठहराइ।
कालबूत[3] के कोट ज्यौं, देखत ही ढहि[4] जाइ ॥४॥

---

[१५] दा० ३५-८, नि० ३७-११, सा० ६९-९, सासी० ७१-१५, स० ८८-१, गुग्रा० ८४-५—
१. सासी० जाको जितना निर्मान किय, ताको तितना होय, सा० करम करीमा लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय। तुल० दा० ३५-७ : करम करीमां लिखि रह्या, अब कछु लिखा न जाइ। मासा घटै न तिल बधै, जे कोटिक करै उपाइ॥

[१६] दा० ३५-१५, नि० ३७-२९, सा० १०-३७, सासी० ८-२, स० ११९-१, गुग्रा० ११५-१३—
१. सा० सासी० सीख दई मैं तोहिं। २. दा१ नि० कहै कबीर रघुनाथ सूं (दा२ गोबिंद सों), सा० सासी० कहै कबीर सतगुरु सुनो।

[१] दा० १९-२, नि० २४-२०, सा० ४०-३७, साबे० ८३-१२, सासी० ५८-८, स० ८६-६, गु० १७२, गुग्रा० १५७-२—
१. सा० साबे० सासी० पढ़ना, गु० संसा। २. सा० साबे० सासी० पोथी। ३. नि० गु० देह। ४. गु० बिहाइ (उर्दू मूल)। ५. गु० अखर, सा० साबे० सासी० अच्छर। ६. गु० हरि चरनी चितु लाइ, सा० राम नाम लौ लाइ, साबे० सासी० सत्तनाम लौ लाइ (सांप्रदायिक प्रभाव)।

[२] दा० १९-१, नि० २४-१८, सा० ४०-३५, सासी० ५८-१०, गु० ४५, गुग्रा० १५७-१—
१. दा० जान्यूं (उर्दू मूल)। २. गु० पड़िबो (पंजाबी उच्चारण), सा० सासी० पढ़ना (आधुनिक प्रभाव)। ३. गु० पड़िबे सिउ, सा० सासी० पढ़ने ते। ४. दा० सा० गुग्रा० रांम नांम सूं प्रीति करि, नि० रांम नांम गाढ़ौ गही, सासी० सत्तनाम सों प्रीति करि (कबीरपंथी प्रभाव)। ५. दा० नि० गुग्रा० भल भल।

[३] दा० १९-४, नि० २४-२२, सा० ४०-३७, साबे० ८३-७, सासी० ५८-७, स० ८६-७, गुग्रा० १५७-४—
१. दा० पोथा। २. नि० सा० साबे० सासी० हुआ। ३. दा१ दा२ गुग्रा० पीव।

[४] दा० १८-१, नि० २०-१४, सा० ४१-१, साबे० २८-१९, सासी० ५१-१, स० ८६-३, गुग्रा० १५६-११—
१. साबे० कथा, सासी० कथै। २. सा० साबे० सासी० हुआ। ३. सा० सासी० कलाबूत, साबे० कलावंत। ४. दा२ धंसि।

पद गाएं मन हरखिया[1], साखी कहें अनंद ।
जौ तत नांउं न जांनियां[2] गल मैं परिया फंद[3] ॥५॥
रांमहिं रांम पुकारतें[1], जिभ्या परिगौ रौंस[2] ।
सूधा जल[3] पीवै नहीं, खोदि[4] पियन की हौंस ॥६॥
ऊंचे कुल क्या[1] जनमिया, जे करनीं ऊंचि न होइ ।
सोव्रन कलस सुरै भरा[2], साधुन निंदा सोइ ॥७॥
करता दीसै कीरतन, ऊंचा करि करि तूंड[1] ।
जांनैं बूझै कछु नहीं, यौं ही अंधा रूंड[2] ॥८॥
जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै नांहिं ।
मानुख नहीं ते[1] स्वांन गति, बांधे जमपुर जांहिं ॥९॥

(३४) सहज कौ अंग

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
जिंहिं[1] सहजैं बिखया तजै, सहज कहावै[2] सोइ ॥१॥
सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
जिंहिं[1] सहजैं साहिब[2] मिलै, सहज कहावै सोइ ॥२॥
सहजैं सहजैं सब गए, सुत बित कांमिनि कांम[1] ।
एकमेक होइ मिलि रहा, दास कबीरा रांम[2] ॥३॥

---

[५] दा० १८-४, नि० २०-१३, सा० ४०-१२, साबे० ८४-६३, सासी० ३४-१२, स० ८६-१०, गुरा० १५६-८—
१. सा० राम नाम नहिं जानिया। २. सासी० सत्तनाम (सांप्रदायिक प्रभाव) नहिं जानिया।
३. नि० तब लग गल मैं फंद।

[६] सा० ४१-१०, साबे० २८-१३, सासी० ५१-१४, बी० र० सा० ३३—
१. सा० साबे० सासी० पद जोरै साखी कहै। २. सा० साबे० सासी० साधन परि गई रोस।
३. सा० साबे० सासी० काढ़ा। ४. सा० साबे० सासी० काढ़ि।

[७] दा० २५-७, नि० २६-८, सा० ५६-१२, साबे० ३७-१७, सासी० ९-४७, स० २१-१—
१. साबे० कहा, सासी० कह। २ दा० सोवन कलस सुरै भरया, नि० कनक कलस जे बिख भरया, सा० साबे० सासी० कनक कलस मद सों भरा।

[८] दा० १८-५, नि० २०-२०, सा० ४०-१३, साबे० ८४-४६, सासी० ३४-१३, स० ८६-१४—
१. सा० सासी० दंभ। २. सा० सासी० रंभ।

[९] दा० १८-३, नि० २०-१८, सा० ४२-६, साबे० २८-१५, सासी० ५२-९—
१. सा० साबे० सासी० वे।

[१] दा० २१-१, नि० २२-१, सा० ५१-३ साबे० २५-२, सासी० ३६-३, स० १२५-१
१. दा३ नि० ज्यांह, दा१ दा२ जिन्हि। २. दा१ दा२ कहीजै।

[२] दा० २१-४. नि० २२-५, सा० ५१-१, साबे० २५-१, सासी० ३६-१—
१. दा१ दा२ जिन्ह, दा३ नि० ज्यांह। २. दा० हरि जी, नि० सांई। ३. दा० कहीजै।

[३] दा० २१-३, नि० २२-४, सा० ५१-५, साबे० २५-४, सासी० ३६-५—
१. सा० साबे० सासी० काम निकाम (उर्दू मूल)। २. साबे० नाम (सांप्रदायिक प्रभाव)।

—o—

परिशिष्ट

(क) अनुक्रमणिका

पद

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति		पद सं०	पृ० सं०
२७.	एहि बिधि सेइए स्त्री नरहरी	...	१२३	७३
२८.	ऐसा ग्यांन बिचारि लै लै लाइ लै ध्यांनां	...	११७	६९
२९.	ऐसा ग्यांन बिचारु मनां	...	७१	४२
३०.	ऐसा भेद बिगूचनि भारी	...	१८१	१०५
३१.	ऐसी नगरिया मैं केहि बिधि रहनां	...	९५	५५
३२.	ऐसे लोगन सौं का कहिए	...	१६७	९७
३३.	कबीरा बिगरचौ रांम दोहाई	...	१६६	९७
३४.	कहा करउं कैसैं तरउं भव जल निधि भारी	...	३९	२३
३५.	कहा नर गरबसि थोरी बात	...	७३	४३
३६.	कहु पंडित सूचा कवन ठांउं	...	१९२	१११
३७.	कहु रे मुल्ला बांग निवाजा	...	१२९	७६
३८.	कहौ भइया अंबर कासौं लागा	...	१२५	७४
३९.	काजी तैं कवन कतेब बखांनीं	...	१७८	१०४
४०.	का नांगे का बांधे चांम	...	१७४	१०१
४१.	काया बौरी चलत प्रांन काहे रोई	...	१०४	६०
४२.	काया मांजसि कौंन गुनां	...	१७१	९९
४३.	काहे मेरे बांम्हन हरि न कहौ	...	१९६	११४
४४.	कुसल खेम अरु सही सलांमति	...	१०२	५९
४५.	कैसै नगर करौं कुटवारी	...	१२०	७१
४६.	को न मुवा कहु पंडित जनां	...	१०३	६०
४७	कोरी कौ काहू मरमु न जांनाँ	...	१५०	८८
४८.	कौंन मरै कौंन जनमैं आई	...	१९४	११२
४९.	क्या मांगौं किछु थिर न रहाई	...	९९	५८
५०.	क्यौं लीजै गढ़ बंका रे भाई	...	२५	१५
५१.	गुणां का भेद न्यारौ न्यारौ	...	१७६	१०२
५२.	गुरु बिन दाता कोइ नहीं	...	३	४
५३.	गोकुल नाइक बीठुला	...	१०	७
५४.	गोबिंद हंम ऐसे अपराधी	...	४०	२४
५५.	गोबिंदे तुम्हारै बनि कंदलि	...	१२१	७१
५६.	चतुराई न चतुरभुज पइए	...	७७	४५

क्र० सं०	प्रथम पंक्ति		पद सं०	पृ० सं०
१७७.	साधो बाघिनि खाइ गई लोई	...	१६५	९६
१७८.	साधौ भगति भेख तैं न्यारी	...	१७५	१०१
१७९.	साधौ सो जन उतरे पारा	...	१९५	११३
१८०.	सार सबद गहि बांचिहौ	...	१५२	८८
१८१.	सार सुख पाइऔ रे	...	१७३	१००
१८२.	हंम तौ एक एक करि जांनां	...	७६	४५
१८३.	हंम न मरैं मरिहै संसारा	...	१०६	६२
१८४.	हमारे गुरु दीन्हीं अजब जरी	...	२	४
१८५.	हमारे गुरु बड़े भ्रिंगी	...	१	३
१८६.	हरि का बिलोवनां बिलोइ मोरी माई	...	१२७	७५
१८७.	हरि के खारे बरे पकाए	...	११४	६७
१८८.	हरि जननीं मैं बालक तेरा	...	३७	२२
१८९.	हरिजन हंस दसा लिए डोलै	...	२८	१७
१९०.	हरि ठग जगत ठगौरी लाई	...	४९	३३
१९१.	हरि नांव न जपसि गंवारा	...	७२	४२
१९२.	हरि बिनु भरमि बिगूचे गंदा	...	१९९	११५
१९३.	हरि मोरा पिउ मैं हरि की	...	११	८
१९४.	हरि रंग लागा हरि रंग लागा	...	१६	११
१९५.	है कोई गुर ग्यांनीं जगत मंहि	...	१३७	८१
१९६.	है कोई संत सहज सुख अंतरि	...	५१	२९
१९७.	है साधू संसार मैं	...	३४	२०
१९८.	है हरिजन सौं जगत लरत है	...	१६९	९८
१९९.	है हजूरि कत दूरि बतावहु	...	१२८	७५
२००.	हौं वारी मुख फेर पियारे	...	१९	१२

रमैनी

१.	अब गहि रांम नांम अविनासी	...	२०	१२९
२.	अरु भूले खट दरसन भाई	...	९	१२१
३.	अलख निरंजन लखै न कोई	...	१४	१२५
४.	अलपै सुख दुख अ [illegible] अनंता	...	१५	१२६

क्र० सं०	प्रथम चरण		अंग-साखी	पृ० सं०
४६२.	पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा	...	३३-३	२४१
४६३.	प्रांन पिंड कौं तजि चला	...	१०-११	१७४
४६४.	प्रीति रीति तौ तुज्झसौं	...	११-७	१७६
४६५.	प्रेम न बाड़ी ऊपजै	...	१४-३२	१८३
४६६.	प्रेमीं ढूंढ़त मैं फिरूं	...	५-१०	१६०
४६७.	बगुली नीर बिटारिया	...	३१-२५	२३८
४६८.	बलिहारी ग्रुर आपकी	...	१-१६	१३८
४६६.	बसुधा बन बहु भांति है	...	२७-५	२२७
५००.	बस्तु कहीं खोजै कहीं	...	१५-८७	१६७
५०१.	बहते कौं बहि जांन दे	...	१५-८६	१६७
५०२.	बहुत दिनन की जोवती	...	२-१८	१४३
५०३.	बांम्हन गुरु है जगत का	...	२१-४	२११
५०४.	बांम्हन बूड़ा बापुरा	...	२१-२१	२१३
५०५.	बाजन दे बाजंतरी	...	१५-१३	१८७
५०६.	बाड़ चढ़ंती बेलरी	...	३१-१०	२३६
५०७.	बारी बारी आपनीं	...	१६-१८	२००
५०८.	बासुरि सुख न रैंनि सुख	...	२-१५	१४३
५०६.	बाहरि क्या दिखलाइए	...	२५-२३	२२४
५१०.	बिख के बन मैं घर किया	...	१६-४	१६८
५११.	बिखै पियारी प्रीति सौं	...	४-३०	१५७
५१२.	बिरह की ओदी लाकड़ी	...	२-८	१४१
५१३.	बिरह भुवंगम तन बसै	...	२-१	१४०
५१४.	बिरह भुवंगम पैठि कै	...	२-२	१४०
५१५.	बिरहा बिरहा मति कहौ	...	२-१६	१४३
५१६.	बिरहिनि उठि उठि भुइं परै	...	२-६	१४२
५१७.	बिरहिन ऊभी पंथसिरि	...	२-३१	१४५
५१८.	बिरहिनि थी तौ क्यौं रही	...	२-४१	१४६
५१६.	बूड़ा था पै ऊबरा	...	१-१०	१३७
५२०.	बेटा जाए क्या हुआ	...	१६-४०	२०३
५२१.	बेरियां बीती बल गया, अरु बुरा कमाया	...	१५-८२	१६६

(ख) विकृति सूची

[अर्थात् विभिन्न प्रतियों की ऐसी पाठ-विकृतियों की अनुक्रमणिका जिनपर भूमिका में विचार हुआ है। अंत में दी हुई संख्याएँ भूमिका के पृष्ठों का निर्देश करती हैं। संक्षिप्त संकेतों के स्पष्टीकरण के लिए देखिए इस सूची के अंत में दी हुई संकेत-विकृति]

अंदेसड़ौ–गुरा० में राज० प्र० १४५, दा० नि० गुरा० में राज० प्र० सा० १६२

अंधकार–(मू० कंधि काल) गु० में उ० वि० ७६

अदल–(मू० अटल) शबे० में ना० वि० ११७

अनुबानि–(मू० अगुवानि) सा० में ना० वि० १०५

अरु–(मू० करि) गु० में उ० वि० ७६

अर्थावै–(मू० बिचारै) बी० में तुक-हीनता २५४

अस–(मू० इस) साबे० में उ० वि० १२९

असार–(मू० असराल) गु० में उ० वि० ७४, २२८

अहमुख–(मू० अहमक) नि० में उ० वि० ६९

आंचि–(मू० पांचि) सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा० १८१

आंन–(मू० अन्न) दा० में उ० वि० ६३, दा० नि० में उ० वि० २२६

आखै–दा० नि० में पं० प्र० सा० १५३

आग–(मू० लाइ) सा० साबे० में स० वि० २४२

आगु–(मू० आघु) सा० सासी० में उ० वि० २२८

आगे–(मू० आघु) साबे० में उ० वि० २२८

आनंद–(मू० अनंग) बी० में उ० वि० १०१

आनंद तलब–(मू० अनहद तबल) शबे० में वर्ण-विपर्यय २२६

आपणीं–(मू० आपकी) दा० में पं० प्र० ६२

आमन–(मू० आपन) गुरा० में ना० वि० १४६, दा० स० गुण० में ना० वि० सा० १६४

आवसी–सा० में राज० प्र० १२३

आसन पवन कि ए दिढ़ रहु रे–(मू० आसन पवन दूरि करि रौरा) दा० नि० की वि० २३९

इंडा–(मू० अंडा) नि० में उ० वि० अथवा राज० उ० प्र० ६९

इकीस–(मू० उगनीस) गु० में उ० वि० ७६

इकेला–(मू० अकेला) गु० में उ० वि० अथवा पं० उ० प्र० ७६
इतनाकु–गु० में पं० प्र० ८२
इतु संगति–गु० में पं० प्र० ८२
इसरार–(मू० असरार) साबे० में उ० वि० १३०, २२८
उआ का सहज न जाई–गु० की वि० २४६
उपदेसते–(मू० परमोधतां) गु० में स० वि० २४३
उरलाइया–(मू० कुरलियां) सा० में ना० वि० १२५
उसता–(मू० तिसका) स० की वि० २४६
उसदा–दा० नि० स० में पं० प्र० सा० १६१, २४६, दा० में पं० प्र० ६२
एआणा–गु० में पं० प्र० ८१
एक रूप–(मू० एक भाइ) दा० नि० स० में स० वि० २४१
एस नो–गु० में पं० प्र० ८१
ऐसे हाल–दा० नि० की वि० २४८
ओहि गया–शबे० में पं० प्र० ११७
औकर–(मू० आखर) नि० की उ० वि० ६६
कछुअक–(मू० कछु इक) गु० में उ० वि० ७६
कटै–(मू० फिल) सा० साबे० सासी० में स० वि० २४२
कपास अनूठा–(मू० पासि बिनंठा) सा० में स० वि० २४३
कपास बिनूठा–(मू० पासि बिनंठा) सासी० में स० वि० २४३
करतंड़ा–गुग्र० में राज० प्र० १४५
कर गहे चहुं ओर–(मू० कर गहि ऐंचहु और) बीभ० में उ० वि० १०३
करम–(मू० करंक) साबे० में ना० वि० १३२
करिनि–(मू० किरिम) बीभ० में ना० वि० १०५
करि लिया–(मू० कुरलियां) साबे० में उ० वि० १२६
कसतूरी–(मू० केतकी) गु० की वि० २५०
कहिबेरी–सा० में राज० प्र० १२४
कांसी–(मू० कासी) नि० की वि० ६८, २२८
काछिवी–(मू० काछुवी) नि० सा० में उ० वि० सा० १६६
काजर–(मू० कागद) दा० नि० स० की वि० २४०
काठौ–(मू० का तू) दा० नि० में उ० वि० सा० १४६
कानी–(मू० आंनीं) सासी० में ना० वि० १३६
काम निकाम–(मू० कांमिनि कांम) सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा० १८०
कारे ने–शबे० की वि० २४७
काल–(मू० कमल) गु० की वि० २३७

का हार–(मू० आहार) सासी० की ना० वि० १३६
किनै बूझनहारै–उ० में पं० वि० ७६
किला–(मू० कला) नि० में उ० वि० ७६
किसीदा–शबे० में पं० प्र० ११७
कीता–दा० में पं० प्र० ६२, शक० में पं० प्र० ११०, शबे० में पं० प्र० ११७, दा० नि० स० में पं० प्र० सा० १६१, २४६
कीता लब्बो–गु० में पं० प्र० ८२
कुंचर–(मू० कुंजर) गु० में उ० वि० या पं० उ० प्र० ७८
कुज्जा–(मू० कुंजा) साबे० में ना० वि० १३१
कुबांण–(मू० कमांन) सा० में उ० वि० १५२
कूबट–(मू० ऊबट) सा० सासी० में ना० वि० सा० ११७
केसू–(मू० टेसू) दा० नि० में उ० वि० सा० अथवा भाषा-भेद की वि० १५०
कोइला–(मू० काजर) शबे० की वि० २३६
कोठरी–(मू० कोथली) सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा० १८१
कोठे–(मू० डागल) सा० साबे० सासी० में स० वि० २४३
कोरै–(मू० कूड़ै) सा० सासी० उ में० वि० सा० १७०
कोलाल–(मु० कुलाल) बीभ० उ०वि०
खंड–(मू० गंड) गु० में उ० वि० ७६
खड़ा–(मू० घड़ा) नि० में उ० वि० ६६
खपे–(मू० खये) सा० साबे० सासी० में ना० वि० सा० १८४, सा० साबे० में ना० वि० २२८
खाब–(मू० रबाब) सासी० में ना० वि० १३८
खुश खाना–(मू० खूब खान) सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा० १८२
खूंणैं–(मू० कोनैं) दा० नि० स० गुण० में उ० वि सा० अथवा प० उ० प्र० सा० १६३, २४७
खेढ़ा–(मू० खेदा) बीभ० में ना० वि० १०४, बीं० में ना० वि० २२७
गड़िओ–(मू० गढ़िओ) गु० में पं० प्र० ८१
गड़ु–(मू० गढ़) गु० में पं० प्र० ८१
गमन–(मू० गगन) साबे० में ना० वि० १३२
गरैं–(मू० गरी) दा० नि० में उ० वि० सा० १४८
गलका–(मू० गटका) दा० में उ० वि० ६३
गहेरा–(मू० कुहेरा) गु० में उ० वि० ७६
गारी–(मू० गाढ़ी) शबे० में तुक-हीनता २५४
गुंजर–(मू० गुजरी) शक० में उ० वि० ११०

छै–दा० में राज० प्र० ६१, नि० में राज० प्र० ६७, गु० में राज० प्र० ८०

जम घर–(मू० जंबुक केहरि) बी० में उ० वि० १००

जलती–(मू० बलंती) सासी० में स० वि० २४२

जसम–(मू० चसम) दा० नि० में उ० वि० सा० १४८

जां–गु० में पं० प्र० ८२

जांननहार–(मू० छांननहार) दा० स० गुण० की वि० २४०

जानैं–(मू० पावल) बी० की वि० २४६

जानौं–(मू० जालूं) सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा० १८२

जारे–(मू० जाने ?) दा० नि० सा० में ना० वि० सा० १६०

जासी–नि० में राज० प्र० ६७

जिन्हा–गु० में पं० प्र० ८२

जीवतड़ा–नि० में राज० प्र० ६७

जीव धरम हता–(मू० जिउधर महतौ) दा० नि० में छेद-भ्रांति २२६

जुआला–(मू० बैसंदर) गु० में स० वि० २४३

जुग–(मू० जग) दा० नि० में उ० वि० सा० १५१

जुज्झ–(मू० गुज्झ) सा० साबे० में ना० वि० २२६

जुनांना–(मू० जनांनां) सा० सासी० में उ० वि० सा० १७१

जूठौ–(मू० जूठै) नि० गु० में उ० वि० सा० १५७

जूनि–(मू० जोनि) नि० में उ० वि० ७०

जे नर जोग जुगति करि जांनैं इत्यादि–दा० नि० की वि० २५०

जोति–(मू० बूंद) दा० नि० स० की वि० २३६

जो बैठा–(मू० अलहजा) दा० गुण० में स० वि० २४३

ज्यौं कांमिनि कौं कांम पियारा–(मू० ज्यौं कांमीं कौं कांमिनि प्यारी) दा० नि० की वि० २३६

झक–(मू० झल) बी० सा० साबे० में उ० वि० सा० १९२

झबूकती–(मू० झलकती) दा० नि० गुण० में ना० वि० सा० १६२

झाल–(मू० झल) सा० साबे० सासी० की वि० २४९

झीठ–(मू० झूठ) सासी० में तुक-हीनता २५४

ठाढ़ी–(मू० मुसि मुसि) दा० नि० में स० वि० २४१

डडीआ–गु० में पं० प्र० ८१

डुलाय–(मू० झुलाय) सा० सासी० में ना० वि० सा० १७१

तरणा–नि० में राज० प्र० ६७, सा० में राज० प्र० १२४, दा० नि० सा० सासी० में राज० प्र० सा० १९८

दुसरिण–(मू० दसन) नि० में उ० वि० ७०

दूझ–(मू० दूज) सा० साबे० सासी० में तुकहीनता २२५

दूरि–(मू० दुई) नि० में उ० वि० ६९

देखिया–(मू० हँढिया) नि० में स० वि० २४२

देसी–नि० सा० साबे० सासी० में राज० प्र० सा० १६५

देह बिहाइ–(मू० देहु बहाइ) गु० में उ० वि० ७६

दोखे–(मू० घोखे) गु० में उ० वि० ७८

दौर–(मू० डोर) सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा० १८२

द्वार–(मू० हार) साबे० में ना० वि० १३२

धनक–(मू० धनुख) दा० नि० स० में उ० वि० सा० अथवा प० उ० प्र० सा० १५६

धीरै–(मू० घोरै) सासी० की ना० वि० १३६

धुनहीं–(मू० धनुहीं) दा० नि० में उ० वि० सा० अथवा प० उ० प्र० सा० १५१

नबेड़ै–(मू० निबेरै) नि० में उ० वि० या राज० उ० प्र० ७०.

नरतरु–(मू० निरंतर) साबे० में उ० वि० १३०

नहिं–(मू० रहि) दा० गुण० में ना० वि० २२७

न हेरि–(मू० नबेरि) गु० में उ० वि० ७७

नां जांनूं काकूं देइ सुहाग–दा० नि० स० की वि० २४८

नाचै–शबे० की वि० २४८

नाम–(मू० रांम) सासी० में सांप्र० प्र० २५२

निज नाम–(मू० भगवांन) साबे० में सांप्र० प्र० २५३

निधाना–(मू० नियांनां) गु० में स० वि० २४१

नैन–(मू० चसम) शबे० में स० वि० २४१

नैनी–(मू० नैन) गु० में उ० वि० ७४

नौ–(मू० सौ) बी० में उ० वि० १०२

नौतम–(मू० नौतन) दा० नि० में ना० वि० २२६

न्यारे–(मू० बाहज) दा० नि० स० में स० वि० २४१

पंणि–दा० में राज० प्र० ६१

पड़िए चढ़िए आखड़ै–(मू० पैड़ी चढ़ि पाछां पड़ै) सासी० में उ० वि० १४०

पतिआ भरि लीना–(मू० पतियारा लीन्हां) गु० की वि० २४४

पैर–(मू० गोड़) सा० साबे० में स० वि० २४२

प्रक्षेप साम्य–दा० सा० साबे० सासी० १८६-८७, बी० साबे० १८७-८८, दा० नि० सा० सासी० १६८, बी० साबे० २००-२०२, शक० शबे० २०३-७, नि० शक० २०७-२०६

प्रेम–(मू० परम) दा० में उ० वि० ६२

फांसी–(मू० हांसी) बी० में उ० वि० १०२

फिरिश्रो–(मू० हंढिया) गु० में स० वि० २४२

फूलै–(मू० फूटै) नि० में उ० वि० ६६

बकुला–(मू० बंकला) दा० स० में उ० वि० २२७

बचाइ–(मू० नचाइ) दा० में ना० वि० ६३

बचिश्रा–(मू० बांझ) गु० में उ० वि० ७८

बड़ी–(मू० बड़े) सा० में उ० वि० १२४

बणाहंबै–गु० में पं० प्र० ८२

बनीहै–(मू० बनांनीं) शबे० की वि० २४५

बमेक–(मू० बिबेक) दा० में पं० प्र० ६२, नि० में पं० प्र० ६८

बरतौं–(मू० राखल) बी० की वि० २४६

बांचिहै–(मू० बूड़िहौं) साबे० की वि० २३६

बांछि–(मू० बांझ) सासी० में उ० वि० १४०

बांणीं–(मू० बाड़ी) दा० नि० स० में उ० वि० सा० १५६, २४५

बाहरी–(मू० बाहिरे) सा० में उ० वि० १२५ (मू० बाहिरा) सा० साबे० सासी० में ना० वि० सा० १८२

बाहिरे–(मू० बाहुरौं) साबे० में उ० वि० १३१

बिकुला–(मू० बकला) नि० में उ० वि० २२७

बिखु छांड़ै निरबिख रहै–(मू० पख छांड़ै निरपख रहै) सा० सासी० में उ० वि० सा० १६६

बिगसि–(मू० बिनसि) सा० साबे० सासी० में ना० वि० सा० १८३

बिगूता–(मू० सूचा) गु० में तुकहीनता २५२

बिनसी–नि० में राज० प्र० ६७

बिनां–(मू० बाहिरा) बी० में स० वि० २४३

बिषयी–(मू० बिषमी) बी० में ना० वि० १०४

बिषै–(मू० बिड़ै) स० में ना० वि० २२८

बिसद–(मू० सबद) शबे० में उ० वि० ११७

बी–सासी० में राज० प्र० १४१, दा० नि० में राज० प्र० सा० १५३

बुधि–(मू० बुढ़िया) बी० में उ० वि० १०१

सीस्ति–(मू० सिस्टि) बीभ० में उ० वि० १०३

सुख करि सूती महल में–(मू० मुखि कसतूरी महमही) सा० साबे० सासी० में ना० वि० सा० १८३, २३६

सुगरां–(मू० सगुरां) सा० सासी० में उ० वि० सा० १७०

सुनि सुनि–(मू० सुर मुनि) दा० में ना० वि० ६३

सूकरि–(मू० बुड़भुज) दा० नि० में स० वि० २४१

सूखसी–नि० सा० साबे० सासी० में राज० प्र० सा० १६५

सूना–(मू० सोना) सा० में उ० वि० १२४, सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा०, १८० सा० में उ० वि० २२८ ०

सूनैं–(मू० सोनैं) दा१ दा२ में उ० वि० २२७

सूल–(मू० मूल) गु० में ना० वि० २२७

सेवक कुत्ता गुरू का–(मू० कबीर कूता रांम का) साबे० में सांप्र० प्र० २५२

सेवक कुत्ता रांम का–(मू० कबीर कूता रांम का) सासी० में सांप्र० प्र० २५२

सों प्यार है–(मू० सौंप्पा रहै) साबे० में पदच्छेद की वि० १३२

सो तांबा कंचन ह्वै निबरिश्रो–गु० की वि० २५०

सोनि–(मू० सोन) गु० में उ० वि० ७७ २२८

सौतुक–(मू० कौतुक) बीभ० में उ० वि० १८२

स्वान–(मू० खान) साबे० में ना० वि० १३१

हंदा–दा० नि० में पं० प्र० सा० १५३

हथवारि–(मू० हठि बाड़ि) गु० की उ० वि० ७४

हरियाई–(मू० हरहाई) सा० साबे० सासी० में उ० वि० सा० १८१

हल जोतिए–(मू० करि बौहड़ा) सा० साबे० में स० वि० २४३

हाजिरां सूर–(मू० हाजिर हुजूर) दा० में उ० वि० ६३

हाथ दिये जरि जाय–(मू० तामैं हाथ न बाहि) सा० साबे० सासी० में स० वि० २४३

हासनी–(मू० हस्तिनी) बीभ० में ना० वि० १०५

हूंणां–दा० नि० में पं० प्र० सा० १५३

होनहार सो होइहै–गु० की वि० २४०

ह्वैगा–(मू० ह्वैला) नि० की वि० २४६

संकेत-विवृति

उ० वि०—उर्दू (फ़ारसी) लिपिजनित विकृति
उ० वि० सा०—उर्दू विकृति-साम्य
ना० वि०—नागरी लिपिजनित विकृति
ना० वि० सा०—नागरी विकृति-साम्य
पं० उ० प्र०—पंजाबी उच्चारण-प्रभाव
पं० प्र०—पंजाबी प्रभाव
पं० प्र० सा०—पंजाबी-प्रभाव-साम्य
प० उ० प्र०—पश्चिमी उच्चारण-प्रभाव
प० उ० प्र० सा०—पश्चिमी उच्चारण-प्रभाव-साम्य
पू० प्र०—पूर्वी प्रभाव
मू०—मूल
राज० उ० प्र० सा०—राजस्थानी उच्चारण-प्रभाव-साम्य
राज० प्र०—राजस्थानी प्रभाव
राज० प्र० सा०—राजस्थानी प्रभाव-साम्य
वि०—(पाठ) विकृति
स० वि०—सरलीकरण की विकृति
सांप्र० प्र०—सांप्रदायिक प्रभाव
सांप्र० प्र० सा०—सांप्रदायिक प्रभाव-साम्य

शेष का निर्देश पीछे विषय-सूची के पश्चात् हो चुका है।

(ग) सहायक साहित्य

§1 : पाठ-निर्धारण के सिद्धांतों से संबद्ध ग्रंथ–

(क) सिद्धांत-संबंधी :

१. इंट्रोडक्शन टु इंडियन टेक्स्टुअल क्रिटिसिज़्म—डॉ० एस० एम्० कत्रे, कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बंबई, १९४१ ई० ।

२. 'इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में 'टेक्स्टुअल, क्रिटिसिज़्म' पर जे० पी० पोस्टगेट का लेख (जिल्द २२ पृ० ६-११) ।

३. दि टेक्स्ट अव् शकुन्तला—बी० के० ठकोरे : पूना की प्रथम ओरिएंटल कान्फ़रंस (सन् १९१९ ई०) में पढ़ा गया एक निबंध, बंबई, सन् १९२२ ई० ।

४. प्रोलेगोमेना टु दि क्रिटिकल एडिशन् अव् दि आदिपर्वन् अव् दि महाभारत—डॉ० वी० एस० सुकथांकर : भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, सन् १९३३ ई० ।

(ख) वैज्ञानिक शैली पर संपादित ग्रंथ :

५. जायसी-ग्रंथावली—संपादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, सन् १९५२ ई० ।

६. पंचतंत्र—हर्टेल, लीप्ज़िग, जर्मनी ।

७. पंचतंत्र रीकंस्ट्रक्टेड (दो भाग)—एफ़्० एजर्टन, अमेरिकन ओरिएंटल सीरीज़, नं० ३-४, सन् १९३४ ई० ।

८. परमात्म प्रकाश—योगीन्दु विरचित तथा डॉ० ए० एन्० उपाध्ये संपादित, बंबई, सन् १९३७ ई०

९. पाहुड दोहा—मुनि रामसिंह विरचित तथा डॉ० हीरालाल जैन संपादित, कारंजा, सं० १९९० वि० ।

१०. बीसलदेवरास (नरपति नाल्हकृत)—डॉ० माता प्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचंद नाहटा, हिंदुस्तानी एकेडेमी, १९५५ ई० ।

११. मालतीमाधव अव् भवभूति—आर० जी० भंडारकर, बंबई, द्वि० संस्क० सन् १९०५ ई० ।

१२. रामचरितमानस का पाठ (दो भाग)—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, साहित्यकुटीर, प्रयाग, १९४९ ई० ।

§२ : कोशग्रंथ

१. तुलसी-शब्द-सागर—संपादक श्री भोलानाथ तिवारी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग ।

२. पर्शिअन-इंगलिश् डिक्शनरी—एफ़्० स्टाइनगास ।

३. प्रमाणिक हिंदी कोश—संपादक रामचंद्र वर्मा, बनारस ।

४. संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी—मॉनियर विलियम्स ।

५. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी—वी० एस्० आप्टे ।

६. हिंदी-शब्द-सागर—नागरी-प्रचारिणी-सभा, बनारस ।

[उक्त कोशों का उपयोग आवश्यकतानुसार ही किया गया है। इनके अतिरिक्त गोरखबानी (डॉ० बड़थ्वाल संपादित), संतकबीर (डॉ० रामकुमार वर्मा संपादित), संतकाव्य (श्री परशुराम चतुर्वेदी संपादित) तथा बीजक (श्री महावीर प्रसाद व हंसदास शास्त्री संपादित) के शब्द-कोशों से भी पर्याप्त सहायता मिली है। साधना-परक शब्दावली का अर्थ समझने में गरीबदासकृत 'अनभैप्रबोध', (श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर से प्रकाशित 'श्री गरीबदास जी की वाणी' में संकलित) किसी अन्य संत द्वारा रचित 'नाममाला' (अप्रकाशित, लि० का० सं० १८६१ वि०) तथा पदों की एक प्राचीनतम टीका (हिंदी अनुशीलन, वर्ष ११ तथा १३ अंक ३-४) से अधिक सहायता प्राप्त हुई है।]

§३ : कबीर की ऐतिहासिक, धार्मिक पृष्ठभूमि तथा साधना व संप्रदाय की मान्यताओं से संबद्ध ग्रंथ—

१. अब्सक्योर रिलीजस कल्ट्स—डॉ० एस० दासगुप्ता, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४० ई० ।

२. उत्तरी भारत की संत-परंपरा—श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, सं० २००८ वि० ।

३. ऐन् आउटलाइन् अव् दि रिलिजस् लिटरेचर अव् इंडिया—डॉ० जे० एन्० फ़र्कुहर, ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९२० ई० ।

४. कबीर—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, बंबई, द्वि० सं० १९४७ ई० ।

५. कबीर एंड दि कबीरपंथ—रे० जी० एच० वेस्टकट, द्वि० सं०, सुशील-गुप्ता (इंडिया) लि० कलकत्ता, १९५३ ई० ।
६. कबीर एंड हिज़ फ़ॉलवर्स—डॉ० एफ़० ई० के, असोसिएशन प्रेस, कलकत्ता, १९३१ ई० ।
७. कबीर का रहस्यवाद—डॉ० रामकुमार वर्मा, प्रयाग, सं० १९८८ वि० ।
८. कबीर की विचारधारा—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, सं० २००९ वि० ।
९. कबीरदास—नरोत्तमदास स्वामी, हिंदी-भवन, लाहौर, सं० १९९७ वि० ।
१०. कबीर साहब (उर्दू)—पं० मनोहर लाल ज़ुत्शी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९३० ई० ।
११. कबीर-साहित्य का अध्ययन—श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव, बनारस, २००८ वि० ।
१२. कबीर-साहित्य की परख—श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, प्रयाग, सं० २०११ वि० ।
१३. कबीर-साहित्य की भूमिका—डॉ० रामरतन भटनागर, प्रयाग, २००७ वि० ।
१४. कबीर : हिज़ बॉयोग्रफ़ी—डॉ० मोहन सिंह, लाहौर ।
१५. गोरखनाथ एंड दि मेडिईवल हिन्दू मिस्टिसिज़्म—डॉ० मोहनसिंह, लाहौर, १९३७ ई० ।
१६. गोरखबानी—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल संपादित, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, सं० १९९६ वि० ।
१७. दि निर्गुन स्कूल अव् हिंदी पोइट्री—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, दि इंडियन बुकशॉप, बनारस, १९३६ ई० ।
१८. दि सर्पेन्ट पावर—आर्थर एवलन, लंदन, १९१९ ई० ।
१९. नाथसंप्रदाय—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५० ई० ।
२०. भक्तमाल नाभादासकृत—श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद, लखनऊ, १९१३ ई० ।
२१. भक्तमाल राघौदासकृत—चतुरदासकृत टीकासहित (हस्तलिखित प्रति, लि० का० सं० १८८० वि०, स्थान—श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर) ।
२२. भारतीय दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय, काशी, द्वि० सं० १९४५ ई० ।

२३. महात्मा कबीर—श्री हरिहर निवास द्विवेदी, सूरी ब्रदर्स, लाहौर, सं० १९९३ वि० ।

२४. मेडिईवल मिस्टिसिज़म अव् इंडिया—आचार्य क्षिति मोहन सेन, लंदन, १९३५ ई० ।

२५. योग-प्रवाह—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, काशी विद्यापीठ, बनारस, सं० २००३ वि० ।

२६. रिलीजस् सेक्ट्स अव् दि हिन्दूज़्—डॉ० एच० एच० विल्सन, १८४६ ई० ।

२७. विचार विमर्श—श्री चंद्रबली पांडेय, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००२ वि० ।

२८. वैष्णविज़म, शैविज़्म एंड माइनर रिलीजस् सिस्टम्स—डॉ आर० जी० भंडारकर, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, १९२८ ई० ।

२९. संत कबीर—डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य-भवन लि०, प्रयाग, १९४२ ई० ।

३०. संतमाल—महर्षि शिवव्रत लाल, मिशन प्रेस, इलाहाबाद ।

३१. सिद्ध-साहित्य—डॉ० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, १९५५ ई०

३२. स्टडीज़ इन् दि तंत्राज़् (भाग १)—डॉ० प्रबोधचंद्र बागची, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३९ ई० ।

३३. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद, १९२८ ई० ।

३४. हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, सं० १९८६ वि० ।

३५. हिन्दुत्व—श्री रामदास गौड़, ज्ञानमंडल कार्यालय, काशी, १९९७ वि० ।

सांप्रदायिक—

३६. कबीर-कसौटी—भाई लहनासिंह, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १९७१ वि० ।

३७. कबीरपंथ—महर्षि शिवव्रत लाल, मिशन प्रेस, इलाहाबाद ।

३८. कबीरपंथी बालोपदेश—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई ।

३९. कबीर मंसूर—स्वामी परमानंद कृत, भान जी कुबेर जी पेंटर, बंबई, हिंदी संस्करण सं० १९९० वि०, महंत सुधादास जी कृत हिंदी अनुवाद, स्वसंवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, २०१३ वि० ।

४०. कबीर साहिब का जीवन-चरित्र—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, म० प्र०, १९०५ ई० ।

४१. कबीरोपासना-पद्धति—मकनजी कुबेर, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० २००५ वि० ।

४२. चौकाचंद्रिका अर्थात् कंडिहारी भेद—सुकृतदास बरारीकृत, कबीर-धर्म-स्थान, खरसिया, बिलासपुर, सन् १९४८ ई० ।

४३. चौकाविधान—बंसूदासकृत, कबीरप्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४८ ई० ।

४४. पंचग्रंथी—रामरहस दास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई ।

४५. मिथ्याप्रलाप-मर्दन अर्थात् रैदास-रामायण का मुहतोड़ उत्तर—बंसूदास कबीरपंथीरचित, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४७ ई० ।

४६. सद्गुरु कबीर साहेब (जीवनचरित्र)—पं० मोतीदास 'चैतन्य', स्व-संवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४३ ई० ।

४७. सद्गुरु कबीर साहेब और उनका सिद्धांत—महंत विचारदास शास्त्री (वर्त्त-मान् हुजूर प्रकाशमणिनाम साहब), स्वसंवेद कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, १९४३ ई० ।

§४ : कृतियाँ तथा टीकाएँ

१. अंबु सागर—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (तुल० वेंकटेश्वर प्रेस, कबीर सागर ३)।

२. अखरावती—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, १९४९ ई० ।

३—अनुराग सागर—(१) स्वामी युगलानंद-संपादित, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९४८ ई० ।
(२) कबीर-प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सं० २००३ वि० ।
(३) सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (म० प्र०) द्वि० आ० १९३० ई० ।

४. उपदेश-रत्नावली—श्री तोताराम वर्मा द्वारा संकलित तथा भारतबंधु-यंत्रालय, अलीगढ़ से प्रकाशित लीथो संस्करण, १८८० ई० ।

५. कबीर (४ भाग)—आचार्य क्षिति मोहन सेन संपादित, विश्वभारती, शांतिनिकेतन ।

६. कबीर कृष्ण गीता—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (म० प्र०) ।

७. कबीर-गोरख गुष्टि—साधु लखनदास संपादित, कबीर चौरा, काशी, सं० १९८३ वि० ।

८. कबीर-ग्रंथावली—डॉ० श्यामसुंदर दास संपादित, का० ना० प्र० सभा, १९२८ ई० ।

९. कबीर-निरंजन-गोष्ठी—धर्मदास कृत (?), सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंह-पुर, चतुर्थावृत्ति, १९२८ ई० ।

१०. कबीर-पद-संग्रह—बाबा किशनदास उदासी निरंजनी द्वारा संपादित, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८७६ ई० ।

११. कबीर-पदावली—डॉ० रामकुमार वर्मा, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।

१२. कबीर-भजनावली—बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस सिटी, तथा सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर ।

१३. कबीर-वचनावली—अयोध्यासिंह उपाध्याय, का० ना० प्र० सभा, बनारस, नवां संस्करण, सं० २००४ वि० ।

१४. कबीर-वाणी की एक प्राचीन (-तम ?) टीका—कबीर के १२१ पदों की टीका, हिंदी अनुशीलन, प्रयाग, वर्ष ११ तथा १३ अंक ३-४ ।

१५. कबीर संगीत रत्नमाला—मल्ला साहब, वरदा प्रेस, बंबई, १९६३ वि० ।

१६. कबीर-साखी-सुधा—प्रो० रामचंद्र श्रीवास्तवकृत टीका-सहित, श्रीराम मेहरा एंड कंपनी, आगरा, २०१० वि० ।

१७. कबीर-सागर तथा बोधसागर (११ जिल्दों में)—स्वामी युगलानंद संपादित, श्री वेंकटेश्वर प्रेस तथा लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई द्वारा प्रकाशित, जिसके अंतर्गत ४०. रचनाएँ आती हैं–दे० भूमिका पृ० ३४ ।

१८. कबीर साहब और सर्वाजीत की गोष्ठी—साधु लखनदास संपादित, कबीर चौरा, काशी, सं० १९८७ वि० ।

१९. कबीर साहेब की शब्दावली—बड़े विशुनदास साहब द्वारा संपादित, कबीर चौरा, काशी ।

२०. कबीर साहब की बड़ी और छोटी शब्दावली—साधु लखनदास, कबीर चौरा, काशी ।

२१. कबीर साहब का साखी-संग्रह (दो भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९२६ ई० ।

२२. कबीर साहेब की शब्दावली (४ भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद नवां सं०, १९४६ ई० ।

२३. कायापाँजी (गुरु-महिमा-माहात्म्य नामक ग्रंथ में)—कबीर प्रेस, सीया-बाग, बड़ौदा, छठी आवृत्ति १९४८ ई० ।

२४. ग्रंथ अनंतानंद की गोष्ठी—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, सं० १६१० वि० ।
२५. ग्रंथ अनुराग सागर—धर्मदासकृत (?), सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, १६३० ई० ।
२६. ग्रंथ अमरमूल—धर्मदासकृत, प्रकाशक वही, सन् १६२६ ई० ।
२७. ग्रंथ बीरसिंह बोध—प्रकाशक वही, सन् १६०७ ई० (तुल० वेंकटेश्वर, बोधसागर, जि० ४) ।
२८. ग्रंथ भवतारण—धर्मदास कृत (?), सरस्वती विलास प्रेस, तृतीयावृत्ति, सन् १६०८ ई० ।
२६. ग्रंथ भोपालबोध—धर्मदास संग्रहीत (?); प्रकाशक वही, प्र० सं १६०० ई० (तुल० वेंकटेश्वर, बोधसागर जि० ५) ।
३०. ग्रंथ मुक्तिमाला—धर्मदास कृत (?) प्रकाशक वही, द्वितीयावृत्ति, सन् १६०८ ई० ।
३१. ग्रंथ शब्दावली—रा० रा० श्री गोविंद राम दुर्लभ राम, ज्ञान-सागर प्रेस, बंबई ।
३२. ग्रंथ ज्ञान उपदेश—जनकलाल फ़ॉरेस्टगार्ड संग्रहीत, सरस्वती विलास प्रेस, १६२७ ई० ।
३३. तीसा-जंत्र—कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा ।
३४. दि सिख रिलीजन (६ भाग)—एम० ए० मैकॉलिफ़्, १६०६ ई० ।
३५. धर्मदासबोध या ज्ञानप्रकाश—धर्मदासकृत (?); सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर, प्रकाशनकाल अज्ञात, प्रति का लि० का० सं० १८७६ वि० (तुल० वेंकटेश्वर प्रेस, बोधसागर जि० ४) ।
३६. निर्णयसार—साधु पूरणदासकृत, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १६६५ वि०, बंसूदास कृत टीका सहित, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सन् १६४८ ई० ।
३७. निर्भयज्ञान—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर तथा कबीर-चौरा, काशी से प्रकाशित ।
३८. बड़ा संतोष-बोध—ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, तथा सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर ।
३६. बीजक के निम्नलिखित संस्करण :
(१) विश्वनाथ सिंह जू देव कृत 'पाखंडखंडिनी' टीकासहित, बनारस लाइट प्रेस द्वारा प्रकाशित लीथो संस्करण, सन् १८६८ ई० ।

(२) पाखंडखंडिनी टीकासहित, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, सन् १८७२ ई० ।

(३) उसी टीका के साथ, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १९६१ वि० ।

(४) पूर्णदासकृत त्रिज्या (टीका) सहित, गंगा प्रसाद वर्मा ब्रदर्स प्रेस, लखनऊ १८९२ ई० ।

(५) पूर्णदास की त्रिज्यासहित, मिस्त्री बालगोविंद, कटरा, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, सन् १९०५ ई० ।

(६) पूर्णदास की त्रिज्या सहित, बंबई सन् १९२१ ई० ।

(७) पादरी अहमदशाह द्वारा संपादित, बैप्टिस्ट मिशन, कानपुर, सन् १९११ ई० ।

(८) उक्त पाठ का अंग्रेज़ी अनुवाद—पादरी अहमदशाह कृत, हमीरपुर, यू० पी०, सन् १९१७ ई० ।

(९) महर्षि शिवव्रत लाल की टीका सहित (३ भागों में)—नंदू सिंह, सेक्रेटरी, राधास्वामी धाम, गोपीगंज, १९१४ ई० ।

(१०) बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित संस्करण, सन् १९२६ ई० ।

(११) विचारदास की टीका सहित—नागेश्वरबख़्श सिंह द्वारा अमूल्य वितरित, सन् १९८३ वि० ।

(१२) विचारदास की टीका सहित—रामनारायन लाल, कटरा, इलाहाबाद, सन् १९२८ ई० ।

(१३) साधु लखनदास (कबीरचौरा) संपादित—महाबीर प्रसाद, नेशनल प्रेस, बनारस कैंट।

(१४) शब्दशतकसहित—जितलाल मुंश, दरजी टोला, मुरादपुर, पटना।

(१५) स्वामी हनुमानदासकृत शिशुबोधिनी टीका-सहित (३ भाग), १९२६ ई० ।

(१६) स्वामी हनुमानदासकृत संस्कृत टीका सहित—कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सन् १९३९ ई० । इसके द्वितीय परिवर्धित संस्करण का प्रथम भाग 'बीजक सुरहस्य' शीर्षक भूमिका सहित सन् १९५० ई० में प्रकाशित ।

(१७) स्वामी हनुमानदास द्वारा संपादित केवल मूल—महंत हरिनंदन जी, फतुहा, पटना १९५० ई० ।

(१८) गुजराती संस्करण (२ भाग)—प्राणलाल प्रभाशंकर बख्शी, हनुमानपोल, बैजवाड़ा, बड़ौदा १९३३ ई० ।

(१९) पूरनदास की त्रिज्या के गुजराती अनुवाद सहित—मणिलाल तुलसीदास मेहता, रावपुरा कोठी, बड़ौदा, १९३७ ई० ।

(२०) गोसाँईं भगवान साहब वाला पाठ—महंत मेथी गोसांईं साहब, आचार्य मानसर गद्दी, पो० दाऊदपुर, ज़ि० छपरा, सन् १९३७ ई० ।

(२१) भगवान गोसांईं साहब का पाठ—भगताही शाखा की गुरुप्रणाली सहित—पं० राम खिलावन गोस्वामी, धनौती बड़ामठ, पो० भाटापोखर, ज़िला सारन, १९३८ ई० ।

(२२) राघवदासकृत टीका सहित—बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस, १९३९ ई० ।

(२३) राघवदास द्वारा संपादित केवल मूल भाग—प्रकाशक वही, १९४६ ई० ।

(२४) राघवदासकृत सर्वांगपदप्रकाशिका टीका-सहित—प्रकाशक वही, १९४८ ।

(२५) गुटकाकार—स्वसंवेद कार्यालय, सीयाबाग बड़ौदा, सन् १९४१ ई० ।

(२६) केवल मूल—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस ।

(२७) शब्दकोश तथा अन्य टिप्पणियों सहित—हंसदास शास्त्री तथा महाबीर प्रसाद द्वारा संपादित तथा कबीर-ग्रंथ-प्रकाशन-समिति, हरक, बाराबंकी द्वारा प्रकाशित, सन् २००७ वि० ।

(२८) आगरा से प्रकाशित साधारण संस्करण ।

(२९) सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर द्वारा प्रकाशित, सन् १९०७ ई० ।

४०. बीजक सुखनिधान—धर्मदासकृत (?) सरस्वती-विलास प्रेस, नरसिंहपुर, प्रकाशन-काल अज्ञात, प्रति का लि० का० सं० १८९३ वि० ।

४१. मीनगीता—लक्ष्मी वेंकटेश्वर, बंबई ।

४२. रतन जोग अष्टांग—डॉ० मोहनसिंह, ओरिएंटल कालेज, लाहौर की पत्रिका में, मई सन् १९३५ ई० ।

४३. वन् हंड्रेड पोएम्स अव् कबीर—रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैकमिलन, १९२३ ई० ।

४४. विचारमाल—अनाथदास कृत, लीथो प्रति, याज्ञिक संग्रह, क्र० सं० ६२६।५३ पर, प्रकाशन का समय तथा स्थल अज्ञात।

४५. शब्द-विलास—महंत गुरुशरणपति साहब, आचार्य, बड़ैयागद्दी, ज़ि० जौनपुर, सं० १९६५ वि०।

४६. संत काव्य (संग्रह)—श्री परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, सं० २००९ वि०।

४७. संत कबीर की साखी—श्री हुजूर साहब राधास्वामी द्वारा संपादित, आगरा।

४८. सन्त कबीर की शब्दावली—मणिलाल तुलसीदास मेहता संकलित तथा विट्ठलदास खेमचंद दास पटेल, सारंगपुर दरवाजा, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित, १९५८ ई०।

४९. सत्य कबीर की शब्दाबली (दो भाग)—महर्षि शिवव्रत लाल संपादित, 'संत' पत्रिका, जिल्द १ नं० ५-६।

५०. सत्य कबीर की साखी—स्वामी युगलानंद संपादित, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९०८ ई०।

५१. सत्यकबीर शब्दावली अर्थात् कबीर भजनावली—साधु अमृतदास संपादित, कबीर चौरा स्थान, बनारस, सन् १९५० ई०।

५२. सद्गुरु कबीर साहब का सटीक साखी-ग्रंथ—राघवदासकृत टीकासहित, बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, राजादरवाजा, बनारस, १९५० ई०।

५३. सदगुरु कबीर साहब का साखी-ग्रंथ—महंत विचारदास शास्त्री कृत विरद्ध टीका-टिप्पणी सहित, प्रकाशक महंत श्री बालकदास जी, कबीर धर्म-वर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा, दूसरी आवृत्ति, १९५० ई०।

५४. सुरति-शब्द संवाद—प्रकाशक गुरुशरणपति साहब, बड़ैयागद्दी, ज़िला जौनपुर, सं० १९६४ वि०।

५५. स्वरपाँजी—'गुरु महिमा पूनो माहात्म्य' नामक ग्रंथ के अंतर्गत, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, छठी आवृत्ति, १९४८ ई०।

५६. स्वासाभेद टकसार—गुरु महिमापूनो माहात्म्य नामक ग्रंथ में, कबीर प्रेस, सीयावाग, बड़ौदा, छठी आवृत्ति, १९४८ ई०।

५७. हनुमान बोध (त्रेता में मुनींद्र अर्थात् कबीरदास जी और हनुमान की बातचीत)—धर्मदास कृत (?), सरस्वती बिलास प्रेस, सन् १९१२ ई०।

५८. ज्ञान गुदड़ी, रेखते और झूलने—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, १९४४ ई०।

५६. ज्ञान-सागर, सरस्वती विलास प्रेस, (तुल० वेंकटेश्वर प्रेस, कबीर सागर, जिल्द १)।

§५ : कबीर की वाणियों की खोज के लिए अन्य संप्रदायों के ग्रंथ

१. छुड़ानी (ज़ि० रोहतक) के गरीबदासी संप्रदाय का 'ग्रंथ साहिब अर्थात् सदगुरु श्री गरीबदास जी महाराज की बानी'—प्रकाशक श्री स्वामी अजरानंद गरीबदासी रमताराम; मुद्रक, आर्य सुधारक प्रेस, बड़ौदा, १६२४ ई० ।

२. (क) राजस्थान के दादूपंथ की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ जो दादूविद्यालय, जयपुर तथा आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस में हैं और जिनमें दादू, रज्जब, बखना, सुँदरदास, खेमदास, आदि की रचनाएँ हैं ।

(ख) श्री दादूदयाल जी की वाणी—संपादक श्री मंगलदास स्वामी, प्रकाशक वैद्य जयरामदास स्वामी, लक्ष्मीराम चिकित्सालय, जयपुर सं० २००८ ।

(ग) श्री बखना जी की वाणी : संपादक वही, प्रकाशक स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर, सं० १६६३ वि० ।

(घ) महाराज श्री गरीबदास जी (दादूपंथी) की वाणी—संपादक वही, प्रकाशक वही, सं० २००४ वि० ।

३. (क) राजस्थान के निरंजनी संप्रदाय की हस्तलिखित पोथी (लि० का० सं० १८६१) जिसमें हरिपुरुष, तुरसी, अमरदास, सेवादास आदि की वाणियाँ हैं, स्थान, दादू महाविद्यालय, जयपुर ।

(ख) श्री हरिपुरुष जी की वाणी—संपादक श्री देवादास जी वैष्णव, कुंजबिहारी जी का मंदिर, कटला बाज़ार, जोधपुर, सं० १६८८ वि० ।

(ग) श्री हरियशमणिमंजूषा—प्रकाशक साधु वैद्य श्री रामनारायण जी, सिंहथल, बीकानेर, सं० २०१६ वि० ।

४. (क) राजस्थान के रामस्नेही संप्रदायाचार्य 'स्वामी जी श्री रामचरण जी महाराज की अणभै वाणी', प्रकाशक साधु नैनूराम जी दोन्यूं रामस्नेही (आज्ञानुसार आचार्य धर्मधुरीण स्वामी श्री निर्भयराम जी

महाराज रामस्नेही, श्रीरामनिवास धाम, शाहपुरा (राजस्थान), सन् १९२५ ई० ।

(ख) रामस्नेही धर्म-प्रकाश—महंत भगवतदास, बड़ा रामद्वारा, सिंहथल, बीकानेर, सन् १९५० ई० ।

(ग) रामस्नेही धर्मदर्पण—मनोहरदास रामस्नेही, रामद्वारा, सुनेल, मध्य-भारत, सं० २००३ वि० ।

५. सिक्ख सम्प्रदाय का 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब'—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर, १९३७ ई० ।

६. निम्बार्क संप्रदायाचार्य (?) परशुराम कृत परशुराम सागर—हस्तलिखित, लि० का० अज्ञात, स्थान : आर्यभाषा पुस्तकालय, ना० प्र० स० बनारस ।

७. अलवर के लालदासीपंथ के प्रवर्तक लालदास जी की वाणियाँ—हस्त-लिखित पोथी, लि० का० अज्ञात, स्थान : याज्ञिक संग्रह, ना० प्र० स०, बनारस ।

अन्य ग्रंथ :

८. चर्यापद (बँगला में) —श्री मणीन्द्र मोहन बसु संपादित, कमला बुक डिपो, कलकत्ता ।

९. ढोला मारूरा दूहा—श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तम-दास स्वामी द्वारा संपादित, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, बनारस ।

१०. दोहाकोष (सरहपा, काण्हपा तथा तेलोपा)—कलकत्ता संस्कृत सीरीज़ नं० २५ सी, १९३८ ई० ।

११. पाहुडदोहा (मुनिरामसिंह विरचित)—डॉ० हीरालाल जैन संपादित, कारंजा, सं० १९९० वि० ।

१२. बौद्ध गान ओ दोहा (बँगला)—महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री संपादित, बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, द्वि० मु०, सं० १३५८ (बंगाब्द) ।

१३. सरहपादकृत दोहा कोश (हिंदी छायानुवाद सहित)—संपा० राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५७ ई० ।

१४. सूरसागर—काशी नागरी प्रचारिण सभा, बनारस ।

(इनके अतिरिक्त अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का उपयोग भी किया गया है जिनका विवरण निबंध के भूमिका-खंड में मिलेगा ।)

§६ : पत्र-पत्रिकाएँ

(क) **कल्याण**—गीता प्रेस, गोरखपुर, विशेषतया—

१. संत अंक—सं० १९९४ का विशेषांक।

(ख) **नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका**—ना० प्र० स०, बनारस, विशेषतया—

१. कबीर : जीवन खंड—ले० श्री शिवमंगल पांडेय, पृ० २७३-२९३।

२. वर्ष ४५, अंक ४ (माघ १९९७ वि०) में परशुराम कृत 'विप्रमतीसी' पर डॉ० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल की टिप्पणी।

३. कबीर का जीवनवृत्त—ले० श्री चंद्रबली पांडेय, भाग १४ (पृ० ५३९-४०)।

(ग) **विश्व भारती पत्रिका**—शांति निकेतन, बंगाल, विशेषतया—

१. खंड ५ अंक ३ (जुलाई-सितम्बर, १९४६) में 'कबीरपंथ और उसके सिद्धांत'—ले० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

२. खंड ६ अंक २ (अप्रैल-जून १९४७ पृ० ४४७-६५)।

३. शिवभारती क्वार्टर्ली (अंग्रेज़ी) जिल्द १२ भाग २ (अगस्त-अक्टूबर १८४६) में डॉ० प्रबोधचंद्र बागची का 'कास्ट्स अव् इंडियन मिस्टिक्स' शीर्षक लेख (पृ० १३८-१४३)।

घ. **संतवाणी**—मंगल प्रेस, जयपुर, विशेषतया—

१. वर्ष १ अंक १, २, ४, ६ में पुरोहित हरिनारायण शर्मा का 'महात्मा रज्जब जी' शीर्षक निबंध अंक १, २ तथा ४ में संत-साहित्य के अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का निर्देश तथा अंक ६ में 'सर्वंगी' ग्रंथ का विवरण

२. वर्ष २ अंक ११ में श्री अगरचंद नाहटा का 'राजस्थान में संतसाहित्य के खोज की आवश्यकता' शीर्षक लेख (पृ० ४३२-४३७) जिसमें श्री नरोत्तम दास स्वामी, बीकानेर के एक बड़े गुटके का परिचयात्मक विवरण है।

३. वर्ष ३ अंक २ (सन् १९५० ई०) में उसी लेखक का 'संतवाणी-संग्रह का दूसरा गुटका' शीर्षक लेख जिसमें नरोत्तमदास स्वामी के संग्रह के दूसरे गुटके का परिचय दिया गया है (पृ० २२-२६)।

४. वर्ष ३ अंक २ (सन् १९५० ई०) में उक्त नाहटा जी का 'संत कबीर और जैन कवि आनंदधन' शीर्षक लेख (पृ० २४-२७)।

ङ. **स्वसंवेद पत्रिका**—स्वसंवेद कार्यालय, कबीर प्रेस, सीयाबाग़, बड़ौदा, संपादक—मोतीदास 'चैतन्य'।

च. **हिंदुस्तानी**—हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, विशेषतया—

१. भाग १ अंक १, अक्टूबर १६३१—श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखित 'संत साहित्य' (पृ० ४३३-६४)।

२. भाग २ अंक २, अप्रैल १६३२—डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी लिखित 'कबीर जी का समय' पृ० २०४-१५।

३. भाग २ अंक ४, अक्टूबर १६३२—श्री परशुराम चतुर्वेदी लि० 'कबीर साहब की रमैनी', पृ० ३६६-६६

४. भाग ३ अंक १, जनवरी १६३३—ले० वही, 'कबीर साहब की साखी' पृ० ३-३८।

५. भाग ३ अंक ३, जुलाई १६३३—ले० वही। 'कबीर साहब की पदावली' पृ० २११-५३।

§७ : हस्तलिखित ग्रंथों के सूचीपत्र तथा कैटलॉग

विशेषतया—ना० प्र० स० की प्रकाशित तथा अप्रकाशित खोज रिपोर्टें (सन् १६०१ से १६४६ ई० तक)।

इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, ब्रिटिश म्यूज़ियम कैटलॉग, सरस्वती महल जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र, इत्यादि।



(घ) शुद्धिपत्र

भूमिका-भाग :

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
६०	६ (नीचे से)	बीफ०	बीभ०
१४७	फ़ोलियो	संकीर्ण विवरण	संकीर्ण संबंध
१८३	अंतिम	बगसि	बिगसि
२४४	अंतिम	फ़ा०	अ०
२५२	३ (ऊपर से)	साबे०	शबे०

२५२ का भूल से २०२ छप गया है।

पृ० २१ पर अंतिम पंक्ति के पश्चात् निम्नलिखित अंश छपने से रह गया है—
(क) सखियाँ—६४ अंग, १३७७ साखियाँ; (ख) रमैणी—सकल गहगरा, सतपदी, बड़ी अष्टपदी, दुपदी, लहुड़ी अष्टपदी, बारहपदी, चौपदी, सपत वार, बावनी, दुपदी दूसरी, अगाधबोध, श्रीपा जोग, सबद भोग, (पांनां ८६ से ११५ तक); (ग) पद—राग २४, संख्या ६६३, रेखता ७ (पांनां ११५ से ३२६ तक)। इसके पश्चात् पांनां २४६ तक 'जनम बोध पत्रिका की रमैनी' और 'ग्रंथ बत्तीसी' नाम के दो अन्य ग्रंथ भी कबीर के नाम से मिलते हैं। पुष्पिका के अनुसार यह पोथी जेसलमेर (राजस्थान) में सं० १८७४ वि० की कार्तिक शुक्ला १४ को निरंजनी संप्रदाय के साधु विनतीराम द्वारा लिखकर समाप्त की गयी। इस पोथी में कबीर की जो वाणी मिलती है वह दादू विद्यालय की निरंजनीपंथी प्रति से अक्षरशः मिलती है।

पाठ-भाग :

पद सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	नांला	नाला
२	४	नांग, नांगिनि	नाग, नागिनि
३	अंतिम	५	३
५	६	लेहहौं	लेइहौं
५	अंतिम	अबिनांसी	अबिनासी
६	३	रसांइन	रसाइन

पद सं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	४	अपना, जनु	अपनां, जमु
१३	१	हमांरै	हमारै
१३	३	अन्देह	अंदेह
१३	६	कौ	कौं
१५	४-५	लौलींन-मींन	लौलीन-मीन
१५	६	सिरजन हार	सिरजनहार
१५	१०	अपनी	अपनीं
१८	५	नांई, समांई	नाई, समाई
२०	४	इन्ह मैं	इन्हमैं
२३	२	हस्ता	हस्ती
२५	४	मैंवासी	मैवासी
२५	५	सनांह	सनाह
२५	अंतिम	अबिनांसी	अबिनासी
२६	४	बैकुंठ का	बैकुंठ की
३२	३	मानु	मांनु
३३	५	कौ	कौं
३४	११	षड	खड
३४	११	बिंजना	बिंजनां
३५	अंतिम	महिमा	महिमां
३७	१,३	जननी	जननीं
४०	१	हम	हंम
४३	५	नांभि	नाभि
४४	१	हम तै	हंमतैं
४६	४	सिव पुरी	सिवपुरी
४८	शीर्षक	(५) परचा	(६) परचा
५३	८	रंमि, रांम राई	रंमि, रांमराई
५७	१	हम	हंम
५७	अंतिम	कबार	कबीर
६६	३	ज	जौ

पद सं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६९	७	तुम तैं	तुमतैं
७३	४	बन हर	बनहर
७५	७	भवंरहिं	भंवरहिं
७६	टिप्पणी १	दा० नि० गौड़ी	दा० गौड़ी
७८	अंतिम	रसांइन	रसाइन
८०	३	षट	ख़ट
८१	३	लगाम	लगांम
९१	अंतिम	चरन देइहौं	चरन न देइहौं
९३	१	बानियां	बांनियां
११०	टिप्पणी १	मिश्रित ४ के बाद स० ७०-५	
१२१	३	भूल	मूल
१२१	टिप्पणी १,३	शबे०	शक०
१३१	४	बूबर	बबूर
१६०	३	ना हूं	नां हूं
१८७,८८	११,५	हम	हंम
१९७	टिप्पणी १	छूट गया है—	गु० सूही १, बी० २१
१९९	अंतिम	कहिए	कहिए[२३]

रमैनी—

१७	अंतिम	॥१०॥	॥१७॥

चौ०र०—

	५-७	भम्मा	भम्भा

साखी—

पृ० सं०	साखी सं०-पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३	१८-टिप्पणी १	छूट गया है	गुण० २४-१
१४५	२९-टिप्पणी १	गु०	गुण०
१४७	४४-२	धोएि	धोए
१४८	४९-१	साजानां	साजनां
१४८	५५-१	भारा	मारा
१४९	२-टिप्पणी १	सासी० १३-६९ के बाद—गु० १२८	

पृ० सं०	साखी सं०-पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५०	७-टिप्पणी २	(दो बार) के बाद भूल गया है—गुण०८२	
१५३	३-टिप्पणी २	गुण० ११२	गु० ११२
१५४	११-टिप्पणी १	गुण० १६०	गु० १६०
१५५	१४-१	चला	चाला
१५७	२७-१	खाइँ	खांइँ
१५८	४०-टिप्पणी	सा० ११४-१	स० ११४-१
१६१	२-१	मुझ मैं	मुझमैं
१६२	८-१	तुज्झ सौं	तुज्झसौं
१६३	८-१	ऐसी	अैसी
१६४	१	'संम्रथाई कौ अंग' के पश्चात् होनी चाहिए	
१६४	१-टिप्पणी	गुण० ६२	गु० ६२
१६६	१६-टिप्पणी	नि०सा०१०७-२	सा० १०७-२
१६७	६-टिप्पणी	सा० ५८-५	स० ५८-५
१७२	४१-१	संसारा	संसार
१७४	१४-१	हम	हंम
१७५	३-१	लागे	लागै
१७६	१४-१	सांइ	सांइँ
१९१	४४-१	कर कर केस	कर केस
२१२	फ़ोलियो	११२	२१२
२१२	१६-१	जुग	जगु
२१५	१-२	फल न लागैं	फल लागैं
२२१	१७-१	जानिए	जांनिए
२२२	८-१	मरम	भरम
२२७	४-१	पांनां	पांनीं
२२९	५-२	तौ खा खाइ	तौ लूखा खाइ

